મળવાનું ઠેકાણું
શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
ઠે ગરેડિયા કુવારોડ, ગ્રીન લૉજ
પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર)

★

બીજી આવૃત્તિ પ્રત ૧૦૦૦
વીર સંવત ૨૪૮૪
વિક્રમ સંવત ૨૦૧૪
ઈસ્વીસન ૧૯૫૮

★

મુદ્રક
મણિલાલ છગનલાલ શાહ
ધી નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ
ઘીકાંટા રોડ : અમદાવાદ.

રૂા ૧૦,૦૦૦) આપનાર આદ્ય સુરબ્બી સમિતિના પ્રમુખ;
દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ.

શ્રી-વર્ધમાન-શ્રમણ-સંઘના આચાર્યશ્રી

પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

આપેલ

સમ્મતિપત્ર

*

ઉપરાંત

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ-રચિત

બીજા સૂત્રોની ટીકા માટે તેઓશ્રીના મતવ્યો

*

તેમજ

અન્ય મહાત્માઓ, મહાસતીજીઓ, અદ્યતન-પદ્ધતિવાળા કૉલેજના પ્રોફેસરો

તેમજ

શાસ્ત્રજ્ઞ શ્રાવકોના અભિપ્રાયો

॥ ॥

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-प्रधानाचार्य-पण्डित-मुनि-
श्रीमदात्मरामजीमहाराजानाम् आचाराङ्गसूत्रस्याचार-
चिन्तामणिटीकायां

सम्मतिपत्रम्

श्रीमल्लब्धसपर्य्याचार्यवर्य्यघासीलालजित्कृता श्रीमदाचाराङ्गसूत्र-प्रथमाध्ययनस्याचारचिन्तामणिवृत्तिः साकल्येनोपयोगितापूर्वकं कर्णकुहरीकृता, वृत्तिरियं न्यायसिद्धान्तोपेता व्याकरणनियमोपनिबद्धा, तथा च प्रासङ्गिकरीत्या अन्यसिद्धान्तसङ्ग्रहोऽप्यस्यां याथातथ्येनाभासत एव, अपि च निखिला अपि विषयाः सम्यग् व्यक्तीकृता लेखकेन, विशेषेण प्रौढविषयाणां स्फुटतया गीर्वाणवाण्यां प्रतिपादनम् अधिकतरं मनोरञ्जकम्। अत आचार्यमहोदयो धन्यवादमर्हतीति।

आशासे जिज्ञासुमहोदया अस्याः सम्यग् अध्ययनेन जैनागमसिद्धान्तपीयूषं पायं पायं मनोमोदं विधास्यन्तीति। अस्याः परिशीलनेन चतुर्णामनुयोगानां परिचयं प्राप्नुवन्तु सज्जनाः। अथ आचार्यमहोदया एवमेवान्येषामपि जैनागमानां विशदव्याख्यानेन श्वेताम्बराणां स्थानकवासिनां महोपकृतिं विधाय यशस्विनो भविष्यन्तीति।

पञ्चनदप्रान्तान्तर्वर्ति-लुध्यानामण्डल-स्थानकवास्तव्यो जैनमुनि-रुपाध्याय आत्मारामः।

विक्रमाब्दः २००२, मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपत्, शुभमस्तु॥

જૈનાગમવારિધિ-જૈનધર્મદિવાકર પ્રધાનાચાર્ય પંડિત-મુનિશ્રી આત્મારામજી મહારાજ (પંજાબ) ના એ આચારાંગસૂત્રની આચારચિંતામણિ ટીકાપર આપેલ

સમતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ

મે પૂજ્ય આચાર્યવર્ય ઘાસીલાલજી (મહારાજ) ની બનાવેલ શ્રીમદ્ આચારાંગ સૂત્રના પ્રથમ અધ્યયનની આચારચિંતામણિ ટીકા સમ્પૂર્ણ ઉપયોગ પૂર્વક સાંભળી.

આ ટીકા ન્યાય સિદ્ધાંતથી યુક્ત, વ્યાકરણના નિયમથી નિબદ્ધ છે તથા એમા પ્રસગે પ્રસગે ક્રમથી અન્ય સિદ્ધાંતોનો સગ્રહ પણ ઉચિતરૂપથી જણાઇ આવે છે

ટીકાકારે અન્ય તમામ વિષયો સમ્યક્ પ્રકારથી સ્પષ્ટ કરેલ છે તેમજ પ્રૌઢ વિષયોનો વિશેષરૂપથી સસ્કૃત-ભાષામાં સ્પષ્ટતાપૂર્વક પ્રતિપાદન અતિ મનોરજક છે એ માટે આચાર્ય મહોદય ખરેખર ધન્યવાદને પાત્ર છે

હુ આશા રાખુ છુ કે જિજ્ઞાસુ મહોદયો એના સારી રીતે પઠન પાઠન દ્વારા જૈનાગમ સિદ્ધાંતરૂપ અમૃત પીયૂ પીયને મનને આનંદિત કરે અને તેના મનનથી દ્રવ્યનો ચાર અનુયોગોનુ સ્વરૂપજ્ઞાન મેળવે.

તથા આચાર્યવર આવી જ રીતે બીજા પણ જૈનાગમોના સ્પષ્ટતાપૂર્વક વિવેચન દ્વારા શ્વેતાંબર સ્થાનકવાસી સમાજ પર મહાન ઉપકાર કરીને યશસ્વી બને.

વિ. સ ૨૦૦૨
માગસર સુદી ૧

જૈનમુનિ-ઉપાધ્યાય આત્મારામ
લુધિયાના (પંજાબ)
શુભમસ્તુ

॥

जैनागमवारिधि–जैनधर्मदिवाकर–प्रधानाचार्य–पण्डित–मुनि–
श्रीमदात्मरामजीमहाराजानाम् आचाराङ्गसूत्रस्याचार-
चिन्तामणिटीकायां

सम्मतिपत्रम्

श्रीमल्लब्धसपर्य्याचार्यवर्य्यघासीलालजिल्कृता श्रीमदाचाराङ्गसूत्र-प्रथमाध्ययनस्याचारचिन्तामणिवृत्तिः साकल्येनोपयोगितापूर्वकं कर्णकुट-रीकृता, वृत्तिरियं न्यायसिद्धान्तोपेता व्याकरणनियमोपनिबद्धा, तथा च प्रासङ्गिकरीत्या अन्यसिद्धान्तसङ्ग्रहोऽप्यस्यां याथातथ्येनाभासत एव, अपि च निखिला अपि विषयाः सम्यग् व्यक्तीकृता लेखकेन, विशेषेण प्रौढविषयाणां स्फुटतया गीर्वाणवाण्यां प्रतिपादनम् अधिकतरं मनो-रञ्जकम् । अत आचार्यमहोदयो धन्यवादमर्हतीति ।

आशासे जिज्ञासुमहोदया अस्याः सम्यग् अध्ययनेन जैनागम-सिद्धान्तपीयूषं पायं पायं मनोमोदं विधास्यन्तीति । अस्याः परिशीलनेन चतुर्णामनुयोगानां परिचयं प्राप्नुवन्तु सज्जनाः । अथ आचार्यमहोदया एवमेवान्येषामपि जैनागमानां विशदव्याख्यानेन श्वेताम्बराणां स्थानक-वासिनां महोपकृतिं विधाय यशस्विनो भविष्यन्तीति ।

पञ्चनदप्रान्तान्तर्वर्ति–लुध्यानामण्डल–स्थानकवास्तव्यो जैनमुनि-रुपाध्याय आत्मारामः ।

विक्रमाब्दः २००२, मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपत्, शुभमस्तु ॥

सम्मतिपत्र

(भाषान्तर)

श्रीवीरनिर्वाण सं० २४५८ आसोज

शुक्ल १५ (पूर्णिमा) शुक्रवार लुधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमचन्द्रजीने पंडितरत्नमुनिश्री घासीलालजीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली–अच्छी बनी–है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदायी–संयमरूप जीवनको देनेवाली–ही है। टीकाकार ने मूलसूत्र के भावको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है? और विशेष धर्म क्या है? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप, कर्म–पुरुषार्थ–वाद और श्रावकोंको धर्मके अन्दर दृढता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें भलीभाँति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजलाली पर था और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुँचा इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंको भी पूरा लाभ होगा क्योंकि टीका संस्कृत है, उसकी सरल हिन्दी कर दी गई है। इसके पढनेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भावसे पढने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें! श्रावकों (गृहस्थों) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावक के बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है, तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामी महाराज तथा न्यायव्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७ श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण-सवच्छर २४५८ आसोई
(पुण्णमासी) १५ सुक्कवारो लुहियाणाओ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवासगसुत्तस्स अगारधम्मसंजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंत सुया, समीईणं, इयं वित्ती जहाणामं तहा गुणेवि धारेइ, सच्चं अगाराणं तु इमा जीवण (संजमजीवण) दाई एव अत्थि। वित्तिकत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जुसेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामण्णविसेसधम्मो, णयसियवायवाओ, कम्मपुरिसट्ठवाओ, समणोवासयस्स धम्मदढया य, इच्चाइविसया अस्सिं फुडरीइओ वण्णिया, जेण कत्तुणो पडिहाए सुट्ठुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाणभरहवासस्स य कत्तुणा विसयप्पयारेण चित्त चित्तिय, पुणो सक्कयपाढीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए भासीग य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्जं परमप्पससणिज्जमत्थि। पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव लाहप्पयं, अवि उ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो अणेगकोडिसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अच्चंतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमोवयारो कडो, अह य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि, जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ पुरिसक्कारपरक्कमवाओ य अवस्समेव दसणिज्जो, किंवहुणा इमोए वित्तीए पत्तेयविसयस्स फुडसद्देहिं वण्णणं कयं, जइ अन्नोवि एवं अम्हाणं पच्चुत्तप्पाए समाजे विज्जं भवेज्जा तया नाणस्स चरित्तस्स तहा सघस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं ह मन्ने॥

भवईओ—

उवज्झाय—जइणमुणि—आयाराम—पंचनईओ,

રૂા. ૬૦૦) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



શેઠ હરખચંદ કાળીદાસ વારીઆ
ભાવનગર.

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहां तक कहें, इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुसप्राय (सोई हुई सी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान, चारित्र तथा श्रीसघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी.



इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है–

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज–कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने बडे परिश्रम व पुरुषार्थसे तय्यार किया है, सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्तियोंकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढनेसे हमको अत्यानन्द हुवा, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे–यह एक हमारे लिये बडे गौरवकी बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.



श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र की 'अनगारधर्मामृतवर्षिणी' टीका पर
जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका

सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्मामृत-वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म० ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलों को सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम को सफल बना इस शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।



श्रीमान्जी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्टद्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं, पहुंचने पर समाचार देवें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म० ठाणे ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं। पूज्य श्री घासीलालजी म० सा० ठाणे ४ को हमारी ओरसे वन्दना नमस्कार सुखसाता पूछें।

पूज्यश्री घासीलालजी म० जीका लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं। इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस भेज देवेंगे। आपके पास नहीं हो तो जहांसे मिले वहांसे १ कापी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवेदक

प्यारेलाल जैन

श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र की ' अनगारधर्मामृतवर्षिणी ' टीका पर
जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका

सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्मामृत-वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म० ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्यक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलों को सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम को सफल बना कर शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।



श्रीमान्जी जयवीर

आपकी सेवामें पोस्टद्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं, पहुंचने पर समाचार दवें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म० ठाने ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं। पूज्य श्री घासीलालजी म० सा० ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर सुखसाता पूछें।

पूज्यश्री घासीलालजी म० जीका लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं। इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें, फिर आपको वापिस भेज देवेंगे। आपके पास नहीं हो तो जहांसे मिले वहांसे १ कापी जरूर भिज वाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवेदक

प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री घासीलालजी (महाराज)की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका, न्यायसिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयोंका विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवादके पात्र हैं।

मैं आशा करता हूं कि जिज्ञासु महोदय इसका भलीभांति पठन-द्वारा जैनागमसिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से, दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमोंके विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे।

वि. स. २००२ }
मृगसर सुदि १ }

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम
लुधियाना (पंजाब). शुभमस्तु॥

*

बीकानेरवासी समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरूदानजी शेठियाका अभिप्राय-

*

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बडा उपकारका कार्य है। इससे जैनजनताको काफी लाभ पहुंचेगा।

(ता २८-३-५६ के पत्रमेंसे)

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्यश्री आत्मारामजी-
महाराजानां पञ्चनद-(पंजाब) स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थबोधिनीनाम्नी सत्कृत्वृत्तिरुपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इयं हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति। श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते। यथा चेयं वृत्तिः सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि। अस्या स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सुभिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्रेषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते।

आशासे श्रीमदाचार्यवर्यमुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोषाय जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति।

अन्ते च "मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरलां सुबोधिनीं चेमां सुवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं सुयोग्या हंसनिभाः पाठकाः" इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा
लुधियाना

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः

✽

(श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥श्री वीरगौतमाय नमः ॥

सम्मतिपत्रम्

मए पंडितमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मूलचन्दवासवारा पत्ता पंडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सक्कय-हिन्दी-भासाहिं जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नामसुत्तस्स आयारमणिमंजूसा वित्ती अवलोइया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्दाणं अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ, विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ। आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्वं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरूवं जे जहा-तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णणं कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसयजुत्ता सिज्झइ। सक्कयछाया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठव्वा। अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सब्भावो समाजस्स अहोभग्गं अत्थि, किं उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ, जो अम्हाण समाजो सुत्तप्पाओ अम्हकेर साहिच्च च लुत्तप्पायं अत्थि, तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ ? जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाण पाविहिइ। अओह आयारमणिमंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि- ॥

वि स. १९९० फाल्गुन शुक्लत्रयोदशी मङ्गले (अलवरस्टेट) } इइ- उवज्झाय जइण-मुणी, आयारामो (पंचनईओ)

ऐसे ही :—

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टिगत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है, यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग-सुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है।

ગ્રં પરપણુ આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



કોઠારી હરગોવિંદભાઈ જેચંદ
રાજકોટ.

निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र
आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य पूज्यश्री
आत्मारामजी महाराजकी तरफका आया हुआ

सम्मतिपत्र

लुधियाना ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबचन्दजी पानाचंदजी ! सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयावलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्थ्य ठीक न होनेसे उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है, आपको भेज रहे हैं, कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये, और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ।।

भवदीय
गुज्जरमल-बलवंतराय जैन

॥ सम्मति ॥

(लेखक जैनमुनि पण्डित श्री हेमचंद्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जर-भाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च सैषा संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि तत्तद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराजानां परिश्रमोऽत्र प्रशंसनीयो, धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः । एवमेव श्री-समीरमल्लजी-श्रीकन्हैयालालजी-मुनिवरेण्ययोर्नियोजककार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हौ स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतरं स्यात् । यतोऽस्याभावे पाठका मध्येऽप्यन्यपरायणामोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलयिष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खाचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूं।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की है, वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढा सकते हैं। ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव करती हुई, महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।



ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला। श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशीरामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई। दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है। इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

રૂા ૫૦૦૧) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



(સ્વ.) શેઠ ધારશીભાઈ જીવણભાઈ
સોલાપુર

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैनसमाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण महान् विद्वान् संतोए तेमज विद्वान् श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे, तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे–

(१) लुधियाना–संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिमाका पत्र, श्रुतज्ञान के भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज.

(२) लाहौर–वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित श्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.

(३) खीचन–से ता. ९–११–३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.

(४) वालाचोर–ता १४–११–३६ का पत्र, परमप्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचदजी महाराज.

(५) बम्बई–ता. १६–११–३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कवि नानचंद्रजी महाराज.

(६) आगरा–ता. १८–१२–३६, जगत्–वल्लभ श्री १००८ जैनदिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी श्री प्यारचन्दजी महाराज.

(७) हैद्राबाद–(दक्षिण) ता. २५–११–३६ का पत्र, स्थविरपदभूषित भाग्यवान पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज, तथा प्रसिद्धवक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज.

(८) जयपुर–ता. २७–११–३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांत–स्वभावी श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज.

(९) अम्बाला–ता. २९–११–३६ का पत्र, परमप्रतापी पंजाबकेशरी श्री १००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

(१०) सेखाना-शा २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीमान् रसनलालजी डोसी

(११) खीचन-सा ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुभावक श्रीयुत् माणकलालजी

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुवा उपासकदशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछें, आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मति मंगाई, उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचनेका साहस जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों है ही, संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैनसमाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढ़े, यही शुभ कामना है। आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खाचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूं।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की है, वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढा सकते हैं। ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव करती हुई, महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।



ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला। श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशीरामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई। दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है। इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

રૂા. ૫૦૦૧) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



(સ્વ.) શેઠ ધારશીભાઈ જીવણભાઈ
સોલાપુર

शान्तस्वभावी वैराग्यमूर्ति तत्त्ववारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचंदजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासकदशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि श्री घासीलालजी महाराज ने उपासकदशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखनेमें बडा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होनेसे भगवान निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रसका लाभ मिल सकता है।



बालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पण्डित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि—

उत्तरोत्तर जोतां मूलसूत्रनी संस्कृत टीकाओ रचवामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे भगवरी लेखा जेवुं छे, वळी करांचीना श्री संघे सारा कागळमां अने सारा टाईपमां पुस्तक छपावी प्रगट कर्युं छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे



बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।



सीथन से स्थविर क्रियापात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडित रत्न मुनि श्री समर्थमलजी फरमाते हैं कि—विद्वान् महात्मा पुरुषों का प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम श्रीमद् उपासकदशाङ्गसूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधिनी शुद्ध हिन्दी भाषा बडी ही सुंदरता से लिखी है।



श्री वीतरागाय नमः ।

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जैनाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद । आपश्रीजीने तो ऐसा कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्यने नहीं किया ।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनीको उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान करें ता कि आप जैनसमाज से ऊपर और भी उपकार करते रहें, और आप चिरञ्जीवी हों ।

हम हैं आपके मुनि तीन
मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन,

*

इतवारी बाजार

नागपुर ता. १९-१२-५९

प्रखर विद्वान् जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धारा हुआ और हो रहा है सचमुच महाराज श्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कइ मार्मिक स्थलोंको पढा, पढ कर विद्वान मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पडी।

वास्तवमें मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाजका नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घरमें होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि जैन



શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિપત્ર

શ્રમણ સંઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતંત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

*

મે તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પંડિત મુલચંદ વ્યાસ (नागौर मारवाडवाला) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનુ અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુંદર બની છે તેમા પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈ ને સમજાવવામા આવેલ છે

તેથી તે વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાવાળી છે ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો ઉલ્લેખ સારો કરેલ છે. જે આધુનિક-મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, દયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શું વસ્તુ છે' તેનુ સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે. વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે

આ વૃત્તિમા એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદચ્છેદ સુબોધદાયક બનેલ છે

પ્રત્યેક જીજ્ઞાસુએ આ ટીકાનુ અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ. વધારે શું કહેવું ? અમારી સમાજમા આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનુ હોવું એ સમાજનુ અહોભાગ્ય છે આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુપ્તપ્રાય-સુતેલો સમાજ અને લુપ્તપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે અમો વૃત્તિકારને વારવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ફાલ્ગુન શુક્લ તેરસ મંગળવાર (અલવર સ્ટેટ)

ઈતિ
ઉપાધ્યાયજૈનમુનિ આત્મારામ
(પંજાબી)

પ્રખર વક્તા પ્રભાવક પંજાબકેસરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદજી મહારાજ તેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલ હતાં ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય.

*

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રવારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ દ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈનસમાજ તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીજૈનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતની જડને મજબુત કરવાવાળું છે

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમાં યથાશક્તિ યોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે

*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરિસારધીરં

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ ઠાણા ઘણી સેવામાં—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ ઇશ્વરલાલજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત.

આપ સર્વે ઠાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશો નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મારાધનામાં લીન હશો

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા આચારાંગ એક એક ભાગ મળી છે, ટીકા ખુબ સુંદર, સરળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકજનો તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે, અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરૂદેવને આંખે મોતીયા ઉતરાવ્યો છે અને સારૂં છે એજ

આસો સુદ ૧૦, મંગળવાર, તા. ૨૫–૧૦–૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઇચ્છતો,
ઇશ્વરમુનિના પ્રણિપાત.

*

દરિયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઇચંદજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી

ગાગાપુર તા. ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિ મુનિવરોની સેવામા, આપ સર્વ સુખસમાધીમા હશો.

સૂત્રપ્રકાશનનુ કામ સુંદર થઈ રહ્યુ છે તે જાણી અત્યંત આનંદ આપના પ્રકાશિત થયેલાં કેટલાક સૂત્રો મે જોયા. સુંદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઇ પડે તેવી છે સૂત્રપ્રકાશનનુ કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામા સાધનભૂત થાય એજ અભ્યર્થના

લી. પંડિતરત્ન બાળબ્રહ્મચારી
પૂ૦ શ્રી ભાઇચંદ મહારાજની
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના
પાયવંદન સ્વીકારશો

*

તા. ૧૧-૫-૫૬
વિરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ધૃત.

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનુ લખાણ સુંદર અને સરળ ભાષામા થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ સમય ઓછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શકયા નથી છતા જેટલુ સાહિત્ય જોયું છે, તે બહુ જ સારૂ અને મનન સાથે લખાયેલુ છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને અનુરૂપ લાગે છે આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાચવા ચોગ્ય છે આમા સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસણાની દૃઢતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે. આચાર્યશ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઇ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે

લી. કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.
મુ ખીચન

*

શ્રી ખંભાત સંપ્રદાયના મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર–નામ–ગોત્ર બાંધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર અને તેને અનુમોદન આપનાર, જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષય કરી કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે. શાસ્ત્રજ્ઞ પરમ શાન્ત અને આત્માર્થી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે વંદનીય છે. તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ–શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમાં સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કેઃ—

શાસ્ત્રોદ્ધાર પ્રવર પંડિત આત્માર્થી સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે–પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચ થઈ રહેલ છે તેને પહોંચીવળવા માટે ખાસ ફંડ કરવું જોઈએ. એના માટે મારી એ સુચના છે કે–શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો–એ બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે.

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતાં જો સંભાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરળતાથી થઈ શકે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જ્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમાં એમની જ્ઞાનશક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો, કારણ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિચરવાની ઈચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ વિનંતિ કરી અમદાવાદ પધરાવવા, અને ત્યાં અનુકૂળતા મુજબ બે–ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ.

થોડા વખતમાં જામજોધપુરમાં શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારશો તો ઠીક.

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ૐ અસ્તુ.

ચાતુર્માસ સ્થળ લીંબડી
સં. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ

લી.
સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશાદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે, આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃતટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણી જ સુંદર છે સંસ્કૃતરચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી યુક્ત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ.

આ મહાન કાર્યમાં પંડિતરત્ન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ
તા ૨૨-૪-૫૬ રવીવાર
મહાવીર જયંતિ

મુનિ પુનમચંદ્રજી

*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલભાઈ મંગળદાસભાઈ.
પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત શ્વે૦ સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ. વિ. મા આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીના સૂત્રોમાથી ઉપાસકદશાંગસૂત્ર, આચારાંગસૂત્ર, અનુત્તરોપપાતિકસૂત્ર

દશવૈકાલિકસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયાં તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભદાયક છે તે વાંચન ઘણું જ સુંદર અને મનોરંજન છે આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અગાધ પુરૂષાર્થ કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણો લાભ થવા સંભવ છે

હંસ સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના હેતુથી નિષ્પક્ષ ભાવનાએ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવું છે દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂં છું કે આ સૂત્રો પોતપોતાના ઘરમાં વસાવવાની સુંદર તકને ચૂકશો નહિ કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરપરાને પુષ્ટિરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યમાં આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છો તેમાં મહાન નિર્જરાનું કારણ લેખામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ એ જ

શ્રી શારદાબાઈ સ્વામી
ખંભાત સંપ્રદાય



બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધંધુકા તા. ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ
પ્રમુખ અ૦ ભા૦ શ્વે૦ સ્થા. જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ. રાજકોટ

અત્રે બીરાજતા ગુ૦ ગુ ના ભંડાર મહાસતીજી વિદુષી મોંઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિઠાણાં બન્ને સુખશાતામાં બીરાજે છે આપને સૂચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશો એજ આશા છે

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલાં સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઈ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ આદ્યોપાન્ત વાંચ્યાં મનન કર્યાં અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગમાર્ગને ખુબ જ ઉન્નત બનાવનાર છે તેમાં આપણી શ્રદ્ધા ઓરતી ન્યાયરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે હંસ સમાન

આત્માઓ જ્ઞાનઝરણાઓથી આત્મરૂપવાડીને વિકસિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનુ દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છો આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સપૂર્ણું કાર્ય પુરૂ કરાવશો તેવી આશા છે.

એજ લિ. બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી
મહાસતીજી **મોંઘીબાઈ સ્વામી**
ના ફરમાનથી લી. ખોડીદાસ ગણેશભાઈ—ધધુકા
સ્થાનકવાસી જૈન સઘના પ્રમુખ

*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાસ થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયા છે તે હુ જોઈ શકયો છુ, મુનિશ્રી પોતે સસ્કૃત, અર્ધમાગધી હિદી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે એ એમનો ટુક પરિચય કરતા સહજ જણાઈ આવે છે શાસ્ત્રોનુ સપાદાન કરવામાં તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમા ત્રણ પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે તે જોઈ મને આનદ થયો સ્થાનકવાસી સપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પડિતોનો સહકાર મેળવી આપી,મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યુ છે સ્થાનકવાસી સમાજમા વિદ્વત્તા, ઘણી ઓછી છે, તે દિગબર મૂર્તિપૂજક શ્વેતાબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતા હુ વિરોધના ભય વગર કહી શકુ પૂ૦ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમા પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે સસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારા આપવામા આવ્યા છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોકકસ કહી શકુ છુ ગુજરાતી ભાષાતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલા છે મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાતરોને વાચનાલયમા અને કુટુંબોમા વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે

પ્રતાપગજ, **વડોદરા** **કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ**

તા. ૨૭–૨–૧૯૫૧

મુંબઈની બે કૉલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઈ તા. ૨૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મંગળદાસ
પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ,
રાજકોટ.

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક આવશ્યક, ઉપાસકદશાંગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયાં. આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે, અને સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યા છે. સંસ્કૃતટીકા અને ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાંતરો જોતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એક સરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વત્તા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હિંદીમાં થયેલાં ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે. એથી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ બંનેને સંતોષ આપે એવી એમની લેખનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે. બીજા ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી. આચાર્યશ્રીના આ મહાન કાર્યને જૈનસમાજનો વિશેષત: સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાંપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

પ્રો. રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ
સેંટ ઝેવિયર્સ કૉલેજ, મુંબઈ
પ્રો. તારા રમણલાલ શાહ
સોફીયા, કૉલેજ મુંબઈ

*

રાજકોટ ધર્મેન્દ્રસિંહજી કૉલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ
જાગનાથ પ્લૉટ
રાજકોટ, તા. ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પં. મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકસૂત્ર વિ. મેં જોયાં.

આ સૂત્રો જોતા પહેલી જ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઇ આવે છે એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી આપણે જોઇએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે તેની વસ્તુ ગભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, એટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનુ ભાષાતર પૂ૦ ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામા જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનુ સરળ ભાષામા ભાષાતર દરેક જિજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ સરળ અને શુદ્ધ ભાષામા સૂત્રો લખવામા આવ્યા છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમા સકળાયેલા જોઈએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે તેમનુ જીવન સૂત્રોમા વણાઈ ગયુ છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમા પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સપૂર્ણપણે સફળ થશે

પ્રો રસીકલાલ કસ્તુરચંદ ગાંધી
એમ એ એલ. એલ બી
ધર્મેન્દ્રસિહજી કોલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ ભિનાસર કોન્ફરેન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખત શ્રી શ્વેતાબર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ સશોધન અને સ્વતત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુંભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દૃષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમા લઇ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમા સર્વાનુમતે સાહિત્યમત્રી નીમ્યા છે, તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ. ભા શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સીટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ. એ. પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કોન્ફરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે—પંડિતોની અને નાણાંની તે તે પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઈચ્છા ધરાવે છે

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કૉન્ફરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ ત્રુટી હોય તે પૂ૦ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાંનિધ્યમાં જઈ બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો આ કામને ધક્કો પહોંચાડવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે

(રત્ન જૈન પત્ર તા ૪-૫-૫૬)



સ્વતંત્રવિચારક અને નિડર લેખક 'જૈનસિદ્ધાંત'ના તંત્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

> આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ. સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામાં આવતા નથી લાંબી તપાસને અંતે મે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાંચના લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્ચા પણ કરતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમાં

નથાઈ નથી અને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલા સૂત્રો જોતા સૌ કોઇને ખાત્રી થાય તેમ તે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને. અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખુ સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે.

કેટલાકનો એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનુ કામ આપણુ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે બીજા કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા આ સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામા (અર્ધમાગધી ભાષામા) સૂત્રો બનાવેલાં છે એટલે સૂત્રો વાચવા તેમજ સમજવામા ઘણા સરળ છે.

માટે કોઈ પણ વાચકને એવો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો અને ધર્મનુ તેમજ ધર્મના સિદ્ધાતોનુ સાચુ જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવુ નહિ એટલુ જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલા સૂત્રો જ વાચવા

સ્થાનકવાસીઓમા આ શ્રી સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવુ કોઈ પણ સસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી. સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડયા છે, બે સૂત્રો–અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાગ સૂત્ર–લખાય છે તે પણ થોડા વખતમા તૈયાર થઈ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામા આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા બધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ઘરમા વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ

'જૈન સિદ્ધાત' પત્ર–મે ૧૯૫૫

*

શ્રુત–ભક્તિ

(પૂ૦ આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ૦ સા ની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)

દ. સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા ૨૩–૬–૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી અહેય પરમપૂજ્ય. જ્ઞાનદિવાકર પ૦ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ૦ ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત પૂર્વાપર અવિરોધસ્વરૂપ કલ્યાણકારક, પરમ શીતળ વાણીના ઘોતક એવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પંડિત છે અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે. એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે

ભ૦ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણધર મહારાજોએ શ્રુતપરંપરાએ સાચવી રાખ્યો. શ્રુતપરંપરાથી સચવાતું જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો. ત્યારે શ્રી દેવર્દ્ધિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લભીપુર–નગરમાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યો. આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે તે અર્ધમાગધી ભાષામાં છે અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા ગણધરોની ધર્મભાષા છે તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે પરન્તુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે

જિનાગમ એ આપણાં અહેય પવિત્ર ધર્મશાસ્ત્રો છે એ આપણી આત્મા છે તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની–જૈન માત્રની ફરજ છે તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સદ્‌ભાગ્યે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજે સત્ સંકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત શાસ્ત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે

ભ૦ મહાવીરને ગણધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય ? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે અને તેઓ સંસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે અને સંસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષની ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે

આવા જ્ઞાનકાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગંબરો અને અન્ય ધર્મિઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા ભગવદ્‌ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હજારો ટીકા ગ્રંથો દુનિયની લગભગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે ઇસાઇ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રન્થ બાઇબલના પ્રચારાર્થે તેનું જગતની સર્વ

ભાષાઓમા ભાષાંતર કરી તેને પડતર કરતા પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે મુસ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનુ અનેક ભાષાઓમા ભાષાંતર કરી સમાજમા પ્રચાર કરે છે આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવા જોઇએ અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ આવા પવિત્ર કાર્યમા સાપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઇએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવુ જોઇએ સમિતિના નિયમાનુસાર રૂ ૨૫૧) ભરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઇએ ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મૂકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું–જ્ઞાનપ્રચારનુ આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું જોઇએ

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો–ભગવાનની એ મહાવાણીનુ પાન કરવા પણ આપણે હરહમેશ તત્પર રહેવું જોઇએ જેથી પરમ શાતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય (સ્થા જૈન તા ૫–૭–૫૬)

*

શ્રી અ ભા શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના પ્રમુખ શ્રી વગેરે રાણપુર

પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાત–શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના પુનીત પગલા થયાં છે ત્યારથી ઘણા લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અન ત ઉપકારક કાર્યમા તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લે છે, મને તો સમજાય છે કે સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાચ–સાત સાધુઓ જો સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમા હોય તો સમાજનુ શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે સમાજાકાશમા સ્થા જૈન સ પ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે પણ વો દિન

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે–પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાશે તેવી છે તેમને ગામેગામ વિહાર કરવુ અને શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય કરવુ તેમા ઘણા શારીરિક માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે, તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાના શ્રાવકો ભક્તિવાળા હોય વાડાના રાગના વિષથી અલિપ્ત હોય એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબ ધ કરવો જોઇએ બીજા કોઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમા યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડ કરી અપાય તો વધુ સારૂ મ્હારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા કરી યાદ આપુ છુ ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને મારા અભિન દન પાઠવુ છુ તે સ્વીકારશો લી **સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી**

"જૈનસિદ્ધાંતના" તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સંસ્થા છે, અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે—તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવાં એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચુક્યાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઈ ગયાં છે અને જમ્બૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ તથા નંદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યાં છે

હાલમાં મંત્રી શ્રી શાંતિલાલ મંગળદાસ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આખો વખત આપે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમના ખંત માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમા વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઋણ અદા કર્યું ગણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે પઢમં નાણં તઓ દયા પહેલું જ્ઞાન પછી ક્ષમા દયા ધર્મ યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો જોઈએ.

એટલા માટે શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા. જૈને પોતાના ઘરમાં વસાવવાં જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાંચે એ ખાસ જરૂરનું છે.

" જૈનસિદ્ધાંત " ડીસેમ્બર-૫૬

*

શ્રી ઉપાસકદશાંગસૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત

પ્રકાશક-અ ભા શ્વે સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, ગ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ પાકુ પુંઠુ, જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિંમત રૂા ૮-૮-૦

આપણા મૂળ બાર અંગ સૂત્રોમાનું ઉપાસકદશાંગ એ સાતમું અંગ સૂત્ર છે. એમા ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોના જીવનચરિત્રો આપેલા છે, તેમા પહેલુ ચારિત્ર આનંદ શ્રાવકનુ આવે છે

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને બાર વ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધા તેનુ સવિસ્તર વર્ણન આવે છે, તેની અંતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ નરક, દેવલોક વગેરેનુ વર્ણન પણ આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધા તે બાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધુ આપેલુ છે તેજ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામા अरिहंतचेइयाइं શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનુ ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામા અનેક રીતે પ્રમાણો આપી સાબિત કરેલ છે અને अरिहंतचेइयाइं નો અર્થ સાચુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાચવુ જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ વારવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમા વસાવવુ જોઈએ

પુસ્તકની શરૂઆતમા વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સંમતિપત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સંમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે

"જૈનસિદ્ધાંત" જાન્યુઆરી-૫૭

*

તે ફક્ત સર્ટીફીકેટો ઉપરાંત હાલમા મળેલ કેટલાક તાજા અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તંત્રીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા જૈન ઉપાશ્રયમાં બિરાજમાન છે તેઓ શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂરા જ ખંત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રાની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીનાં સૂત્રોની ટીકા જેમ બને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે સ્થા જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ બને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ. આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનુ કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી. પૂજ્યશ્રી અમુલખઋષીજી મહારાજે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ, ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણાં શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયાં. પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂયગડાંગસૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ. શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાંગની હિંદી ટીકા લખેલ. પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી. જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બંધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસ બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધાં છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂા. ૨૫૧) ભરીને લાઈફ મેમ્બર થનારને તમામ શાસ્ત્રો શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે આ રીતે એક પંથ અને દો કાજ બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે રૂા. ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મ લાભ પણ મળે છે

આ સાથે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સુશિષ્ય પં મુનિશ્રી કનૈયા-લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે અને અત્યાર સુધીમા મુંબઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઇફ મેમ્બર બની ગયા છે અને મુબઈમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે ઇચ્છિવા યોગ્ય છે શ્રીમત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ મોજશોખના કામોમાં તેમજ વ્યવહારિક કામોમા વાપરી રહ્યા છે તો આવા શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમાં રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે. અને બદલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે જેનું વાચન કરવાથી આત્માને શાતિ મળશે અને શાસ્ત્રાજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.

શતાવધાની મુનિશ્રી જયંતિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર "સ્થાનકવાસી જૈન" તા ૫-૯-૫૭ના અંકમાં છપાએલ છે જે નીચે મુજબ છે

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે બિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હુ ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ. મ. સા. સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને જાણ કરાવવા સારૂ લખુ છુ

શાસ્ત્રોનુ કામ એક ગહન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમાં અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. સંપૂર્ણ શાસ્ત્રોનુ જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનુ કાર્ય સફળતાથી થાય છે આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમા બિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્રલેખનનુ આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શંકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થાય છે ? કરવામાં આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિઓએ તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થયેલા છે જેથી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શંકા થાય.

પણ ખરી રીતે જોતાં, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કામ ચાલી રહ્યુ છે તે વિષે સમાજને ખાત્રિ આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમાં પ્રગટ થયેલાં આગમોના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામા આવેલ નથી અને ભવિષ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમાં ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લે.

લી

શતાવધાની શ્રી જયંત મુનિ—અમદાવાદ

*

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધા છે સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂકયા છે

આ પ્રમાણે આ સસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુક પરિચય આ પત્રિકામા આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વ સ્થા જૈન ભાઈબહેનોએ આ સસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા કોન્ફરન્સ જેમ ખોટા બણુગા ફુકનારી સસ્થાની કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે વયોવૃદ્ધ હોવા છતા તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવુ કામ હજુ સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજુ કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શકા ભર્યું છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછો હઠે તેમ નથી એવી અમો આશા રાખીએ છીએ

"જૈનસિદ્ધાત પત્ર" ઓકટોમ્બર ૧૯૫૭

*

શ્રી દશવૈકાલિક તથા ઉપાસકદશાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલાં પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમાં હોવા જ જોઈએ તે વાંચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવદ્ય અને એષણિય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બજાવી શકે છે વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અંધશ્રદ્ધાએ શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે પરંતુ 'કલ્પ શું અને અકલ્પ શું એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવદ્ય સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘસડી રહ્યા છે, અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાય. કુસેવા કરી રહ્યા છે તેમાંથી બન્ને લાભનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોદ્ધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપીઆ ૨૫૧) ભરી મેમ્બર થનારને રૂા ૪ ૦–૫૦૦ ની લગભગ કીંમતના બત્રીસે આગમો શ્રી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૧) ભરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવક ઘરે મેળવવા જોઈએ બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે. તો તે લાભ પોતાની નિર્જરા માટે પુન્યાનુબંધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપરોક્ત બન્ને સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કંઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમંત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીમતે, મફત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ-ઉપરની સૂચનાને અમે આવકારીએ છીએ. આવાં સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાંચવા યોગ્ય છે તંત્રી–

"રત્નજ્યોત" પત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

❁

श्री आचाराङ्गसूत्र प्रथमश्रुतस्कन्ध प्रथम अध्ययनका

विषयानुक्रम

विषय–	पृष्ठाङ्क
(५) उपचरितव्यवहार नय	१५२
(६) अनुपचरितव्यवहार नय	१५४
जीव के स्वरूप में सदृश-विसदृश विचार	१५६
इति अवतरण सम्पूर्ण	१५९
सूत्र का उपक्रम	१५९
सूत्र प्रथम	१६०
'भग' शब्दार्थ	१६१
सूत्र द्वितीय (संज्ञा)	१६४–१९५
संज्ञा के भेद (१६)	१६६
(१) आहारसंज्ञा	१६७
(२) भयसंज्ञा	१६९
(३) मैथुनसंज्ञा	१६९–१७०
(४) परिग्रहसंज्ञा	१७०
(५) क्रोधसंज्ञा	१७१
(६) मानसंज्ञा	१७१
(७) मायासंज्ञा	१७२
(८) लोभसंज्ञा	१७२
(९) लोकसंज्ञा	१७२–१७३
(१०) ओघसंज्ञा	१७३
(११) सुखसंज्ञा	१७३
(१२) दुःखसंज्ञा	१७४
(१३) मोहसंज्ञा	१७४
(१४) विचिकित्सासंज्ञा	१७४–१७५
(१५) शोकसंज्ञा	१७५
(१६) धर्मसंज्ञा	१७५–१७६
ज्ञानसंज्ञा के भेद–(५)	१७६

श्रीवीतरागाय नमः



जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजीमहाराजविरचिता-
ऽऽचारचिन्तामणिटीकासमलङ्कृतम्

आचाराङ्गसूत्रम् ।

[प्रथमः श्रुतस्कन्धः]

मङ्गलाचरणम्

अर्हमहं वीरजिनं प्रणम्य,
लब्धेश्वरं गौतम-मात्तशक्तिम् ।
गणीश्वरं पूर्वधरं च चित्ते,
सन्धाय जैनीं गिरमुज्ज्वलन्तीम् ॥ १ ॥

आचाराङ्गसूत्रकी
आचारचिन्तामणिटीका का हिन्दीभाषानुवाद ।

मङ्गलाचरण

(१)

भव्य जीवोंके मनोरथ पूर्ण करते जो सदा
उन वीतराग जिनेन्द्र के चरणाम्बुजों मे भक्ति सदा ।

आचारसूत्रे मुनिघासिलालः,
प्रयत्नतः साधुजनेष्टसिद्धयै ।
आचारचिन्तामणिमादधेऽहं,
भव्याः सदैनं हृदि धारयन्तु ॥ २ ॥

अनेक लब्धिग्राहि चौदह पूर्वधारक जो तथा,
अध्यात्मशक्ति विभूतियुक्त विराजते है जिन यथा ॥

(२)

आचार्य गणधर लोक हित गौतमपदाम्बुज में नती,
मेरी विराजे सर्वदा देवे विमल मति शुभ गती ।
निर्दोषतत्त्वनिरूपिणी उनकी समुज्ज्वल भारती,
धरते उसे हिय में सदा जो भव्यजन को तारती ॥

(३)

विनीत 'घासीलाल' मुनि जनता तथा मुनि के लिये,
भगवत्सुभाषितरत्न 'आचाराङ्ग गुणगुम्फित किये ।
मणिमालिका के रूपमें करते प्रकाशित है अभी,
आचारचिन्तामणि हृदयगृह में रखे जनता सभी ॥

(४)

जड द्रव्य चिन्तामणि हृदयपै बाहिरे जाते धरे,
'आचारचिन्तामणि' (टीका) हृदयमें धारिता तमको हरे ॥
सब भव्यजन संसार वन में घूमते इसको गहे,
जिससे प्रकाशित मार्ग हो निज लक्ष्य पद सत्वर लहे ॥

इह सार्धतृतीयद्वीपाभ्यन्तरे पञ्चदशक्षेत्रात्मकनन्दनकानने सम्यक्त्वालवालमध्ये आत्मरूपा कलम्बा विंशतिस्थानकपुनःपुनःसमाराधनसलिलेन समर्धिताः सन्त स्तीर्थकृत्स्वरूपा अभिनवकल्पपादपा प्रादुर्भवन्ति ।

भव्यजीवों के समस्त मनोरथ पूर्ण करने वाले श्री वीर भगवान् को प्रणाम करके, तथा विविध प्रकार की लब्धियों के धारक चौदह (१४) पूर्वों के ज्ञाता आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके समस्त दोषों से रहित होने के कारण तथा वास्तविक वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने के कारण उज्ज्वल जिनवाणीको हृदय में धारण करके—

मैं 'घासीलाल' मुनि प्रसन्न करके भव्य पुरुषों को तथा मुनियों की इष्टसिद्धि के लिये आचाराङ्ग रूप सूत्र (डोरे) में भगवद्भाषित विविध आचाररूप मणियों मालारूपमें पिरोता हूँ। भव्यजन इसे सदैव अपने हृदयमें धारण करें। जडद्रव्यस्वरूप चिन्तामणि हृदय पर अर्थात् वक्षःस्थल पर धारण किया जाता है किन्तु यह आचारचिन्तामणि (टीका) हृदय में धारण करने योग्य है ॥ २ ॥

इस अढ़ाई द्वीप के भीतर पन्द्रह कर्मभूमि रूप नन्दनवन में सम्यक्त्वरूप क्यारीमें आत्मारूपी कलम्ब तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के कारणभूत बीस स्थानों की बारबार आराधना रूपी पानीसे वृद्धिको प्राप्त होकर तीर्थङ्कररूप नूतन कल्पवृक्ष उत्पन्न होते हैं।

આચારાંગ સૂત્રની આચારચિન્તામણિ ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ.

મંગલાચરણ

ભવ્ય જીવોના તમામ મનોરથ પૂર્ણ કરવાવાળા શ્રી વીર ભગવાનને પ્રણામ કરીને, તથા વિવિધ પ્રકારની લબ્ધિઓના ધારક ચૌદ પૂર્વોના જ્ઞાતા આધ્યાત્મિક શક્તિથી સમ્પન્ન શ્રી ગૌતમ ગણધરને નમસ્કાર કરીને સકલ દોષોથી રહિત હોવાના કારણે તથા વાસ્તવિક વસ્તુસ્વરૂપને પ્રકાશિત કરવાના કારણે ઉજ્જવલ જિનવાણીને હૃદયમાં ધારણ કરીને—

હું ઘાસીલાલ મુનિ પ્રસન્ન કરીને, ભવ્ય પુરૂષો—જીવોની તથા મુનિજનોની ઇષ્ટ સિદ્ધિ માટે શ્રી આચારાંગરૂપ સૂત્ર (દોરા)માં ભગવદ્‌ભાષિત—વિવિધ આચાર રૂપ મણિઓને માલારૂપમાં પરોવું છું. ભવ્ય મનુષ્ય તેને હમેશાં હૃદયમાં ધારણ કરે. જડદ્રવ્ય રૂપ ચિન્તામણિ હૃદય પર અર્થાત્ વક્ષસ્થળ ઉપર ધારણ કરાય છે કિન્તુ આ આચારચિન્તામણિ (ટીકા) હૃદયમાં ધારણ કરવા યોગ્ય છે ૨

આ અઢી દ્વીપની અંદર, પંદર કર્મભૂમિરૂપી નન્દન—વનમાં સમ્યક્ત્વરૂપ ક્યારીમાં આત્મરૂપી કલમ્બ—કલમ (રાણી) તીર્થંકરગોત્ર બાંધવામાં કારણભૂત વીસ સ્થાનોની વારંવાર આરાધનારૂપી જલથી વૃદ્ધિ પામીને તીર્થંકરરૂપ નૂતન—નવીન કલ્પવૃક્ષ ઉત્પન્ન થાય છે.

तद्वचनेषु हि कल्पतरुकुसुमगतसौन्दर्यादिगुणाः समुपलभ्यन्ते । यथा-

(१)-सौन्दर्यम्, (२)-सुगन्धः, (३)-त्रिदोषनाशकत्वम्, (४)-सप्तधातु-पौष्टिकत्वम्, (५)-त्वग्रोमबलकरत्वम्, (६)-हृदयाह्लादकत्वम्, (७)-तापशमनत्वम्, (८) शोभाकारित्वम्, (९) उत्साहकत्वम्, (१०) स्फूर्त्तिकारकत्वम्, (११) वीर्य-वर्द्धकत्वम्, (१२)-श्रमहारित्वम्, (१३)-मधुरत्वम्, (१४)-स्निग्धत्वम्, (१५)-बहुदलत्वम्, (१६)-विषविनाशकत्वम्, (१७)-मकरन्दधारित्वम्, (१८)-व्याधिनाशकत्वम्, (१९)-विकशनशीलत्वम्, (२०)-तृष्णानिवारकत्वम्,

---

जैसे कल्प वृक्षों के फूलों में सौन्दर्य आदि गुण पाये जाते है उसी प्रकार तीर्थङ्करोंके वचनोंमें भी सौन्दर्य आदि सभी गुण पाये जाते हैं। दोनोंमें समान रूपसे पाये जाने वाले गुण इस प्रकार है—

(१)-सौन्दर्य, (२)-सुगन्ध, (३)-त्रिदोषनाशकता, (४)-सप्तधातुपुष्टिकरता, (५)-त्वक्-रोम-बलकारित्व, (६) हृदयाह्लादकत्व, (७) तापशमनत्व, (८) शोभाकारित्व, (९)-उत्साहकता, (१०)-स्फूर्तिजनकता, (११)-वीर्यवर्धकता, (१२)-श्रमहारित्व, (१३)-मधुरता, (१४)-स्निग्धता, (१५)-बहुदलता, (१६)-विषविनाशकता, (१७)-मकरन्द-(पुष्परस) धारित्व, (१८)-व्याधिविनाशकता, (१९)-विकसनशीलता, (२०)-तृष्णा-

---

જેવી રીતે કલ્પવૃક્ષોના ફૂલોમા સૌન્દર્ય આદિ ગુણો દેખાય છે, તે પ્રમાણે તીર્થંકરોના વચનોમા પણ સૌન્દર્ય આદિ તમામ ગુણો દેખાય છે બન્નેમા સમાન રૂપથી દેખાતા ગુણો આ પ્રકારના છે—

(૧)-સૌન્દર્ય, (૨)-સુગધ, (૩)-ત્રિદોષનાશકપણુ, (૪)-સાત ધાતુની પુષ્ટિ કરનાર, (૫)-ચામડી, વાળ-બળકારીપણુ, (૬)-હૃદયને આનદકારક, (૭)-તાપનુ શમન કરવાપણુ, (૮)-શોભાકારીપણુ, (૯)-ઉત્સાહકપણુ, (૧૦)-સ્ફૂર્તિજનકપણુ, (૧૧)-વીર્યવર્ધકપણુ, (૧૨)-શ્રમનિવારણુપણુ, (૧૩)-મધુરતા (૧૪)-સ્નિગ્ધતા-ચિકણુ-પણુ, (૧૫)-બહુદલતા, (૧૬)-વિષવિનાશકપણુ, (૧૭)-મકરદ-પુષ્પરસ-ધારકતા, (૧૮)-વ્યાધિવિનાશકતા, (૧૯)-વિકસનશીલતા, (૨૦)-તૃષ્ણાનિવારકતા,

(२१) मूर्च्छाहारकत्वम्, (२२) पथ्यत्वम्, (२३) मेध्यत्वम्, (२४) उत्कृष्टभावोत्पादकत्वम्, (२५) अवयवसन्निवेशविशेषवत्त्वम्।

तत्र सौन्दर्यादिकं यथा कल्पतरुकुसुमेषु भगवद्वचनेषु च विद्यते, तथा प्रदर्शयाम :—

स	गुणाः	कल्पतरुकुसुमपक्षे	भगवद्वचनपक्षे
१	सौन्दर्यम्	मनोहराकृतिमत्त्वम्,	माधुर्यप्रसादगुणवत्त्वम्,
२	सुगन्धः	घ्राणेन्द्रियतृप्तिजनकत्वम्।	दिव्यध्वनिरूपत्वेन भगवद्वचनस्यार्यानार्यद्विपदचतुष्पदादीनां

निवारकता, (२१)—मूर्च्छाहारित्व, (२२)—पथ्यता (२३) मेध्यता (२४)—उत्कृष्टभावोत्पादकता, (२५)—अवयवसन्निवेशविशेषवत्त्व।

ये पचीस गुण कल्प वृक्षके फूलों में तथा भगवान् के वचनों में किस प्रकार समानरूप से पाये जाते हैं वह बतलाते हैं

सं	गुण	कल्पवृक्षके फूलोंके पक्षमें	भगवानके वचनोंके पक्षमें।
(१)	सौन्दर्य	मनोहर आकृति वाला	माधुर्य और प्रसाद गुण वाला
(२)	सुगन्ध	घ्राणेन्द्रियको तृप्तकरने वाला	दिव्यध्वनिरूप होने के कारण आर्य, अनार्य, द्विपद, तथा

(२१)—मूर्छानिवारकता, (२२)—पथ्यता, (२३)—मेध्यता, (२४)—उत्कृष्ट भावोनुं उत्पादकपणुं अने (२५)—अवयवसंनिवेशविशेषपणुं

आ पचीस गुणो कल्पवृक्षना फूलोमां तथा भगवानना वचनोमां केवी रीते समानपणे देखाय छे ते बतावे छे—

स.	गुण	कल्पवृक्षना फूलोना पक्षमां	भगवानना वचनोनापक्षमां
(१)	सौन्दर्य	मनोहर आकृतिवाळा,	मधुर अने मोहक शब्द सौन्दर्य
(२)	सुगंध	नासिकाने तृप्त करनार	दिव्यध्वनिरूप होवाथी आर्य अनार्य बे पगवाळां तथा चार पगवाळा

		स्वस्वभाषापरिणतत्वेन तृप्तिजनकत्वम् ।
३ त्रिदोषनाशकत्वम्,	वात-पित्त-कफ नाशकत्वम्,	मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वमोहनीय दोषनाशकत्वम् ।
४ सप्तधातुपौष्टिकत्वम्,	रसासृङ्-मासमेदोऽस्थिमज्जाशुक्र-वर्द्धकत्वम्,	द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-नयाभ्यां स्यादस्त्यादिसप्तभङ्गाना पुष्टिकरत्वम् ।

		चतुष्पद आदि की अपनी २ भाषा मे परिणत होजानेके कारण तृप्तिकारक ।
(३) त्रिदोषनाशकत्व,	वात पित्त और कफ इन तीन दोषों को दूर करने वाला ।	मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय इन तीन कर्मों को नष्ट करने वाला ।
(४) सप्तधातुपोष्टिकत्व,	रस, रक्त, मास, मेद, हड्डी और वीर्य, इन सात धातुओं को बढाने वाला ।	द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा कथंचित् अनित्यता आदि सात भगो का पोषक ।

		જીવોને પોત પોતાની ભાષામા પરિણત હોવાના કારણે તૃપ્તિકારક
(3) ત્રિદોષનાશકત્વ,	વાત, પિત્ત અને કફ, આ ત્રણ દોષોને દુર કરવા વાળા	મિથ્યાત્વ, મિશ્ર અને સમ્યક્ત્વ–મોહનીય, આ ત્રણકર્મોના નાશ કરનાર
(૪) સાતધાતુને પુષ્ટ, કરવાપણુ	રસ, રક્ત માસ, મેદ, હાડકા મજ્જા અને વીર્ય, આ સાત ધાતુને બલવાન કરનાર	દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક-નયની અપેક્ષાએ કથચિત્ નિત્યતા કથચિત્ અનિત્યતા આદિ સાત ભગોના પોષક

५ त्वग्रोमबलकरत्वम्,	शारीरिकविकारहारकत्वम्	आत्मवर्तिन आर्तरौद्रध्यानात्मकविकारस्य निवारकत्वम्।
६ हृदयाह्लादकत्वम्,	दर्शनमात्रेण हृदयसुखजनकत्वम्	श्रवणमात्रेण सर्वेषां प्राणिनाममन्दानन्दजनकत्वम्।
७ तापशमनत्वम्,	शैत्यगुणवत्त्वेन तापहारकत्वम्,	शान्तरसवत्त्वेन कषायानलतापहारकत्वम्।
८ शोभाकारित्वम्,	भूषणरूपेण द्युतिवर्द्धकत्वम्,	मिथ्यात्वादिकालुष्यापहरणपूर्वकमात्मतेजःप्रकाशकत्वम्।

(५) त्वग् रोमबलकारक	शरीरसंबंधी विकार दूर करने वाला।	आत्मा के आर्तध्यान और रौद्रध्यानरूप विकारका नाशक।
(६) हृदयाह्लादकत्व,	दृष्टि पड़ते ही हृदयको आनन्दित करने वाला।	कानमें पड़तेही प्राणिमात्रको अपार आनन्द देने वाला।
(७) तापशमनत्व	शीतल होने से सन्ताप हरने वाला।	शान्तरसमय होने के कारण कषायजनित सन्तापको नष्ट करने वाला।
(८) शोभाकारित्व	आभूषणरूप होने के कारण शोभा बढ़ाने वाला।	मिथ्यात्व आदि की मलीनता दूर करके आत्माका तेज चमकाने वाला।

(૫) ચામડી અને વાળને બળકારક	શરીરસંબંધી વિકાર દૂર કરનાર	આત્માના આર્તધ્યાન અને રૌદ્ર ધ્યાનરૂપ વિકારોનો નાશ કરનાર
(૬) હૃદયને આનંદકારી	દૃષ્ટિ પડતાં જ હૃદયને આનંદ આપનાર	કાનમાં પડતાં જ પ્રાણીમાત્રને અત્યન્ત આનંદ આપનાર
(૭) તાપનિવારણ કરનાર	શીતળ હોવાથી સંતાપ દૂર કરનાર	શાન્તરસમય હોવાથી કષાય-જનિત સંતાપનો નાશ કરનાર.
(૮) શોભાકારીત્વ	ઘરેણારૂપ હોવાથી શોભા વધારનાર	મિથ્યાત્વ આદિની મલિનતા દૂર કરીને આત્માના તેજને પ્રકાશિત કરનાર.

९ उत्साहकत्वम्,	उत्साहजनकत्वम्,	प्रमादपञ्चकनिवारकत्वेन धर्माराधने योगत्रयोत्तेजकत्वम्।
१० स्फूर्तिकारकत्वम्,	हर्षोत्पादकत्वेन स्वेष्टलाभाय प्रवृत्तिजनकत्वम्,	मोक्षाय पराक्रमस्फोटनत्वम्।
११ वीर्यवर्द्धकत्वम्,	सकलेन्द्रियशक्तिदायकत्वम्,	तपःसंयमाभ्यामात्मबलोत्कर्षकत्वम्।

(९) उत्साहकत्व,	उत्साह उत्पन्न करने वाला।	पाच प्रमादों का निवारण करके धर्म की आराधना में तीनों योगों को उत्तेजित करने वाला।
(१०) स्फूर्तिकारकत्व,	हर्षजनक होने के कारण अपनी इष्ट सिद्धि के लिये प्रवृत्ति कराने वाला।	मोक्ष के लिये पराक्रम फोडने की प्रेरणा करने वाला।
(११) वीर्यवर्धकत्व	सब इन्द्रियों को शक्ति देने वाला।	तप, और सयम द्वारा आध्यात्मिक बल बढाने वाला।

(૯) ઉત્સાહકપણુ	ઉત્સાહ ઉત્પન્ન કરનાર	પાચ પ્રમાદોનુ નિવારણુ કરીને ધર્મની આરાધનામા ત્રણેય યોગોને ઉત્તેજન આપનાર
(૧૦) સ્ફૂર્તિ ઉત્પન્ન કરવાપણુ	હર્ષ ઉત્પન્ન કરનાર હોવાથી પોતાની ઇચ્છાનુસાર સિદ્ધિ માટે પ્રવૃત્તિ કરાવનાર	મોક્ષ માટે પરાક્રમ કરવાની પ્રેરણા કરનાર
(૧૧) વીર્યવર્ધકપણુ	તમામ ઇન્દ્રિયોને શક્તિ આપનાર	તપ અને સયમ દ્વારા આધ્યાત્મિક બળ વધારનાર.

१२ भ्रमहारित्वम्,	सौगन्ध्यादिविविधगुणोत्कर्षेण रसादिन्द्रियाणां शैथिल्यनिवारकत्वम्,	चतुर्गतिपरिभ्रमणेन भ्रान्तानां भवभ्रमणोपरमेण खेदात्यन्तिकनिर्वासकत्वम्।
१३ मधुरत्वम्,	मधुररसवत्त्वम्,	अपूर्वाक्षयशिवसुखानुभवात्मकरसत्वम्।
१४ स्निग्धत्वम्,	सुन्दरस्पर्शकत्वम्,	श्रवणमात्रेणाऽऽत्मनः प्रतिप्रदेशं धर्मानुरागजनकत्वम्।

(१२) भ्रमहारित्व	सुगन्ध आदि अनेक गुणों की अधिकता होनेसे उससे इन्द्रियों की शिथिलता दूर करने वाला।	चार गतियों में भ्रमण करके थके हुए प्राणियों का भव-भ्रमण मिटाकर उनके खेदको सर्वथा नाश करने वाला।
(१३) मधुरत्व	मधुर रस वाला।	अपूर्व अविनाशी मोक्षसुखकी-अनुभूति रस वाला।
(१४) स्निग्धत्व	चिकनापन।	कान में पड़ते ही आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में धर्मानुराग जगाने वाला।

(૧૨) ભ્રમનિવારણ કરવાપણું	સુગંધ આદિ અનેક ગુણોની વિશેષતા હોવાથી તે તે ઇન્દ્રિયોની શિથિલતા દૂર કરનાર.	ચાર ગતિઓમાં ભ્રમણ કરીને થાકી ગયેલા જીવોના ભવ ભ્રમણને નિવારણ કરીને તેના ખેદનો સર્વથા નાશ કરનાર
(૧૩) મધુરપણું	મધુર રસવાળા.	અપૂર્વ અવિનાશી મોક્ષ સુખના અનુભવ રૂપ રસવાળો
(૧૪) સ્નિગ્ધતા	ચિકણાપણું	કાનમાં પડતાં જ આત્માના દરેક-દરેક પ્રદેશમાં ધર્માનુ-રાગ જગાડનાર

१५ बहुदलत्वम्,	शतपत्रसहस्रपत्रादिरूपेणाऽधिकपत्रवत्त्वम्,	स्वपरसमयस्वरूपप्रदर्शकत्वबहुविधप्रमाणनयनिक्षेपादिवत्त्वम्।
१६ विषविनाशकत्वम्,	स्थावरजङ्गमविषहारकत्वम्,	विषयवासनाऽपहारकत्वम्।
१७ मकरन्दधारित्वम्,	परागवत्त्वम्,	अनित्यादिभावनाजनितवैराग्यवत्त्वम्। (१)

(१५) बहुदलत्व,	शतपत्र, सहस्रपत्र आदि रूपसे बहुत पत्तोंवाला।	स्वसमय और परसमय के स्वरूपका प्रकाशक होने के कारण भांति-भांति के प्रमाण, नय, निक्षेप, आदि से युक्त।
(१६) विषविनाशकत्व,	स्थावर और जङ्गम विष का नाश करने वाला।	विषय वासनारूप विषका नाश करने वाला।
(१७) मकरन्दधारित्व,	पुष्परसवाला।	अनित्य आदि बारह भावनाओं से उत्पन्न वैराग्यजनित शान्त रस वाला।

(૧૫) બહુદળતા	સો પત્ર, હજાર પત્ર આદિ રૂપથી ઘણા પત્રો (પાદડા) વાળા	સ્વસમય અને પરસમયના સ્વરૂપના પ્રકાશક હોવાના કારણે જૂદી જૂદી જાતના પ્રમાણુ, નય, નિક્ષેપ આદિથી યુક્ત
(૧૬) વિષનાશકણુ.	સ્થાવર અને જંગમ વિષનો નાશ કરનાર	વિષયવાસનારૂપ વિષનો–ઝેરનો નાશ કરનાર
(૧૭) મકરન્દ-ધારિત્વ	ફુલોના રસ વાળા	અનિત્ય આદિ બાર ભાવનાઓથી ઉત્પન્ન વૈરાગ્યજનિત શાતરસ પ્રગટાવનાર

१. वैराग्यवत्त्वम्–प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धेन।

१८ व्याधिनाशकत्वम्,	क्षतक्षयादिसकलातङ्कनिवारकत्वम्,	सर्वघातिप्रभृतिसकलकर्मनाशकत्वम्।
१९ विकसनशीलत्वम्,	मुकुलितपद्मस्फुटनस्वभावत्वम्,	अनन्तकालप्रसुप्तात्मगुणविकासित्वम्।
२० तृष्णानिवारकत्वम्,	अभिलाषापहारकत्वम्,	विषयाभिलाषनिवर्तकत्वम्।
२१ मूर्छाहारकत्वम्,	नष्टचेतनानिवारकत्वम्,	मोहविनाशकत्वम्।

(१८) व्याधिनाशकत्व	क्षय आदि समस्त व्याधियोंको हटानेवाला।	सर्वघाति आदि समस्त कर्मोंका नाश करने वाला।
(१९) विकसनशीलत्व	क्रमशः विकसित होता जानेवाला।	अनादिकालसे सोये पडे आत्मा के गुणोंका विकास करनेवाला।
(२०) तृष्णानिवारकत्व	लालसा हटानेवाला।	विषयों की अभिलाषा दूर करने वाला।
(२१) मूर्च्छाहारकत्व	मूर्छा (बेहोशी) मिटाने वाला।	मोह का नाशक।

(૧૮) વ્યાધિ વિનાશકપણું	ક્ષય આદિ તમામ વ્યાધિઓને નિવારણ કરનાર.	સર્વઘાતિ પ્રકૃતિ આદિ તમામ કર્મોનો નાશ કરનાર
(૧૯) વિકાસવાપણું	ક્રમશઃ વિકાસ પામવાવાળા.	અનાદિ કાલથી સુતા પડેલા આત્માના ગુણોનો વિકાસ કરનાર.
(૨૦) તૃષ્ણાનિવારકપણું	લાલચ દૂર કરનાર.	વિષયોની અભિલાષા દૂર કરનાર
(૨૧) મૂર્છાનિવારકપણું	બેભાનપણું ટાળનાર.	મોહ નાશ કરનાર

२२ पथ्यत्वम्	हितकरत्वम् ,	ऐहिकपारत्रिकसुखोत्पादकत्वे-नात्मनो नितान्तोपकारित्वम् ।
२३ मेध्यत्वम् ,	पवित्रत्वम् ,	मिथ्यात्वमलाभावेन नैर्मल्यम् ।
२४ उत्कृष्टभावोत्पादकत्वम्	दैन्यशोकादिजनितदुश्चिन्तनापनयेन विशुद्धविचाराऽऽविष्कारकत्वम् ।	विभावपरिणामजन्यदुर्वासनापनयनेन तीर्थङ्करगोत्रोपार्जन-योग्यविशिष्टभावनाजनकत्वम् ।

(२२) पथ्यत्व,	हितकर ।	इहलोक और परलोक सम्बन्धी सुखजनक होनेसे आत्मा को अत्यन्त उपकारी ।
(२३) मेध्यत्व,	पवित्रता वाला ।	मिथ्यात्वादि पाच आस्रव रूपी मल स रहित होने के कारण निर्मल ।
(२४) उत्कृष्टभावोत्पादकत्व,	दैन्यशोक आदि से उत्पन्न हुई चिन्ता को दूर करके विशुद्ध विचार उत्पन्न करने वाला ।	विभाव परिणति द्वारा जनित दुर्वासना को दूर करके तीर्थङ्कर गोत्र बाधने के योग्य विशिष्ट भावनाको उत्पन्न करने वाला ।

(૨૨) પથ્યતા	હિતકર	આ લોક અને પરલોક સબધી સુખ ઉત્પન્ન કરનાર હોવાથી આત્માને અત્યન્ત ઉપકારી.
(૨૩) મેધ્યતા	પવિત્રતા કરનાર	મિથ્યાત્વ આદિ પાચ આશ્રવ રૂપી મળથી રહિત હોવાના કારણે નિર્મલ
(૨૪) ઉત્કૃષ્ટ ભાવો ઉત્પન્ન કરવાપણું	દૈન્યશોક આદિથી થનાર ચિંતાને દૂર કરીને વિશુદ્ધ વિચાર ઉત્પન્ન કરનાર	ઉત્પન્ન વિભાવ પરિણતિ દ્વારા ઉત્પન્ન થયેલી દુર્વાસનાને દૂર કરીને તીર્થંકર ગોત્ર બાધવા યોગ્ય વિશિષ્ટ ભાવના ઉત્પન્ન કરનાર

२५ अवयवसन्निवेश- सकलावयवपूर्णत्वम्, सकलाङ्गोपाङ्गपूर्णत्वम्।
विशेषवत्त्वम्

तीर्थङ्करकल्पपादपानां वचनप्रसूनानि गणधराः श्रद्धासूत्रे संग्रथ्य गद्यपद्यात्मकविविधाङ्गोपाङ्गरूपा मालाः व्यरीरचन्। अथ ता माला हृदये निधाय तन्महत्त्वं स्वात्मनि भावयन्तो भावितात्मानः सन्तो ज्ञानक्रियाभ्यां कर्मरजोऽपनीय बाधापीडाभ्यां वर्जितमपुनरावृत्तिं सिद्धिगतिनामधेयं शिवपदं समाश्रयन्ति, भवभीरून् भव्यानपि तत्पदं प्रापयन्ति।

---

(२५) अवयवसन्निवेश- सब अवयवों से परिपूर्ण। सब अङ्गों और उपाङ्गों से युक्त।
विशेषवत्त्व

तीर्थङ्कररूपी कल्पवृक्षों के वचनरूपी पुष्पों को गणधरोंने श्रद्धारूपी सूतमें गूंथकर गद्य-पद्यरूप विविध अङ्गउपाङ्गमय मालाएँ रचीं उन मालाओं को धारण करके उनकी महत्ता का अन्तःकरण में विचार करते हुए भावितात्मा पुरुष ज्ञान और क्रिया के द्वारा कर्मरजको हटाते हैं। तथा सब प्रकार की बाधा और पीडासे रहित, जिसे पाकर फिर कभी आना नहीं पड़ता ऐसे सिद्धिगतिरूप शिवपद प्राप्त करते हैं साथ ही भवभीरु अन्य भव्य जीवों को भी उसी पद की प्राप्ति कराते हैं।

---

(૨૫) અવયવસન્નિવેશનું સર્વ અવયવોથી પરિપૂર્ણ સર્વ અંગો અને ઉપાંગોથીયુક્ત
વિશેષપણું

તીર્થંકરરૂપી કલ્પવૃક્ષોના વચનરૂપ પુષ્પોને, ગણધરોએ શ્રદ્ધારૂપી સૂતર દોરામાં ગુંથી કરી ગદ્ય-પદ્યરૂપ વિવિધ અંગ-ઉપાંગમય માળાઓ રચી. તે માળાઓને હૃદયમાં ધારણ કરીને તેની મહત્તાનો અન્તઃકરણમાં વિચાર કરનાર ભાવિતાત્મા પુરૂષજ્ઞાન અને ક્રિયા દ્વારા કર્મરજકણને દૂર કરે છે તથા સર્વ પ્રકારની ઉપાધિ અને પીડાથી રહિત, જેને પ્રાપ્ત કરીને ફરીથી કોઈ વખત આવવું પડતું નથી એવી સિદ્ધિગતિરૂપ શિવપદને પ્રાપ્ત કરે છે તેમજ ભવભીરૂ અન્ય ભવ્ય જીવોને પણ તે પદ (શિવપદ)ની પ્રાપ્તિ કરાવે છે.

कल्पपादपा हि ऐहिकमेवाध्रुव क्षणभङ्गुरं सुखं प्रदातुमीशते, इमे तु लोकोत्तर-मक्षयं शाश्वतं सुख वितरन्ति। लौकिकसुखं तु सुतरां सिद्धमेव, न पुनस्तत्र प्रदानापेक्षेति भावः।

भगवद्वचनेषु पञ्चत्रिंशद् अतिशया लोकोत्तराः सर्वैरनुभूयन्ते, पञ्चत्रिंशतोऽतिशयानां समवायाङ्गसूत्रे निर्देशात्। तथा च सूत्रम्—"पणतीस सच्चवयणाइसेसा पन्नत्ता" इति। पञ्चत्रिंशत् सत्यवचनातिशेषाः प्रज्ञप्ताः, इति च्छाया। सत्य-वचनं – भगवद्वचन सकलहितकरत्वात्, तस्य अतिशेषाः = अतिशयाः पञ्च-त्रिंशत् प्रज्ञप्ताः कथिताः, इत्यर्थः। तत्रैते पञ्चत्रिंशदतिशयाः—परंपरयाऽवगम्यन्ते—

कल्पवृक्ष तो इसी लोकसम्बन्धी सुख दे सकते है और वह सुख भी अध्रुव और क्षणभङ्गुर होता है, किन्तु तीर्थङ्कर भगवान् लोकोत्तर अक्षय और शाश्वत सुख प्रदान करते है। लौकिक सुख तो किसान के लिये भूसे के समान स्वत सिद्ध है ही—वह आनुषङ्गिक है।

भगवान् के वचनों मे पैंतीस लोकोत्तर अतिशयों का सभी प्राणियों को अनुभव होता है। श्री समवायाङ्गसूत्र में पैतीस अतिशयों का उल्लेख पाया जाता है। मूल पाठ इस प्रकार है—"पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता।"

अर्थात् सत्य वचन के पैंतीस अतिशय—गुण कहे गये है।

કલ્પવૃક્ષ તો આ લોક સબધી સુખ આપી શકે છે અને તે સુખ પણ અધ્રુવ અને ક્ષણભગુર હોય છે, પરન્તુ તીર્થંકર ભગવાન લોકોત્તર અક્ષય અને શાશ્વત–નિત્ય સુખ આપેછે, લૌકિક સુખ તો ખેડુત માટે ભુશકા (અનાજ વિનાના ફોતરા) સમાન સ્વાભાવિક સિદ્ધજ છે

ભગવાનના વચનોમા પાત્રીશ લોકોત્તર અતિશયોનો સર્વ પ્રાણીઓને અનુભવ થાય છે, શ્રી સમવાયાગ સૂત્રમા એ પાત્રીશ અતિશયોનો ઉલ્લેખ જોવામા આવે છે મૂલ પાઠ આ પ્રકારે છે— " पणतीस सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता "

અર્થાત્—સત્ય વચનના પાત્રીશ અતિશય ગુણ કહેવામા આવ્યા છે અહિં સત્ય-વચનનો અર્થ છે–ભગવાનના વચન, કેમકે તે સર્વ હિત કરનારા છે તે વચનોનો અતિશય અર્થાત્ ગુણ પાત્રીશ છે પરપરાના નિયમ પ્રમાણે પાત્રીશ અતિશય આ પ્રમાણે માનવામા આવ્યા છે—

(१) संस्कारवत्त्वम् = प्रकृतिप्रत्ययलिङ्गवचनादियुक्तत्वम् । (२) उदात्तत्वम् = श्रोतृसुबोधत्वम् (३) उपचारोपेतत्वम् = अग्राम्यजनभाषावदश्लीलादिदोषरहितत्वम् । (४) गम्भीरध्वनित्वम् = मेघवद् गम्भीरनादवत्त्वम् । (५) अनुनादित्वम् = प्रतिशब्दोपेतत्वम् । (६) दक्षिणत्वम् = ऋजुत्वम् । (७) उपनीतरागत्वम् = मालकोशरागगुणवत्त्वम्, यथा मालकोशरागः प्रस्तरानपि द्रावयति, तथा कठिनचेतसोऽपि जनान् भगवद्वचनं द्रावयतीति हृदयद्रावकत्वमिति भावः । (८) महार्थत्वम् = मोक्षमार्ग-

यहाँ सत्य वचन का अर्थ है—भगवान के वचन, क्योंकि वे सबके हित करने वाले हैं। उन वचनों के—वाणीके अतिशय अर्थात् गुण पैंतीस हैं। परम्परा के अनुसार वाणीके पैंतीस गुण इस प्रकार माने जाते हैं—

(१) संस्कारवत्व—प्रकृति प्रत्यय लिङ्ग वचन आदि से युक्त होना (२) उदात्तता—श्रोताओं के लिये सुगम। (३) उपचारोपेतता—गँवारों की भाषा में पाये जाने वाले अश्लीलता आदि दोषों से रहित। (४) गम्भीरध्वनित्व—मेघकी समान गम्भीर नाद होना। (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनिसे युक्त होना। (६) दक्षिणता—सरलता। (७) उपनीतरागत्व—मालकोश राग सरीखा गुण होना, अर्थात् जैसे- मालकोश राग पाषाण को भी पिघला देता है, उसी प्रकार भगवान् के वचन कठोर हृदय को भी पिघला देते हैं। तात्पर्य यह है कि—भगवान के वचन बड़े ही हृदयद्रावक होते हैं। (८) महार्थता—भगवान् के वचन मोक्ष-मार्ग के प्रतिपादक होने से महत्त्वपूर्ण और अर्थ

(૧) સંસ્કારવત્ત્વ-પ્રકૃતિ, પ્રત્યય લિંગ, વચન આદિથી યુક્ત બનવુ (૨) ઉદાત્તતા-શ્રોતાઓ માટે સુગમ (૩) ઉપચારોપેતતા—ગ્રામ્ય-ગામડી માણસોની ભાષામાં જોવામાં આવતા અશ્લીલ-ખરાબ, શરમ આવે તેવા ભાષાના દોષો રહિત. (૪) ગંભીરધ્વનિત્વ મેઘના જેવો ગંભીર શબ્દ. (૫) અનુનાદિત્વ-પ્રતિધ્વનિ યુક્ત હોવુ (પડઘારૂપ થવું) (૬) દક્ષિણતા સરલતા (૭) ઉપનીતરાગત્વ-માલકોશ રાગ જેવો ગુણ હોવુ અર્થાત્-જેવી રીતે માલકોશ રાગ પથ્થરને પણ પિગળાવી દે છે તે પ્રમાણે ભગવાનના વચનો કઠોર હૃદય વાળા માણસને પણ પિગળાવી દે છે તાત્પર્ય એ છે કે-ભગવાનના વચન મહાન હૃદય દ્રાવક હોય છે (૮) મહાર્થતા—ભગવાનના વચન મોક્ષમાર્ગનું પ્રતિપાદન કરનારા છે તેથી મહત્વપૂર્ણ અને અર્થથી યુક્ત હોય છે (૯) અવ્યાહતપૌર્વાપર્ય-પૂર્વાપર

कल्पपादपा हि ऐहिकमेवाध्रुवं क्षणभङ्गुरं सुखं प्रदातुमीशते, इमे तु लोकोत्तरमक्षयं शाश्वतं सुखं वितरन्ति। लौकिकसुखं तु सुतरां सिद्धमेव, न पुनस्तत्र प्रदानापेक्षेति भावः।

भगवद्वचनेषु पञ्चत्रिंशद् अतिशया लोकोत्तराः सर्वैरनुभूयन्ते, पञ्चत्रिंशतोऽतिशयानां समवायाङ्गसूत्रे निर्देशात्। तथा च सूत्रम्–"पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पन्नत्ता" इति। पञ्चत्रिंशत् सत्यवचनातिशेषाः प्रज्ञप्ताः, इति च्छाया। सत्यवचनं – भगवद्वचनं सकलहितकरत्वात्, तस्य अतिशेषाः = अतिशयाः पञ्चत्रिंशत् प्रज्ञप्ताः कथिताः, इत्यर्थः। तत्रैते पञ्चत्रिंशदतिशयाः–परंपरयाऽवगम्यन्ते–

कल्पवृक्ष तो इसी लोकसम्बन्धी सुख दे सकते हैं और वह सुख भी अध्रुव और क्षणभङ्गुर होता है, किन्तु तीर्थङ्कर भगवान् लोकोत्तर अक्षय और शाश्वत सुख प्रदान करते हैं। लौकिक सुख तो किसान के लिये भूसे के समान स्वतः सिद्ध है ही–वह आनुषङ्गिक है।

भगवान् के वचनों में पैंतीस लोकोत्तर अतिशयों का सभी प्राणियों को अनुभव होता है। श्री समवायाङ्गसूत्र में पैंतीस अतिशयों का उल्लेख पाया जाता है। मूल पाठ इस प्रकार है—"**पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता।**"

अर्थात् सत्य वचन के पैंतीस अतिशय–गुण कहे गये हैं।

કલ્પવૃક્ષ તો આ લોક સંબંધી સુખ આપી શકે છે અને તે સુખ પણ અધ્રુવ અને ક્ષણભંગુર હોય છે, પરન્તુ તીર્થંકર ભગવાન લોકોત્તર અક્ષય અને શાશ્વત–નિત્ય સુખ આપેછે, લૌકિક સુખ તો ખેડુત માટે ભુશકા (અનાજ વિનાના ફોતરા) સમાન સ્વાભાવિક સિદ્ધજ છે.

ભગવાનના વચનોમા પાંત્રીશ લોકોત્તર અતિશયોનો સર્વ પ્રાણીઓને અનુભવ થાય છે, શ્રી સમવાયાંગ સૂત્રમા એ પાંત્રીશ અતિશયોનો ઉલ્લેખ જોવામા આવે છે મૂલ પાઠ આ પ્રકારે છે— "पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता"

અર્થાત્—સત્ય વચનના પાંત્રીશ અતિશય ગુણ કહેવામા આવ્યા છે અહિં સત્ય–વચનનો અર્થ છે–ભગવાનના વચન, કેમકે તે સર્વ હિત કરનારા છે તે વચનોનો અતિશય અર્થાત્ ગુણ પાંત્રીશ છે પરંપરાના નિયમ પ્રમાણે પાંત્રીશ અતિશય આ પ્રમાણે માનવામા આવ્યા છે—

(१) संस्कारवत्त्वम् = प्रकृतिप्रत्ययलिङ्गवचनादियुक्तत्वम् । (२) उदात्तत्वम् = श्रोतृसुवेद्यत्वम् (३) उपचारोपेतत्वम् = अग्राम्यजनभाषावदश्लीलादिदोषरहितत्वम् । (४) गम्भीरध्वनित्वम् = मेघवद् गम्भीरनादवत्त्वम् । (५) अनुनादित्वम् = प्रतिध्वन्योपेतत्वम् । (६) दक्षिणत्वम् = ऋजुत्वम् । (७) उपनीतरागत्वम् = मालकोशरागगुणवत्त्वम्, यथा मालकोशराग मस्तरानपि द्रावयति, तथा कठिनचेतसोऽपि जनान् भगवद्वचन द्रावयतीति हृदयद्रावकत्वमिति भावः । (८) महार्थत्वम् = मोक्षमार्ग

यहाँ सत्य वचन का अर्थ है—भगवान के वचन क्योंकि वे सबके हित करने वाले हैं । उन वचनों के–वाणीके अतिशय अर्थात् गुण पैंतीस हैं । परम्परा के अनुसार वाणीके पैंतीस गुण इस प्रकार माने जाते हैं—

(१) संस्कारवत्व–प्रकृति प्रत्यय, लिङ्ग वचन आदि से युक्त होना (२) उदात्तता–श्रोताओं के लिये सुगम । (३) उपचारोपेतता–गँवारो की भाषा में पाये जाने वाले अश्लीलता आदि दोषों से रहित । (४) गंभीरध्वनित्व–मेघकी समान गम्भीर नाद होना । (५) अनुनादित्व–प्रतिध्वनिसे युक्त होना । (६) दक्षिणता–सरलता । (७) उपनीतरागत्व–मालकोश राग सरीखा गुण होना, अर्थात् जैसे- मालकोश राग पाषाण को भी पिघला देता है, उसी प्रकार भगवान् के वचन कठोर हृदय को भी पिघला देते हैं । तात्पर्य यह है कि—भगवान के वचन बड़े ही प्रभावक होते हैं । (८) महार्थता–भगवान् के वचन मोक्ष–मार्ग के प्रतिपादक होने से महत्वपूर्ण और अर्थ

(१) સસ્કારવત્ત્વ–પ્રકૃતિ, પ્રત્યય લિંગ, વચન આદિથી યુક્ત બનવુ (૨) ઉદાત્તતા–શ્રોતાઓ માટે સુગમ (૩) ઉપચારોપેતતા—મૂખ–જ ગવી માણસોની ભાષામા લેવામા આવતા અશ્લીલ–અસભ્ય, શરમ આવે તેવા ભાષાના દોષો રહિત. (૪) ગભીરધ્વનિત્વ મેઘના જેવો ગભીર શબ્દ. (૫) અનુનાદિત્વ–પ્રતિધ્વનિ યુક્ત હોવુ (પ ઘાકૃપ થવું) (૬) દક્ષિણતા સરલતા (૭) ઉપનીતરાગત્વ–માલકોશ રાગ જેવો ગુણ હોવુ . અર્થાત્–જેવી રીતે માલકોશ રાગ પથ્થરને પણ પિગળાવી દે છે તે પ્રમાણે ભગવાનના વચનો કઠોર હૃદય વાળા માણસને પણ પિગળાવી દે છે તાત્પર્ય એ છે કે–ભગવાનના વચન મહાન હૃદય દ્રાવક હોય છે (૮) મહાર્થતા—ભગવાનના વચન મોક્ષમાર્ગનુ પ્રતિપાદન કરનાર હોવાથી તેથી મહત્વપૂર્ણ અને અર્થથી યુક્ત હોય છે (૯) અવ્યાહતપૌર્વાપર્ય–પૂર્વાપર

प्रतिपादकत्वेन महत्त्वविशिष्टार्थकत्वम् (९) अव्याहतपौर्वापर्यत्वम् । = पूर्वापर-विरोधराहित्यम् । (१०) शिष्टत्वम् = शिष्टाभिमततत्त्वबोधकत्वम् । (११) असंदिग्धत्वम् = अभिधेयार्थानां स्फुटतया प्रतिपादनेन संशयाजनकत्वम् । (१२) अपहृतान्योत्तरत्वम् = सकलगुणपूर्णत्वेन परकृतदोषान्वेषणाऽविषयत्वम् । (१३) हृदयग्राहित्वम् = सर्वेषां प्राणिनां श्रवणमात्रेण हृदयहारित्वम् । (१४) देशकाला-व्यतीतत्वम् = द्रव्यक्षेत्रकालभावानुकूलत्वम् । (१५) तत्त्वानुरूपत्वम् = विवक्षित वस्तुद्रव्यपर्यायस्वरूपप्रकाशकत्वम् । (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्वम् = प्रसङ्ग विना-न विस्तीर्णत्वं नातिसंक्षिप्तत्वम् (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्वम् = पदानामर्थाना वा

से युक्त होते हैं । (९) अव्याहतपौर्वापर्य–पूर्वापर विरोध से रहित होते हैं । (१०) शिष्टता–शिष्ट पुरुषों द्वारा स्वीकृत तत्त्व का बोध कराते हैं । (११) असंदिग्धता–अभिधेय अर्थ का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करने के कारण संशयजनक नहीं होते । (१२) अपहृता-न्योत्तरत्व–समस्त गुणों से युक्त होने के कारण दूसरे वादी उनमें कोई दोष नहीं निकाल सकते । (१३) हृदयग्राहित्व–समस्त श्रोतागणों के हृदय को हरण करने वाले । (१४) देशका-लाव्यतीतत्व–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुकूल । (१५) तत्त्वानुरूपत्व–विवक्षित वस्तुके द्रव्य और पर्याय का स्वरूप प्रकाशित करने वाले (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्व–

વિરોધથી રહિત હોય છે (૧૦) શિષ્ટ પુરુષો દ્વારા સ્વીકારેલા તત્ત્વનો બોધ કરાવે છે (૧૧) અસંદિગ્ધતા—અભિધેય–વાકયાર્થનું સ્પષ્ટ રૂપથી પ્રતિપાદન કરવાના કારણે સંશય ઉત્પન્ન થતો નથી (૧૨) અપહૃતાન્યોત્તરત્વ- સમસ્ત ગુણોથી યુક્ત હોવાથી બીજા પક્ષના વાદી તેમાં કોઈ પણ પ્રકારનો દોષ કાઢી શકતા નથી (૧૩) હૃદયગ્રાહિત્વ–તમામ શ્રોતા વર્ગના હૃદયને હરણ કરવાવાળા (૧૪) દેશકાલાવ્યતીત્વ—દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર કાલ અને ભાવને અનુકૂળ (૧૫) તત્ત્વાનુરૂપત્વ—વિવક્ષિત-વસ્તુ એટલે બોલવા માટે મનમાં નક્કી કરેલુ, તેના દ્રવ્ય અને પર્યાયના સ્વરૂપને પ્રકાશિત કરવાવાળા (૧૬) અપ્રકીર્ણ-પ્રસૃતત્વ પ્રસંગ વિના વિસ્તાર સહિત નહિ કહેવુ, તથા સંક્ષેપમાં નહિ કહેવુ (૧૭) અન્યોન્ય પ્રગૃહીતત્વ–પૂર્વાપર પદોની અને અર્થોની અપેક્ષા રાખવા વાળા, અર્થાત્ પ્રકરણ સંગત

पूर्वापरसापेक्षत्वम्। (१८)-अभिजातत्वम् = सूक्ष्मस्यापि जीवादिस्वरूपस्य चाक्षुषमस्पष्टीकरणवत्प्रतिपादकत्वम्। (१९)-अतिस्निग्धमधुरत्वम्=अमृतवत्तृप्तिजनकत्वम्। (२०)-अपरमर्मवेधित्वम् = परमर्मोद्घाटनरहितत्वम्। (२१)-अर्थधर्माभ्यासानपेतत्वम्=पारमार्थिकार्थधर्मबोधकत्वम् (२२)-उदारत्वम्-सर्वप्राणिकल्याणकारित्वं, तुच्छार्थानभिधायकत्वं वा। (२३)-परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रयुक्तत्वम् = परोत्क्षेपात्मप्रशंसाहीनत्वम् (२४)-उपगतश्लाघत्वम् = सकलहितकरत्वेन समादरत्वम् (२५)-

---

प्रसङ्ग के बिना न कहना, न विस्तारयुक्त और न संक्षिप्त कहना (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्व पूर्वापर पदों की और अर्थ की अपेक्षा रखनेवाले अर्थात् प्रकरणसङ्गत, (१८) अभिजातता — जीव आदि के अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूपको भी इतना स्पष्ट निरूपण करने वाले जैसे कि आंखों से देख रहे हों (१९) अतिस्निग्धमधुरता — अमृत के समान तृप्तिकारक, (२०) अपरमर्मवेधित्व — दूसरों के मर्म को न प्रगट करने वाले, अथवा प्रतिपक्षियों के मर्म (हेतुओं एवं युक्तियों) का निराकरण करने वाले, (२१) अर्थधर्माभ्यासानपेतता — परमार्थ अर्थात् मोक्ष तथा मोक्ष के साधनरूप धर्म का बोध कराने वाले, (२२) उदारता — प्राणिमात्र का कल्याण करने वाले अथवा तुच्छ अर्थों का प्रतिपादन न करने वाले (२३) परनिन्दाऽऽत्मोत्कर्षविप्रमुक्तता — परनिंदा और आत्मप्रशंसा रहित (२४) उपगतश्लाघत्व — सर्वहितकारी होने के कारण सभी

---

(१८) અભિજાતતા—જીવ આદિ તત્ત્વોના અત્યન્ત સૂક્ષ્મ સ્વરૂપનું પણ એટલું સ્પષ્ટ નિરૂપણ કરવાવાળા જેમકે નેત્રથી જોઈ રહ્યા હોય. (૧૯) અતિસ્નિગ્ધમધુરતા—અમૃત સમાન તૃપ્તિ કરવા વાળા. (૨૦) અપરમર્મવેધિત્વ—બીજાના મર્મને પ્રગટ નહિ કરવા વાળા અથવા પ્રતિપક્ષીઓના મર્મ (હેતુઓ-યુક્તિઓ)નું નિરાકરણ-કરવા વાળા. (૨૧) અર્થધર્માભ્યાસાનપેતતા—પરમાર્થ-અર્થાત્ મોક્ષ તથા મોક્ષના સાધનરૂપ ધર્મનો બોધ કરવાવાળા. (૨૨) ઉદારતા—પ્રાણીમાત્રનું કલ્યાણ કરવા કરાવાવાળા, અથવા તુચ્છ અર્થોનું પ્રતિપાદન નહિ કરવા વાળા (૨૩) પરનિન્દાઽઽત્મોત્કર્ષવિપ્રમુક્તતા-પર નિન્દા અને આત્મપ્રશંસાથી રહિત (૨૪) ઉપગતશ્લાઘત્વ—સર્વહિતકારી હોવાને

अनपनीतत्वम् = श्रुतिकटुत्वादिवचनदोषापेतत्वम् (२६)–उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्वम् = नवनवार्थप्रतिपादकत्वेन पुनः पुनः श्रवणाभिलापजनकत्वम्। (२७)–अद्रुतत्वम् = शीघ्रतारहितत्वम्। (२८)–अनतिविलम्बितत्वम्=वाक्यापरिसमाप्तौ विश्रामरहितत्वम्। (२९)–विभ्रमविक्षेपरोपावेशादिराहित्यम् = विभ्रमो=भ्रान्तिः, विक्षेपः=विवक्षितार्थं प्रत्यनासक्तता, रोपावेशः=क्रोधावेगस्तैर्विमुक्तत्वम्। (३०)–विचित्रत्वम् = वर्णनीयवस्तुस्वरूपप्रकाशनेन लोकोत्तरत्वम्। (३१)–आहितविशेषत्वम् =द्रव्य–पर्याय–विशेषप्रतिपादकत्वम्। (३२)–साकारत्वम्=हेतुकारणादिभिः स्फुटतया

के लिये उपादेय, (२५) अनपनीतत्व – कर्णकटुकता आदि दोषों से रहित, (२६) उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्व – नूतन नूतन अर्थ का निरूपण करने के कारण वार वार सुनने की अभिलाषा उत्पन्न करनेवाले, अर्थात्–भगवानके वचनोंको वार वार सुनने की इच्छा होती है। (२७) अद्रुतत्व–शीघ्रता से रहित, (२८) अनतिविलम्बितत्व–बहुत विलम्ब से उच्चारण न किये जाने वाले, अर्थात् वाक्य समाप्त होने से पहले विश्राम लिए विना ही बोले जाने वाले। (२९) विभ्रम–विक्षेप–रोषाऽऽवेशादिराहित्य, विभ्रम अर्थात् भ्रान्ति, विक्षेप अर्थात् प्रतिपाद्य वस्तु के प्रति असावधानी, रोष अर्थात् क्रोध, के आवेश से रहित, (३०) विचित्रता वर्णन की जाने वाली वस्तु का स्वरूप प्रकाशित करने के कारण लोकोत्तर, (३१) आहितविशेषता – द्रव्य और पर्याय की विशेषता का प्रतिपादन करने वाले,

---

કારણે સર્વને માટે ઉપાદેય–ગ્રહણ કરવા યોગ્ય. (૨૫) અનપનીતત્વ—કાનને અપ્રિય લાગે એવા દોષોથી રહિત (૨૬) ઉત્પાદિતાચ્છિન્નકૌતૂહલત્વ—નવા-નવા અર્થનું નિરૂપણ કરવાના કારણે વારવાર સાભળવાની અભિલાષા ઉત્પન્ન કરવાવાળા, અર્થાત્ ભગવાનના વચનોને વારવાર સાંભળવા અભિલાષા–ઇચ્છા થાય છે, (૨૭) અદ્રુતત્વ—શીઘ્રતાથી રહિત (૨૮) અનતિવિલમ્બિતત્વ—બહુજ વિલબથી ઉચ્ચારણ નહિ કરવાવાળા, અર્થાત્–વાક્ય સમાપ્ત થયા પહેલા વિશ્રામ લીધા વિનાજ બોલવાવાળા (૨૯) વિભ્રમ–વિક્ષેપ–રોષા–વેશાદિરહિતત્વ–વિભ્રમ અર્થાત્–ભ્રાંતિ, વિક્ષેપ–અર્થાત્ પતિપાદ્ય વસ્તુ તરફ ગફલત, રોષ–અર્થાત્ ક્રોધના આવેશથી રહિત (૩૦) વિચિત્રતા–વર્ણન કરવા યોગ્ય વસ્તુના સ્વરૂપને પ્રકાશિત કરવાના કારણે લોકોત્તર (૩૧) આહિતવિશેષતા–દ્રવ્ય અને પર્યાયની

प्रकाशनेनार्थानां साक्षात्कारजनकत्वम्। (३३)-सत्त्वपरिगृहीतत्वम्-उत्पादव्ययध्रौव्य-युक्तसत्त्वयाऽर्थप्रकाशकत्वम्। (३४)-अपरिखेदित्वम् = स्वपरखेदानुत्पादकत्वम्। (३५)-अव्युच्छेदित्वम् = वर्णनीयपदार्थनिर्णयं यावदविच्छिन्नत्वम्।

वृद्धसम्प्रदायविद्भिरप्युक्तम्—

(१)-सक्कारत्तं, (२)-उदत्तं, (३)-उवयारोवेयत्तं (४)-गंभीरसद्दत्तं, (५)-अणुणादित्तं, (६)-दक्खिणत्तं, (७)-उवणीयरागत्तं, (८)-महत्थत्तं, (९)-अव्वाहयपुव्वावरत्तं, (१०)-सिट्ठत्तं, (११)-असंदिद्धत्तं, (१२)-अवहरियमनुत्तरत्तं, (१३)-हियंगमित्तं, (१४)-देसकालअव्वईयत्तं, (१५)-तत्ताणुरूवत्तं, (१६)-अप्पइण्णप्पसरियत्तं, (१७)-अन्नुन्नपग्गहीयत्तं, (१८)-अहिजायत्तं, (१९)-अइणिद्धमहुरत्तं, (२०)-अपरमम्मवेहित्तं, (२१)-अत्थधम्माभासाणवेयत्तं, (२२)-उयारत्तं, (२३)-परनिंदाअप्पुक्करिसविप्पजुत्तत्तं, (२४)-उवगयसिलाघत्तं, (२५)-अणवणीयत्तं, (२६)-उप्पाइयच्छिन्नकोउहलत्तं, (२७)-अद्भुयत्तं, (२८)-अणइविलंबियत्तं, (२९)-विब्भमविक्खेवरोसावेसाइरहियत्तं, (३०)-विचित्तत्तं, (३१)-आहियविसेसत्तं, (३२)-सागारत्तं, (३३)-सत्तपरिग्गहीयत्तं, (३४)-अपरिखेइयत्तं, (३५)-अव्वुच्छेइत्तं।

---

(३२) साकारता—हेतु कारण आदि के द्वारा स्पष्ट रूप से प्रकाशित करके पदार्थों का साक्षात्कार कराने वाले (३३) सत्त्वपरिगृहीतत्व—उत्पाद व्यय और ध्रौव्यमय सत्ता के रूपमें अर्थ के प्रकाशक (३४) अपरिखेदितत्व—स्व को और पर को खेद न पहुँचाने वाले (३५) अव्युच्छेदित्व—प्रतिपाद्य विषय का निर्णय हुए बिना न रुकने वाले, अर्थात् विवक्षित वस्तु का पूर्ण निर्णय करने वाले।

विशेषतानुं प्रतिपादन करवा वाळा (३२) साकारता—हेतु कारण आदि वडे स्पष्ट रूपथी प्रकाशित करीने पदार्थोनो साक्षात्कार करावावा वाळा (३३) सत्त्वपरिगृहीतत्व—उत्पाद, व्यय, अने ध्रौव्य-मय सत्ताना रूपमां अर्थना प्रकाशक (३४) अपरखेदित्व पोताने अने पारकाने खेद नहि पहोंचाडनार (३५) अव्युच्छेदित्व—प्रतिपाद्य विषयनो निर्णय थया विना नहि अटकनार, अर्थात् विवक्षित वस्तुनो पूर्ण निर्णय करवा वाळा।

भगवद्वचनानि चतुर्विधेऽनुयोगे प्रविभक्तानि, स चेत्थम्-
(१)-चरणकरणानुयोगः, (२)-धर्मकथानुयोगः, (३)-गणितानुयोगः, (४)-द्रव्यानुयोगश्च ।

युज्यते=संबध्यते भगवदुक्तार्थेन सहेति योगः = गणधरकथनरूपः, अनु = अनुकूलो योगोऽनुयोगः । भगवद्वचनानुरूपा गणधरोक्तिरित्यर्थः । (१)

(१) अथ चरणकरणानुयोगः—

(१) चर्यते = गम्यते = प्राप्यते भवोदधेः परं कूलं चतुर्दशगुणस्थाना-

---

भगवान् के वचनों में ये पैंतीस अतिशय अर्थात् गुण होते हैं । प्राचीन आचार्यों ने भी कहा है —'सक्कारवत्तं' इत्यादि ३५ ।

(वाणी के पैंतीस गुण पहले कह चुके है अत यहाँ इनका अर्थ कहने की आवस्यकता नहीं ।

भगवान् के वचन चार अनुयोगों में विभक्त हैं । चार अनुयोग ये हैं —

१ चरणकरणानुयोग, २ धर्मकथानुयोग, ३ गणितानुयोग, और ४ द्रव्यानुयोग ।
भगवानके वचनों के अनुकूल गणधरों का व्याख्यान अनुयोग कहलाता है ।

(१) चरणकरणानुयोग-

जिसके द्वारा भव-सागर का किनारा अर्थात् चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त किया जाय

ભગવાનના વચનોમા આ પ્રમાણે પાત્રીશ અતિશય અર્થાત્-ગુણ હોય છે પ્રાચીન આચાર્યોએ પણ કહ્યુ છેઃ- "सक्कारवत्तं" ઇત્યાદિ ૩૫. (પાત્રીશ વાણીના ગુણો પહેલા કહી ગયા છીએ જેથી અહિં એનો અર્થ કહેવાની આવશ્યકતા નથી.)

ભગવાનના વચન ચાર અનુયોગોમા વહેચાયેલા છે ચાર અનુયોગ આ છે-
(૧) ચરણકરણાનુયોગ (૨) ધર્મકથાનુયોગ, (૩) ગણિતાનુયોગ અને (૪) દ્રવ્યાનુયોગ

ભગવાન-દ્વારા પ્રરૂપિત અર્થની સાથે ગણધરોના વચનનો યોગ હોય તે અનુયોગ કહેવાય છે, તાત્પર્ય એ છે કે —ભગવાનના વચનોને અનુકૂળ ગણધરોએ કરેલુ વ્યાખ્યાન તે અનુયોગ કહેવાય છે

(૧) ચરણકરણાનુયોગ—

જેનાથી ભવસાગરનો કિનારો અર્થાત્ ચૌદમુ ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરી શકાય, તેને અર્થાત્ મૂલગુણને 'ચરણ' કહે છે, અથવા વ્રત આદિ ચરણ કહેવાય છે તે સિત્તેર (૭૦) છે કહ્યુ પણ છે—

चर्यतेऽस्वरूपमनेनेति चरणं = मूलगुणरूपम्। यद्वा चरणं=व्रतादि, तच्च सप्ततिसंख्यकम्, उक्तञ्च—

"वय५ समणधम्म१० संजम१७, वेयावच्चं१० च बंभगुत्तीओ ९।
णाणाइतियं३ तव१२ कोहनिग्गहाई४ चरणमेयं ॥ १ ॥" इति।

क्रियते चरणस्य पुष्टिरनेनेति करणम् = उत्तरगुणरूपम्। यद्वा करणं= पिण्डविशुद्ध्यादि, एतदपि सप्ततिसंख्यकम्, उक्तञ्च—

उसे अर्थात् मूलगुणको 'चरण' कहते हैं। अथवा व्रत आदि 'चरण' कहलाते हैं। वे ७० सत्तर हैं। कहा भी है—

पांच महाव्रत दश श्रमणधर्म सत्रह संयम, दश वैयावृत्य, नौ ब्रह्मचर्य की गुप्तियां रत्नत्रय – (सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र), बारह प्रकारका तप, चार क्रोधादि विजय–(क्रोधविजय, मायाविजय, मानविजय, लोभविजय), यह ७० सत्तर प्रकारका 'चरण' कहलाता है।

चरण की पुष्टि करने वाला 'करण' कहलाता है। करण का अभिप्राय है— उत्तर गुण। अथवा पिण्डविशुद्धि आदिको करण कहते हैं। इसके भी सत्तर ७० भेद हैं। कहा भी है —

पांच महाव्रत, दस श्रमणधर्म, सत्तर संयम, दस वैयावृत्य, नव ब्रह्मचर्यनी गुप्तिओ, रत्नत्रय-(सम्यग्ज्ञान दर्शन अने चारित्र) बार प्रकारनो तप, चार क्रोधादिविजय,-(क्रोधविजय, मानविजय, मायाविजय, लोभविजय) आ प्रमाणे सित्तेर (७०) प्रकारना चरण कहेवाय छे ॥ १ ॥

चरणनी पुष्टि करवा वाळा करण कहेवाय छे. करणनो अभिप्राय छे-उत्तर गुण, अथवा पिंडविशुद्धि आदिने करण कहे छे तेना पण सित्तेर भेद छे. कह्युं पण छे —

" पिंडविसोही४ समिई५, भावण१२ पडिमा१२ य इंदियनिरोहो५ ।
पडिलेहण२५ गुत्तीओ३, अभिग्गहा४ चेव करणं तु ॥ १ ॥" इति ।

तयोरनुयोगश्चरणकरणानुयोगः (१) ।

धर्मकथानुयोगादयश्चरणकरणयोर्भव्यजीवान् प्रवर्त्तयन्तीति तेषां चरणकरणाङ्गतया प्राधान्यमेतस्यानुयोगस्य, अत एवास्य प्राथम्यम् । उक्तञ्च—

आत्मन् ! जानीहि पूर्वं चरणकरणयोराश्रये यन्महत्त्वं,
मोहं दूरीकरोति प्रकटयति परं निश्चयात्मस्वरूपम् ।

" चार पिण्डविशुद्धि, पाच समितिया, बारह भावना, बारह पडिमा, पाच इन्द्रियनिरोध, पचीस प्रतिलेखना, तीन गुप्तिया, चार अभिग्रह, यह सत्तर ७० प्रकारका करण कहलाता है ।

इस तरह चरण और करण के अनुयोग को, अर्थात् भगवान् की वाणी के अनुकूल व्याख्यान को चरणकरणानुयोग कहते हैं । तात्पर्य यह है कि—जिस शास्त्र में चारित्र सम्बन्धी निरूपण है, वह चरणकरणानुयोग समझना चाहिए ।

धर्मकथानुयोग आदि शेष तीन अनुयोग भव्यजीवों को चरण और करण में प्रवृत्त करते हैं, अत वे इसी अनुयोग के अङ्ग हैं । इस प्रकार चारों अनुयोगो में चरणकरणानुयोग ही प्रधान है । प्रधान होने के कारण ही इस की गणना सर्वप्रथम की गई है । कहा भी है—

हे आत्मन् ! चरण और करण में जो महत्त्व है, उसे पहले समझ ले । वह मोह को निवारण करता है, आत्मा के निश्चय अर्थात् वास्तविक स्वरूप को प्रकट करता है, वह सब

"ચાર પિંડવિશુદ્ધિ, પાચ સમિતિઓ, બાર ભાવના, બાર પડિમા, પાચ ઇન્દ્રિય નિરોધ, પચીશ પ્રતિલેખના, ત્રણ ગુપ્તિઓ, ચાર અભિગ્રહ, આ સર્વ કરણ કહેવાય છે" ॥ ૧ ॥

આ પ્રમાણે ચરણ અને કરણના અનુયોગને અર્થાત્ ભગવાનની વાણીને અનુકૂલ વ્યાખ્યાનને ચરણકરણાનુયોગ કહે છે તાત્પર્ય એ છે કે—જે શાસ્ત્રમા ચારિત્રસમ્બન્ધી નિરૂપણ છે તે ચરણકરણાનુયોગ સમજવુ જોઇએ

ધર્મકથાનુયોગ આદિ બાકીના ત્રણ અનુયોગ ભવ્ય જીવોને ચરણ અને કરણમા પ્રવૃત્ત કરે છે; તેટલા માટે તે પણ એ અનુયોગનુ અગ છે આ પ્રકારે ચારેય અનુયોગોમા ચરણકરણાનુયોગ પ્રધાન—મુખ્ય છે

મુખ્ય હોવાના કારણે જ તેની ગણના સૌથી પ્રથમ કરી છે કહ્યું પણ છે—

"હે આત્મન્! ચરણ અને કરણમા જે મહત્ત્વ છે, તેને પ્રથમ સમજી લે, તે

आचारोऽयं गुणानामपनयति सदाऽनादिमिथ्यात्वदोषं,
हेतुर्योऽयं विशुद्धेर्नमयति नितरामिन्द्रियाणि द्रुतं यः ॥ १ ॥
सम्यग्ज्ञानस्य दाता शिवसुखजनकः कर्मधूलेश्च हर्ता,
कर्ता विद्योतनस्याऽऽत्मनि सकलगुणस्याऽद्वितीयः प्रकाशः ।
आत्मन्नेवाऽस्मतीनःकरणकरणयोराश्रयः काऽत्र शङ्का ?,
शङ्कारो नैव लोकः परिणतिविरसः किं सुखाशां करोषि ? ॥ २ ॥

(२) अथ धर्मकथानुयोगः—

भवजलनिधौ निपतन्तं भव्यजातं धारयति-उद्धरिरिव तारयति शुभस्थाने प्रापयतीति धर्मः, तस्य कथा भगवदेषणालक्षणो वाक्यप्रबन्धः धर्मकथा । अहिंसा दिप्ररूपणा वा धर्मकथा । अथवा श्रुतचारित्रलक्षणधर्मप्रधानकथा-धर्मकथा । यद्वा

गुणों का आधार है, और अनादिकालीन मिथ्यात्व दोष को दूर करता है, विशुद्धि का कारण है, और इन्द्रियों को शीघ्र ही दमन करने वाला है ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञान का दाता है, मोक्षसुख उत्पन्न करने वाला है कर्मरूपी धूलको दूर करने वाला है, आत्मामें उद्योत-प्रकाश करने वाला है और समस्त गुणों का अद्वितीय प्रकाशक है, हे आत्मन् ! कारण और कार्य का आश्रय अमकारी है, इस विषयमें शंका को स्थान ही कहां है ? अर्थात् निश्चितरूपसे ही यह कल्याण करने वाला है, यह लोक (संसार) तो परिणाम में एकदम नीरस है, तू इस से सुख की अभिलाषा क्यों करता है ॥ २ ॥

(२) धर्मकथानुयोग

संसाररूपी सागरमें डूबते हुए भव्य जीवों को धारण करनेवाला—नौका के समान

મોક્ષનું નિમાણ કરે છે આત્માના નિજત્વ અર્થાત્ વાસ્તવિક સ્વરૂપને પ્રગટ કરે છે, તે સર્વ ગુણોના આધાર અને અનાદિ કાળના મિથ્યાત્વ દોષને દૂર કરે છે, વિશુદ્ધિનું કારણ અને ઇન્દ્રિયોના શીઘ્ર દમન માટે તે સહાયક છે ॥ ૧ ॥

સમ્યગ્જ્ઞાન દેનાર છે અને મોક્ષસુખ ઉત્પન્ન કરવાવાળું છે કર્મરૂપી ધૂળને દૂર કરવાવાળું છે આત્મામાં ઉદ્યોત-પ્રકાશ કરવા વાળું છે અને સમસ્ત ગુણોના અદ્વિતીય પ્રકાશક છે હે આત્મન્ ! કારણ અને કરણનો આશ્રય કલ્યાણકારી છે, આ વિષયમાં શંકાને સ્થાન જ ક્યાં છે ? અર્થાત્ નિશ્ચિત રૂપથી જ તે કલ્યાણ કરવાવાળું છે, આ લોક (સંસાર) તો પરિણામે એકદમ નીરસ-રસરહિત છે, તું તેમાં સુખની અભિલાષા શા માટે કરે છે ? ॥ ૨ ॥

(૨) ધર્મકથાનુયોગ

સંસારરૂપી સાગરમાં ડુબતા ભવ્ય જીવોને ધારણ કરવાવાળી, નૌકાના પ્રમાણે

शुभाशुभकर्मविपाकोपदर्शनं धर्मकथा । किञ्च – तिर्थङ्करचक्रवर्त्त्यादिचारित्रवर्णनं धर्मकथा । तस्या अनुयोगः धर्मकथानुयोगः ।

धर्मकथा चतुर्विधा—(१)–आक्षेपणी–(२)–विक्षेपणी– (३)–संवेदनी–(४)–निर्वेदनीभेदात् ।

आक्षेपण्यादिधर्मकथाभिराक्षिप्ताः विक्षिप्ताः सवेदिता निर्वेदिताः सन्तो भव्यप्राणिनश्चारित्रं प्राप्नुवन्ति ।

किनारे लगादेने वाला, अर्थात् शुभस्थानमें पहुचा देनेवाला धर्म कहलाता है ।
उस धर्म की कथा अर्थात् भगवान की देशना जिसमें पाई जाय उसे धर्मकथा कहते हैं । अथवा अहिंसा आदि की प्ररूपणा धर्मकथा कहलाती है । अथवा श्रुत और चारित्र की प्रधानता वाली कथा को धर्मकथा कहते हैं । अथवा शुभ और अशुभ कर्मफल को प्रकाश करना धर्मकथा है । या तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि महापुरुषों का चरित्र वर्णन करना धर्मकथा है । उसके अनुयोग–व्याख्यान को धर्मकथानुयोग कहते हैं ।

धर्मकथा चार प्रकार की है —(१) आक्षेपणी (२) विक्षेपणी (३) सवेदनी और (४) निर्वेदनी ।

आक्षेपणी आदि धर्मकथाओं से आक्षिप्त सवेदित और निर्वेदित (विरक्त) हुए भव्य जीव चारित्र प्राप्त करते है ।

કિનારે લઈ જનારી, અર્થાત્ શુભ સ્થાનમા પહોચાડી દેવા વાળી વસ્તુને ધર્મ કહેવામા આવે છે તે ધર્મની કથા અર્થાત્ ભગવાનનો ઉપદેશ જેમા જોવામા આવે છે. તેને ધર્મકથા કહે છે અથવા અહિંસા આદિની પ્રરૂપણા તે ધર્મકથા કહેવાય છે અથવા તો શ્રુત અને ચારિત્રની પ્રધાનતાવાળી કથાને ધર્મકથા કહે છે, અથવા શુભ અને અશુભ કર્મ–ફલને પ્રગટ કરવુ તે ધર્મકથા છે અથવા તીર્થકર, ચક્રવર્તી આદિ મહાપુરૂષોના ચરિત્રનુ વર્ણન કરવુ તે ધર્મકથા છે તેના અનુયોગ–વ્યાખ્યાનને ધર્મકથાનુયોગ કહે છે

ધર્મકથા ચાર પ્રકારની છે (૧) આક્ષેપણી (૨) વિક્ષેપણી (૩) સવેદની અને (૪) નિર્વેદની

આક્ષેપણી આદિ ધર્મકથાઓથી આક્ષિપ્ત, વિક્ષિપ્ત, સવેદિત અને નિર્વેદિત (વિરક્ત) થયેલા ભવ્ય જીવ ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરે છે

(१) आक्षेपणी—

आक्षिप्यते=मोहं निराकृत्य चारित्रं प्रति समाकृष्यते श्रोताऽनयेति-आक्षेपणी, उक्तञ्च—

"स्थाप्यते सत्पथे श्रोता, यया साऽऽक्षेपणी कथा।
यथेषुकारं कमला,-ऽस्थापी धर्मे व्यतिष्ठिपत् ॥ १ ॥"

बाल्यावस्थतनयद्वयसमन्वितः सपत्नीको भृगुपुरोहितः सर्वस्वं परिहाय दीक्षार्थं सदनान्निर्ययौ। तदीयं सकलं धनं परिगृहीतं पत्येति विदित्वा कमलावती राज्ञी वैराग्यमुपगता स्वपतिमिषुकारं नृपतिं मत्यबोधयत्। 'राजन्! किं वान्ताशिवद्

(१) आक्षेपणी

जिस कथा के द्वारा श्रोता मोह से हटकर चारित्र के प्रति आकर्षित होते हैं, वह आक्षेपणी धर्मकथा कहलाती है, कहा भी है —

"जिस के द्वारा श्रोता सन्मार्ग में स्थापित किये जाते हैं, उसे आक्षेपणी कथा कहते हैं। जैसे कमलावतीने इषुकार को धर्म में स्थिर किया ॥ १ ॥"

छोटी उम्र वाले अपने दो बालकों के साथ पत्नीसहित भृगु पुरोहित सर्वस्व त्याग कर दीक्षा ग्रहण करने के लिये अपने घर से निकला। उस पुरोहित का समस्त धन मेरे पति (राजा) ने ले लिया है, ऐसा जान करके रानी कमलावती को वैराग्य हो गया और उसने अपने पति राजा इषुकार को समझाया—"महाराज! जिस धनको भृगु पुरोहित ने

(१) આક્ષેપણી—

જે કથાદ્વારા શ્રોતા મોહથી હઠી જઈને ચારિત્ર તરફ આકર્ષિત થાય છે તે આક્ષેપણી ધર્મકથા કહેવાય છે. કહ્યું પણ છે—

જેનાથી શ્રોતાને સન્માર્ગમાં સ્થાપિત કરી શકાય છે તેને આક્ષેપણી કથા કહે છે જેવી રીતે કમલાવતીએ ઇષુકારને ધર્મમાં સ્થિર કર્યો. ॥ ૧ ॥

નાની ઉમરવાળા પોતાના બે બાળકોની સાથે તથા પત્ની સહિત ભૃગુ પુરોહિત સર્વસ્વ ત્યાગ કરીને દીક્ષા ગ્રહણ કરવા માટે પોતાના ઘેરથી નીકળ્યા, તે પુરોહિતનું તમામ ધન મારા પતિ (રાજા) એ લઈ લીધુ છે એવું જાણીને રાણી કમલાવતીને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ ગયો અને તેણે પોતાના પતિ રાજા ઇષુકારને સમજાવ્યા—

भोगमाशंससे ?' इत्यादि । अथ कमलावतीवचनश्रवणक्षणसंजातमतिबोध इषुकारः कमलावती च दीक्षार्थं सहैव निष्क्रान्तौ ।

(२) विक्षेपणी—

विक्षिप्यते=सम्यग्वादगुणोत्कर्षप्रदर्शनेन मिथ्यावादादपसार्यते श्रोताऽनयेति विक्षेपणी । उक्तञ्च—

"सम्यग्वादप्रकर्षेण, मिथ्यावादस्य खण्डनम् ।
यया विक्षेपणी सैव, यथा केशी प्रदेशिनम्" ॥ २ ॥

मिथ्यावादादपसारयामासेति शेषः ।

वमन कर दिया, वह धन भोगोगे ? आप वमन का सेवन करने वालों की तरह भोग की लालसा क्यों करते हैं ? " इत्यादि । इषुकार को कमलावती के वचन सुनते ही वैराग्य हो आया और राजा तथा रानी दोनों साथ-साथ दीक्षा ग्रहण कर ली ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद या सिद्धान्त के गुणों का दिग्दर्शन कराकर श्रोताओं को मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवाद स हटाने वाली कथा विक्षेपणी कहलाती है। कहा भी है —

"મહારાજ ! જે ધનને ભૃગુ પુરોહિતે વમન કરી નાખ્યુ છે તે ધનને આપ ભોગવશો ? આપ વમનનું સેવન કરવાવાળાની પેઠે ભોગની લાલસા શા માટે કરો છો ?" ઇત્યાદિ

રાજા ઇષુકાર પોતે કમલાવતીના વચન સાભળતાં જ વૈરાગ્ય પામ્યા અને રાજા તથા રાણી બન્ને સાથે-સાથે દીક્ષા ગ્રહણ કરી ॥ ૧ ॥

(૨) વિક્ષેપણી

સમ્યગ્વાદ અર્થાત્ અનેકાન્તવાદ, અથવા સત્યસિદ્ધાતના ગુણોનુ દિગદર્શન કરાવીને શ્રોતાઓને મિથ્યાવાદ અર્થાત્ એકાન્તવાદથી દૂર કરાવનારી કથા તે વિક્ષેપણી કથા કહેવાય છે કહ્યુ પણ છે —

केशिश्रमणतः करुणारसपरिपूर्णमास्तिकवादमाकर्ण्य प्रदेशी नाम भूपालो नास्तिकवादं परित्यज्य द्वादशव्रतधारी श्रावको भूत्वा मृत्वा च प्रथमकल्पे सूर्याभ नामा देवो बभूव।

(२) संवेदनी—

संवेद्यते = संसारासारतादर्शनेन मोक्षाभिलाष उत्पाद्यतेऽनयेति संवेदनी। उक्तञ्च—

"यस्याः श्रवणमात्रेण, मुक्तिवाञ्छा प्रजायते।
संवेदनी यथा मल्ली, षट् नृपान् प्रत्यबोधयत् ॥२॥"

"सम्यग्वाद का उत्कर्ष दिखला कर मिथ्यावाद अर्थात् मिथ्यामान्यता का खण्डन करने वाली विक्षेपणी कथा है। जैसे–केशी श्रमणने प्रदेशी राजा को मिथ्यावाद से हटाया था" ॥ २ ॥

श्री केशी श्रमण के श्रीमुखसे करुणा–रस से परिपूर्ण आस्तिकवाद सुन कर प्रदेशी नामक राजा नास्तिकवाद त्याग कर बारह व्रतधारी श्रावक हो कर मरकर प्रथम सौधर्म कल्पमें सूर्याभ नामक देव हुआ।

(२) संवेदनी

जो धर्मकथा संसार की असारता प्रदर्शित करके भव्य जीवों में मोक्षकी अभिलाषा जागृत करती है, वह संवेदनी धर्मकथा है। कहा भी है—

"सम्यग्वादनो उत्कर्ष बतावीने मिथ्यावाद अर्थात् मिथ्या मान्यतानुं खडन करवावाळी विक्षेपणी कथा छे. जेवी रीते केशी श्रमणे प्रदेशी राजाने मिथ्यावादथी मुक्त कर्या हता. ॥ २ ॥"

श्री केशी श्रमणना श्रीमुखथी करुणारसथी परिपूर्ण आस्तिकवाद सांभळीने प्रदेशी नामना राजाए नास्तिकवाद त्याग कर्यो, बार व्रतधारी श्रावक थईने मरीने प्रथम सौधर्मकल्पमां सूर्याभ नामना देव थया.

(२) संवेदनी

जे कथा संसारनी असारता बतावीने भव्यजीवोमां मोक्षनी अभिलाषा जागृत करे छे, ते संवेदनी धर्मकथा छे. कह्युं पण छे:—

मल्लीकुमारी षड् भूमिपालान् स्वस्मिन्ननुरक्तान् निज्ञाय, तेभ्यः संसारासारतां प्रदर्श्य मोक्षाभिलाषं जनयामास ।

(४) निर्वेदनी—

निर्वेद्यते=विषयभोगेभ्यो विरज्यते श्रोताऽनयेति निर्वेदनी, उक्तञ्च—

" यदाऽऽकर्णनमात्रेण, वैराग्यमुपजायते ।
निर्वेदनी यथा शालि,-भद्रो वीरेण बोधितः " ॥ ४ ॥

" जिस कथा को श्रवण करने मात्र से ही मोक्ष की आकाङ्क्षा उत्पन्न होती है, वह संवेदनी धर्मकथा है । जैसे—मल्ली नामक राजकन्याने छह राजाओं को बोध दिया " ॥३॥

छह राजा मेरे उपर अनुरक्त हैं, यह जानकर मल्लीकुमारीने उन्हे संसारकी निःसारता समझाई और उन में मुक्ति की अभिलाषा उत्पन्न कर दी । मल्ली कुमारी का वह उपदेश संवेदनी धर्मकथा है ॥ ३ ॥

(४) निर्वेदनी

जो कथा श्रोताओं को विषयभोगसे विरक्त बनाती है, वह निर्वेदनी धर्मकथा कहलाती है । कहा भी है —

" जिसका श्रवण करते ही वैराग्य उत्पन्न होता है, वह निर्वेदनी धर्मकथा है । जैसे भगवान् महावीरने शालिभद्र को प्रतिबोध दिया " ॥ ४ ॥

" જે કથા સાભળવામાત્રથી જ મોક્ષની ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે તે સંવેદની ધર્મકથા છે જેવી રીતે મલ્લી નામની રાજકન્યાએ છ રાજાઓને બોધ આપ્યો ॥૩॥"

છ રાજા મારા ઉપર આસક્ત-પ્રેમવાળા છે એવું જાણીને મલ્લી કુમારીએ તેઓને સંસારની નિઃસારતા સમજાવી અને તેઓમા મુક્તિની અભિલાષા ઉત્પન્ન કરી, મલ્લીકુમારીનો તે ઉપદેશ સંવેદની ધર્મકથા છે

(૪) નિર્વેદની

જે કથા શ્રોતાઓને વિષય ભોગથી વિરક્ત બનાવે છે તે નિર્વેદની કહેવાય છે કહ્યું પણ છે —

" જેનું શ્રવણ કરતા જ વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે, તે નિર્વેદની ધર્મકથા છે જેવી રીતે ભગવાન મહાવીરે શાલિભદ્રને પ્રતિબોધ આપ્યો ॥ ૪ ॥"

कमलकोमलकान्ताकारः शालिभद्रकुमारः श्रीमहावीरतीर्थङ्करकथितधर्मदेशना-श्रवणसमनन्तरं त्वरया वैराग्यमुपगतश्चारित्रं प्राप। उक्तञ्च—

"भवस्य सर्वं क्षणभङ्गुरं सुखं,
श्रयन्ति ये धर्मकथानुरागिणः।
विहाय ते भोगमनन्तदुःखदं,
चरन्ति चारित्रवने विरागिणः" ॥ ४ ॥

उत्तराध्ययनसूत्रस्यैकोनत्रिंशेऽध्ययने धर्मकथाफलमाह—

"धम्मकहाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?। धम्मकहाए णं जीवे निज्जरं जणयइ। धम्मकहाए णं पवयणं पभावेइ। पवयणपभावएणं जीवे आगमेसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ।"

कमल के समान कोमल और कान्तिमान आकृति वाला शालिभद्र कुमार श्री महावीर भगवान् की धर्मदेशना सुनते ही वैराग्य को प्राप्त हुआ, और उसने चारित्र धारण कर लिया। कहा भी है —

"धर्मकथा में अनुराग रखने वाले जो पुरुष संसार के सुख क्षणभङ्गुर समझ लेते हैं वे अनन्त दुःख देने वाले भोगका त्याग करके, विरागी हो कर चारित्ररूपी बगीचे में विहार करते हैं" ॥ १ ॥

उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन में धर्मकथा का फल बतलाया गया है। वह इस भांति है —

કમલના જેવા કોમલ અને કાન્તિમાન આકૃતિવાળા શાલિભદ્રકુમાર શ્રી મહાવીર ભગવાનની ધર્મદેશના સાંભળતાં જ વૈરાગ્યને પ્રાપ્ત થયા અને ચારિત્ર ધારણ કર્યું કહ્યું પણ છે:—

"ધર્મકથામાં પ્રીતિ રાખવાવાળા જે પુરુષ સંસારના સુખને ક્ષણભંગુર સમજે છે તે અનન્ત દુઃખ આપવાવાળા ભોગનો ત્યાગ કરીને વૈરાગ્ય ધારણ કરી ચારિત્રરૂપી બગીચામાં વિહાર કરે છે ॥ ૧ ॥"

ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ઓગણત્રીસમા અધ્યયનમાં ધર્મકથાનું ફલ બતાવ્યું છે, તે આ પ્રમાણે છે:—

आक्षेपण्यादिचतुर्विधधर्मकथासंचारोद्धावितानन्दधारातरङ्गसमुल्लसितस्वान्तप्रभूतभव्यभावितात्मा धर्मकथी जन्मजरामरणादिभीषणपीनपाठीनमीनमकरगणसंक्रमणप्रियवियोगाप्रियसंयोगवडवानलाकुलितापारसंसारसागरात् स्वयं तरति, परानपि तारयति।

स च प्रभूतभव्यान् प्रव्राजयन् भवकूपपतत्प्राणत्राणसमाश्वासनजिनशासनमहिमानमुपबृंहयन् समस्तमेव जगत् जिनशासनरसिकं कुर्वन्, मिथ्यात्वमुत्थापयन्,

---

"भगवन्! धर्मकथा से जीव को क्या लाभ होता है? उत्तर—धर्मकथा से जीव को निर्वाण की प्राप्ति होती है। धर्मकथा से जीव प्रवचन की प्रभावना करता है। प्रवचन की प्रभावना से आगे के लिये भद्र (शुभ) कर्मों का बन्ध करता है" ॥ ४ ॥

आक्षेपणी आदि चार प्रकार की धर्मकथा से उत्पन्न होने वाली आनन्द की धाराओं की तरङ्गों से जिन का अन्त करण उल्लास को प्राप्त हुआ है, ऐसे अनेक भावितात्मा भव्य धर्मकथा करने वाले पुरुष जन्म जरा और मरण रूपी भयानक और विशाल मगरमच्छोंसे व्याप्त, एव इष्ट—वियोग और अनिष्ट—सयोग रूपी वडवानल से आकुल—व्याप्त अपार ससार सागर से स्वय भी पार होते हैं और दूसरों को भी पार करते हैं।

वह धर्मकथाकार अनेकानेक भव्य जीवों को दीक्षित करता हुआ, संसाररूपी कूप में पडनेवाले प्राणियों को त्राण करने का आश्वासन देने वाले जिनशासन की महिमा बढाता हुआ समस्त जगत् को जिनशासन का रसिक—अनुरागी बनाता हुआ मिथ्यात्व की उत्थापना

"ભગવન્! ધર્મકથાથી જીવને શું લાભ થાય છે?

ઉત્તર—ધર્મકથાથી જીવને નિર્જરાની પ્રાપ્તિ થાય છે, ધર્મકથાથી જીવ પ્રવચનની પ્રભાવના કરે છે, પ્રવચનની પ્રભાવનાથી આગળ શુભ કર્મોનો બ ધ કરે છે"

આક્ષેપણી આદિ ચાર પ્રકારની ધર્મકથાથી ઉત્પન્ન થનારા આનન્દની ધારાઓના તર ગોથી જેનુ અ ત કરણ ઉલ્લાસને પ્રાપ્ત થયું છે, એવા અનેક ભાવિતાત્મા ભવ્ય—ધર્મકથા કરવાવાળા પુરૂષ જન્મ જરા અને મરણરૂપી ભયાનક અને વિશાલ મગરમચ્છોથી વ્યાપ્ત એ પ્રમાણે ઇષ્ટ—વિયોગ અને અનિષ્ટ—સ યોગરૂપી વડવાનલથી સહિત અપાર સ સારસાગરથી પોતે પણ પાર ઉતરે છે, અને બીજાને પણ પાર ઉતારે છે,

सम्यक्त्वमुपस्थापयन्, कर्मकोटिं क्षपयति। उत्कृष्टरसायनपरिणाममसौ समेत चेत्, त्रैलोक्यपवित्रं तीर्थङ्करनामगोत्र समुपार्जयति।

अपि चासौ स्वतःप्रकाशस्वभावस्यापि जिनशासनस्य मिथ्यात्वादि तिमिरावृतदेशकालादिषु यथोचितप्रभावनालक्षणाराधनतः प्रभावकपदं बिभर्ति। उक्तञ्च—

" पावयणी धम्मकही, वाई नेमित्तिओ तवस्सी य।
विज्जासिद्धो य कवी, अट्ठेव पभावगा भणिया ॥ १ "

और सम्यक्त्व की उपस्थापना करता हुआ कर्मकोटि को खपाता है। कदाचित् परिणाम में उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो वह त्रिलोक में पवित्र तीर्थङ्कर गोत्र का भी उपार्जन करता है।

जिन भगवान का शासन स्वतः उज्ज्वल है, तथापि जिस देशविशेष और काल विशेष में मिथ्यात्व का अन्धकार फैल जाता है, वहां भगवान के शासन का प्रचाररूप आराधन करके धर्मकथाकार प्रभावक पद प्राप्त करता है। कहा भी है —

"प्रभावक आठ प्रकार के हैं — (१) प्रावचनिक, (२) धर्मकथी, (३) वादी, (४) लब्धियों का स्वामी, (५) तपस्वी, (६) विद्यावान्–रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि विद्या के धारक, (७) सिद्ध–वचनसिद्धि आदि सिद्धियों वाला (८) कवि"।

તે ધર્મકથા કહેનાર અનેક–અનેક ભવ્ય જીવોને દીક્ષિત કરે છે અને સંસાર રૂપી કુવામાં પડવાવાળા પ્રાણીઓને રક્ષણ કરવાનું આશ્વાસન દેવાવાળા જિનશાસનનો મહિમા વધારતા થકા સમસ્ત જગતને જિનશાસનમાં પ્રીતિવાળા બનાવી મિથ્યાત્વ નિવારણ અને સમ્યક્ત્વની સ્થાપના કરી કર્મકોટીને ખપાવે છે કદાચિત્ પરિણામમાં ઉત્કૃષ્ટ રસાયન આવી જાય તો ત્રિલોકમાં પવિત્ર તીર્થંકર ગોત્રની પણ પ્રાપ્તિ કરે છે

જિન ભગવાનનું શાસન પોતે ઉજ્જ્વલ છે તો પણ જે દેશવિશેષ અને કાલ વિશેષમાં મિથ્યાત્વનો અંધકાર ફેલાઈ જાય છે ત્યાં ભગવાનના શાસનપ્રચારરૂપ આરાધન કરીને ધર્મકથાકાર 'પ્રભાવક'નું પદ પ્રાપ્ત કરે છે કહ્યું પણ છે–

"પ્રભાવક આઠ પ્રકારના છે (૧) પ્રાવચનિક, (૨) ધર્મકથાકાર (૩) વાદી, (૪) લબ્ધિઓનો ધણી, (૫) તપસ્વી, (૬) વિદ્યાવાન્–રોહિણી–પ્રજ્ઞપ્તિ આદિ વિદ્યાના ધારક, (૭) સિદ્ધ–વચનસિદ્ધિઆદિસિદ્ધિઓવાળા, (૮) કવિ" ॥ ૧ ॥

अथ धर्ममहिमोच्यते—

"जम्मंतरेवि सुलहा, पिउभाउसुयाइया ।
परंतु सुयचारित्त,-धम्मो णो सुलहो भुवि ॥ १ ॥
बारसंगावणे धम्म, णिच्छयव्ववहारिणो ।
लहंते संजया भव्वा, भत्तिपण्णेण नन्नहा ॥ २ ॥

सस्कृतच्छाया—

जन्मान्तरेऽपि सुलभा,-पितृ-भ्रातृ-सुतादयः ।
परन्तु श्रुतचारित्र,-धर्मो न सुलभो भुवि ॥ १ ॥
द्वादशाङ्गापणे धर्मं, निश्चयव्यवहारिणः ।
लभन्ते संयता भव्या,-भक्तिपण्येन नान्यथा ॥ २ ॥

तथा-विना सिद्धाञ्जनं भूमि,-निधानं नैव लभ्यते

धर्म-महिमा —

"पिता, भ्राता और पुत्र आदि तो जन्मान्तर में-आगामी भव में-भी सुलभ हैं किन्तु ससार में श्रुत-चारित्र धर्म सुलभ नहीं है" ॥ १ ॥

"द्वादशाङ्गीरूपी दुकान में निश्चयनय और व्यवहारनय को जानने वाले सयमी पुरुष भक्तिरूपी मूल्य चुकाकर धर्म प्राप्त कर सकते हैं, ऐसे किये विना धर्म की प्राप्ति नही हो सकती" ॥ २ ॥

ધર્મ મહિમા—

"પિતા ભાઈ અને પુત્ર વગેરે તો આગલા ભવમા-હવે પછીના ભવમાં પણ સુલભ છે, પરન્તુ સસારમા શ્રુત-ચારિત્ર ધર્મ સુલભ નથી" ॥ ૧ ॥

"દ્વાદશાગીરૂપી દુકાનમા નિશ્ચયનય અને વ્યવહારનયને જાણવાવાળા સયમી પુરુષ ભક્તિરૂપી મૂલ્ય આપીને ધર્મ પ્રાપ્ત કરી શકે છે એમ કર્યા વિના ધર્મની પ્રાપ્તિ થતી નથી." ॥ ૨ ॥

विणा सिद्धंजणं भूमि,—णिहाणं णेव लब्भइ ।
सुयचारित्तधम्मेण, विणा णो णाणमप्पणो ॥ ३ ॥
अप्पणाणं विणा णेव, तत्तातत्तविणिच्छओ ।
तं विणा णेव भव्वाणं, जायए ऽमियभावणा ॥ ४ ॥
विसुद्धज्झाणसंपत्ती, णंतरा ऽमियभावणं ।
विणा विसुद्धझाणं णो, खवगस्सेणिरप्पई ॥ ५ ॥
अण्णोवाएण केणावि,—खवगस्सेणिआ विणा ।
विईयपाओ सुक्कस्स, झाणस्स णहि लब्भई ॥ ६ ॥

छाया—

श्रुतचारित्रधर्मेण, विना नो ज्ञानमात्मनः ॥ ३ ॥
आत्मज्ञानं विना नैव, तत्त्वाऽतत्त्वविनिश्चयः ।
तं विना नैव भव्यानां, जायतेऽमृतभावना ॥ ४ ॥
विशुद्धध्यानसंप्राप्ति, — र्नान्तराऽमृतभावनाम् ।
विना विशुद्धध्यानं नो, क्षपकश्रेणिराप्यते ॥ ५ ॥
अन्योपायेन केनापि, क्षपकश्रेणिना विना ।
द्वितीयपादः शुक्लस्य, ध्यानस्य नहि लभ्यते ॥ ६ ॥

सिद्धाञ्जन के अभाव में पृथ्वी के भीतर का खजाना नहीं प्राप्त किया जा सकता इसी प्रकार श्रुत चारित्र के बिना आत्मा को सम्यग्ज्ञान नहीं होता ॥ ३ ॥

आत्मज्ञान के अभाव में तत्त्व—अतत्त्व का निश्चय नहीं हो सकता और तत्त्व अतत्त्व का निश्चय हुए बिना भव्य जीवों को अमृतभावना नहीं हो सकती ॥ ४ ॥

अमृतभावना के अभाव में विशुद्ध ध्यान की प्राप्ति नहीं होती और विशुद्ध ध्यान के बिना क्षपकश्रेणी पर आरोहण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

क्षपक श्रेणी के सिवाय किसी अन्य उपाय से शुक्ल—ध्यान का एकत्ववितर्क अविचार नामक दूसरा पाया नहीं प्राप्त किया जा सकता ॥ ६ ॥

સિદ્ધાંજન વિના પૃથ્વીની અંદરનો ખજાનો પ્રાપ્ત કરી શકાતો નથી. એવી જ રીતે શ્રુત-ચારિત્ર વિના આત્મજ્ઞાન થતું નથી. ॥ ૩ ॥

આત્મજ્ઞાનના અભાવથી તત્ત્વ-અતત્ત્વનો નિશ્ચય થઈ શકતો નથી અને તત્ત્વ-અતત્ત્વનો નિશ્ચય કર્યા વિના ભવ્ય જીવોને અમૃતભાવના થતી નથી ॥ ૪ ॥

અમૃતભાવનાના અભાવથી વિશુદ્ધ ધ્યાનની પ્રાપ્તિ થતી નથી; અને વિશુદ્ધ

सुक्कज्झाणस्स पायं च, वितीयं पप्प संजमी ।
केवलण्णाणलाहेण, केवलित्ति णिगज्जई ॥ ७ ॥
अवत्था णहि सेलेसी, केवलण्णाणमतरा ।
भवई समणिंदस्स, सव्वकम्मक्खओ तओ ॥ ८ ॥
सव्वकम्मक्खए सिद्धी,-तओ सिद्धो हि सासओ ।
मोक्खट्ठी सुयचारित्त, - धम्मं तम्हा समायरे ॥ ९ ॥

छाया—

शुक्लध्यानस्य पादं च, द्वितीयं प्राप्य संयमी ।
केवलज्ञानलाभेन, केवलीति निगद्यते ॥ ७ ॥
अवस्था नहि शैलेशी, केवलज्ञानमन्तरा ।
भवति श्रमणेन्द्रस्य, सर्वकर्मक्षयस्ततः ॥ ८ ॥
सर्वकर्मक्षये सिद्धि, - र्धर्मं तस्मात्समाचरेत् ।
मोक्षार्थी श्रुतचारित्र,-धर्मं तस्मात्समाचरेत् ॥ ९ ॥

सयमी पुरुष शुक्ल ध्यान का दूसरा पाया प्राप्त करके, केवल ज्ञान प्राप्त करता है और केवली कहलाता है । ॥ ७ ॥

केवल ज्ञान के विना शैलेशी अवस्था प्राप्त नहीं होती । शैलेशी अवस्था जब प्राप्ति हो जाती है तो मुनिराज समस्त कर्मों का क्षय कर डालता है ॥ ८ ॥

समस्त कर्मों का क्षय होने पर सिद्धि प्राप्त होती है । सिद्धि लाभ होने पर शाश्वत सिद्ध होजाता है, अत मोक्षार्थी पुरुष को श्रुत–चारित्ररूप धर्म का आचरण करना चाहिये ॥९॥

ध्यान विना क्षपकश्रेणी उपर आरोहण थई शकतु नथी ॥ ५ ॥

क्षपकश्रेणी विना बीजा कोई उपायथी शुक्ल ध्यानने। एकत्व–वितर्क–अविचार नामक बीजो पायो प्राप्त करी शकतो नथी ॥ ६ ॥

सयमी पुरुष शुक्ल ध्यानने। बीजो पायो प्राप्त करीने केवलज्ञान प्राप्त करे छे, अने केवली कहेवाय छे ॥ ७ ॥

केवलज्ञान विना शैलेशी अवस्था प्राप्त थती नथी, शैलेशी अवस्था ज्यारे प्राप्त थई जाय छे, त्यारे मुनिराज सकल कर्मोने। क्षय करी नाखे छे ॥ ८ ॥

सकल कर्मोने। क्षय थया पछी सिद्धि प्राप्त थाय छे, सिद्धि लाभ थया पछी शाश्वत सिद्ध थाय छे, ए माटे मुक्षार्थी पुरुषोए श्रुत–चारित्ररूप धर्मनु आचरण करवु जोइए ॥ ९ ॥

अथ गणितानुयोगः—

गणितं = संख्यानं तस्यानुयोगो-गणितानुयोगः—

जीवाऽजीवादिषड्द्रव्यतत्पर्यायपरिगणनं गणितानुयोगसाध्यम् ।
तेन जिनोक्तपदार्थानां यथावस्थितं परिगणनात् सम्यक्त्वशुद्धिस्ततश्चारित्रशुद्धिः ।

पूर्वानुपूर्व्यादीनां मङ्गलाक्षरादीनां च परिगणनया चित्तस्थैर्यम्, ततश्च कषायानलप्रशमनम्, तेन चारित्रनैर्मल्यम् ।

अपि च गणितानुयोगेन भगवतः केवलज्ञानादिगुणपर्यायाणामानन्त्यमावेदयति । संख्यानमतिक्रान्तानां तेषां संख्यातुमशक्यता संख्याज्ञानं विना नैव

(२) गणितानुयोग—

गणित अर्थात् संख्याका अनुयोग गणितानुयोग कहलाता है ।

जीव पुद्गल आदि छह द्रव्यों की गणना करने के लिए तथा द्रव्यों की पर्यायों की गिनती करने के लिए गणितानुयोग की आवश्यकता होती है । गणितानुयोगसे जिन भगवान् द्वारा उपदिष्ट पदार्थों की ठीक-ठीक गणना होने से सम्यक्त्व की शुद्धि होती है, और सम्यक्त्व की शुद्धि से चारित्र की शुद्धि होती है ।

पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी तथा अनानुपूर्वी आदि से तथा मङ्गल-वाक्यों की गणना करनेसे चित्तमें स्थिरता आती है, और चित्तकी स्थिरता से कषायरूपी अग्नि शान्त होती है और उससे चारित्र निर्मल होता है ।

गणितानुयोग ही भगवान के केवलज्ञान आदि गुण एवं पर्यायोंकी अनन्तता को प्रगट करता है, संख्यातीत गुणों एवं पर्यायों की संख्या का ज्ञान मुश्किल है ' यह बात

(૨) ગણિતાનુયોગ—

ગણિત અર્થાત્ સંખ્યાનો અનુયોગ તે ગણિતાનુયોગ કહેવાય છે. જીવ પુદ્ગલ આદિ છ દ્રવ્યોની ગણના કરવા માટે, તથા દ્રવ્યોના પર્યાયોની ગણતરી કરવા માટે ગણિતાનુયોગની આવશ્યકતા હોય છે ગણિતાનુયોગથી જિન ભગવાન દ્વારા કહેલા પદાર્થોની ઠીક ઠીક ગણના થઈ શકતી હોવાથી સમ્યકત્વની શુદ્ધિ થાય છે અને સમ્યકત્વની શુદ્ધિથી ચારિત્રની શુદ્ધિ થાય છે.

પૂર્વાનુપૂર્વી પશ્ચાનુપૂર્વી તથા અનાનુપૂર્વી આદિથી, અને મંગલશ્લોકોની ગણના કરવાથી ચિત્તમાં સ્થિરતા આવે છે અને ચિત્તની સ્થિરતાથી કષાયરૂપી અગ્નિ શાંત થાય છે અને તેથી ચારિત્ર નિર્મલ થાય છે.

सुक्कज्झाणस्स पायं च, वितीयं पप्प संजमी।
केवलण्णाणलाहेण, केवलित्ति णिगज्जई ॥ ७ ॥
अवत्था णहि सेलेसी, केवलण्णाणमंतरा।
भवई समणिंदस्स, सव्वकम्मक्खओ तओ ॥ ८ ॥
सव्वकम्मक्खए सिद्धी,-तओ सिद्धो हि सासओ।
मोक्खट्ठी सुयचारित्त, - धम्मं तम्हा समायरे ॥ ९ ॥

छाया—

शुक्लध्यानस्य पादं च, द्वितीयं प्राप्य संयमी।
केवलज्ञानलाभेन, केवलीति निगद्यते ॥ ७ ॥
अवस्था नहि शैलेशी, केवलज्ञानमन्तरा।
भवति श्रमणेन्द्रस्य, सर्वकर्मक्षयस्ततः ॥ ८ ॥
सर्वकर्मक्षये सिद्धि, - धर्मं तस्मात्समाचरेत्।
मोक्षार्थी श्रुतचारित्र,-धर्मं तस्मात्समाचरेत् ॥ ९ ॥

सयमी पुरुष शुक्ल ध्यान का दूसरा पाया प्राप्त करके, केवल ज्ञान प्राप्त करता है और केवली कहलाता है। ॥ ७ ॥

केवल ज्ञान के विना शैलेशी अवस्था प्राप्त नहीं होती। शैलेशी अवस्था जब प्राप्ति हो जाती है तो मुनिराज समस्त कर्मों का क्षय कर डालता है ॥ ८ ॥

समस्त कर्मों का क्षय होने पर सिद्धि प्राप्त होती है। सिद्धि लाभ होने पर शाश्वत सिद्ध होजाता है, अत मोक्षार्थी पुरुष को श्रुत—चारित्ररूप धर्म का आचरण करना चाहिये ॥९॥

ધ્યાન વિના ક્ષપકશ્રેણી ઉપર આરોહણ થઈ શકતુ નથી ॥ ૫ ॥

ક્ષપકશ્રેણી વિના બીજા કોઈ ઉપાયથી શુકલ ધ્યાનનો એકત્વ–વિતર્ક–અવિચાર નામક બીજો પાયો પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી ॥ ૬ ॥

સયમી પુરુષ શુકલ ધ્યાનનો બીજો પાયો પ્રાપ્ત કરીને કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે, અને કેવલી કહેવાય છે ॥ ૭ ॥

કેવલજ્ઞાન વિના શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત થતી નથી, શૈલેશી અવસ્થા જ્યારે પ્રાપ્ત થઈ જાય છે, ત્યારે મુનિરાજ સકલ કર્મોનો ક્ષય કરી નાખે છે. ॥ ૮ ॥

સકલ કર્મોનો ક્ષય થયા પછી સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે, સિદ્ધિ લાભ થયા પછી શાશ્વત સિદ્ધ થાય છે, એ માટે મુક્ષાર્થી પુરુષોએ શ્રુત–ચારિત્રરૂપ ધર્મનુ આચરણ કરવુ જોઇએ. ॥ ૯ ॥

(१) अथ मासविचारः

पौष-चैत्र-ज्यष्ठा-षाढ-मासान् विहाय शेषा मासाः प्रशस्ताः ।

विशेषतो मासफलमाह-

(१) श्रावणे-शुभम् । (७) माघ-ज्ञानवृद्धिः ।
(२) भाद्रपदे-शिष्याल्पता । (८) फाल्गुने-सुख-सौभाग्य-यशोवृद्धिः ।
(३) आश्विने-सुखम् । (९) चैत्रे-अल्पसुखम् ।
(४) कार्तिके-विद्यावृद्धिः । (१०) वैशाखे-रत्नत्रयलाभ ।
(५) मार्गशीर्षे-शुभम् । (११) ज्येष्ठे-सामान्यम्, तथान्यवस्तरचे शुभम् ।
(६) पौषे-विद्याद्ययभावः । (१२) आषाढे-गुरुबन्धुना सह प्रेमाल्पता ।

---

(१) मास-विचार

पौष, चैत्र, ज्येष्ठ और आषाढ मास को छोडकर शेष महीनों में दीक्षा देना प्रशस्त है।

विशेष मास-विचार

(१) श्रावण – शुभ । (७) माघ – ज्ञान की वृद्धि
(२) भाद्रपद – शिष्यों कमी । (८) फाल्गुन-सुख-सौभाग्य और यश की वृद्धि
(३) आश्विन – सुख । (९) चैत्र – अल्प सुख
(४) कार्तिक – विद्यावृद्धि । (१०) वैशाख – रत्नत्रय का लाभ
(५) मार्गशीर्ष – शुभ । (११) ज्येष्ठ – साधारण यह मास दूसरा नक्षत्र आदि का भव हो तो शुभ है ।
(६) पौष-विद्यावृद्धि का अभाव। (१२) आषाढ-गुरुभाइयों के साथ प्रेम की कमी ।

---

(१) માસ-વિચાર—

પોષ, ચૈત્ર, જેઠ અને આષાઢ માસને ત્યજીને બાકીના બીજા મહિનાઓ દીક્ષા આપવા માટે ઉત્તમ છે

વિશેષ માસ-વિચાર—

(૧) શ્રાવણ—શુભ. (૭) માઘ-જ્ઞાનની વૃદ્ધિ.
(૨) ભાદ્રપદ—શિષ્યોની કમી. (૮) ફાલ્ગુન—સુખ સૌભાગ્ય અને યશની વૃદ્ધિ.
(૩) આસો—સુખ. (૯) ચૈત્ર—અલ્પ સુખ.
(૪) કાર્તિક—વિદ્યાવૃદ્ધિ. (૧૦) વૈશાખ—રત્નત્રયનો લાભ.
(૫) માર્ગશીર્ષ—શુભ. (૧૧) જેઠ-સાધારણ આમાસમાં બીજા નક્ષત્ર વગેરેનું બલ હોય તો શુભ છે
(૬) પોષ-વિદ્યાવૃદ્ધિનો અભાવ. (૧૨) અષાઢ-ગુરુભાઈઓની સાથે પ્રેમની કમી.

विज्ञातुं शक्यते, तद्धि गणितानुयोगगम्यम् । भगवद्गुणानुस्मरणेन भगवतः स्तुतिः संपद्यते, तया च दर्शनशुद्धिस्ततश्चारित्रशुद्धिः ।

प्रव्रज्याप्रदानादयोऽपि शोभनतिथिनक्षत्रादियुक्तसमय एव विधेया इति तादृशसमयावबोधकतया गणितानुयोगस्यापि चरणप्राप्तिं प्रति साधनता सिद्ध्यति। तथा चास्यापि फल चारित्ररक्षणमेव ।

अथ प्रसङ्गाज्ज्योतिष्कविषयः किञ्चित्प्रदर्श्यते—
तत्र पूर्वं प्रव्रज्याप्रदानसमयो निर्णीयते—

भी सख्या का ज्ञान किये विना जानी नहीं जा सकती है। भगवान के गुणों का वारवार स्मरण करने से भगवान की स्तुति होती हैं, उससे दर्शन–शुद्धि होती है, दर्शन–शुद्धि के होने से चारित्र की शुद्धि होती है ॥

शुभ तिथि तथा शुभ नक्षत्र से युक्त समय में ही दीक्षा आदि देना चाहिए, इस प्रकार के समय का बोध कराने वाला होने से गणितानुयोग भी चारित्रकी प्राप्ति का कारण है, ऐसा सिद्ध होता है, उससे गणितानुयोग का फल भी चारित्र की रक्षा करना ही है ।

यहां प्रसङ्ग होनेसे कुछ ज्योतिष का विषय दिखलाया जाता है—

दीक्षादानसमयका निर्णय—

ગણિતાનુયોગ જ ભગવાનના કેવલજ્ઞાન આદિ એ ગુણો એ પ્રમાણે પર્યાયોની અનતતા પ્રગટ કરે છે 'સખ્યાતીત ગુણો અને પર્યાયોની સખ્યા જાણવી અશક્ય છે' તે વાત પણ સખ્યાનુ જ્ઞાન કર્યા વિના જાણી શકાતી નથી, તે ગણિતાનુયોગ દ્વારા જાણી શકાય છે ભગવાનના ગુણોનુ વારવાર સ્મરણ કરવાથી ભગવાનની સ્તુતિ થાય છે, અને તેથી દર્શન-શુદ્ધિ થઈ શકે છે, અને દર્શન વિશુદ્ધ થવાથી ચારિત્રની શુદ્ધિ થાય છે

શુભ તિથિ તથા શુભ નક્ષત્રથી યુક્ત સમયમા જ દીક્ષા આદિ આપવી જોઈએ, આ પ્રકારના સમયનુ જ્ઞાન કરાવવાવાળો હોવાથી ગણિતાનુયોગ પણ ચારિત્રની પ્રાપ્તિનું કારણ છે એમ સિદ્ધ થાય છે તેથી ગણિતાયોગનુ ફલ પણ ચારિત્રની રક્ષા કરવી એજ છે.
અહી પ્રસગથી થોડા જયોતિષના વિષય બતાવવામાં આવે છે—

દીક્ષા આપવાના સમયનો નિર્ણય—

नव तिथयश्च वर्जनीयाः—

(१) शुक्ला चतुर्दशी (२) अमावास्या (३) यस्यां तिथौ रविसंक्रमणं, सा। (४) द्वितीया, (५) चतुर्थी, (६) षष्ठी, (७) अष्टमी, (८) नवमी, (९) द्वादशी।

(४) वार–विचारः—

रवि – चन्द्र – बुध – गुरु – वाराः प्रशस्ताः

(५) नक्षत्र–विचार —

दीक्षायां त्रयोदश नक्षत्राणि प्रशस्तानि– (१) अश्विनी, (२) रोहिणी, (३) मृगशिरः, (४) पुष्यम्, (५) उत्तरफाल्गुनी, (६) हस्तः (७) अनुराधा, (८) ज्येष्ठा, (९) उत्तराषाढा, (१०) अभिजित्, (११) श्रवणम्, (१२) उत्तरभाद्रपदा, (१३) रेवती।

नौ तिथियाँ त्याज्य हैं—

(१)—शुक्ला चतुर्दशी, (२)—अमावास्या (३)—जिस तिथि में सूर्य–संक्रमण हो वह, (४)—द्वितीया (५)—चतुर्थी (६)—षष्ठी (७)—अष्टमी (८)—नवमी (९)—द्वादशी।

(४) वार–विचार—

रवि सोम बुध गुरु, और शनिवार प्रशस्त है।

(५) नक्षत्र–विचार—

दीक्षा के विषय में तेरह १३ नक्षत्र प्रशस्त हैं। (१)—अश्विनी, (२)—रोहिणी, (३)—मृगशीर्ष, (४)—पुष्य (५)—उत्तराफाल्गुनी (६)—हस्त (७)—अनुराधा (८)—ज्येष्ठा (९)—उत्तराषाढा (१०)—अभिजित् (११)—श्रवण (१२)—उत्तराभाद्रपद, (१३)—रेवती।

नव तिथिओ त्याज्य छे—

(१) शुक्ल चतुर्दशी, (२) अमावास्या (३) जे तिथिमां सूर्य–संक्रमण थाय ते, (४) द्वितीया, (५) चतुर्थी (६) षष्ठी, (७) अष्टमी (८) नवमी (९) द्वादशी

(४) वार विचार—

रवि सोम, बुध, गुरु अने शनिवार उत्तम छे

(५) नक्षत्र–विचार—

दीक्षाना विषयमां तेर नक्षत्र उत्तम छे— (१) अश्विनी, (२) रोहिणी, (३) मृगशीर्ष (४) पुष्य, (५) उत्तराफाल्गुनी, (६) हस्त (७) अनुराधा (८) ज्येष्ठा (९) उत्तराषाढ, (१०) अभिजित (११) श्रवण (१२) उत्तरभाद्रपद, (१३) रेवती

(२) पक्ष-विचारः—

कृष्णपक्षे-प्रतिपद आरभ्य पञ्चमीं यावत्तिथयः शुभाः। षष्ठीतः समारभ्य दशमीं यावत्तिथयो मध्यमाः। एकादशीतः प्रारभ्यामावास्यां यावदशुभाः।

शुक्लपक्षे तु प्रतिपत्तिथितः पञ्चमी पर्यन्तमशुभाः। षष्ठीतो दशमीं यावन्मध्यमाः। एकादशीतः समारभ्य पूर्णिमान्तास्तिथयः शुभाः।

(४) तिथि-विचारः—

दीक्षायां प्रतिपत् (१), तृतीया (३), पञ्चमी (५), सप्तमी (७), एकादशी (११), त्रयोदशी (१३) च प्रशस्ता।

---

(२) पक्ष-विचार—

कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पञ्चमी पर्यन्त तिथियाँ शुभ है। षष्ठी से लेकर दशमी तक की तिथिया मध्यम हैं, और एकादशीसे लेकर अमावास्या तक अशुभ तिथिया है।

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लगाकर पञ्चमी तक अशुभ है, षष्ठी से दशमी तक मध्यम हैं और एकादशी से पूर्णिमा तक की तिथिया शुभ हैं।

(३) तिथि-विचार—

दीक्षा के विषयमें प्रतिपदा, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी प्रशस्त हैं।

---

(२) પક્ષ-વિચાર—

કૃષ્ણ પક્ષમા પડવેથી પાચમ સુધીની તિથિઓ અશુભ છે છઠ્ઠથી લઈને દશમ સુધીની તિથિઓ મધ્યમ છે, અને એકાદશી-અગીયારસથી લઈને અમાવાસ્યા સુધીની તિથિઓ અશુભ છે

શુકલ પક્ષમા-પડવેથી લઈને પાચમ સુધીની તિથિઓ અશુભ છે છઠ્ઠથી દશમી સુધી મધ્યમ છે, અને એકાદશીથી પુનમ સુધીની તિથિઓ શુભ છે

(૩) તિથિ-વિચાર—

દીક્ષાના વિષયમા પડવે, ત્રીજ, પાચમ, સાતમ, એકાદશી અને તેરસ, આ તિથિઓ ઉત્તમ છે

नव तिथयश्च वर्जनीयाः—

(१) शुक्ला चतुर्दशी (२) अमावास्या (३) यस्यां तिथौ रविसंक्रमणं, सा। (४) द्वितीया, (५) चतुर्थी, (६) षष्ठी, (७) अष्टमी, (८) नवमी, (९) द्वादशी।

(४) वार-विचारः—

रवि – चन्द्र – बुध – गुरु – वाराः प्रशस्ताः

(५) नक्षत्र-विचार —

दीक्षायां त्रयोदश नक्षत्राणि प्रशस्तानि- (१) अश्विनी, (२) रोहिणी, (३) मृगशिरः, (४) पुष्यम्, (५) उत्तरफाल्गुनी, (६) हस्त (७) अनुराधा, (८) ज्येष्ठा, (९) उत्तराषाढा, (१०) अभिजित्, (११) श्रवणम्, (१२) उत्तरभाद्रपदा, (१३) रेवती।

नौ तिथियाँ त्याज्य हैं—

(१)—शुक्ला चतुर्दशी, (२)—अमावास्या (३)—जिस तिथि में सूर्य-संक्रमण हो वह, (४)—द्वितीया (५)—चतुर्थी (६)—षष्ठी (७)—अष्टमी (८)—नवमी (९)—द्वादशी।

(४) वार-विचार—

रवि सोम बुध गुरु, और शनिवार प्रशस्त हैं।

(५) नक्षत्र-विचार—

दीक्षा के विषय में तेरह १३ नक्षत्र प्रशस्त हैं। (१)—अश्विनी, (२)—रोहिणी, (३)—मृगशीर्ष, (४)—पुष्य (५)—उत्तराफाल्गुनी (६)—हस्त (७)—अनुराधा (८)—ज्येष्ठा (९)—उत्तराषाढा (१०)—अभिजित् (११)—श्रवण, (१२)—उत्तराभाद्रपद, (१३)—रेवती।

નવ તિથિઓ ત્યાજ્ય છે—

(૧) શુક્લ ચતુર્દશી, (૨) અમાવાસ્યા (૩) જે તિથિમાં સૂર્ય-સંક્રમણ થાય તે, (૪) દ્વિતીયા, (૫) ચતુર્થી (૬) ષષ્ઠી, (૭) અષ્ટમી (૮) નવમી (૯) દ્વાદશી

(૪) વાર વિચાર—

રવિ સોમ, બુધ, ગુરૂ અને શનિવાર ઉત્તમ છે

(૫) નક્ષત્ર-વિચાર—

દીક્ષાના વિષયમાં તેર નક્ષત્ર ઉત્તમ છે— (૧) અશ્વિની, (૨) રોહિણી (૩) મૃગશીર્ષ (૪) પુષ્ય, (૫) ઉત્તરાફાલ્ગુની (૬) હસ્ત (૭) અનુરાધા (૮) જ્યેષ્ઠા (૯) ઉત્તરાષાઢા, (૧૦) અભિજિત (૧૧) શ્રવણ (૧૨) ઉત્તરભાદ્રપદ, (૧૩) રેવતી.

(२) पक्ष-विचारः—

कृष्णपक्षे-प्रतिपद आरभ्य पञ्चमीं यावत्तिथयः शुभाः। षष्ठीतः समारभ्य दशमीं यावत्तिथयो मध्यमाः। एकादशीतः आरभ्यामावास्यां यावदशुभाः।

शुक्लपक्षे तु प्रतिपत्तिथितः पञ्चमी पर्यन्तमशुभाः। षष्ठीतो दशमीं यावन्मध्यमाः। एकादशीतः समारभ्य पूर्णिमान्तास्तिथयः शुभाः।

(४) तिथि-विचारः—

दीक्षायां प्रतिपत् (१), तृतीया (३), पञ्चमी (५), सप्तमी (७), एकादशी (११), त्रयोदशी (१३) च प्रशस्ता।

---

(२) पक्ष-विचार—

कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पञ्चमी पर्यन्त तिथियाँ शुभ हैं। षष्ठी से लेकर दशमी तक की तिथिया मध्यम हैं, और एकादशीसे लेकर अमावास्या तक अशुभ तिथिया है।

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लगाकर पञ्चमी तक अशुभ है, षष्ठी से दशमी तक मध्यम हैं और एकादशी से पूर्णिमा तक की तिथिया शुभ हैं।

(३) तिथि-विचार—

दीक्षा के विषयमें प्रतिपदा, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी प्रशस्त हैं।

---

(२) પક્ષ-વિચાર—

કૃષ્ણ પક્ષમા પડવેથી પાંચમ સુધીની તિથિઓ અશુભ છે છઠ્ઠથી લઈને દશમ સુધીની તિથિઓ મધ્યમ છે, અને એકાદશી-અગીયારસથી લઈને અમાવાસ્યા સુધીની તિથિઓ અશુભ છે

શુકલ પક્ષમા-પડવેથી લઈને પાચમ સુધીની તિથિઓ અશુભ છે છઠ્ઠથી દશમી સુધી મધ્યમ છે, અને એકાદશીથી પુનમ સુધીની તિથિઓ શુભ છે

(૩) તિથિ-વિચાર—

દીક્ષાના વિષયમા પડવે, ત્રીજ, પાચમ, સાતમ, એકાદશી અને તેરસ, એ તિથિઓ ઉત્તમ છે.

(७) ग्रहभिन्नम्-यत्र त्रयो ग्रहास्तिष्ठन्ति तादृशं नक्षत्रम् ।

(६) योग-विचारः—

योगास्तु नाम्नैव शुभाशुभफलाः, यथा-विष्कम्भादिषु दैनिकयोगेषु प्रीत्यादयः शुभफलाः, विष्कम्भादयोऽशुभफलाः । आनन्दादिषु सांयोगिकेषुवारनक्षत्र-संयोगजनितेषु योगेषु आनन्दादयः शुभा , कालदण्डादयोऽशुभाः ।

(७) अथ करण-विचारः-

करणानि एकादश सन्ति; यथा-(१) बवम् , (२) बालवम् , (३) कौलवम् ,

(७) ग्रह-भिन्न-जिस में तीन ग्रह हों ऐसा नक्षत्र ।

(६) योग-विचार—

योगों के नामसे ही शुभ अशुभ फल प्रतीत हो जाता है । जैसे-विष्कम्भ, आदि दैनिक योगो में से प्रीति आदि योग शुभफल वाले, और विष्कम्भ आदि योग अशुभ फल वाले हैं । आनन्द आदि साम्योगिक (वार नक्षत्र के संयोग से बनने वाले) योगो में से आनन्द आदि योग शुभफलदाता हैं और कालदण्ड आदि अशुभफलदायक हैं ।

(७) करण-विचार

करण ११ ग्यारह होते हैं जैसे—(१) बव (२) बालव, (३) कौलव,

(૭) ગ્રહભિન્ન-જેમાં ત્રણ ગ્રહો હોય, એવું નક્ષત્ર.

(૬) યોગ-વિચાર—

યોગોના નામથી જ શુભ-અશુભ ફળની પ્રતીતિ થઈ જાય છે. જેમકે-વિષ્કંભ આદિ દૈનિક યોગોમાંથી પ્રીતિ આદિ શુભ ફળવાળા છે અને વિષ્કંભ આદિ યોગ તે અશુભ ફળ આપનારા છે આનન્દ આદિક સાંયોગિક (વાર-નક્ષત્રના સંયોગથી બનવાવાળા) યોગોમાં આનન્દ આદિ યોગ શુભ ફળ દેનારા છે અને કાલદંડ આદિ અશુભ ફળ આપનારા છે

(૭) કરણ વિચાર—

કરણ અગિયાર હોય છે (૧) બવ (૨) બાલવ (૩) કૌલવ (૪) સ્ત્રીવિલોચન

नक्षत्रेषु सप्त दोषाः सन्ति, यथा-

(१) संध्यागतम्-यत्र नक्षत्रे सूर्योऽनन्तर स्थास्यति तादृशं नक्षत्रम्। यथा हस्ते रविर्वर्त्तते चेत् तदा दैनिक चित्रानक्षत्र संध्यागत बोध्यम्।

(२) रविगतम्- यत्र रविस्तिष्ठति तादृश दैनिकं नक्षत्रं रविगतं बोध्यम्।

(३) दुर्गतम्-यत्रोन्मार्गगामी-वक्री ग्रहो भवति, तादृशं नक्षत्रम्।

(४) सग्रहम्-यत्र क्रूरो ग्रहस्तिष्ठति, तादृश नक्षत्रम्।

(५) विलम्बितम्-सूर्येण परिभुज्य मुक्त नक्षत्रम्।

(६) राहुगतम्-यत्र चन्द्र-सूर्योपरागः सजातस्तादृशं नक्षत्रम्। ईदृशे नक्षत्रे षण्मासान् यावत् प्रव्रज्या न देया।

नक्षत्रों में सात दोष

(१) सन्ध्यागत-जिस नक्षत्र मे सूर्य आगे जाने वाला है वह नक्षत्र। जैसे-अगर हस्त नक्षत्र में सूर्य हो तो दैनिक चित्रा नक्षत्र सन्ध्यागत कहलाता है।

(२) रविगत-जिस नक्षत्र मे रवि हो, वह दैनिक नक्षत्र रविगत जानना चाहिए।

(३) दुर्गत-जिस में उन्मार्गगामी-वक्र ग्रह हो वह नक्षत्र दुर्गत कहलाता है।

(४) सग्रह-जिस नक्षत्र में क्रूर ग्रह हो।

(५) विलम्बित-सूर्य-द्वारा भोग कर छोडा हुआ नक्षत्र।

(६) राहुगत-जिस नक्षत्र में चन्द्र-ग्रहण या सूर्य-ग्रहण हुआ हो। ऐसे नक्षत्र में छह मास तक दीक्षा देना वर्जनीय है।

નક્ષત્રમા સાત દોષ—

(૧) સધ્યાગત-જે નક્ષત્રમા સૂર્ય આગળ આવવાવાળો છે તે નક્ષત્ર, જેવી રીતે કે હસ્ત નક્ષત્રમા સૂર્ય હોય તો દૈનિક ચિત્રા નક્ષત્ર સધ્યાગત કહેવાય છે

(૨) રવિગત-જે નક્ષત્રમાં રવિ હોય તે દૈનિક નક્ષત્ર રવિગત જાણવુ જોઈએ

(૩) દુર્ગત-જેમા ઉન્માર્ગગામી-વક્ર-ગ્રહ હોય તે નક્ષત્ર દુર્ગત કહેવાય છે.

(૪) સગ્રહ-જે નક્ષત્રમા ક્રૂર ગ્રહ હોય

(૫) વિલમ્બિત-સૂર્યદ્વારા ભોગવીને છુટુ કરાયેલુ નક્ષત્ર

(૬) રાહુગત-જે નક્ષત્રમા ચદ્રગ્રહણુ અથવા સૂર્યગ્રહણુ થયુ હોય એવા નક્ષત્રમા છ માસ સુધી દીક્ષા આપવી વર્જનીય છે

कइ करणा थिरा पण्णत्ता ?, गोयमा सत्त करणा चरा, चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता ।" इत्यादि ।

तत्र दिवाशब्देन तिथेः पूर्वार्द्धभागः, रात्रिशब्देन तिथेरुत्तरार्द्धभागो गम्यते ।

एकादशसु करणेषु बवम् , बालवम् , कौलवम् , वणिजम् , एतानि चत्वारि शुभफलानि ।

विष्टिकरणस्य नामान्तरं भद्रा । इयं दीक्षादौ वर्जनीया । उक्तञ्च—

"यदि भद्राकृतं कार्यं, प्रमादेनापि सिद्धयति ।

गया है । कहा गया है —

"हे भदन्त ! इन ग्यारह करणों में कितने करण चर और कितने करण स्थिर कहे गये हैं ?, हे गौतम ! सात करण चर और चार करण स्थिर कहे गये हैं ।" इत्यादि ।

यहां दिन शब्द का अर्थ है—तिथिका पूर्वार्ध भाग और रात्रि शब्द का अर्थ है—तिथि का उत्तरार्ध भाग ।

इन ग्यारह करणों में से बव, बालव, कौलव, और वणिज, ये चार करण शुभ फल दायक है ।

विष्टि करण का दूसरा नाम भद्रा है । दीक्षा आदि कार्यों में यह वर्जनीय है । कहा भी है —

इत्यादि ५हेतु छे त्या ५हयु छे—

हे भदन्त ! आ अग्यार करणोमां केटला करण चर अने केटला करण स्थिर कहेवामां आव्या छे ? हे गौतम ! सात करण चर अने चार करण स्थिर कहेवामां आव्या छे इत्यादि.

आ स्थले दिन शब्दनो अर्थ छे के-तिथिनो पूर्वार्ध भाग अने रात्री शब्दनो अर्थ छे के-तिथिनो उत्तरार्ध भाग.

ए अगियार करणोमांथी बव, बालव, कौलव अने वणिज, आ चार करण शुभफलदायक छे.

विष्टिकरणनुं बीजुं नाम भद्रा छे दीक्षा आदि कार्योमां ते भद्रा त्यजवा योग्य छे कह्युं पण छे—

(४) स्त्रीविलोचनम्, इदं तैतिलमिति, केचदाहुः, (५) गरादि, इदं गरमित्याहुरन्ये, (६) वणिजम्, (७) विष्टिः, (८) शकुनिः, (९) चतुष्पदं, (१०) नागम्, (११) किंस्तुघ्नम्, इति।

अत्र ववादिविष्टयन्तानि सप्त करणानि चराणि, शकुन्यादीनि चत्वारि स्थिराणि वेदितव्यानि।

ववादिविष्टयन्तानां सप्तानां कस्याश्चिदेकस्यां तिथौ नियमतः स्थित्यभावात्तानि सप्त चराणि, शकुन्यादीना कृष्णपक्षीयचतुर्दश्यमावस्याशुक्लप्रतिपत्तिथिषु नियतस्थित्या तानि चत्वारि स्थिराणि प्रोच्यन्ते। स्पष्टं चेदं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ सप्तमवक्षस्कारे। उक्तश्च तत्र–"एएसिणं भंते! एक्कारसण्हं करणाणं कइ करणा चरा?

---

(४) स्त्रीविलोचन (कोई कोई इसे 'तैतिल' भी कहते हैं), (५) गरादि ('गर' नाम भी है), (६) वणिज, (७) विष्टि, (८) शकुनि, (९) चतुष्पद, (१०) नाग, (११) किंस्तुघ्न।

इन ग्यारह करणो में बव से लेकर विष्टि तक सात करण चर है, और अन्त के शकुनि आदि चार स्थिर हैं।

बव से लेकर विष्टि तक सात करण किसी एक तिथि में नियम से नहीं रहते इस कारण ये चर कहलाते है, शकुनि आदि अन्तिम चार करण कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, अमावास्या तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि में नियम से होते हैं, अत एव ये स्थिर कहलाते है। इस विषय का जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के सातवें वक्षस्कार में स्पष्ट रूप से विवेचन किया

(કોઈ કોઈ એને 'તૈતિલ' પણ કહે છે) (૫) ગરાદિ (તેનુ 'ગર' નામ પણ છે) (૬) વણિજ (૭) વિષ્ટિ (૮) શકુનિ (૯) ચતુષ્પદ (૧૦) નાગ (૧૧) કિંસ્તુઘ્ન

આ અગિયાર કરણોમા બવથી લઈને વિષ્ટિ સુધી સાત કરણ ચર છે, અને છેલ્લા શકુનિ આદિ ચાર સ્થિર છે

બવથી લઇને વિષ્ટિ સુધીના સાત કરણ કોઈ એક તિથિમા નિયમિત રહેતા નથી તે કારણથી તેને ચર કહે છે, શકુનિ આદિ છેલ્લા ચાર, કૃષ્ણ પક્ષની ચૌદસ, અમાવાસ્યા તથા શુકલ પક્ષની પ્રતિપદા–પડવો તિથિમા નિયમિત રહે છે એટલે તે સ્થિર કહેવાય છે આ વિષયનુ વિવેચન જમ્બૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિના સાતમા વક્ષસ્કારમા સ્પષ્ટ

शकुनि-चतुष्पद-नाग-किंस्तुघ्ननामानि करणानि तु कृष्णचतुर्दश्यमावास्या शुक्लप्रतिपद्योगभावित्वात्त्याज्यानि। अवशिष्टे द्वे करणे श्रीविलोचनगरादिसंज्ञके सामान्ये, इति साम्प्रदायिकाः।

यत्तु गणिविद्याप्रकीर्णककृतश्चतुष्पदं नागं चेति द्वे करणे निष्क्रमणे प्रशंसन्ति,
यथा—"नागे चउप्पए यावि, सेहनिक्खमणं करे" इति।

तन्न समीचीनम्, निष्क्रमणेऽमावास्याया प्रतिषिद्धत्वेन नियमतस्तद्योग-भावितयोस्तयोः प्राशस्त्याऽसंभवात्।

शकुनि चतुष्पद नाग और किंस्तुघ्न नामक करण कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी, अमावास्या, शुक्लपक्षकी प्रतिपदा के योगसे भावित होने के कारण त्याज्य हो जाते हैं। शेष दो करण श्रीविलोचन और गरादि नामक साधारण हैं। परम्परा को जानने वालों का यह मत है।

गणिविद्याप्रकीर्णककारने दीक्षा के विषय में चतुष्पद और नाग नामक दो करण प्रशस्त माने हैं उन्हों ने कहा है कि—"नागे चउप्पए यावि सेहनिक्खमणं करे" अर्थात् नाग और चतुष्पद नक्षत्र में निष्क्रमण करना चाहिये अर्थात् शिष्यको दीक्षा देना चाहिए, उनका यह कथन समीचीन नहीं है, कारण यह है कि निष्क्रमण में अमावास्या निषिद्ध मानी गई है, इसीलिये अमावास्या के योग से भावित उक्त दोनों करणों का प्रशस्त होना असम्भव है।

શકુનિ, ચતુષ્પદ, નાગ અને કિંસ્તુઘ્ન નામના કરણ કૃષ્ણ પક્ષની ચૌદશ, અમાવાસ્યા, શુક્લ પક્ષના પડવાના યોગથી ભાવિત હોવાથી ત્યાજ્ય બની જાય છે. બાકી બે કરણ શ્રીવિલોચન અને ગરાદિ નામના સાધારણ છે પરમ્પરા જાણવા વાળાનો આ પ્રમાણે મત છે

ગણિવિદ્યાપ્રકીર્ણકકારે દીક્ષાના વિષયમાં ચતુષ્પદ અને નાગ નામના બે કરણોને ઉત્તમ માન્યા છે તેવું કહ્યું છે કે—"नागे चउप्पए यावि सेहनिक्खमणं करे" નાગ અને ચતુષ્પદ નક્ષત્રમાં નિષ્ક્રમણ કરવું જોઈએ અર્થાત્ શિષ્યને દીક્ષા આપવી જોઈએ. તેમનું આ કથન બરાબર નથી, કારણ એ છે કે—નિષ્ક્રમણમાં-દીક્ષામાં-અમાવાસ્યા નિષિદ્ધ માની છે એટલા માટે અમાવાસ્યાના યોગથી ભાવિત ઉપર કહેલા બન્ને કરણો ઉત્તમ હોય તે વાત અસંભવ છે

मासे तु षोडशे मासे, समूलं तद्विनश्यति ॥ १ ॥" इति ।

शुक्लपक्षे भद्रा चतुर्थ्यामेकादश्यां च तिथिपरार्द्धभागस्थायिनी, अष्टम्यां पूर्णिमायां च तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी भवति, कृष्णपक्षे तु सा तृतीयायां दशम्यां च तिथिपरार्द्धभागस्थायिनी, सप्तम्यां चतुर्दश्यां च तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी भवति।

तत्र तिथिपश्चार्द्धभागस्थायिनी भद्रा दिवसं व्याप्नोति, तथा तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी रात्रिं व्याप्नोति चेत्तदा न दोषावहा ।

भद्रायास्त्रिंशद्धटिकामानेन पश्चिमं घटिकात्रयं पुच्छमित्यभिधीयते । तद् भद्रापुच्छं शुभम् ।

"भद्रा करण में किया हुआ कार्य प्रथम तो सिद्ध ही नहीं होता, कदाचित् सिद्ध भी होजाय तो सोलहवाँ महीना आने पर उसका समूल विनाश हो जाता है" ॥१॥

भद्रा शुक्लपक्ष में चौथ तथा एकादशी तिथि के उत्तरार्ध में रहती है, और अष्टमी तथा पूर्णिमा के दिन तिथि के पूर्वार्ध में रहती है ।

कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी के दिन तिथि के उत्तरार्ध में और सप्तमी एव चतुर्दशी को तिथि के पूर्वार्ध में रहती है ।

तिथि के उत्तरार्ध में रहने वाली भद्रा दिनको व्याप्त करती हो और पूर्वार्धभाग में रहने वाली रात्रिको व्याप्त करती हो तो कोई दोष नहीं है ।

तीस घडीकी भद्रा की अन्तिम तीन घडियाँ पूछ कहलाती है । भद्राकी यह पूछ शुभ है ।

"ભદ્રા કરણમા કરેલુ કામ પ્રથમ તો સિદ્ધ થતુ નથી, કદાચિત્ સિદ્ધ પણ થાય તો સોળમો મહિનો આવતા તેનો સમૂળ વિનાશ થાય છે" ॥ ૧ ॥

ભદ્રા શુકલ પક્ષમા ચોથ તથા એકાદશી તિથિના ઉત્તરાર્ધમા રહે છે, અને આઠમ તથા પૂનમના દિવસે તિથિના પૂર્વાર્ધમા રહે છે

કૃષ્ણપક્ષમા ત્રીજ અને દશમીના દિન તિથિના ઉત્તરાર્ધમા અને સાતમ તથા ચૌદશના દિન તિથિના પૂર્વાર્ધમા રહે છે

તિથિના ઉત્તરાર્ધમા રહેવાવાળી ભદ્રા દિવસને વ્યાપ્ત કરતી હોય, અને પૂર્વાર્ધ ભાગમા રહેવાવાળી રાત્રીને વ્યાપ્ત કરતી હોય તો કોઈ દોષ નથી

ત્રીશ ઘડીની ભદ્રાની છેલ્લી ત્રણ ઘડીઓ પૂછ કહેવાય છે, અને ભદ્રાની તે પૂછ શુભ છે

चन्द्रतो लग्नतश्च सप्तमे स्थाने रविकुजभार्गवास्त्याज्याः, तत्र त्रयाणां सङ्गमे दीक्षितोऽयं प्रतिपाती भवति । एषु त्रिषु द्वावन्यतमो वा तत्र तिष्ठति चेत्तदा कुशीलः क्रोधादिदुर्गुणश्च भवति । यदि सप्तमं स्थानं रिक्तं, चन्द्रश्च ग्रहान्तरवर्जितस्तदा दीक्षा शुभा । यदि चन्द्रस्य गुरु-बुधयोरन्यतरेण सङ्गमस्तर्हि शुभम् ।

(१०) अथ त्वरितकर्त्तव्यदीक्षासमयनिरूपणम् ।

(क) सिद्धच्छायालग्नम् ।

चन्द्रमासे तथा लग्न से सातवें स्थान पर सूर्य, कुज (मङ्गल) भार्गव,(शुक्र) हो तो त्याज्य है। अगर इन तीनों का सङ्गम हो तो दीक्षा लेने वाला प्रतिपाती (पडिवाई) हो जाता है। अगर इन तीनों में से दो अथवा कोई भी एक वहाँ हो तो दीक्षा लेने वाला कुशील और क्रोध आदि दुर्गुणों का धारक होता है। अगर चन्द्र दूसरे ग्रहों से वर्जित हो तो दीक्षा शुभ समझनी चाहिए। अगर गुरु और बुध में से किसी एक के साथ चन्द्रमाका सङ्गम हो तो शुभ है।

(१०) तुरन्त दीक्षा देनेका समय—

(क) सिद्धच्छाया-लग्न—

ત્રીજા, છઠ્ઠા, નવમા અને અગિયારમા સ્થાનમાં સ્થિત શુક્ર નિબલ હોય છે, તેથી ફરી શુક્ર અસ્ત હોય તો પણ દીક્ષા ગ્રહણ કરવી તે ઉત્તમ માનવામાં આવ્યુ છે એવો કોઈ આચાર્યનો મત છે

ચન્દ્રમાથી તથા લગ્નથી સાતમા સ્થાનમાં સૂર્ય મંગલ શુક્ર હોય તો ત્યાજ્ય છે અથવા એ ત્રણેયનો સંગમ હોય તો દીક્ષા લેનાર પ્રતિપાતી (પડિવાઈ) થઈ જાય છે અથવા એ ત્રણમાંથી બે અથવા કોઈ પણ એક ત્યાં હોય તો દીક્ષા લેવાવાળો કુશીલ અને ક્રોધ આદિ દુર્ગુણોનો ધારણ કરનાર બને છે અથવા ચન્દ્ર તથા લગ્નથી સાતમું સ્થાન ખાલી હોય અથવા ચન્દ્રમા બીજા ગ્રહોથી વર્જિત હોય તો દીક્ષા શુભ સમજવી જોઈએ અથવા ગુરૂ અને બુધમાંથી કોઈ પણ એકની સાથે ચન્દ્રનો સંગમ હોય તો શુભ છે

(૧૦) તુરત દીક્ષા આપવાનો સમય—

(ક) સિદ્ધછાયાલગ્ન—

अथ लग्नविचारः-

निष्क्रमणे मिथुन-सिंह-कन्या-वृश्चिक-धनु-मकर-कुम्भ-मीनानि लग्नानि शुभानि। अन्यानि चत्वारि वर्जनीयानि।

(९) ग्रहविचारः-

दीक्षालग्ने शनश्चर मध्यमबलं, गुरुं बलीयासं, शुक्रं बलहीनं विधाय दीक्षा देया। द्वितीये, पञ्चमे, षष्ठे, सप्तमे, एकादशे स्थाने शनिर्मध्यमबली भवति। त्रिकोणे केन्द्रे एकादशे च स्थानेऽवस्थितो गुरुर्बलीयान् भवति। तृतीये, षष्ठे, नवमे, द्वादशे च स्थाने स्थितः शुक्रो बलहीनो भवति, अत एव शुक्रास्तेऽपि दीक्षा ग्राह्येति संप्रदायविदः।

---

(८) लग्न-विचार—

दीक्षा अङ्गीकार करने में-मिथुन, सिंह, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन, लग्न शुभ हैं। शेष चार वर्जनीय है।

(९)ग्रह-विचार—

दीक्षालग्न में शनैश्चर मध्यम बल वाला, गुरु बलशाली और शुक्र बलहीन हो तो दीक्षा देनी चाहिए। दूसरे पांचवें, छठे, सातवे और ग्यारहवें स्थान में शनि मध्यम बल वाला होता है। त्रिकोण में केन्द्र में और ग्यारवें स्थान में रहा हुआ गुरु (बृहस्पति) बलशाली समझा जाता है। तीसरे, छठे, नौवें और ग्यारहवें स्थान में स्थित शुक्र निर्बल होता है। अत एव शुक्र का अस्त होने पर भी दीक्षा ग्रहण करना प्रशस्त माना गया है, ऐसा कई आचार्यों का कथन है।

---

(८) લગ્ન-વિચાર—

દીક્ષા અગીકાર કરવામા મિથુન, સિહ, કન્યા, વૃશ્ચિક, ધનુ, મકર, કુભ અને મીન-લગ્ન શુભ છે બાકીના ચાર ત્યાજ્ય છે

(૯) ગ્રહ-વિચાર—

દીક્ષાલગ્નમા શનૈશ્ચર મધ્યમ બળવાળો ગુરૂ બલશાળી અને શુક્ર બલહીન હોય તો દીક્ષા આપવી જોઇએ, બીજા, પાચમા, છઠા, સાતમા અને અગિઆરમા સ્થાનમા શનિ મધ્યમ બળવાળો હોય છે, ત્રિકોણુમા કેન્દ્રમા અને અગિઆરમા સ્થાનમાં રહેલો ગુરુ (બૃહસ્પતિ) બળશાલી સમજવામા આવે છે.

नक्षत्राणि तिथिर्वारा-स्ताराश्चन्द्रश्च ग्रहाः ।
दुष्टान्यपि शुभं भाव, भजन्ते सिद्धछायया ॥ १ ॥

न तिथिर्न च नक्षत्रं, न वारा न च चन्द्रमाः ।
ग्रहा नोपग्रहाश्चैव, छायालग्नं प्रशस्यते ॥ २ ॥

न योगिनी न विष्टिश्च, न शूलं न च चन्द्रमाः ।
एषा वज्रमयी सिद्धि,-रभेद्या त्रिदशैरपि ॥ ३ ॥

"सिद्धच्छाया लग्न हो तो दूषित तिथि नक्षत्र, वार, तारा, चन्द्र तथा दूषित ग्रह भी शुभफलदायक हो जाते हैं, अर्थात् सिद्धच्छायालग्न की विद्यमानता में नक्षत्र आदि का दोष नहीं माना जाता है ॥ १ ॥

एक मात्र छाया लग्न ही उत्तम है, उसकी समानता न तिथि कर सकती है, न नक्षत्र कर सकता है, न वार कर सकता है, न चन्द्रमा, न ग्रह कर सकते हैं और न उपग्रह ही कर सकते हैं ॥ २ ॥

योगिनी उसके सामने कुछ नहीं है, विष्टि (भद्रा) कोई चीज नहीं है, शूल और चन्द्रमा भी उस की विद्यमानता में कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता । सिद्धच्छाया लग्न एक ऐसी वज्रमयी सिद्धि है, जिसे देवता भी नहीं भेद सकते ॥ ३ ॥

'સિદ્ધછાયાલગ્ન હોય તો દૂષિત નક્ષત્ર, તિથિ, વાર, તારા, ચંદ્ર તથા દૂષિત ગ્રહ પણ શુભ થઈ જાય છે અર્થાત્ સિદ્ધછાયાલગ્નની હાજરીમાં નક્ષત્ર આદિનો દોષ માનવામાં આવતો નથી. ॥ ૧ ॥"

એક માત્ર છાયાલગ્ન જ ઉત્તમ છે તેનો મુકાબલો તિથિ, નક્ષત્ર, વાર, ચન્દ્રમા ગ્રહ અને ઉપગ્રહ કોઈ પણ કરી શકતા નથી. ॥ ૨ ॥

યોગિનીનું તેના સામે બળ નથી. વિષ્ટિનું પણ બળ નથી, શૂળ અને ચન્દ્ર પણ છાયાલગ્નની હાજરીમાં કોઈ પ્રકારે કાંઈ પણ બગાડી શકતા નથી. સિદ્ધ છાયાલગ્ન એક એવી વજ્રમયી સિદ્ધિ છે જેને દેવતા પણ ભેદી શકતા નથી. ॥૩॥"

शुभतिथिवारनक्षत्रलग्नादीनामभावे त्वरितकर्त्तव्येषु कार्येषु सिद्धच्छायालग्न-मुपादेयम् ।यदि समतलभूमौ स्वशरीरच्छाया चन्द्र–शुक्र–शनि–वासरेषु सार्द्धाऽष्टपद-प्रमाणा, भौमे नवपदप्रमाणा, बुधेऽष्टपदप्रमाणा, रवावेकादशपदप्रमाणा, गुरौ सप्त-पदप्रमाणा भवेत्तदा सा सिद्धच्छायाख्यं लग्नं प्रोच्यते। तत्र दीक्षादिशुभकार्यं विधेयम्। अस्मिन् सिद्धच्छायालग्ने समाप्ते तिथिवारनक्षत्रभद्रालग्नादिचिन्तनमनाव-श्यकम्। उक्तञ्च–

शुभ तिथि, वार, नक्षत्र और लग्न आदि के अभाव में तुरन्त करने योग्य कार्यों में सिद्धच्छायालग्न ही उपादेय है।

समतल भूमि पर अपने शरीर की छाया सोमवार, शुक्रवार, और शनिवार, के दिन साढे आठ पैर बराबर हो, मङ्गलवार को नौ पैर बराबर हो, बुधवार को आठ पद प्रमाण हो, रविवार को ग्यारह पद प्रमाण हो, और गुरुवार को सात पैर छाया हो तो उसे सिद्धच्छाया लग्न कहते हैं, उस में दीक्षा आदि शुभ कार्य किये जा सकते है। यह सिद्धच्छायालग्न प्राप्त हो तो तिथि, वार, नक्षत्र, भद्रा और लग्न आदि का विचार करने की आवश्यकता नहीं है। कहा भी है —

શુભ તિથિ, વાર, નક્ષત્ર અને લગ્ન આદિના અભાવમા તુરત કરવા યોગ્ય કાર્યોમા સિદ્ધછાયાલગ્ન જ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે

સમતલ ભૂમિ ઉપર પોતાના શરીરની છાયા, સોમવાર શુક્રવાર અને શનિવારના દિવસે સાડા આઠ પગ પ્રમાણ હોય, મગળવારના દિવસે નવ પગ પ્રમાણ હોય, બુધવારે આઠ પગ પ્રમાણ, રવિવારે અગિઆર પગ, ગુરૂવારે સાત પગલા છાયા હોય તો તેને સિદ્ધ છાયાલગ્ન કહે છે આ લગ્નમા દીક્ષા આદિ શુભ કાર્ય કરી શકાય છે આ સિદ્ધછાયાલગ્ન પ્રાપ્ત હોય તો તિથિ, વાર, નક્ષત્ર, ભદ્રા અને લગ્ન આદિનો વિચાર કરવાની આવશ્યકતા નથી કહ્યુ પણ છે—

नसर्वमिवात्मातुरः सन् निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं शान्तरसार्णवं द्रव्यक्षेत्रकालभावविदं निर्ग्रन्थप्रवचनमर्मज्ञं गुरुं दीक्षादानार्थं प्रार्थयते तदा तस्मै तदानीमेव प्रव्रज्याप्रदानं शुभम्, नहि तत्र तिथिवारनक्षत्रादीनां विचारापत्ता।

(११) अथ केशलुञ्चनम्—

दीक्षाग्रहणानन्तरं यदा कदापि केशलुञ्चनं कर्तुमिच्छेत्तदा शनिमङ्गल दिवसौ त्याज्यौ, कृत्तिका, विशाखा, मघा, भरणी, एतानि चत्वारि नक्षत्राणि च वर्जनीयानि।

आत्मरक्षा का अन्य उपाय न देखकर एकमात्र दीक्षा को ही शरण समझने वाला तीव्र वैराग्य की प्रभा से चमकता हुआ मोक्षाभिलाषी शिष्य रोम-रोम में जिस के आग लगी हो ऐसे पुरुष की भांति अत्यन्त आतुर होकर तरङ्गरहित समुद्र के समान शान्त रस के सागर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के ज्ञाता और निर्ग्रन्थ प्रवचन के मर्मज्ञ गुरुसे दीक्षा देने के लिये प्रार्थना करे तो उसको उसी समय दीक्षा दे देना शुभ है, ऐसे प्रसंग पर तिथि, वार, नक्षत्र आदि के विचार की आवश्यकता नहीं है।

(११) केशलोच—

दीक्षा धारण करने के पश्चात् केशलोच करने में शनिवार और मंगल वार त्याज्य है, तथा कृत्तिका विशाखा मघा, और भरणी, ये चार नक्षत्र वर्जनीय हैं।

લાઈ ગયું છે એવા પુરૂષની જેમ આત્મરક્ષાનો અન્ય કોઈ ઉપાય નહિ દેખવાથી એક માત્ર દીક્ષાને જ શરણુ-આશ્રય સમજવાવાળા, તીવ્ર વૈરાગ્યની પ્રભા-તેજથી ચમકતો મોક્ષાભિલાષી શિષ્ય રોમ-રોમમાં જેને અગ્નિ લાગી છે, એવા પુરૂષની જેમ અત્યન્ત આતુર બનીને તરંગરહિત સમુદ્ર પ્રમાણે શાન્ત રસનાં સાગર, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર કાલ અને ભાવના જાણનાર અને નિર્ગ્રંથ પ્રવચનના મર્મજ્ઞ ગુરૂથી દીક્ષા દેવા માટે પ્રાર્થના કરે તો તેને તેજ વખતે દીક્ષા આપવી શુભ છે એવા પ્રસંગે તિથિ વાર નક્ષત્ર આદિનો વિચાર કરવાની જરૂર નથી.

(૧૧) કેશલોચ

દીક્ષા ધારણ કર્યાં પછી કેશલોચ કરવામાં શનિવાર અને મંગળવાર ત્યાજ્ય છે તથા કૃત્તિકા, વિશાખા, મઘા, અને ભરણી, આ ચાર નક્ષત્ર ત્યજવા યોગ્ય છે.

(ख) शङ्कुच्छायालग्नम्—

द्वादशाङ्गुलपरिमितशङ्कोश्छाया रवि-सोम-भौम-बुध-गुरु-शुक्र-शनि-वासरेषु क्रमेण विंशति-षोडश-पञ्चदश-चतुर्दश-त्रयोदश-द्वादश-द्वादशाङ्गुलपरिमिता, तथा शनिवासरे द्वादशाङ्गुलप्रमाणा चेत्तर्हि सा शङ्कुच्छायाख्यं लग्नं प्रोच्यते। तत्र दीक्षादि कार्यं शुभम्।

(ग) अत्युत्कण्ठितयोग्यशिष्यार्थं दीक्षासमयः—

विषयाटवीदावदहनज्वालामालाकलितस्वान्तोऽनन्तजन्मजरामरणादिभयोद्विग्निः समन्ततः प्रज्वलिते सद्मनि सुप्तमिवादीप्तप्रदीप्तसंसारान्तः सरन्तमात्मनं रक्षितुमुपाया-न्तरमनवलोक्य प्रव्रज्यामात्रशरणदर्शी तीव्रवैराग्यप्रभाभासमानः प्रतिरोमोज्ज्वलिता-

---

(ख) शङ्कुच्छायालग्न—

बारह अङ्गुल लम्बी कीली की परछाई अगर रविवार को बीस अगुल, सोमवार को सोलह अगुल, मगलवार को पन्द्रह अगुल, बुधवार को चौदह अगुल, गुरुवार को तेरह अगुल, शुक्रवार को बारह अगुल, तथा शनिवार को भी बारह अंगुल हो उसे शङ्कुच्छाया लग्न कहते हैं। इस लग्न में दीक्षा आदि कार्य शुभ हैं।

(ग) तीव्र उत्कण्ठा वाले दीक्षार्थी का दीक्षासमय—

विषयवासना की विषय अटवी में व्याप्त दावानल की विकट ज्वालाओं से जिसका अन्त.-करण झुलस गया है, और जो अनन्त जन्म जरा मरण आदि के भय से उद्विग्न है, चारों ओर से मकान में आग लग जाने पर जिस का सर्वस्व भस्म हो गया है ऐसे पुरुष की भाति

(ख) शकुछायालग्न—

બાર આગળ લાંબી ખીલીનો પડછાયો રવિવારે વીશ આગળ, સોમવારે સોળ આગળ, મગળવારે પદર આગળ, બુધવારે ચૌદ આગળ, ગુરૂવારે તેર આગળ, શુક્રવારે બાર આગળ, તથા શનિવારે પણ બાર આગળ હોય તો તેને શકુછાયા-લગ્ન કહે છે તે લગ્નમા દીક્ષા આદિ કાર્ય શુભ છે

(ग) તીવ્ર ઉત્કઠાવાલા દીક્ષાર્થીના સમય—

વિષયવાસનાની વિષમ અટવી (વન)મા વ્યાપ્ત દાવાનલની વિકટ જ્વાલાઓથી જેનુ અતઃકરણ બળી ગયું છે, અને જે અનન્ત જન્મ, જરા, મરણ વગેરેના ભયથી ચિંતાતુર છે, ચારે બાજુથી મકાનમા આગ લાગવાથી જેનુ સર્વસ્વ ભસ્મ

(१३) अथ नूतनपात्रव्यापृतिः—

गोचर्यादिनिमित्तं नूतनपात्रव्यापृतिम्, मृगशिरःपुष्याश्विनीहस्तानुराधा चित्रारेवतीषु, सोमगुरुवासरयोश्च शुभदा।

(१४) आचार्यादिपदप्रदानसमयः—

आचार्यादिपदप्रदाने-श्रवणं, ज्येष्ठा, पुष्यम्, अभिजित्, हस्तः, अश्विनी, रोहिणी, उत्तरात्रयं, मृगशिरः, अनुराधा, रेवती, एतानि नक्षत्राणि शुभानि शोभनतिथिवारादयोऽपि द्रष्टव्याः।

अथ (४) द्रव्यानुयोगः—

द्रवति=गच्छति प्राप्नोति मुञ्चति वा तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यम्। अथवा-

---

(१३) नूतन पात्र का प्रयोग

गोचरी आदि के लिए नवीन पात्र का उपयोग मृगशिर, पुष्य अश्विनी, हस्त, अनुराधा, चित्रा और रेवती नक्षत्रों में, तथा सोमवार और गुरुवार के दिन करना शुभ है।

(१४) आचार्य आदि पदवीदान का समय

आचार्य आदि पदवी देने में श्रवण ज्येष्ठा पुष्य, अभिजित्, अश्विनी, रोहिणी, उत्तरात्रय, (उत्तराषाढा उत्तराभाद्रपदा उत्तराफाल्गुनी) मृगशिर, अनुराधा और रेवती, ये नक्षत्र शुभ हैं। इस प्रसङ्ग पर शुभ तिथि और शुभ वार आदि भी देखना चाहिए।

(४) द्रव्यानुयोग—

आगे की पर्याय प्राप्त करने वाला और पूर्व पर्यायों का त्याग करने वाला द्रव्य

---

(१३) નવા પાત્રનો ઉપયોગ

ગોચરી આદિ માટે નવા પાત્રનો ઉપયોગ મૃગશીર્ષ પુષ્ય, અશ્વિની, હસ્ત, અનુરાધા, ચિત્રા, અને રેવતી નક્ષત્રોમાં, તથા સોમવાર અને ગુરૂવારના દિવસે કરવો તે શુભ છે

(१४) આચાર્ય આદિ પદવીદાનનો સમય—

આચાર્ય આદિ પદવી આપવામાં શ્રવણ, જ્યેષ્ઠા, પુષ્ય, અભિજીત, હસ્ત. અશ્વિની રોહિણી, ઉત્તરાત્રય (ઉત્તરા-ષાઢ, ઉત્તરા-ભાદ્રપદ. ઉત્તરા-ફાલ્ગુની) મૃગશિર, અનુરાધા અને રેવતી, આ નક્ષત્રો શુભ છે આ પ્રસંગ ઉપર શુભ તિથિ અને શુભ વાર વગેરે પણ જોવું જોઇએ

(४) દ્રવ્યાનુયોગ—

આગળની પર્યાય પ્રાપ્ત કરનાર અને પ્રથમની પર્યાયનો ત્યાગ કરવાવાળાને

(१२) अथ नवदीक्षितस्य प्रथमगोचरीविचारः-

प्रथमगोचरीविषये तीक्ष्णोग्रमिश्रनक्षत्राणि शनिमङ्गलदिवसौ च वर्जयेत् ।

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा, मूलम्, एतानि चत्वारि तीक्ष्णनक्षत्राणि । भरणी, पूर्वात्रयं, मघा, एतानि पञ्चोग्रनक्षत्राणि । कृत्तिका, विशाखा, इमे द्वे मिश्रनक्षत्रे ।

रिक्ताऽमावास्याक्षयतिथयस्त्याज्याः । शनिमङ्गलवारयोगे रिक्ताऽपि प्रशस्ता विज्ञेया ।

(१२) नव दीक्षित की प्रथम गोचरी—

पहली वार गोचरी के विषय मे तीक्ष्ण उग्र और मिश्र नक्षत्र एव शनि तथा मङ्गल वार त्याज्य हैं ।

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा और मूल, ये चार नक्षत्र तीक्ष्ण हैं । भरणी, पूर्वात्रय- (पूर्वाषाढा पूर्वभाद्रपदा और पूर्वाफाल्गुनी) और मघा, ये पाँच उग्र नक्षत्र हैं । कृत्तिका और विशाखा, ये दो नक्षत्र मिश्र कहलाते हैं ।

रिक्ता तिथि, अमावास्या और क्षय तिथि त्याज्य है, हाँ यदि शनि और मंगल वार का योग हो तो रिक्ता तिथि भी प्रशस्त है ।

(१२) નવદીક્ષિતની પ્રથમ ગોચરી—

પહેલીવાર ગોચરીના વિષયમા તીક્ષ્ણ, ઉગ્ર અને મિશ્ર નક્ષત્ર તથા શનિ અને મ ગળવાર ત્યાજ્ય છે.

આર્દ્રા, અશ્લેષા. જ્યેષ્ઠા, અને મૂલ, આ ચાર નક્ષત્ર તીક્ષ્ણ છે, ભરણી, ત્રણ પૂર્વા (પૂર્વાષાઢા, પૂર્વાભદ્રાપદ, અને પૂર્વાફાલ્ગુની) અને મઘા એ પાચ નક્ષત્ર ઉગ્ર નક્ષત્ર છે. કૃત્તિકા અને વિશાખા, આ બે નક્ષત્ર મિશ્ર કહેવાય છે

રિક્તા તિથિ, અમાવાસ્યા અને ક્ષય તિથિ ત્યાજ્ય છે, પરન્તુ જો શનિ અ ને મ ગલવારનો યોગ હોય તો રિક્તા તિથિ પણ ઉત્તમ છે

त्रयः सामान्यगुणाः सन्ति। एवं गतिहेतुत्वं धर्मे, स्थितिहेतुत्वमधर्मे, अवकाशप्रदानहेतुत्वमाकाशे, वर्तनाहेतुत्वं काले, रूपादिमत्त्वं पुद्गले विशेषगुणाः सन्तीति द्रव्यलक्षणसमन्वयः।

कश्चित्तु 'सत् द्रव्यलक्षणम्' इति सूत्रयित्वा 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' इति सूत्रेण सल्लक्षणविवरणं कुर्वन् द्रव्यसामान्यलक्षणमुक्त्वा विशेषविज्ञानजननाय विशेषलक्षणमवोचत्-'गुणपर्यायवद्द्रव्यम्' इति। तदपि प्रकृत-

---

अस्तित्व (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कभी विनाश न हो) वस्तुत्व-द्रव्यत्व (जिस शक्ति के निमित्त से पर्याय सदैव बदलती रहे) और प्रमेयत्व-ज्ञेयत्व (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय हो) आदि सामान्य गुण हैं। इसीप्रकार धर्मास्तिकाय में गतिहेतुत्व (गतिकारणता) अधर्मास्तिकाय में स्थितिहेतुत्व (स्थितिकारणता) आकाश में अवकाशदानहेतुत्व (अवकाशदायिता) काल में वर्तनाहेतुत्व, (नवपुराण-कारणता) आदि, और पुद्गल में रूपादिमत्त्व विशेष गुण हैं। अतः इन सब में द्रव्य के लक्षण की संगति होजाती है।

किसी आचार्यने 'सत् द्रव्यलक्षणम्' ऐसा सूत्र रचकर 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्' अर्थात् जिस में उत्पाद विनाश और ध्रौव्य युगपत् पाये जायँ वह सत् है, इस सूत्र के द्वारा सत् की व्याख्या करते हुए सामान्य द्रव्य का स्वरूप बतला कर विशेष बोध

અસ્તિત્વ (જે શક્તિના નિમિત્તથી દ્રવ્યનો ક્યારેય પણ નાશ ન હોય.) વસ્તુત્વ દ્રવ્યત્વ (જે શક્તિના નિમિત્તથી પર્યાય હમેશા બદલતી રહે) અને પ્રમેયત્વ-જ્ઞેયત્વ (જે શક્તિના નિમિત્તથી દ્રવ્ય કોઈ ન કોઈ જ્ઞાનનો વિષય હોય) આદિ સામાન્ય ગુણ છે એ પ્રમાણે ધર્માસ્તિકાયમાં ગતિહેતુત્વ (ગતિકારણતા) અધર્માસ્તિકાયમાં સ્થિતિહેતુત્વ (સ્થિતિકારણતા) આકાશમાં અવકાશદાનહેતુત્વ (અવકાશદાયિત્વ) કાલમાં વર્તનાહેતુત્વ (નવપુરાણકારણતા) આદિ અને પુદ્ગલમાં રૂપાદિમત્ત્વ વિશેષ ગુણ છે તેથી એ સર્વમાં દ્રવ્યના લક્ષણની સંગતિ થઈ જાય છે

કોઈ આચાર્યે "સત્ દ્રવ્યલક્ષણમ્ એવું સૂત્ર રચીને 'ઉત્પાદ વ્યય ધ્રૌવ્યયુક્તં સત્' અર્થાત્ જેમાં ઉત્પાદ, વિનાશ અને ધ્રૌવ્ય એક સાથે જોવામાં આવે તે "સત્" છે આ સૂત્ર દ્વારા સત્‌ની વ્યાખ્યા કરતા થકા સામાન્ય દ્રવ્યનું સ્વરૂપ બતાવીને

द्रूयते = पाप्यंते मुच्यते वा तैस्तैः पर्यायैरिति द्रव्यम्। द्रव्यस्य – अनुयोगः द्रव्यानुयोगः।

द्रव्यानुयोगो हि द्रव्याणां यथावस्थितस्वरूपाववोधने समीचीनयुक्तिं प्रदर्शयति। तया दर्शनस्य नैर्मल्यम्। ततश्च सम्यक् चारित्रं संपद्यते। तथा चायमपि चरणकरणानुयोगं पोषयतीति वोध्यम्।

द्रव्यलक्षणम्—

अथ किं तावद् द्रव्यम्? उच्यते- "गुणाश्रयो द्रव्यम्"। यथा जीवे ज्ञानदर्शनचारित्रसुखोपयोगादयो विशेषगुणा, अस्तित्व-द्रव्यत्व-ज्ञेयत्वा

कहलाता है। अथवा जो पर्यायों के द्वारा प्राप्त हो, अथवा पर्यायों से मुक्त हो उसे द्रव्य कहते हैं। ऐसे द्रव्य के अनुयोग को द्रव्यानुयोग कहते हैं।

द्रव्यानुयोग द्रव्यों का यथार्थ स्वरूप समझाने के लिए समीचीन मार्ग प्रदर्शित करता है। उस से सम्यग्दर्शन निर्मल होता है, और सम्यग्दर्शन की निर्मलता से सम्यक् चारित्र की प्राप्ति होती है। इस प्रकार यह अनुयोग भी चरणकरणानुयोग का पोषक है।

द्रव्य का लक्षण—

द्रव्य किसे कहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—जो गुणों का आधार हो वह द्रव्य है, जैसे जीवन में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख और उपयोग आदि विशेष गुण हैं।

દ્રવ્ય કહે છે, અથવા જે પર્યાયો દ્વારા પ્રાપ્ત હોય અથવા પર્યાયોથી મુક્ત હોય તેને દ્રવ્ય કહે છે એવા દ્રવ્યના અનુયોગને દ્રવ્યાનુયોગ કહે છે

દ્રવ્યાનુયોગ દ્રવ્યોના યથાર્થ સ્વરૂપને સમજાવવા માટે બરાબર સાચો માર્ગ પ્રદર્શિત કરે છે, તેથી સમ્યગ્દર્શન નિર્મલ થાય છે, અને સમ્યગ્દર્શનની નિર્મલતાથી સમ્યક્ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થાય છે એ પ્રમાણે આ અનુયોગ પણ ચરણ કરણાનુયોગનો પોષક છે

દ્રવ્યનું લક્ષણ—

દ્રવ્ય કોને કહે છે? એ પ્રશ્નનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે—જે ગુણોનો આધાર હોય તે દ્રવ્ય છે, જે પ્રમાણે જીવમા જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર સુખ અને ઉપયોગ આદિ વિશેષ ગુણ છે.

सुखवीर्यादयः, पुद्गलस्य वर्णगन्धरसस्पर्शादयो गुणाः। 'मात्र'–शब्दोपादानं पर्यायेऽतिप्रसङ्गवारणाय।

द्रव्यस्वरूपविचारेण 'गुणसमुदायो द्रव्य'–मिति प्रतीयते, यथा मूलस्कन्धशाखाप्रशाखादीनां समुदायो वृक्षः, तथैवास्तित्व–परिणामित्व–वस्तुत्व – ज्ञेयत्व – प्रमेयत्व – प्रदेशवत्त्वादिसामान्यगुणानां चेतनत्व–गतिहेतुत्व–स्थितिहेतुत्वा – अवकाशदानहेतुत्व – वर्तनाहेतुत्व – वर्ण – गन्ध – रस – स्पर्श–

लक्षण है जैसे–जीव के गुण–ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य आदि हैं, तथा पुद्गल के गुण वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श आदि हैं। ऊपर जो 'मात्र' (सिर्फ) शब्द का प्रयोग किया गया है, वह पर्याय में अतिप्रसङ्ग निवारण करने के लिए है। अर्थात् गुण केवल द्रव्य में होते हैं, पर्याय में नहीं होते।

द्रव्य के स्वरूप पर विचार करने से प्रतीत होता है कि गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है। जैसे मूल, स्कन्ध शाखा और प्रशाखा आदि का समूह ही वृक्ष है, उसी प्रकार अस्तित्व, परिणामित्व, वस्तुत्व ज्ञेयत्व प्रमेयत्व, प्रदेशवत्त्व आदि सामान्य गुणों का, तथा चेतना, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व अवकाशदानहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व वर्ण–रस–गन्ध–स्पर्शवत्त्व आदि विशेष गुणों का समूह ही द्रव्य है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि–विभिन्न द्रव्यों के

લેવું તે ગુણનું લક્ષણ છે જેવી રીતે જીવના ગુણ–જ્ઞાન, દર્શન, સુખ અને વીર્ય આદિ છે તથા પુદ્ગલના ગુણ–વર્ણ, ગંધ રસ અને સ્પર્શ આદિ છે ઉપર જે 'માત્ર' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે તે પર્યાયમાં અતિપ્રસંગ નિવારણ કરવા માટે છે અર્થાત્ ગુણ કેવલ દ્રવ્યમાં હોય છે, પર્યાયમાં હોય નહિ.

દ્રવ્યના સ્વરૂપ પર વિચાર કરવાથી જણાય છે કે ગુણોનો સમુદાય જ દ્રવ્ય છે જે રીતે–મૂલ સ્કંધ, શાખા અને પ્રશાખા આદિનો સમૂહ તે વૃક્ષ છે એ પ્રમાણે અસ્તિત્વ, પરિણામિત્વ વસ્તુત્વ, જ્ઞેયત્વ, પ્રમેયત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ આદિ સામાન્ય ગુણોનો, તથા ચેતના ગતિહેતુત્વ, સ્થિતિહેતુત્વ, અવકાશદાનહેતુત્વ, વર્તનાહેતુત્વ, વર્ણ રસ, ગંધ, સ્પર્શવત્ત્વ આદિ વિશેષ ગુણોનો સમૂહ તે દ્રવ્ય છે અહિં એ યાદ

लक्षणे समाविष्टमेवेति गुरुतरलक्षणं नावश्यकमिति ज्ञेयम् ।

परमार्थतस्तु पर्याया न गुणतो भिन्नाः कार्यकारणयोरभेदात् । यथा कटककुण्डलादीनि कनकतो न भिन्नानि, घटशरावादीनि मृदो नातिरिक्तानि, तथा गुणजन्मनां पर्यायाणां न भेदो गुणेभ्य इति द्रव्यलक्षणे पर्यायशब्दप्रवेशो नावश्यक इत्यवसेयम् ।

गुणलक्षणम्—

द्रव्यस्याऽऽश्रयाश्रयिभावेन नित्यसहवर्तिनो धर्मा गुणाः, ते द्रव्यस्य शक्तिविशेषाः । द्रव्यमात्राश्रितं गुणस्य लक्षणम् । यथा जीवस्य ज्ञानदर्शन-

---

कराने के लिये विशेष लक्षण यह बतलाया है-'गुणपर्यायवद् द्रव्यम्' यह लक्षण भी प्रकृत लक्षण 'गुणाश्रयो द्रव्यम्' में समाविष्ट है, इस लिये उनका बडा लक्षण करने की आवश्यकता नहीं है ।

वास्तव में तो पर्याय, गुण से भिन्न नहीं है, क्योंकि कार्य और कारण में भेद नहीं होता । जैसे-कटक, कुण्डल आदि पर्याय सुवर्ण से भिन्न नहीं है, अत गुणों से उत्पन्न होने वाले गुणों से भिन्न नहीं हैं । ऐसी अवस्था में द्रव्य के लक्षण में पर्याय शब्द डालना आवश्यक नहीं है ।

गुण का लक्षण—

द्रव्य के आश्रय आश्रयी रूपसे, अथवा कथञ्चित् तादात्म्यरूपसे निग्य सहवर्ती धर्म, 'गुण' कहलाते हैं । 'गुण' द्रव्य की शक्तिविशेष है । सिर्फ द्रव्याश्रित होना गुण का

વિશેષ બોધ કરાવવા માટે વિશેષ લક્ષણ એ બતાવ્યુ છે કે -"गुणपर्यायवद् द्रव्यम्" આ લક્ષણ પણ પ્રકૃત (ચાલૂ) લક્ષણ (गुणाश्रयो द्रव्यम्) મા સમાવિષ્ટ છે તેથી વિશેષ લક્ષણ કરવાની આવશ્યકતા નથી

વાસ્તવમા તો પર્યાય, ગુણથી ભિન્ન નથી, કારણ કે કાર્ય અને કારણમાં ભેદ નથી, જેવી રીતે કડા અને કુડલ આદિ પર્યાય સુવર્ણથી ભિન્ન નથી ઘટ અને શકોર આદિ પર્યાય મૃત્તિકા-માટીથી ભિન્ન નથી, કારણ કે ગુણોથી ઉત્પન્ન થવા વાળા પર્યાય, ગુણોથી ભિન્ન નથી, એવી અવસ્થામા દ્રવ્યના લક્ષણમા પર્યાય શબ્દ નાખવો તે જરૂરી નથી.

ગુણના લક્ષણ—

દ્રવ્યના આશ્રય-આશ્રયી-રૂપથી અથવા કથચિત્ તાદાત્મ્યરૂપથી નિત્ય સહવર્તી ધર્મ ગુણ કહેવાય છે ગુણ એ દ્રવ્યની શક્તિવિશેષ છે માત્ર દ્રવ્યાશ્રિત

सुखवीर्यादयः, पुद्गलस्य वर्णगन्धरसस्पर्शादयो गुणाः । 'मात्र'-शब्दोपादानं पर्यायेऽतिप्रसङ्गवारणाय ।

द्रव्यस्वरूपविचारेण 'गुणसमुदायो द्रव्य'-मिति प्रतीयते, यथा मूलस्कन्धशाखाप्रशाखादीनां समुदायो वृक्षः, तथैवास्तित्व-परिणामित्व-वस्तुत्व - ज्ञेयत्व - प्रमेयत्व - प्रदेशवत्त्वादिसामान्यगुणानां चेतनत्व-गतिहेतुत्व-स्थितिहेतुत्वा - ऽवकाशदानहेतुत्व - वर्तनाहेतुत्व - वर्ण - गन्ध - रस - स्पर्श-

---

लक्षण है जैसे—जीव के गुण—ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य आदि हैं, तथा पुद्गल के गुण वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श आदि हैं। ऊपर जो 'मात्र' (सिर्फ) शब्द का प्रयोग किया गया है, वह पर्याय में अतिप्रसङ्ग निवारण करने के लिए है। अर्थात् गुण केवल द्रव्य में होते हैं, पर्याय में नहीं होते।

द्रव्य के स्वरूप पर विचार करने से प्रतीत होता है कि गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है। जैसे मूल स्कन्ध शाखा और प्रशाखा आदि का समूह ही वृक्ष है, उसी प्रकार अस्तित्व, परिणामित्व वस्तुत्व, ज्ञेयत्व प्रमेयत्व, प्रदेशवत्त्व आदि सामान्य गुणों का, तथा चेतना, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व अवकाशदानहेतुत्व वर्तनाहेतुत्व वर्ण—रस—गन्ध—स्पर्शत्व आदि विशेष गुणों का समूह ही द्रव्य है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि—विभिन्न द्रव्यों के

એવું તે ગુણનું લક્ષણ છે જેવી રીતે જીવના ગુણ-જ્ઞાન, દર્શન, સુખ અને વીર્ય આદિ છે તથા પુદ્ગલના ગુણ-વર્ણ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શ આદિ છે ઉપર જે 'માત્ર' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે તે પર્યાયમાં અતિપ્રસંગ નિવારણ કરવા માટે છે અર્થાત્ ગુણ કેવલ દ્રવ્યમાં હોય છે પર્યાયમાં હોય નહિ.

દ્રવ્યના સ્વરૂપ પર વિચાર કરવાથી જણાય છે કે ગુણોનો સમુદાય જ દ્રવ્ય છે જે રીતે-મૂલ સ્કંધ, શાખા અને પ્રશાખા આદિનો સમૂહ તે વૃક્ષ છે એ પ્રમાણે અસ્તિત્વ, પરિણામિત્વ વસ્તુત્વ જ્ઞેયત્વ, પ્રમેયત્વ પ્રદેશવત્ત્વ આદિ સામાન્ય ગુણોનો, તથા ચેતના ગતિહેતુત્વ, સ્થિતિહેતુત્વ, અવગાહનાદાનહેતુત્વ, વર્તનાહેતુત્વ, વર્ણ, રસ, ગંધ, સ્પર્શત્વ આદિ વિશેષ ગુણોનો સમૂહ તે દ્રવ્ય છે અહિં એ યાદ

वत्त्वादिविशेषगुणानां च समुदायो द्रव्यम्। एवं 'द्रव्यपर्यायस्वरूपमपी'-त्यनुपदमेव वक्ष्यते।

पर्यायलक्षणम्—

परियन्ति=उत्पादविनाशौ प्राप्नुवन्ति न सर्वदा तिष्ठन्तीति पर्यायाः। यद्वा-परि=सर्वथा अयन्ते=गच्छन्ति द्रव्यगुणौ समाश्रयन्तीति पर्यायाः।

द्रव्यस्योत्पादविनाशशालिनो धर्माः पर्यायाः। पर्याया हि द्रव्यं गुणं चाश्रित्य वर्त्तन्ते। कालभेदादेकमेव ज्ञान जीवस्यान्यदन्यद्रूपं दधत् पर्यायशब्द-वाच्यं भवति, यथा कश्चिदष्टवर्षीयो विनयी प्रमादविकथावर्जितो बालमुनि-र्गुरुचरणसरोज सेवमानः पूर्वमावश्यकमात्रमधीत्य समितिगुप्तिज्ञानं संपादयति,

---

विशेष गुणों का समूह नहीं बन सकता है। ऐसे द्रव्य और पर्याय के विषय में भी समझना चाहिए, वह अभी आगे बतायेंगे।

पर्याय का लक्षण—

जिनके निरन्तर उत्पाद और व्यय होता है, जो सदैव स्थिर नहीं रहते उन्हे पर्याय कहते हैं। अथवा द्रव्य और गुण का आश्रय लेने वाले पर्याय कहलाते हैं।

द्रव्य के उत्पाद और विनाश-शील धर्म पर्याय कहलाते हैं। पर्याय, द्रव्य में भी रहते हैं और गुण में भी रहते हैं। जीवका एक ही ज्ञानगुण काल के भेदसे भिन्न-भिन्न रूप धारण करता हुआ पर्याय कहलाता है। जैसे एक आठ वर्ष का विनयी प्रमाद और विकथा से दूर रहने वाला बाल मुनि अपने गुरु के चरण कमलों की सेवा करता हुआ

રાખવું જોઇએ કે વિભિન્ન દ્રવ્યોના વિશેષ ગુણોનો સમૂહ બની શકતો નથી એવી રીતે દ્રવ્ય અને પર્યાયના વિષયમા પણ સમજવુ જોઇએ વિશેષ આગળ બતાવીશું

પર્યાયનું લક્ષણ—

જેની અદર હમેશા ઉત્પાદ અને વ્યય થયા કરે છે અને જે હમેશા-સદાકાળ સ્થિર રહેતુ નથી તેને પર્યાય કહે છે, અથવા દ્રવ્ય અને ગુણનો આશ્રય લેનાર તેને પર્યાય કહેવામા આવે છે

દ્રવ્યનો ઉત્પાદ અને વિનાશ-શીલ ધર્મ તે પર્યાય કહેવાય છે પર્યાય, દ્રવ્યમા પણ રહે છે અને ગુણમા પણ રહે છે જીવનો એકજ જ્ઞાનગુણ કાલના ભેદથી ભિન્ન ભિન્ન રૂપ ધારણ કરીને પર્યાય કહેવાય છે જેવી રીતે કે એક આઠ વર્ષના વિનયવંત, પ્રમાદ અને વિકથાથી દૂર રહેવાવાળા બાલમુનિ પોતાના ગુરૂના ચરણ

क्रमेण द्वादशाङ्गतत्त्वं विज्ञाय ज्ञानधारां प्रवर्द्धयति। तत्र तस्य चारित्रसंयमिनो ज्ञानं प्रतिक्षणं विलक्षणतामापद्यमानमपूर्वमपूर्वं जायमानं ज्ञानं पर्यायशब्दवाच्यतां भजति। एवं दर्शनचारित्रादीनामपि पर्याया ज्ञातव्याः। जीवस्य मानुषत्वबाल्या द्योऽपि पर्यायाः। पुद्गलस्य तु एकगुणकालत्वादयो पर्याया ज्ञेयाः। एवं च द्रव्यगुणाश्रितत्वं पर्यायस्य लक्षणमिति निर्णीयते। तथा चोक्तमुत्तराध्ययने-(अ २८)

पहले-पहल आवश्यक मात्र का अध्ययन करता है, फिर समिति और गुप्ति का ज्ञान सम्पादन करता है। तदनन्तर क्रम से द्वादशाङ्ग का तत्त्व जान कर ज्ञान की धारा में वृद्धि करता है, उस चारित्र मुनि का ज्ञान क्षण-क्षण में विलक्षण होकर नवीन-नवीन रूपों में उत्पन्न होता हुआ 'पर्याय' शब्द द्वारा कहा जाता है। इसी प्रकार दर्शन और चारित्र आदि गुणों के पर्याय भी समझ लेना चाहिए। मनुष्यता बालकपन आदि जीव के पर्याय हैं और एक-गुण-कालपन आदि पुद्गल के वर्ण-गुण के पर्याय हैं। इस प्रकार यह निश्चित होता है कि पर्याय द्रव्य और गुण दोनों में ही रहता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

"गुणों का जो आश्रय हो उसे द्रव्य कहते हैं, गुण एक मात्र द्रव्य में ही रहते हैं। पर्यायों का लक्षण उभयाश्रित होना है, अर्थात् पर्याय, द्रव्य और गुण दोनों में ही पाये जाते हैं"।

ક્રમોની સેવા કરતા થકા પ્રથમ આવશ્યક માત્રનું અધ્યયન કરે છે પછી સમિતિ અને ગુપ્તિનું જ્ઞાન સંપાદન કરે છે ત્યાર પછી ક્રમથી દ્વાદશાંગનું તત્ત્વ જાણી જ્ઞાનની ધારામાં વૃદ્ધિ કરે છે; તે ચારિત્રમુનિનું જ્ઞાન ક્ષણ-ક્ષણમાં વિલક્ષણ-તરેહવાર બની નવીન રૂપોમા ઉત્પન્ન થાય છે તેને 'પર્યાય' શબ્દથી ઓળખવામાં આવે છે એ પ્રમાણે દર્શન અને ચારિત્ર આદિ ગુણોના પર્યાય પણ સમજી લેવા જોઈએ. મનુષ્યતા, બાલકપણું આદિ જીવના પર્યાય છે, અને એકગુણકાળાપણું આદિ પુદ્ગલના વર્ણગુણનો પર્યાય છે આ પ્રમાણે આ નિશ્ચિત થાય છે કે-પર્યાય, દ્રવ્ય અને ગુણ એ બન્નેમાં રહે છે ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રમાં કહ્યું છે—

'ગુણોનો જે આશ્રય હોય, તેને દ્રવ્ય કહે છે; ગુણ એક માત્ર દ્રવ્યમાં જ રહે છે, અને પર્યાયોનું લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોય છે અર્થાત્ પર્યાય, દ્રવ્ય અને ગુણ બન્નેમાં જોવામાં આવે છે"

"गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु, दुहओ अस्सिया भवे ॥ ६ ॥" इति ।

छाया—

"गुणानामाश्रयो द्रव्यम् , एकद्रव्याश्रिता गुणा ः
लक्षणं पर्यवाणां तु, उभयोराश्रिता भवेयुः" ॥ ६ ॥ इति ।

द्रव्यलक्षणे पर्यायानुक्त्या कार्यकारणयोरभेदविवक्षया पर्यायाणां गुणेषु समावेश इति भगवदभिप्रायो गम्यते । "एकद्रव्याश्रिता गुणाः" इति, एकं=केवलं द्रव्यमाश्रित्य गुणा वर्त्तन्त इत्यर्थः । अनेन गुणलक्षणमुक्तम् । 'पर्यवाणां लक्षण तु उभयोराश्रिता भवेयुः' इत्यन्वयः । पर्यवः, पर्ययः, पर्यायः, इति समानार्थकाः । उभयोः=द्रव्यगुणयोराश्रिताः पर्यायाः, इति पर्यायलक्षणं बोध्यमित्यर्थः । पर्यायास्तु द्रव्यं गुणं चोभयमाश्रित्य वर्त्तन्त इति भावः ।

द्रव्य के लक्षण में 'पर्याय' पद का समावेश न करने के कारण भगवान् का अभिप्राय यह है कि–कार्य कारण के अभेदसे गुण में ही पर्याय का समावेश हो जाता है । 'एगदव्वस्सिया गुणा' इस वाक्य का अर्थ यह है कि–गुण केवल द्रव्य में ही होते हैं । इस कथनद्वारा गुण का लक्षण भी कह दिया गया है ।

पर्याय का लक्षण उभयाश्रित होना है, दोनो में अर्थात द्रव्य में भी और गुण में भी पर्याय रहते हैं । पर्यव, पर्यय और पर्याय ये सभी समानार्थक हैं ।

દ્રવ્યના લક્ષણમા 'પર્યાય' પદનો સમાવેશ નહિ કરવાથી ભગવાનનો અભિપ્રાય એ છે કે–કાર્ય કારણના અભેદથી ગુણમા જ પર્યાયનો સમાવેશ થઈ જાય છે. 'एगदव्वस्सिया गुणा' આ વાકયનો અર્થ એ છે કે —ગુણ કેવલ દ્રવ્યમા જ હોય છે. આ કથનદ્વારા ગુણનુ લક્ષણ પણ કહી આપ્યુ છે

પર્યાયનુ લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોય છે, બન્નેમા અર્થાત્ દ્રવ્યમા અને ગુણમાં પણ પર્યાય રહે છે પર્યવ, પર્યય અને પર્યાય શબ્દ સમાન અર્થવાળા છે.

द्रव्यविभागः—

द्रव्यं षड्विधम्-धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवभेदात्। उक्तञ्च श्रीभगवतीसूत्रे—

"कइ णं भंते! दव्वा पण्णत्ता?, गोयमा! छ दव्वा पण्णत्ता, तं जहा-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्धासमये" ॥

उत्तराध्ययनसूत्रेऽपि-(अ २८)

"धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो।
एस लोगोत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ ७ ॥

द्रव्य के भेद—

द्रव्य छह प्रकार का है—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल (५) पुद्गल और (६) जीव। श्री भगवतीसूत्र में कहा है –

"भगवान्! द्रव्य कितने कहे गये हैं? गौतम! छह द्रव्य कहे गये हैं, वे इस प्रकार-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और अद्धा-समय"।

उत्तराध्ययनसूत्र में भी कहा है—

"धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, और जीव को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जिन भगवान् ने लोकसंज्ञा दी है ॥ ७ ॥

દ્રવ્યના ભેદ—

દ્રવ્યના છ પ્રકાર છે-(૧) ધર્મ (૨) અધર્મ (૩) આકાશ (૪) કાલ (૫) પુદ્ગલ અને (૬) જીવ. શ્રી ભગવતી સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે-

"ભગવાન! દ્રવ્ય કેટલા કહ્યાં છે? ગૌતમ! છ દ્રવ્ય કહેલા છે તે આ પ્રમાણે-ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય આકાશાસ્તિકાય પુદ્ગલાસ્તિકાય, જીવાસ્તિકાય અને અદ્ધા-સમય,'

ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે-

"ધર્મ અધર્મ, આકાશ કાલ, પુદ્ગલ અને જીવને સર્વજ્ઞ સર્વદર્શી જિન ભગવાને લોકસંજ્ઞા આપી છે" ॥ ૭ ॥

धम्मो अहम्मो आगास, दव्वं इक्किक्कमाहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो ॥ ८ ॥"

अत्र कालमात्रं विहाय धर्मादयोऽस्तिकाया उच्यन्ते । 'अस्ती' ति तिङन्त-प्रतिरूपकमव्यय प्रदेशवाचकम् । प्रदेशः स्वस्थानादनपायि निर्विभागं खण्डम् । इदं निर्विभागं खण्डं यदा पुद्गलस्य गलनस्वभावात्तदीयस्कन्धदेशाभ्यामवच्युत्य पृथग्भूत्वा वर्त्तते तदा परमाणुनाम्ना व्यवह्रियते । यावदपृथग्भूत्वा वर्त्तते तावत्तदेव निर्विभागं खण्ड प्रदेश इत्युच्यते । अनेनैवाशयेन पुद्गलास्तिकायस्य चत्वारो भेदा भगवता कथिताः-स्कन्धः, देशः, प्रदेशः, परमाणुश्चेति । कायः=

धर्म, अधर्म और आकाश, ये तीन द्रव्य एक एक है, काल, पुद्गल, जीव, अनन्त अनन्त द्रव्य हैं" ॥ ८ ॥

काल को छोड कर शेष पांच द्रव्य अस्तिकाय कहलाते है । 'अस्ति' यह तिङन्तरूप प्रतीत होने वाला एक अव्यय है और प्रदेश का वाचक है । जो अपने स्थान से च्युत न होने वाला, अर्थात् जो द्रव्य के साथ ही जुडा हुआ निर्विभाग-जिस का फिर विभाग न हो सके वह खण्ड, प्रदेश कहलाता है । पुद्गल गलनस्वभाव वाला है अत एव जब यह निर्विभाग खण्ड पुद्गल के स्कन्ध या देश से बिछुड कर अलग हो जाता है तब वही खण्ड परमाणु कहलाता है । जब वही परमाणु पुद्गल के स्कन्ध या देश में फिर मिल जाता है तब

ધર્મ અધર્મ અને આકાશ આ ત્રણ દ્રવ્ય એક-એક છે, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવ અનન્ત-અનન્ત દ્રવ્ય છે " ॥ ૮ ॥

કાલ સિવાયના બાકીના પાચ દ્રવ્ય અસ્તિકાય કહેવાય છે 'અસ્તિ' એ તિઙન્ત રૂપ જણાતુ એક અવ્યય છે, અને પ્રદેશનુ વાચક છે જે પોતાના સ્થાનથી ચ્યુત નહિ થવા વાળા, અર્થાત્ દ્રવ્યની સાથે જ જોડાઈ રહેલા નિર્વિભાગ-જેનો ફરી ભાગ ન થઈ શકે તે ખડ, પ્રદેશ કહેવાય છે પુદ્ગલ ગલનસ્વભાવ વાળા છે, તે કારણે જ્યારે તે નિર્વિભાગ ખડ પુદ્ગલના સ્કધ અથવા દેશથી છુટા થઈ જાય છે, ત્યારે તે ખંડ પરમાણુ કહેવાય છે જ્યારે તે પરમાણુ પુદ્ગલના સ્કધ અથવા દેશમાં ફરીને મળી જાય છે ત્યારે તે પરમાણુના બદલે ફરી પ્રદેશ કહેવાય છે.

समूहः। अस्ति=प्रदेशानां कायः=समूहो यत्र यस्य वा स अस्तिकायः, प्रदेशसमूहवान्, धर्मश्चासावस्तिकायश्चेति धर्मास्तिकायः। एवं च धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः, जीवास्तिकायः, इति नामानि सन्ति तेषाम्। कालस्तु प्रदेशाभावादस्तिकायो न भवतीत्यतः कालः कालास्तिकाय शब्देन न व्यवह्रियते।

धर्मास्तिकायलक्षणम्—

स्वभावतो गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गतिं प्रति सहकारि कारणं धर्मास्तिकायः। जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतो गच्छन्ति, तत्रोपादानकारणत्वस्यास्ते

वह परमाणु के बदले फिर प्रदेश कहलाने लगता है, इसी अभिप्राय से भगवान् ने पुद्गलास्तिकाय के चार भेद बतलाये हैं (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) परमाणु।

काय का अर्थ है समूह। जिसमें या जिसके प्रदेशों का समूह है वह अस्तिकाय कहलाता है। अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशों का समूहवाला। धर्मरूप अस्तिकाय धर्मास्तिकाय समझना चाहिए। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय, ये अस्तिकायों के नाम हैं। कालद्रव्य प्रदेशों का समूहरूप न होने के कारण अस्तिकाय नहीं है अतः काल 'कालास्तिकाय' नहीं कहलाता है।

धर्मास्तिकायका लक्षण—

स्वभाव से या प्रयोग से गतिक्रियामें परिणत हुए जीव और पुद्गलों की गति में जो सहकारी कारण हो उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं। जीवों और पुद्गलों का गमन करना स्वभाव ही है।

આ અભિપ્રાયે ભગવાને પુદ્ગલાસ્તિકાયના ચાર ભેદ બતાવ્યા છે (૧) સ્કંધ (૨) દેશ, (૩) પ્રદેશ અને (૪) પરમાણુ.

કાયનો અર્થ છે-સમૂહ, જેમાં અથવા જેનાં પ્રદેશોના સમૂહ હોય તે અસ્તિકાય કહેવાય છે, અસ્તિકાય અર્થાત્ પ્રદેશોના સમૂહ વાળા ધર્મરૂપ અસ્તિકાય ધર્માસ્તિકાય સમજવો જોઇએ. એજ પ્રમાણે અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, પુદ્ગલાસ્તિકાય અને જીવાસ્તિકાય એ અસ્તિકાયોનાં નામ છે.

કાલદ્રવ્ય-પ્રદેશોના સમૂહરૂપ નહિ હોવાથી અસ્તિકાય નથી તેથી કાલ એ 'કાલાસ્તિકાય' કહેવાય નહિ.

ધર્માસ્તિકાયનું લક્ષણ—

સ્વભાવથી અથવા પ્રયોગથી ગતિક્રિયામાં પરિણત થયેલા જીવો અને પુદ્ગલોની ગતિમાં જે સહકારી કારણ હોય તેને ધર્માસ્તિકાય કહે છે જીવો અને

गतिं प्रति, पुनस्तस्यामेव गति-क्रियायां धर्मास्तिकायः सहायरूपं निमित्तकारणं भवति ।

(१) यथा सरित्समुद्राद्यवगाहनशीलानां मत्स्यानां स्वत एव जिगमिषा गतिश्च जायते, तत्र तेषां गमनं प्रति सहायरूपं निमित्तकारणं वारि । स्वयं तिष्ठतां तु मत्स्यानां न तत् प्रेरकं गमनाय ।

(२) यथा वा मृत्परिणामभूतस्य घटस्य दण्डो निमित्तकारणम् ।

(३) यथा वा स्वत एवावगाहमानस्य द्रव्यस्यावगाहनं प्रति गमनम् , न पुनरवगाहमानं द्रव्यं बलादवगाहयति तत् ।

इस गमनक्रिया में उपादान कारण वह स्वयं ही होते है, धर्मास्तिकाय सहायकमात्र होने से निमित्त कारण है ।

(१) जैसे—नदी अथवा समुद्रमें अवगाहन करनेवाले मच्छो मे गमन करने की इच्छा स्वय ही उत्पन्न होती है और स्वय ही वे गति करते हैं, जल उन की गति में सहायक रूप निमित्त कारण होता है । हाँ, मच्छ अगर ठहरे तो जल उन्हें गमन करने के लिये प्रेरित नहीं करता ।

(२) अथवा जैसे—मृत्तिका से बनने वाले घडे मे डडा निमित्त कारण होता है ।

(३) अथवा जैसे—स्वय ही अवगाहन करने वाले द्रव्य की अवगाहना में आकाश निमित्त कारण होता है ।

પુદ્ગલોનો ગમન કરવુ તે સ્વભાવ જ છે, એ ગમન-ક્રિયામા ઉપાદાન કારણ તે પોતે જ હોય છે, ધર્માસ્તિકાય સહાયકમાત્ર હોવાથી તે નિમિત્ત કારણ છે

(૧) જેવી રીતે નદી અથવા સમુદ્રમા અવગાહન કરવાવાળા મચ્છોમા ગમન કરવાની પોતાની જ ઈચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે, અને પોતે જ તે ગતિ કરે છે, પરન્તુ જલ તેની ગતિમા સહાયરૂપ નિમિત્ત કારણ થાય છે પરન્તુ મચ્છ જો સ્થિર રહેવાની ઈચ્છા કરે તો જલ તેને ગમન કરવા માટે પ્રેરણ કરતુ નથી

(૨) અથવા જેવી રીતે-માટીથી તૈયાર થતા ઘડામાં ડંડા અને ચાક નિમિત્ત કારણ હોય છે.

(૩) અથવા જેવી રીતે-પોતે જ અવગાહન કરનારા દ્રવ્યના અવગાહનમા આકાશ નિમિત્ત કારણ હોય છે

(४) यथा वा-जलवृष्टौ सत्यां स्वयमेव कृषिकर्मारम्भं कुर्वतां कृषीवलानां कृषिकर्मारम्भे प्रति वृष्टिः सहकारि कारणं भवति ।

(५) अपरोऽपि शास्त्रीयो दृष्टान्तो दृष्टिपथमवतरति, यथा-'सिद्धस्वरूपोऽहम्, अनन्तसुखभाजनोऽहम्' इत्यादिभावनया व्यवहारनयेन शुद्धसिद्धस्वरूपध्यानकर्तॄणां, निश्चयनयेन निर्विकल्पध्यानपरिणामिनां स्वयं तदुपादानकारणस्वरूपाणां भव्यानां स्वयमेव जायमानां सिद्धगतिं प्रति प्रेरणारहितो निष्क्रियो मूर्तिरहितोऽपि सिद्धभगवान् सहायकः सन् सहकारि कारणं भवति, तद्वदमूर्तो निष्क्रियः प्रेरणारहितश्च धर्मास्तिकायो जीवानां पुद्गलानां च गतिरूपे परिणामे सहायकः सन्निमित्तकारणं भवति ।

---

(४) अथवा जैसे—जल की वर्षा होने पर स्वयं ही कृषिकार्य आरम्भ करने वाले किसानों के कृषिकार्य के आरम्भमें वृष्टि सहकारी कारण होती है ।

(५) एक शास्त्रीय दृष्टान्त और भी दृष्टिगोचर होता है—मैं सिद्धस्वरूप हूँ, मैं अनन्त सुख का भाजन हूँ । इस प्रकार की भावनापूर्वक व्यवहार नय से शुद्ध सिद्ध परमात्मा का ध्यान करने वालों को, और निश्चय नय से निर्विकल्प ध्यान में परिणत होने वालों को जो सिद्धगति की प्राप्ति होती है उस में उपादान कारण स्वयं ध्यान करने वाला भव्यात्मा है, और प्रेरणारहित निष्क्रिय तथा अमूर्तिक होते हुए भी सिद्ध भगवान् उसमें सहायक होने से निमित्त कारण हो जाते हैं । इसी प्रकार अमूर्तिक निष्क्रिय और प्रेरणारहित धर्मास्तिकाय भी जीव और पुद्गलों के गतिरूप परिणाम में सहायक होता हुआ निमित्त कारण होता है ।

---

(४) अथवा એવી રીતે પાણી વરસવાથી ખેડુત પોતે જ ખેતીના કામનો આરંભ કરે છે ખેતીનો આરંભ કરવાવાળા ખેડુતોના ખેતી કાર્યના આરમ્ભમાં વૃષ્ટિ (વરસાદ) સહકારી કારણ હોય છે

(૫) એક શાસ્ત્રીય દૃષ્ટાંત બીજું પણ દૃષ્ટિગોચર થાય છે —

"હું સિદ્ધ સ્વરૂપ છું હું અનન્ત સુખનું ભાજન-પાત્ર છું આ પ્રકારની ભાવનાપૂર્વક વ્યવહાર નયથી શુદ્ધ સિદ્ધ ભગવાન-પરમાત્માનું ધ્યાન કરવાવાળા અને નિશ્ચયનયથી નિર્વિકલ્પ ધ્યાનમાં પરિણત થવા વાળાને જે સિદ્ધ-ગતિ પ્રાપ્ત થાય છે તેમાં ઉપાદાન કારણ ધ્યાન કરવાવાળા પોતે ભવ્યાત્મા છે અને પ્રેરણારહિત નિષ્ક્રિય તથા અમૂર્તિક હોવા છતાં પણ સિદ્ધ ભગવાન તેમા સહાયક હોવાથી નિમિત્ત કારણ થઈ જાય છે

એ પ્રમાણે અમૂર્તિક નિષ્ક્રિય અને પ્રેરણારહિત ધર્માસ્તિકાય પણ જીવ અને પુદ્ગલોના ગતિરૂપ પરિણામમાં સહાયક હોવાથી નિમિત્ત કારણ છે

ननु धर्मास्तिकायस्य दण्डादिवन्निमित्तकारणता नोपपद्यते, सव्यापारं हि कारणं भवति, निर्व्यापारस्य कारणत्वे युक्त्यभावादिति चेन्न,

धर्मास्तिकायस्य हि स्वाभाविकव्यापारसत्त्वात कारणत्व मूपपादम् । उक्त च धर्मास्तिकायलक्षणं भगवता—

"गइलक्खणो उ धम्मो" इति,

'गतिलक्षणस्तु धर्मः' इति छाया। (उत्तराध्ययनसूत्रे २८ अ.) गतिकार्यानुमेयो धर्मास्तिकाय इति भावः।

शङ्का—धर्मास्तिकाय डंडा आदि के समान निमित्त कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह व्यापार नहीं करता, कार्य की उत्पत्ति मे व्यापार करने वाला ही कारण होता है। कार्य की उत्पत्ति मे व्यापार न करने पर भी अगर किसी को कारण मान लिया जाय तो चाहे जो वस्तु चाहे जिस कार्य में कारण हो जायगी। ऐसी दशा में नियत कार्य—कारण भाव का अभाव हो जायगा।

समाधान—यह शङ्का ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ हेतु असिद्ध है। गतिरूप कार्य में धर्मास्तिकाय व्यापाररहित नहीं है, किन्तु धर्मास्तिकायका स्वाभाविक व्यापार विद्यमान होने के कारण उसे कारण मानना युक्तिसङ्गत है। भगवान् ने धर्मास्तिकायका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

"गइलक्खणो उ धम्मो" धर्मास्तिकाय गति लक्षण वाला है। (उत्तराध्ययनसूत्र अ० २८) अर्थात् गतिरूप कार्य से धर्मास्तिकायका अनुमान होता है।

शंका-धर्मास्तिकाय दंड आदि प्रमाणे निमित्त कारण थई शकतु नथी, केमके ते व्यापार करतु नथी, कार्यनी उत्पत्तिमा व्यापार करनार ज कारण होय छे कार्यनी उत्पत्तिमा व्यापार नहि करवा छतां य जो कोईने कारण मानवामा आवशे तो गमे ते वस्तु गमे ते कार्यमा कारण थई जशे. एवी दशामा नियत कार्य कारण भावनो अभाव थई जशे

समाधान—आ शंका ठीक नथी, कारण के अहि हेतु असिद्ध छे गतिरूप कार्यमा धर्मास्तिकाय व्यापाररहित नथी, धर्मास्तिकायनो स्वाभाविक व्यापार विद्यमान होवाथी तेने कारण मानवु ते युक्तिसंगत छे भगवाने धर्मास्तिकायनु लक्षण आ प्रमाणे बताव्यु छे—

"गइलक्खणो उ धम्मो" धर्मास्तिकाय गतिलक्षणवाळु छे (उत्तराध्ययन सूत्र अ० २८) अर्थात् गतिरूप कार्यथी धर्मास्तिकायनु अनुमान थाय छे.

मस्य-(१) अरूपित्वम्, (२) अचेतनत्वम्, (३) अक्रियत्वम्, (४) गतिसहायकत्वं चेति गुणाः। (१) स्कन्धः, (२) देशः, (३) प्रदेशः, (४) अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः। अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा-द्रव्यत एको धर्मास्तिकायः, क्षेत्रतो लोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः भावतो रूपरहितः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जित इति। गुणतश्चलनगुणः।

अधर्मास्तिकायस्वरूपम्—

स्वभावत स्थितिपरिणतानां जीवपुद्गलानां स्थितिं प्रति सहकारि कारणत्वम धर्मास्तिकायस्य लक्षणम्।

---

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) गतिसहायकत्व ये धर्मास्तिकाय के गुण है। (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) अगुरुलघुत्व ये उसके पर्याय हैं। धर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र काल भाव और गुण इस तरह पांच भेदों से जाना जाता है। जैसे-द्रव्य से धर्मास्तिकाय एक है, क्षेत्रसे लोकप्रमाण है, कालसे आदि-अन्तरहित है, भावसे रूपादिरहित है-रूप रस गन्ध स्पर्श उस में नहीं है, और गुण से चलन-गुण वाला है।

अधर्मास्तिकायका स्वरूप—

स्वभाव से स्थितिरूप परिणत हुए जीव और पुद्गलोंकी स्थिति में सहकारी होना अधर्मास्तिकायका लक्षण है।

---

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) गतिसहायकत्व. એ સર્વ ધર્માસ્તિકાયના ગુણો છે (૧) સ્કંધ (૨) દેશ (૩) પ્રદેશ અને (૪) અગુરૂલઘુત્વ, એ તેના પર્યાય છે ધર્માસ્તિકાય-દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર કાલ, ભાવ અને ગુણ, એ પાંચ ભેદોથી જાણી શકાય છે જેવી રીતે-દ્રવ્યથી ધર્માસ્તિકાય એક છે ક્ષેત્રથી લોકપ્રમાણ છે કાલથી આદિ અન્ત રહિત છે ભાવથી રૂપાદિરહિત છે—રૂપ-રસ-ગંધ-સ્પર્શ તેમાં નથી, અને ગુણથી ચલન-ગુણવાળા છે

અધર્માસ્તિકાયનું સ્વરૂપ—

સ્વભાવથી સ્થિતિરૂપ પરિણત થયેલા જીવો અને પુદ્ગલોની સ્થિતિમાં સહકારી થવું તે અધર્માસ્તિકાયનું લક્ષણ છે.

जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतः स्वयं तिष्ठन्ति, तत्रोपादानकारणस्वरूपास्ते स्थितिं प्रति, पुनस्तस्यामेव स्थितिक्रियायामधर्मास्तिकायः सहायरूपं निमित्तकारणं भवति।

(१) यथा-स्वय तिष्ठता पथिकानां स्थितौ छाया सहकारि कारणं भवति। अतिष्ठतस्तु स्थातुं न पुनः सा प्रेरयति।

(२) यथा वा स्वय तिष्ठतो देवदत्तस्य स्थितिं प्रति पृथिवी सहकारि कारणं भवति। अतिष्ठन्तं तु देवदत्त न पृथिवी स्थापयति।

(३) यथा-समितिगुप्तिधारिणो रत्नत्रयाराधिनः समरसकन्दा समाहितमतयो महात्मानो निश्चयनयेन निजात्मस्वरूप चिन्तयन्तः क्षपकश्रेणिं समारुह्य समुत्पन्न-

---

जीव और पुद्गल जब स्वभाव से ही स्थित होते हैं, अपनी स्थिति मे उपादान कारण तो स्वय वही है, पर अधर्मास्तिकाय उस में सहायक होता है, अत वह निमित्त कारण है।

(१) जैसे—स्वय ठरने वाले पथिकों की स्थिति मे छाया सहकारी कारण होती है। अगर कोई न ठहरे तो वह ठहरने की प्रेरणा नहीं करती।

(२) अथवा जैसे—स्वय ठहरने वाले देवदत्त की स्थिति में पृथिवी सहकारी कारण है। मगर देवदत्त को न ठहरना हो तो पृथ्वी जबर्दस्ती नहीं ठहराती।

(३) अथवा जैसे—समिति गुप्तिके धारक, रत्नत्रय की आराधना करने वाले, समभाव के रस मे निमग्न समाधियुक्त मति वाले महात्मा निश्चय नय से आत्मस्वरूपका चिन्तन करते

જીવ અને પુદ્ગલ જ્યારે સ્વભાવથી જ સ્થિત થાય છે તો પોતાની સ્થિતિમા ઉપાદાન કારણ તો પોતે જ છે, પરન્તુ અધર્માસ્તિકાય તેમા સહાયક થાય છે, તેથી તે નિમિત્ત કારણ છે

(૧) જેવી રીતે—પોતે ઉભા રહેવા વાળા મુસાફરોની સ્થિતિમા છાયા સહકારી કારણ હોય છે અગર કોઇ ઉભા ન રહે તો તે ઉભા રહેવાની પ્રેરણા નથી કરતી

(૨) અથવા—જેવી રીતે પોતે જ ઉભા ન રહેવા વાળા દેવદત્તની સ્થિતિમા પૃથ્વી સહકારી કારણ છે, પરન્તુ જો દેવદત્તને ઉભા ન રહેવુ હોય તો પૃથ્વી દેવદત્તને બળજબરીથી ઉભો રાખી શકતી નથી

(૩) અથવા—જેવી રીતે સમિતિ—ગુપ્તિના ધારક, રત્નત્રયની આરાધના કરવા-વાળા, સમભાવના રસમા નિમગ્ન, સમાધિયુક્ત મતિવાળા મહાત્મા નિશ્ચયનયથી

केवलज्ञान-केवलदर्शनभृतः सन्तः सकलकर्मक्षयं कृत्वा, शरीरमौदारिकमिह परित्यज्य, सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं गतास्तिष्ठन्ति तेषां निश्चयनयेन स्वतः स्थिति परिणतानां तत्र साद्यपर्यवसितां स्थितिं प्रति तत्स्थानं सहकारि कारणं भवति। न तु तद् स्थाने तानवस्थातुं प्रेरयति।

(४) यथा व्यवहारनयेन सिद्धभक्त्या स्वयं समुत्पन्नसविकल्पध्यानावस्थितानां महात्मनां सविकल्पध्याने स्थितिं प्रति, निष्क्रियो मूर्तिरहितः प्रेरणारहितोऽपि सिद्धभगवान् सहायः सन् सहकारि कारणं भवति। न त्वसौ तान् तद्ध्याने स्थातुं प्रेरयति।

हुए क्षपकश्रेणी पर आरूढ हो कर उत्पन्न केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने वाले हो कर समस्त कर्मों का क्षय करके औदारिक शरीर को यहीं त्याग कर सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हो कर स्थिर हो जाते है। निश्चयनय से स्वयं स्थिति में परिणत हुए उन सिद्ध जीवों की सादि-अनन्त स्थिति में वह स्थान सहकारी कारण होता है, किन्तु वह स्थान उन्हें ठहरने के लिए प्रेरित नहीं करता।

(४) अथवा जैसे-व्यवहारनय से सिद्ध भगवान की भक्ति से स्वयं उत्पन्न हुए सविकल्प ध्यान में अवस्थित महात्मा पुरुषों की सविकल्प में जो स्थिति है, उस में अक्रिय अमूर्तिक और प्रेरणारहित भी सिद्ध भगवान् सहायक होने से निमित्त कारण होते हैं किन्तु वे उन्हें ध्यान में स्थित होने की प्रेरणा नहीं करते।

આત્મસ્વરૂપનું ચિંતન કરતા થકા ક્ષપકશ્રેણી પર આરૂઢ થઈને ઉત્પન્ન કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનને ધારણ કરવા વાળા થઈને સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય કરીને ઔદારિક શરીરનો અહિં જ ત્યાગ કરીને સિદ્ધિગતિ નામના સ્થાનને પ્રાપ્ત થઈ સ્થિર થઈ જાય છે નિશ્ચયનયથી સ્વયં સ્થિતિમાં પરિણત થયેલા તે સિદ્ધ જીવોની સાદિ અનંત સ્થિતિમાં તે સ્થાન સહકારી કારણ હોય છે પરંતુ તે સ્થાન તેને રોકવા માટે પ્રેરક નથી કરતું

(૪) અથવા-એવી રીતે વ્યવહારનયથી સિદ્ધ ભગવાનની ભક્તિથી સ્વયં ઉત્પન્ન થયેલા સવિકલ્પ ધ્યાનમાં અવસ્થિત મહાત્મા પુરૂષોની સવિકલ્પ ધ્યાનમાં જે સ્થિતિ છે તેમાં નિષ્ક્રિય, અમૂર્તિક અને પ્રેરકરહિત સિદ્ધ ભગવાન સહાયક હોવાથી નિમિત્ત કારણ હોય છે પણ સિદ્ધ ભગવાન તેને ધ્યાનમાં સ્થિત થવાની પ્રેરણા કરતા નથી.

इदमेवाभिप्रेत्य भगवताऽभिहितम्—

" अहम्मो ठाणलक्खणो " इति (उत्तरा. अ. २८)

' अधर्मः स्थानलक्षणः ' इति च्छाया । लक्ष्यते=दृश्यते परिचीयते अनेनेति लक्षण=परिचायक ज्ञापकम्। स्थानं=स्थितिरेव लक्षण=ज्ञापकं यस्याऽसाविति स्थानलक्षणः । स्थितिकार्यानुमेयोऽधर्मास्तिकाय इत्याशयः ।

अधर्मास्तिकायस्य-(१) अरूपित्वम् , (२) अचेतनत्वम् , (३) अक्रियत्वम् , (४) स्थितिसहायकत्वमिति गुणाः ।

(१) स्कन्धः, (२) देशः, (३) प्रदेशः, (४) अगुरुलघुत्व चेति पर्यायाः ।

इसी अभिप्राय से भगवान ने कहा—"अहम्मो ठाणलक्खणो" अधर्मास्तिकाय स्थिति लक्षण वाला है । (उत्तरा० अ० २८) जिस के द्वारा कोई वस्तु लखी जाय (देखी जाय) या जो, वस्तु का परिचायक (परिचय कराने वाला) हो वह लक्षण कहलाता है । स्थान अर्थात् स्थिति ही जिस का लक्षण है, अर्थात स्थितिरूप कार्य से जिस का अनुमान होता है उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं ।

अधर्मास्तिकाय के गुण-(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व और स्थितिसहायकत्व हैं । (१) स्कन्ध, (२) देश (३) प्रदेश, और (४) अगुरुलघुत्व, अधर्मास्तिकाय के पर्याय हैं ।

એ અભિપ્રાયથી ભગવાને કહ્યુ છે કે—" अहम्मो ठाणलक्खणो " અધર્માસ્તિકાય સ્થિતિ લક્ષણ વાળા છે (ઉત્તરાધ્યયન અ ૨૮)

જેના દ્વારા કોઈ વસ્તુ લખી શકાય (દેખી શકાય) અથવા જે વસ્તુનો પરિચય કરાવનાર હોય તે લક્ષણ કહેવાય છે સ્થાન અર્થાત્ સ્થિતિ જ જેનુ લક્ષણ છે અર્થાત્ સ્થિતિરૂપ કાર્યથી જેનુ અનુમાન થાય છે, તેને અધર્માસ્તિકાય કહે છે

અધર્માકાયના ગુણ-(૧) અરૂપિત્વ (૨) અચેતનત્વ (૩) અક્રિયત્વ અને (૪) સ્થિતિસહાયકત્વ છે

(૧) સ્કધ, (૨) દેશ, (૩) પ્રદેશ, અને (૪) અગુરૂલઘુત્વ, એ અધર્માસ્તિ કાયના પર્યાય છે

अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा—अधर्मास्तिकायो द्रव्यत एकः, क्षेत्रतो लोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः, भावतो रूपरहितः-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति, गुणत स्थितिगुण ।

ननु धर्माधर्मशब्दाभ्यां पुण्यपापरूपौ शुभाशुभफलदौ धर्माधर्मौ कथं नात्र गृह्येते ? इति चेत्, उच्यते—तयोर्गुणत्वेन द्रव्यप्रकरणे समावेशासंभवात् । किञ्च तौ धर्माधर्मौ पुण्यपापरूपौ पुद्गलत्वेनाभिमतौ पुद्गलद्रव्यान्तर्भूतौ, ततस्तयोर्न धर्माधर्मा स्तिकायमध्ये समावेशः ।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेदसे पांच प्रकार से जाना जाता है । जैसे—अधर्मास्तिकाय द्रव्य से एक है, क्षेत्र से लोकप्रमाण है, काल से आदि अन्त रहित है, भावसे अरूपी अर्थात् रूप, रस गन्ध और स्पर्श से रहित है, और गुण से स्थितिगुण वाला है ।

शङ्का—धर्म शब्द से शुभ फल देने वाले पुण्य का और अधर्म शब्द से अशुभ फल देने वाले पाप का ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—पुण्य और पाप द्रव्य नहीं, गुण हैं, इसी लिये इनका द्रव्यके प्रकरण में समावेश नहीं हो सकता । अथवा पुण्य-पाप रूप धर्म और अधर्म पुद्गल हैं अतः उनका समावेश पुद्गल में ही हो जाता है । धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय में उन्हें गर्भित नहीं किया जा सकता ।

અધર્માસ્તિકાય દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર કાલ ભાવ અને ગુણના ભેદથી પાંચ પ્રકારે જાણી શકાય છે જેમકે—અધર્માસ્તિકાય દ્રવ્યથી એક છે ક્ષેત્રથી લોકપ્રમાણ છે કાલથી આદિ-અન્ત રહિત છે ભાવથી અરૂપી અર્થાત્ રૂપ રસ ગંધ અને સ્પર્શથી રહિત છે અને ગુણથી સ્થિતિગુણવાળા છે

શંકા—ધર્મ શબ્દથી શુભ ફલ આપવા વાળા પુણ્ય અને અધર્મ શબ્દથી અશુભ ફલ આપવા વાળા પાપનું ગ્રહણ શા માટે કરવામાં આવતું નથી ?

સમાધાન—પુણ્ય અને પાપ, દ્રવ્ય નથી, ગુણ છે એ શા માટે દ્રવ્યના પ્રકરણમાં તેનો સમાવેશ થઈ શકતો નથી અથવા પુણ્ય-પાપરૂપ ધર્મ અને અધર્મ પુદ્ગલરૂપ છે તેથી તેનો સમાવેશ પુદ્ગલમાં જ થઈ જાય છે ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાયમાં તેને ગર્ભિત નથી કરી શકતા.

अथाकाशस्वरूपम्-

आ-समन्तात् काशते=अवगाहदानेन प्रतिभासते इत्याकाशम्, यद्वा-आकाशन्ते=दीप्यन्ते धर्माधर्मकालपुद्गलजीवाः स्वस्वरूपेण यत्र तत्।

धर्माधर्मादिसर्वद्रव्याणामाधारतयाऽवकाशं ददातीत्यवकाशदायित्वं लक्षणमाकाशास्तिकायस्य। अत्रावकाशदायित्वं व्यवहारनयेनौपचारिकम्। अस्तिकायशब्दः प्राग् व्याख्यातः। उक्तं चोत्तराध्ययनसूत्रे (२८ अध्ययने)—

" भायण सव्वदव्वाण, नहं ओगाहलक्खणम्।" इति।

आकाशका स्वरूप-

'आकाश' शब्द मे 'आ' और 'काश' दो हिस्से हैं। 'आ' का अर्थ है-सभी ओर से-सर्वत्र, और 'काश' का अर्थ है-प्रकाशित होने वाला। तात्पर्य यह है कि अपने अवगाहदाननामक गुणसे सर्वत्र प्रभासित होता है, वह आकाश है। अथवा जहाँ धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव अपने-अपने स्वरूप से प्रकाशित होते हैं उसे आकाश कहते है।

धर्म, अधर्म, आदि समस्त द्रव्यों का आधार होकर जो उन्हे आश्रय देता है, वही आकाश है। अवकाश देने वाला ही आकाश कहलाता है। यहाँ 'अवकाश देना' आकाश का जो लक्षण बतलाया गया है, वह व्यवहारनयसे उपचरित कथन है। 'अस्तिकाय' शब्द की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है। उत्तराध्ययन सूत्र (अ० २८) में कहा है — "भायणं सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खण" इति।

આકાશનું સ્વરૂપ—

'આકાશ' શબ્દમા 'આ' અને 'કાશ' બે ભાગ છે 'આ' નો અર્થ છે-ચારેય તરફથી-સર્વત્ર, અને 'કાશ'નો અર્થ છે પ્રકાશિત થવા વાળા, તાત્પર્ય એ છે કે-પોતાના અવગાહદાન (અવકાશ આપવો) નામના ગુણથી જે સર્વત્ર પ્રતિભાસિત હોય છે તે આકાશ છે, અથવા જ્યા ધર્મ, અધર્મ, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવ પોતપોતાના સ્વરૂપથી પ્રકાશિત હોય છે-પ્રતીત થાય છે તેને આકાશ કહે છે

ધર્મ, અધર્મ આદિ તમામ દ્રવ્યોનો આધાર બની જે તેને આશ્રય આપે છે તે આકાશ છે અવકાશ આપનાર જ આકાશ કહેવાય છે અવકાશ આપવો તે આકાશનુ લક્ષણ બતાવવામા આવ્યુ છે, તે વ્યવહારનયથી ઉપચારરૂપ કથન છે 'અસ્તિકાય' શબ્દની વ્યાખ્યા પ્રથમ જ કહી દીધી છે, ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ.૨૮)મા કહ્યુ છે કે- " भायण सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खणं " ઇતિ.

'भाजनं सर्वद्रव्याणां, नभोऽवगाहलक्षणम्' । इति च्छाया ।

सर्वद्रव्याणां भाजनम् = आधारः, इति हेतुगर्भविशेषणम् । यतः सर्वद्रव्याणां भाजनम्, अतः अवगाहलक्षणं नभ इति भावः ।

धर्माधर्मकालानामन्तः समावेशेन जीवपुद्गलानामौपचारिकसंयोगविभागाभ्यामवगाहः । अवगाहे तत्तद्देशरूपोपाधिभेदादवगाहस्य नानात्वेन संयोगविभागावुपपद्येते ।

अवगाहोऽवकाशः, स एव लक्षणं=ज्ञापकं यस्य तद् अवगाहलक्षणं नभः= आकाशं कथ्यते, इत्यर्थः । अवगाहदानकार्यानुमेयमाकाशमित्याशयः ।

धर्माधर्मादिद्रव्याणामाधारान्यथाऽनुपपत्तेराकाशमस्तीति निःशङ्कं विज्ञे-

---

'आकाश' सब द्रव्यों का आधार है । सारांश यह है कि आकाश सब द्रव्यों का आधार होनेसे अवगाह-लक्षण वाला है ।

'धर्मास्तिकाय' 'अधर्मास्तिकाय' और काल का आकाश में ही समावेश होने से जीव और पुद्गलों के औपचारिक संयोग और विभाग के द्वारा अवगाह होता है । अवगाह होने पर देश के भेद से अवगाह भी भिन्न हो जाता है और संयोग तथा विभाग उत्पन्न होते हैं ।

तात्पर्य यह है कि—अवगाह या अवकाश ही जिस का लक्षण है, अर्थात् अवगाह से जिस का अनुमान होता है वह द्रव्य आकाश है ।

आकाश न होता तो धर्म अधर्म आदि द्रव्यों की स्थिति कहाँ होती ? अर्थात् उनका कोई आधार ही नहीं रहता अत एव आकाश का अस्तित्व किसी प्रकार की शङ्का किये

આકાશ સર્વદ્રવ્યોનો આધાર છે સારાંશ એ છે કે આકાશ સર્વ દ્રવ્યોનો આધાર હોવાથી અવગાહન લક્ષણવાળુ છે

ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય અને કાલનો આકાશમાં સમાવેશ હોવાથી જીવ અને પુદ્ગલોનો ઔપચારિક સંયોગ અને વિભાગ દ્વારા અવગાહ થાય છે અવગાહ થવાથી દેશના ભેદથી અવગાહ પણ ભિન્ન થઈ જાય છે અને સંયોગ તથા વિભાગ ઉત્પન્ન થાય છે

તાત્પર્ય એ છે કે-અવગાહ અથવા અવકાશ જ જેનું લક્ષણ છે અવગાહથી જેનું અનુમાન થાય છે તે દ્રવ્ય આકાશ છે અથવા આકાશ ન હોત તો ધર્મ, અધર્મ આદિ દ્રવ્યોની સ્થિતિ ક્યાં હોય? તેનો કોઈ આધાર

सनीयम्, इत्यपि भगवता बोधितम्। आकाशसिद्ध्यर्थं 'भायणं सव्वदव्वाणं'- इति, 'ओगाहलक्खणं' इति च विशेषणद्वयमुपात्तम्।

आकाश द्विविधम्-लोकालोकभेदात्, उक्तं च स्थानाङ्गसूत्रे—

"दुविहे आगासे पन्नत्ते, तंजहा-लोगागासे चेव अलोगागासे चेव" इति। द्विविध आकाशः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-लोकाकाशश्चैव अलोकाकाशश्चैव, इति च्छाया। धर्मादिसर्वद्रव्याणामाधारभूतमसंख्यातप्रदेशात्मकमाकाशखण्डं लोकाकाशम्। तद्भिन्नमनन्तप्रदेशात्मकमलोकाकाशम्।

ननु धर्माधर्मद्रव्यस्वीकारे प्रयोजनं न किमपि पश्यामः, जीव-पुद्गलानां गतिस्थितिकार्ययोः सहायरूपं कारणं त्वाकाशमेव स्यात्?।

विना विश्वास करने योग्य है, यह भी भगवान ने उक्त कथन से ध्वनित कर दिया है। आकाश की सिद्धि के लिये 'भायणं सव्वदव्वाणं' और 'ओगाहलक्खण' ये दो विशेषण लगाये गये है।

आकाश दो प्रकार का है-लोकाकाश, और अलोकाकाश। स्थानाङ्गसूत्र में कहा है- "दुविहे आगासे पन्नत्ते तं जहा-लोगागासे चेव अलोगागासे चेव"

धर्म आदि सब द्रव्यों का आधार और असंख्यातप्रदेशरूप आकाशखण्ड, लोकाकाश कहलाता है। लोकाकाश से भिन्न अनन्तप्रदेशी अलोकाकाश है।

शङ्का-जब कि आकाश ही जीव और पुद्गलों की गति एवं स्थिति में सहायक कारण हो सकता है तो फिर धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्यों को स्वीकार करने का कोई

न रहेत, એટલા માટે આકાશના અસ્તિત્વ, કોઈ જાતની પણ શંકા કર્યા વગર વિશ્વાસ કરવા યોગ્ય છે, એ પણ ભગવાને ઉક્ત કેથનથી ધ્વનિત કર્યું છે. આકાશની સિદ્ધિ માટે 'भायणं सव्वदव्वाणं' અને 'ओगाहलक्खण' આ બે વિશેષણ લગાવેલા છે

આકાશ બે પ્રકારના છે (૧) લોકાકાશ અને (૨) અલોકાકાશ સ્થાનાંગ સૂત્રમાં કહ્યું છે -"दुविहे आगासे पन्नत्ते, तंजहा-लोगागासे चेव अलोगागासे चेव'

ધર્મ આદિ તમામ દ્રવ્યોનો આધાર અને અસંખ્યાતપ્રદેશરૂપ આકાશખંડ તે લોકાકાશ કહેવાય છે, લોકાકાશથી ભિન્ન અનન્તપ્રદેશી અલોકાકાશ છે

શંકા-જો કે આકાશ જ જીવ અને પુદ્ગલોની ગતિ અને સ્થિતિમાં સહાયક કારણ થઈ શકે છે તો પછી ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાય દ્રવ્યોનો સ્વીકાર

अत्रोच्यते—धर्माधर्मेति द्रव्यद्वयमवश्यमङ्गीकरणीयम्, अन्यथा दोषबाहुल्यप्रसङ्गात्।

(१) आकाशस्य गतिहेतुत्वस्वीकारे जीवपुद्गलानामलोकाकाशगमनापत्तिः।

(२) अलोकाकाशस्यापि जीवपुद्गलपूर्णत्वे लोकत्वप्रसंग, तथा चालोकाकाशस्य नामाऽपि वन्ध्यापुत्रवदेव स्यात्।

(३) भगवत्प्ररूपिताऽऽकाशद्वैविध्यव्यवस्थाऽपि न सिद्ध्येत्।

प्रयोजन दिखाई नहीं देता।

समाधान—धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य अवश्य स्वीकार करना चाहिये। उन्हें स्वीकार न करने से बहुतसे दोष आते हैं। वे इस प्रकार—

(१) आकाश को ही गति का कारण मान लिया जाय तो जीवों और पुद्गलों का अलोकाकाश में भी गमन मानना पड़ेगा क्योंकि अलोकाकाश भी तो आखिर आकाश ही है।

(२) अलोकाकाश अगर जीवों और पुद्गलों से व्याप्त मान लिया जाय तो वह अलोकाकाश न रहकर लोकाकाश ही हो जायगा। ऐसी स्थिति में अलोकाकाश तो वन्ध्यापुत्र के समान हो जायगा अर्थात् अलोकाकाश का अस्तित्व नहीं रहेगा।

(३) भगवान् ने दो प्रकार का आकाश बतलाया है, वह व्यवस्था भङ्ग हो जायगी।

કરવાનું કોઈ પણ પ્રયોજન જોવામાં આવતું નથી

સમાધાન-ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યનો અવશ્ય સ્વીકાર કરવો જોઈએ, તેનો સ્વીકાર નહિ કરવાથી બહુ જ દોષ આવે છે તે આ પ્રમાણે–

(૧) આકાશને જ ગતિનું કારણ માની લેવામાં આવે તો જીવો અને પુદ્ગલોનું અલોકાકાશમાં પણ ગમન માનવું પડશે; કેમકે અલોકાકાશ પણ છેવટે તો આકાશ જ છે

(૨) અથવા અલોકાકાશ જીવો અને પુદ્ગલોથી વ્યાપ્ત માની લેશો તો તે અલોકાકાશ નહિ રહેતાં લોકાકાશજ થઈ જશે એવી સ્થિતિમાં અલોકાકાશ તો વન્ધ્યા પુત્રના સમાન થઈ જશે, અર્થાત્ અલોકાકાશનું અસ્તિત્વ જ રહેશે નહિ.

(૩) ભગવાને બે પ્રકારના આકાશ બતાવ્યાં છે તે વ્યવસ્થા ભંગ થઈ જશે.

(४) अपिच–सिद्धभगवान् ऊर्ध्वं गत्वा लोकाग्रेऽवस्थित इति मर्यादाऽपि खपुष्पायमाणैव स्यात् ।

(५) भवन्मते गतिकारणीभूतस्याकाशस्योर्ध्वदेशे विद्यमानत्वात्तस्य (सिद्धस्य) गतेरवरोधाभावो भवेत् ।

धर्माधर्मद्रव्ययोराकाशतः पृथक् स्वीकारे तु लोकाकाशत ऊर्ध्वमलोकाकाशस्य सत्त्वेन तत्र गतिहेतोर्धर्मस्याभावान्न गतिर्भवति । स्थितिहेतोरधर्मद्रव्यस्य लोकान्तर्वर्त्तित्वेन लोकमध्य एवोपरिभागे गतिहेतोर्धर्मद्रव्यस्य साहाय्येन गत्वा तत्रैवाधर्मद्रव्यसाहाय्येन तिष्ठति । एव च लोकाग्रे भगवानवस्थितो जक्षे

---

(४) सिद्ध भगवान् उपर जाकर लोक के अग्र भाग मे स्थित हो जाते है, यह आगम की मर्यादा भी आकाशपुष्प के समान हो जायगी ।

(५) आप के मत के अनुसार गतिका कारण आकाश है और वह उर्ध्व देश मे लोकाकाश के अग्रभाग से भी आगे विद्यमान है, अत सिद्धो की गति में रुकावट नहीं होगी।

धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को आकाश से भिन्न मान लेने से लोकाकाश से उपर अलोकाकाश मे गति का कारण धर्मद्रव्य नहीं है, अत लोकाकाश से आगे गति भी नहीं होती, तथा स्थिति का कारण अधर्मद्रव्य लोक के अन्तर्गत ही है, अत धर्मद्रव्य की सहायतासे सिद्ध जीव, लोक के अन्त तक पहुँच कर अधर्म की सहायता से वहीं अर्थात् लोकाकाशके

---

(४) સિદ્ધ ભગવાન ઉપર જઈને લોકના અગ્રભાગમા સ્થિત થાય છે, તે આગમની મર્યાદા પણ આકાશ–પુષ્પના સમાન થઈ જશે

(૫) આપના મત પ્રમાણે ગતિનુ કારણ આકાશ છે અને તે ઉર્ધ્વ–ઉપરના દેશમા લોકાકાશના અગ્રભાગથી પણ આગળ વિદ્યમાન–હૈયાત છે, તેથી સિદ્ધોની ગતિમા રૂકાવટ–રોકાણ નહિ થાય.

ધમ દ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યને આકાશથી ભિન્ન માની લેવાથી લોકાકાશથી ઉપર અલોકાકાશમા ગતિનુ કારણ ધર્મદ્રવ્ય નથી, તેથી લોકાકાશથી આગળ ગતિ પણ થતી નથી, તથા સ્થિતિનુ કારણ અધર્મદ્રવ્ય લોકના અન્તર્ગતજ (અદરજ) છે, તેથી ધર્મદ્રવ્યની સહાયતાથી સિદ્ધ લોકના અત સુધી પહોચીને અધર્મદ્રવ્યની

तुम्बीवदिति मर्यादा सुतरामुपपद्यते । उक्तं चौपपातिकसूत्रे—

"कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ।
कहिं बोंदिं चइत्ता णं, कत्थ गंतूण सिज्झइ ॥ १ ॥
अलोगे पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ।
इह बोंदिं चइत्ता णं, तत्थ गंतूण सिज्झइ ॥२॥" इति ।

छाया—

"कुत्र प्रतिहताः सिद्धाः, कुत्र सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ।
कुत्र बोन्दिं (शरीरं) त्यक्त्वा, कुत्र गत्वा सिद्ध्यति ॥१॥
अलोके प्रतिहताः सिद्धाः, लोकाग्रे च प्रतिष्ठिताः ।
इह बोन्दिं (शरीरं) त्यक्त्वा, तत्र गत्वा सिद्ध्यति ॥ २ ॥ इति

अन्तर्गत ही ठहर जाता है। इस प्रकार लोक के अग्रभाग पर ठहरे हुए तुंबे के समान सिद्ध भगवान् लोकाकाश के अग्रभाग पर स्थित हैं, यह मर्यादा स्वतः सिद्ध हो जाती है।

औपपातिकसूत्र में कहा है—

सिद्ध भगवान् कहाँ रुक जाते हैं? कहाँ स्थित होते हैं?। कहाँ शरीर का त्याग करके कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं? ॥१॥

सिद्ध भगवान् अलोक में रुक जाते हैं, लोक के अग्रभाग में स्थित होते हैं। यहाँ शरीर का त्याग करके वहाँ जाकर सिद्ध हो जाते हैं ॥२॥"

સહાયતાથી ત્યાં જ અર્થાત્ લોકાકાશના અંતમાં રોકાઈ જાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે જલના અગ્રભાગ ઉપર સ્થિત રહેલા તુંબડાની પેઠે સિદ્ધ ભગવાન લોકાકાશના અગ્રભાગ ઉપર સ્થિત છે. આ મર્યાદા સ્વતઃ સિદ્ધ થઈ જાય છે. ઔપપાતિક સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે—

"સિદ્ધ ભગવાન ક્યાં રોકાઈ જાય છે? ક્યાં સ્થિત થાય છે? ક્યાં શરીરનો ત્યાગ કરીને, ક્યાં જઈને સિદ્ધ થાય છે? ॥ ૧ ॥

સિદ્ધ ભગવાન અલોકમાં રોકાઈ જાય છે, લોકના અગ્રભાગમાં સ્થિત થાય છે. અહિં શરીરનો ત્યાગ કરીને ત્યાં જઈને સિદ્ધ થઈ જાય છે ॥ ૨ ॥"

नन्वेवं धर्माधर्मद्रव्ये एव समाद्रियेताम्, किमाकाशद्रव्यावलम्बनेन, आकाशकार्यावगाहसाहाय्य धर्माधर्मद्रव्याभ्यामेव सम्पद्येत ?, इति चेत्, उच्यते-सिद्धान्ते तयोर्जीवादिगतिस्थितिसाधकत्वेन सिद्धान्तितत्वादवकाश दातु तौ न प्रभवतः। अन्यसाध्य कार्यमन्यो न साधयति, अन्यथाऽतिप्रसंगात्। लोकेऽपि चक्षुस्साध्य दर्शनकार्यं न श्रोत्र साधयति।

ननु केवलज्ञानस्य योऽनन्ततमो भागस्तत्प्रमाणमेव नभोद्रव्यम्, तस्य चानन्ततमभागपरिमितं लोकाकाशम्, एतादृशेऽल्पतमरूपे लोकाकाशे लोकाकाश-

---

शङ्का-यदि ऐसा हो तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ही स्वीकार करलेने चाहिये, फिर आकाश की क्या आवश्यकता है ? आकाश का कार्य अवगाह देना है सो वह कार्य धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य से ही सम्पन्न हो जायगा।

समाधान-आगम में धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को गति और स्थिति म ही सहायक बतलाया है, इस लिए वह अवकाश देने में समर्थ नहीं है, और का कार्य कोई और नहीं कर सकता। अगर ऐसा होने लगे तो सर्वत्र गडबट हो जायगा। लोक म चक्षुका देखना कार्य कान नहीं कर सकता।

शङ्का--केवल ज्ञान का जो अनन्तवाँ भाग है उसी के बराबर आकाशद्रव्य है, और आकाश-द्रव्य का भी अनन्तवाँ भाग लोकाकाश है तो इतने छोटे से लोकाकाश में समस्त लोकव्यापी और असख्यात प्रदेशवाले धर्मद्रव्य का, अधर्मद्रव्य का, अनन्तानन्त जीवों का

શંકા—જો એ પ્રમાણે છે તો ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યનો સ્વીકાર કરી લેવો જોઇએ, ફરીને આકાશની શુ આવશ્યકતા છે ? આકાશનુ કાર્ય અવગાહ-અવકાશ આપવો તે છે, તે કાર્ય ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મ દ્રવ્યથી જ સ પન્ન થઈ જશે

સમાધાન--આગમમા ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યને ગતિ અને સ્થિતિમા સહાયક બતાવ્યા છે, એટલા માટે તે અવકાશ આપવામા સમર્થ નથી બીજાનુ કાર્ય કોઇ બીજો નહિ કરી શકે, જો એમ થવા લાગશે તો સર્વત્ર ગડબડ થઈ જશે. જગતમા નેત્રથી જોવાનુ કાર્ય કાન કરી શકતા નથી

શ કા--કેવલજ્ઞાનનો જે અન તમો ભાગ છે તેના બરાબર આકાશદ્રવ્ય છે, અને આકાશદ્રવ્યનો પણ અન તમો ભાગ લોકાકાશ છે, તો એવડા નાના સરખા લોકાકાશમા સમસ્ત લોકવ્યાપી અને અસખ્યાત પ્રદેશવાળા ધર્મદ્રવ્યનો, અધર્મ

व्यापिनोः प्रत्येकमसंख्यातप्रदेशात्मकयोर्धर्माधर्मास्तिकाययोरनन्तजीवानां तेभ्योऽप्यनन्तगुणपुद्गलानां च कथं समावेशः, एकस्य लोकाकाशस्य सर्वद्रव्यावकाशदाना समर्थात्?, इति चेदुच्यते—

लोकाकाशस्यावकाशशक्तिर्हि महीयसी विलक्षणा चिन्तयितुमशक्या च, अत एव भगवता—"भायणं सव्वदव्वाणं नह ओगाहलक्खणं" इत्युक्तम्।

नभसोऽवकाशशक्तिं केवलालोकेनावलोक्य सर्वद्रव्याणामाधारत्वं भगवता प्रतिबोधितम्। महीयसी नभसोऽवकाशशक्तिः, सुकरोऽत्र सर्वद्रव्याणां समावेश इति तदाशय।

यथा—बताशानामथवा मधुरद्रव्य दुग्धपरिपूरितेऽपि भाजने निहितं सत्

और उन से भी अनन्तगुणे पुद्गलोंका समावेश किस प्रकार हो सकता है? एक लोकाकाश समस्त द्रव्यों को अवगाह दे सके, यह असम्भव है।

समाधान—लोकाकाश को अवकाश देने की शक्ति महान् है, विलक्षण है, और अचिन्त्य है, इसीलिये तो भगवान् ने कहा है—"भायणं सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खणं" अवगाहलक्षण वाला आकाश सब द्रव्यों का आधार है।

भगवान् ने अपने केवलज्ञान में आकाश की अवगाहदानशक्ति को देखकर उसे सब द्रव्यों का आधार निरूपण किया है। भगवान् के कथन का अभिप्राय यही है कि आकाश की अवगाहनाशक्ति बहुत बड़ी है, उस में सब द्रव्यों का समावेश सरलता से हो जाता है।

जैसे—दूध से परिपूर्ण पात्र में बताशे डाल दिये जाएँ तो वे उसी में समाविष्ट हो

દ્રવ્યનો અનન્તાનન્ત જીવોનો અને તેનાથી પણ અનન્તગણા પુદ્ગલોનો સમાવેશ કેવી રીતે થઈ શકે? એક લોકાકાશ સમસ્ત દ્રવ્યોને અવગાહ-અવકાશ આપી શકે, એ અસંભવ છે.

સમાધાન—લોકાકાશની અવકાશ આપવાની શક્તિ મહાન છે વિલક્ષણ છે અને અચિન્ત્ય છે એટલા માટે ભગવાને કહ્યું છે—"भायणं सव्वदव्वाणं नह ओगाहलक्खण" અવગાહલક્ષણવાળું આકાશ સર્વ દ્રવ્યોનો આધાર છે ભગવાને પોતાના કેવલ જ્ઞાનમાં આકાશની અવગાહદાન-અવકાશ આપનારી-શક્તિ જોઈને તેને સબ દ્રવ્યોનો આધાર છે એમ નિરૂપણ કર્યું છે. ભગવાનના વચનનો અભિપ્રાય એ છે કે-આકાશની અવગાહનશક્તિ બહુ જ મોટી છે અને તેમાં સર્વ દ્રવ્યોનો સમાવેશ સરલતાથી થઈ જાય છે

જેવી રીતે દૂધના પરિપૂર્ણ પાત્રમાં પતાસાં નાખવામાં આવે તો તે તેમાં

तस्मिन् समाविशति। यथा वा भित्तौ शङ्कोः समावेशस्तथैवानन्तद्रव्याणां लोकाकाशे समावेश इति बोध्यम्।

नन्वलोकाकाशस्य कथं सिद्धिः, नासौ हि द्रव्याणामाधारः, नाप्यवकाशदायित्वं तस्य?, इति चेत्, उच्यते—गतिस्थितिकारणयोधर्माधर्मयोरभावादेव तत्र विद्यमानापि द्रव्याधारताशक्तिरवकाशदानशक्तिश्च नाभिव्यक्ता भवति। तदस्वीकारे तु जीवपुद्गलानां कर्मनिगडविमुक्तसिद्धानां चोर्ध्वगतिविरामो न स्यात्, भगवत्प्रतिबोधितलोकालोकव्यवस्थाऽपि न तिष्ठेत्, एवं चागमयुक्तिप्रमाणाभ्यामलोकाकाशं सिद्धम्।

जाते है, अथवा जैसे दीवाल में कील का समावेश हो जाता है उसी प्रकार लोकाकाश में अनन्त द्रव्यों का समावेश हो जाता है।

शङ्का- अलोकाकाश की सिद्धि कैसे होती है? न तो वह द्रव्यों का आधार है, न अवकाशदानरूप लक्षण ही उस मे घटित होता है?

समाधान—गति और स्थिति के कारण धर्म और अधर्मद्रव्य का अभाव होने के कारण ही अलोकाकाशकी द्रव्याधारता की शक्ति और अवकाशदानशक्ति प्रकट नहीं होती है। अगर अलोकाकाश न माना जाय तो जीवों और पुद्गलों की, तथा धर्मरूपी बेडी से मुक्त हुए सिद्ध जीवों की गति का अन्त हो न होगा, और भगवान् की कही हुई लोक अलोक की व्यवस्था भी कायम नहीं रहेगी। इस प्रकार आगम और युक्ति प्रमाणों से अलोकाकाश की सिद्धि होती है।

(द्रव्यमा) समाविष्ट—ओतप्रोत थई जाय छे, अथवा जेवी रीते दीवालमा कील—खीलीनो समावेश थई जाय छे, ते प्रमाणे लोकाकाशमा अनन्त द्रव्योनो समावेश थई जाय छे

शंका—अलोकाकाशनी सिद्धि केवी रीते होई शके? ते द्रव्योनो आधार नथी अने अवकाशदानरूप लक्षण तेनामा घटी शकतु नथी

समाधान—गति अने स्थितिना कारण धर्म अने अधर्म द्रव्यनो अभाव होवाना कारणे ज अलोकाकाशनी द्रव्याधारतानी शकित अने अवकाशदान—शक्ति प्रगट थती नथी अथवा अलोकाकाश मानवामा नहि आवे तो जीवो अने पुद्गलोनी, तथा कर्मरूपी बेडीथी मुकत थयेला सिद्ध जीवोनी गतिनो क्याय अन्त—छेडो ज नहि आवे, अने भगवाने कहेली लोक—अलोकनी व्यवस्था पण कायम नहि रहे ए प्रमाणे आगम अने युकित प्रमाणोथी अलोकाकाशनी सिद्धि थाय छे,

अन्यसकलद्रव्यापेक्षया महत्परिमाणमाकाशस्य, अनन्तप्रदेशित्वात् । तेनाकाशं महास्कन्धरूपम् ।

आकाशास्तिकायस्य (१)-अरूपित्वम् , (२)-अचेतनत्वम् , (३)-अक्रियत्वम् , (४)-अवगाहदायित्वं चेति गुणाः । (१)-स्कन्धः, (२)-देश , (३)-प्रदेशः, (४)-अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा-द्रव्यत एक आकाशास्तिकायः, क्षेत्रतो लोकालोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहित , भावतो रूपरहितः-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति । गुणतोऽवकाशदायी ।

आकाश का प्रमाण अन्य सब द्रव्यों की अपेक्षा बडा है, क्योंकि वह अनन्तप्रदेशी है, अत आकाश महास्कन्धरूप है ।

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व, (३) अक्रियत्व (४) अवगाहदायित्व ये आकाशास्तिकाय के गुण हैं। (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश तथा (४) अगुरुलघुत्व, उसके पर्याय हैं ।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुणके भेदसे आकाश द्रव्य पाँच प्रकार से जाना जाता है । जैसे द्रव्य से आकाशास्तिकाय एक है, क्षेत्र से लोकालोकप्रमाण है, काल से आदि-अन्त रहित है-भावसे अरूपी है, उस में वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श नहीं पाये जाते । गुणसे अवकाश देने वाला है ।

આકાશનું પરિમાણ બીજા સવ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ મોટું છે કેમકે તે અનન્તપ્રદેશી છે એટલે કે આકાશ મહાસ્કંધરૂપ છે

(૧) અરૂપિત્વ (૨) અચેતનત્વ (૩) અક્રિયત્વ (૪) અવગાહદાયિત્વ એ આકાશાસ્તિકાયના ગુણ છે અને (૧) સ્કંધ (૨) દેશ, (૩) પ્રદેશ, તથા અગુરુલઘુત્વ, તેના પર્યાય છે

દ્રવ્ય ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ અને ગુણના ભેદથી આકાશ દ્રવ્ય પાંચ પ્રકારથી જાણી શકાય છે. જેમકે—દ્રવ્યથી આકાશાસ્તિકાય એક છે ક્ષેત્રથી લોકાલોકપ્રમાણ છે કાળથી આદિ-અન્તરહિત છે ભાવથી અરૂપી છે-તેમાં વર્ણ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શ નથી, ગુણથી અવકાશ આપવાવાળું છે

कालनिरूपणम्—

तत्र कालशब्दस्य व्युत्पत्तिः—

कल्यते=परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति कालः। करणे घञ्। 'मासिकोऽयं बालः, वार्षिकोऽयं बालः, वासन्तिकमिद पुष्पम्' इत्यादिरूपेण वस्तूनां परिच्छेदो=निर्णयः कालमाश्रित्य भवति।

अथवा स्वभावतः परिणमद्भिः पदार्थजातैः, कल्यते=गम्यते=प्राप्यते निमित्तत्वेनाऽसौ, इति कालः। सकलवस्तुपरिणतिहेतुः काल इत्यग्रे वक्ष्यते।

कालनिरूपण—

काल शब्द की व्युत्पत्ति—

जिस के द्वारा वस्तु कली जाय अर्थात् जानी जाय वह काल है। यहाँ करणमें 'घञ्' प्रत्यय हुआ है। यह बालक मासिक (एक मासका) है, यह बालक वार्षिक (वर्ष भरका) है, यह फूल वासतिक (वसन्तऋतुसम्बन्धी है, इस रूपमें वस्तुओं का ज्ञान काल के द्वारा ही होता है।

अथवा स्वभावसे परिणत होने वाले पदार्थ समूहों द्वारा निमित्त रूपमें जो प्राप्त किया जाय वह काल कहलाता है। 'काल, समस्त वस्तुओं के परिणमन का हेतु है यह बात आगे बतलाई जायगी।

કાલનિરૂપણ—

કાલ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ—

જેના દ્વારા વસ્તુ જાણી શકાય તે કાલ છે અહિ કરણમાં 'ઘન્' પ્રત્યય થયો છે "આ બાલક માસિક–એક માસનો છે, આ બાલક વાર્ષિક–એક વર્ષનો છે, આ ફૂલ વાસતિક–વસતઋતુસબધી છે" એ રૂપમા વસ્તુઓનુ જ્ઞાન કાલ દ્વારા જ થાય છે

અથવા સ્વભાવથી પરિણુત થવાવાળા પદાર્થસમૂહો દ્વારા નિમિત્તરૂપમા જે પ્રાપ્ત કરી શકાય તે કાલ કહેવાય છે "કાલ સમસ્ત વસ્તુઓના પરિણુમનનુ કારણુ છે" એ આગળ બતાવવામા આવશે.

कालस्य सिद्धिः—

'पदार्थाः सन्ति, अथवा पदार्था वर्तन्ते' इति व्यवहारो वर्तनामूलः। "अनुदात्तेतश्च हलादेः"-रिति पाणिनिसूत्रेण वृतधातोर्युच्प्रत्ययः। वर्तनशीला वर्तना। उत्पत्तिः, अप्रच्युतिः, विद्यमानताख्या वृत्तिः=क्रिया वर्तना। इयं वर्तना सर्वेषु भावेषु विद्यते। वर्तना=पदार्थानां परिणामविशेषः। पदार्थानां वर्तनारूपं कार्यं नोपपद्यते विना केनचिन्निमित्तकारणेन, तस्माद् वर्तनारूपकार्योत्पत्तौ यन्निमित्तं धर्मद्रव्यमिव गतौ, स एव काल इत्युच्यते।

काल की सिद्धि—

'पदार्थ है या पदार्थ वर्त रहे हैं' इस प्रकार के व्यवहार का कारण वर्तना है। 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' पाणिनि के इस सूत्र से 'वृतु' धातु से 'युच्' प्रत्यय हुआ है। वर्तनशील हो उसे वर्तना कहते हैं। उत्पत्ति, अप्रच्युति और विद्यमानतारूप वृत्ति अर्थात् क्रिया वर्तना कहलाती है। यह वर्तना सभी पदार्थों में विद्यमान है। यह पदार्थों का विशेष परिणाम है। पदार्थों का वर्तनारूप काम किसी निमित्त कारण बिना नहीं हो सकता अतः वर्तनारूप कार्यकी उत्पत्ति में जो निमित्त कारण है, वही काल-द्रव्य है जैसे गति का निमित्त कारण धर्म द्रव्य है।

કાલની સિદ્ધિ—

પદાર્થ છે અથવા પદાર્થ વર્ત રહેલ છે એ પ્રકારના વ્યવહારનું કારણ વર્તના છે અનુદાત્તેતશ્ચ હલાદેઃ પાણિનિના આ સૂત્રથી 'વૃતુ' ધાતુથી 'યુચ્' પ્રત્યય થયો છે. જે વર્તનશીલ હોય તેને વર્તના કહે છે ઉત્પત્તિ અપ્રચ્યુતિ, અને વિદ્યમાનતારૂપ વૃત્તિ અર્થાત્ ક્રિયા વર્તના કહેવાય છે વર્તના સર્વ પદાર્થોમાં વિદ્યમાન છે તે પદાર્થોનું વિશેષ પરિણામ છે પદાર્થોનું વર્તનારૂપ કાર્ય કોઈ નિમિત્ત કારણ વિના થઈ શકતું નથી. તેથી વર્તનારૂપ કાર્યની ઉત્પત્તિમાં જે નિમિત્ત કારણ છે તે કાલ દ્રવ્ય છે. જેવી રીતે ગતિનું નિમિત્ત કારણ ધર્મ-દ્રવ્ય છે

कालस्य लक्षणम्—

स्वभावतो विद्यमानानां पदार्थानां या विद्यमानताख्या वर्तना, तां प्रति सहकारिकारणत्वं कालस्य लक्षणम् ।

अनेनैवाशयेन भगवताऽप्युक्तम्—"वट्टणालक्खणो कालो" इति, वर्तनालक्षणः कालः, इति च्छाया। वर्तना, लक्षणं=कार्यत्वेन प्रत्यायकं, यस्य स वर्तनालक्षणः, वर्तनाकार्यानुमेयः काल इत्यर्थः। अत्र वर्तनेत्युपलक्षण परिणामक्रिया-परत्वापरत्वादीनाम् ।

परिणामो हि वस्तूनां नोपपद्यते कारण नियामकमन्तरेण, अन्यथा नियामकहेत्वभावे सर्वे भावा युगपदुत्पद्येरन् । किञ्च—कारणमन्तरेणापि कार्योत्पत्तिः

काल का लक्षण—

स्वभाव से विद्यमान पदार्थों की विद्यमानतारूप जो वर्तना है उस में सहकारी कारण होना काल का लक्षण है, इसी अभिप्राय से भगवान्‌ने भी कहा है—"वट्टणालक्खणो कालो" "काल वर्तनालक्षण वाला है।" वर्तना है लक्षण अर्थात् ज्ञापक जिस का, अर्थात् वर्तनारूप कार्य से जिसका अनुमान होता है उसे काल कहते हैं। वहाँ वर्तना उपलक्षण है उससे परिणाम, क्रिया, परत्व, (पहलापन), और अपरत्व (पीछापन) का भी ग्रहण हो जाता है ।

नियामक कारणके अभाव में पदार्थों का परिणमन नहीं हो सकता, अगर ऐसा न माना जाय तो सभी पदार्थों की एक साथ ही उत्पत्ति होने लगेगी। तथा कारण के विना भी

કાલનુ લક્ષણ-

સ્વભાવથી વિદ્યમાન પદાર્થોની વિદ્યમાનતારૂપ જે વર્ત્તના છે, તેમા સહકારી કારણ થવુ તે કાલનુ લક્ષણ છે આ અભિપ્રાયથી ભગવાને પણ કહ્યુ છે—

"वट्टणालक्खणो कालो" કાલ વર્ત્તનાલક્ષણ વાળો છે વર્ત્તના છે લક્ષણ અર્થાત્ જ્ઞાપક જેનુ, અર્થાત્ વર્ત્તનારૂપ કાર્યથી જેનુ અનુમાન થાય છે તેને કાલ કહે છે વર્ત્તના ઉપલક્ષણ છે તેથી પરિણામ, ક્રિયા, પરત્વ (પહેલાપણુ) અને અપરત્વ (પાછાપણુ)નુ ગ્રહણ થઈ જાય છે

નિયામક કારણના અભાવમા પદાર્થનુ પરિણમન થતુ નથી જો એવુ માનવામાં ન આવે તો સર્વ પદાર્થોની એક સાથે જ ઉત્પત્તિ થઈ જશે, તથા કારણ વિના પણ

प्रसज्येत, अपराधीनत्वात् परिणामानाम् , अत परिणामाः प्रतिनियतकालभाविन , तेषामनेकशक्तियुक्तमेकं कारणं कालाख्यमित्यवश्यमङ्गीकरणीयम् ।

तास्ताश्च शक्तय स्वस्वकार्यकरणाय कालविशेष एव प्रवर्तन्ते, न सर्वदा, तादृशस्वभाववत्त्वात् । यथा—अङ्कुररूपेण परिणतस्य वनस्पतेर्मूल-काण्ड-त्वक्-पत्र-स्कन्ध-शाखा-विटप-पुष्प-फलरूपा परिणामा न युगपद् भवन्ति । आसीदङ्कुरः, सम्प्रति स्कन्धवान् , ऐष्मः पुष्पिष्यति' इति व्यवहारात् । यथा वा पुरुषस्य बाल-कुमार-युव-मध्यमाद्यवस्थारूपा', नव पुराण मनुष्यरूपाश्च परिणामा न युगपद् भवन्ति,

---

कार्य की उत्पत्ति का प्रसङ्ग उपस्थित होगा, क्योंकि परिणाम किसी कारण पर निर्भर तो होंगे नहीं बिना कारण ही होंगे लेकिन ऐसा नहीं होता परिणाम नियत समय पर ही होते हैं, अत अनेक शक्तियों से युक्त एक काल नामक कारण अङ्गीकार करना चाहिए ।

वह अनेक शक्तियाँ अपना अपना कार्य करने के लिये किसी विशेष काल में ही उद्भूत होती है, सर्वदा नहीं क्योंकि उन का स्वभाव ही ऐसा है, जैसे कि—अङ्कुररूप से परिणत वनस्पति का मूल काण्ड त्वचा, पत्र, स्कन्ध, शाखा, विटप, पुष्प और फल रूप परिणमन एक साथ नहीं होते हैं। पहले अंकुर था, अब स्कन्धवाला हो गया कुछ दिनों के बाद वह फूलेगा इस प्रकार का लोकव्यवहार प्रसिद्ध ही है। अथवा-जैसे पुरुष के बाल्य कुमार युवा मध्यम आदि अवस्था तथा

કાર્યની ઉત્પત્તિનો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થશે. કેમકે પરિણામ કોઈ પર નિર્ભર રહેશે નહિ, વિના કારણે જ થશે, પરન્તુ એવી રીતે હોય નહિ. પરિણામ નિયત સમય પર જ હોય છે, એટલા માટે અનેક શક્તિઓથી યુક્ત એક કાલ નામનું કારણ અંગીકાર કરવું જોઈએ.

તે અનેક શક્તિઓ પોત-પોતાનું કાર્ય કરવા માટે કોઈ વિશેષ કાલમાં જ ઉદ્ભૂત-પ્રકાશિત થાય છે સર્વદા થતી નથી. કેમકે તેનો સ્વભાવ જ એવો છે જેમકે—અંકુરરૂપથી પરિણત વનસ્પતિનું મૂળ, કાંડ-કાતળી, છાલ, પત્ર સ્કંધ, શાખા, વિટપ-ડાળી, પુષ્પ, ફળ-રૂપ પરિણમન એક સાથે થતા નથી. પ્રથમ અંકુર હતું પછી સ્કંધવાળું થયું અને કેટલાક દિવસો પછી તે ફૂલશે એ પ્રમાણે લોકવ્યવહાર પણ પ્રસિદ્ધ જ છે અથવા જેવી રીતે પુરુષને બાલ્ય, કુમાર યુવા, મધ્યમ આદિ અવસ્થા, તથા નવાપણું અને જુનાપણું અને મનુષ્ય-નારકરૂપ પરિણમન એક સાથે થતું નથી એટલા માટે સમસ્ત પરિણામોનું નિયામક નિમિત્ત

तस्मात्सर्वेषा परिणामानां नियामक निमित्तकारण काल इति सिद्धम् । यथा कर्त्तरी वस्त्रकृन्तने निमित्तकारणं तथा द्रव्याणा पर्याये निमित्तकारण कालः ।

क्रिया=द्रव्यपरिणामः । तस्या अपि नियामक निमित्तकारणं कालः । यथा-'आकाशदेशे-अङ्गुलिरस्ति, आसीत्, भविष्यति च' इत्ययं व्यवहारः कालमवलम्व्य संपद्यते, कालस्यासत्त्वे त्वतीत एव वर्तमानोऽनागतश्च स्यात्, क्रियानियामकाभावात्, एवमतीतादिविभागाभावे व्यवहारोच्छेदापत्तिः, तस्मात् "अस्ति कालः यमाश्रित्यातीतादिव्यवहाराः सुस्पष्टं प्रसिध्यन्ति" इति, मन्तव्यम् ।

नयापन, पुरानापन, और प्रनष्टरूप परिणमन एक साथ नहीं होते हे, अत एव समस्त परिणामों का नियामक निमित्त कारण काल ही सिद्ध होता है । जैसे कैंची वस्त्र काटने में निमित्त कारण होती है, उसी प्रकार द्रव्यों के परिणमन में काल निमित्त कारण होता है ।

क्रिया द्रव्य का परिगामविशेष है । उसका निमित्त कारण भी काल ही है । जैसे 'आकाग में अगुली है, थी और होगी' इस प्रकार का व्यवहार काल के आश्रित है । काल की सत्ता न मानी जाय तो अतीत ही वर्तमान और अनागत (भविष्य) हो जायगा, क्योंकि क्रिया का कोई नियामक नहीं है । इस प्रकार अतीत आदि कालों का विभाग न रहने से व्यवहार का लोप हो जायगा, अत "काल अवश्य है, जिस के सहारे अतीत आदि के व्यवहार स्पष्ट रूप से सिद्ध होते है" ऐसा मानना ही समुचित है ।

કારણુ કાલ જ સિદ્ધ થાય છે જેમકે કાતર, વસ્રને કાપવામા નિમિત્ત કારણુ થાય છે, તે પ્રમાણે દ્રવ્યોના પરિણુમનમા કાલ નિમિત્ત કારણુ થાય છે.

ક્રિયા એ દ્રવ્યનુ પરિણુામ વિશેષ છે તેનુ નિમિત્ત કારણુ પણુ કાલ જ છે જેમ 'આકાશમા આગળી છે, હતી અને હશે' આ પ્રકારનો વ્યવહાર કાલને આશ્રિત છે કાલની સત્તા ન માનવામા આવે તો અતીત-ભૂતકાળ જ વર્તમાન અને ભવિષ્ય કાળ થઈ જશે, કેમકે ક્રિયાનો નિયામક કોઈ નથી, આ પ્રમાણે અતીત ભૂતકાળ આદિ કાળોનો વિભાગ નહિ રહેવાથી વ્યવહારનો લોપ થઈ જશે. એટલા માટે "કાલ અવસ્ય છે, જેની સહાયતાથી ભૂતકાળ આદિનો વ્યવહાર સ્પષ્ટરૂપથી સિદ્ધ થાય છે" એમ માનવુ તે જ યોગ્ય છે

प्रतिदिवसमुभयकालिकसकलवस्त्रपात्रादिप्रतिलेखन, प्रत्यहोरात्रमुभयकालिकमावश्यकं, चतुष्कालिकं स्वाध्यायकरणं मुनीनां कर्तव्यतया भगवतोपदिष्टं, तत्र कालस्यासत्त्वे तद्विभागज्ञानाभावेन यथाकालमनुष्ठातुमशक्यं मुनिभिरिति शास्त्रानर्थक्यमापद्येत ।

भिक्षाचर्यकालवर्जनपूर्वककालानुरोधेन निष्क्रमप्रतिक्रमकर्तव्यता भगवत्प्ररूपिता एवीवमसत्त्वानां भिक्षूणां नष्टप्राया स्यात् ।

प्रतिदिन दोनों वक्त समस्त वस्त्र पात्र आदि का प्रतिलेखन करना प्रत्येक दिन और रात्रि के अन्त में आवश्यक करना चौकालीन स्वाध्याय करना भगवान्ने मुनियों का कर्तव्य बतलाया है। अगर कालद्रव्य की सत्ता न मानी जाय तो दिन रात आदि के भेद का पता ही नहीं चलेगा और समय पर उक्त सब कार्य नहीं किये जा सकेंगे। ऐसी अवस्था में शास्त्रों का यह उपदेश निरर्थक हो जायगा।

“अकाल का त्याग कर के समुचित समय पर मुनियों को भिक्षा के लिए जाना और आना चाहिए” भगवान् ने मुनियों का यह कर्तव्य बतलाया है, कालद्रव्य न मानने पर यह सब कर्तव्य और उनका उपदेश भी नष्टप्राय हो जायगा।

પ્રતિદિન બન્ને વખત સમસ્ત-તમામ વસ્ત્ર, પાત્ર આદિનું પ્રતિલેખન કરવું, પ્રત્યેક દિવસ અને રાત્રિના અન્તમાં આવશ્યક કરવું, ચોકાલીન-ચારેય કાલ સ્વાધ્યાય કરવો તે ભગવાને મુનિઓનું કર્તવ્ય બતાવ્યું છે અગર કાલદ્રવ્યની સત્તા નહિ માનો તો દિવસ રાત વગેરે ભેદનો પત્તો મળશે નહિ, અને સમય પર આગળ કહેલાં સર્વ કાર્યો કરી શકાશે નહિ એવી અવસ્થામાં શાસ્ત્રોનો એ ઉપદેશ નિરર્થક થઈ જશે.

“અકાલનો ત્યાગ કરીને યોગ્ય સમય પર મુનિઓએ ભિક્ષાને માટે જવું-આવવું જોઈએ” ભગવાને મુનિઓનું એ કર્તવ્ય કહ્યું છે કાલદ્રવ્યને નહિ માનવામાં આવે તો આ સર્વ કર્તવ્ય અને તેમનો ઉપદેશ પણ નષ્ટપ્રાય થઈ જશે.

किञ्च—ग्रीष्मादिषु संयतानामतापनादयो धर्माः भगवदुक्ताः कालसत्त्व एवोपपद्यन्ते। अन्यथा ग्रीष्मादिऋतुज्ञानाभावाद् भगवदुपदिष्टक्रियाहानिः प्रसज्येत।

एवं च वर्तना, परिणामः, क्रियाश्च द्रव्यस्वभावाः कालमाश्रित्य भवन्तीति निरूपितम्।

परापरव्यतिकरज्ञानमपि कालेनैव सपद्यते। विप्रकृष्टः कनिष्ठपर्यायो मुनिः क्षेत्रेण परोऽपि कालेनापरः, संनिकृष्टो ज्येष्ठपर्यायो मुनिः क्षेत्रेणापरोऽपि

इसके अतिरिक्त ग्रीष्म आदि ऋतुओं मे साधुओं के लिये भगवान्ने आतापना आदि धर्मोंका उपदेश दिया है, काल के होने पर ही यह उपदेश बन सकता है। काल के अभाव में ग्रीष्म ऋतु का ही ज्ञान नहीं होगा और भगवान् द्वारा उपदिष्ट क्रिया की हानि हो जायगी।

यहा तक यह बतलाया जा चुका कि वर्तना, परिणाम और क्रिया, जो कि द्रव्य के स्वभाव हैं, काल के सहारे ही होते हैं।

परत्व और अपरत्व का मिला-जुला सा ज्ञान भी काल द्वारा ही होता है। दूरवर्ती छोटीदीक्षापर्यायवाला मुनि दूर होने के कारण क्षेत्र से पर होने पर भी (दीक्षा में छोटा होने के कारण) काल से अपर कहलाता है। समीपवर्ती है, मगर ज्येष्ठदीक्षापर्यायवाला मुनि क्षेत्र से अपर होने पर भी काल से पर कहलाता है। यहाँ 'पर' भी 'अपर' हो गया है और 'अपर' भी 'पर' बना गया है।

તે સિવાય ગ્રીષ્મ આદિ ઋતુઓમા સાધુઓ માટે ભગવાને આતાપના આદિ ધર્મોનો ઉપદેશ આપ્યો છે, કાલ દ્રવ્યને માનવામા આવે તો જ, અથવા કાલ દ્રવ્ય હોય તો જ એ ઉપદેશ ઘટી શકે છે કાલના અભાવમા ગ્રીષ્મ ઋતુનુ જ્ઞાન થશે નહિ, અને ભગવાને કહેલી ક્રિયાની હાનિ થઇ જશે

અહિ સુધી બતાવી ચૂક્યા કે વર્ત્તના, પરિણામ અને ક્રિયા, જે કે દ્રવ્યનો સ્વભાવ છે, કાલની સહાયતાથી જ થાય છે

પરત્વ અને અપરત્વનુ મિલા-જુલા જેવુ જ્ઞાન પણ કાલદ્વારા જ થાય છે. દૂરવર્તી, નાની દીક્ષા-પર્યાયવાળા મુનિ દૂર હોવાના કારણે ક્ષેત્રથી પર હોવા છતાય પણ (દીક્ષામા નાના હોવાના કારણે) કાલથી અપર કહેવાય છે, સમીપવર્તી છે પણ જ્યેષ્ઠ-મોટીદીક્ષાપર્યાયવાળા મુનિ ક્ષેત્રથી અપર હોવા છતાય કાળથી પર કહેવાય છે અહિ 'પર' પણ 'અપર' થઈ ગયો છે અને 'અપર' પણ 'પર' બની ગયો છે

क्रमेण पर इत्युच्यते। अत्र परस्यापरत्वम्, अपरस्य परत्वमिति परापरव्यतिकरः× कारणं विना न संभवति, यच्च कारणं स एव कालः।

यौगपद्यायौगपद्यप्रत्ययेनापि कालद्रव्यस्यास्तित्वं सिध्यति। 'आभ्यां युगपदधीतो दृष्टिवादः' 'एभिस्तु मुनिभिरयुगपत् पठिता द्वादशाङ्गी' इति वाक्यतोऽध्ययनगतयौगपद्यायौगपद्यप्रतीतौ कालमन्तरेणान्यन्निमित्तं नोपलभ्यते, यन्निमित्तं स कालः।

× 'परस्परविषयगमनं व्यतिकरः'।

पर और अपरका यह व्यतिकर+ कारण के बिना संभव नहीं है, अत एव इस व्यतिकर में जो कारण है बस वही काल है।

यौगपद्य (एक साथ) और अयौगपद्य (आगे-पीछे) का जो ज्ञान होता है उस से भी कालद्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है। 'इन दोनों मुनियोंने एक साथ दृष्टिवाद का अध्ययन किया'' और 'इन मुनियोंने बारह अङ्ग एक साथ नहीं पढे-आगे पीछे पढे हैं,''-इस वाक्य से यौगपद्य और अयौगपद्य का-एक साथ का और आगे पीछे का-जो ज्ञान होता है उसमें काल के अस्तित्व के सिवाय और कोई कारण नहीं पाया जाता। जो कारण है वही काल है।

+ 'परस्परविषयगमनं व्यतिकर' अर्थात् एक का विषय दूसरे में चला जाना व्यतिकर कहलाता है जैसे-पर का अपर हो जाना और अपर का पर हो जाना।

પર અને અપરનો એ વ્યતિકર કારણ વિના સંભવ નથી, તેથી એ વ્યતિકરમાં જે કારણ છે બસ તેજ કાળ છે

યૌગપદ્ય-એક સાથે અને અયૌગપદ્ય-આગળ-પાછળનું જે જ્ઞાન થાય છે, તેમાં પણ કાલદ્રવ્યનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે. "આ બન્ને મુનિઓએ એક સાથે દૃષ્ટિવાદનું અધ્યયન કર્યું'' અને "એ મુનિઓએ બાર અંગોનું એક સાથે અધ્યયન કર્યું નથી-આગળ-પાછળ અધ્યયન કર્યું છે'' આ વાકયથી યૌગપદ્ય અને અયૌગપદ્યનું-એક સાથેનું અને આગળ પાછળનું જે જ્ઞાન થાય છે તેમાં કાલ વિના બીજું કોઈ કારણ દેખાતું નથી. જે કારણ છે તે જ કાળ છે

+પરસ્પરવિષયગમનં વ્યતિકરઃ'' અર્થાત્-એકનો વિષય બીજામાં ચાલ્યો જાય તે વ્યતિકર કહેવાય છે. જેવી રીતે-પરનું અપર થઈ જવું અને અપરનું પર થઈ જવું

चिरक्षिप्रप्रत्ययोऽपि कालमासाद्यैव जागर्ति। यथा-'अनेन महात्मना चिरं तपश्चरितम्, गजसुकुमालेन क्षिप्रमात्मकल्याणं कृतम्' इत्यादिवाक्यैस्तपश्चरणकल्याणसाधनादीनां विलम्बाविलम्बप्रतीतिः कालाभावे सति नोपपद्यते।

ह्य श्वोऽद्य परश्वः'-इत्यादयः कालाभिधायिनः शब्दाः कालाख्यमर्थं गमयन्ति। सर्वज्ञेन भगवतोच्चारितत्वादिमे शब्दा यथार्थवस्तुबोधकाः रूपशब्दवद् असमस्तपदत्वात्, शुद्धैकपदत्वाच्च प्रसिद्ध सद्भूतमर्थमावेदयन्ति कालशब्दादयः।

वर्तनाहेतुत्वा-ऽस्तित्व-ज्ञेयत्वादिगुणाश्रयतया, अतीतानागतवर्तमानादिपर्या

जल्दी और देर का ज्ञान भी काल के कारण ही होता है, जैसे-" इस महात्मा ने चिरकाल तक तप किया, गजसुकुमाल मुनिने शीघ्र ही आत्मकल्याण कर लिया।" इत्यादि वाक्यों से तपश्चरण और कल्याण-साधन आदि मे विलम्ब और अविलम्ब का ज्ञान काल के अभाव मे नही हो सकता।

'कल, आज, परसों' इत्यादि कालवाचक शब्द भी कालनामक द्रव्य को प्रकट करते है। सर्वज्ञ भगवान् के द्वारा उच्चारण किये हुए ये काल आदि शब्द वास्तविक वस्तु के बोधक है, क्योंकि यह समासरहित पद है और शुद्ध एक पद है। जो पद समासरहित और शुद्ध एक पद होते है वे वास्तविक पदार्थ के ही बोधक होते है, जैसे रूप आदि।

वर्तनाहेतुत्व, अस्तित्व, ज्ञेयत्व, आदि गुणों का आधार होने से, तथा अतीत, अनागत (भविष्यत्) और वर्तमान आदि पर्यायों का आश्रय होने से काल का

જલ્દી-તુરત અને ઢીલનુ જ્ઞાન પણ કાલના કારણથી જ થાય છે જેમ-"આ મહાત્માએ લાબા સમય સુધી તપ કર્યું, ગજસુકુમાલ મુનિએ તુરતમા આત્મકલ્યાણ કરી લીધુ" ઇત્યાદિ વાક્યોથી તપશ્ચરણ અને કલ્યાણસાધન વગેરેમા વિલમ્બ અને અવિલમ્બનુ જ્ઞાન કાલના અભાવમા થઈ શકશે નહિ

'ગઈ કાલ, આવતી કાલ, આજ, પરમ દિવસે,' ઇત્યાદિ કાલવાચક શબ્દ પણ કાલ નામના દ્રવ્યને પ્રગટ કરે છે, સર્વજ્ઞ ભગવાન દ્વારા કહેવામા આવેલા એ કાલ આદિ શબ્દ વાસ્તવિક વસ્તુના બોધક છે, કેમકે એ સમાસરહિત પદ છે અને શુદ્ધ એક પદ છે જે પદ સમાસરહિત અને શુદ્ધ એક પદ હોય છે, તે વાસ્તવિક પદાર્થના જ બોધક હોય છે જેમ રૂપ આદિ

વર્તનાહેતુત્વ, અસ્તિત્વ, જ્ઞેયત્વ આદિ ગુણોનો આધાર હોવાથી, તથા ભૂતકાલ, ભવિષ્યકાલ અને વર્તમાનકાલ આદિ પર્યાયોનો આશ્રય હોવાથી કાલનુ દ્રવ્યપણુ

याभवतया च तस्य द्रव्यत्वं सिद्ध्यति, तस्मात् 'षष्ठं द्रव्यं कालः' इति युक्त्योपपत्त्या च सिद्धम् ।

आगमोऽप्यत्र प्रमाणमिति चक्षुरुद्घाट्य पश्य—

"कइ णं भंते ! दव्वा पण्णत्ता ?, गोयमा छ दव्वा पण्णत्ता, तं जहा धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्धासमए," इति ।

कति खलु भदन्त ! द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! षड् द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा—धर्मास्तिकाय , अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः, जीवास्तिकायः, अद्धासमय । इति छाया ।

'कइविहा णं भंते ! सव्वदव्वा पण्णत्ता ?, गोयमा ! छव्विहा सव्वदव्वा पण्णत्ता, तंजहा—धम्मत्थिकाए, जाव अद्धासमए' इति । (भगवती श० २५, उ० ४)

द्रव्यपन सिद्ध होता है अतएव युक्ति तथा उपपत्ति से कालनामक छठा द्रव्य सिद्ध हुआ ।

आंख खोल कर देखो इस विषय में आगम—प्रमाण भी विद्यमान है—

"कइ णं भंते ! दव्वा पण्णत्ता ! गोयमा ! छ दव्वा पण्णत्ता, तंजहा धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्धासमए ।"

સિદ્ધ થાય છે એટલા કારણથી યુક્તિ તથા ઉપપત્તિ (પુરાવા-પ્રમાણ)થી કાલ નામનું છઠ્ઠું દ્રવ્ય સિદ્ધ થાય છે

આંખ ઉઘાડીને જુઓ આ વિષયમાં આગમ-પ્રમાણ પણ વિદ્યમાન છે—

"કઇ ણં ભંતે ! દવ્વા પણ્ણત્તા ?, ગોયમા ! છ દવ્વા પણ્ણત્તા, તંજહા ધમ્મત્થિકાએ, અધમ્મત્થિકાએ, આગાસત્થિકાએ, પુગ્ગલત્થિકાએ, જીવત્થિકાએ, અદ્ધાસમએ ।

અર્થાત્– ભગવન્ દ્રવ્ય કેટલાં છે ? ગૌતમ ! દ્રવ્ય છ છે–ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય આકાશાસ્તિકાય, પુદ્ગલાસ્તિકાય જીવાસ્તિકાય અને અદ્ધાસમય અર્થાત્ કાલ.

તથા— કઇવિહા ણં ભંતે ! સવ્વદવ્વા પણ્ણત્તા ? ગોયમા ! છવ્વિહા સવ્વદવ્વા પણ્ણત્તા, તંજહા-ધમ્મત્થિકાએ અધમ્મત્થિકાએ, જાવ અદ્ધાસમએ ।"

कतिविधानि खलु भदन्त! सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि?, गौतम! षड्विधानि सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा–धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, यावत्–अद्धासमयः, इति च्छाया।

" धम्मो अधम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो " ॥८॥ (उत्त० अ० २८)
धर्मोऽधर्मः आकाशः, द्रव्यमेकैकमाख्यातम्
अनन्तानि च द्रव्याणि, कालः पुद्गला जन्तवः। इति च्छाया।

कालस्य स्वरूपम्—

अर्धतृतीयद्वीपव्यापी, निर्विभागोऽनाद्यपर्यवसितः,
एकोवर्तमानः समयः कालपदार्थः। एकत्वादेवास्तिकायो नायम्।

अर्थात्–'भगवन्! सब द्रव्य कितने हैं?' 'गौतम! सब द्रव्य छह है– धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यावत् अद्धा–समय' (भगवतीसूत्र श २५ उ ४)

उत्तराध्ययन सूत्र (अ २८) में भी कहा है – 'धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य एक एक कहे गये है। काल, पुद्गल और जीव अनन्त–अनन्त है" इति।

काल का स्वरूप—

समयक्षेत्रव्यापी, निर्विभाग, आद्यन्तरहित, एकप्रदेशरूप वर्तमान समय को 'काल' कहते हैं। यह एक होने के कारण अस्तिकाय नहीं है।

અર્થાત્–'ભગવન્! સર્વ દ્રવ્ય કેટલા છે? ગૌતમ! સર્વ દ્રવ્ય છ છે–ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય યાવત્ અદ્ધાસમય' (ભગવતી શ ૨૫. ઉ ૪) ઉત્તરાધ્યયનસૂત્ર (અ ૨૮) મા પણ કહ્યુ છે–ધર્મ, અધર્મ, અને આકાશ દ્રવ્ય એક એક કહ્યુ છે, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવ અનત–અનત છે

કાલનુ સ્વરૂપ—

સમયક્ષેત્ર (અઢીદ્વીપ) વ્યાપી, નિર્વિભાગ (જેનો ભાગ ન પડે તેવુ), આદ્યન્ત–રહિત, એકપ્રદેશરૂપ વર્તમાન સમયને કાલ કહે છે, આ એક હોવાના કારણથી 'અસ્તિકાય' નથી.

सूर्यचन्द्रादिज्योतिष्काणां गतिमाश्रित्य कालविभागो भवति, गतिश्च मनुष्यलोकाभ्यन्तर एव तेषाम्। दिवसरात्रिमुहूर्तपक्षमासऋत्वयनवर्षयुगादीनां विभागः सूर्यादिगत्यैव लोके भवति। एवमतीतवर्तमानादयो विभागा। यस्तु संख्यातुमशक्य उपमानमात्रगम्य कालः सोऽसंख्येयः, यथा-पल्योपम, सागरोपम इत्यादि। असंख्येयाविकालज्ञानमपि भगवता मनुष्यलोकप्रसिद्धो पमानप्रदर्शनेन प्ररूपितम्।

सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्कों की गति का आश्रयण कर काल का विभाग होता है। सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्कों की गति मनुष्यलोक के अन्दर में ही होती है। दिन, रात मुहूर्त पक्ष मास, ऋतु, अयन वर्ष युग आदि का विभाग सूर्य आदि की गति से ही लोक में होता है। इसी प्रकार अतीत, वर्तमान आदिका विभाग भी समझना चाहिये। जिसकी संख्या नहीं हो सकती, जो उपमान मात्र से गम्य है, वह काल असंख्येय है, जैसे—पल्योपम सागरोपम इत्यादि। असंख्येय आदि काल का ज्ञान भी मनुष्यलोकप्रसिद्ध उपमान का प्रदर्शन करके भगवान ने प्ररूपित किया है, समय आवलिका आदि सूक्ष्म काल तो सूर्यादिज्योतिष्कों की गति से नहीं जाना जाता है, क्यों कि वह अति सूक्ष्म है। इस लिये कालका व्यवहार समयक्षेत्र के भीतर ही होता है। समयक्षेत्र के बाहर जीवों के आयुष्य आदि की गणना मनुष्यक्षेत्रप्रसिद्ध प्रमाण से ही होती है।

સૂર્ય ચન્દ્ર આદિ જ્યોતિષ્કોની ગતિના આશ્રયથી કાલનો વિભાગ થાય છે સૂર્ય ચન્દ્ર આદિ જ્યોતિષ્કોની ગતિ મનુષ્ય લોકમાં જ હોય છે દિન રાત, મુહૂર્ત, પક્ષ, માસ ઋતુ, અયન, વર્ષ યુગ આદિના વિભાગ સૂર્ય આદિની ગતિથી જ લોકમાં થાય છે આ પ્રકારે અતીત (ભૂતકાળ) વર્તમાન આદિના વિભાગ પણ સમજવા જોઇએ. જેની ગણતરી ન થઈ શકે જે ઉપમાન માત્રથી ગમ્ય (સમજી શકાય તેવુ) છે તે કાલ અસંખ્યેય છે જેમકે—પલ્યોપમ સાગરોપમ ઈત્યાદિ. અસંખ્યેય આદિ કાળનુ જ્ઞાન પણ ભગવાને મનુષ્યલોકપ્રસિદ્ધ ઉપમાનનુ પ્રદર્શન કરી પ્રરૂપિત કર્યું છે સમય, આવલિકા આદિ સૂક્ષ્મ કાલ તો સૂર્યાદિ જ્યોતિષ્કોની ગતિથી પણ જાણી શકાતુ નથી, કેમકે તે અતિ સૂક્ષ્મ છે આથી કાલનો વ્યવહાર સમયક્ષેત્ર-અઢી દ્વીપની અંદર જ થાય છે સમયક્ષેત્રથી બહાર જીવોના આયુષ્ય આદિની ગણના થાય છે તે મનુષ્યક્ષેત્રપ્રસિદ્ધ પ્રમાણથી જ થાય છે એમ સમજી લેવુ

समयावलिकादिसूक्ष्मकालस्तु सूर्यादिज्योतिष्काणां गत्या नावगम्यः, अतिसूक्ष्मत्वात्। तस्मात् कालव्यवहारोऽर्धतृतीयद्वीप एव। अर्द्धतृतीयद्वीपाद्बहि-र्जीवानामायुष्कादिगणना तु मनुष्यक्षेत्रप्रसिद्धप्रमाणेनैव भवतीति ज्ञेयम्।

एकोऽपि कालोऽतीतानागतपर्यायभेदैरनन्तः, अत एव भगवता–"अणताणि य दव्वाणि कालो पुग्गल जंतवो" इत्युपदिष्टम्। वर्तमानसमयस्य तु पर्यायत्वेऽपि नानन्त्यम्, एकरूपत्वात्।

निश्चयनयेन तु "लोकव्यापी कालः' इत्यवसीयते, अत एव भगवता–"धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुग्गल जंतवो। एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं"। इत्यभिहितम्। धर्मोऽधर्म आकाशः कालः पुद्गला जन्तवः। एष लोक इति प्रज्ञप्तः, जिनवरदर्शिभिः। इति च्छाया।

काल यद्यपि एक ही है, तो भी वह भूत–भविष्यत्पर्याय भेद से अनन्त है, इसीलिये भगवानने कहा है—'अणंताणि य द्रव्वाणि कालो पुग्गल जंतवो' इति।–काल, पुद्गल और जीव, ये सभी अनन्त है। वर्तमान समय पर्यायसहित होते हुए भी अनन्त नहीं है, क्योंकि वह एक ही है।

निश्चयनय से तो काल लोकव्यापी माना जाता है, अतएव भगवानने कहा है—

"धम्मो अधम्मो आगास, कालो पुग्गल जतवो।
एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदसिहिं" ॥ १ ॥

જો કે કાલ એક જ છે તો પણ ભૂત ભવિષ્યના ભેદથી અનન્ત છે, તેથી ભગવાને કહ્યુ છે–' अणताणि य दव्वाणि कालो पुग्गल जतवो ' इति, કાલ પુદ્ગલ અને જીવ એ દ્રવ્યો અનન્ત છે વર્તમાન સમય પર્યાયસહિત હોવા છતા પણ અનન્ત નથી કેમકે તે એક જ છે

નિશ્ચયનયથી તો કાલ લોકવ્યાપી માનવામા આવે છે આથી ભગવાને કહ્યુ છે કે–
" धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुग्गल जंतवो।
एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं" ॥

વરદર્શી–લોકાલોકને જોવાવાળા જિન ભગવાને 'ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, કાલ, પુદ્ગલાસ્તિકાય અને જીવાસ્તિકાય, એજ લોક છે' એમ કહ્યુ છે

एष सामान्यरूपेण प्रसिद्धो लोकः-अनन्तरोक्तद्रव्यषट्कसमुदायरूप इति भावः।

कालस्य—(१)—अरूपित्वम्, (२)—अचेतनत्वम्, (३)—अक्रियत्वम्, (४)—वर्तनाहेतुत्वं चेति गुणाः। (१)—अतीतत्वम्, अनागतत्वम्, (२)—वर्तमानत्वं, (३)—अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते। यथा-द्रव्यत एकः कालः क्षेत्रतः-अर्धतृतीयद्वीपप्रमाणः, कालतः-आद्यन्तरहितः, भावतः-अरूपी-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जित इति, गुणतः-वर्तनालक्षणः, इति।

अरदर्शी—लोकालोक को देखनेवाले जिन भगवानने धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय काल पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय इन सबको अर्थात् इनके समुदाय को लोक कहा है।

उपरिनिर्दिष्ट छ द्रव्यों के समुदाय को भगवानने सामान्यतया लोक कहा है।

काल के—अरूपित्व अचेतनत्व अक्रियत्व वर्तनाहेतुत्व ये चार गुण हैं। अतीतत्व अनागतत्व वर्तमानत्व, अगुरुलघुत्व ये चार पर्याय हैं।

यह काल-द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जाना जाता है। जैसे—द्रव्य से काल एक है, क्षेत्र से समयक्षेत्रप्रमाणवाला काल से आद्यन्तरहित भाव से अरूपी, अर्थात् वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित और गुण से वर्तनालक्षणवाला है।

ઉપર દર્શાવેલા છ દ્રવ્યોના સમુદાયને ભગવાને સામાન્ય રીતે લોક કહેલ છે

કાળના-અરૂપિત્વ, અચેતનત્વ, અક્રિયત્વ અને વર્તનાહેતુત્વ, એ ચાર ગુણ છે અને અતીતત્વ અનાગતત્વ વર્તમાનત્વ તથા અગુરુલઘુત્વ એ ચાર પર્યાય છે

આ કાળ-દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ ભાવ અને ગુણના ભેદથી પાંચ પ્રકારે જણાય છે જેમકે-દ્રવ્યથી કાળ એક ક્ષેત્રથી અઢીદ્વીપ પ્રમાણ કાળથી આદ્યન્તરહિત, ભાવથી અરૂપી-વર્ણ-ગન્ધ-રસ-સ્પર્શ-રહિત છે અને ગુણથી વર્તનાલક્ષણવાળો છે

अथ पुद्गलास्तिकायः ।

तत्र–पुद्गलशब्दार्थः ।

पूर्यते=संहन्यते–परस्परं संयुज्य संघीभूय नूतनघनघटावदेकीभवति, गलति च=विच्छिन्नमुक्तावलीमणिवद् विकीर्णो भवति–इति पुद्गलः । पूरण–गलन–धर्म इत्यर्थः । पुद्गलश्चासावस्तिकायश्चेति पुद्गलास्तिकायः ।

पुद्गलास्तिकायस्य घटादिकार्यान्यथानुपपत्तेः प्रत्यक्षदर्शनाच्च सत्ता सिद्धैव ।

पुद्गलास्तिकाय—

'पुद्गल' शब्द का अर्थ—

आपस में मिलकर इकट्ठे होकर नवीन घटघटादि के रूप में जो एकमेक हो जाते है, और जो गल जाते है अर्थात् टूटी हुई मोतियों की माला की भाति बिखर जाते है, वे पुद्गल कहलाते है । तात्पर्य यह है कि—जिसमें पूरण और गलन धर्म हो वह पुद्गल है, पुद्गलरूप अस्तिकाय 'पुद्गलास्तिकाय' कहलाता है ।

अगर 'पुद्गलास्तिकाय' न होता तो घट आदि कार्य नही बन सकते थे। इस कारण, तथा प्रत्यक्ष दिखाई देने के कारण भी पुद्गलास्तिकाय की सत्ता भलीभाति सिद्ध है ।

પુદ્ગલાસ્તિકાય—

પુદ્ગલ શબ્દનો અર્થ—

પરસ્પર મળીને એકત્ર થઈને નવીન ઘન–ઘટાદિના રૂપમા જે એક–મેક થઈ જાય છે, અને જે ગળી જાય છે અર્થાત્ તુટી ગએલી મોતીઓની માળા પ્રમાણે વિખાઈ જાય છે, તે પુદ્ગલ કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે–જેમા પૂરણ અને ગાલન ધર્મ હોય તે પુદ્ગલ છે, પુદ્ગલરૂપ અસ્તિકાય તે પુદ્ગલાસ્તિકાય કહેવાય છે

અગર પુદ્ગલાસ્તિકાય ન હોત તો ઘટ આદિ કાર્ય બની શકત નહિ આ કારણથી, તથા પ્રત્યક્ષ દેખી શકાય છે તે કારણથી પણ પુદ્ગલાસ્તિકાયની સત્તા રૂડી રીતે સિદ્ધ છે.

पुद्गललक्षणम्—

रूपवत्त्वं पुद्गलानां लक्षणम्, अत्र रूपं मूर्तत्वपर्णादिकम्। यद्यपि परमाणुप्रभृतयः सूक्ष्माः पुद्गलास्तेषां गुणाश्चातीन्द्रियतया नेन्द्रियैर्गृह्यन्ते तथापि बादरस्कंधरूपे परिणामविशेषे तेषामेवेन्द्रियग्राह्यतया रूपवत्त्वं प्रतीयते।

अतीन्द्रिये परमाणुप्रभृतिपुद्गलेऽप्यतीन्द्रिये धर्मास्तिकायादौ चैतावान् विशेषः— धर्मास्तिकायादीनामिन्द्रियविषयत्वाभावादतीन्द्रियत्वमरूपित्वं च, परमाणुप्रभृतिपुद्गलानां त्वतीन्द्रियत्वेऽपि रूपित्वमिति।

पुद्गल का लक्षण—

पुद्गलोंका लक्षण 'रूपवत्त्व' है। जिस में रूप, रस गन्ध और स्पर्श पाया जाय अर्थात् जो मूर्तिक हो वह पुद्गल है। यद्यपि परमाणु आदि पुद्गल बहुत सूक्ष्म हैं, और अतीन्द्रिय होने के कारण उनके गुण इन्द्रियों द्वारा नहीं ग्रहण किये जाते, तथापि जब उन पुद्गलों का बादर स्कन्ध के रूपमें परिणमन होता है तब वे इन्द्रियोंद्वारा ग्राह्य हो जाते हैं और उनका रूपवत्त्व प्रतीत होने लगता है।

परमाणु आदि अतीन्द्रिय पुद्गलों में और धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय द्रव्यों में इतना अन्तर है कि–धर्मास्तिकाय आदि अरूपी द्रव्य कभी इन्द्रियों के विषय नहीं होते अत वे अतीन्द्रिय और अरूपी हैं किन्तु परमाणु आदि पुद्गल अतीन्द्रिय होने पर भी रूपी हैं।

પુદ્ગલનું લક્ષણ—

પુદ્ગલોનું લક્ષણ રૂપવત્ત્વ છે; જેમાં રૂપ, રસ, ગંધ અને સ્પર્શ જોવામાં આવે અર્થાત્ જે મૂર્તિમાન હોય તે પુદ્ગલ છે જો કે પરમાણુ આદિ પુદ્ગલ બહુ જ સૂક્ષ્મ છે અને અતીન્દ્રિય હોવાના કારણે તેના ગુણ ઇન્દ્રિયો દ્વારા ગ્રહણ કરી શકાતા નથી; તો પણ જ્યારે તે પુદ્ગલોનું બાદર સ્કંધના રૂપમાં પરિણમન થાય છે ત્યારે તે ઇન્દ્રિયો દ્વારા ગ્રહણ થઈ જાય છે અને તેનું રૂપવત્ત્વ પ્રતીત થવા લાગે છે.

પરમાણુ આદિ અતીન્દ્રિય પુદ્ગલોમાં અને ધર્માસ્તિકાય વગેરે અતીન્દ્રિય દ્રવ્યોમાં એટલું અન્તર-ફેરફાર છે કે-ધર્માસ્તિકાય આદિ અરૂપી દ્રવ્ય ક્યારેય પણ ઇન્દ્રિયોના વિષય થતા નથી, તેથી તે અતીન્દ્રિય અને અરૂપી છે પરન્તુ પરમાણુ આદિ પુદ્ગલ અતીન્દ્રિય હોવા છતાંય રૂપી છે

पुद्गलानां प्रदेशसंख्या—

परमाणुमारभ्याचित्तमहास्कन्धपर्यन्ताः पुद्गला विविधपरिणामा भवन्ति। तेषां प्रदेशाः संख्याता असंख्याता अनन्ताश्च यथासंभवं भवन्ति। तत्र-संख्यातपरमाणुसंयोगसंजातः स्कन्ध संख्यातप्रदेशी, असंख्यातपरमाणुघटितः स्कन्धोऽसंख्यातप्रदेशी, अनन्तपरमाणुसंहतिसमुद्भूतश्च स्कन्धोऽनन्तप्रदेशी भवति। परमाणोस्तु निरंशत्वान्नास्ति प्रदेश इति।

पुद्गलानां क्षेत्रस्थितिः—

परमाणौ विभागाभावादेकस्मिन्नेव प्रदेशे लोकाकाशस्य परमाणुरव-

पुद्गलों की प्रदेशसंख्या—

परमाणुसे लेकर अचित्त महास्कन्ध तक सब पुद्गल विविध परिणमन वाले होते हैं। उनके प्रदेश यथासम्भव सख्यात असख्यात अथवा अनन्त होते हैं। सख्यात परमाणुओं के सयोग से बना हुआ स्कन्ध सख्यातप्रदेशी कहलाता है। असख्यात परमाणुओं-से बना हुआ स्कन्ध असख्यातप्रदेशी और अनन्त परमाणुओं से निष्पन्न स्कन्ध अनन्त प्रदेशी कहलाता है। परमाणु निरश होता है—उसके अनेक भाग नहीं हो सकते, अत एव वह अप्रदेशी है।

पुद्गलों की क्षेत्रस्थिति—

परमाणु के विभाग न होने के कारण लोकाकाश के एक ही प्रदेश में उसकी

પુદ્ગલોની પ્રદેશસંખ્યા—

પરમાણુથી લઇને અચિત્ત મહાસ્કંધ સુધી સર્વ પુદ્ગલ વિવિધ પરિણમનવાળા હોય છે તેના પ્રદેશ યથાસંભવ સંખ્યાત, અસંખ્યાત અથવા અનન્ત હોય છે. સંખ્યાત પરમાણુઓના સંયોગથી બનેલા સ્કંધ સંખ્યાતપ્રદેશી કહેવાય છે, અસંખ્યાત પરમાણુઓથી બનેલા સ્કંધ અસંખ્યાતપ્રદેશી અને અનન્ત પરમાણુઓથી નિષ્પન્ન સ્કંધ અનન્ત-પ્રદેશી કહેવાય છે પરમાણુ નિરંશ હોય છે, તેના અનેક ભાગ થઈ શકતા નથી તેથી તે અપ્રદેશી છે

પુદ્ગલોની ક્ષેત્રસ્થિતિ—

પરમાણુમાં વિભાગ નહિ હોવાના કારણે લોકાકાશના એક જ પ્રદેશમાં તેની

गाह्यते। द्व्यणुकस्कन्धश्च तस्यैकस्मिन् प्रदेशे, द्वयोश्च प्रदेशयोरवगाह्यते। तथा त्र्यणुकस्कन्धो लोकाकाशस्यैकस्मिन् प्रदेशे, द्वयोः प्रदेशयोस्त्रिषु प्रदेशेषु चावगाह्यते। एवं चतुरणुकादीनां संख्यातप्रदेशाऽसंख्यातप्रदेशानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामवगाहनं लोकाकाशस्यैकप्रदेशमारभ्य संख्याताऽसंख्यातप्रदेशपर्यन्तेषु भवति।

नन्वेकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽल्पीयसि कथमनन्तप्रदेशिनः स्कन्धाः स्थानं लभन्ते, न हि कलशे सिन्धोः समावेशं पश्यामः ?

अवगाहना होती है। द्व्यणुक अर्थात् दो परमाणु वाला स्कन्ध लोकाकाश के एक प्रदेश में या दो प्रदेशों में अवगाहन करता है। इसी प्रकार तीन परमाणुओं वाला स्कन्ध लोकाकाश के एक प्रदेश में, दो प्रदेशों में अथवा तीन प्रदेशों में अवगाहन करता है। इसी भांति चतुरणुक (चार अणुओं वाले) आदि स्कन्धों की अवगाहना, तथा संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी तक के स्कन्धों की अवगाहना लोकाकाश के एक प्रदेश से लेकर संख्यात तथा असंख्यात प्रदेशों में होती है।

शंका—आकाश के एक छोटे से प्रदेश में अनन्तप्रदेशी स्कन्ध का समावेश किस प्रकार हो सकता है, गागर में सागर का समावेश होना तो कहीं दिखाई नहीं देता।

અવગાહના હોય છે દ્વયણુક અર્થાત્ બે પરમાણુવાળા સ્કંધ લોકાકાશના એક પ્રદેશમાં અથવા બે પ્રદેશોમાં અવગાહન કરે છે એ પ્રમાણે ત્રણ અણુઓવાળા સ્કંધ લોકાકાશના એક પ્રદેશમા, બે પ્રદેશોમાં અથવા ત્રણ પ્રદેશોમા અવગાહન કરે છે એ પ્રમાણે જ ચાર અણુઓવાળા આદિ સ્કંધોની અવગાહના, તથા સંખ્યાતપ્રદેશી, અસંખ્યાતપ્રદેશી અને અનન્તપ્રદેશી સુધીના સ્કંધોની અવગાહના લોકાકાશના એક પ્રદેશથી લઈને સંખ્યાત તથા અસંખ્યાત પ્રદેશોમાં હોય છે

શંકા—આકાશના એક નાના પ્રદેશમાં અનન્ત પ્રદેશી સ્કંધનો સમાવેશ કેવી રીતે થઈ શકે, ગાગરમાં સાગરનો સમાવેશ થયેલો કોઈ ઠેકાણે દેખાતો નથી ?

अत्र ब्रूमः–पुद्गलस्य परिणमनशक्तिरेव तादृशी यतः परमसूक्ष्मस्तादृशः परिणामो जायते, येनानन्तप्रदेशिन स्कन्धाः प्रदेशमेकं नभसः प्रविशन्ति। अथवा गगनस्य तादृशी विचित्राऽवगाहदानशक्तिर्यतोऽनन्तप्रदेशिनां स्कन्धाना तस्यैकस्मिन् प्रदेशे समावेशः सिध्यति। यथा अतिघनीभूतलोहगोलकावगाहनान्निरवकाशे किलाकाशदेशे भस्त्रानिलसमुद्भूताः पावकावयवाः समाविशन्ति। यदि रन्ध्ररहिताऽयोगोलकं शीतलीकर्तुं वारि निक्षिप्यते, तदा तदयोगोलकपरिपूरितनिरन्तराकाशदेशे तस्मिन्नेव वारिकणा अव्याहतं प्रविशन्ति।

समाधान—पुद्गल मे परिणमनशक्ति ही ऐसी है, जिससे उसका अत्यन्त सूक्ष्म परिणमन होता है। इसी कारण अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी आकाश के एक प्रदेश में समा जाते हैं। अथवा आकाश में ऐसी कुछ विचित्र अवकाशदान करने की शक्ति है कि उसके कारण अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का भी आकाश के एक ही प्रदेश में समावेश हो जाता है। जैसे—अत्यन्त सघन लोहे के गोले के अवगाहन से निरवकाश आकाश-प्रदेश में धौकनी की वायु से वृद्धि पाये हुए अग्नि के अवयव प्रवेश कर जाते हैं। तात्पर्य यह है कि—लोहे का गोला वहुत ठोस होता है, वह आकाश के जिन प्रदेशों में मौजूद है, वहा जगह दिखाई नहीं देती, फिर भी धैंकनी की वायु की प्रेरणासे उन्हीं आकाश प्रदेशों में अग्नि का प्रवेश हो जाता है, तत्पश्चात् छिद्ररहित उस लोहे के गोले को ठडा करने के लिये उस पर पानी डाला जाय तो जिन आकाश प्रदेशों में लोहे का गोला और पावक–अग्नि है, उन्हीं में जल के कण भी वेरोकटोक प्रवेश कर जाते हैं।

સમાધાન—પુદ્ગલોમા પરિણમનશક્તિ જ એવી છે જેથી તેનુ અત્યન્ત સૂક્ષ્મ પરિણમન હોય છે એ કારણે અનન્તપ્રદેશી સ્કધ પણ આકાશના એક પ્રદેશમાં સમાઈ જાય છે. અથવા આકાશમા એવી કોઈ વિચિત્ર અવકાશદાન કરવાની શક્તિ છે કે—તે કારણથી અનન્તપ્રદેશી સ્કધોનો પણ આકાશના એક જ પ્રદેશમા સમાવેશ થઈ જાય છે જેમકે—અત્યન્ત સઘન લોઢાના ગોળાના અવગાહનથી નિરવકાશ આકાશ પ્રદેશમા ધમણના વાયુથી વૃદ્ધિ પામેલા અગ્નિના અવયવો પ્રવેશ કરી જાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે–લોઢાનો ગોળો બહુ જ ઠોસ (પોલાણ વિનાનો) હોય છે, તે આકાશના જે પ્રદેશોમા મોજુદ છે, ત્યા જગ્યા દેખાતી નથી. તો પણ ધમણના વાયુની પ્રેરણાથી તે આકાશ પ્રદેશોમા અગ્નિનો પ્રવેશ કરી જાય છે તે પછી છિદ્રરહિત તે લોઢાના ગોળાને ઠડો કરવા માટે તેના ઉપર પાણી નાખવામા આવે તો જે આકાશ–પ્રદેશોમા લોઢાનો ગોળો અને અગ્નિ છે, તેમા પાણીના ટીપા પણ રોક–ટોક (અટકાવ્યા) વિના પ્રવેશ કરી જાય છે

यथा वा एकप्रदीपप्रभायामनेकप्रदीपप्रभासमावेशः। यथा वा एककर्षपरिमितपारदे शतकर्षपरिमितसुवर्णसमावेशो भवति।

अनन्तप्रदेशिरूपोऽचित्तमहास्कन्धः केवलिसमुद्घातवत् सकललोकव्यापी भवति। स च विस्रसागत्या प्रथमसमयेऽसंख्यातयोजनविस्तरेण दण्डाकारेण परिणमति। द्वितीयसमये कपाटरूपेण, तृतीयसमये मन्थानरूपेण, चतुर्थसमये प्रतरमापूर्य सकललोकं व्याप्नोति, पञ्चमसमये प्रतरं संहरति, षष्ठसमये मन्थानं मनक्ति, सप्तमसमये कपाटं च, अष्टमसमये दण्डाकारं संहृत्य खण्डशः प्रविकीर्णो भवति।

अथवा—एक दीपक के प्रकाश में अनेक दीपकों का प्रकाश समा जाता है।

अथवा एक कर्ष—मासा (मापविशेष) परिमित पारे में सौ कर्ष परिमित सोने का समावेश हो जाता है।

अनन्तप्रदेशी अचित्त महास्कन्ध केवलिसमुद्घात के समान समस्तलोक-व्यापी होता है। वह स्वाभाविक गति से, प्रथम समय में असंख्यातयोजनविस्तृत दण्ड के आकार में परिणत होता है। दूसरे समय में वह कपाट के रूप में परिणत होता है, और तीसरे समय में मंथान के रूप में हो जाता है, चौथे समय में प्रतर पूर्ण करके सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाता है। फिर पांचवें समय में प्रतर को सिकोड़ता है, छठे समय में मंथान को, सातवें समय में कपाट को, और आठवें समय में दण्डाकार को वह सिकोड़ता है। उसके अनन्तर वह खण्ड खण्ड होकर बिखर जाता है।

અથવા—એક દીપકના પ્રકાશમાં અનેક દીપકોના પ્રકાશ સમાઈ જાય છે અથવા એક કર્ષ (માપવિશેષ) પરિમિત પારામાં એકસો કર્ષ પરિમિત સોનાનો સમાવેશ થઈ જાય છે.

અનન્તપ્રદેશી અચિત્ત મહાસ્કંધ, કેવલિસમુદ્ઘાતની સમાન સમસ્તલોકવ્યાપી હોય છે તે સ્વાભાવિક ગતિથી પ્રથમ સમયમાં અસંખ્યાતયોજનવિસ્તૃત દંડના આકારમાં પરિણત થાય છે. બીજા સમયમાં તે કપાટના રૂપમાં પરિણત થાય છે અને ત્રીજા સમયમાં મથાન (દહીં વલોવવાનો રવૈયો)ના રૂપમાં થાય છે ચોથા સમયમાં પ્રતર પૂર્ણ કરીને લોકમાં વ્યાપ્ત થઈ જાય છે. ફરી પાંચમા સમયમાં પ્રતરને સંકોચે છે છઠ્ઠા સમયમાં મથાનને, સાતમા સમયમાં કપાટને અને આઠમા સમયમાં દંડાકારને એ સિકોડે છે ત્યાર પછી તે ખંડ-ખંડ થઈને વિખેરાઈ જાય છે.

पुद्गलानामुपकारः—

शरीरवाङ्मनःप्राणादयः पुद्गलपरिणामा गमनाऽऽदान-वचन-चिन्तन-प्राणनादिभावेन जीवानुपकुर्वन्ति, अतः शरीराद्याकारेण पुद्गला जीवानामुपकार कुर्वन्ति। तत्र शरीरं पञ्चविधम्, औदारिकं, वैक्रियम्, आहारक, तैजसं, कार्मणं चेति।

अथ जीवानां ये सुखदुःखजीवितमरणरूपाः परिणामा भवन्ति तत्र सुखादिरूपेण जीवपरिणामे निमित्तं पुद्गला इति सिद्ध जीवोपकारित्वं पुद्गलानाम्।

पुद्गलों का उपकार—

शरीर, वचन, मन और प्राण आदि पुद्गलों के परिणामविशेष–गमन, आदान, वचन, चिन्तन और प्राणन (सांस लेना) आदिरूप से जीवों का उपकार करते हैं अत शरीर आदि के रूप में पुद्गल ही जीवों का उपकार करते है। इनमें शरीर पांच प्रकार का है—(१) औदारिक (२) वैक्रिय (३) आहारक (४) तैजस और (५) कार्मण।

प्राणियों में सुख दु ख जीवन और मरण रूप जो परिणाम होते है, उन सब परिणामों में पुद्गल कारण है, अत यह सिद्ध हुआ कि पुद्गल जीवों का उपकार करते हैं।

પુદ્ગલોના ઉપકાર—

શરીર, વચન, મન અને પ્રાણ આદિ પુદ્ગલોના પરિણામવિશેષ–ગમન, આદાન, વચન, ચિંતન અને પ્રાણન (શ્વાસ લેવો) આદિ રૂપથી જીવોના ઉપકાર કરે છે, એટલે શરીર આદિના રૂપમા પુદ્ગલ જ જીવોના ઉપકાર કરે છે, તેમા શરીર પાચ પ્રકારના છે–(૧) ઔદારિક, (૨) વૈક્રિય, (૩) આહારક, (૪) તૈજસ અને (૫) કાર્મણ.

પ્રાણીઓમા સુખ, દુ ખ, જીવન અને મરણરૂપ જે પરિણમન થાય છે, તે સર્વ પરિણામોમા પુદ્ગલ કારણરૂપ છે તેથી એ સિદ્ધ થાય છે કે પુદ્ગલ જીવોના ઉપકાર કરે છે

पुद्गलानां विशेषगुणाः—

वर्णगन्धरसस्पर्शाः पुद्गलानां विशेषगुणाः सहभाविनः परिणामाः। शब्द–बन्ध–सौक्ष्म्य–स्थौल्य–संस्थान–भेद–तम–श्छाया–ऽऽतपो–द्योतादिभिः पर्यायैः पुद्गला लक्ष्यन्ते-ज्ञायन्ते, इत्याशयेन भगवता पुद्गलानां लक्षणतया शब्दादयः प्रोक्ताः। तथाहि—

"सद्दंधयार उज्जोओ, पभा छायाऽऽतवुत्ति वा

वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाण तु लक्खणं ॥१॥" (उत्त० अ० २८)

पुद्गलों के विशेष गुण—

वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श पुद्गलों के विशेष (असाधारण) गुण हैं—सहभावी परिणाम हैं। शब्द, बन्ध सूक्ष्मता स्थूलता, संस्थान (आकार) भेद, तम, छाया आतप उद्योत आदि पर्यायों के द्वारा पुद्गल लक्षा जाता है—जाना जाता है। इस आशय से भगवान् ने शब्द आदि को पुद्गलों का लक्षण कहा है, वह इस प्रकार— "सद्दंधयार उज्जोओ, पभा–छाया–ऽऽतवुत्ति वा, वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं" शब्द, अन्धकार उद्योत प्रभा छाया आतप वर्ण, रस गन्ध और स्पर्श ये सब पुद्गलों के लक्षण हैं। गाथा में 'छायाऽऽतवुत्ति' यहाँ 'इति' शब्द आदि के अर्थ में है। इस आदि शब्द से वर्ण आदि का ग्रहण हो सकता था फिर भी उन्हें अलग कहने का कारण यह है कि—वे नित्य सहभावी गुण हैं।

પુદ્ગલોના વિશેષ ગુણ—

વર્ણ ગંધ રસ અને સ્પર્શ પુદ્ગલોના વિશેષ (અસાધારણ) ગુણ છે—સહભાવી પરિણામ છે શબ્દ, બંધ સૂક્ષ્મતા, સ્થૂલતા સંસ્થાન (આકાર) ભેદ, તમ, છાયા આતપ ઉદ્યોત આદિ પર્યાયોથી લખી શકાય છે—જાણી શકાય છે તે આશયથી ભગવાને શબ્દ આદિ પુદ્ગલોનું લક્ષણ કહ્યું છે તે આ પ્રમાણે છે— "सद्दंधयार उज्जोओ पभा–छाया–ऽऽतवुत्ति वा वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं" શબ્દ અંધકાર ઉદ્યોત પ્રભા, છાયા, આતપ, વર્ણ રસ ગંધ અને સ્પર્શ એ પુદ્ગલોનું લક્ષણ છે ગાથામાં–'छायाऽऽतवुत्ति' આદિ 'इति' શબ્દ આદિના અર્થમાં છે એ પ્રમાણે આદિ શબ્દથી વર્ણ વગેરેનું ગ્રહણ થઈ શકે છે તો પણ તેને અલગ કહેવાનું કારણ એ છે કે તે નિત્ય સહભાવી ગુણ છે.

शब्दोऽन्धकार उद्योतः प्रभा छाया आतप इति वा। वर्णरसगन्धस्पर्शाः पुद्गलानां तु लक्षणम्। इति च्छाया।

"छायाऽऽतवुत्ति" इत्यत्र 'इति' शब्द आद्यर्थकः। तेनैव वर्णादीना ग्रहणेऽपि पुनरुपादानं नित्यसहभावित्वबोधनार्थम्।

तत्र वर्णः पञ्चधा, कृष्ण–नील–लोहित–पीत–शुक्ल–भेदात्। गन्धो द्विविधः–सुरभिरसुरभिश्च। रसः पञ्चविधः–तिक्त–कटु–कषाया–ऽम्ल–मधुर–भेदात्। स्पर्शोऽष्टधा–कठिन–मृदु–गुरु–लघु–शीतो–ष्ण स्निग्ध–रूक्ष–भेदात्। संस्थानं पञ्चविधम्–वृत्त–त्र्यस्र–चतुरस्र–ऽऽयत–परिमण्डल–भेदात्।

पुद्गलविभागः–

पुद्गलः संक्षेपतो द्विविधः–परमाणु–स्कंधभेदात्।

वर्ण पांच प्रकार का है–काला, नीला, लाल, पीला, और सफेद। सुगन्ध दुर्गन्ध के भेद से गन्ध दो प्रकार का है। रस के पाच भेद हैं––तीखा, कडुआ, कषैला, खट्टा, और मीठा। स्पर्श के आठ भेद हैं––कठिन, कोमल, भारी, हल्का, शीत, उष्ण, चिकना, और रूखा। सस्थान पाच प्रकार का है––वृत्त (गोल), त्र्यस्र (तिकोना), चतुरस्र (चौकोर), आयत (लम्बा) और परिमण्डल–(गोल–मटोल)

पुद्गल के भेद—

सक्षेप से पुद्गल के दो भेद हैं–परमाणु और स्कन्ध।

वर्ण पाच प्रकारना छे–काळो, लीलो, लाल, पीळो अने धोळो सुगंध अने दुर्गंधना भेदथी गंध बे प्रकारना छे रसना पाच भेद छे–तीखो, कडवो, कषायेलो, खाटो अने मीठो, स्पर्शना आठ भेद छे–कठण, कोमल, भारी, हलको, शीत, उष्ण, चिकणो अने रूक्ष सस्थान पांच प्रकारना छे–वृत्त–गोळ, त्रिकोण, चतुष्कोण, लाणु अने गोळमटोळ

પુદ્ગલોના ભેદ

સક્ષેપથી પુદ્ગલના બે ભેદ છે–(૧) પરમાણુ અને (૨) સ્કધ

परमाणुस्वरूपम्—

तत्र परमाणुश्च सकलविभागान्तवर्ती निरंशः परस्परासंयुक्तः, सूक्ष्मत्वादिन्द्रियव्यापारातीतः, एकैकवर्ण-गन्ध-रस-द्विस्पर्शयुक्तः, द्व्यणुकस्कन्धाद्यचित्तमहास्कन्धपर्यन्तानां स्थूल-सूक्ष्म-स्कन्धकार्याणां कारणरूपो नित्यश्चेति ।

उक्तञ्च भगवता भगवतीसूत्रे-(श० २० उ० ५)—

परमाणु का स्वरूप—

परमाणु, पुद्गल का अन्तिम विभाग है। वह निरंश है। परस्पर असंयुक्त है। सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों की उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। एक वर्ण, एक गन्ध एक रस और दो स्पर्शोंसे युक्त है। द्व्यणुक स्कन्धसे लेकर अन्तिम महास्कन्ध पर्यन्त स्थूल एवं सूक्ष्म स्कंधरूप कार्य का कारण है और नित्य है। भगवानने भगवतीसूत्र (श २, उ ५) में कहा है—

प्रश्न—भगवन्! परमाणु पुद्गल कितने वर्णवाला कितने गंध वाला, कितने रसवाला, और कितने स्पर्शवाला कहा गया है ?।

उत्तर—गौतम! एक वर्णवाला एक गंध वाला, एक रसवाला और दो स्पर्शवाला कहा गया है।

एक वर्णवाला होता है तो कदाचित् काला कदाचित् नीला, कदाचित् लाल,

પરમાણુ સ્વરૂપ—

પરમાણુ એ પુદ્ગલનો અંતિમ વિભાગ છે તે નિરંશ (અંશરહિત) છે પરસ્પર અસંયુક્ત છે સૂક્ષ્મ હોવાના કારણે ઇન્દ્રિયોની પ્રવૃત્તિ તેમાં થઈ શકતી નથી. એક વર્ણ એક ગંધ, એક રસ અને બે સ્પર્શોથી યુક્ત છે દ્વ્યણુક સ્કંધથી લઈને અંતિમ મહાસ્કંધ પર્યન્ત સ્થૂલ અને સૂક્ષ્મસ્કંધરૂપ કાર્યનું કારણ છે અને નિત્ય છે ભગવાને ભગવતી સૂત્ર (શ. ૨૦ ઉ ૫)માં કહ્યું છે—

પ્રશ્ન- 'ભગવન્! પરમાણુ પુદ્ગલ કેટલા વર્ણવાળુ કેટલા ગંધવાળુ, કેટલા રસવાળુ અને કેટલા સ્પર્શવાળુ કહ્યુ છે?

ઉત્તર—ગૌતમ! એક વર્ણવાળુ એક ગંધવાળુ એક રસવાળુ અને બે સ્પર્શવાળુ કહ્યુ છે"

"એક વર્ણવાળુ હોય છે તો કદાચિત્ કાળુ, કદાચિત્ નીલુ કદાચિત્ લાલ, કદાચિત્ પીળુ અને કદાચિત્ શ્વેત હોય છે. એક ગંધવાળુ હોય છે તો કદાચિત્

शब्दोऽन्धकार उद्योतः प्रभा छाया आतप इति वा । वर्णरसगन्धस्पर्शाः पुद्गलानां तु लक्षणम् । इति च्छाया ।

"छायाऽऽतपवृत्ति" इत्यत्र 'इति' शब्द आद्यर्थकः । तेनैव वर्णादीनां ग्रहणेऽपि पुनरुपादानं नित्यसहभावित्वबोधनार्थम् ।

तत्र वर्णः पञ्चधा, कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्ल-भेदात् । गन्धो द्विविधः-सुरभिरसुरभिश्च । रसः पञ्चविधः-तिक्त-कटु-कषाया-ऽम्ल-मधुर-भेदात् । स्पर्शोऽष्टधा-कठिन-मृदु-गुरु-लघु-शीतो-ष्ण स्निग्ध-रूक्ष-भेदात् । संस्थानं पञ्चविधम्-वृत्त-त्र्यस्र-चतुरस्र-ऽऽयत-परिमण्डल-भेदात् ।

पुद्गलविभागः-

पुद्गलः सक्षेपतो द्विविधः-परमाणु-स्कंधभेदात् ।

वर्ण पांच प्रकार का है-काला, नीला, लाल, पीला, और सफेद । सुगन्ध दुर्गन्ध के भेद से गन्ध दो प्रकार का है । रस के पाच भेद हैं--तीखा, कडुआ, कषैला, खट्टा, और मीठा । स्पर्श के आठ भेद हैं--कठिन, कोमल, भारी, हल्का, शीत, उष्ण, चिकना, और रूखा । सस्थान पांच प्रकार का है--वृत्त (गोल), त्र्यस्र (तिकोना), चतुरस्र (चौकोर), आयत (लम्बा) और परिमण्डल-(गोल-मटोल)

पुद्गल के भेद—

सक्षेप से पुद्गल के दो भेद है-परमाणु और स्कन्ध ।

વર્ણ પાચ પ્રકારના છે-કાળો, લીલો, લાલ, પીળો અને ધોળો સુગધ , અને દુર્ગંધના ભેદથી ગધ બે પ્રકારના છે રસના પાચ ભેદ છે-તીખો, કડવો, કષાયેલો, ખાટો અને મીઠો, સ્પર્શના આઠ ભેદ છે-કઠણ, કોમલ, ભારી, હલકો, શીત, ઉષ્ણ, ચિકણો અને રૂક્ષ સસ્થાન પાંચ પ્રકારના છે-વૃત્ત-ગોળ, ત્રિકોણ, ચતુષ્કોણ, લાબુ અને ગોળમટોળ

પુદ્ગલોના ભેદ

સક્ષેપથી પુદ્ગલના બે ભેદ છે-(૧) પરમાણુ અને (૨) સ્કધ

परमाणुस्वरूपम्—

अत्र परमाणुश्च सकलविभागान्तवर्ती निरंशः परस्परासंयुक्तः, सूक्ष्मत्वादि-न्द्रियव्यापारातीत, एकैकवर्ण-गन्ध-रस-द्विस्पर्शयुक्तः, द्व्यणुकस्कन्धाद्यचित्तमहा स्कन्धपर्यन्तानां स्थूल-सूक्ष्म-स्कन्धकार्याणां कारणरूपो नित्यश्चेति ।

उक्तञ्च भगवता भगवतीसूत्रे-(श २० उ० ५)—

परमाणु का स्वरूप—

परमाणु, पुद्गल का अन्तिम विभाग है। वह निरंश है। परस्पर असंयुक्त है। सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों की उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्शोंसे युक्त है। द्व्यणुक स्कन्धसे लेकर अन्तिम महास्कन्ध पर्यन्त स्थूल एवं सूक्ष्म स्कंधरूप कार्य का कारण है और नित्य है। भगवानने भगवतीसूत्र (श २०, उ० ५) में कहा है—

प्रश्न-भगवन्! परमाणु पुद्गल कितने वर्णवाला कितने गंध वाला, कितने रसवाला, और कितने स्पर्शवाला कहा गया है?।

उत्तर-गौतम! एक वर्णवाला एक गंध वाला, एक रसवाला और दो स्पर्शवाला कहा गया है।

एक वर्णवाला होता है तो कदाचित् काला कदाचित् नीला, कदाचित् लाल,

परमाणु स्वरूप—

परमाणु से पुद्गलनो अंतिम विभाग छे ते निरंश (अंशरहित) छे परस्पर असंयुक्त छे सूक्ष्म होवाना कारणे इन्द्रियोनी प्रवृत्ति तेमां थई शकती नथी. એક वर्ण એક गंध એક रस अने बे स्पर्शथी युक्त छे. द्व्यणुक स्कंधथी लईने अन्तिम महास्कंध पर्यन्त स्थूल अने सूक्ष्मस्कंधरूप कार्यनुं कारण छे अने नित्य छे भगवाने भगवती सूत्र (श. २ उ. ५.)मां कह्युं छे—

प्रश्न- 'भगवन्! परमाणु पुद्गल केटला वर्णवाळु केटला गंधवाळु केटला रसवाळु अने केटला स्पर्शवाळु कह्युं छे?

उत्तर-गौतम! એક वर्णवाळु એક गंधवाळु એક रसवाळु अने बे स्पर्शवाळु कह्युं छे"

"એક वर्णवाळु होय छे तो कदाचित् काळु, कदाचित् लीलु कदाचित् लाल, कदाचित् पीळु अने कदाचित् श्वेत होय छे એક गंधवाळु होय छे तो कदाचित्

"परमाणुपोग्गले णं भंते ! कतिवन्ने, कतिगंधे, कतिरसे, कतिफासे पन्नत्ते ?, गोयमा ! एगवन्ने, एगगंधे, एगरसे, दुफ्फासे पन्नत्ते, तंजहा-जइ एगवन्ने-सिय कालए, सिय नीलए, सिय लोहिए, सिय हालिद्दे, सिय सुकिल्ले। जइ एगगंधे-सिय सुब्भिगधे, सिय दुब्भिगंधे। जइ एगरसे-सिय तित्ते सिय कडुए सिय कसाए, सिय अंबिले, सिय महुरे। जइ दुप्फासे-सिय सीए य निद्धे य १, सिय सीए य लुक्खे य २, सिय उसिणे य निद्धे य ३, सिय उसिणे य लुक्खे य ४" इति।

परमाणुपुद्गलः भदन्त ! कतिवर्णः, कतिगन्ध, कतिरसः, कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः ? गौतम ! एकवर्णः, एकगन्धः, एकरसः, द्विस्पर्शः प्रज्ञप्तः। तद्यथा-यदि एकवर्णः -स्यात् कालकः, स्यात् नीलकः, स्यात् लोहितः, स्यात् हारिद्रः, स्यात् शुक्लः। यदि एकगन्धः-स्यात् सुरभिगन्धः, स्यात् दुरभिगन्धः, यदि एकरसः स्यात्तिक्तः स्यात् कटुकः, स्यात् कषायः, स्यात् अम्लः, स्यात् मधुरः। यदि द्विस्पर्शः-स्यात् शीतश्च स्निग्धश्च १, स्यात् शीतश्च रूक्षश्च २, स्यात् उष्णश्च स्निग्धश्च ३, स्यात् उष्णश्च रूक्षश्च ४,। इति च्छाया,

---

कदाचित् पीला, और कदाचित् शुक्ल होता है। एक गन्धवाला होता है तो कदाचित् सुरभिगधवाला, कदाचित् दुरभिगधवाला होता है। यदि एक रसवाला होता है तो कदाचित् तिक्त, कदाचित् कटुक, कदाचित् कषायला, कदाचित् खट्टा, और कदाचित् मीठा होता है। यदि दो स्पर्शवाला होता है तो कदाचित् शीत और स्निग्ध (चिकना) १, कदाचित् शीत और रूक्ष २, कदाचित् उष्ण और स्निग्ध ३, तथा कदाचित् उष्ण और रूक्ष होता है ४।

સુરભિગંધ (સારી ગંધ) વાળુ અને કદાચિત્ દુરભિગંધવાળુ હોય છે જો એક રસવાળુ હોય છે તો કદાચિત્ તીખુ, કદાચિત્ કડવુ, કદાચિત્ કષાયલુ, કદાચિત્ ખાટ્ટુ અને કદાચિત્ મધુર-મીઠુ-હોય છે જો બે સ્પર્શવાળુ હોય છે તો કદાચિત શીત અને સ્નિગ્ધ-(ચિકણુ) ૧, કદાચિત્ શીત અને રૂક્ષ ૨, કદાચિત્ ઉષ્ણુ અને સ્નિગ્ધ ૩, તથા કદાચિત્ ઉષ્ણુ અને રૂક્ષ હોય છે ૪"

असौ शस्त्रादिना खड्गादिनाऽच्छेद्य, सूच्यादिना धर्मवदभेद्यः, अग्निना काष्ठवददाह्यः, हस्तादिना वस्त्रपात्रवदग्राह्यः। उक्तञ्च भगवता भगवतीसूत्रे (श०-२० उ० ५)—

"दव्वपरमाणू णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?, गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा—अच्छेज्जे, अभेज्जे, अडज्झे, अगेज्झे।" इति। द्रव्यपरमाणुः खलु भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?, गौतम! चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अच्छेद्यः, अभेद्यः, अदाह्यः, अग्राह्यः। इति च्छाया।

यद्यपि परमाणुः पुद्गलत्वान्मूर्तस्तथाऽप्यसौ खण्डशः कर्तुमशक्यः, आकाशप्रदेशवत्परमाणौ पुद्गलपरमसूक्ष्मत्वात्, सर्वपरिमाणेभ्योऽपकृष्टपरिमाणं परमाणोरेव तस्मात्सोऽखण्ड एव।

परमाणु शस्त्र के द्वारा खड्ग आदि की भाँति छेदा नहीं जा सकता, चमड़े की तरह सुई आदि से भेदा नहीं जा सकता काष्ठ के समान अग्नि आदि से जल नहीं सकता और वस्त्र पात्र आदि पदार्थों की तरह हाथ आदिसे पकड़ा नहीं जा सकता। भगवान्ने भगवतीसूत्र (श २० उ० ५) में कहा है—

प्रश्न—भगवन्! द्रव्य परमाणु कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम! चार प्रकारका कहा गया है—अच्छेद्य अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य।

परमाणु पुद्गल होने के कारण मूर्तिक है, फिर भी उस के खण्ड नहीं किये जा सकते। जैसे आकाश का एक प्रदेश अखण्ड अंशरूप है और उसका परिमाण सभी

પરમાણુ શસ્ત્ર દ્વારા તલવાર આદિના પ્રભાવે છેદી શકાતું નથી, ચામડાની જેમ સોય વગેરેથી વીંધી શકાતું નથી, કાષ્ઠની જેમ અગ્નિ આદિથી બાળી શકાતું નથી, અને વસ્ત્ર પાત્ર આદિ પદાર્થોની જેમ હાથ વગેરેથી પકડી શકાતું નથી.

ભગવાને ભગવતીસૂત્ર-(શ. ૨૦-ઉ ૫) માં કહ્યું છે—

પ્રશ્ન- ભગવન્! દ્રવ્ય પરમાણુ કેટલા પ્રકારનું કહ્યું છે?

ઉત્તર-ગૌતમ! ચાર પ્રકારનું કહ્યું છે— અછેદ્ય, અભેદ્ય, અદાહ્ય અને અગ્રાહ્ય. (છેદી શકાય નહિ ભેદી શકાય નહિ, બાળી શકે નહિ, અને પકડવું થઈ શકે નહિ).

પરમાણુ પુદ્ગલ હોવાના કારણે મૂર્તિક છે તો પણ તેના ખંડ-ભાગ થઈ શકતા નથી જેમકે—આકાશનો એક પ્રદેશ અખંડ અંશરૂપ છે અને તેનું પરિમાણ

स च प्रत्यक्षदृश्यैरनेकविधैर्बादरपरिणामरूपैः स्कन्धैरनुमीयते। उक्तञ्च-
"कारणमेव तदंतं, सुहुमो णिच्चो य होइ परमाणू।
एगरसगंधवण्णो, दुप्फासो कज्जलिंगो य ॥१॥ इति
छाया---कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः।
एकरसगंधवर्णो, द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥१॥" इति।

स्कन्धस्वरूप तद्भेदाश्च---

परस्परसमिलितबद्धपरमाणुसमुदायः स्कन्ध। स्कन्धान्तवर्ती निरंशोऽवयवः प्रदेश इत्युच्यते।

परिमाणोंसे हीनतम है, इसी प्रकार परमाणु भी जघन्य अंशरूप है--उसके अंश नहीं हो सकते, वह अखण्ड है।

प्रत्यक्ष से दिखाई देनेवाले अनेक प्रकार के बादररूप परिणत स्कन्धों से परमाणु का अनुमान होता है। कहा भी है---

"परमाणु कारणरूप है, अन्तिम अंशरूप है, सूक्ष्म है और नित्य है। एक रसवाला, एक गंधवाला, एक वर्णवाला और दो स्पर्शवाला होता है। स्कंधरूप कार्य देखने से उसका अनुमान होता है।"

स्कन्ध का स्वरूप और भेद---

परस्पर मिले हुए--आपसमें बद्ध--परमाणु का समूह स्कंध कहलाता है। स्कंधमें रहा हुआ निरंश अवयव प्रदेश कहलाता है।

સર્વ પરિમાણોથી હીનતમ છે, એ પ્રમાણે પરમાણુ પણ જઘન્ય અંશરૂપ છે, તેના અંશ-વિભાગ થઈ શકતા નથી, તે અખંડ છે

પ્રત્યક્ષથી જોવામાં આવતા અનેક પ્રકારના બાદરરૂપ પરિણત સ્કંધોથી પરમાણુનું અનુમાન થાય છે કહ્યું પણ છે---

"પરમાણુ કારણરૂપ છે, અન્તિમ અંશરૂપ છે, સૂક્ષ્મ છે અને નિત્ય છે, એક રસવાળુ છે, એક ગંધવાળુ, એક વર્ણવાળુ અને બે સ્પર્શવાળુ હોય છે. સ્કંધરૂપ કાર્યના દેખાવથી તેનું અનુમાન થાય છે

સ્કંધનું સ્વરૂપ અને ભેદ---

પરસ્પર મળેલા--અંદર અંદર બદ્ધ--પરમાણુઓનો સમૂહ તે સ્કંધ કહેવાય છે. સ્કંધમાં રહેલો નિરંશ અવયવ તે પ્રદેશ કહેવાય છે

यद्यपि धर्माधर्माकाशजीवा अपि पुद्गलवत्स्कन्धरूपास्तथापि स्कन्धरूपपुद्गलादयं विशेषः-तेषाम्-धर्मादीनां चतुर्णां प्रदेशाः स्वस्वस्कन्धात् सम्बद्धाः पृथग् भवितुमर्हन्ति, तेषाममूर्त्तत्वात्। पुद्गलप्रदेशास्तु सम्बद्धाः पृथग् भवन्ति, तेषां मूर्त्तत्वात्, आश्लेषविश्लेषाभ्यां मूर्त्तवस्तुनि संमिलन-पृथग्भाव-शक्तेः सर्वानुभवगोचरत्वात्, अतः स्कन्धपुद्गलानां स्थूलः सूक्ष्मो वा भागोऽवयव उच्यते। अवयौतीति=पृथग्भवतीत्यवयवः, इत्यव्युत्पत्त्या विभाज्य एवांशोऽवयवशब्दार्थस्तस्मात्पुद्गलप्रदेश एवावयव इत्युच्यते।

यद्यपि धर्म-द्रव्य अधर्म-द्रव्य आकाश और जीव भी पुद्गलके समान स्कन्धरूप हैं, फिर भी स्कन्धरूप पुद्गल से उनमें यह भिन्नता है-धर्म आदि चार द्रव्यके प्रदेश अपने २ स्कन्धसे कभी अलग नहीं हो सकते क्योंकि धर्म आदि चार द्रव्य अमूर्त हैं। पुद्गल द्रव्य के प्रदेश सम्बद्ध होकर अलग हो जाते हैं क्योंकि पुद्गल मूर्त है। आश्लेष और विश्लेष के द्वारा मूर्त वस्तु में मिलने और बिछुड़ने की शक्ति है, यह बात सभी के अनुभव से सिद्ध है, अतः स्कन्ध-पुद्गलों का स्थूल या सूक्ष्म भाग अवयव कहलाता है, 'अवयौति' इति-अवयवः अर्थात् जो पृथक् हो सके उसे अवयव कहते हैं, इस व्युत्पत्ति के अनुसार विभक्त हो सकने योग्य अंश को ही अवयव कहा जा सकता है, अतः पुद्गल का प्रदेश ही अवयव कहलाता है।

જો કે ધર્મ-દ્રવ્ય અધર્મ-દ્રવ્ય, આકાશ અને જીવ પણ પુદ્ગલના સમાન સ્કંધરૂપ છે તો પણ સ્કંધરૂપ પુદ્ગલથી તેમાં એ ભિન્નતા છે-ધર્મ આદિ ચાર દ્રવ્યોના પ્રદેશ પોત-પોતાના સ્કંધથી ક્યારેય પણ અલગ થઈ શકતા નથી કેમકે ધર્મ આદિ ચાર દ્રવ્યો અમૂર્ત છે પુદ્ગલ દ્રવ્યના પ્રદેશ સંબદ્ધ થઈને અલગ થઈ જાય છે, કેમકે પુદ્ગલ મૂર્ત છે આશ્લેષ (મળવું) અને વિશ્લેષ (જુદા થવું) દ્વારા મૂર્ત વસ્તુમાં મળવું અને છૂટા થવું તે શક્તિ છે આ વાત સર્વને અનુભવથી સિદ્ધ છે એટલા કારણથી સ્કંધ પુદ્ગલોનું સ્થૂલ અથવા સૂક્ષ્મ અવયવ કહેવાય છે અવયૌતિ ઇતિ-અવયવઃ અર્થાત્ પૃથક્ થઈ શકે તેને અવયવ કહે છે એ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે વિભક્ત થવા યોગ્ય અંશને જ અવયવ કહે છે. આ કારણથી પુદ્ગલ દ્રવ્યનો પ્રદેશ જ અવયવ કહેવાય છે

संघाताद्, भेदात्, सङ्घातभेदाभ्यां च द्विप्रदेशिप्रभृतयः स्कन्धाः समुत्पद्यन्ते। उक्तञ्च भगवता स्थानाङ्गसूत्रे—

"दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णंति, तजहा-सयं वा पोग्गला साहन्नंति, परेण वा पोग्गला साहन्नंति। सयं वा पोग्गला भिज्जंति परेण वा पोग्गला भिज्जंति" इति।

छाया—"द्वाभ्या स्थानाभ्यां पुद्गलाः संहन्यन्ते। तद्यथा-स्वयं वा पुद्गलाः संहन्यन्ते, परेण वा पुद्गलाः संहन्यन्ते। स्वयं वा पुद्गला भिद्यन्ते, परेण वा पुद्गला भिद्यन्ते। इति।

'स्वयवे'-ति स्वभावतो वा अभ्रादिष्विव संहन्यन्ते=सम्बध्यन्ते। (कर्मणः कर्तृत्वविवक्षायां प्रयोगोऽयम्) परेण वा=अन्येन वा पुरुषादिना संहन्यन्ते= संहताः क्रियन्ते। (कर्मणि वाच्ये प्रयोगोऽयम्)। एवं भिद्यन्ते=विकीर्यन्ते।

द्वयोः परमाण्वोः संघाताद् द्विप्रदेशी स्कन्धः समुद्भवति। द्विप्रदेशिनः

सघात (मिलने) से, भेद (बिछुडने) से तथा सघातभेदसे द्विप्रदेशी आदि स्कन्ध उत्पन्न होते है।

भगवानने स्थानाङ्गसूत्रमें कहा है—

"दो स्थानों से पुद्गल आपस में मिलते है, वह इस प्रकार-या तो पुद्गल स्वय बादल आदि की तरह मिल जाते हैं, या दूसरे पुरुष आदि के द्वारा मिलाये जाते हैं, इसी प्रकार पुद्गल स्वय अलग हो जाते हैं, या दूसरे के द्वारा अलग किये जाते है।

दो परमाणुओं के सघात से द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, द्विप्रदेशी स्कन्ध

સઘાત (મેલાપ)થી ભેદ (જુદા પડવા)થી તથા સઘાત-ભેદથી દ્વિપ્રદેશી વિગેરે સ્કધ ઉત્પન્ન થાય છે ભગવાને स्थानाङ्गसूत्र મા કહ્યુ છે—

"બે સ્થાનોથી પુદ્ગલ પરસ્પર મળે છે તે આ પ્રમાણે-પુદ્ગલ પોતે જ વાદળ આદિ પ્રમાણે મળી જાય છે, અથવા બીજા પુરુષ આદિના દ્વારા મેળવાય છે એ પ્રમાણે પુદ્ગલ પોતે જ અગલ થઈ જાય છે, અથવા તો બીજાના દ્વારા અલગ કરી શકાય છે.

બે પરમાણુઓના સઘાતથી (મળવાથી) દ્વિપ્રદેશી સ્કધ બને છે દ્વિપ્રદેશી સ્કધ

स्कन्धस्य परमाणोश्च संयोगे सति त्रिप्रदेशी स्कन्धो भवति। संख्यात-परमाणूनां संघातात् संख्यातप्रदेशी स्कन्धः, असंख्यातपरमाणूनां संयोगाद् असंख्यातप्रदेशी स्कन्धः, अनन्तपरमाणूनां संघातान्मातोऽनन्तप्रदेशी स्कन्धः, अनन्तप्रदेशिनां स्कन्धानां योगे त्वनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्धो जायते। संख्यात-प्रदेश्यादिषु स्कंधेषु संयोगपरिणामः पूर्वोक्तरीत्या भावनीयः।

द्व्यणुकादिक्रमेणानन्तानन्तप्रदेशिपर्यन्ता ये स्कन्धा संयोगपरिणाम-जातास्तेभ्यः परमाणुः पृथक् भवति चेत्तदैकपरमाणुन्यूनः स्कन्धो जायते। एवं द्वित्रिचतुःपञ्चादिपरमाणुपृथग्भावक्रमेण न्यूनान्न्यूनो द्विप्रदेशी स्कन्धः समुत्पद्यते।

और एक परमाणु का संयोग होने पर त्रिप्रदेशी स्कन्ध बनता है, संख्यात परमाणुओं के संघात से संख्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है और असंख्यात परमाणुओं के संयोग से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है। अनन्त परमाणुओं के मिलने से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध बनता है, अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का संयोग होने पर अनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता है। संख्यातप्रदेशी आदि स्कन्धों में संयोगरूप परिणमन पूर्वोक्तप्रकार से समझ लेना चाहिए।

द्व्यणुक आदि के क्रम से अनन्तानन्तप्रदेशी पर्यन्त जो स्कन्ध संयोगपरिणाम से बने हैं, उन में से अगर एक परमाणु अलग हो जाता है तो वह एक परमाणुहीन स्कंध रह जाता है। इसी प्रकार दो तीन चार पांच आदि परमाणुओं के अलग होने पर अन्त में द्विप्रदेशी स्कंध ही बनता है।

અને એક પરમાણુનો સંયોગ થવાથી ત્રિપ્રદેશી સ્કંધ બને છે સંખ્યાત પરમાણુઓના સંઘાતથી (મળવાથી) સંખ્યાતપ્રદેશી સ્કંધ બને છે અને અસંખ્યાત પરમાણુઓના સંયોગથી અસંખ્યાતપ્રદેશી સ્કંધ બને છે અનન્ત પરમાણુઓના સંયોગથી અનન્ત પ્રદેશી સ્કંધ ઉત્પન્ન થાય છે અનન્તપ્રદેશી સ્કંધોનો સંયોગ થાય તો અનન્તાનન્ત પ્રદેશી સ્કંધ ઉત્પન્ન થાય છે સંખ્યાતપ્રદેશી આદિ સ્કંધોમાં સંયોગરૂપ પરિણમન પૂર્વના પ્રકારથી સમજી લેવું જોઈએ.

દ્વ્યણુક આદિના ક્રમથી અનન્તાનન્તપ્રદેશી પર્યન્ત જે સ્કંધ છે તે સંયોગ પરિણમનથી બન્યા છે તેમાંથી જો એક પરમાણુ અલગ થઈ જાય તો તે એક પરમાણુહીન સ્કંધ રહી જાય છે એ પ્રમાણે બે, ત્રણ ચાર પાંચ આદિ પરમાણુઓ અલગ થઈ જાય તો અન્તમાં દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ જ બને છે

स्कन्धाद् वहिर्गतस्य परमाणोरन्येन परमाणुना सयोगे द्व्यणुकस्कन्ध उत्पद्यते। एवं संयोग-विभागाभ्यामपि विविधाः स्कन्धा भवन्ति।

परमाणूनां वन्धस्य कारणम्—

परमाणुद्वयस्य परमाणूनां वा परस्परानुप्रवेशो न भवति, छिद्राभावात्, किन्तु तयोस्तेषां वा विस्रसागत्या परस्परं सयोगे सति स्निग्धरूक्षत्वगुण-सद्भावे परस्पर वन्धो भवति। ऐक्यपरिमाणो वन्धः। तत्रायं विशेषः—

स्कध से अलग हुआ परमाणु जब दूसरे परमाणु के साथ मिलता है तो दोनों के मेलसे नवीन द्व्यणुक उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार सयोग और विभाग के द्वारा भाँति-भाँति के स्कन्ध उत्पन्न होते ही रहते हैं।

परमाणुओं के वन्ध का कारण

दो या अधिक परमाणु एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि परमाणुओं में छिद्र नहीं होता, अलवत्त स्वाभाविक गति से दो या दो से अधिक परमाणुओं का परस्पर में सयोग होने पर उन मे विद्यमान स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण उन का आपस में वन्ध हो जाता है। एकतारूप परिणमन को वन्ध कहते है। वन्ध के सम्बन्ध में इतना विशेष समझना चाहिए—

સ્કધથી અલગ થયેલા પરમાણુ જ્યારે બીજા પરમાણુની સાથે મળે છે, તો બનેના મળવાથી નવીન દ્વયણુક ઉત્પન્ન થાય છે એ પ્રમાણે સંયોગ અને વિભાગ દ્વારા તરેહ-તરેહના સ્કધ ઉત્પન્ન થયા કરે છે

પરમાણુઓના બધનુ કારણ—

બે અથવા અધિક પરમાણુ એક બીજામા પ્રવેશ કરી શકતા નથી, કેમકે પરમાણુઓમા છિદ્ર નથી અલબત સ્વાભાવિક ગતિથી બે અથવા બેથી અધિક પર માણુઓના પરસ્પર સયોગ થવાથી તેમા વિદ્યમાન સ્નિગ્ધતા અને રૂક્ષતાના ગુણના કારણે તેના આપસમા બધ થઈ જાય છે એકતારૂપ પરિણમનને બધ કહે છે બધના સબધમા એટલુ વિશેષ સમજવુ જોઈએ કે —

जघन्यगुणस्निग्धयोर्द्वयो, र्जघन्यगुणस्निग्धानां वा बहूनां परमाणूनां परस्परं बन्धो न भवति। तथा जघन्यगुणरूक्षयोः, र्जघन्यगुणरूक्षाणां वा परस्परं बन्धो न भवति। जघन्योऽपकृष्टतमः, गुणशब्दोऽत्र संख्यार्थकः। यथा एकगुणं, द्विगुणमित्यादिपदम्-एकसंख्यकद्विसंख्यकार्थबोधकम्। स्नेहादिगुणानां मत्कर्षापकर्षौ लोकप्रसिद्धौ। यथा-पानीयादजादुग्धं स्निग्धम्, अजादुग्धाद् गव्यं दुग्धम्, ततश्च महिषीदुग्धमित्युत्तरोत्तरं स्नेहप्रकर्षः।

एषामेव पूर्वं पूर्वं स्नेहापकर्षः। तथा चैकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन, द्वयोर्बहूनां परमाणूनां परस्परं बन्धो न भवति। एकगुणरूक्षस्यैकगुणरूक्षेण च

जघन्यगुण स्निग्ध दो परमाणुओं का अथवा बहुत परमाणुओं का परस्परमें बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार जघन्यगुण रूक्ष दो या बहुत परमाणुओं का भी परस्पर में बन्ध नहीं होता। जघन्य का अर्थ यहाँ हीनतम समझना चाहिए। गुणशब्द यहाँ संख्या (गिनती) का वाचक है, जैसे-एकगुना, दोगुना आदि पद एकसंख्यक द्विसंख्यक आदि अर्थ के वाचक हैं। स्निग्धता (चिकनाई) आदि गुणों की अधिकता और न्यूनता लोक में प्रसिद्ध है। जैसे पानी की अपेक्षा बकरी का दूध चिकना होता है। बकरी के दूधसे गौ का दूध अधिक चिकना होता है, और गौ के दूध की अपेक्षा भैंस का दूध अधिक चिकना होता है। इस प्रकार पानी आदिमें उत्तरोत्तर चिकनेपन की अधिकता है। इन्हीं पानी आदि में पहले पहले वालों में चिकनेपनकी न्यूनता है। इस प्रकार एक गुण स्निग्ध का एक गुण स्निग्ध के साथ दो या अधिक परमाणुओं का

જઘન્ય ગુણ સ્નિગ્ધ બે પરમાણુઓનો અથવા બહુ પરમાણુઓનો પરસ્પર બંધ થતો નથી જઘન્યનો અર્થ અહિં હીનતમ સમજવો જોઈએ. ગુણ શબ્દ અહિં સંખ્યા (ગિણી) નો વાચક છે જેવી રીતે એક ગણુ બે ગણુ આદિ પદ એક સંખ્યક દ્વિસંખ્યક આદિ અર્થનું વાચક છે સ્નિગ્ધતા (ચિકણાપણુ) આદિ ગુણોની અધિકતા અને ન્યૂનતા લોકમાં પ્રસિદ્ધ છે જેમ પાણીની અપેક્ષાએ બકરીનું દૂધ ચિકણુ હોય છે બકરીના દૂધથી ગાયનુ દૂધ અને ગાયના દૂધની અપેક્ષાએ ભેંસનું દૂધ વધારે સ્નિગ્ધ (ચિકણુ) હોય છે એ પ્રમાણે પાણી આદિમા ઉત્તરોત્તર ચિકણાપણાની અધિકતા છે

એ પાણી આદિમા પહેલા-પહેલાનામાં ચિકણાપણાની ન્યૂનતા છે એ પ્રમાણે એક ગુણ સ્નિગ્ધનો એક ગુણ સ્નિગ્ધની સાથે, તથા બે અથવા અધિક પરમાણુઓનો

स्कन्धाद् बहिर्गतस्य परमाणोरन्येन परमाणुना सयोगे द्व्यणुकस्कन्ध उत्पद्यते। एव संयोग-विभागाभ्यामपि विविधाः स्कन्धा भवन्ति।

परमाणूनां बन्धस्य कारणम्—

परमाणुद्वयस्य परमाणूनां वा परस्परानुप्रवेशो न भवति, छिद्राभावात्, किन्तु तयोस्तेषां वा विस्रसागत्या परस्परं सयोगे सति स्निग्धरूक्षत्वगुणसद्भावे परस्पर बन्धो भवति। ऐक्यपरिमाणो बन्धः। तत्रायं विशेषः—

स्कध से अलग हुआ परमाणु जब दूसरे परमाणु के साथ मिलता है तो दोनों के मेलसे नवीन द्व्यणुक उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार सयोग और विभाग के द्वारा भाँति-भाँति के स्कन्ध उत्पन्न होते ही रहते हैं।

परमाणुओं के बन्ध का कारण

दो या अधिक परमाणु एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि परमाणुओं में छिद्र नहीं होता, अलबत्त स्वाभाविक गति से दो या दो से अधिक परमाणुओं का परस्पर में सयोग होने पर उन मे विद्यमान स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण उन का आपस में बन्ध हो जाता है। एकतारूप परिणमन को बन्ध कहते है। बन्ध के सम्बन्ध में इतना विशेष समझना चाहिए—

સ્કધથી અલગ થયેલા પરમાણુ જ્યારે બીજા પરમાણુની સાથે મળે છે, તો બનેના મળવાથી નવીન દ્વયણુક ઉત્પન્ન થાય છે એ પ્રમાણે સંયોગ અને વિભાગ દ્વારા તરેહ-તરેહના સ્કધ ઉત્પન્ન થયા કરે છે

પરમાણુઓના બંધનુ કારણ—

બે અથવા અધિક પરમાણુ એક બીજામા પ્રવેશ કરી શકતા નથી, કેમકે પરમાણુઓમા છિદ્ર નથી અલબત સ્વાભાવિક ગતિથી બે અથવા બેથી અધિક પરમાણુઓનો પરસ્પર સયોગ થવાથી તેમા વિદ્યમાન સ્નિગ્ધતા અને રૂક્ષતાના ગુણના કારણે તેનો આપસમા બધ થઈ જાય છે એકતારૂપ પરિણમનને બધ કહે છે બધના સબધમા એટલુ વિશેષ સમજવુ જોઈએ કે —

एवं द्विगुणतः समारभ्य यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धस्य पुद्गलस्य द्विगुणतः समारभ्य यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धेन सर्वेण समगुणेन पुद्गलेन परस्परं बन्धो न भवति। तथा द्विगुणादिरूक्षस्य द्विगुणादिरूक्षेण सर्वेण समगुणेन यावदनन्तगुणरूक्षेण पुद्गलेन सह परस्परं बन्धो न भवति। यथा तुल्यबलगुणमल्लयोरुभयोर्मध्ये परस्परं कोऽपि कश्चिदभिभवितु न प्रभवति।

इत्थं च तुल्यसंख्यक स्निग्धत्वे सति स्निग्धस्य स्निग्धेन सह बन्धो न भवति, तुल्यसंख्यके रूक्षत्वे सति रूक्षस्य रूक्षेण सह बन्धो न भवतीति सारांशः।

अथ जघन्यस्निग्धस्य कीदृशेन स्निग्धेन सह परस्पर बन्धो भवति ?

इसी प्रकार द्विगुण से लेकर सन्यात असंख्यात और अनन्तगुण स्निग्ध पुद्गलका द्विगुण से लेकर संख्यात असंख्यात और अनन्तगुण स्निग्धतावाले समगुण पुद्गल के साथ आपस में बन्ध नहीं होता। तथा द्विगुण आदि रूक्ष समगुणवाले किसी भी पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है। जैसे—समान बलवाले दो मल्लों में से कोई किसी को पराजित नहीं कर सकता।

इस प्रकार समान स्निग्धता होने पर स्निग्ध पुद्गलका स्निग्ध पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है और समान रूक्षता होने पर रूक्षका रूक्षके साथ भी बन्ध नहीं होता है।

शंका—जघन्य स्निग्ध का किस प्रकार के स्निग्ध पुद्गल के साथ परस्पर बन्ध होता है ?।

એ પ્રમાણે દ્વિગુણથી લઈને સંખ્યાત, અસંખ્યાત અને અનંતગુણ સ્નિગ્ધ પુદ્ગલનો દ્વિગુણથી લઈને સંખ્યાત, અસંખ્યાત, અને અનંતગુણ સ્નિગ્ધતાવાળા સમગુણ પુદ્ગલની સાથે આપસમાં બંધ થતો નથી તથા દ્વિગુણ આદિ રૂક્ષ પુદ્ગલનો દ્વિગુણ આદિ રૂક્ષ સમગુણવાળા કોઈ પણ પુદ્ગલની સાથે બંધ થતો નથી. જેમ સમાન બળવાળા બે મલ્લોમાંથી કોઈ કોઈને પરાજિત કરી શકતા નથી

એ પ્રમાણે સમાન સ્નિગ્ધતા હોવા છતાંય, સ્નિગ્ધ પુદ્ગલનો સ્નિગ્ધ પુદ્ગલની સાથે બંધ થતો નથી, અને સમાન રૂક્ષ હોવા છતાંય રૂક્ષનો રૂક્ષની સાથે પણ બંધ થતો નથી.

શંકા—જઘન્ય સ્નિગ્ધ પુદ્ગલનો કયા પ્રકારના સ્નિગ્ધ પુદ્ગલની સાથે પરસ્પર બંધ થાય છે?

द्वयोर्बहूना वा परमाणूनां परस्परं बन्धो न भवतीति फलितम् ।

ननु परमाणूना सत्यपि संयोगे बन्धकारणीभूतस्निग्धत्वरूक्षत्वयोश्च सद्भावे कथं न जायते परस्परमेकत्वपरिणतिलक्षणो बन्धः ? इति ।

परमाणोस्तादृशपरिणमनशक्तेरभावात् । परिणामशक्तयश्च द्रव्याणा विचित्ररूपाः क्षेत्रकालाद्यनुरोधेन प्रयोगविस्रसापेक्षाः प्रभवन्ति । जघन्यगुणत्वेन दौर्बल्यादेव स्नेहो रूक्षो वा कश्चिद् पुद्गलं परिणामयितु न समर्थः । यथा-तुल्यदुर्बलगुणमल्लयोरुभयोर्मध्ये परस्पर कोऽपि कश्चिदभिहन्तुं न प्रभवति, तस्माज्जघन्यगुणानां परस्परं बन्धो न भवतीति सिद्धम् ।

परस्पर बन्ध नहीं होता, और एक गुण रूक्ष का एक गुण रूक्ष के साथ दो या अधिक परमाणुओं का परस्पर बन्ध नहीं होता, यह सिद्ध हुआ ।

शंका—परमाणुओं का सयोग मौजूद होने पर भी, और बन्ध के कारणभूत स्निग्धत्व तथा रूक्षत्व के विद्यमान होने पर भी बन्ध–एकतारूप परिणमन क्यों नहीं होता ?

समाधान—परमाणु मे इस प्रकार के परिणमन की शक्ति का अभाव है । द्रव्यों की परिणमन शक्तियाँ क्षेत्र और काल के अनुरोध से प्रयत्न तथा स्वभाव की अपेक्षा रखती हुई नाना प्रकार की होती है । जघन्य गुणवाला होने के कारण निर्बल होने से स्निग्ध या रूक्ष परमाणु किसी पुद्गल को परिणत करने मे समर्थ नहीं होता, जैसे समान दुर्बलतावाले दो मल्लों में से कोई किसी को पराजित नहीं कर सकता । अत एव यह सिद्ध हुआ कि जघन्य गुणवालों का परस्पर में बन्ध नहीं होता ।

પરસ્પર બંધ થતો નથી, અને એકગુણ રૂક્ષનો એકગુણ રૂક્ષની સાથે બે અથવા અધિક પરમાણુઓનો પરસ્પર બંધ થતો નથી

શંકા–પરમાણુઓનો સંયોગ મોજૂદ હોવા છતાય પણ, અને બંધના કારણભૂત સ્નિગ્ધત્વ (ચિકણાપણુ) તથા રૂક્ષત્વ (લૂખાપણુ) વિદ્યમાન હોવા છતાય બંધ-એકતારૂપ પરિણમન કેમ થતુ નથી ?

સમાધાન–પરમાણુમા એ પ્રકારની પરિણમનની શક્તિનો અભાવ છે, દ્રવ્યની પરિણમન શક્તિઓ ક્ષેત્ર અને કાલના અનુરોધથી, પ્રયત્ન તથા સ્વભાવની અપેક્ષા રાખતી થકી નાના પ્રકારની થાય છે જઘન્ય ગુણવાળા હોવાના કારણે, નિર્બલ હોવાથી સ્નેહ અથવા રૂક્ષ પરમાણુ કોઈ પુદ્ગલને પરિણત કરવામા સમર્થ થતુ નથી જેવી રીતે સમાન દુર્બળતાવાળા બે મલ્લોમાથી કોઈ કોઇને પરાજિત કરી શકતા નથી. એટલા કારણથી સિદ્ધ થયુ કે–જઘન્ય ગુણવાળાઓનો પરસ્પર બંધ થતો નથી

एवमुक्तयुक्त्या द्विगुणादिस्निग्धस्य स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणस्निग्धेन सह बन्धो न भवति। द्विगुणस्निग्धस्यैकाधिकस्त्रिगुणस्निग्ध त्रिगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणस्निग्ध एकाधिकः, इति हेतोर्द्विगुणस्निग्धस्य त्रिगुणस्निग्धेन सह बन्धो न भवति। इत्थं च स्निग्धपुद्गलस्यैकाधिकगुणस्निग्धपुद्गलेन सह बन्धो न भवतीति सारः।

द्विगुणादिस्निग्धस्य द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन बन्धो भवति। यथा द्विगुणस्निग्धस्य द्व्यधिकश्चतुर्गुणस्निग्ध। त्र्यधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, चतुरधिकः

पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार द्विगुण आदि स्निग्ध का अपनी अपनी अपेक्षा से एक गुण अधिक स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता। द्विगुण स्निग्ध से एक अधिक का अर्थ है—त्रिगुण स्निग्ध, त्रिगुण स्निग्ध से एक अधिक चतुर्गुण स्निग्ध समझना चाहिये। इस रीति से अनन्त गुण स्निग्ध भी अपने से एक गुण हीन स्निग्ध की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध है। अतः द्विगुण स्निग्ध का त्रिगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता। सारांश यह है कि—स्निग्ध पुद्गल का एक गुण अधिक पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता।

द्विगुण स्निग्ध आदि का दो गुण अधिक अर्थात् चार गुण स्निग्ध के साथ बन्ध हो जाता है, जैसे दो गुण स्निग्ध से दो गुण अधिक स्निग्ध का

પૂર્વોક્ત યુક્તિ પ્રમાણે દ્વિગુણ આદિ સ્નિગ્ધનો પોત-પોતાની અપેક્ષાથી એક ગુણ અધિક સ્નિગ્ધ સાથે બંધ થતો નથી. દ્વિગુણ સ્નિગ્ધથી એક અધિકનો અર્થ છે—ત્રિગુણ સ્નિગ્ધ અને ત્રિગુણ સ્નિગ્ધથી એક અધિક ચતુર્ગુણ સ્નિગ્ધ સમજવો જોઈએ. એ પ્રમાણે અનન્ત ગુણ સ્નિગ્ધ પણ પોતાનાથી એક ગુણ હીન સ્નિગ્ધની અપેક્ષાથી એક ગુણ અધિક સ્નિગ્ધ છે તેથી દ્વિગુણ સ્નિગ્ધનો ત્રિગુણ સ્નિગ્ધની સાથે બંધ થતો નથી. સારાંશ એ છે કે-સ્નિગ્ધ પુદ્ગલનો એક ગુણ અધિક સ્નિગ્ધ પુદ્ગલની સાથે બંધ થતો નથી

દ્વિગુણ સ્નિગ્ધ આદિનો બે ગુણ અધિક અર્થાત્ ચાર ગુણ સ્નિગ્ધની સાથે બંધ થઈ જાય છે. જેમ-બે ગુણ સ્નિગ્ધથી બે ગુણ અધિક સ્નિગ્ધનો અર્થ ચાર

अत्रोच्यते–जघन्यस्निग्धस्य द्व्यधिकत्र्यधिकादिना स्निग्धेन बन्धो भवति, यथा एकगुणस्निग्धस्य परमाणुपुद्गलस्य त्रिगुणस्निग्धेन परमाणुपुद्गलेन सह संयोगे सति बन्धो भवति। एवं एकगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणपञ्चगुणयावत्सङ्ख्यातासंख्यातानन्तगुण स्निग्धेन सह बन्धः।

एकगुणस्निग्धस्यैकाधिकगुणस्निग्धेन (द्विगुणस्निग्धेन) तु न बन्धः, द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन च स्निग्धपुद्गलस्य बन्धविधानात्। एकाधिकगुण-स्निग्धस्य पुद्गलस्य प्रतिविशिष्टपरिणमनशक्तेरभावात्। एकगुणस्निग्धस्यैकाधिको द्विगुणस्निग्धः।

समाधान—जघन्य स्निग्ध पुद्गल का दो गुण (डिगरी) या तीन गुण अधिक स्निग्धतावाले पुद्गल के साथ बन्ध होता है। जैसे एक गुण स्निग्धतावाले परमाणु का तीन गुण स्निग्धता वाले परमाणु के साथ सयोग होने पर बन्ध हो जाता है। इसी प्रकार एक गुण (एक अंश) स्निग्धका चार, पाच, यहाँ तक कि सख्यात, असख्यात एव अनन्त गुण स्निग्ध के साथ बन्ध होता है।

एक गुण स्निग्धका एक अधिक गुण स्निग्ध अर्थात् द्विगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता, क्योंकि दो गुण अधिक स्निग्धका स्निग्ध पुद्गल के साथ बन्ध बतलाया गया है। एक गुण अधिक स्निग्ध पुद्गल मे विशेष प्रकार के परिणमन की शक्ति नहीं है। एक गुण स्निग्धतावाले की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध जहाँ कहा जाय वहाँ दो गुण स्निग्धतावाला पुद्गल समझ लेना चाहिये।

સમાધાન–જઘન્ય સ્નિગ્ધ પુદ્ગલના બે ગુણ (ડિગ્રી) અથવા ત્રણ ગુણ અધિક સ્નિગ્ધતાવાળા પુદ્ગલની સાથે બ ધ થાય છે જેમકે –એક ગુણ (ડિગ્રી) સ્નિગ્ધતાવાળા પરમાણુનો ત્રણ ગુણ (ડિગ્રી) સ્નિગ્ધતાવાળા પરમાણુની સાથે સ યોગ થઈ જાય તો બ ધ થઈ જાય છે તેવી રીતે એક ગુણ (ડિગ્રી) (અ શ) સ્નિગ્ધતાના ચાર, પાચ, ત્યા સુધી કે સ ખ્યાત અસ ખ્યાત એ પ્રમાણે અન ત ગુણ સ્નિગ્ધની સાથે બ ધ થાય છે.

એક ગુણ સ્નિગ્ધતાનો એક અધિક ગુણ સ્નિગ્ધ અર્થાત્ દ્વિગુણ સ્નિગ્ધની સાથે બ ધ થતો નથી, કેમકે બે ગુણ અધિક સ્નિગ્ધના સ્નિગ્ધ પુદ્ગલની સાથે બ ધ બતાવ્યો છે, એક ગુણ અધિક સ્નિગ્ધ પુદ્ગલમા વિશેષ પ્રકારના પરિણમનની શક્તિ નથી એક ગુણ (ડિગ્રી) સ્નિગ્ધતાવાળાની અપેક્ષા એક ગુણ (ડિગ્રી) અધિક સ્નિગ્ધ જ્યા કહેવાય ત્યા બે ગુણ (ડિગ્રી) સ્નિગ્ધતાવાળા પુદ્ગલ સમજી લેવા જોઈએ.

जघन्यगुण (एकगुण) स्निग्धस्य अजघन्यगुण (द्विगुणाद्यनन्तगुणपर्यन्त)-स्निग्धस्य वा स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणरूक्षेण, पुनः स्वस्वापेक्षया द्व्यधिक-त्र्यधिक-चतुरधिकादि गुणरूक्षेणापि बन्धो भवति। उक्तञ्च भगवता प्रज्ञापनासूत्रे-(१३)-त्रयोदशे परिणामपदे-"बंधणपरिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?, गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-णिद्धबंधणपरिणामे य लुक्खबंधणपरिणामे य।"

समणिद्धयाए बन्धो, न होइ समलुक्खयाएवि ण होइ।
वेमायणिद्धलुक्ख-त्तणेण बन्धो उ खंधाणं ॥१॥

छाया—बन्धनपरिणामो भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?, गौतम!
द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-स्निग्धबन्धनपरिणामश्च, रूक्षबन्धनपरिणामश्च।
समस्निग्धतायां बन्धो न भवति, समरूक्षतायामपि न भवति।
विमात्रस्निग्धरूक्षत्वेन, बन्धस्तु स्कन्धानाम् ॥ १ ॥

नहीं होता। जघन्य गुण (एकगुण) स्निग्ध का अथवा अजघन्य गुण (दो से लगाकर अनन्त गुण तक) स्निग्ध का अपने से एक गुण अधिक रूक्ष के साथ बन्ध होता है। और अपने अपने से दो अधिक तीन अधिक, चार अधिक आदि रूक्ष पुद्गल के साथ भी बन्ध होता है। भगवान् ने प्रज्ञापना सूत्र के १३ वें परिणाम पदमें कहा हैं—

प्रश्न—"भगवान्! बन्ध परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम! दो प्रकार का कहा गया है—(१) स्निग्धबन्धनपरिणाम और (२) रूक्षबंधनपरिणाम।

समान स्निग्धता या समान रूक्षता होने पर बन्ध नहीं होता है, किन्तु विमात्र—अर्थात् अधिक का हीनके साथ और हीनका अधिक के साथ चाहे व स्निग्ध हो या रूक्ष हो बन्ध हो जाता है ॥ १ ॥

નથી. જઘન્ય ગુણ (એક ગુણ) સ્નિગ્ધનો અથવા અજઘન્ય (બેથી લઈને અનન્ત ગુણ સુધી) સ્નિગ્ધનો પોતાનાથી એક ગુણ અધિક રૂક્ષની સાથે બંધ થાય છે અને પોતપોતાથી બે અધિક ત્રણ અધિક ચાર અધિક આદિ રૂક્ષ પુદ્ગલની સાથે પણ બંધ થાય છે ભગવાને પ્રજ્ઞાપના સૂત્રના ૧૩માં પરિણામ પદમાં કહેલુ છે—

પ્રશ્ન— ભગવન્! બંધન-પરિણામ કેટલા પ્રકારનાં કહ્યાં છે?

ઉત્તર—ગૌતમ! બે પ્રકારના કહેલા છે-(૧) સ્નિગ્ધબંધનપરિણામ અને (૨) રૂક્ષબંધનપરિણામ.

સમાન સ્નિગ્ધતા અથવા સમાન રૂક્ષતા હોય તો બંધ થતો નથી. પરન્તુ વિમાત્ર અર્થાત્ અધિકનો હીનની સાથે અને હીનનો અધિકની સાથે ભલે તે સ્નિગ્ધ હોય કે રૂક્ષ હોય, બંધ થઈ જાય છે ॥ ૧ ॥

षड्गुणस्निग्धः, इत्यादि। त्रिगुणस्निग्धस्य द्व्यधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, त्र्यधिकः षड्गुणस्निग्धः, चतुरधिकः सप्तगुणस्निग्ध , इत्यादि। चतुर्गुणस्निग्धस्य द्व्यधिकः षड्गुणस्निग्धः, त्र्यधिकः सप्तगुणस्निग्धः चतुरधिकः- अष्टगुणस्निग्धः। एवं पञ्चगुणस्निग्धादिसंख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धपर्यन्तस्य द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन सह बन्धो भावनीयः।

एवं जघन्यगुणरूक्षस्य, अजघन्यगुणरूक्षस्य च बन्धव्यवस्था बोध्या।

विसदृशपुद्गलबन्धः—

अथ विसदृशपुद्गलयोर्बन्धे कीदृशी व्यवस्था?

उच्यते-जघन्यगुणस्निग्धस्य, जघन्यगुणरूक्षेण सह बन्धो न भवति।

अर्थ चार गुण स्निग्ध, तीन गुण अधिक का अर्थ पाच गुण स्निग्ध, चार गुण अधिक का अर्थ छह गुण स्निग्ध, इत्यादि समझना चाहिए। चतुर्गुण स्निग्ध से द्व्यधिक-षड्गुण स्निग्ध, त्र्यधिक-सप्तगुण स्निग्ध, चतुरधिक-अष्टगुण स्निग्ध समझना चाहिए। इस प्रकार पञ्चगुण स्निग्ध आदि से सख्यात, असंख्यात अनन्त गुण स्निग्ध का दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ बन्ध होता है। इस प्रकार जघन्य गुण रूक्ष का अजघन्य गुण रूक्ष के साथ बन्ध की व्यवस्था जाननी चाहिए।

विसदृश पुद्गलों का बन्ध—

प्रश्न—विसदृश अर्थात् परस्पर विरोधी पुद्गलों के बन्ध की क्या व्यवस्था है?

उत्तर—जघन्य गुण स्निग्ध का जघन्य गुण वाले रूक्ष पुद्गलके साथ बन्ध

ગુણ સ્નિગ્ધ, ત્રણ ગુણ અધિકનો અર્થ પાચ ગુણ સ્નિગ્ધ, ચાર ગુણ અધિકનો અર્થ છ ગુણ સ્નિગ્ધ, એ પ્રમાણે સમજવુ જોઇએ ચતુર્ગુણ સ્નિગ્ધથી દ્વ્યધિક ષડ્ગુણ સ્નિગ્ધ, ત્ર્યધિક સપ્તગુણ સ્નિગ્ધ ચતુરધિક અષ્ટગુણ સ્નિગ્ધ સમજવુ જોઈએ, એ પ્રમાણે પાચ ગુણ સ્નિગ્ધ આદિથી સખ્યાત, અસખ્યાત અનન્તગુણ સ્નિગ્ધના બે ગુણ અધિક સ્નિગ્ધની સાથે બધ થાય છે એ પ્રમાણે જઘન્ય ગુણ રૂક્ષની અજઘન્ય ગુણ રૂક્ષની સાથે બધની વ્યવસ્થા જાણવી જોઈએ

વિસદૃશ પુદ્ગલોનો બધ—

પ્રશ્ન-વિસદૃશ અર્થાત્ પરસ્પરવિરોધી પુદ્ગલોના બધની શુ વ્યવસ્થા છે?

ઉત્તર-જઘન્ય ગુણ સ્નિગ્ધનો જઘન્ય ગુણવાળા પુદ્ગલની સાથે બધ થતો

॥ परमाणुबन्धव्यवस्थाकोष्ठकम् ॥

जघन्यगुण-(एकगुण)-स्निग्ध-रूक्षयोर्बन्धव्यवस्था ।

स्निग्धरूक्षसंख्या	सदृशानाम्		विसदृशानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रूक्षस्य + रूक्षेण सह	स्निग्धस्य + रूक्षेण सह
जघन्यस्य (एकगुणस्य) जघन्येन (एकगुणेन) सह	बन्धाभावः	बन्धाभावः	बन्धाभावः
जघन्यस्य (एकगुणेन) + एकाधिकेन (द्विगुणेन) सह	बन्धाभावः	बन्धो भवति	बन्धो भवति
जघन्यस्य (एकगुणस्य) + द्व्यधिकादिगुणेन-(त्रिगुण-चतुर्गुणतः समारभ्य यावत् अनन्तगुणेन) सह	बन्धो भवति	बन्धो भवति	बन्धो भवति

अजघन्यगुण-(द्विगुणादि)-स्निग्धरूक्षयोर्बन्धव्यवस्था

स्निग्धरूक्ष-संख्या	सदृशानाम्		विसदृशानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रूक्षस्य + रूक्षेण सह	स्निग्धस्य + रूक्षेण सह
द्विगुणस्य + द्विगुणेन सह	बन्धाभावः	बन्धाभावः	बन्धो भवति
द्विगुणस्य + एकाधिकेन (त्रिगुणेन) सह	बन्धाभावः	बन्धाभावः	बन्धो भवति
द्विगुणस्य + द्व्यधिकादिगुणेन (चतुर्गुणपञ्चगुणतः समारभ्य यावत् अनन्तगुणेन) सह	बन्धो भवति	बन्धो भवति	बन्धो भवति

एवम् अजघन्यगुण-(त्रिगुणचतुर्गुणतः समारभ्यानन्तगुणपर्यन्त)-स्निग्धरूक्षयोः समगुणेन, एकाधिकगुणेन, द्व्यधिकादिगुणेन च सह बन्धव्यवस्था भावनीया ॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुयाहिएण,
लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएण।
णिद्धस्स लुक्खेण उवेइ बन्धो,
जहण्णवज्जो विसमो समो वा ॥२॥
(प्रज्ञा० पद-१३)

छाया—स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विकाधिकेन,
रूक्षस्य रूक्षेण द्विकाधिकेन।
स्निग्धस्य रूक्षेण उपैति बन्धो,
जघन्यवर्जो विषमः समो वा ॥२॥" इति,

विसदृशस्य बन्धमाह—"णिद्धस्स लुक्खेण" इत्यादि।

स्निग्धस्य रूक्षेण सह बंध उपैति=उपगतो भवति, जायत इत्यर्थः। यदि परमाणुर्जघन्यवर्जो विषमो समो वा भवेत्। ॥२॥

परमाणूनां बन्धव्यवस्थाकोष्ठकमग्रेऽवलोकनीयम्।

दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ स्निग्ध का बन्ध होता है। और दो गुण अधिक रूक्ष के साथ रूक्षका बन्ध होता है। अब विसदृश बन्धको कहते हैं—"णिद्धस्स लुक्खेण" इत्यादि। जघन्य गुणवाले परमाणु को छोडकर फिर चाहे वह विषम हो या सम हो स्निग्ध का रूक्ष के साथ बन्ध होता है।

परमाणुओं की बन्धव्यवस्था का कोष्ठक पृष्ट १२१ देख लेवें।

બે ગુણ અધિક સ્નિગ્ધ સાથે સ્નિગ્ધનો બંધ થાય છે અને બે ગુણ અધિક રૂક્ષની સાથે રૂક્ષનો બન્ધ થાય છે હવે વિસદૃશ બન્ધ કહે છે—"णिद्धस्स लुक्खेण" ઇત્યાદિ જઘન્ય ગુણવાળા પરમાણુને છોડીને બીજા ગમે તે વિષમ હોય અથવા સમ હોય તે સ્નિગ્ધનો રૂક્ષની સાથે બંધ થાય છે

પરમાણુઓની બંધવ્યવસ્થાનુ કોષ્ઠક પેજ ૧૨૧મા જોઈ લેવુ.

इन्द्रियपंचकम्५, मनोवाक्कायबलत्रयम्३, श्वासोच्छ्वासरूपः१, आयुश्चेति१ । एते दश प्राणाः संसारिणां यथासम्भवं भवन्ति । नारकतिर्यगादयः संसारिणो द्रव्यप्राणैरपि प्राणिनः । व्यपगतसमस्तकर्मसम्बन्धाः सिद्धास्तु केवलभावप्राणैरेव प्राणिनः सन्ति । भावप्राणाश्चतुर्विधाः—अनन्तज्ञानम् १, अनन्तवीर्यम् २, अनन्तसुखम् ३, अनाद्यनन्तस्थितिश्च४ । तत्रानन्तज्ञानात् क्षायोपशमिकपञ्चेन्द्रियाणि, अनन्तवीर्यरूपभावप्राणस्यानन्तांशेन मनोवाक्कायबलत्रयम्, अनन्तसुखाच्छ्वासोच्छ्वासरूपः प्राणः समुद्भवति, तथा अनाद्यनन्तस्थितिरूप-भावप्राणतः सादिसान्तरूप आयुःप्राणो जायते । एवं द्रव्यप्राणानां कारणं भावप्राणा इत्यवधेयम् ।

दशभेद हैं—पांच इन्द्रियाँ५ तीन बल—मनोबल वचनबल और कायबल३, श्वासोच्छ्वास १ तथा आयु १ ये दश द्रव्यप्राण यथासम्भव संसारी जीवों के होते हैं। नारकी तिर्यंच आदि संसारी जीवों में भी द्रव्यप्राण पाये जाते हैं किन्तु सब प्रकार के कर्म—संबंध से रहित सिद्धों में सिर्फ भावप्राण ही होते हैं। सिद्ध जीव भावप्राणों के कारण ही प्राणी कहलाते हैं।

भाव प्राणके चार भेद हैं—अनन्तज्ञान१ अनन्तवीर्य२ अनन्तसुख३ और अनादिमनन्तस्थिति४। क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली पांच इन्द्रियाँ अनन्त ज्ञान का विकार (वैभाविक परिणमन) है, मन वचन और काय—बल अनन्तवीर्यरूप भावप्राणका विकार है, श्वासोच्छ्वास अनन्तसुखरूप भावप्राणका विकार है, और सादिसान्त आयुरूप द्रव्यप्राण अनादि—अनंतस्थितिरूप भावप्राणका विकार है। इस प्रकार भावप्राण द्रव्यप्राणों के कारण हैं।

દશ ભેદ છે—પાંચ ઇન્દ્રિયો૫, ત્રણ બળ અર્થાત્ મનોબળ, વચનબળ અને કાયબળ૩ શ્વાસોચ્છ્વાસ૧ તથા આયુ૧ આ દસ દ્રવ્યપ્રાણ યથાસંભવ રીતે સંસારી જીવોને હોય છે નારકી તિર્યંચ આદિ સંસારી જીવોમાં પણ દ્રવ્યપ્રાણ દેખાય છે પરન્તુ સર્વ પ્રકારના કર્મ—સંબંધથી રહિત સિદ્ધોમાં માત્ર ભાવપ્રાણ જ હોય છે સિદ્ધ જીવ ભાવપ્રાણોના કારણથી જ પ્રાણી કહેવાય છે

ભાવપ્રાણના ચાર ભેદ છે—અનન્તજ્ઞાન, અનન્તવીર્ય અનન્ત સુખ અને અનાદિ અનન્ત સ્થિતિ, ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થવા વાળી પાંચ ઇન્દ્રિયો અનન્ત જ્ઞાનનો વિકાર (વૈભાવિક પરિણમન) છે મન, વચન અને કાયબળ અનન્ત વીર્યરૂપ ભાવ પ્રાણનો વિકાર છે શ્વાસોચ્છ્વાસ તે અનન્તસુખરૂપ ભાવપ્રાણનો વિકાર છે, અને આદિ—સાન્ત આયુરૂપ દ્રવ્યપ્રાણ, અનાદિ અનન્ત સ્થિતિરૂપ ભાવપ્રાણનો વિકાર છે એ પ્રમાણે ભાવપ્રાણ, દ્રવ્યપ્રાણોના કારણ છે

अथ जीवास्तिकायः—

जीवशब्दार्थः—

जीवति प्राणान् धारयतीति जीवः। न च सिद्धानां प्राणसम्बन्धाभावादजीवत्वापत्तिरिति वाच्यम्, 'प्राणान् धारयती'-त्यत्र प्राणसामान्यविवक्षया पञ्चेन्द्रियप्रभृतिदशविधद्रव्यप्राणानामसत्त्वेऽपि सिद्धानां भावप्राणसद्भावेन जीवत्वसिद्धेरव्याहतत्वात्। प्रतिविशिष्टप्राणसम्बन्धे सति जीवनाज्जीवशब्दः प्रवर्तते।

प्राणा द्विविधाः—द्रव्यप्राणाः, भावप्राणाश्च। तत्र द्रव्यप्राणा दशविधाः

जीवास्तिकाय—

जीवशब्दका अर्थ—

जो जीता है अर्थात् प्राणों को धारण करता है, वह जीव कहलाता है। 'सिद्धो में प्राणों का अभाव होने से वे अजीव हो जायेंगे' यह कहना ठीक नही है। 'जो प्राणों को धारण करता है' इस कथन में प्राण—सामान्य की विवक्षा की गई है। सिद्धों में यद्यपि पाच—इन्द्रिय आदि दस प्रकार के द्रव्यप्राण नहीं है, तथापि भाव—प्राण पाये जाते है, और इन भाव—प्राणों के कारण सिद्ध भगवान् का जीवपन सिद्ध हो जाता है। विशिष्ट प्रकार के प्राणों का सम्बन्ध होने पर जीने वाले को जीव कहते है।

प्राण दो प्रकार के है—(१) द्रव्यप्राण और (२)—भावप्राण। द्रव्यप्राणों के

જીવાસ્તિકાય—

જીવ શબ્દનો અર્થ—

જે જીવે છે અર્થાત્ પ્રાણોને ધારણ કરે છે, તે જીવ કહેવાય છે 'સિદ્ધોમા પ્રાણોનો અભાવ હોવાથી તે અજીવ થઇ જશે,' એમ કહેવુ તે ઠીક નથી 'જે પ્રાણોને ધારણ કરે છે' એમ કહેવામા પ્રાણ—સામાન્યની વિવક્ષા કહી છે સિદ્ધોમા જો કે પાચ ઇન્દ્રિયો આદિ દસ પ્રકારના દ્રવ્ય—પ્રાણ નથી, તો પણ ભાવ—પ્રાણ હોય છે, અને તે ભાવ—પ્રાણોના કારણે સિદ્ધ ભગવાનનુ જીવપણુ સિદ્ધ થાય છે વિશિષ્ટ પ્રકારના પ્રાણોનો સબધ હોવાના કારણે જીવવા વાળાને જીવ કહે છે

પ્રાણ બે પ્રકારના છે—(૧) દ્રવ્ય—પ્રાણ અને (૨) ભાવ—પ્રાણ, દ્રવ્ય પ્રાણોના

भवन्ति, अत एवात्मपर्यायवर्ती भावः पञ्चविधो भवति—(१) औपशमिकः, (२) क्षायिकः, (३) क्षायोपशमिकः, (४) औदयिकः, (५) पारिणामिकश्चेति ।

(१) औपशमिकभावः—

(१) मोहनीयकर्मणो भस्माच्छन्नवह्निवदनुद्रेकावस्था, प्रदेशतोऽप्युदयाभावश्च उपशमः । उद्रेकरूपेण प्रदेशरूपेण च द्विविधस्याप्युदयस्य यथाशक्ति निरोधः । इत्थम्भूतश्चोपशमः सर्वोपशम उच्यते । उपशमेन निर्वृत्त औपशमिकः—क्रोधादिकषायोदयाभावरूपोपशमस्य फलरूपो जीवस्य परमशान्तावस्थालक्षण-परिणामविशेषः । स चात्मनः शुद्धिविशेषः । यथा—कतकचूर्णप्रक्षेपेण पङ्कादि-

---

पांच प्रकारका है-(१)—औपशमिक (२)—क्षायिक, (३)—क्षायोपशमिक (४)—औदयिक और (५)—पारिणामिक ।

(१) औपशमिक भाव—

राख से ढँकी हुई अग्नि के समान मोहनीय कर्म की अनुद्रेक अवस्था एवं प्रदेश की अपेक्षा भी उदय न होना उपशम कहलाता है । अर्थात् उद्रेकरूप से, तथा प्रदेशरूप से—दोनों प्रकार के उदय का यथाशक्ति रुकना उपशम है । इस प्रकार का उपशम सर्वोपशम कहलाता है । जो उपशम से हो उसे औपशमिक कहते हैं । अर्थात् क्रोध आदि कषायों के उदयाभावरूप उपशम का फलरूप जीव उसका परमशान्त अवस्थारूप परिणाम औपशमिक कहलाता है । यह आत्मा की एक प्रकार की शुद्धि है । जैसे कि—कतकचूर्ण (निर्मलीफल का चूरा) तथा फिटकरी आदि का चूरा डालने से कलका

પ્રકારના છે (૧) ઔપશમિક (૨) ક્ષાયિક (૩) ક્ષાયોપશમિક (૪) ઔદયિક અને (૫) પારિણામિક

(૧) ઔપશમિક ભાવ—

રાખથી ઢાંકેલા અગ્નિ સમાન મોહનીય કર્મની અનુદ્રેક અવસ્થા, એવં પ્રદેશની અપેક્ષા પણ ઉદય ન હોય તે ઉપશમ કહેવાય છે અર્થાત્ ઉદ્રેકરૂપથી તથા પ્રદેશરૂપથી—બન્ને પ્રકારના ઉદયનું યથાશક્તિ રોકાવું તે ઉપશમ છે આ પ્રકારનો ઉપશમ સર્વોપશમ કહેવાય છે જે ઉપશમથી હોય તેને ઔપશમિક કહે છે અર્થાત્ ક્રોધ આદિ કષાયોના ઉદયાભાવરૂપ ઉપશમના ફલરૂપ જીવ તેના પરમ શાન્ત અવસ્થારૂપ પરિણામ ઔપશમિક કહેવાય છે

એ આત્માની એક પ્રકારની શુદ્ધિ છે; જેમકે કતકચૂર્ણ (નિર્મળીફળનું ચૂર્ણ) તથા

अथ जीवस्य स्वरूपम्—

औपशमिकादिभाववान्, असंख्यातप्रदेशी, परिणामी, लोकाकाशव्यापी प्रदीपवत् संकोचविकासशीलः, व्यक्तिरूपेणानन्तोऽखण्डः, क्रियाशीलः, प्रदेश-समुदायरूपो, नित्यो, रूपरहितोऽवस्थितोऽमूर्तः सन्नपि संसारावस्थायां मूर्त इव प्रतीयमानः, ऊर्ध्वगतिशील आत्मा जीवः।

अथ भावस्तद्भेदाश्च—

'अथौपशमिकादिभाववान् जीवः' इत्युक्तम्, तत्र कस्तावद्भावः? श्रूयताम्-आत्मपर्यायाणामवस्थैव भावाः। आत्मपर्यायाश्चावस्थाभेदेन विविधरूपा

जीव का स्वरूप—

औपशमिक आदि भावोंवाला, असंख्यातप्रदेशी, परिणामी, प्रदीपप्रभाके समान संकोच-विकास स्वभाव वाला, व्यक्तिरूप से अनंतसंख्यक, क्रियाशील, प्रदेशसमुदायरूप, नित्य, अरूपी, अवस्थित, अमूर्त होने पर भी संसारी अवस्था में मूर्त जैसा प्रतीत होने वाला, ऊर्ध्वगमनस्वभाववाला आत्मा जीव कहलाता है।

भाव और भाव के भेद—

प्रश्न—जीव का स्वरूप बतलाते हुए उसे औपशमिक आदि भावो वाला कहा है सो भाव क्या वस्तु है?

उत्तर—सुनिये, आत्मा के पर्यायों की अवस्था ही भाव कहलाती है। आत्मा के पर्याय, अवस्थाओं के भेद से नाना प्रकार के होते है, अत आत्मपर्यायवर्ती भाव

જીવનુ સ્વરૂપ

ઔપશમિક આદિ ભાવો વાળા, અસખ્યાતપ્રદેશી, પરિણામી, પ્રદીપપ્રભાના સમાન સ કોચ-વિકાસ સ્વભાવવાળા, વ્યક્તિરૂપથી અન તસખ્યક, ક્રિયાશીલ, પ્રદેશ સમુદાયરૂપ, નિત્ય, અરૂપી, અવસ્થિત, અમૂર્ત હોવા છતાય સ સારી અવસ્થામા મૂર્ત જેવા દેખાવાવાળા, ઉર્ધ્વગમન સ્વભાવવાળા આત્મા જીવ કહેવાય છે

ભાવ અને ભાવના ભેદ—

પ્રશ્ન—જીવનુ સ્વરૂપ બતાવતા થકા તેને ઔપશમિક આદિ ભાવોવાળા કહેલ છે, તે ભાવ શુ વસ્તુ છે?

ઉત્તર—સાભળો, આત્માના પર્યાયોની અવસ્થા જ ભાવ કહેવાય છે આત્માની પર્યાય, અવસ્થાઓના ભેદથી નાના પ્રકારના હોય છે, તેથી આત્મપર્યાયવર્તી ભાવ પાચ

भवन्ति, अत एवात्मपर्यायवर्ती भावः पञ्चविधो भवति—(१) औपशमिकः, (२) क्षायिकः, (३) क्षायोपशमिकः, (४) औदयिकः, (५) पारिणामिकश्चेति ।

(१) औपशमिकभावः—

(१) मोहनीयकर्मणो भस्मावच्छन्नवह्निवदनुद्रेकावस्था, प्रदेशतोऽप्युदयाभावश्च उपशमः । उद्रेकरूपेण प्रदेशरूपेण च द्विविधस्याप्युदयस्य यथाशक्ति निरोधः । इत्यम्भूतश्चोपशमः सर्वोपशम उच्यते । उपशमेन निर्वृत्त औपशमिकः—क्रोधादिकषायोदयाभावरूपोपशमस्य फलरूपो जीवस्य परमशान्तावस्थालक्षण-परिणामविशेषः । स चात्मनः शुद्धिविशेषः । यथा—कतकचूर्णप्रक्षेपेण पङ्कादि-

---

पांच प्रकारका है-(१)—औपशमिक (२)—क्षायिक (३)—क्षायोपशमिक (४)—औदयिक और (५)—पारिणामिक ।

(१) औपशमिक भाव—

राख से ढँकी हुई अग्नि के समान मोहनीय कर्म की अनुद्रेक अवस्था एवं प्रदेश की अपेक्षा भी उदय न होना उपशम कहलाता है । अर्थात् उद्रेकरूप से, तथा प्रदेशरूप से—दोनों प्रकार के उदय का यथाशक्ति रुकना उपशम है । इस प्रकार का उपशम सर्वोपशम कहलाता है । जो उपशम से हो उसे औपशमिक कहते हैं । अर्थात् क्रोध आदि कषायों के उदयाभावरूप उपशम का फलरूप जीव उसका परमशान्त अवस्थारूप परिणाम औपशमिक कहलाता है । यह आत्मा की एक प्रकार की शुद्धि है । जैसे कि—कतकचूर्ण (निर्मलीफल का चूरा) तथा फिटकड़ी आदि का चूरा डालने से कल्का

પ્રકારના છે (૧) ઔપશમિક (૨) ક્ષાયિક (૩) ક્ષાયોપશમિક (૪) ઔદયિક અને (૫) પારિણામિક

(૧) ઔપશમિક ભાવ—

રાખથી ઢંકેલા અગ્નિ સમાન મોહનીય કર્મની અનુદ્રેક અવસ્થા, એવં પ્રદેશની અપેક્ષા પણ ઉદય ન હોય તે ઉપશમ કહેવાય છે અર્થાત્ ઉદ્રેકરૂપથી તથા પ્રદેશરૂપથી—બન્ને પ્રકારના ઉદયનું યથાશક્તિ રોકાવું તે ઉપશમ છે આ પ્રકારનો ઉપશમ સર્વોપશમ કહેવાય છે. જે ઉપશમથી હોય તેને ઔપશમિક કહે છે અર્થાત્ ક્રોધ આદિ કષાયોના ઉદયાભાવરૂપ ઉપશમના ફલરૂપ જીવ તેના પરમ શાન્ત અવસ્થારૂપ પરિણામ ઔપશમિક કહેવાય છે

એ આત્માની એક પ્રકારની શુદ્ધિ છે જેમકે કતકચૂર્ણ (નિર્મળીફળનું ચૂર્ણ) તથા

मलनिचयस्याधोदेशे निपाते सति जलस्य स्वच्छता। मोहनीयकर्मण उपशमाद् यद् दर्शनं श्रद्धानरूपं, चरणं वा विरतिरूपं जायते तदप्यौपशमिकशब्देनोच्यते।

(२) क्षायिकभाव —

(२) सकलकर्मणामत्यन्तोच्छेदः क्षय, क्षयेण निर्वृत्तः क्षायिकः- अप्रतिपाति-ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणो जीवस्य परिणतिविशेषः। स चात्मनः परमविशुद्धिः। यथा-सर्वथा निःशेषपङ्कादिमलव्यपगमे जलस्य परमस्वच्छता।

कीचड आदि मैल नीचे बैठ जाता है, और जल स्वच्छ हो जाता है। मोहनीय कर्म के उपशम से श्रद्धानरूप जो दर्शन उत्पन्न होता है या विरतिरूप जो चारित्र उत्पन्न होता है, वह औपशमिक सम्यग्दर्शन और औपशमिक चारित्र कहलाता है।

(२) क्षायिक भाव—

कर्म का अत्यन्त उच्छेद हो जाना क्षय कहलाता है। क्षय से होने वाला भाव क्षायिक भाव है। अर्थात् एक वार उत्पन्न हो कर फिर नष्ट न होने वाले ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप जीव के परिणाम को क्षायिक भाव कहते हैं। क्षायिक अवस्था जीव की परम विशुद्धि है, जैसे-पूर्ण रूप से समस्त कीचड आदि मैल के हट जाने पर जल की परम स्वच्छता होती है।

ફટકડી આદિનું ચૂર્ણ નાખવાથી કચરો અને મેલ નીચે બેસી જાય છે, અને જલ સ્વચ્છ થાય છે મોહનીય કર્મના ઉપશમથી શ્રદ્ધારૂપ જે દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે અથવા વિરતિરૂપ જે ચારિત્ર ઉત્પન્ન થાય છે, તે ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન અને ઔપશમિક ચારિત્ર કહેવાય છે

(૨) ક્ષાયિક ભાવ—

કર્મનો અત્યન્ત ઉચ્છેદ થઈ જવો તે ક્ષય કહેવાય છે ક્ષયથી થવાવાળો ભાવ ક્ષાયિક ભાવ છે અર્થાત્ એકવાર ઉત્પન્ન થઈને ફરી નાશ નહિ થવાવાળા જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રરૂપ જીવના પરિણામને ક્ષાયિક ભાવ કહે છે ક્ષાયિક અવસ્થા જીવની પરમ વિશુદ્ધિ છે જેમ-પૂર્ણરૂપથી સમસ્ત કીચડ-કાદવ આદિ મેલના દૂર થવાથી જલની પરમ સ્વચ્છતા થાય છે

(३) क्षायोपशमिक-भावः—

(३) मिथ्यात्वमोहनीयादिकर्मणामुदीर्णस्यांशस्य नाश-क्षयः, अनुदीर्णस्यांशस्य विपाकोन्मुखस्याभावः-उपशमः, यत्र एतद्वयं स क्षयोपशमः, स एव क्षायोपशमिकः। अस्य भावस्य 'मिश्रः' इति नामान्तरम्। ईषद्विध्यातावच्छन्नवह्निवत्। यद् उदयावलिकाप्रविष्टं कर्म, तद् क्षीणम्, ततोऽवशिष्टं कर्म, उद्रेक-क्षयोभयरहितावस्थम्, इमामुभयीमवस्थामवलम्ब्य क्षायोपशमिको भावः प्रभायते।

(४) औदयिकभावः—

(४) कर्मविपाकाविर्भाव उदयः। तेन निर्वृत्तो भाव औदयिकः। स

(३) क्षायोपशमिक भाव—

मिथ्यात्वमोहनीय आदि कर्मों के उदीर्ण (उदय में आये हुए) अंश का नाश होना क्षय है। और अनुदीर्ण अंश का फल देने में उन्मुख न होना उपशम है। इन्हीं दोनों अवस्थाओं को क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। इस भाव का दूसरा नाम 'मिश्रभाव' भी है। थोडी२ बुझी हुई और ढकी हुई अग्नि के समान जो कर्म उदयावलिका में आचुके हैं उनका क्षय होना तथा शेष कर्मों का उद्रेक और क्षय-दोनों अवस्थाओं से रहित होना इन दोनों के आधार पर क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न होता है।

(४) औदयिक भाव—

कर्म का विपाक (फल) देना उदय कहलाता है। उदय से होनेवाला

(३) क्षायोपशमिक भाव—

मिथ्यात्व मोहनीय आदि कर्मोना उदीर्ण (उदयमा आवेला) अंशनो नाश थवो ते क्षय छे अने अनुदीर्ण अंशनुं फल देवामा उन्मुख-ते तरफ नहिं थवु ते उपशम छे, ओ बन्ने अवस्थाओने क्षायोपशमिक भाव कहे छे आ भावनुं बीजुं नाम मिश्रभाव पण छे थोडी थोडी ढकी थयेली अने ढंकेली अग्नि प्रमाणे जे कर्म उदयावलिमां आवी चूक्या छे तेनो क्षय थवो, तथा शेष कर्मोनो उद्रेक अने क्षय, बन्ने अवस्थाओथी रहित थवुं आ बन्नेनां आधार उपर क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न थाय छे

(४) औदयिक भाव—

कर्मनो विपाक (फल) भगवु ते उदय कहेवाय छे उदयथी उत्पन्न थवावाळो भाव ते औदयिक छे औदयिक भाव आत्मानी मलिनता रूप छे जेमके कीचड-

मलनिचयस्याधोदेशे निपाते सति जलस्य स्वच्छता। मोहनीयकर्मण उपशमाद् यद् दर्शनं श्रद्धानरूपं, चरणं वा विरतिरूपं जायते तदप्यौपशमिकशब्देनोच्यते।

(२) क्षायिकभाव —

(२) सकलकर्मणामत्यन्तोच्छेदः क्षय, क्षयेण निर्वृत्तः क्षायिकः- अप्रतिपाति-ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणो जीवस्य परिणतिविशेषः। स चात्मनः परमविशुद्धिः। यथा-सर्वथा निःशेषपङ्कादिमलव्यपगमे जलस्य परमस्वच्छता।

कीचड आदि मैल नीचे बैठ जाता है, और जल स्वच्छ हो जाता है। मोहनीय कर्म के उपशम से श्रद्धानरूप जो दर्शन उत्पन्न होता है या विरतिरूप जो चारित्र उत्पन्न होता है, वह औपशमिक सम्यग्दर्शन और औपशमिक चारित्र कहलाता है।

(२) क्षायिक भाव—

कर्म का अत्यन्त उच्छेद हो जाना क्षय कहलाता है। क्षय से होने वाला भाव क्षायिक भाव है। अर्थात् एक बार उत्पन्न हो कर फिर नष्ट न होने वाले ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप जीव के परिणाम को क्षायिक भाव कहते हैं। क्षायिक अवस्था जीव की परम विशुद्धि है, जैसे-पूर्ण रूप से समस्त कीचड आदि मैल के हट जाने पर जल की परम स्वच्छता होती है।

ફટકડી આદિનું ચૂર્ણ નાખવાથી કચરો અને મેલ નીચે બેસી જાય છે, અને જલ સ્વચ્છ થાય છે મોહનીય કર્મના ઉપશમથી શ્રદ્ધારૂપ જે દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે અથવા વિરતિરૂપ જે ચારિત્ર ઉત્પન્ન થાય છે, તે ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન અને ઔપશમિક ચારિત્ર કહેવાય છે

(૨) ક્ષાયિક ભાવ—

કર્મનો અત્યન્ત ઉચ્છેદ થઈ જવો તે ક્ષય કહેવાય છે ક્ષયથી થવાવાળો ભાવ ક્ષાયિક ભાવ છે અર્થાત્ એકવાર ઉત્પન્ન થઈને ફરી નાશ નહિ થવાવાળા જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રરૂપ જીવના પરિણામને ક્ષાયિક ભાવ કહે છે ક્ષાયિક અવસ્થા જીવની પરમ વિશુદ્ધિ છે જેમ-પૂર્ણરૂપથી સમસ્ત કીચડ-કાદવ આદિ મેલના દૂર થવાથી જલની પરમ સ્વચ્છતા થાય છે

वामनिर्वृत्तो जीवो निर्वृत्त स्यात्। एवं चादिमत्त्वप्रसंग। कथमसन् आकाश-कुसुमकल्प आत्माऽप्यस्यां संभवे ?-इति युक्तिविरोधश्च।

न हि परिणामेन विना कश्चिद्भावो भवतीति भावानां मध्ये परिणामस्यैव प्राधान्यम्। आत्मनः स्वाभाविकं स्वरूपपरिणमनमेव पारिणामिको भाव उच्यते। यथात्मनः सत्तया स्वयमेव परिणामो भवति, स एव पारिणामिको भाव। उक्तञ्च—

"य कर्ता कर्मभेदानां, भोक्ता कर्मफलस्य च।
संसर्ता परिनिर्वाता, स ह्यात्मा नान्यलक्षणः॥ १॥"

अष्टविधकर्मणां कर्ता, कर्मफलभोक्ता, चतुर्गतिभ्रमणकर्ता, कर्मक्षयकरणेन मोक्षगन्ता यः, स एवात्मा, अन्यरूपो नेत्यर्थः।

प्रकार जीवको सादि (आदिवाला) मानना पडेगा, परन्तु ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि-जो आत्मा भूतकालमें नहीं था तो आकाशपुष्पके समान भविष्यत् कालमें उसका होना कैसे संभव हो सकता है ?। इस प्रकार युक्तिसे भी विरोध आता है।

बिना परिणाम के कोई भाव नहीं हो सकता अतः भावोंमें परिणामकी प्रधानता है। आत्मा का स्वाभाविक परिणमन ही 'पारिणामिक' भाव कहलाता है, अर्थात् आत्मा का जो अनादिपरिणमनसत्ता का कारण है उसे पारिणामिक भाव समझना चाहिए। कहा भी है —

"जो कर्म के भेदों का कर्ता है, जो कर्मफल का भोक्ता है। संसारभ्रमण करने वाला है, निर्वृत्ति (मोक्ष) प्राप्त करने वाला है वही आत्मा है, आत्मा का अन्य लक्षण नहीं है ॥१॥

માનવામાં આવે તો પૂર્વકાળમાં જીવ નહિ હતો તે હવે થયો છે આ પ્રકારે જીવને આદિ (આદિવાળો) માનવો પડશે પરંતુ એમ થઈ શકે નહિ, કારણ કે-જે જીવ ભૂતકાળમાં નહીં હતો ત્યારે તેનું આકાશપુષ્પની સમાન ભવિષ્યત્ કાળમાં થવું કેમ સંભવે ? એમ યુક્તિથી પણ વિરોધ આવે છે.

વગર પરિણામે કોઈ પણ ભાવ નથી થઈ શકતો, એટલા માટે ભાવોમાં પરિણામની પ્રધાનતા છે આત્માનું સ્વાભાવિક પરિણમન જ પારિણામિક ભાવ કહેવાય છે અર્થાત્ આત્માની અનાદિપરિણમનસત્તાનું જે કારણ છે તેને પારિણામિક ભાવ સમજવું એટલે કહ્યું પણ છે—

જે કર્મના ભેદોનો કર્તા છે, જે કર્મના ફળનો ભોક્તા છે સંસારભ્રમણ કરવાવાળો છે નિર્વૃતિ (મોક્ષ) પ્રાપ્ત કરવા વાળો છે તે આત્મા છે આત્માનું બીજું લક્ષણ નથી" ॥૧॥

चात्मनो मालिन्यम्, यथा पङ्कसंगाज्जलस्य मालिन्यं। तथा-नरकगत्यादिनामकर्मणो विपाकाविर्भावान्नरकगत्याद्याख्य औदयिको भावः। कषायमोहनीयकर्मणो विपाकाविर्भावाच्च 'क्रोधी,-मानी'-त्यादिरौदयिको भावः। एवं सर्वत्रौदयिको भावः समालोचनीयः।

(५) परिणामिक-भावः—

(५) परिणमनं-सर्वथा-अपरित्यक्तपूर्वावस्थस्य रूपान्तरेण भवनं-परिणामः, स एव पारिमाणिकः। अत्र स्वार्थे ठक् प्रत्ययः, न तु निर्वृत्त्यर्थे, जीवस्यादिमत्त्वापत्तेः। यदि 'परिणामेन निर्वृत्त' इत्यर्थे पारिणामिको जीव इति मन्यते, तदा प्रागवस्था-

---

भाव औदयिक है। भाव आत्मा का मालिन्यरूप है, जैसे कि कीचड के संसर्ग से जल में मलिनता आ जाती है। नरकगतिनामकर्म आदि के उदय से नरक गति आदि औदयिक भाव कहलाते है। कषायमोहनीय कर्म के उदय से क्रोध, मान आदि औदयिक भाव होते हैं। इसी प्रकार सभी जगह औदयिक भाव का विचार कर लेना चाहिये।

(५) पारिणामिक भाव—

पूर्व अवस्था का सर्वथा त्याग न कर के रूपांतर में होना परिणाम है, और वही पारिणामिक कहलाता है। यहां स्वार्थमें ठक् प्रत्यय हुआ है, न कि निर्वृत्ति अर्थ में, निर्वृत्ति अर्थ में प्रत्यय होनेसे जीवका आदिमान् होनेका प्रसङ्ग आजाता है। यदि—"परिणामेन निर्वृत्तिः पारिणामिकः-जीवः" अर्थात् परिणामसे होनेवाला पारिणामिक-जीव कहलाता है, ऐसी व्युत्पत्ति मानली जाय तो 'किसी पूर्व कालमे जीव नहीं था वह अब हुआ है' इस

કાદવના સંસર્ગથી જલમાં મલિનતા આવી જાય છે નરકગતિ નામ-કર્મ આદિના ઉદયથી નરકગતિ આદિ ઔદયિક ભાવ કહેવાય છે કષાય-મોહનીય કર્મના ઉદયથી ક્રોધ, માન આદિ તે ઔદયિક ભાવ છે આ પ્રમાણે તમામ સ્થળે ઔદયિક ભાવનો વિચાર કરી લેવો.

(૫) પારિણામિક ભાવ—

પૂર્ણ અવસ્થાનો સર્વથા ત્યાગ નહિ કરતા રૂપાંતર થવું તે પરિણામ છે, અને પરિણામ તેજ પારિણામિક કહેવાય છે અહીં સ્વાર્થમાં ઠક્ પ્રત્યય થયો છે પરન્તુ નિર્વૃત્તિ અર્થમાં નથી થયો નિર્વૃત્તિ અર્થમાં પ્રત્યય થવાથી જીવનો આદિમાન્ (આદિવાળો) થવાનો પ્રસંગ આવી જાય છે જો—"परिणामेन निर्वृत्त परिणामिकः-जीव" અર્થાત્ 'પરિણામથી થવાવાળો પારિણામિક જીવ કહેવાય છે' આવી વ્યુત્પત્તિ

इति। यदा जीवः केवलिसमुद्घातावस्थां प्राप्नोति, तदा समस्तलोकाकाशमेक-जीवस्याधारक्षेत्रं भवति। सकलजीवराश्यपेक्षया तु जीवानामाधारक्षेत्रं संपूर्णमेव लोकाकाशम्।

लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागे जीवस्य स्थितिरित्यत्राऽऽगमवचनं यथा—

"सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे"

स्वस्थानेन लोकस्यासंख्येयभागे। (प्रज्ञा० २ पद जीवस्थानाधिकारे)

ननु परिमाणस्य न्यूनाधिकत्वे किं कारणम्? उच्यते—जीवस्यानादिकालतो-ऽनन्तानन्ताणुप्रचयरूपेण कार्मण-शरीरेण सम्बन्धात्कस्यैव जीवस्य परिमाणं

जीव का आधारक्षेत्र लोकाकाश के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकतक हो सकता है। जब जीव केवलिसमुद्घात करता है उस समय वही एक जीव सम्पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त हो जाता है। समस्त जीवराशि की अपेक्षा सम्पूर्ण लोकाकाश जीवों का आधारक्षेत्र है।

जीव का अवगाह लोकाकाश के असंख्यातवें भाग में होता है, इस विषय में आगम का प्रमाण इस प्रकार है—

"सट्ठाणेण लोयस्स असंखेज्जइभागे" (प्रज्ञापना २ पद जीवस्थानाधिकार) स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में (जीव की स्थिति है)।

शङ्का—जीवों के परिमाण की न्यूनाधिकता का क्या कारण है?

समाधान—अनन्तानन्त परमाणुओं के प्रचयरूप कार्मण शरीर के साथ

જ્યારે જીવ કેવલિસમુદ્ઘાત કરે છે તે સમય તે એક જીવ સંપૂર્ણ લોકાકાશમાં વ્યાપ્ત થઈ જાય છે. સમસ્ત જીવરાશિની અપેક્ષાથી સંપૂર્ણ લોકાકાશ જીવોનું આધારક્ષેત્ર છે.

જીવનો અવગાહ લોકાકાશના અસંખ્યાતમા ભાગમાં હોય છે. આ વિષયમાં આગમનું પ્રમાણ આ પ્રમાણે છે—

"સટ્ઠાણેણં લોયસ્સ અસંખેજ્જઇભાગે" સ્વસ્થાનની અપેક્ષા લોકના અસંખ્યાતમા ભાગમાં. (જીવની સ્થિતિ છે) પ્રજ્ઞાપના ૨ પદ જીવસ્થાનાધિકાર)

શંકા—જીવોના પરિમાણની ન્યૂનાધિકતાનું શું કારણ છે?

સમાધાન—અનંતાનંત પરમાણુઓના પ્રચય (સમૂહ) રૂપ કાર્મણ શરીર

जीवस्य स्थितिक्षेत्रम्—

लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य, समस्तलोकाकाशे जीवोऽवगाहते। जीवप्रदेशानां प्रदीपवत् संकोचविस्तारस्वभावत्वात्। आत्मनः परिमाणं न गगनवन्महत्, नापि परमाणुवदणु, किन्तु मध्यमम्।

यद्यपि प्रदेशसंख्यापेक्षया समानमेव सर्वेषामात्मनां स्वस्वपरिमाणम्, तथापि दैर्घ्य-विस्तारादि सर्वेषां विसदृशमेव। अतः प्रत्येकजीवस्याऽऽधारक्षेत्रं जघन्यतो लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य समग्रभागपर्यन्तं भवितुम-

---

जीव का स्थितिक्षेत्र—

लोकाकाश के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकाकाश में जीव का अवगाहन हो सकता है। कारण यह है कि—जीव के प्रदेश दीपक की प्रभा के समान संकोच-विस्तार स्वभाव वाले है, अर्थात् कभी सिकुड जाते हैं और कभी फैल जाते हैं। आत्मा का परिमाण न तो आकाश के समान महान् (सर्वव्यापी) है और न परमाणु के बराबर ही है किन्तु आत्मा मध्यम परिमाण वाला है।

प्रदेशों की संख्या की अपेक्षा समस्त आत्माओं का परिमाण बराबर है, अर्थात् सब आत्मा लोकाकाश के बराबर असंख्यातप्रदेश वाले हैं किन्तु प्राप्त शरीर के अनुसार उनके विस्तार में (परिमाण में) अन्तर पडजाता है, अत प्रत्येक

જીવનુ સ્થિતિક્ષેત્ર—

લોકાકાશના અસખ્યાતમા ભાગથી લઇને સપૂર્ણ લોકાકાશમા જીવનુ અવગાહન થઇ શકે છે કારણ એ છે કે—જીવના પ્રદેશ દીપકની પ્રભાની સમાન સકોચ-વિસ્તાર સ્વભાવવાળા છે, અર્થાત્ કોઈ વખત સકુચાઈ જાય છે અને કોઈ વખત ફેલાઈ જાય છે આત્માનુ પરિમાણુ આકાશપ્રમાણે મહાન નથી અને પરમાણુના બરાબર પણ નથી પરન્તુ આત્મા મધ્યમ પરિમાણુ વાળો છે

પ્રદેશોની સખ્યાની અપેક્ષાએ સમસ્ત આત્માનુ પરિમાણુ બરાબર છે અર્થાત્ સર્વ આત્મા લોકાકાશના બરાબર અસખ્યાત પ્રદેશવાળા છે, પરતુ પ્રાપ્ત શરીરના અનુસાર તેના વિસ્તારમા (પરિમાણુમા) અતર પડી જાય છે તેટલા કારણથી પ્રત્યેક જીવને આધાર-ક્ષેત્ર લોકાકાશના અસખ્યાતમા ભાગથી લઇને સપૂર્ણ લોક સુધી થઈ શકે છે

इति। यदा जीवः केवलिसमुद्घातावस्थां प्राप्नोति, तदा समस्तलोकाकाशमेक-जीवस्याधारक्षेत्रं भवति। सकलजीवराश्यपेक्षया तु जीवानामाधारक्षेत्रं संपूर्णमेव लोकाकाशम्।

लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागे जीवस्य स्थितिरित्यत्राऽऽगमवचनं यथा—

"सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे"

स्वस्थानेन लोकस्यासंख्येयभागे। (प्रज्ञा० २ पद जीवस्थानाधिकार)

ननु परिमाणस्य न्यूनाधिकत्वे किं कारणम्? उच्यते—जीवस्यानादिकालतो-ऽनन्तानन्ताणुप्रचयरूपेण कार्मण-शरीरेण सम्बन्धादेकस्यैव जीवस्य परिमाणं

जीव का आधारक्षेत्र लोकाकाश के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोक तक हो सकता है। जब जीव केवलिसमुद्घात करता है उस समय वही एक जीव सम्पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त हो जाता है। समस्त जीवराशि की अपेक्षा सम्पूर्ण लोकाकाश जीवों का आधारक्षेत्र है।

जीव का अवगाह लोकाकाश के असंख्यातवें भाग में होता है, इस विषय में आगम का प्रमाण इस प्रकार है—

"सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे" (प्रज्ञापना २ पद जीवस्थानाधिकार) स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में (जीव की स्थिति है)।

शंका—जीवों के परिमाण की न्यूनाधिकता का क्या कारण है?

समाधान—अनन्तानन्त परमाणुओं के प्रचयरूप कार्मण शरीर के साथ

જ્યારે જીવ કેવલિસમુદ્ઘાત કરે છે તે સમયે તે એક જીવ સંપૂર્ણ લોકાકાશમાં વ્યાપ્ત થઈ જાય છે. સમસ્ત જીવરાશિની અપેક્ષાથી સંપૂર્ણ લોકાકાશ જીવોનું આધારક્ષેત્ર છે.

જીવનો અવગાહ લોકાકાશના અસંખ્યાતમા ભાગમાં હોય છે. આ વિષયમાં આગમનું પ્રમાણ આ પ્રમાણે છે—

સટ્ઠાણેણં લોયસ્સ અસંખેજ્જઇભાગે સ્વસ્થાનની અપેક્ષા લોકના અસંખ્યાતમા ભાગમાં (જીવની સ્થિતિ છે) પ્રજ્ઞાપના ૨ પદ જીવસ્થાનાધિકાર)

શંકા—જીવોના પરિમાણની ન્યૂનાધિકતાનું શું કારણ છે?

સમાધાન—અનંતાનંત પરમાણુઓના પ્રચય (સમૂહ) રૂપ કાર્મણ શરીર

वहूनां वा जीवाना परिमाणं विविधं जायते। कार्मण-शरीरं हि सर्वदाऽनेक-रूपेणावतिष्ठते। तत्सम्बन्धादौदारिकाद्यपि शरीरं तदनुसारि न्यूनाधिक-परिमाणभाग् भवति।

जीवस्य मूर्तवद् ह्रासवृद्धिः—

वस्तुतो रूपरहितोऽपि जीवः शरीरसम्बन्धान्न्यूनाधिकपरिमाणं दधन्मूर्त इवापचयोपचयौ प्राप्नोति। स हि स्वभावतः प्रदीपवन्निमित्तमासाद्य सकोचविकाशशीलः स्वाश्रयमात्रेऽवभासते। यथा-कलशे प्रासादप्रदेशे निरा-

---

अनादि काल से जीव का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध के कारण एक ही जीव का अनेक कालों में, और अनेक जीवों का एक ही काल मे भिन्न२ प्रकार का परिमाण होता है। कार्मण शरीर सदा विभिन्न रूपों म परिणमन करता रहता है। उसके सयोग से औदारिक आदि शरीर भी कार्मण शरीर के अनुसार न्यूनाधिकपरिमाणवाले होते हैं।

जोव की ह्रास-वृद्धि—

जीव वास्तव मे अरूपी है, फिर भी शरीर के साथ सम्बन्ध होने के कारण वह छोटे-मोटे परिमाग को धारण करता है, अत उस मे मूर्त पदार्थ की भाँति अपचय (ह्रास) और उपचय (वृद्धि) होना है। स्वभाव से सकोच विकासवाला जीव निमित्त पाकर दीपक की तरह अपने आश्रय (शरीर) मे प्रतिभासित होता है। जैसे घट में,

---

સાથે અનાદિ કાલથી જીવને સબધ છે, એ સબધના કારણે એકજ જીવના અનેક કાલોમા, અને અનેક જીવોના એકજ કાલમા ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારનુ પરિમાણુ થાય છે કાર્મણુ શરીર સદાય વિભિન્ન રૂપોમા પરિણુમન કરી રહે છે, તેના સયોગથી ઔદારિક આદિ શરીર પણુ કાર્મણુ શરીર પ્રમાણે ન્યૂનાધિક પરિમાણુવાળા હોય છે

જીવની હ્રાસ વૃદ્ધિ—

જીવ વાસ્તવમા અરૂપી છે, તો પણુ શરીરની સાથે સબધ હોવાના કારણે તે નાના-મોટા પરિમાણુને ધારણુ કરે છે, તે કારણુથી તેમા મૂર્ત્ત પદાર્થની જેમ અપચય (હ્રાસ) અને ઉપચય (વૃદ્ધિ) થાય છે સ્વભાવથી સકોચ-વિકાસવાળો જીવ નિમિત્ત પ્રાપ્ત કરી દીપકની પ્રમાણે પોતાના આશ્રય (શરીર)મા પ્રતિભાસિત થાય છે-(દેખાય છે)

इत्याकाशे चावस्थितः प्रकाशपुञ्जरूपः प्रदीपः स्वाश्रयमात्रावभासी क्वचित् संकुचितः क्वचित् विततश्च भवति । अत शरीरपरिमाणानुसारं परिमाणं दधान आत्मा मूर्त इव विज्ञायते । उक्तञ्च राजप्रश्नीयसूत्रे—

"पएसी ! जहाणामए-कूडागारसाला सिया जाव गंभीरा, अह णं केई पुरिसे जोइं व दीवं व" इत्यारभ्य "एवामेव पएसी ! जीवेवि जं जारिसयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोंदिं णिव्वत्तेइ तं असंखेज्जेहिं जीवपएसेहिं सचित्तं करेइ-खुड्डियं वा महालियं वा" इति पर्यन्तम् । सू० ८४ ॥ इति ॥

प्रदेशिन् तद् यथानामकम्-कूटागारशाला स्यात् यावद् गम्भीरा अथ खलु कोऽपि पुरुषः ज्योतिर्वा दीपं वा (इत्यारभ्य) एवमेव प्रदेशिन् ! जीवोऽपि यां यादृशिकां पूर्वकर्मनिबद्धां बोंदिं निर्वर्तयति तामसंख्येयैर्जीवप्रदेशैः सचित्तां करोति क्षुद्रिकां वा महालयां वा ।" इति च्छाया ।

महल में और खुले आकाश में रक्खा हुआ प्रकाश का पुञ्जरूप दीपक अपनी जगह पर मालूम होता हुआ कहीं संकुचित होता है और कहीं विस्तृत होता है । इसी प्रकार शरीर के परिमाण के अनुसार परिमाणवाला आत्मा मूर्त जैसा मालूम होता है । राजप्रश्नीय सूत्र में कहा है —

हे प्रदेशी राजा ! जैसे कोई कूटागार शाला हो और वह (यावत्) गंभीर हो और कोई पुरुष ज्योत या दीपक उस में रक्खे तो वह उसे पूर्णरूप से प्रकाशित करता है, इसी प्रकार हे प्रदेशी ! आत्मा अपने पूर्वोपार्जित कर्मों के अनुसार जैसा शरीर पाता है, उसे असंख्यात आत्मप्रदेशों से सजीव बना देता है, चाहे वह शरीर बड़ा हो चाहे क्षुल्लक (छोटा) हो" ।

જેવી રીતે ઘરમાં, મહેલમાં અને ખુલ્લા આકાશમાં રાખેલો પ્રકાશ-પુંજરૂપ દીપક પોતાની જગ્યાએ દેખાતો થકો કોઈ જગ્યાએ સંકુચિત હોય છે અને કોઈ જગ્યાએ વિસ્તૃત હોય છે એ પ્રમાણે શરીરના પરિમાણ અનુસાર પરિમાણ વાળો આત્મા મૂર્ત જેવો દેખાય છે રાજપ્રશ્નીય સૂત્રમાં કહ્યું છે —

"હે પરદેશી રાજા ! જેમ કોઈ કૂટાગાર શાળા હોય તે (યાવત્) ગંભીર હોય અને કોઈ પુરુષ જ્યોત અથવા દીપક તેમાં રાખે તો તે એને પૂર્ણરૂપથી પ્રકાશિત કરે છે, એ પ્રમાણે હે પરદેશી ! આત્મા પોતાના પૂર્વોપાર્જિત કર્મો પ્રમાણે જેવું શરીર પ્રાપ્ત કરે છે તેને અસંખ્યાત આત્મપ્રદેશોથી સજીવ બનાવી દે છે, તે શરીર ભલે તો મોટું હોય અથવા નાનું હોય."

जीवस्य-ऊर्ध्वगतिः—

सकलकर्मणां क्षये सति सपदि जीवो मुक्तः सन्नूर्ध्वं गच्छति, न च 'जीवस्यामूर्तत्वाद् गतेरसंभवः' इति वाच्यम्, स्वभावत एव पुद्गलद्रव्यवद् जीवस्य गतिशीलत्वात्।

इयान् विशेषः पुद्गलेभ्यः-पुद्गलाः स्वभावादधोगतिशीलाः, जीवास्तु स्वभावादूर्ध्वगतिशीलाः। प्रतिबंधकद्रव्यसद्भावाद् ऊर्ध्वगमनस्वभावा जीवा अधस्तिर्यग् वा गच्छन्ति, गन्तुमक्षमा वा भवन्ति। तच्च तद्गतिप्रतिबन्धकं कर्मैव। यदा सकल-

जीव की ऊर्ध्वगति—

सकल कर्मों का क्षय होने पर तत्काल मुक्त हुआ जीव ऊपर की ओर गमन करता है। 'जीव अमूर्त है और इस कारण वह गति नहीं कर सकता' ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्यों कि पुद्गल-द्रव्य के समान जीव स्वभाव से ही गतिशील है।

गति के विषय में जीव और पुद्गल में इतना भेद है-पुद्गल अधोगतिशील है और जीव ऊर्ध्वगतिशील हैं, अर्थात् पुद्गलों का स्वभाव नीचे जाने का है और जीव का स्वभाव ऊपर की ओर जाने का है मगर रुकावट डालने वाले द्रव्यों के निमित्त से ऊर्ध्वगतिशील जीव भी नीचे की ओर अथवा तिरछा गमन करता है। या कभी गमन करने में असमर्थ हो जाता है। जीव की स्वाभाविक गति का प्रतिवन्धक (रुकावट डालने वाला) कर्म ही है। जब समस्त कर्मों का अत्यन्त उच्छेद हो जाता है और

જીવની ઉર્ધ્વ ગતિ—

સકલ કર્મોનો ક્ષય થયા પછી તત્કાલ મુક્ત થયેલો જીવ ઉપર તરફ ગમન કરે છે 'જીવ અમૂર્ત્ત છે, અને એ કારણથી તે ગતિ કરી શકતો નથી'—એમ કહેવુ તે ઠીક નથી, કેમકે પુદ્ગલની પ્રમાણે જીવ સ્વભાવથી જ ગતિશીલ છે

ગતિના વિષયમા જીવ અને પુદ્ગલમા એટલો ભેદ છે-પુદ્ગલ અધોગતિશીલ છે, અને જીવ ઉર્ધ્વગતિશીલ છે અર્થાત્ પુદ્ગલોનો સ્વભાવ નીચે જવાનો છે, અને જીવનો સ્વભાવ ઉપર તરફ જવાનો છે પરતુ તેમા અતરાય નાખવાવાળા દ્રવ્યોના નિમિત્તથી ઉર્ધ્વગતિશીલ જીવ પણ નીચે તરફ અથવા તિર્છો ગમન કરે છે અથવા કોઈ વખત ગમન કરવામા અસમર્થ થઈ જાય છે જીવની સ્વાભાવિક ગતિનો પ્રતિબ ધ (અટકાયત) કરનાર કર્મ જ છે જ્યારે સકલ કર્મોનો અત્યન્ત ક્ષય થઈ

कर्मणामत्यन्तोच्छेदे सति कर्मसङ्गाभावात् कर्मबन्धनोच्छेदाच्च नास्त्येषोर्ध्वगतिप्रतिबन्धकः तदा स्वस्वभावानुसारेणोर्ध्वगमनावसरः सिद्धानामुपतिष्ठते ।

जीवस्य लक्षणम्—

उपयोगवत्त्वं जीवस्य लक्षणम् । उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते जीवोऽनेनेत्युपयोगः करणे घञ् । बोधरूपो व्यापार उपयोगः । ज्ञानं, संवेदनं, प्रत्ययः, इति नामान्तराणि ।

सामान्यविशेषरूपबोधद्वयदर्शनान्निश्चयो भवति-विद्यते खलु जीवः यस्यैतौ सामान्यविशेषावबोधौ, न च तादृशः कश्चिदस्ति जीवो, यस्य साका-

कर्मों का संसर्ग नहीं रहता, कर्मबन्धन का उच्छेद होने से ऊर्ध्वगति का कोई प्रतिबन्धक नहीं रहता तब सिद्ध जीवों को ऊर्ध्व गमन का अवसर प्राप्त होता है ।

जीव का लक्षण—

जीव का लक्षण उपयोग है । जो जीव को वस्तु के बोध में व्यापृत करता है उपयुक्त बनाता है उसे उपयोग कहते हैं । तात्पर्य यह है कि—बोधरूप व्यापार उपयोग कहलाता है । ज्ञान संवेदन प्रत्यय ये उपयोग के पर्यायवाची शब्द हैं ।

सामान्य बोध (दर्शन) और विशेष बोध (ज्ञान) अनुभवसिद्ध है । इन दोनों बोधों से यह निश्चय होता है कि जीव अवश्य है जिस में यह सामान्य और विशेष बोध पाया जाता है । ऐसा कोई जीव नहीं है जिस में सामान्य-बोध (निराकार

થાય છે અને કર્મોનો સંસર્ગ રહેતો નથી ત્યારે કર્મબંધનનો ક્ષય થવાથી ઉર્ધ્વગતિ થવામાં કોઈ પ્રતિબંધક (અંતરાય કરનાર) રહેતું નથી ત્યારે સિદ્ધ જીવોને ઉર્ધ્વ ગમન કરવાનો અવસર પ્રાપ્ત થાય છે

જીવનું લક્ષણ—

જીવનું લક્ષણ ઉપયોગ છે તે જીવને વસ્તુના બોધમાં વ્યાપૃત-વ્યાપારયુક્ત કરે છે તાત્પર્ય એ છે કે—બોધરૂપ વ્યાપાર ઉપયોગ કહેવાય છે. જ્ઞાન, સંવેદન, પ્રત્યય. આ સવ ઉપયોગના પર્યાયવાચી શબ્દો છે

સામાન્ય બોધ (દર્શન) અને વિશેષ બોધ (જ્ઞાન) અનુભવ સિદ્ધ છે એ બન્ને બોધોથી એમ નિશ્ચય થાય છે કે-જીવ અવશ્ય છે જેમાં આ સામાન્ય તથા વિશેષ બોધ જોવામાં આવે છે એવો કોઈ જીવ નથી કે જેમા સામાન્ય બોધ

रानाकारोपयोगौ न स्तः। अत एवोक्तं भगवता–"जीवो उवओगलक्खणो" इति।

लक्ष्यते–ज्ञायतेऽनेनेति लक्षणम्। उपयोगो लक्षणं यस्य स उपयोगलक्षणः। ज्ञानावगम्यो जीव इत्यर्थः।

पृथिवीकायादिसर्वसंसारिजीवानां बोधस्यानन्ततमो भागः सर्वदा प्रकाशमानोऽनावृतस्तिष्ठत्येव। नहि सकललोकान्तवर्तिन पुद्गलाः कर्मरूपतया परिणता अपि कस्यापि जीवस्य सर्वतोभावेन ज्ञानमावरीतुं प्रभवन्ति। यथा–अतिनिविडघनघटाऽऽच्छादितस्यापि सूर्यस्य प्रकाशलेशः प्रकाशत एव, नच सर्वथा

उपयोग) और विशेष बोध (साकार उपयोग) विद्यमान न हो, इसी कारण भगवान्‌ने कहा है–"जीवो उवओगलक्खणो" जीव उपयोग लक्षण वाला है।

जिस के द्वारा वस्तु लखी जाय–जानी जाय वह लक्षण कहलाता है। उपयोग जिस का लक्षण हो उसे उपयोगलक्षण कहते हैं। तात्पर्य यह है कि–ज्ञान लक्षण के द्वारा जीव मालूम होता है।

पृथिवीकाय आदि समस्त ससारी जीवों के ज्ञान का अनन्तवा भाग सदैव प्रकाशमान और आवरणरहित बना रहता है। सम्पूर्ण लोकाकाश के पुद्गल कदाचित् कर्मरूप में परिणत हो जाएँ तो भी वह किसी एक जीव के ज्ञान को पूर्णरूप से आवृत नहीं कर सकते। सूर्य चाहे कितनी ही सघन घनगटा से आच्छादित क्यों न हो जाए, उसका थोडा बहुत प्रकाश बना ही रहता है, प्रकाश कभी पूरी तरह

(નિરાકાર ઉપયોગ) અને વિશેષ બોધ (સાકાર ઉપયોગ) વિદ્યમાન ન હોય, એ કારણથી ભગવાને કહ્યુ છે કે—"जीवो उवओगलक्खणो" જીવ ઉપયોગ લક્ષણવાળો છે.

જેના દ્વારા વસ્તુ લખી શકાય–જાણી શકાય–તે લક્ષણ કહેવાય છે. ઉપયોગ જેનુ લક્ષણ હોય, તેને "ઉપયોગલક્ષણ" કહે છે તાત્પર્ય એ છે કે–જ્ઞાનલક્ષણ દ્વારા જીવ માલૂમ પડે છે

પૃથિવીકાય આદિ તમામ સસારી જીવોના જ્ઞાનનો અનતમો ભાગ હમેશા પ્રકાશમાન અને આવરણરહિત બની રહે છે સપૂર્ણ લોકાકાશના પુદ્ગલો કદાચ કર્મરૂપમા પરિણત થઈ જાય તો પણ તે કોઈ એક જીવના જ્ઞાનને પૂર્ણરૂપથી આવૃત કરી (ઢાંકી) શકે નહિ સૂર્ય ગમે તેટલી ઘનઘટા–(મેઘાડબર)મા આચ્છાદિત થઇ જાય તો પણ સૂર્યનો થોડો–ઝાઝો પ્રકાશ તો બની જ રહે છે,

तिरोहितो भवति। तथा पृथिवीकायादिजीवानामुपयोगांश स्फुरत्येव सर्वदा। यदि लोकव्यापिनः पुद्गलाः सघीभूयापि कर्मवर्गणारूपेण सर्वतोभावेन ज्ञानं विरोदध्युस्तर्हि निर्जीवतापत्तिरात्मनो दुर्वारा स्यात्। तस्मात् पृथिव्यादिजीवेषु बोधांशः स्वभावतोऽनावृतस्तिष्ठत्येवेति सिद्धम्। उक्तं चागम—

"सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ। जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा"

"सुट्ठुवि मेहसमुदए, होइ पभा चंद-सूराणं" इति।

छाया—सर्वजीवानामपि च खलु अक्षरस्यानन्तभागो नित्योद्घाटितः। यदि पुनः सोऽपि आव्रियेत तर्हि खलु जीवः अजीवत्वं आप्नुयात्। "सुष्ठुपि मेघसमुदये, भवति प्रभा चन्द्रसूर्ययोः" इति।

तिरोहित नहीं हो सकता, इसी प्रकार पृथिवीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों के उपयोग का अंश सदा स्फुरायमान रहता ही है। अगर लोकव्यापी पुद्गल इकट्ठे हो कर्मवर्गणा रूप परिणत हो कर ज्ञान को पूरी तरह आच्छादित कर सके तो जीव अजीव बन जाय मगर ऐसा होना असम्भव है, अत एव यह सिद्ध है कि—पृथिवीकाय आदि एक इन्द्रिय वाले जीवों में भी ज्ञान का किंचित अंश स्वभाव से अनावृत (आवरण रहित) रहता है। आगम में भी कहा है—"सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ, जइ पुण सोवि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा" "सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं"

પ્રકાશ ઢંકાઈને પૂર્ણપણે તિરોહિત—આચ્છાદિત થતો નથી એ પ્રમાણે પૃથિવીકાય આદિ એકેન્દ્રિય જીવોના ઉપયોગ" અંશ પણ સદા સ્ફુરાયમાન રહે છે અગર લોકવ્યાપી પુદ્ગલ એકઠા થઈને કર્મવર્ગણારૂપ પરિણત થઈને જ્ઞાનને પૂરી તરેહથી આચ્છાદિત કરી નાંખે (શકે છે) તો જીવ અજીવ બની જાય પણ એમ બનવું અસંભવિત છે એટલા કારણથી એ સિદ્ધ છે કે-પૃથિવીકાય આદિ એક ઇન્દ્રિયવાળા જીવોમાં પણ જ્ઞાનનો કિંચિત અંશ સ્વભાવથી અનાવૃત-આવરણરહિત રહે છે આગમમાં પણ કહ્યું છે— सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ। जइ पुण सोवि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं

तस्माद् यश्च यावानुपयोगांशः सर्वसंसारिजीवेषु यथासंभवं स्वभावतोऽनावृतो वर्तते, तत्र सर्वतो जघन्य उपयोगांशः प्रथमसमये खल्वपर्याप्तानां सूक्ष्मनिगोदानामेव भवति। ततः परं स एवोपयोगांशः अवशिष्टैकेन्द्रिय द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियभेदाद् भिद्यमानः संभिन्नस्रोतस्त्वादिलब्धिसमूहेन च लब्धिनिमित्तकरणशरीरेन्द्रियवाङ्मनांसि समाश्रित्य प्रवर्धमानो विविधक्षायोपशमकृतवैचित्र्यवतामवग्रहादीनां भेदेन ततोऽप्यधिकतरं वर्धमानः सकलघातिकर्मक्षयं कृत्वा, सकलज्ञेयग्राहिकां परां विशुद्धिं

"सर्व जीवों के अक्षर का अनन्तवा भाग ज्ञान सदैव उघाडा (निरावरण) बना रहता है, अगर वह भी ढक जाय तो जीव अजीव हो जाय।"

"मेघों का खूब समुदाय होने पर भी चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा तो बनी ही रहती है।"

उपयोग का जो सर्व जघन्य अंश समस्त संसारी जीवोंमें सर्वदा अनावृत बना रहता है, वह जघन्य अंश उत्पत्ति के प्रथम समय में वर्तमान अपर्याप्त सूक्ष्म निगोदिया जीवों में भी होता है। तत्पश्चात् वही उपयोग का अंश एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भेद से भिन्न होता हुआ संभिन्नस्रोतस्त्व आदि लब्धियों के समूह से लब्धि, निमित्त, करण, शरीर, इन्द्रिय वचन और मन का आश्रय लेकर बढता जाता है। यहां तक कि विविध प्रकार के क्षयोपशम की विचित्रता वाले जीवों के अवग्रह आदि के भेद से और उस से भी अधिक बढकर समस्त घाती कर्मों का क्षय होने पर समस्त ज्ञेय पदार्थों

"સર્વ જીવોને અક્ષરનો અનંતમો ભાગ જ્ઞાન સદૈવ ઉઘાડું (નિરાવરણ) રહે છે અગર તે પણ જો ઢંકાઈ જાય તો જીવ અજીવ થઈ જાય"

"મેઘનો ખુબ સમુદાય હોય તો પણ ચંદ્ર અને સૂર્યની પ્રભા બની રહે છે"

ઉપયોગનો જે સર્વ જઘન્ય અંશ તમામ સંસારી જીવોમાં સર્વદા અનાવૃત (ઉઘાડો) બની રહે છે તે સર્વ જઘન્ય અંશ, ઉત્પત્તિના પ્રથમ સમયમાં વર્ત્તમાન, અપર્યાપ્ત સૂક્ષ્મ નિગોદના જીવોમાં પણ હોય છે તે પછી તે ઉપયોગનો અંશ એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિયના ભેદથી ભિન્ન થઇને, સંભિન્નસ્રોતસ્ત્વ આદિ લબ્ધિઓના સમૂહથી, લબ્ધિ, નિમિત્ત, કરણ, શરીર, ઇન્દ્રિય, વચન અને મનનો આશ્રય લઈને વધતો જાય છે, અહીં સુધી કે વિવિધ પ્રકારના ક્ષયોપશમની વિચિત્રતાવાળા જીવોને અવગ્રહ આદિ ભેદથી અને તેનાથી પણ અધિક વધીને સમસ્ત ઘાતી કર્મોનો

माप्य, केवलज्ञानसंज्ञां प्राप्नोति ।

जीवा द्विविधा –सिद्धा असिद्धाश्च । तत्र निर्धूताशेषकर्माण सिद्धा, असिद्धा संसारिणः । द्रव्यभावबन्धः संसारः । कर्माष्टकसम्बन्धो द्रव्यबन्धः, रागद्वेषादिपरिणामसंबन्धो भावबन्धः । द्विविधबन्धस्वरूपः संसारोऽस्ति येषां ते संसारिणः । संसारिणो द्विविधाः त्रसस्थावरभेदात् । तत्र पृथिव्यम्बुवनस्पतयः स्थावराः । तेजोवायूदारास्त्रसाः । तेजोवायू गत्यैव त्रसौ, न तु लब्ध्या । तत्रोदाराश्च चतुर्विधाः –द्वि–त्रि–चतुः–पञ्चेन्द्रियभेदात् । तत्र पञ्चेन्द्रियाः पुनर्द्विविधाः समनस्का अमनस्काश्च ।

को जानने योग्य विशुद्धता प्राप्त करके केवल ज्ञान संज्ञा को पाता है ।

जीव दो प्रकार के हैं —सिद्ध जीव और असिद्ध जीव । सकल कर्मों से रहित जीव सिद्ध कहलाते हैं और संसारी जीव असिद्ध कहलाते हैं । द्रव्यबन्ध और भावबन्ध को संसार कहते हैं । आठ कर्मोंका सम्बन्ध द्रव्यबन्ध है, और राग द्वेष आदि परिणामों का सम्बन्ध होना भावबन्ध है । यह दो प्रकार का बन्धरूप संसार जिन के हो वे संसारी जीव कहलाते हैं । संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेदसे दो प्रकार के है । पृथ्वी जल और वनस्पति ये स्थावर है, तेज वायु और उदार जीव त्रस हैं । इन में तेज और वायु गतित्रस है लब्धि से स्थावर है ।

उदार के चार भेद है–द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चन्द्रिय । पञ्चेन्द्रिय जीवों के संज्ञी और असंज्ञी, ये दो भेद है ।

રૂપ યથાર્થ સમસ્ત જ્ઞેય પદાર્થોને જાણવા યોગ્ય વિશુદ્ધતા પ્રાપ્ત કરીને કેવલજ્ઞાન સંજ્ઞા પામે છે

જીવ બે પ્રકારના છે —સિદ્ધ જીવ અને અસિદ્ધ જીવ, સકલ કર્મોથી રહિત જીવ સિદ્ધ કહેવાય છે અને સંસારી જીવ અસિદ્ધ કહેવાય છે દ્રવ્યબંધ અને ભાવબંધને સંસાર કહે છે આઠ કર્મોનો સંબંધ તે દ્રવ્યબંધ છે અને રાગ-દ્વેષ આદિ પરિણામોનો સંબંધ થાય તે ભાવબંધ છે એ બે પ્રકારના બંધરૂપ સંસાર જેને હોય છે તે સંસારી જીવ કહેવાય છે સંસારી જીવ ત્રસ અને સ્થાવરના ભેદથી બે પ્રકારના છે પૃથ્વી, પાણી, અને વનસ્પતિ આ ત્રણ સ્થાવર છે તેજ વાયુ ઉદાર જીવ ત્રસ છે તેમાં તેજ અને વાયુ ગતિત્રસ છે લબ્ધિથી સ્થાવર છે. ઉદારના ચાર ભેદ છે દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય. પંચેન્દ્રિય જીવોના સંજ્ઞી અસંજ્ઞી એ બે ભેદ છે

तस्माद् यश्च यात्रानुपयोगांशः सर्वसंसारिजीवेषु यथासंभवं स्वभावतोऽनावृतो वर्तते, तत्र सर्वतो जघन्य उपयोगांशः प्रथमसमये खल्वपर्याप्तानां सूक्ष्मनिगोदानामेव भवति। ततः पर स एवोपयोगांशः अवशिष्टैकेन्द्रिय द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियभेदाद् भिद्यमानः संभिन्नस्रोतस्त्वादिलब्धिसमूहेन च लब्धिनिमित्तकरणशरीरेन्द्रियवाङ्मनांसि समाश्रित्य प्रवर्धमानो विविधक्षायोपशमकृतवैचित्र्यवतामवग्रहादीनां भेदेन ततोऽप्यधिकतरं वर्धमानः सकलघातिकर्मक्षयं कृत्वा, सकलज्ञेयग्राहिका परां विशुद्धि

"सर्व जीवों के अक्षर का अनन्तवा भाग ज्ञान सदैव उघाडा (निरावरण) बना रहता है, अगर वह भी ढक जाय तो जीव अजीव हो जाय।"

"मेघों का खूब समुदाय होने पर भी चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा तो बनी ही रहती है।"

उपयोग का जो सर्व जघन्य अंश समस्त संसारी जीवोंमें सर्वदा अनावृत बना रहता है, वह जघन्य अंश उत्पत्ति के प्रथम समय में वर्तमान अपर्याप्त सूक्ष्म निगोदिया जीवों में भी होता है। तत्पश्चात् वही उपयोग का अंश एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भेद से भिन्न होता हुआ संभिन्नस्रोतस्त्व आदि लब्धियों के समूह से लब्धि, निमित्त, करण, शरीर, इन्द्रिय वचन और मन का आश्रय लेकर बढता जाता है। यहां तक कि विविध प्रकार के क्षयोपशम की विचित्रता वाले जीवों के अवग्रह आदि के भेद से और उस से भी अधिक बढकर समस्त घाती कर्मों का क्षय होने पर समस्त ज्ञेय पदार्थों

"સર્વ જીવોને અક્ષરનો અનંતમો ભાગ જ્ઞાન સદૈવ ઉઘાડુ (નિરાવરણ) રહે છે અગર તે પણ જો ઢંકાઈ જાય તો જીવ અજીવ થઈ જાય"

"મેઘનો ખુબ સમુદાય હોય તો પણ ચંદ્ર અને સૂર્યની પ્રભા બની રહે છે"

ઉપયોગનો જે સર્વ જઘન્ય અંશ તમામ સંસારી જીવોમાં સર્વદા અનાવૃત (ઉઘાડો), બની રહે છે તે સર્વ જઘન્ય અંશ ઉત્પત્તિના પ્રથમ સમયમાં વર્ત્તમાન, અપર્યાપ્ત સૂક્ષ્મ નિગોદના જીવોમાં પણ હોય છે તે પછી તે ઉપયોગનો અંશ એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિયના ભેદથી ભિન્ન થઈને, સંભિન્નસ્રોતસ્ત્વ આદિ લબ્ધિઓના સમૂહથી, લબ્ધિ, નિમિત્ત, કરણ, શરીર, ઇન્દ્રિય, વચન અને મનનો આશ્રય લઈને વધતો જાય છે, અહીં સુધી કે વિવિધ પ્રકારના ક્ષયોપશમની વિચિત્રતાવાળા જીવોને અવગ્રહ આદિ ભેદથી અને તેનાથી પણ અધિક વધીને સમસ્ત ઘાતી કર્મોનો

माप्य, केवलज्ञानसंज्ञां प्राप्नोति ।

जीवा द्विविधा -सिद्धा असिद्धाश्च । तत्र निर्दग्धाशेषकर्माणः सिद्धाः, असिद्धा संसारिणः । द्रव्यभावबन्धः संसारः । कर्माष्टकसम्बन्धो द्रव्यबन्धः, रागद्वेषादिपरिणामसंबन्धो भावबन्धः । द्विविधबन्धरूपः संसारोऽस्ति येषां ते संसारिणः । संसारिणो द्विविधा त्रसस्थावरभेदात् । तत्र पृथिव्यबनस्पतयः स्थावराः । तेजोवायूदाराश्च त्रसाः । तत्रोवायू गत्यैव त्रसौ न तु लब्ध्या । तत्रोदाराश्चतुर्विधा-द्वि-त्रि-चतु-पञ्चेन्द्रियभेदात् । तत्र पञ्चेन्द्रियाः पुनर्द्विविधा समनस्का अमनस्काश्च ।

को जानने योग्य विशुद्धता प्राप्त करके केवल ज्ञान संज्ञा को पाता है ।

जीव दो प्रकार के है —सिद्ध जीव और असिद्ध जीव । सकल कर्मों से रहित जीव सिद्ध कहलाते है और संसारी जीव असिद्ध कहलाते हैं । द्रव्यबन्ध और भावबन्ध को संसार कहते है । आठ कर्मोंका सम्बन्ध द्रव्यबन्ध है, और राग द्वेष आदि परिणामों का सम्बन्ध होना भावबन्ध है । यह दो प्रकार का बन्धरूप संसार जिन के हो वे संसारी जीव कहलाते हैं । संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेदसे दो प्रकार के है । पृथ्वी जल और वनस्पति ये स्थावर हैं, तेज वायु और उदार जीव त्रस हैं । इन में तेज और वायु गतित्रस है लब्धि से स्थावर है ।

उदार के चार भेद है—द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय । पञ्चेन्द्रिय जीवों के संज्ञी और असंज्ञी, ये दो भेद है ।

ज्ञेय पदार्थो सभस्त ज्ञेय पदार्थोने જાણવા યોગ્ય વિશુદ્ધતા પ્રાપ્ત કરીને કેવલજ્ઞાન સંજ્ઞા પામે છે

જીવ બે પ્રકારના છે —સિદ્ધ જીવ અને અસિદ્ધ જીવ, સકલ કર્મોથી રહિત જીવ સિદ્ધ કહેવાય છે અને સંસારી જીવ અસિદ્ધ કહેવાય છે દ્રવ્યબંધ અને ભાવબંધને સંસાર કહે છે આઠ કર્મોનો સંબંધ તે દ્રવ્યબંધ છે અને રાગ-દ્વેષ આદિ પરિણામોનો સંબંધ થાય તે ભાવબંધ છે એ બે પ્રકારના બંધરૂપ સંસાર જેને હોય છે તે સંસારી જીવ કહેવાય છે સંસારી જીવ ત્રસ અને સ્થાવરના ભેદથી બે પ્રકારના છે પૃથ્વી, પાણી, અને વનસ્પતિ આ ત્રણ સ્થાવર છે તેજ વાયુ, ઉદાર જીવ ત્રસ છે તેમાં તેજ અને વાયુ ગતિત્રસ છે લબ્ધિથી સ્થાવર છે ઉદારના ચાર ભેદ છે દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય પંચેન્દ્રિય જીવોના સંજ્ઞી અસંજ્ઞી, એ બે ભેદ છે

जीवास्तिकायस्य (१)–अनन्तज्ञानम्, (२)–अनन्तदर्शनम् (३)–अनन्त सुखम्, (४)–अनन्तवीर्यं चेति गुणाः। (१)–अव्याबाधवत्त्वम्, (२)–अनवगाहवत्त्वम्, (३)–अमूर्तिकत्वम् (४)–अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव–गुण–भेदेन पञ्चधा ज्ञायते–(१)–द्रव्यतः–अनन्ता जीवाः, (२)–क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)–कालत आद्यन्तरहिताः, (४)–भावतः अरूपिणः–वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)–गुणतश्चेतनालक्षणा इति।

। इति जीवास्तिकाय सम्पूर्णः–

जीवास्तिकाय के गुण ये है– -(१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य।

(१) अव्याबाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुत्व, ये जीव की पर्याय है।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पाच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है। (१) द्रव्य से–जीव अनन्त है, (२) क्षेत्र से–लोकप्रमाण है (३) काल से–आदि–अन्त रहित हैं (४) भाव से–अरूपी हैं–रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित है (५) गुण से–चेतनालक्षण हैं।

। इति जीवास्तिकाय।

જીવાસ્તિકાયના ગુણુ આ છે–(૧) અનતજ્ઞાન, (૨) અનત દર્શન (૩) અનત સુખ અને (૪) અનત વીર્ય

(૧) અવ્યાબાધવત્ત્વ (૨) અનવગાહનાવત્ત્વ (૩) અમૂર્તિકત્વ અને (૪) અગુરૂલઘુત્વ, એ જીવની પર્યાય છે

દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ, ભાવ અને ગુણુના ભેદથી પાચ પ્રકારે જીવાસ્તિકાયનુ જ્ઞાન થાય છે (૧) દ્રવ્યથી–જીવ અનત છે (૨) ક્ષેત્રથી–લોકપ્રમાણુ (૩) કાલથી–આદિ અન્ત રહિત છે (૪) ભાવથી–અરૂપી છે–રૂપ–રસ–ગધ અને સ્પર્શથી રહિત છે (૫) ગુણુથી–ચેતનાલક્ષણુ છે

ઈતિ જીવાસ્તિકાય–

अथ षड्द्रव्यविचारः—

षट्सु द्रव्येषु वियद् द्रव्यं क्षेत्रम्, इतरे धर्मादय पञ्च क्षेत्रवर्तित्वात् क्षेत्रिणः। देवकुरूत्तरकुरुक्षेत्रवर्तियौगलिकैककेशस्य खण्डशः करणे पर्यन्ततो यस्य खण्डस्य पुनः खण्डो न भवितुमर्हति, तावत्खण्डपरिमाणं यावदाकाशमभं व्याप्नोति, तावति भागे वियतोऽसंख्यातप्रदेशाः, धर्मास्तिकायस्यासंख्यातप्रदेशाः, अधर्मास्तिकायस्य चा संख्यातप्रदेशाः, असंख्याता निगोदानां गोलकाश्च तिष्ठन्ति।

सूच्यग्रभागपरिमित निगोदखण्डेऽप्यसंख्याता श्रेणय सन्ति। तत्र प्रत्येकमसंख्यासंख्याता प्रतरा, प्रतरं च प्रत्येकमसंख्याताः गोलका, गोलके

षड्द्रव्यविचार—

छह द्रव्यों में से आकाश द्रव्य, क्षेत्र है और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री हैं। देव कुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रों के जुगलियों के एक केश के ऐसे टुकड़े किये जाएँ कि फिर उसका दूसरा टुकड़ा न हो सके। इन में से एक टुकड़ा जितने आकाश क्षेत्र को व्याप्त करता है उतने भाग में आकाश के असंख्यात प्रदेश होते हैं। उसी में धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, अधर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, और निगोद के असंख्यात गोलक विद्यमान हैं।

सुई की नोक बराबर निगोद के खण्ड में भी असंख्यात श्रेणियां विद्यमान हैं। एक २ श्रेणी में असंख्यात-असंख्यात प्रतर हैं एक २ प्रतर में असंख्यात२ गोलक हैं

ષડ્દ્રવ્ય વિચાર—

છ દ્રવ્યોમાં આકાશ દ્રવ્ય ક્ષેત્ર છે અને બાકીના ધર્મ આદિ પાંચદ્રવ્યો ક્ષેત્રવર્તી હોવાથી ક્ષેત્રી છે; દેવકુરૂ અને ઉત્તરકુરૂ ક્ષેત્રોના જુગલિઆના એક કેશ-ખાગના એવા ટુકડા કરવામાં આવે કે ફરીને તેનો બીજો ટુકડો થઈ શકે નહિ, તેમાંથી એક ટુકડો જેટલા આકાશક્ષેત્રને વ્યાપ્ત કરે છે તેટલા ભાગમાં આકાશના અસંખ્યાત પ્રદેશ કહેવાય છે તેમાં ધર્માસ્તિકાયના અસંખ્યાત પ્રદેશ છે અધર્માસ્તિકાયના અસંખ્યાત પ્રદેશ છે અને નિગોદના અસંખ્યાત ગોલક વિદ્યમાન છે

સોયની અણી બરાબર નિગોદના ખંડમાં પણ અસંખ્યાત શ્રેણીઓ વિદ્યમાન છે એક એક શ્રેણીમાં અસંખ્યાત-અસંખ્યાત પ્રતર છે. એક એક પ્રતરમાં

जीवास्तिकायस्य (१)–अनन्तज्ञानम्, (२)–अनन्तदर्शनम् (३)–अनन्त सुखम्, (४)–अनन्तवीर्यं चेति गुणाः। (१)–अव्याबाधवत्त्वम्, (२)–अनवगाहवत्त्वम्, (३)–अमूर्तिकत्वम् (४)–अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव–गुण–भेदेन पञ्चधा ज्ञायते–(१)–द्रव्यतः–अनन्ता जीवाः, (२)–क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)–कालत आद्यन्तरहिताः, (४)–भावतः अरूपिणः–वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)–गुणतश्चेतनालक्षणा इति।

। इति जीवास्तिकाय सम्पूर्णः–

जीवास्तिकाय के गुण ये हैं- -(१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य।

(१) अव्याबाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुत्व, ये जीव की पर्याय हैं।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पाच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है। (१) द्रव्य से–जीव अनन्त है, (२) क्षेत्र से–लोकप्रमाण हैं (३) काल से–आदि–अन्त रहित है (४) भाव से–अरूपी हैं–रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित हैं (५) गुण से–चेतनालक्षण हैं।

। इति जीवास्तिकाय।

જીવાસ્તિકાયના ગુણ આ છે–(૧) અનતજ્ઞાન, (૨) અનત દર્શન (૩) અનત સુખ અને (૪) અનત વીર્ય

(૧) અવ્યાબાધવત્ત્વ (૨) અનવગાહનાવત્ત્વ (૩) અમૂર્તિકત્વ અને (૪) અગુરૂલઘુત્વ, એ જીવની પર્યાય છે

દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ, ભાવ અને ગુણના ભેદથી પાચ પ્રકારે જીવાસ્તિકાયનુ જ્ઞાન થાય છે (૧) દ્રવ્યથી–જીવ અનત છે (૨) ક્ષેત્રથી–લોકપ્રમાણુ (૩) કાલથી–આદિ અન્ત રહિત છે (૪) ભાવથી–અરૂપી છે–રૂપ–રસ–ગધ અને સ્પર્શથી રહિત છે (૫) ગુણથી–ચેતનાલક્ષણ છે

ઈતિ જીવાસ્તિકાય–

अथ षड्द्रव्यविचारः—

षट्सु द्रव्येषु वियद् द्रव्यं क्षेत्रम्, इतरे धर्मादयः पञ्च क्षेत्रवर्तित्वात् क्षेत्रिणः। देवकुरूत्तरकुरुक्षेत्रवर्तियौगलिकैकेशस्य खण्डश्च करणे पर्यन्ततो यस्य खण्डस्य पुनः खण्डो न भवितुमर्हति, तावत्खण्डपरिमाणं यावदाकाशक्षेत्रं व्याप्नोति, तावति भागे वियतोऽसंख्यातप्रदेशाः, धर्मास्तिकायस्यासंख्यातप्रदेशाः, अधर्मास्तिकायस्य चा संख्यातप्रदेशाः, असंख्याता निगोदानां गोलकाश्च तिष्ठन्ति।

सूच्यग्रभागपरिमिते निगोदखण्डेऽप्यसंख्याता श्रेणयः सन्ति। तत्र प्रत्येकश्रेण्यामसंख्याताः प्रतरा, प्रतरे च प्रत्येकमसंख्याता गोलका, गोलके

षड्द्रव्यविचार—

छह द्रव्यों में से आकाश द्रव्य, क्षेत्र है और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री हैं। देव कुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रों के जुगलियाके एक केश के ऐसे टुकडे किये जाएँ कि फिर उसका दूसरा टुकडा न हो सके। इन में से एक टुकडा जितने आकाश क्षेत्र को व्याप्त करता है उतने भाग में आकाश के असंख्यात प्रदेश होते है। उसी में धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, अधर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं और निगोद के असंख्यात गोलक विद्यमान है।

सूई की नोक बराबर निगोद के खण्ड में भी असंख्यात श्रेणियां विद्यमान है। एक २ श्रेणी में असंख्यात–असंख्यात प्रतर हैं एक २ प्रतर में असंख्यात२ गोलक हैं

षड्द्रव्य विचार—

■ द्रव्योमां आकाश द्रव्य क्षेत्र छे अने बाकीना धर्म आदि पांचद्रव्यो क्षेत्रवर्ती होवाथी क्षेत्र छे, देवकुरु अने उत्तरकुरु क्षेत्रोना जुगलियाना ओक केश-वाळना ओवा टुकडा करवामां आवे के फरीने तेनो बीजो टुकडो थई शके नहि, तेमांथी ओक टुकडा जेटला आकाशक्षेत्रने व्याप्त करे छे तेटला भागमां आकाशना असंख्यात प्रदेश कहेवाय छे तेमां धर्मास्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे अधर्मा-स्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे अने निगोदना असंख्यात गोलक विद्यमान ■

सोयनी अणी बराबर निगोदना खंडमां पण असंख्यात श्रेणीओ विद्यमान छे ओक ओक श्रेणीमां असंख्यात–असंख्यात–प्रतर छे. ओक ओक प्रतरमां

जीवास्तिकायस्य (१)–अनन्तज्ञानम्, (२)–अनन्तदर्शनम् (३)–अनन्त सुखम्, (४)–अनन्तवीर्यं चेति गुणाः। (१)–अव्याबाधवत्त्वम्, (२)–अनवगाहवत्त्वम्, (३)–अमूर्तिकत्वम् (४)–अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव–गुण–भेदेन पञ्चधा ज्ञायते–(१)–द्रव्यतः–अनन्ता जीवाः, (२)–क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)–कालत आद्यन्तरहिताः, (४)–भावतः अरूपिणः–वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)–गुणतश्चेतनालक्षणा इति।

। इति जीवास्तिकायः सम्पूर्णः–

जीवास्तिकाय के गुण ये हैं– -(१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य।

(१) अव्याबाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुत्व, ये जीव की पर्याय है।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है। (१) द्रव्य से–जीव अनन्त हैं, (२) क्षेत्र से–लोकप्रमाण हैं (३) काल से–आदि–अन्त रहित हैं (४) भाव से–अरूपी हैं–रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित है (५) गुण से–चेतनालक्षण है।

। इति जीवास्तिकाय।

જીવાસ્તિકાયના ગુણ આ છે–(૧) અનંતજ્ઞાન, (૨) અનંત દર્શન (૩) અનંત સુખ અને (૪) અનંત વીર્ય

(૧) અવ્યાબાધવત્ત્વ (૨) અનવગાહનાવત્ત્વ (૩) અમૂર્તિકત્વ અને (૪) અગુરૂલઘુત્વ, એ જીવની પર્યાય છે

દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ, ભાવ અને ગુણના ભેદથી પાંચ પ્રકારે જીવાસ્તિકાયનું જ્ઞાન થાય છે (૧) દ્રવ્યથી–જીવ અનંત છે (૨) ક્ષેત્રથી–લોકપ્રમાણ (૩) કાલથી–આદિ અન્ત રહિત છે (૪) ભાવથી–અરૂપી છે–રૂપ–રસ–ગંધ અને સ્પર્શથી રહિત છે (૫) ગુણથી–ચેતનાલક્ષણ છે

ઈતિ જીવાસ્તિકાય–

अथ षड्द्रव्यविचारः—

षट्सु द्रव्येषु वियद् द्रव्यं क्षेत्रम्, इतरे धर्मादय पञ्च क्षेत्रवर्तित्वात् क्षेत्रिणः। देवकुरूत्तरकुरुक्षेत्रवर्तियौगलिकैककेशस्य खण्डशः करणे पर्यन्तता यस्य खण्डस्य पुनः खण्डा न भवितुमर्हति, तादृक्खण्डपरिमाणं यावदाकाशक्षेत्रं व्याप्नोति, तावति भागे वियतोऽसंख्यातप्रदेशाः, धर्मास्तिकायस्यासंख्यातप्रदेशाः, अधर्मास्तिकायस्य चा सम्ख्यातप्रदेशाः, असंख्याता निगोदानां गोलकाश्च तिष्ठन्ति।

सूच्यग्रभागपरिमिते निगोदखण्डेऽप्यसंख्याताः श्रेणयः सन्ति। तत्र प्रत्येकश्रेण्यामसंख्याताः प्रतराः, प्रतरे च प्रत्येकमसंख्याताः गोलकाः, गोलके

षड्द्रव्यविचार—

छह द्रव्यों में से आकाश द्रव्य, क्षेत्र है और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री हैं। देव कुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रों के जुगलियाके एक केश के ऐसे टुकडे किये जाएँ कि फिर उनका दूसरा टुकडा न हो सके। इन में से एक टुकडा जितने आकाश क्षेत्र को व्याप्त करता है उतने भाग में आकाश के असंख्यात प्रदेश होते हैं। उसी में धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, अधर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, और निगोद के असंख्यात गोलक विद्यमान है।

सुई की नोक बराबर निगोद के खण्ड में भी असंख्यात श्रेणियां विद्यमान हैं। एक २ श्रेणी में असंख्यात-असंख्यात प्रतर हैं, एक २ प्रतर में असंख्यात२ गोलक हैं

षड्द्रव्य विचार—

छ द्रव्योमां आकाश द्रव्य क्षेत्र छे अने बाकीना धर्म आदि पांचद्रव्यो क्षेत्रवर्ती होवाथी क्षेत्री छे. देवकुरु अने उत्तरकुरु क्षेत्रोना जुगलियाना एक केश-वाळना एवा टुकडा करवामां आवे के फरीने तेनो बीजो टुकडो थई शके नहि, तेमांथी एक टुकडो जेटला आकाशक्षेत्रने व्याप्त करे छे तेटला भागमां आकाशना असंख्यात प्रदेश होय छे तेमां धर्मास्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे, अधर्मास्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे अने निगोदना असंख्यात गोळक विद्यमान छे

सोयनी अणी बरोबर निगोदना भागमां पण असंख्यात श्रेणीओ विद्यमान छे एक एक श्रेणीमां असंख्यात-असंख्यात-प्रतर छे. एक एक प्रतरमां

च प्रत्येकमसंख्यातानि निगोदशरीराणि सन्ति। तत्र च प्रत्येकशरीरेऽनन्ता निगोदजीवाः सन्ति।

अथ कियन्तोऽनन्ता जीवास्तत्र सन्ती?-त्युच्यते-अतीतकालोऽनन्त, तथा भविष्यत्कालोऽप्यनन्तः, वर्तमानकालश्चैकसमयमात्रः, कालत्रयस्यापि यावन्तः समयाः सन्ति, ते पुनरनन्तेन गुणिता यावन्तो भवेयुस्ततोऽप्यनन्त-गुणाधिका एकस्मिन् निगोदे निगोदिका जीवा. सन्ति।

तत्रैकजीवस्यासंख्याताः प्रदेशाः सन्ति। एकैकप्रदेशेऽनन्ताः कर्मवर्गणाः संलग्नाः। तत्रैकस्यां वर्गणायामनन्ताः परमाणुपुद्गलाः सन्ति।

एक २ गोलक में असंख्यात २ निगोदशरीर है, और एक २ निगोदशरीर में अनन्त २ निगोदजीव है।

शङ्का—अनन्त के अनन्त भेद होते है, ऐसी स्थिति में एक निगोदशरीर में कितने अनन्त जीव होते है?

समाधान—अतीत काल के अनन्त समय है, भविष्य कालके भी अनन्त समय है, और वर्तमान काल एक समय मात्र है। इन तीनों कालों के जितने समय हैं उनका अनन्त से गुणाकार कर देने पर जितने समय हों उन से भी अनन्त गुणा अधिक निगोदजीव एक निगोदशरीर में होते हैं।

एक जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं। एक२ प्रदेश में अनन्त २ कर्म-वर्गणाएँ लगी हुई हैं, और एक २ वर्गणा मे अनन्त२ पुद्गलपरमाणु है

અસખ્યાત ગોલક છે એક એક ગોલકમા અસખ્યાત નિગોદ શરીર છે, અને એક એક નિગોદ શરીરમા અનત અનત નિગોદ જીવ છે

શંકા—અનતના અનત ભેદ હોય છે, એવી સ્થિતિમા એક નિગોદ શરીરમા કેટલા અનત જીવ હોય છે?

સમાધાન—અતીતકાલ (ભૂતકાલ)ના અનન્ત સમય છે, ભવિષ્યકાલના પણ અનત સમય છે, અને વર્ત્તમાન કાલ એકસમયમાત્ર છે, એ ત્રણે કાલોમા જે સમય છે, તેનો અનતથી ગુણાકાર કરવાથી જે ગુણાકાર (રાશિ) થાય તેટલા સમયથી પણ અનત ગુણા અધિક નિગોદ જીવ એક નિગોદ-શરીરમા હોય છે

એક જીવના અસખ્યાત પ્રદેશ થાય છે એક-એક પ્રદેશમા અનત-અનત કર્મવર્ગણાઓ લાગી છે, અને એક-એક વર્ગણામા અનત અનત પુદ્ગલપરમાણુ છે

परमाणूनां द्वौ भेदौ स्तः—बद्धा अबद्धाश्च। तत्र बद्धाः स्कन्धरूपाः। अबद्धाः परस्परासंयुक्ताः। स्कन्धानां पुनर्द्वौ भेदौ—जीवसहिताः, जीवरहिताश्च। तत्र घट—पटादिरूपा अजीवस्कन्धाः।

अथ जीवस्कन्ध-विचारः प्रस्तूयते—

द्वयोः परमाण्वोः संयोगे द्विप्रदेशी स्कन्धः। त्रयाणां परमाणूनां संयोगे त्रिप्रदेशी स्कन्धः। एवमसंख्यातानां परमाणूनां संयोगादसंख्यातप्रदेशी स्कन्धो जायते। एतावत्पर्यन्ताः स्कन्धा जीवानां ग्राह्या न भवन्ति।

परमाणु दो प्रकार के हैं—बद्ध और अबद्ध। स्कन्धरूप परमाणु बद्ध कहलाते हैं, और आपस में असंयुक्त परमाणु अबद्ध कहलाते हैं।

स्कन्ध के भी दो भेद हैं—जीवसहित और जीवरहित, इन में घट पट आदि स्कन्ध अजीवस्कन्ध कहलाते हैं।

अब जीवस्कन्ध का विचार करते हैं—

दो परमाणुओं का संयोग होने पर द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, और तीन परमाणुओं के संयोगसे त्रिप्रदेशी स्कन्ध। इसी प्रकार असंख्यात परमाणुओं के संयोग से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता है। यहाँ तक के स्कन्ध जीवों द्वारा ग्रहण नहीं किये जा सकते।

પરમાણુ બે પ્રકારના છે—(૧) બદ્ધ અને (૨) અબદ્ધ. સ્કંધરૂપ પરમાણુ બદ્ધ કહેવાય છે અને આપસમાં અસંયુક્ત પરમાણુ અબદ્ધ કહેવાય છે

સ્કંધના પણ બે ભેદ છે—જીવસહિત અને જીવરહિત. તેમાં ઘટ પટ આદિ સ્કંધ અજીવસ્કંધ કહેવાય છે

હવે જીવસ્કંધનો વિચાર કરવામાં આવે છે—

બે પરમાણુઓનો સંયોગ થવાથી દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ બને છે અને ત્રણ પરમાણુઓના સંયોગથી ત્રિપ્રદેશી સ્કંધ બને છે એ પ્રમાણે અસંખ્યાત પરમાણુઓના સંયોગથી અસંખ્યાતપ્રદેશી સ્કંધ ઉત્પન્ન થાય છે અહિં સુધીના સ્કંધ, જીવો દ્વારા ગ્રહણ કરી શકાતા નથી.

अथ कीदृशाः स्कन्धा जीवानां ग्राह्या भवन्ती ?-त्युच्यते-अभव्यराशिश्चतुःसप्ततितमः, तद्गतजीवापेक्षयाऽनन्तगुणाधिकाः परमाणवो यदि संधीभवन्ति तदौदारिकशरीरग्राह्यवर्गणा भवति। औदारिकवर्गणापेक्षयाऽनन्तगुणाधिका वैक्रियशरीरग्राह्यवर्गणा। ततोऽनन्तगुणाधिकाऽऽहारकवर्गणा। आहारकवर्गणापेक्षयाऽनन्तगुणाधिका तैजसशरीरग्राह्यवर्गणा। ततोऽनन्तगुणाधिका एकभाषाग्राह्यवर्गणा। एकभाषाग्राह्यवर्गणापेक्षयाऽनन्तगुणाधिका एकश्वासोच्छ्वासवर्गणा। ततोऽनन्तगुणाधिका एकमनसो वर्गणा। तदपेक्षयाऽनन्तगुणाधिका कार्मणवर्गणा भवति। ततोऽनन्तगुणाधिकाः पुद्गलपरमाणुस्कन्धा ज्ञेयाः। कार्मण

किस प्रकार के स्कन्ध जीवों द्वारा ग्राह्य होते हैं ? यह बतलाते हैं —अभव्य राशि चौहत्तरवीं है। इस अभव्य राशि के जीवों की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक परमाणु यदि इकट्ठे हों तो औदारिकशरीरग्राह्य वर्गणा होती है। औदारिकवर्गणाकी अपेक्षा अनन्तगुणी अधिक वैक्रियशरीरग्राह्य वर्गणा होती है, और इस से भी अनन्त गुणी अधिक आहारकवर्गणा होती है। आहारकवर्गणा से अनन्तगुणी अधिक तैजसशरीरग्राह्य वर्गणा होती है, और उस से भी अनन्तगुणी अधिक एकभाषाग्राह्य वर्गणा होती है। एकभाषावर्गण से भी अनन्तगुणी अधिक एक श्वासोच्छ्वासवर्गणा होती है, और उस से अनन्तगुणी अधिक एकमनोवर्गणा होती है, मनोवर्गणा से भी अनन्तगुणी अधिक कार्मणवर्गणा होती है। उस से भी अनन्त गुणा अधिक पुद्गल परमाणु के स्कन्ध समझने चाहिए। इस प्रकार कार्मणवर्गणा के अनन्त पुद्गल

કયા પ્રકારના સ્કધ જીવોદ્વારા ગ્રહણ કરી શકાય છે ? તે બતાવે છે—અભવ્ય રાશિ ચુમોતેર (૭૪) વી છે એ અભવ્ય રાશિના જીવોની અપેક્ષા અનત ગુણ અધિક પરમાણુ જો એકઠા થાય તો ઔદારિક શરીર ગ્રહણ કરી શકે તેવી વર્ગણા હોય છે, ઔદારિક વર્ગણાની અપેક્ષા અનત ગુણ અધિક વૈક્રિયશરીરગ્રાહ્ય વર્ગણા હોય છે, અને તેનાથી પણ અનત ગુણી અધિક એક આહારકવર્ગણા હોય છે આહારકવર્ગણાથી અનન્ત ગુણી અધિક તેજસશરીરગ્રાહ્ય વર્ગણા હોય, તેનાથી પણ અનન્ત ગુણી અધિક એક ભાષાગ્રાહ્ય વર્ગણા હોય છે, અને તેનાથી અનતગુણી અધિક એક શ્વાસોચ્છ્વાસવર્ગણા હોય છે, અને તેનાથી અનન્તગુણી અધિક એક મનોવર્ગણા હોય છે મનોવર્ગણાથી પણ અનન્તગુણી અધિક કાર્મણવર્ગણા હોય છે તેનાથી પણ અનન્ત ગુણી અધિક પુદ્ગલપરમાણુના સ્કધ સમજવા જોઇએ એ પ્રમાણે કાર્મણવર્ગણાના

वर्गणागतानन्तपुद्गलपरमाणुघटितस्कन्धा जीवानां ग्राह्या भवन्ति ।

रागद्वेषरूपाशुद्धप्रवृत्त्याऽऽत्मनः प्रतिप्रदेशमनन्तानन्तकर्मवर्गणा अयोगोलकवह्निवल्लोलीभूता सन्ति, अत एवानन्तज्ञानादयो गुणा जीवस्य तिरोहिता भवन्ति । एवं च जीवापेक्षयाऽनन्तगुणाधिकाः पुद्गला ज्ञातव्याः । ते च पुद्गलाः रूपिणोऽचेतनाः सक्रियाः पूरणगलनस्वभावा वेदितव्याः ।

षड्द्रव्येषु सक्रिय–निष्क्रियविचारः—

षड्द्रव्येषु निश्चयनयेन सर्वाणि द्रव्याणि सक्रियाणि । व्यवहारनयतो धर्माधर्माकाशकालाख्यानि चत्वारि द्रव्याणि क्रियारहितानि । जीवपुद्गलौ सक्रियौ

परमाणुओं से बने हुए स्कन्ध जीवों द्वारा ग्रहण करने योग्य होते हैं ।

राग और द्वेषरूप अशुद्ध प्रवृत्ति के कारण आत्मा के एक एक प्रदेश में अनन्तानन्त कर्मवर्गणाएँ इस प्रकार एकमेक हो रही है, जैसे लोहे का गोला और अग्नि एकमेक हो जाते हैं, इसी कारण जीव के अनन्त ज्ञान आदि गुण [illegible] जाते है । इस प्रकार जीवों की अपेक्षा पुद्गल अनन्त गुणा अधिक जानने चाहिए । ये पुद्गल–रूपी, अचेतन, सक्रिय और पूरणगलनस्वभाववाले है ।

छह द्रव्यों में सक्रिय–निष्क्रियका विचार—

निश्चय नय से छहों द्रव्य सक्रिय है, किन्तु व्यवहारनयसे धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाश और काल नामक चार द्रव्य क्रिया रहित हैं जीव और पुद्गल द्रव्य सक्रिय

અનન્ત પુદ્ગલ પરમાણુઓથી બનેલા સ્કંધ જીવો દ્વારા ગ્રહણ કરવા યોગ્ય હોય છે

રાગ અને દ્વેષ રૂપ અશુદ્ધ પ્રવૃત્તિના કારણે આત્માના એક-એક પ્રદેશમાં અનંતાનંત કર્મવર્ગણાઓ એ પ્રમાણે એકમેક થઈ રહી છે કે-જેમ લોઢાનો ગોળો અને અગ્નિ એકમેક થઈ જાય છે એ કારણથી જીવના અનંત જ્ઞાન આદિ ગુણ ઢંકાઈ જાય છે એ પ્રમાણે જીવોની અપેક્ષા પુદ્ગલ અનંતગુણા અધિક જાણવા જોઈએ. તે પુદ્ગલ, રૂપી અચેતન સક્રિય અને પૂરણગલનસ્વભાવવાળા છે

● દ્રવ્યોમાં સક્રિય નિષ્ક્રિયનો વિચાર—

નિશ્ચયનય પ્રમાણે છ દ્રવ્યો સક્રિય છે પરંતુ વ્યવહારનયથી ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય આકાશ અને કાલ નામના ચાર દ્રવ્યો ક્રિયારહિત છે જીવ અને

स्तः। निश्चयनयाद् धर्मास्तिकायो गतिपरिणतानां जीवपुद्गलानां गतिं प्रति सहायदानरूपां क्रियाम्, अधर्मास्तिकायः स्थितिपरिणतजीवपुद्गलानां स्थितिं प्रति सहायदानरूपां क्रियां करोति। तथैवाकाशोऽवकाशदानरूपां क्रियां, कालश्च वर्तनारूपक्रियां जीवाजीवेषु वितनुते। तथैव निश्चयेन जीवः स्वस्वरूपरमणरूपां क्रियां करोति। यदि निश्चयनयेन शुभाशुभरूपविभावदशारमणात्मिका क्रिया कुर्यात्तदाऽऽत्मा कदाप्यविचलपदं नाप्नुयात्, अतः स्वस्वरूपपरिणतिरूपामेव क्रियां करोति। निश्चयनयेन पुद्गलोऽप्यनादिकालतः स्वपूरणगलनरूपां क्रियां समाचरति। तस्माद् निश्चयनयेन सर्वाणि द्रव्याणि सक्रियाणीति ज्ञातव्यम्।

है। निश्चयनय से धर्मास्तिकाय, गतिपरिणत जीवों और पुद्गलों की गति में सहायकता देने की क्रिया करता है, और अधर्मास्तिकाय स्थितिपरिणत जीवों एवं पुद्गलोंकी स्थिति में सहायता देनेकी क्रिया करता है। इसी प्रकार आकाश-अवगाहदानरूप क्रिया करता है, और काल वर्तना आदि में सहायता पहुँचाता है। जीव निश्चयनय से निजस्वरूप-रमणरूप क्रिया करता है। अगर निश्चय नय से जीव शुभ और अशुभ रूप विभावदशा में रमण करने की क्रिया करे तो उसे अविचल पद की कदापि प्राप्ति नहीं हो सकती, अत एव जीव अपने स्वभाव में परिणतिरूप क्रिया ही करता है। निश्चय नय की अपेक्षा पुद्गल भी अनादि काल से पूरण गलन रूप क्रिया कर रहा है। इस प्रकार निश्चय नय से सभी द्रव्य सक्रिय है।

પુદ્ગલ દ્રવ્ય સક્રિય છે નિશ્ચયનયથી ધર્માસ્તિકાય, ગતિમા પરિણુત જીવો અને પુદ્ગલોની ગતિમા સહાયતા કરવાની ક્રિયા કરે છે, અને અધર્માસ્તિકાય, સ્થિતિમા પરિણુત જીવો અને પુદ્ગલોની સ્થિતિમા સહાયતા દેવાની ક્રિયા કરે છે. એ પ્રમાણે આકાશ, અવગાહદાનરૂપ ક્રિયા કરે છે, અને કાલ વર્ત્તના આદિમા સહાયતા પહોચાડે છે, જીવ નિશ્ચયનયથી નિજસ્વરૂપ-રમણુરૂપ ક્રિયા કરે છે અગર નિશ્ચયનયથી જીવ શુભ અને અશુભરૂપ વિભાવદશામા રમણુ કરવાની ક્રિયા કરે તો તેને અવિચલ પદની પ્રાપ્તિ કદાપિ પણ થઈ શકે નહિ, એટલા કારણુથી જીવ પોતાના સ્વભાવમા પરિણુતિરૂપ ક્રિયા જ કરે છે, નિશ્ચયનયની અપેક્ષા એ પુદ્ગલ પણ અનાદિ કાલથી પૂરણુ-ગલનરૂપ ક્રિયા કરે છે, એ પ્રમાણે નિશ્ચયનયથી સર્વ દ્રવ્યો સક્રિય છે.

अधुना व्यवहारनयमाश्रित्योच्यते—

व्यवहारतो धर्माधर्माकाशकाला निष्क्रियाः, जीव-पुद्गलाश्च सक्रियाः। व्यवहारनयतो जीवो रागद्वेषरूपाशुभपरिणत्या प्रतिसमयमनन्तपुद्गलपरमाणुस्कन्धा ऽऽदानक्रियां करोति। परमाणुपुद्गला अपि कर्मवर्गणारूपेण जीवस्य सर्वस्मिन् प्रदेशे संलग्ना भवन्ति, अतस्ते संश्लेषक्रियां पूरणगलनादिक्रियां च कुर्वन्ति, तस्माद् व्यवहारनयतो जीव-पुद्गलावेव सक्रियौ।

षड्द्रव्यविषये कर्तृत्वाकर्तृत्वनिरूपणम्—

निश्चयनयेन षड् द्रव्याणि स्वस्वरूपकर्तॄणि, तस्मात्तेषां कर्तृत्वमुपपद्यते।

अब व्यवहार नय की अपेक्षा से कथन किया जाता है—व्यवहारनय से धर्म अधर्म आकाश और काल क्रियारहित है, तथा जीव और पुद्गल सक्रिय है। व्यवहार नय से जीव राग-द्वेषरूप अशुभ परिणति के द्वारा प्रति समय अनन्त पुद्गल परमाणुओं के स्कन्धों का ग्रहण करने की क्रिया करता है। परमाणु पुद्गल भी कर्मवर्गणारूप में परिणत हो कर जीव के समस्त प्रदेशों में बद्ध होते हैं, अतः वह बन्धनरूप क्रिया करते है, और पूरण गलन आदि क्रिया भी करते है इस प्रकार व्यवहार नय से जीव और पुद्गल ही सक्रिय है।

छह द्रव्यों का कर्तापन और अकर्तापन—

निश्चय नय से छहों द्रव्य अपने २ स्वरूप के कर्ता हैं अतः सभी द्रव्यों में

હવે વ્યવહારનયની અપેક્ષાએ કહેવાય છે—વ્યવહારનયથી ધર્મ અધર્મ આકાશ અને કાલ ક્રિયારહિત છે તથા જીવ અને પુદ્ગલ સક્રિય છે વ્યવહારનયથી જીવ રાગ-દ્વેષરૂપ અશુભપરિણતિદ્વારા પ્રતિસમય અનન્ત પુદ્ગલ પરમાણુઓના સ્કંધોને ગ્રહણ કરવાની ક્રિયા કરે છે પરમાણુ પુદ્ગલ પણ કર્મવર્ગણારૂપમાં પરિણત થઈને જીવના સમસ્ત પ્રદેશોમાં બદ્ધ થઈ જાય છે (સર્વ પ્રદેશોને ચોંટી જાય છે) તેટલા કારણથી તે બંધનરૂપ ક્રિયા કરે છે અને પૂરણ-ગલન આદિ ક્રિયા પણ કરે છે એ પ્રમાણે વ્યવહારનયથી જીવ અને પુદ્ગલ જ સક્રિય છે

દ્રવ્યોનું કર્તાપણું અને અકર્તાપણું—

નિશ્ચયનયથી છ દ્રવ્યો, પોતપોતાના સ્વરૂપમાં કર્તા છે તેથી સર્વ દ્રવ્યોમાં

व्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्व, धर्मादिद्रव्यपञ्चकस्याकर्तृत्वमिति ।

व्यवहारनयः—

व्यवहारनयः षड्विधः—शुद्धाशुद्धशुभाशुभोपचरितानुपचरितभेदात् । तत्र—

(१) शुद्धव्यवहारनयः ।

यदि जीवः कर्ममलरूपाशुद्धता व्यपनीयाऽनन्तज्ञानादिगुण पशुद्धता मुपार्जयति तर्हि प्रथमशुद्धव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं भवति । तथाहि— शुद्धव्यवहारनयेन जीवो यदा शुद्धस्वरूपार्जनाय प्रयतते, तदा प्रथमगुणस्थाने

कर्तापन सिद्ध होता है । व्यवहारनयसे जीव कर्ता है और शेष धर्म आदि पाच द्रव्य अकर्ता हैं ।

व्यवहारनय—

व्यवहार नय छह प्रकार का है—(१) शुद्ध व्यवहारनय, (२) अशुद्ध व्यवहारनय, (३) शुभ व्यवहारनय, (४) अशुभ व्यवहारनय, (५) उपचरित व्यवहारनय और (६) अनुपचरित व्यवहारनय ।

(१) शुद्ध व्यवहारनय—

अगर जीव कर्ममलरूप अशुद्धता को हटाकर अनन्तज्ञानादिगुणरूप शुद्धता का उपार्जन करता है तो शुद्ध व्यवहारनय से जीव में कर्तृत्व होता है । वह इस प्रकार शुद्ध व्यवहार नय से जीव जब अपना शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिए

કર્તાપણુ સિદ્ધ થાય છે વ્યવહારનયથી જીવ કર્તા છે અને બાકીના ધર્માદિ પાચ દ્રવ્યો અકર્તા છે

વ્યવહારનય—

વ્યવહારનય છ પ્રકાર છે (૧) શુદ્ધ વ્યવહારનય (૨) અશુદ્ધ વ્યવહારનય, શુભ વ્યવહારનય, (૪) અશુભવ્યવહારનય, (૫) ઉપચરિત વ્યવહારનય, (૬) અનુપચરિત વ્યવહારનય

(૧) શુધ્ધ વ્યવહારનય—

જીવ કર્મમલરૂપ અશુદ્ધતાને હઠાવીને અનતજ્ઞાનાદિગુણરૂપ શુદ્ધતાને ઉપાર્જન કરે છે તો શુદ્ધ વ્યવહારનય પ્રમાણે જીવમા કર્તૃત્વ–કર્ત્તાપણુ હોય છે તે આ પ્રમાણે– શુદ્ધ વ્યવહારનયથી જીવ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરવા માટે પ્રયત્ન

अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयं क्षपयित्वा चतुर्थं गुणस्थानं समासाद्य सम्यक्त्वगुणं लभते। अप्रत्याख्यानकषायचतुष्टयक्षयेण देशविरतिरूपं पञ्चमं गुणस्थानं प्राप्नोति। प्रत्याख्यानकषायचतुष्टयक्षयेण जीवस्य षष्ठसप्तमगुणस्थानयोः सर्वविरतिरूपयोरुपलब्धिर्भवति। यदाऽष्टमगुणस्थानं लभ्यते तदा तत्र श्रेणिद्वयं समारभते, उपशमश्रेणिं क्षपकश्रेणिं च। तत्रोपशमश्रेण्याऽष्टमगुणस्थानादेकादशगुणस्थानं यावदध्यारोहति। क्षपकश्रेण्या त्वष्टमादारभ्य दशमं यावत् समारुह्यैकादशं विहाय द्वादशं गुणस्थानं समारोहति। जीवस्तत्र रागद्वेषरूपमोहनीय

प्रयत्न करता है तब प्रथम गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चार कषायोंका क्षय करके चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त करता है और सम्यक्त्व गुण पा लेता है। चार अप्रत्याख्यानावरण कषायों का क्षय करके देशविरतिरूप पांचवाँ गुणस्थान प्राप्त करता है, और प्रत्याख्यानावरण कषाय-चतुष्टय के क्षय से जीव को सर्वविरतिरूप छठे और सातवें गुणस्थान की प्राप्ति होती है। जीव को यदि आठवाँ गुणस्थान प्राप्त होता है तो वहाँ से दो श्रेणियाँ आरम्भ होती हैं और जीव उन में से किसी एक श्रेणी पर आरूढ होता है। दो श्रेणियाँ है-उपशमश्रेणी, और क्षपकश्रेणी। उपशमश्रेणीवाला जीव ग्यारहवें गुणस्थान तक चढ सकता है। क्षपकश्रेणीवाला जीव आठवें से दसवें गुणस्थान तक पहुँचकर ग्यारहवें को छोड कर सीधा बारहवें गुणस्थान पर आरूढ हो जाता है। जीव दसवें गुणस्थान के अन्त में रागद्वेषरूप मोहनीय कर्म का समूल नाश करके

કરે છે ત્યારે પ્રથમ ગુણસ્થાનમાં અનન્તાનુબંધી ચાર કષાયોનો ક્ષય કરીને ચતુર્થ (ચોથુ) ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે અને સમ્યકત્વ ગુણ પામી જાય છે. ચાર અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાયોનો ક્ષય કરીને દેશવિરતિરૂપ પાંચમુ ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે અને પ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાય-ચતુષ્ટયના ક્ષયથી જીવને સર્વવિરતિરૂપ છઠ્ઠ અને સાતમા ગુણસ્થાનની પ્રાપ્તિ થાય છે જીવને જો આઠમુ ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત થાય છે તો ત્યાંથી બે શ્રેણીઓનો આરંભ થાય છે અને જીવ એ બેમાથી કોઇ એક શ્રેણી પર આરૂઢ થાય છે બે શ્રેણી આ પ્રમાણે છે-(૧) ઉપશમશ્રેણી (૨) ક્ષપકશ્રેણી. ઉપશમશ્રેણી વાળા જીવ અગિયારમા ગુણસ્થાન સુધી ચઢી શકે છે ક્ષપકશ્રેણીવાળો જીવ આઠમાથી દસમા ગુણસ્થાન સુધી પહોંચીને અગિયારમા ગુણસ્થાનને છોડીને સીધો બારમા ગુણસ્થાન પર આરૂઢ થઈ જાય છે. જીવ દસમા ગુણસ્થાનના અંતમાં

कर्म समूलमुन्मूल्य घातिकर्माणि क्षपयित्वा त्रयोदशं गुणस्थानमारोहति। त्रयोदशे गुणस्थाने निर्मलकेवलज्ञानं प्राप्नोति। तदनन्तर पञ्चलघ्वक्षरोच्चारणकालस्थितिक चतुर्दशगुणस्थानं संप्राप्य निःशेषकर्मनिचयं क्षपयित्वाऽसौ शिवपदं संप्राप्नोति।

। इति जीवस्य शुद्धस्वरूपनिरूपकः शुद्धव्यवहारनयः।

(२) अशुद्धव्यवहारनयः—

अशुद्धव्यवहारनयेन रागद्वेषमिथ्यात्वादयोऽनादिकालतः शत्रुरूपेण जीवे संलग्नाः सन्ति, तस्माज्जीवस्याशुद्धत्वं ज्ञेयम्। अशुद्धत्वेन च प्रतिसमय-

---

और बारहवें गणस्थान में शेष तीन घाति कर्मों का क्षय करके तेरहवें गुणस्थान में पहुचता है। इस गुणस्थान में (बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में) जीव को निर्मल केवलज्ञान प्राप्त होता है। तेरहवे गुणस्थान के बाद पाच हूस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) उच्चारण करने मे जितना समय लगता है उतने समय तक चौदहवें गुणस्थान में ठहरकर समस्त कर्मों का क्षयकर के मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

जीवके शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने वाला यह शुद्ध व्यवहारनय है।

(२) अशुद्ध व्यवहारनय—

अशुद्ध व्यवहारनय से राग-द्वेष और मिथ्यात्व आदि अनादि काल से शत्रुकी तरह जीव के साथ लगे हुए है, इसी कारण जीव में अशुद्धता है। इस अशुद्धता के

રાગ-દ્વેષરૂપ મોહનીય કર્મનો સમૂળગો નાશ કરીને અને બારમા ગુણસ્થાનમા શેષ ત્રણ ઘાતીકર્મોનો ક્ષય કરીને તેરમા ગુણસ્થાનમા પહોચે છે એ ગુણસ્થાનમા (બારમા ગુણસ્થાનના અતિમ સમયમા) જીવને નિર્મલ કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે તેરમા ગુણસ્થાન પછી પાચ હસ્વ સ્વર-(અ-ઈ-ઉ-ઋ-લૃ) ઉચ્ચારણ કરતા જેટલો સમય લાગે છે, તેટલો સમય ચૌદમા ગુણસ્થાનમા થોભીને સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય કરીને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી લે છે

જીવના શુદ્ધ સ્વરૂપને ગ્રહણ કરવા વાળો આ શુદ્ધ વ્યવહાર નય છે

(૨) અશુધ્ધ વ્યવહારનય—

અશુદ્ધ વ્યવહારનયથી રાગ-દ્વેષ અને મિથ્યાત્વ આદિ અનાદિ-કાલથી શત્રુની માફક જીવની સાથે લાગ્યા છે, એ કારણથી જીવમા અશુદ્ધતા છે એ અશુદ્ધતાના

मनन्तानन्तकर्मवर्गणा सत्तारूपेणावतिष्ठिता भवन्ति। एवं चाशुद्धव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं सिध्यति।

(२) शुभव्यवहारनयः—

शुभव्यवहारनयनात्मा शुभपरिणामतो दानशीलतपोभावविनयभक्तिवैयावृत्यं, श्रमणनिर्ग्रन्थानां प्रासुकमेषणीयमशनपानखाद्यस्वाद्यवस्त्रकम्बलप्रतिग्रहपादप्रोञ्छन प्रातिहार्यपीठफलकशय्यासंस्तारकौषधभैषज्यप्रतिलाभरूपं सुपात्रदानं, म्रियमाण-जीवरक्षणरूपमभयदानं, हीनदीननिःसत्त्वजीवानां साहाय्यं, साधर्मिकवात्सल्यं, परहित चिन्तारूपां मैत्रीं, परदुःखनिवारणेच्छारूपां करुणां, निःस्वार्थपरोपकारादिकं च

कारण प्रतिसमय अनन्तानन्त कर्मवर्गणाएँ सत्तारूप से बद्ध होती रहती है। इस प्रकार अशुद्ध व्यवहारनय से जीव को कर्ता समझना चाहिए।

(२) शुभ व्यवहारनय—

शुभ व्यवहारनय से आत्मा शुभपरिणामद्वारा दान शील, तप भाव विनय, भक्ति, वैयावृत्य रूप शुभक्रिया करता है श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय-अशन पान खाद्य स्वाद्य वस्त्र, कम्बल, पात्र, पादप्रोञ्छन पडिहारी पीठ, फलक, शय्या संस्तारक, औषध भेषज का सुपात्रदान देता है। मरते हुए जीव की रक्षारूप अभयदान देता है, हीन दीन और निर्बल जीवों की सहायता करता है। साधर्मी के प्रति वात्सल्य प्रकट करता है, परहितचिन्तनरूप मैत्री भावना दूसरों का दुःखनिवारणरूप करुणा

કારણે પ્રતિસમય અનન્તાનન્ત કર્મ વર્ગણાઓ સત્તારૂપથી બદ્ધ થતી રહી છે આ પ્રમાણે અશુદ્ધ વ્યવહારનયથી જીવને કર્તા સમજવો જોઈએ.

(૨) શુભ વ્યવહારનય—

શુભ વ્યવહારનયથી આત્મા દાન શીલ, તપ, ભાવ વિનય, ભક્તિ વૈયાવૃત્ય રૂપ શુભ ક્રિયા કરે છે શ્રમણનિર્ગ્રન્થોને પ્રાસુક એષણીય-અશન, પાન, ખાદ્ય, સ્વાદ્ય વસ્ત્ર, કમ્બલ પાત્ર પાદપ્રોંછન, પડિહારી-પીઠ ફલક શય્યા, સંસ્તારક, ઔષધ, ભેષજનું સુપાત્ર દાન આપે છે મરતા જીવની રક્ષારૂપ અભયદાન આપે છે હીન દીન અને નિર્બલ જીવોની સહાયતા કરે છે સાધર્મીના ઉપર વાત્સલ્ય પ્રકટ કરે છે પરહિતચિન્તનરૂપ મૈત્રીભાવના, બીજાના દુઃખનિવારણરૂપ કરૂણા તથા નિઃસ્વાર્થ

शुभक्रियां करोति, तेन शुभव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं जायते ।

(४) अशुभव्यवहारनयः—

अशुभव्यवहारनयेन जीवो हास्य–भय–शोक–रत्य–रति–निद्रा–प्राणातिपात-मृषावादा–ऽदत्तादान–मैथुन–परिग्रह–क्रोध–मान–माया–लोभ–राग–द्वेषादिषु प्रवर्तते । विषयसुखारम्भादिरूपामशुभक्रियां च करोति तेनाऽशुभव्यवहारनयतो जीवस्य कर्तृत्वं सिध्यति ।

(५) उपचरितव्यवहारनयः—

उपचरितव्यवहारनयेन जीवो निजमजरामरत्वमनन्तज्ञानदर्शनमव्यावाध-

तथा नि स्वार्थ परोपकार आदिरूप शुभक्रिया करता है, अत शुभ व्यवहारनय से जीव का कर्तापन सिद्ध होता है ।

(४) अशुभ व्यवहारनय—

अशुभ व्यवहारनय से जीव हास्य, भय, शोक, रति, अरति, निद्रा, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, आदि अशुभ कार्यों एव भावों में प्रवृत्त होता है, तथा विषयसुख एव आरम्भ आदि रूप अशुभ क्रिया करता है, अत अशुभव्यवहारनय से जीव कर्ता सिद्ध होता है ।

(५) उपचरित व्यवहारनय—

उपचरित व्यवहार नय से जीव अपने अजरता अमरता तथा अनन्त ज्ञान

પરોપકાર આદિરૂપ શુભ ક્રિયા કરે છે, તે કારણથી શુભ વ્યવહારનયથી જીવનુ કર્તાપણુ સિદ્ધ થાય છે

(૪) અશુભ વ્યવહારનય—

અશુભ વ્યવહારનયથી જીવ હાસ્ય, ભય, શોક, રતિ, અરતિ, નિદ્રા, પ્રાણાતિપાત, મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, મૈથુન, પરિગ્રહ, ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, રાગ દ્વેષ આદિ અશુભ કાર્યો એવ ભાવોમા પ્રવૃત્ત થાય છે, વિષયસુખ એવ આરભ આદિરૂપ અશુભ ક્રિયા કરે છે, તેથી અશુભ વ્યવહારનયથી જીવ કર્તા સિદ્ધ થાય છે

(૫) ઉપચરિત વ્યવહારનય—

ઉપચરિત વ્યવહાગ્નયથી જીવ પોતાના અજર અમર તથા અનતજ્ઞાન, દર્શન

सुखादिरूपं शुद्धस्वरूपं विस्मृत्य पौद्गलिकविभावपरिणामेऽनन्तदुःखजनकेऽनन्तानन्दमनुभवति, मोहवशेन बाह्यवस्तुषु ममत्वभावं कुरुते। यथा—"इदं मम गृहम्, इमे मम पुत्राः, इमा मम दाराः, इमे मम परिवाराः, इदं मम सर्वं धनधान्यादिकम्"। इत्थं विषरूपं विषयं पीयूषं मन्यमानो विषयरूपानो क्षणमात्रसुखजनकान् बहुकालदुःखप्रदान् कामभोगान् भुञ्जानो विषयमृगतृष्णां पुनः पुनर्धावमानो दीर्घाध्वसंसारे क्षणमपि विश्रान्तिं न लभते। ममेति कुर्वाणः जीवः पुत्रदारादीनां सुखेन सुखं, दुःखेन दुःखं मन्यमानस्तदर्थं व्यर्थमेव शोकमनुभवति, तदर्थं प्राणनाशमपि कर्तुं समुद्यतो भवति। अनात्मीयमपि स्वीयं मन्यमानो नानाविधपापकार्यकरणेन

दर्शन तथा अव्याबाधसुखरूप शुद्ध स्वरूप को भूल कर पौद्गलिक विभाव परिणाम में जो अनन्त दुःखों का जनक है अनन्त आनन्द मानता है। मोह के वशीभूत हो कर बाह्य वस्तुओं में ममत्व धारण करता है जैसे— "यह मेरा घर है, ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरी पत्नी है, ये मेरे कुटुम्बी हैं ये सब धन-धान्य आदि मेरे हैं"। इस प्रकार के विषरूप विषयों को अमृत मानता हुआ विषयों में तन्मय हो कर, क्षण भर सुख देने वाले और दीर्घकाल तक दुःख देने वाले काम-भोगों को भोगता हुआ विषयों की मृगतृष्णा की तरफ बारंबार दौड़ता हुआ इस दीर्घमार्गवाले संसार में क्षण भर भी विश्राम नहीं पाता है। मेरे मेरे करता हुआ यह जीव पुत्र और पत्नी वगैरह के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानता हुआ व्यर्थ ही उन के लिए शोक करता है, यहाँ तक की उन के लिए प्राणों का नाश तक करने को उद्यत हो जाता है। यह

તથા અવ્યાબાધ સુખરૂપ શુદ્ધ સ્વરૂપને ભૂલી જઈને પૌદ્ગલિક વિભાવ પરિણામમાં કે જે અનન્ત દુઃખોનો જનક (ઉત્પન્ન કરનાર) છે તેમાં અનન્ત આનંદ માને છે, મોહને વશ થઈને બહારની વસ્તુઓમાં મમત્વ ધારણ કરે છે જેમકે—"આ ઘર મારૂં છે, આ મારા પુત્ર છે આ મારી સ્ત્રી છે આ મારૂં કુટુંબ છે આ સર્વ ધન-ધાન્ય વગેરે મારૂં છે" એ પ્રમાણે વિષરૂપ-વિષયોને અમૃતરૂપ માનીને વિષયોમાં તન્મય થઈને ક્ષણમાત્ર સુખ આપવાવાળા અને લાંબા કાલ સુધી દુઃખ આપવાવાળા ભોગોને ભોગવતો થકો, વિષયોની મૃગતૃષ્ણા તરફ વારંવાર દોડતો થકો આ લાંબા માર્ગવાળા સંસારમાં ક્ષણ માત્ર પણ વિશ્રામ પામતો નથી. મારા-મારા કરતો આ જીવ પુત્ર અને પત્ની વગેરેના સુખમાં સુખ અને દુઃખમાં દુઃખ માનતો થકો તેના માટે નકામો શોક કરે છે—ત્યાં સુધી કે તેના માટે પ્રાણોનો નાશ કરવા તૈયાર થઈ જાય છે આ જીવ પરને પોતાનું સમજીને નાના પ્રકારના

स्वात्मानं मलिनीकरोति। एवमुक्तरीत्या कर्मवशेन ममत्वपाशबद्धस्य जीवस्योपचरितव्यवहारनयेन कर्तृत्वमिति।

(६) अनुपचरितव्यवहारनयः-

अनुपचरितव्यवहारनयेन स्वात्मनः प्रत्यक्षरूपेणाऽत्यन्तभिन्नं शरीरमज्ञानवशात् पारिणामिकभावेनात्मप्रदेशैरैक्यभावमापद्यमानमिव स्वात्मनः स्वरूपं मन्यमानस्तत्पुष्टिरक्षणादिहेतोरेकेन्द्रियादिसकलप्राण्युपमर्दनजनकमहारम्भमृषावादादत्तादान-मैथुन-परिग्रहादिकानि नानाविधपापकर्माणि जीवः समाचरति। आत्मन स्वरूपे शरीरे च नितान्त भिन्नता वर्तते। तथाहि-आत्मा

जीव पर को स्वकीय समझ कर नाना प्रकार के पाप कार्य कर के अपने को मलीन बनाता है। इस प्रकार कर्मवश हो कर ममता के पाशमें जकडा हुआ यह जीव उपचरित व्यवहारनय से कर्ता सिद्ध होता है।

(६) अनुपचरित व्यवहारनय—

अनुपचरित व्यवहारनय से जीव अपनी आत्मा से प्रत्यक्षत भिन्न शरीर को अज्ञान के वश हो कर पारिणामिक भाव से आत्मप्रदेशोंकी एकता समझ कर, और आत्मा का ऐसा ही स्वरूप मान कर शरीर की पुष्टता और रक्षा आदि के लिए एकेन्द्रिय आदि समस्त प्राणियों की हिंसा करने वाले महारम्भ, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह आदि नाना प्रकार के पाप कर्मों का आचरण करता है। वस्तुत आत्मा के स्वरूप में और शरीर में अत्यन्त भिन्नता है, वह इस प्रकार-आत्मा चैतन्य

પાપકાર્ય કરીને પોતાને મલીન બનાવે છે આ પ્રમાણે કર્મને વશ થઈ મમતાના પાશમા જકડાએલો આ જીવ ઉપચરિત વ્યવહારનયથી કર્તા સિદ્ધ થાય છે।

(૬) અનુપચરિત વ્યવહારનય—

અનુપચરિત વ્યવહારનયથી જીવ પોતાના આત્માથી પ્રત્યક્ષ ભિન્ન શરીરને અજ્ઞાનવશ થઈ પારિણામિક ભાવથી આત્મપ્રદેશોની એકતા સમજીને, અને આત્માનુ એવુ જ સ્વરૂપ માનીને શરીરની પુષ્ટતા અને રક્ષા આદિ માટે એકેન્દ્રિય આદિ તમામ પ્રાણીઓની હિંસા થવાવાળા, મહારભ, મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, મૈથુન, અને પરિગ્રહ આદિ નાના-અનેક પ્રકારના પાપ કર્મોનુ આચરણ કરે છે વસ્તુત આત્માના સ્વરૂપમા અને શરીરમા અત્યન્ત ભિન્નતા છે, તે આ પ્રમાણે કે—આત્મા ચૈતન્ય

चैतन्यरूपः, शरीरमिदं जडरूपम्। आत्मा-अरूपी, शरीरमिदं रूपि। आत्मा ज्ञान-दर्शनसुखवीर्यादिरूपः, शरीरं तु निःसत्त्वं विविधव्याधियुक्तम्। आत्मा-नित्यः शाश्वतो ध्रुवरूपश्च, शरीरमिदमनित्यमशाश्वतमध्रुवम्। आत्मा-नितान्तनिर्मलः, शरीरं तु गर्भाशयस्थानतः शुक्रशोणितास्यकारणतः, नवद्वारतो मलनिःसरणेन च नितान्ताशुचि, मलभाण्डं च।

यदर्थमेवादृशानि कर्माणि कुर्वन्ति, त्वनन्तवारं लब्धं त्यक्तं च वपुः। ईदृशे नश्वरे शरीरेऽनुरज्य पुनः पुनस्तान्येव पापकर्माणि समाचरन् स्वीयमात्मानं कर्मभाराक्रान्तं करोति। तेन पुनः पुनरनादिदुरन्तससारमहागर्ते पतितः स्वा

स्वरूप है, शरीर जड है। आत्मा अरूपी है, शरीर रूपी है। आत्मा ज्ञान दर्शन सुख और वीर्यादिरूप है, शरीर नि सत्त्व और विविध व्याधियों से युक्त है। आत्मा नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है, शरीर अनित्य अशाश्वत और अध्रुव है। आत्मा नितान्त निर्मल है, शरीर गर्भाशय में स्थित होने से शुक्र और शोणित से बना हुआ होने के कारण, तथा नौ द्वारों से मल निकलने के कारण अत्यन्त अशुचि है, और मल का पात्र है। जिस शरीर के लिए ऐसे २ उपर्युक्त कर्म किये जाते हैं वह शरीर अनन्त बार पाया है और अनन्त बार छोडा है, लेकिन ससारी जीव इस नश्वर शरीर में अनुराग करके पुन पुन वही पापकर्म करता हुआ अपने को कर्म के भार से भारी बनाता है। इस कारण अनादि और दुरन्त ससाररूपी महागर्त में पुन पुन पडकर अपना उद्धार करने

સ્વરૂપ છે શરીર જડ છે. આત્મા અરૂપી છે શરીર રૂપી છે આત્મા જ્ઞાન, દર્શન, સુખ અને વીર્યરૂપ છે શરીર નિ.સત્વ અને વિવિધ વ્યાધિઓથી યુક્ત છે આત્મા નિત્ય છે શાશ્વત છે, ધ્રુવ છે શરીર અનિત્ય અશાશ્વત અને અધ્રુવ છે આત્મા અત્યન્ત નિર્મલ છે શરીર ગર્ભાશયમાં સ્થિત હોવાથી શુક્ર અને શોણિતથી (વીર્ય અને લોહીથી) બનેલુ હોવાના કારણે, તથા નવ દ્વારોથી મલ નીકળવાના કારણે અત્યંત અશુચિ-અપવિત્ર છે અને મલનુ પાત્ર છે જે શરીરના માટે એવાં એવા ઉપર કહેલા તેવાં કર્મ કરવામા આવે છે તે શરીર અનન્તવાર પ્રાપ્ત થયુ છે અને અનન્તવાર છોડી દીધુ છે પરંતુ સંસારી જીવ આ નાશવત શરીરમાં અનુરાગ-પ્રીતિ કરીને ફરી-ફરીને તે પાપકર્મ કરીને પોતાને કર્મના ભારથી ભારે બનાવે છે. એ કારણથી અનાદિ અને દુરંત-મુશ્કેલીથી પાર પડે તેવો-સંસારરૂપી મહાગર્ત-મોટો ખાડો તેમા વારવાર પડીને પોતાનો ઉદ્ધાર કરવામાં અસમર્થ બની જાય છે, પરંતુ

त्मानमुद्धर्तुं न शक्नोति। अविज्ञाय च स्वकृतकर्मभारं दुरन्तसंसारमहागर्तपतनं च मुहुर्मुहुस्तादृशान्येव कर्माणि कुर्वन्ति ससारिणः। एवमात्मनोऽत्यन्तभिन्नं शरीरमेव स्वस्वरूपं मत्वा तत्पुष्टिरक्षणाद्यर्थं क्रियमाणया क्रियया जीवस्यानुपचरितव्यवहारनयेन कर्तृत्वं सिध्यति। उक्तरीत्या षडविधव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं विज्ञेयम्।

जीवस्वरूपे सदृशाऽसदृशविचारः—

ननु–सर्वेषा जीवाना स्वरूप लक्षण च सदृशमेव, तर्हि ससारिणो दुःखिनः, सिद्धास्तु सुखिन इति कथम्? उच्यते—निश्चयनयेन तु सर्वे जीवाः

में असमर्थ बन जाता है, मगर संसारी जीव अपने किये कर्मों के भार को न समझ कर, तथा ससाररूपी महागर्त के पतन को न जानकर फिर–फिर वैसे ही कर्म करने लगते है। इस प्रकार आत्मा से भिन्न शरीर को ही अपना स्वरूप समझ कर उसके पोषण और रक्षणके लिए की जानेवाली क्रियासे जीव अनुपचरित व्यवहारनयकी अपेक्षा कर्ता सिद्ध होता है। इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से छह तरह के व्यहारनय से जीवको कर्ता समझना चाहिए।

जीवके स्वरूप में सदृश–विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सब जीवोंका स्वरूप और लक्षण समान ही है तो ससारी जीव दुःखी और सिद्ध सुखी क्यों हैं।

उत्तर—निश्चय नयसे सभी जीव सिद्धोंके समान ही हैं। उन मे से जो जीव

સસારી જીવ પોતાના કરેલા કર્મોના ભારને સમજતો નથી, તથા સસારરૂપી મહાગર્તમા પડ્યો છે તે તેને જાણતો નથી તેથી ફરી–ફરી તેવા કર્મો કરવા લાગે છે એ પ્રમાણે આત્માથી ભિન્ન શરીરને જ પોતાનુ સ્વરૂપ સમજીને તેના પોષણ તથા રક્ષણ માટે કરવામા આવતી ક્રિયાથી જીવ અનુપચરિત વ્યવહાર નયની અપેક્ષાએ કર્તા સિદ્ધ થાય છે એ પ્રમાણે પૂર્વે કહેલા પ્રકારથી છ પ્રકારના વ્યવહારનયથી જીવને કર્તા સમજવો જોઈએ

જીવના સ્વરૂપમા સદૃશ–વિસદૃશ વિચાર—

પ્રશ્ન—અગર સર્વ જીવોનુ સ્વરૂપ અને લક્ષણ સમાનજ છે તો પછી સંસારી જીવ દુ ખી અને સિદ્ધ જીવ સુખી કેમ છે?

ઉત્તર—નિશ્ચયનયથી સર્વ જીવો સિદ્ધોની સમાન છે તેમાંથી જે જીવ તમામ

सिद्धसदृशा एव, तत्र य सकलं कर्म क्षपयन्ति ते सर्वे जीवा सिद्धा भवति, तस्मात् सर्वेषामेकैव सत्ता विद्यते। यदि सर्वे सिद्धसदृशास्तर्हि कथमभव्यजीवैः सिद्धगतिमार्गिर्न भूयत ? इति श्रूयताम्—

अभव्यजीवानामनाद्यनन्तचिक्कणकर्मसंबन्धात्, परावर्तस्वभावाभावाच्च कर्मक्षपणशक्तिर्नास्ति, भव्यानां तु तादृशचिक्कणकर्माभावात्, परावर्तस्वभावसद्भावाच्च देवगुरुधर्मसामग्रीसत्त्वे ज्ञानादिरत्नत्रयसमाराधनेन, गुणश्रेणिसमारोहणेन च सिद्धपदं लब्धुं शक्यम्।

समस्त कर्मोका क्षय कर डालते हैं वे सब सिद्ध कहलाते हैं। उनका असली स्वरूप प्रकट हो जाता है। संसारी जीव कर्म के अधीन होने के कारण दुःखी होते हैं। इस प्रकार यद्यपि प्रत्येक जीव की सत्ता पृथक्-पृथक् है, तथापि उन में स्वरूप की समानता है।

प्रश्न—यदि समस्त जीव सिद्धों के समान है तो अभव्य जीव सिद्धिगति क्यों प्राप्त नहीं करते ?

उत्तर—सुनिये अभव्य जीवों में अनादि अनन्त चिकने कर्मों के सम्बन्ध से और अपरिवर्तनशील स्वभाव के कारण कर्मों का क्षय करने की शक्ति नहीं है। भव्य जीवों के वैसे चिकने कर्मों के न होने से और परावर्त स्वभाव से देव गुरु और धर्मरूप सामग्रीके मिलने पर ज्ञानादिरत्नत्रय की आराधना करने से, तथा गुणश्रेणी पर आरोहण करने से उनको सिद्धपद प्राप्त करना शक्य है।

કર્મોનો ક્ષય કરી નાંખે છે તે સર્વે સિદ્ધ કહેવાય છે. તેનું અસલી સ્વરૂપ પ્રગટ થઈ જાય છે સંસારી જીવ કર્મને આધીન હોવાના કારણે દુઃખી હોય છે એ પ્રમાણે જો કે પ્રત્યેક જીવની સત્તા પૃથક્-પૃથક્-જુદી જુદી છે તો પણ તેનામાં સ્વરૂપની સમાનતા છે

પ્રશ્ન—જો સર્વે જીવ સિદ્ધોની સમાન છે તો અભવ્ય જીવ સિદ્ધગતિને કેમ પ્રાપ્ત કરી શકતા નથી ?

ઉત્તર—સાંભળો અભવ્ય જીવોમાં અનાદિ-અનંત ચિકણાં કર્મોનો સંબંધ હોવાથી અને અપરિવર્તનશીલ સ્વભાવના કારણે કર્મોનો ક્ષય કરવાની શક્તિ નથી; ભવ્ય જીવોને તેવાં ચીકણાં કર્મ ન હોવાથી અને પરાવર્ત-સ્વભાવથી દેવ, ગુરુ અને ધર્મરૂપ સામગ્રીના મળવા પર, જ્ઞાનાદિ રત્નત્રયની આરાધના કરવાથી તથા ગુણશ્રેણી પર આરોહણ કરવાથી તેઓને સિદ્ધપદ પ્રાપ્ત કરવું શક્ય છે

मनुष्यभव प्राप्य कर्माणि क्षपयित्वा जीवा मोक्षं यान्ति, तदानीमेवाऽव्यवहारराशिसूक्ष्मनिगोदादकामनिर्जरया निःसृत्याऽन्ये जीवाः विकाशदशां प्राप्नुवन्ति। यदि दश जीवा मुक्तिं गच्छन्ति तदा दश सूक्ष्मनिगोदान्निष्क्रान्ता भवन्ति। कदाचित्ततोऽप्यल्पसख्यकाः सूक्ष्मनिगोदा बहिरायान्ति तदा तैः सार्धमेको द्वावभव्यजीवौ निःसरतः, किन्तु व्यवहाराशौ जीवाना ह्रासवृद्धी न भवतः। ईदृशा निगोदगोलका असख्याता लोके सन्ति, इति ग्रन्थान्तरे।

। इत्यवतरणा संपूर्णा।

इत्थ भगवत्प्ररूपितमनुयोगचतुष्टयं प्रदर्शितम्। तत्र चरणकरणानुयोगस्य प्राधान्यात्प्राथम्यमिति च निगदितम्।

मनुष्य भव पाकर कर्मों का क्षय करके जीव मोक्ष जाते हैं, उसी समय अव्यवहारराशि सूक्ष्म निगोद से अकामनिर्जराद्वारा दूसरे जीव निकलकर विकासदशा को प्राप्त करते है। अगर दश जीव मोक्ष मे जाते हैं तो दश जीव सूक्ष्मनिगोद से बाहर निकल आते है। कदाचित् अल्पसख्यक सूक्ष्म निगोद जीव बाहर निकलते हैं तो उनके साथ एक-दो अभव्य जीव बाहर आ जाते हैं मगर व्यवहार राशि में जीवों की घटती बढती नहीं होती। ऐसे निगोदगोलक लोकमे असख्यात होते है, ऐसा ग्रन्थान्तर मे कहा है।

इति अवतरणा संपूर्ण—

इस प्रकार भगवान् के द्वारा प्ररूपित चार अनुयोगों का स्वरूप बतलाया गया है। यह कहा जा चुका है कि—चरणकरणानुयोग प्रधान होने के कारण उसका ग्रहण सर्वप्रथम किया गया है।

મનુષ્ય ભવ પામીને, કર્મોનો ક્ષય કરીને જીવ મોક્ષે જાય છે, તે સમયે અવ્યવહાર રાશિ સૂક્ષ્મ નિગોદથી, અકામ નિર્જરાદ્વારા બીજા જીવો નીકળીને વિકાસદશાને પ્રાપ્ત કરે છે અગર દસ જીવ મોક્ષમા જાય છે તો દસ જીવ સૂક્ષ્મ નિગોદથી બહાર નીકળી આવે છે કદાચિત્ અલ્પસખ્યક સૂક્ષ્મ નિગોદ-જીવ બહાર નીકળે છે તો, તેની સાથે એક-બે અભવ્ય જીવ બહાર આવી જાય છે પણ વ્યવહાર રાશિમા જીવોનુ ઘટવુ-વધવુ થતુ નથી એ પ્રમાણે નિગોદગોલક લોકમા અસખ્યાત હોય છે આ પ્રમાણે ગ્રંથાન્તરમા કહ્યુ છે

ઇતિ અવતરણા સપૂર્ણ—

આ પ્રમાણે ભગવાન દ્વારા પ્રરૂપિત ચાર અનુયોગોનું સ્વરૂપ બતાવવામાં આવ્યુ છે. એ કહી આવ્યુ છે કે ચરણ-કરણાનુયોગ પ્રધાન હોવાના કારણે તેનું ગ્રહણ સૌથી પ્રથમ કરવામા આવ્યું છે

तथाचाराङ्गस्य द्वादशाङ्गेषु प्राथम्यम् , चरणकरणयोर्मोक्षोपायतयाऽस्याङ्गस्य मोक्षकारणमवोमबङ्गयेऽप्तदोषितार्थानुष्ठायिनस्यैतराङ्गाध्ययनयोग्यतालाभाच्च प्राधान्यात् ।

किञ्च-एतत्स्याध्ययनेन क्षान्त्यादिचरणकरणरूपो वा श्रमणानां धर्मः सुविदितो भवति, आचार्यादिपदप्राप्तिकारणभूतानां स्वसमयादिपरिज्ञानादीनां सर्वेषां धर्माणा माचारधारित्वमेव प्रधानमस्ति, तेन तत्प्रतिपादकस्यास्यागमस्य प्रथमाङ्गत्वं सिद्धम् ।

आचारशब्देन चात्र पञ्चविधो ज्ञानाचारादिर्गृह्यते । तत्प्रतिपादकमङ्ग- माचाराङ्गम् , अस्येदमादिसूत्रम्-

'सुयं मे' इत्यादि ।

बारह अंगों में आचाराङ्ग पहला अंग है, क्यों कि चरण और करण मोक्ष के उपाय हैं, अतः यह अङ्ग भी मोक्ष का कारण है, आचाराङ्ग सूत्र में निरूपित अर्थका अनुष्ठान करने वाला दूसरे अङ्गोंके अध्ययन की योग्यता प्राप्त करता है । इस कारण यह अङ्ग प्रधान है ।

दूसरी बात यह है कि-इस अङ्गके अध्ययन से क्षमा आदि, अथवा चरण-करणरूप श्रमणधर्मका सम्यक् प्रकार से ज्ञान होता है । आचार्य आदि पदों की प्राप्ति के कारणभूत स्वसमय का परिज्ञान आदि समस्त धर्मो में आचारधारित्व (संयम पालन) ही प्रधान है, अत एव आचार का प्रतिपादक आगम ही पहला अङ्ग होना चाहिए, यह सिद्ध है ।

यहाँ 'आचार' शब्द से ज्ञानचार आदि पाँच प्रकार का आचार समझना चाहिए । उसका प्रतिपादन करने वाला अङ्ग 'आचाराङ्ग' कहलाता है । इस आचाराङ्ग सूत्र का पहला सूत्र यह है-

'सुयं मे' इत्यादि ।

બાર અંગોમાં આચારાંગ પહેલું અંગ છે કેમકે ચરણ અને કરણ મોક્ષનો ઉપાય છે તેથી આ અંગ પણ મોક્ષનું કારણ છે.

આચારાંગ સૂત્રમાં નિરૂપિત અર્થનું અનુષ્ઠાન કરનારા બીજા અંગોનાં અધ્યયનની યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરે છે તે કારણથી આ અંગ પ્રધાન છે.

બીજી વાત એ છે કેઃ-આ અંગના અધ્યયનથી ક્ષમા આદિ અથવા ચરણ-કરણરૂપ શ્રમણ-ધર્મનું સમ્યક્ પ્રકારે જ્ઞાન થાય છે. આચાર્ય આદિ પદોની પ્રાપ્તિના કારણભૂત સ્વસમયનું પરિજ્ઞાન આદિ સમસ્ત ધર્મોમાં આચારધારિત્વ (સંયમપાલન)જ પ્રધાન છે એ માટે આચારનું પ્રતિપાદન કરનાર આગમજ પહેલું અંગ હોવું જોઈએ, એ સિદ્ધ છે.

અહિં 'આચાર' શબ્દથી જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારનો આચાર સમજવો જોઈએ. તેનું પ્રતિપાદન કરવાવાળું અંગ 'આચારાંગ' કહેવાય છે. આ આચારાંગ સૂત્રનું પહેલું સૂત્ર આ છે—

'સુયં મે' ઇત્યાદિ.

मनुष्यभवं प्राप्य कर्माणि क्षपयित्वा जीवा मोक्षं यान्ति, तदानीमेवाऽव्यवहारराशिसूक्ष्मनिगोदादकामनिर्जरया निःसृत्याऽन्ये जीवाः विकाशदशां प्राप्नुवन्ति। यदि दश जीवा मुक्तिं गच्छन्ति तदा दश सूक्ष्मनिगोदान्निष्क्रान्ता भवन्ति। कदाचित्ततोऽप्यल्पसंख्यकाः सूक्ष्मनिगोदा बहिरायान्ति तदा तैः सार्धमेको द्वावभव्यजीवौ निःसरतः, किन्तु व्यवहाराशौ जीवाना ह्रासवृद्धी न भवतः। ईदृशा निगोदगोलका असख्याता लोके सन्ति, इति ग्रन्थान्तरे।

। इत्यवतरणा संपूर्णा।

इत्थं भगवत्प्ररूपितमनुयोगचतुष्टयं प्रदर्शितम्। तत्र चरणकरणानुयोगस्य प्राधान्यात्प्राथम्यमिति च निगदितम्।

मनुष्य भव पाकर कर्मो का क्षय करके जीव मोक्ष जाते हैं, उसी समय अव्यवहारराशि सूक्ष्म निगोद से अकामनिर्जराद्वारा दूसरे जीव निकलकर विकासदशा को प्राप्त करते हैं। अगर दश जीव मोक्ष में जाते हैं तो दश जीव सूक्ष्मनिगोद से बाहर निकल आते हैं। कदाचित् अल्पसख्यक सूक्ष्म निगोद जीव बाहर निकलते हैं तो उनके साथ एक–दो अभव्य जीव बाहर आ जाते हैं मगर व्यवहार राशि में जीवों की घटती बढती नहीं होती। ऐसे निगोदगोलक लोकमे असख्यात होते हैं, ऐसा ग्रन्थान्तर में कहा है।

इति अवतरणा संपूर्ण—

इस प्रकार भगवान् के द्वारा प्ररूपित चार अनुयोगों का स्वरूप बतलाया गया है। यह कहा जा चुका है कि–चरणकरणानुयोग प्रधान होने के कारण उसका ग्रहण सर्वप्रथम किया गया है।

મનુષ્ય ભવ પામીને, કર્મોનો ક્ષય કરીને જીવ મોક્ષે જાય છે, તે સમયે અવ્યવહાર રાશિ સૂક્ષ્મ નિગોદથી, અકામ નિર્જરાદ્વારા બીજા જીવો નીકળીને વિકાસદશાને પ્રાપ્ત કરે છે અગર દસ જીવ મોક્ષમા જાય છે તો દસ જીવ સૂક્ષ્મ નિગોદથી બહાર નીકળી આવે છે કદાચિત્ અલ્પસખ્યક સૂક્ષ્મ નિગોદ–જીવ બહાર નીકળે છે તો, તેની સાથે એક–બે અભવ્ય જીવ બહાર આવી જાય છે પણ વ્યવહાર રાશિમા જીવોનુ ઘટવુ–વધવુ થતુ નથી એ પ્રમાણે નિગોદગોલક લોકમા અસખ્યાત હોય છે આ પ્રમાણે ગ્રથાન્તરમા કહ્યુ છે

ઇતિ અવતરણા સ પૂર્ણ—

આ પ્રમાણે ભગવાન દ્વારા પ્રરૂપિત ચાર અનુયોગોનું સ્વરૂપ બતાવવામાં આવ્યુ છે એ કહી આવ્યુ છે કે ચરણ–કરણાનુયોગ પ્રધાન હોવાના કારણે તેનુ ગ્રહણ સૌથી પ્રથમ કરવામા આવ્યું છે

तथाचाराङ्गस्य द्वादशाङ्गेषु प्राथम्यम्, चरणकरणयोर्मोक्षोपायतयाऽस्याङ्गस्य मोक्षकारणावबोधकत्वेनैतत्प्रोक्ताचारावस्थितस्यैवेतराङ्गाध्ययनयोग्यतासामर्थ्यसामान्यात्।

किञ्च-एतदङ्गाध्ययनेन क्षान्त्यादिश्चरणकरणरूपो वा श्रमणानां धर्मः सुविदितो भवति, आचार्यादिपदप्राप्तिकारणभूतानां स्वसमयादिपरिज्ञानादीनां सर्वेषां धर्माणा माचारधारित्वमेव प्रधानमस्ति, तेन तत्प्रतिपादकस्यास्यागमस्य प्रथमाङ्गत्वं सिद्धम्।

आचारशब्देन चात्र पञ्चविधो ज्ञानाचारादिर्गृह्यते। तत्प्रतिपादकमङ्ग माचाराङ्गम्, अस्येदमादिसूत्रम्-

'सुयं मे' इत्यादि।

बारह अंगों में आचाराङ्ग पहला अंग है, क्यों कि चरण और करण मोक्ष के उपाय हैं, अत यह अङ्ग भी मोक्ष का कारण है, आचाराङ्ग सूत्र में निरूपित अर्थका अनुष्ठान करने वाला दूसरे अङ्गोंके अध्ययन की योग्यता प्राप्त करता है। इस कारण यह अङ्ग प्रधान है।

दूसरी बात यह है कि-इस अङ्गके अध्ययन से क्षमा आदि, अथवा चरण-करणरूप श्रमणधर्मका सम्यक् प्रकार से ज्ञान होता है। आचार्य आदि पदों की प्राप्ति के कारणभूत स्वसमय का परिज्ञान आदि समस्त धर्मों में आचारधारित्व (संयम पालन) ही प्रधान है, अत एव आचार का प्रतिपादक आगम ही पहला अङ्ग होना चाहिए, यह सिद्ध है।

यहाँ 'आचार' शब्द से ज्ञानचार आदि पाँच प्रकार का आचार समझना चाहिए। उसका प्रतिपादन करने वाला अङ्ग 'आचाराङ्ग' कहलाता है। इस आचाराङ्ग सूत्र का पहला सूत्र यह है-

'सुयं मे' इत्यादि।

બાર અંગોમાં આચારાંગ પહેલું અંગ છે કેમકે ચરણ અને કરણ મોક્ષનો ઉપાય છે તેથી આ અંગ પણ મોક્ષનું કારણ છે

આચારાંગ સૂત્રમાં નિરૂપિત અર્થનું અનુષ્ઠાન કરનાર બીજા અંગોનાં અધ્યયનની યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરે છે તે કારણથી આ અંગ પ્રધાન છે

બીજી વાત એ છે કે-આ અંગના અધ્યયનથી ક્ષમા આદિ અથવા ચરણ-કરણરૂપ શ્રમણ-ધર્મનું સમ્યક્ પ્રકારે જ્ઞાન થાય છે આચાર્ય આદિ પદોની પ્રાપ્તિના કારણભૂત સ્વસમયનું પરિજ્ઞાન આદિ સમસ્ત ધર્મોમાં આચારધારિત્વ (સંયમપાલન)જ પ્રધાન છે એ માટે આચારનું પ્રતિપાદન કરનાર આગમજ પહેલું અંગ હોવું જોઇએ એ સિદ્ધ છે

અહિં 'આચાર' શબ્દથી જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારનો આચાર સમજવો જોઈએ. તેનું પ્રતિપાદન કરવાવાળું અંગ 'આચારાङ्ग' કહેવાય છે આ આચારાङ्ग' સૂત્રનું પહેલું સૂત્ર આ છે—

સુયં મે ઇત્યાદિ

मनुष्यभवं प्राप्य कर्माणि क्षपयित्वा जीवा मोक्षं यान्ति, तदानीमेवाऽव्यवहारराशिसूक्ष्मनिगोदादकामनिर्जरया निःसृत्याऽन्ये जीवाः विकाशदशां प्राप्नुवन्ति। यदि दश जीवा मुक्तिं गच्छन्ति तदा दश सूक्ष्मनिगोदान्निष्क्रान्ता भवन्ति। कदाचित्ततोऽप्यल्पसंख्यकाः सूक्ष्मनिगोदा बहिरायान्ति तदा तैः सार्धमेको द्वावभव्यजीवौ निःसरतः, किन्तु व्यवहाराशौ जीवानां ह्रासवृद्धी न भवतः। ईदृशा निगोदगोलका असंख्याता लोके सन्ति, इति ग्रन्थान्तरे।

। इत्यवतरणा सपूर्णा।

इत्थं भगवत्प्ररूपितमनुयोगचतुष्टयं प्रदर्शितम्। तत्र चरणकरणानुयोगस्य प्राधान्यात्प्राथम्यमिति च निगदितम्।

मनुष्य भव पाकर कर्मों का क्षय करके जीव मोक्ष जाते है, उसी समय अव्यवहारराशि सूक्ष्म निगोद से अकामनिर्जराद्वारा दूसरे जीव निकलकर विकासदशा को प्राप्त करते हैं। अगर दश जीव मोक्ष मे जाते है तो दश जीव सूक्ष्मनिगोद से बाहर निकल आते है। कदाचित् अल्पसंख्यक सूक्ष्म निगोद जीव बाहर निकलते है तो उनके साथ एक-दो अभव्य जीव बाहर आ जाते हैं मगर व्यवहार राशि में जीवों की घटती बढती नहीं होती। ऐसे निगोदगोलक लोकमे असख्यात होते हैं, ऐसा ग्रन्थान्तर में कहा है।

इति अवतरणा संपूर्ण—

इस प्रकार भगवान् के द्वारा प्ररूपित चार अनुयोगों का स्वरूप बतलाया गया है। यह कहा जा चुका है कि-चरणकरणानुयोग प्रधान होने के कारण उसका ग्रहण सर्वप्रथम किया गया है।

મનુષ્ય ભવ પામીને, કર્મોનો ક્ષય કરીને જીવ મોક્ષે જાય છે, તે સમયે અવ્યવહાર રાશિ સૂક્ષ્મ નિગોદથી, અકામ નિર્જરાદ્વારા બીજા જીવો નીકળીને વિકાસદશાને પ્રાપ્ત કરે છે અગર દસ જીવ મોક્ષમા જાય છે તો દસ જીવ સૂક્ષ્મ નિગોદથી બહાર નીકળી આવે છે કદાચિત્ અલ્પસખ્યક સૂક્ષ્મ નિગોદ-જીવ બહાર નીકળે છે તો, તેની સાથે એક-બે અભવ્ય જીવ બહાર આવી જાય છે પણ વ્યવહાર રાશિમા જીવોનુ ઘટવુ-વધવુ થતુ નથી એ પ્રમાણે નિગોદગોલક લોકમા અસખ્યાત હોય છે આ પ્રમાણે ગ્રથાન્તરમા કહ્યુ છે

ઇતિ અવતરણા સપૂર્ણ—

આ પ્રમાણે ભગવાન દ્વારા પ્રરૂપિત ચાર અનુયોગોનું સ્વરૂપ બતાવવામાં આવ્યુ છે એ કહી આપ્યુ છે કે ચરણ-કરણાનુયોગ પ્રધાન હોવાના કારણે તેનું ગ્રહણ સૌથી પ્રથમ કરવામા આવ્યું છે

श्रुतं=श्रवणविषयीकृतं, मया=साक्षात् भगवन्मुखात्, न तु परम्परया, यतो गणधराणामनन्तरागमो भवति। 'मया श्रुत'-मित्यनेन गुरुकुले निवसता मयेत्यर्थः सुतरां लभ्यते। गुरुकुलनिवासं विना हि गुरुचरणसरोजस्पर्शपूर्वकाभिवादनं, तन्मुखारविन्दविनिःसृतवचनश्रवणं च नोपपद्यते।

भगवता-भगः=(१)-ज्ञानं=सर्वार्थविषयकम्, (२)-माहात्म्यम्=अनुपममहनीयमहिमसंपन्नत्वम्, (३)-यशः=विविधानुकूलप्रतिकूलपरीषहोपसर्गसहनसमुद्भूता कीर्तिः, यद्वा-जगद्रक्षणभावनासमुत्था कीर्तिः, (४)-वैराग्यम्=सर्वथा काम

मैंने भगवान् के मुखसे साक्षात् सुना है—परम्परा से नहीं, क्यों कि गणधरों का आगम अनन्तरागम होता है। मैंने सुना इस वाक्य का 'मैंने गुरुकुल में निवास करते हुए सुना' यह अर्थ स्वतः सिद्ध है। गुरुकुल में निवास किये विना गुरु के चरण-कमलोंका स्पर्श करके अभिवादन तथा उनके मुखारविन्द से निकलने वाले वचनों का श्रवण नहीं हो सकता।

'भगवान्' शब्द में जो 'भग' शब्द है उसके अनेक अर्थ होते हैं। वे इस प्रकार है—(१) सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान (२) माहात्म्य अर्थात् अनुपम और महान् महिमा (३) यश अर्थात् नाना प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल परीषहों और उपसर्गों को सहन करने से फैली हुई कीर्ति अथवा जगत् की रक्षा (उद्धार) करने की भावना से उत्पन्न हुई कीर्ति (४) वैराग्य अर्थात् कामभोग से

मे भगवानना मुखथी साक्षात् सांभळ्युं छे—परम्पराथी नहि, केमके गणधरोना आगम अनन्तरागम-होय छे 'मे सांभळ्युं' मे गुरुकुलमां निवास करता थका सांभळ्युं आ अर्थ स्वतः सिद्ध छे गुरुकुलमां निवास कर्या विना गुरुना चरणकमळोनो स्पर्श करीने अभिवादन नमस्कार तथा तेना मुखार विंदथी निकळनावाळां वचनो श्रवण थई शकतां नथी.

'भगवान' शब्दमां जे 'भग' शब्द छे तेना अनेक अर्थ थाय छे ते आ प्रमाणे—

(१) सम्पूर्ण पदार्थोने जाणवावाळु ज्ञान, (२) माहात्म्य अर्थात् अनुपम अने महान् महिमाथी युक्त होवुं (३) यश-अर्थात् नाना प्रकारना अनुकूल अने प्रतिकूल परीषहो अने उपसर्गोने सहन करवाथी फेलावी कीर्ति अथवा जगतनी रक्षा (उद्धार) करवानी भावनाथी उत्पन्न थयेली कीर्ति (४) वैराग्य-

मूलम्—

सुयं मे आउस तेणं भगवया एवमक्खायं, (सू. १)

(छाया)

श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन भगवता एवमाख्यातम् (सू. १)

टीका—

'सुयं मे' इत्यादि। आयुष्मन् ! हे चिरजीविन् ! जम्बूः ! 'आयुष्म'-न्निति पदं शिष्यस्य जम्बूस्वामिनः कोमलवचनामन्त्रणं विनीतताख्यापनार्थम्। किञ्च—तस्याशेषश्रुतज्ञानोपदेश—श्रवण—ग्रहण – धारण – रत्नत्रयाराधन – मोक्षसाधन-योग्यताप्राप्त्यर्थमेतद्वचनम्। विनाऽऽयुषा श्रुतश्रवणादिमोक्षपर्यन्तसिद्धिर्न कस्यचित्सं-भवतीति भावः। एतद्वचनप्रभावादेव जम्बूस्वामी मोक्षपदं तस्मिन्नेव जन्मनि प्राप।

मूलार्थ–'सुयं मे' इत्यादि, हे आयुष्मन् ! मैने सुना है। उन भगवान्ने ऐसा कहा है (सू० १)

टीकार्थ–हे आयुष्मन् ! अर्थात् हे चिरजीवी जम्बू !, 'आयुष्मन्' पद अपने शिष्य जम्बू स्वामीका कोमल वचनरूप सम्बोधन है, और विनीतता प्रकट करने के लिए है। अथवा—उनके समस्त श्रुतज्ञान, उपदेश का श्रवण, ग्रहण धारण, रत्नत्रयका आराधन, तथा मोक्षसाधन की योग्यता की प्राप्ति के लिए इस पद का प्रयोग किया गया है। आयुके अभाव में श्रुतश्रवण से लेकर मोक्ष तक किसीकी भी सिद्धि नहीं हो सकती। इसी वचन के प्रभाव से जम्बू स्वामीने उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया था।

'सुयं मे' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—હે આયુષ્મન્ ! મે સાભળ્યુ છે,—તે ભગવાને આવુ કહ્યુ છે (સૂ-૧)

ટીકાર્થ—હે આયુષ્મન્ અર્થાત્ હે ચિરજીવી જમ્બૂ !, 'આયુષ્મન્' પદ પોતાના શિષ્ય જમ્બૂ સ્વામીનુ કોમલ-વચનરૂપ સબોધન છે, અને વિનીતપણુ પ્રગટ કરવા માટે છે અથવા તેમના સમસ્ત શ્રુતજ્ઞાન, ઉપદેશનુ શ્રવણ, ગ્રહણ, ધારણ, રત્નત્રયનુ આરાધન તથા મોક્ષસાધનની યોગ્યતાની પ્રાપ્તિ માટે આ પદનો પ્રયોગ કરવામા આવ્યો છે, આયુના અભાવમા શ્રુતના શ્રવણથી લઇને મોક્ષ સુધી કોઈ પણ સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી આ વચનના પ્રભાવથી જમ્બૂ સ્વામીએ એ ભવમા મોક્ષ પ્રાપ્ત કર્યો હતો.

श्रुतं=श्रवणविषयीकृतं, मया=साक्षाद् भगवन्मुखात्, न तु परम्परया, यतो गणधराणामनन्तरागमो भवति। 'मया श्रुतं'-मित्यनेन गुरुकुले निवसता मयेत्यर्थः सुतरां लभ्यते। गुरुकुलनिवासं विना हि गुरुचरणसरोजस्पर्शपूर्वकाभिवादनं, तन्मुखारविन्दविनिःसृतवचनश्रवणं च नोपपद्यते।

भगवता -भगः=(१) - ज्ञानं=सर्वार्थविषयकम्, (२) - माहात्म्यम्=मनुपममहनीयमहिमसंपन्नत्वम्, (३)-यशः=विविधानुकूलप्रतिकूलपरीषहोपसर्गसहनसमुद्भूता कीर्तिः, यद्वा-जगद्रक्षणभावनासमुत्था कीर्तिः, (४)-वैराग्यम्=सर्वथा काम

मैंने भगवान् के मुखसे साक्षात् सुना है—परम्परा से नहीं क्यों कि गणधरों का आगम अनन्तरागम होता है। 'मैंने सुना' इस वाक्य का 'मैंने गुरुकुल में निवास करते हुए सुना' यह अर्थ स्वतः सिद्ध है। गुरुकुल में निवास किये बिना गुरु के चरण-कमलोंका स्पर्श करके अभिवादन तथा उनके मुखारविन्द से निकलने वाले वचनों का श्रवण नहीं हो सकता।

'भगवान्' शब्द में जो 'भग' शब्द है उसके अनेक अर्थ होते हैं। वे इस प्रकार है—(१) सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान (२) माहात्म्य अर्थात् अनुपम और महान् महिमा (३) यश अर्थात् नाना प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल परीषहों और उपसर्गों को सहन करने से फैली हुई कीर्ति अथवा जगत् की रक्षा (उद्धार) करने की भावना से उत्पन्न हुई कीर्ति (४) वैराग्य अर्थात् कामभोग की

મેં ભગવાનના મુખથી સાક્ષાત્ સાંભળ્યું છે—પરમ્પરાથી નહિ, કેમકે ગણધરોના આગમ અનન્તરાગમ-હોય છે મેં સાંભળ્યું મેં ગુરુકુલમાં નિવાસ કરતા થકા સાંભળ્યું આ અર્થ સ્વતઃ સિદ્ધ છે ગુરુકુલમાં નિવાસ કર્યા વિના ગુરુના ચરણકમલોનો સ્પર્શ કરીને અભિવાદન નમસ્કાર તથા તેના મુખાર વિંદથી નિકલવાવાળાં વચનો શ્રવણ થઈ શકતાં નથી.

'ભગવાન' શબ્દમાં જે 'ભગ' શબ્દ છે તેના અનેક અર્થ થાય છે તે આ પ્રમાણે—

(૧) સમ્પૂર્ણ પદાર્થોને જાણવાવાળું જ્ઞાન, (૨) માહાત્મ્ય અર્થાત્ અનુપમ અને મહાન્ મહિમાથી યુક્ત હોવું, (૩) યશ-અર્થાત્ નાના પ્રકારના અનુકૂલ અને પ્રતિકૂલ પરીષહો અને ઉપસર્ગોને સહન કરવાથી ફેલાવી કીર્તિ અથવા જગતની રક્ષા (ઉદ્ધાર) કરવાની ભાવનાથી ઉત્પન્ન થયેલી કીર્તિ, (૪) વૈરાગ્ય-

भोगाभिलापराहित्यम्, यद्वा-क्रोधादिकपायनिग्रहलक्षणम्, (५)-मुक्तिः=सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्ष, (६)-रूपम्=सकलहृदयहारिसौन्दर्यम्, (७)-वीर्यम्=अन्तरायान्तजन्यमनन्तसामर्थ्यम्, (८)-श्रीः=घातिककर्मपटलविघटनजनितज्ञानदर्शनसुखवीर्यरूपानन्तचतुष्टयलक्ष्मीः। (९)-धर्मः-अपवर्गद्वारकपाटोद्घाटनसाधनश्रुतचारित्रलक्षणः (१०)-ऐश्वर्यम्=लोकत्रयाधिपत्यम्, चास्यास्तीति भगवान्, तेन भगवता=ज्ञानादियुक्तेन, तेन तीर्थङ्करेण, वक्ष्यमाणार्थस्य तीर्थङ्करभाषितत्वात्तच्छब्देनात्र तीर्थङ्करपरामर्शः। उक्तञ्च—

तनिक भी अभिलाषा न होना, अथवा क्रोध आदि कषायोंका निग्रह करना, (५) मुक्ति समस्त कर्मोंका क्षय रूप मोक्ष, (३) रूप—सब का हृदय हरलेनेवाला अनुपम सौन्दर्य (७) वीर्य—अन्तराय कर्मके क्षय से उत्पन्न अनन्तशक्ति, (८) श्री—घाति कर्मों के क्षय से उत्पन्न अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यरूप अनन्तचतुष्टय लक्ष्मी (९) धर्म—मोक्षरूपी द्वार के किवाड उघाडने का साधन श्रुतचारित्ररूप धर्म, (१०) ऐश्वर्य—तीन लोक का आधिपत्य। ये दश गुण जिस में विद्यमान हों उसे 'भगवान्' कहते है। ऐसे भगवान्ने कहा है। आगे कहा जाने वाला तत्त्व तीर्थंकरभाषित है, अत एव 'तत्' शब्द से यहाँ भगवान् तीर्थंकर समझना चाहिए। कहाभी है—

અર્થાત્ કામભોગની જરા પણ અભિલાષા નથવી, અથવી ક્રોધ કષાયોનો નિગ્રહ કરવો, (૫) મુકિત–સમસ્ત કર્મોના ક્ષયરૂપ મોક્ષ (૬) રૂપ–સર્વના હૃદયને હરી લેવાવાળુ અનુપમ સૌન્દર્ય, (૭) વીર્ય–અન્તરાય કર્મના ક્ષયથી ઉત્પન્ન અનન્ત શકિત (૮) શ્રી–ઘાતિ કર્મોના ક્ષયથી ઉત્પન્ન અનત જ્ઞાન, દર્શન, સુખ અને વીર્યરૂપ અનતચતુષ્ટયલક્ષ્મી (૯) ધર્મ–મોક્ષરૂપી દ્વારના કમાડ ઉઘાડવાનુ સાધન શ્રુત–ચારિત્રરૂપ ધર્મ (૧૦) ઐશ્વર્ય–ત્રણ લોકનુ અધિપતિપણુ આ દસ ગુણ જેમા હોય તેને ભગવાન કહે છે એવા ભગવાને કહ્યુ છે

આગળ કહેવાશે તે તત્ત્વ તીર્થ કરભાષિત છે, એટલા માટે 'તત્' શબ્દથી તીર્થંકર ભગવાનનો અર્થ અહિં સમજવો જોઇએ કહ્યુ પણ છે–

" अत्थं भासइ अरिहा, सुत्तं गथंति गणहरा णिउणा " इत्यादि ।

अर्थं भाषतेऽर्हन् सूत्रं ग्रथ्नन्ति गणधरा निपुणाः, इति च्छाया ।

भगवत्तीर्थङ्करोपदिष्टमर्थरूपमागममुपादाय मेधाविनो गणधरा सूत्ररूपमागमं निबध्नन्तीत्यर्थः ।

एवं=वक्ष्यमाणरीत्या आख्यातं=कथितं द्वादशविधपरिषत्सु ।

भगवत्तीर्थङ्करकथितार्थजातमेव चानुसृत्य वक्ष्यमाणं वाक्यमनुवदिष्यामीति वाक्यार्थः । आगमोक्तार्थस्य काल्पनिकस्याभावात् द्रव्यार्थिकनयेनार्थरूपोऽयमागमोऽनादिरिति भावः ।

एषा परंपरा=परिपाटी वरीवर्ति सर्वेषां गणधराणां, यद् विनीतैः स्वस्वान्तेवासिभिर्मोक्षमार्गं सविनयं पृष्टा गणधराः "सुयं मे " इतिवाक्यं प्रथमं वदन्ति । उक्तञ्च—

"अर्हन्त भगवान् अर्थका निरूपण करते हैं । और गणधर उसे भली-भाँति सूत्र रूप में गूंथते है । अर्थात् भगवान् तीर्थंकर के द्वारा उपदिष्ट अर्थरूप आगम के आधार पर कुशल गणधर सूत्ररूप आगमकी रचना करते हैं ।"

उन भगवानने बारह प्रकारकी परिषद् में इस प्रकार कहा है जो आगे इस सूत्र में निरूपण किया जायगा । आगमोक्त अर्थ काल्पनिक नहीं होता अतः द्रव्यार्थिकनय से अर्थरूप यह आगम अनादि है ।

सभी गणधरों की यह परम्परा-परिपाटी है कि-प्रथम २ विनीत शिष्यों द्वारा विनयपूर्वक मोक्षमार्ग पूछे जाने पर गणधर महाराज पहले-पहल 'सुयं मे' यह वाक्य बोलते है । कहा भी है—

અર્હન્ત ભગવત અર્થનું નિરૂપણ કરે છે અને ગણધર તેને ભલી રીતે સૂત્ર રૂપમાં ગૂંથે છે અર્થાત્ ભગવાન તીર્થંકર દ્વારા ઉપદિષ્ટ-ઉપદેશેલાં અર્થરૂપ આગમના આધાર પર કુશળ ગણધર સૂત્રરૂપ આગમની રચના કરે છે

તે ભગવાને બાર પ્રકારની પરિષદ્-સભામાં આ પ્રમાણે કહ્યું છે જે આગળ આ સૂત્રમાં નિરૂપણ કરવામાં આવશે. આગમોકત-આગમમાં કહેલો અર્થ કાલ્પનિક નથી તેથી દ્રવ્યાર્થિક નયથી અર્થરૂપ આ આગમ અનાદિ છે.

સર્વ ગણધરોની એ પરંપરા-પરિપાટી છે કે-પોત-પોતાના વિનીત શિષ્યો દ્વારા વિનયપૂર્વક મોક્ષમાર્ગ પૂછવાથી ગણધર મહારાજ પ્રથમ સુયં મે આ વાક્ય બોલે છે. કહ્યું પણ છે—

(द्रुतविलम्बितं छन्दः)

" निपुणशिष्यगणैर्विनयान्वितै,-
विमलभावयुतैः परिसेवितैः ।
गणधररखिलैः प्रथम वचः,
खलु 'सुयं म' इति प्रतिभाषितम् " ॥१॥ इति ।

भगवता यदाख्यात तदाह—'इहमेगेसिं' इत्यादि ।

मूलम्

इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ, तजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमसि, उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमसि । अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमसि ॥ सू. २ ॥

"विनय से युक्त निपुण शिष्यों द्वारा सेवित, तथा निर्मल भावों वाले सब गणधरों द्वारा अपने२ शिष्यों के प्रति सर्व प्रथम सुय मे' यह वाक्य कहा गया है ॥ १ ॥

भगवानन्ने जो कहा वह कहते हैं—'इहमेगेसिं' इत्यादि ।

मूलार्थ—किन्हीं २ (जीवों) को सज्ञा नहीं होती कि—मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, या मैं दक्षिण दिशा से आया हूँ, या मैं पश्चिम दिशा से आया हूँ, अथवा मै उत्तर दिशा से आया हूँ । अथवा मैं उर्ध्व दिशा से आया हूँ, या अधोदिशासे मैं आया हूँ, अथवा मैं दूसरी किसी दिशा या अनुदिशा (विदिशा) से आया हूँ । ॥ २ ॥

" વિનયથી યુક્ત નિપુણ શિષ્યોએ સેવિત તથા નિર્મલ ભાવોવાળા સર્વ ગણધરો દ્વારા પોતપોતાના શિષ્યો પ્રતિ સર્વ પ્રથમ 'સુયં મે' એ વાકય કહેવામા આવ્યુ છે " ॥ ૧ ॥

મૂલાર્થ—'इहमेगेसिं' ઈત્યાદિ કોઈ-કોઇ (જીવો)ને સજ્ઞા નથી હોતી કે હુ પૂર્વ દિશામાથી આવ્યો છુ, અથવા હુ દક્ષિણ દિશામાથી આવ્યો છુ, અથવા હુ પશ્ચિમ દિશામાંથી આવ્યો છુ, અથવા હુ ઉત્તર દિશામાથી આવ્યો છુ, અથવા હુ ઉર્ધ્વ દિશામાથી આવ્યો છુ, અથવા હુ અધો દિશામાથી આવ્યો છુ, અથવા હુ અન્ય-બીજી કોઈ દિશામાથી અથવા અનુદશા (વિદિશા)માથી આવ્યો છુ. ॥૨॥

छाया—

इह एकेषां नो संज्ञा भवति, तद्यथा-पूर्वस्या वा दिशाया आगतो-ऽहमस्मि, दक्षिणस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि, पश्चिमाया वा दिशाया आगतोऽहमस्मि । उत्तरस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि । ऊर्ध्वाया वा दिशाया आगतोऽहमस्मि, अधोदिशाया वा आगतोऽहमस्मि, अन्यतरस्या वा दिशाया अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मि ।

'इहमेगेसिं' इति इह-चतुर्गतिसंसरणरूपे संसारे एकेषां ज्ञानावरणीयकर्मो-दयवतां संज्ञिनां जीवानां संज्ञा-स्मृतिरूपो मतिविशेषः नो भवति-न जायते ।

अन्यं प्रतिषेधवाचकं शब्दं विहाय 'नो' शब्दोपादानं विशिष्टसंज्ञा-प्रतिषेधबोधनार्थम् । 'नो' शब्दः सर्वनिषेधवाची, देशनिषेधवाची च । उक्तञ्च—

"प्रतिषेधयति समस्तं, प्रसक्तमर्थं जगति नो-शब्दः ।
स पुनस्तदवयवो वा, तस्मादर्थान्तरं वा स्यात् ॥ १ ॥"

'नो' शब्दः-प्रसङ्गादागतमर्थं संपूर्णं प्रतिषेधयति, स चार्थः प्रसक्तावयवो वा स्यात् तस्मादन्यो वाऽर्थः स्यात् तमपि प्रतिषेधयतीत्यर्थः ।

टीकार्थ—चार गति में भ्रमण करनेरूप संसार में ज्ञानावरण कर्म के उदय वाले कितनेक संज्ञी जीवों को संज्ञा अर्थात् स्मृति नहीं होती ।

निषेधवाचक दूसरे शब्द को छोड कर यहाँ 'नो' शब्द का प्रयोग किया गया है सो विशिष्ट संज्ञा का अभाव सूचित करने के लिए समझना चाहिए । नो' शब्द सर्वनिषेधवाचक भी है और देशनिषेधवाचक भी है । कहा भी है—

"नो शब्द प्रसङ्ग में आये हुए सम्पूर्ण अर्थ का निषेध करता है । वह अर्थ चाहे उस का एक अवयव हो या उस से भिन्न अर्थान्तर हो—उस का भी निषेध करता है' ॥१॥

ટીકાર્થ—ચાર ગતિમાં ભ્રમણ કરવા રૂપ સંસારમાં જ્ઞાનાવરણ કર્મના ઉદય વાળા કેટલાક સંજ્ઞી જીવોને સંજ્ઞા અર્થાત્ સ્મૃતિ નથી રહેતી. નિષેધક-વાચક અન્ય શબ્દો ત્યજીને અહિં નો શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે તે વિશિષ્ટ સંજ્ઞાનો અભાવ સૂચવવા માટે સમજવો જોઈએ નો શબ્દ સર્વનિષેધવાચક પણ છે અને દેશનિષેધવાચક પણ છે કહ્યું પણ છે—

" નો શબ્દ પ્રસંગમાં આવેલા સંપૂર્ણ અર્થનો નિષેધ કરે છે તે અર્થ ભલે તેનું એક અવયવ હોય અથવા તેનાથી ભિન્ન અર્થાન્તર હોય તેનો પણ નિષેધ કરી દે છે' ॥ ૧ ॥

(द्रुतविलम्बितं छन्दः)

" निपुणशिष्यगणैर्विनयान्वितै,-
विमलभावयुतैः परिसेवितैः ।
गणधरैरखिलैः प्रथमं वचः,
खलु 'सुयं मे' इति प्रतिभापितम् " ॥१॥ इति ।
भगवता यदाख्यात तदाह—'इहमेगेसिं' इत्यादि ।

मूलम्

इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ, तंजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दाहिणाओ वा दिशाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमसि । अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमसि ॥ सू० २ ॥

"विनय से युक्त निपुण शिष्यों द्वारा सेवित, तथा निर्मल भावों वाले सब गणधरों द्वारा अपने२ शिष्यों के प्रति सर्व प्रथम सुय मे' यह वाक्य कहा गया है ॥ १ ॥

भगवानन्ने जो कहा वह कहते हैं—'इहमेगेसिं' इत्यादि ।

मूलार्थ—किन्हीं २ (जीवों) को सज्ञा नहीं होती कि—मै पूर्व दिशा से आया हूँ, या मैं दक्षिण दिशा से आया हूँ, या मैं पश्चिम दिशा से आया हूँ, अथवा मैं उत्तर दिशा से आया हूँ । अथवा मैं उर्ध्व दिशा से आया हूँ, या अधोदिशासे मैं आया हूँ, अथवा मैं दूसरी किसी दिशा या अनुदिशा (विदिशा) से आया हूँ । ॥२॥

" વિનયથી યુક્ત નિપુણ શિષ્યોએ સેવિત તથા નિર્મલ ભાવોવાળા સર્વ ગણધરો દ્વારા પોતપોતાના શિષ્યો પ્રતિ સર્વ પ્રથમ 'सुयं मे' એ વાક્ય કહેવામા આવ્યુ છે " ॥ ૧ ॥

મૂલાર્થ–'इहमेगेसिं' ઇત્યાદિ કોઈ–કોઇ (જીવો)ને સંજ્ઞા નથી હોતી કે હુ પૂર્વ દિશામાથી આવ્યો છુ, અથવા હુ દક્ષિણ દિશામાથી આવ્યો છુ, અથવા હુ પશ્ચિમ દિશામાથી આવ્યો છુ, અથવા હુ ઉત્તર દિશામાથી આવ્યો છુ, અથવા હુ ઉર્ધ્વ દિશામાથી આવ્યો છુ, અથવા હુ અધો દિશામાથી આવ્યો છુ, અથવા હુ અન્ય–બીજી કોઈ દિશામાથી અથવા અનુદિશા (વિદિશા)માથી આવ્યો છુ. ॥૨॥

अथवा—संज्ञानं संज्ञा-चेतना, सा चासातवेदनीयमोहनीयकर्मोदयजन्य-विकारयुक्ता आहारादिसंज्ञादित्वेन व्यपदिश्यते। सा द्विधा-अनुभवनसंज्ञा, ज्ञानसंज्ञा च। तत्रानुभवनसंज्ञा षोडशविधा। तत्र भगवतीसूत्रोक्तदशविधसंज्ञा उपादायाधिका षट् संज्ञा' सम्मिलिताः षोडश भवन्ति। तत्र (१) सुखसंज्ञा, (२) दुःखसंज्ञा, (३) मोहसंज्ञा, (४) विचिकित्सासंज्ञा, (५) शोकसंज्ञा, (६) धर्मसंज्ञा चेति षट् अधिका विज्ञेयाः।

(१) आहारसंज्ञा—

(१) क्षुद्वेदनीयोदयात् कवलाद्याहारार्थं तथाविधपुद्गलोपादानक्रिया सम्यग् ज्ञायतेऽनयस्याहारसंज्ञा। यद्वा—क्षुद्वेदनीयोदयसमुद्भव आहाराभि-

अथवा-संज्ञान-संज्ञा-चेतना अर्थात् संज्ञा चेतना को कहते हैं। यह जब असातावेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से जनित विकारों से युक्त होती है तब वह आहार आदि संज्ञा कहलाने लगती है। वह दो प्रकार की है—(१) अनुभवनसंज्ञा और (२) ज्ञानसंज्ञा। इन में से अनुभवनसंज्ञा सोलह प्रकार की है। भगवतीसूत्रोक्त दश संज्ञाओं में छह संज्ञाएँ मिला देने से सोलह हो जाती हैं। छह संज्ञाएँ ये हैं—(१) सुखसंज्ञा, (२) दुःखसंज्ञा (३) मोहसंज्ञा (४) विचिकित्सासंज्ञा (५) शोकसंज्ञा और (६) धर्मसंज्ञा।

(१) आहारसंज्ञा

क्षुधावेदनीय के उदय से कवलाहार आदि के लिए योग्य पुद्गलों को ग्रहण करने की क्रिया जिस द्वारा सम्यक् प्रकार से जानी जाय वह आहारसंज्ञा कहलाती है।

અથવા-સંજ્ઞાન એટલે સંજ્ઞા તે ચેતના અર્થાત્ ચેતનાને સંજ્ઞા કહે છે તે જ્યારે અસાતાવેદનીય અને મોહનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન વિકારો યુક્ત હોય છે ત્યારે તે આહાર આદિ સંજ્ઞા કહેવાય છે. તે બે પ્રકારની છે-(૧) અનુભવનસંજ્ઞા અને (૨) જ્ઞાનસંજ્ઞા તેમાં અનુભવનસંજ્ઞા સોળ પ્રકારની છે ભગવતીસૂત્રોક્ત દસ સંજ્ઞાઓમાં છ મેળવી દેવાથી સોળ થાય છે છ સંજ્ઞાઓ આ છે-(૧) સુખસંજ્ઞા, (૨) દુઃખસંજ્ઞા, (૩) મોહસંજ્ઞા (૪) વિચિકિત્સાસંજ્ઞા (૫) શોકસંજ્ઞા અને (૬) ધર્મસંજ્ઞા.

(૧) આહારસંજ્ઞા—

ક્ષુધા (ભૂખ) વેદનીયના ઉદયથી કવલાહાર આદિ માટે યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરવાની ક્રિયા જેના વડે સમ્યક્ પ્રકારથી જાણી શકાય તે આહારસંજ્ઞા કહેવાય છે.

यया संज्ञयाऽऽत्मनो गत्यागत्यादिकं जीवो जानाति तस्या एव प्रतिषेधो विवक्षितः।

अथ संज्ञाभेदाः—

संज्ञा च जीवानां बहुविधा। तत्र-दशविधा भगवतीसूत्रे (शतक-७, उद्देश ८) प्रोक्ता—

" कइ ण भंते ! सन्नाओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! दस सन्नाओ पन्नत्ताओ, तंजहा-(१) आहारसन्ना, (२) भयसन्ना, (३) मेहुणसन्ना, (४) परिग्गहसन्ना, (५) कोहसन्ना, (६) माणसन्ना, (७) मायासन्ना, (८) लोभसन्ना, (९) लोगसन्ना, (१०) ओहसन्ना " इति।

जिस सज्ञा के द्वारा आत्मा की गति और आगति जीव जानता है, यहाँ उसीका निषेध समझना चाहिए।

संज्ञा के भेद—

जीवों की सज्ञा अनेक प्रकार की होती है। भगवतीसूत्र (श० ६, उ० ८, में दश प्रकार की सज्ञा कही गई है, वह इस प्रकार है,—

प्रश्न—भगवान्! सज्ञाएँ कितनी कही गई हैं।

उत्तर—गौतम! दश सज्ञाएँ कही गई है। वे इस प्रकार है—(१) आहार-सज्ञा, (२) भय-सजा, (३) मैथुन-सज्ञा, (४) परिग्रह-संज्ञा, (५) क्रोध सज्ञा (६) मान-सज्ञा, (७) माया-सज्ञा, (८) लोभ-सज्ञा, (९) लोक-संज्ञा और (१०) ओघ-सज्ञा।

જે સજ્ઞા દ્વારા આત્માની ગતિ અને આગતિ જીવ જાણે છે અહિં એનો નિષેધ સમજવો જોઈએ

સજ્ઞાના ભેદ—

જીવોની સજ્ઞા અનેક પ્રકારની હોય છે ભગવતી સૂત્ર (શ ૬ ઉ ૮)માં દસ પ્રકારની સજ્ઞાઓ કહેવામા આવી છે. તે આ પ્રમાણે છેઃ—

પ્રશ્ન—ભગવાન! સજ્ઞાઓ કેટલી કહી છે?

ઉત્તર-ગૌતમ! દસ સજ્ઞાઓ કહી છે તે આ પ્રમાણે છેઃ—

(૧) આહાર-સજ્ઞા (૨) ભય-સજ્ઞા (૩) મૈથુન-સજ્ઞા, (૪) પરિગ્રહ-સજ્ઞા (૫) ક્રોધ-સજ્ઞા (૬) માન-સજ્ઞા (૭) માયા-સજ્ઞા (૮) લોભ-સજ્ઞા (૯) લોક-સંજ્ઞા અને (૧૦) ઓઘ-સજ્ઞા

(२) भयसंज्ञा-

(२) सनिमित्तमनिमित्तं वा भयमोहनीयोदयात् भयोद्भ्रान्तस्य मोहनीयान्तर्गतनोकषायरूपा नयनवदनविकृतरोमाञ्चनिर्मावादिक्रियालक्षणा स्वात्मन परिणतिभयसंज्ञा। हीनसत्त्वत्वेन, भयवार्ताश्रवणभीषणदर्शनादि जनितबुद्ध्या, इहलोकादिभयजनकार्यपर्यालोचनेन वा भयसंज्ञा जायते। हस्तस्पर्शादिभीत्या स्वावयवसंकोचनादिना लज्जालुवल्ल्यादीनां भयसंज्ञा विज्ञायते।

(३) मैथुनसंज्ञा-

(३) पुरुषवेदोदयान्मैथुनार्थं वनिताऽऽलोकनप्रसन्नवदनसंस्तम्भितगात्र-

(२) भयसंज्ञा—

किसी कारण से या बिना ही कारण भयमोहनीय कर्म के उदय से भयभीत पुरुषकी मोहके अन्तर्गत नोकषायरूप नेत्रों में और मुख में विकार होना रोमाञ्च होना आदि क्रियाएं जिसका लक्षण है, ऐसी आत्मा की परिणति भयसंज्ञा कहलाती है, दुर्बलता से भय उत्पन्न करने वाली बात सुनने से, भयङ्कर वस्तु के देखने से, तथा इहलोक आदि में भयजनक वस्तुका विचार करने से भयसंज्ञा उत्पन्न होती है। लजवन्ती आदि वनस्पतियाँ हाथ के स्पर्श के भय से अपने अवयवों को सिकोड लेती हैं, अतः उन में भयसंज्ञा की विद्यमानता प्रतीत होती है।

(३) मैथुनसंज्ञा-

पुरुषवेद-मोहनीय कर्म के उदय से मैथुन के लिए स्त्री को देखना, प्रसन्नवदन

(२) ભય સંજ્ઞા—

કોઈ કારણથી અથવા વિના કારણે ભય થવો, મોહનીય કર્મના ઉદયથી ભયભીત પુરુષની મોહને અંતર્ગત નોકષાયરૂપ નેત્રોમાં અને મોઢામાં વિકાર થવો, રોમાંચ થવું (રૂંવાડાં ઉભાં થવાં) વગેરે ક્રિયાઓ જેનુ લક્ષણ છે એવી આત્માની પરિણતિ તે ભયસંજ્ઞા કહેવાય છે. દુર્બલતાથી ભય ઉત્પન્ન કરાવનારી વાત સાંભળવાથી, ભયંકર વસ્તુ દેખવાથી તથા આ લોક વગેરેમાં ભયજનક વસ્તુનો વિચાર કરવાથી ભયસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે લજામણી (લજવન્તી) આદિ વનસ્પતિઓ હાથનો સ્પર્શ થવાથી ભય લાગ્યો હોય તેમ પોતાના અવયવોને સંકોચે છે તેથી તેમાં ભયસંજ્ઞાની વિદ્યમાનતા દેખાય છે

(૩) મૈથુન સંજ્ઞા—

પુરુષવેદ—મોહનીયકર્મના ઉદયથી મૈથુન માટે સ્ત્રી તરફ જોવું હસતું મુખ

लाषरूप आत्मनः परिणामविशेषः। अभिलापश्चात्र-'मदर्थमीदृश वस्तु पुष्टिकरं, यदीदं लभ्यते तदा मम हितं भविष्यती'-त्येवं विचारानुबद्धः स्वपुष्टितुष्टिकारणीभूतप्रतिनियतवस्तुप्राप्त्यर्थमात्मनः परिणामः। रिक्तोदरत्वाद् भोजनीयवस्तुश्रवण-दर्शन-संचिन्तनैश्चाहारसंज्ञा जायते। आहारादयः संज्ञाः एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां सर्वजीवानामासंसारं भवन्ति। जलाद्याहारोपजीवनाद् वनस्पत्यादीनामाहारसंज्ञा विज्ञायते।

अथवा क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाली आहार की अभिलाषारूप आत्मा की परिणति आहारसज्ञा कहलाती है। यहा अभिलाषा शब्द से 'इस प्रकार की वस्तु मेरे लिए पुष्टिकर है, यह वस्तु मिले तो मेरा हित होगा' ऐसे विचार से युक्त अपनी पुष्टि और सन्तोष के कारणभूत पदार्थ की प्राप्ति के लिए होने वाला आत्मा का परिणाम ग्रहण करना चाहिए। खाली पेट होने पर भोज्य वस्तु के श्रवण दर्शन और चिन्तन से आहारसज्ञा उत्पन्न होती है। आहार आदि सज्ञाए एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रियपर्यन्त सभी जीवों को होती हैं, जब तक ससार का अन्त नहीं होता तब तक बनी रहती हैं। जल आदि आहार पर जीवित रहने के कारण वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीवों में भी आहारसज्ञा का अस्तित्व प्रतीत होता है।

અથવા ક્ષુધાવેદનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થવા વાળી આહારની અભિલાષા-રૂચિ-ઈચ્છા રૂપ આત્માની પરિણતિ તે આહારસજ્ઞા કહેવાય છે, અહિં અભિલાષા શબ્દથી 'આ પ્રકારની વસ્તુ મારા માટે પુષ્ટિ કરનારી છે, આ વસ્તુ મળે તો મારૂ હિત થશે' એવા વિચારથી યુક્ત પોતાની પુષ્ટિ અને સતોષના કારણભૂત પદાર્થની પ્રાપ્તિ માટે વિચાર કરનાર આત્માનુ પરિણામ, ગ્રહણ કરવુ જોઈએ, ખાલી પેટ હોવાના કારણે ભોજ્ય (ભોજન કરવા યોગ્ય) વસ્તુના શ્રવણ, દર્શન અને ચિન્તનથી આહારસજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે આહાર આદિ સજ્ઞાઓ એકેન્દ્રિયથી આરભીને પચેન્દ્રિય સુધીના સર્વ જીવોને હોય છે, અને જ્યા સુધી સસારનો અત થતો નથી ત્યા સુધી તે સજ્ઞાઓ રહે છે જલ વગેરેના આહાર પર જીવિત રહેવાના કારણે વનસ્પતિ આદિ એકેન્દ્રિય જીવોમા પણ આહારસજ્ઞાનુ અસ્તિત્વ દેખાય છે

(२) भयसंज्ञा—

(२) सनिमित्तमनिमित्तं वा भयमोहनीयोदयात् भयोद्भ्रान्तस्य मोहनीयान्तर्गतनोकषायरूपा नयनवदनविकृतरोमाञ्चाविर्भावादिक्रियालक्षणा स्वात्मनः परिणतिर्भयसंज्ञा। हीनसत्त्वेन, भयवार्ताश्रवणभीषणदर्शनादिजनितबुद्ध्या, इहलोकादिभयजनकार्थपर्यालोचनेन वा भयसंज्ञा जायते। हस्तस्पर्शादिभीत्या स्वावयवसंकोचनादिना लज्जालुप्रभृतीनां भयसंज्ञा विज्ञायते।

(३) मैथुनसंज्ञा—

(३) पुरुषवेदोदयान्मैथुनार्थं वनितावलोकनप्रसन्नवदनसंस्तम्भितगात्र

(२) भयसंज्ञा—

किसी कारण से या बिना ही कारण भयमोहनीय कर्म के उदय से भयभीत पुरुषकी मोहके अन्तर्गत नोकषायरूप नेत्रों में और मुख में विकार होना रोमाञ्च होना आदि क्रियाएँ जिसका लक्षण है, ऐसी आत्मा की परिणति भयसंज्ञा कहलाती है, दुर्बलता से भय उत्पन्न करने वाली बात सुनने से, भयङ्कर वस्तु के देखने से, तथा इहलोक आदि में भयजनक वस्तुका विचार करने से भयसंज्ञा उत्पन्न होती है। लज्जावन्ती आदि वनस्पतियाँ हाथ के स्पर्श के भय से अपने अवयवों को सिकोड लेती हैं, अतः उन में भयसंज्ञा की विद्यमानता प्रतीत होती है।

(३) मैथुनसंज्ञा—

पुरुषवेद-मोहनीय कर्म के उदय से मैथुन के लिए स्त्री को देखना, प्रसन्नवदन

(२) ભય સંજ્ઞા—

કોઈ કારણથી અથવા વિના કારણે ભય થવો, મોહનીય કર્મના ઉદયથી ભયભીત પુરુષની મોહને અંતર્ગત નોકષાયરૂપ નેત્રોમાં અને મોઢામાં વિકાર થવો રોમાંચ થવું (રૂંવાડા ઊભાં થવાં) વગેરે ક્રિયાઓ જેનું લક્ષણ છે એવી આત્માની પરિણતિ તે ભયસંજ્ઞા કહેવાય છે દુર્બળતાથી ભય ઉત્પન્ન કરાવનારી વાત સાંભળવાથી, ભયંકર વસ્તુ દેખવાથી તથા આ લોક વગેરેમાં ભયજનક વસ્તુનો વિચાર કરવાથી ભયસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે લજ્જાવતી (લજામણી) આદિ વનસ્પતિઓ હાથનો સ્પર્શ થવાથી ભય લાગ્યો હોય તેમ પોતાના અવયવોને સંકોચે છે તેથી તેમાં ભયસંજ્ઞાની વિદ્યમાનતા દેખાય છે

(૩) મૈથુન સંજ્ઞા—

પુરુષવેદ—મોહનીયકર્મના ઉદયથી મૈથુન માટે સ્ત્રી તરફ જોવું હસતું મુખ

लापरूप आत्मनः परिणामविशेषः। अभिलापश्चात्र–'मदर्थमीदृश वस्तु पुष्टिकरं, यदीदं लभ्यते तदा मम हितं भविष्यती'–त्येवं विचारानुवद्धः स्वपुष्टितुष्टिकारणी-भूतमतिनियतवस्तुप्राप्त्यर्थमात्मनः परिणामः। रिक्तोदरत्वाद् भोजनीयवस्तु-श्रवण–दर्शन–संचिन्तनैश्चाहारसज्ञा जायते। आहारादयः सज्ञाः एकेन्द्रियादि-पञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां सर्वजीवानामासंसारं भवन्ति। जलाद्याहारोपजीवनाद् वनस्पत्यादीनामाहारसज्ञा विज्ञायते।

अथवा क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से उपन्न होने वाली आहार की अभिलाषारूप आत्मा की परिणति आहारसज्ञा कहलाती है। यहा अभिलाषा शब्द से 'इस प्रकार की वस्तु मेरे लिए पुष्टिकर है, यह वस्तु मिले तो मेरा हित होगा' ऐसे विचार से युक्त अपनी पुष्टि और सन्तोष के कारणभूत पदार्थ की प्राप्ति के लिए होने वाला आत्मा का परिणाम ग्रहण करना चाहिए। खाली पेट होने पर भोज्य वस्तु के श्रवण दर्शन और चिन्तन से आहारसज्ञा उत्पन्न होती है। आहार आदि सज्ञाए एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रियपर्यन्त सभी जीवों को होती है, जब तक ससार का अन्त नहीं होता तब तक बनी रहती है। जल आदि आहार पर जीवित रहने के कारण वन-स्पति आदि एकेन्द्रिय जीवों में भी आहारसज्ञा का अस्तित्व प्रतीत होता है।

અથવા ક્ષુધાવેદનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થવા વાળી આહારની અભિલાષા-રૂચિ–ઈચ્છા રૂપ આત્માની પરિણતિ તે આહારસંજ્ઞા કહેવાય છે, અહિં અભિલાષા શબ્દથી 'આ પ્રકારની વસ્તુ મારા માટે પુષ્ટિ કરનારી છે, આ વસ્તુ મળે તો મારૂ હિત થશે' એવા વિચારથી યુક્ત પોતાની પુષ્ટિ અને સતોષના કારણભૂત પદાર્થની પ્રાપ્તિ માટે વિચાર કરનાર આત્માનુ પરિણામ, ગ્રહણ કરવુ જોઈએ, ખાલી પેટ હોવાના કારણે ભોજ્ય (ભોજન કરવા યોગ્ય) વસ્તુના શ્રવણ, દર્શન અને ચિન્તનથી આહારસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે આહાર આદિ સંજ્ઞાઓ એકેન્દ્રિયથી આરંભીને પચેન્દ્રિય સુધીના સર્વ જીવોને હોય છે, અને જ્યા સુધી સસારનો અત થતો નથી ત્યા સુધી તે સંજ્ઞાઓ રહે છે જલ વગેરેના આહાર પર જીવિત રહેવાના કારણે વનસ્પતિ આદિ એકેન્દ્રિય જીવોમા પણ આહારસંજ્ઞાનુ અસ્તિત્વ દેખાય છે

परिग्रहदर्शनेन, परिग्रहचिन्तनेन, परिग्रहसंग्रहेण च परिग्रहसंज्ञा जायते। बिल्वादिवनस्पतीनां स्वपत्रैः पुष्पफलाच्छादनदर्शनात् परिग्रहसंज्ञा विज्ञायते।

(५) क्रोधसंज्ञा-

(५) क्रोधमोहनीयोदयात् जीवस्य आत्यादिमदजनिता कर्तव्याकर्तव्य-विवेकापहारिका स्वपराप्रीतिरूपप्रज्वलनात्मिका विभावपरिणतिः क्रोधसंज्ञा।

(६) मानसंज्ञा-

(६) मानमोहनीयोदयात् अहंकाररूपा आत्मनो विभावपरिणतिर्मानसंज्ञा। देवगुरुधर्मादीनां महतामनादरादिना मानसंज्ञा विज्ञायते।

सचित्त आदि वस्तुओं का परिग्रह देखने से परिग्रह का विचार करने से, और परिग्रहका संग्रह करने से परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है। बिल्व (बेल) आदि वनस्पतियाँ अपने पत्तों से फूल फल वगैरह को ढँक लेती हैं इस से उनमें परिग्रहसंज्ञा का होना प्रतीत होता है।

(५) क्रोधसंज्ञा-

क्रोधमोहनीय के उदय से जीव में जातिमद आदि से उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक नष्ट कर देने वाली स्वपर की अप्रीतिरूप, तथा जलनरूप आत्मा की विभावपरिणति क्रोधसंज्ञा कहलाती है।

(६) मानसंज्ञा—

मानमोहनीय के उदय से अहङ्काररूप आत्मा की विभावपरिणति मानसंज्ञा कहलाती है। देव गुरु धर्म आदि महान् का अनादर आदि करने से मानसंज्ञा मालूम होती है।

કહેવાય છે સચિત્ત આદિ વસ્તુઓનો પરિગ્રહ દેખાવાથી, પરિગ્રહનો વિચાર કરવાથી અને પરિગ્રહનો સંગ્રહ કરવાથી પરિગ્રહસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે બિલ્વ (બીલી) આદિ વનસ્પતિઓ પોતાનાં પાંદડાંથી ફુલ-ફલ વગેરેને ઢાંકી દે છે તેથી વનસ્પતિમાં પરિગ્રહસંજ્ઞા દેખાય છે

(૫) ક્રોધસંજ્ઞા—

ક્રોધમોહનીય કર્મના ઉદયથી, જીવને જાતિમદ વગેરેથી ઉત્પન્ન, તથા કર્તવ્ય અકર્તવ્યનો વિવેક નાશ કરવાવાળી સ્વ-પરની અપ્રીતિરૂપ તથા બળતરૂપ આત્માની વિભાવપરિણતિ તે ક્રોધસંજ્ઞા કહેવાય છે

(૬) માનસંજ્ઞા—

માનમોહનીય કર્મના ઉદયથી અહંકારરૂપ આત્માની વિભાવપરિણતિ માનસંજ્ઞા કહેવાય છે દેવ, ગુરૂ ધર્મ આદિ મોટાઓનો અનાદર વગેરે કરવાથી માનસંજ્ઞા માલુમ પડે છે

शैथिल्योरुकम्पनादिक्रियारूपा आत्मनः परिणतिर्मैथुनसंज्ञा। रुधिरमांसोपचयेन, स्त्रीकथाश्रवणादिजनितमत्या, मैथुनचिन्तनेन च मैथुनसंज्ञा जायते। कुरुबकादिवनस्पतीनां कमनीयकामिनीभुजलतावगूहन–चरणाघात–कटाक्षविक्षेपादिभ्यः प्रसूनपल्लवादिप्रसवदर्शनान्मैथुनसंज्ञा विज्ञायते।

(४) परिग्रहसंज्ञा—

(४) लोभमोहनीयोदयाद् धर्मसाधनव्यतिरिक्त–सचित्ताऽचित्तमिश्र-वस्तूपादानादिमूर्छारूपा आत्मनः परिणतिः परिग्रहसंज्ञा। सचित्तादिवस्तु-

---

होना, शरीर का स्तम्भित हो जाना, तथा उस मे शिथिलता पैदा होना उरु (घुटनेके नीचेका भाग) आदि का कापना आदि क्रियारूप आत्मा की परिणति को मैथुनसंज्ञा कहते है। रक्त और मांस की अधिकता से, स्त्रीकथा आदि के श्रवण से उत्पन्न हुई बुद्धि से, और मथुन का विचार करने से मैथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है। कुरुबक आदि वनस्पतियो में सुन्दरी कामिनी की भुजाओं के आलिङ्गन से, चरणाघात से, तथा कटाक्षपात आदि से फूल, पत्ता आदि उत्पन्न होते है, अत वनस्पति में मैथुनसंज्ञा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

(४) परिग्रहसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से धर्म के उपकरणों के अतिरिक्त दूसरे सचित्त अचित्त और मिश्र पदार्थों के ग्रहण आदि मूर्च्छारूप आत्मा की परिणति परिग्रहसंज्ञा कहलाती है।

થવુ, શરીરનુ સ્તભિત થઈ જવુ, તથા તેમા શિથિલતા ઉત્પન્ન થવી, જાગ વગેરેનુ કપવુ આદિ ક્રિયારૂપ આત્માની પરિણુતિને મૈથુનસંજ્ઞા કહે છે રક્ત (લોહી) અને માંસની અધિકતાથી, સ્રીકથા વગેરે સાભળવાથી ઉત્પન્ન થયેલી બુદ્ધિથી, અને મૈથુનનો વિચાર કરવાથી મૈથુનસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે કુરબક (એક જાતનુ વૃક્ષ) આદિ વનસ્પતિમા સુદરી કામિનીના હાથના આલિંગન થતા, ચરણુાઘાતથી તથા કટાક્ષપાત આદિથી ફુલ, પત્તા આદિ ઉત્પન્ન થાય છે, આ કારણુથી વનસ્પતિમા મૈથુનસંજ્ઞાનુ અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે

(૪) પરિગ્રહ સંજ્ઞા—

લોભમોહનીયના ઉદયથી ધર્મના ઉપકરણો સિવાય બીજા સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર પદાર્થોનુ ગ્રહણુ કરવુ વગેરે મૂર્છારૂપ આત્માની પરિણુતિ તે પરિગ્રહસંજ્ઞા

परिग्रहदर्शनेन, परिग्रहचिन्तनेन, परिग्रहसंग्रहेण च परिग्रहसंज्ञा जायते। बिल्वादिवनस्पतीनां स्वपत्रैः पुष्पफलाच्छादनदर्शनात् परिग्रहसंज्ञा विज्ञायते।

(५) क्रोधसंज्ञा—

(५) क्रोधमोहनीयोदयात् जीवस्य जात्यादिमदजनिता कर्तव्याकर्तव्यविवेकापहारिका स्वपराप्रीतिरूपप्रज्वलनात्मिका विभावपरिणतिः क्रोधसंज्ञा।

(६) मानसंज्ञा—

(६) मानमोहनीयोदयात् अहंकाररूपा आत्मना विभावपरिणतिर्मानसंज्ञा। देवगुरुधर्मादीनां महतामनादरणादिना मानसंज्ञा विज्ञायते।

सचित्त आदि वस्तुओं का परिग्रह देखने से परिग्रह का विचार करने से और परिग्रहका संग्रह करने से परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है। बिल्व (बेल) आदि वनस्पतियाँ अपने पत्तों से फूल फल कोरह को ढँक लेती हैं इस से उनमें परिग्रहसंज्ञा का होना प्रतीत होता है।

(५) क्रोधसंज्ञा—

क्रोधमोहनीय के उदय से जीव में जातिमद आदि से उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक नष्ट कर देने वाली स्वपर की अप्रीतिरूप, तथा जलनरूप आत्मा की विभावपरिणति क्रोधसंज्ञा कहलाती है।

(६) मानसंज्ञा—

मानमोहनीय के उदय से अहङ्काररूप आत्मा की विभावपरिणति मानसंज्ञा कहलाती है। देव गुरु धर्म आदि बड़ोंका अनादर आदि करने से मानसंज्ञा मालूम होती है।

કહેવાય છે સચિત્ત આદિ વસ્તુઓનો પરિગ્રહ દેખાવાથી પરિગ્રહનો વિચાર કરવાથી અને પરિગ્રહનો સંગ્રહ કરવાથી પરિગ્રહસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે બિલ્વ (બીલી) આદિ વનસ્પતિઓ પોતાના પાંદડાંથી ફુલ-ફલ વગેરેને ઢાંકી દે છે તેથી વનસ્પતિમાં પરિગ્રહસંજ્ઞા દેખાય છે

(૫) ક્રોધસંજ્ઞા—

ક્રોધમોહનીય કર્મના ઉદયથી, જીવને જાતિમદ વગેરેથી ઉત્પન્ન, તથા કર્તવ્ય અકર્તવ્યનો વિવેક નાશ કરવાવાળી સ્વ-પરની અપ્રીતિરૂપ તથા જલનરૂપ આત્માની વિભાવપરિણતિ તે ક્રોધસંજ્ઞા કહેવાય છે

(૬) માનસંજ્ઞા—

માનમોહનીય કર્મના ઉદયથી અહંકારરૂપ આત્માની વિભાવપરિણતિ માનસંજ્ઞા કહેવાય છે દેવ, ગુરૂ ધર્મ આદિ મોટાઓનો અનાદર વગેરે કરવાથી માનસંજ્ઞા માલુમ પડે છે

(७) मायासंज्ञा—

(७) मायामोहनीयोदयात् कपटलक्षणा प्रवृत्तिर्जीवस्य विभावपरिणतिर्मायासंज्ञा। परवञ्चनेच्छया व्यामोहोत्पादकमनोवाक्कायव्यापारेण सा विज्ञायते।

(८) लोभसंज्ञा—

(८) लोभमोहनीयोदयेन सचित्तादिवस्तुगृद्धिरूपा जीवस्य विभाव परिणतिर्लोभसंज्ञा। आरम्भपरिग्रहादिप्रवृत्त्या लोभसंज्ञा विज्ञायते।

(९) लोकसंज्ञा—

(९) ज्ञानावरणीयक्षयोपशमेन मोहनीयकर्मोदयेन च कुबुद्धिजनिततर्क

---

(७) मायासंज्ञा—

मायामोहनीय के उदय से जीव को कपटरूप विभावपरिणति मायासंज्ञा कहलाती है। दूसरे को ठगने की इच्छा से मोहजनक मन, वचन और काय के व्यापार से उस की प्रतीति होती है।

(८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से सचित्त आदि वस्तुओं मे आसक्तिरूप जीवकी विभावपरिणति लोभसंज्ञा कहलाती है। आरम्भ परिग्रह आदि की प्रवृत्ति से लोभसंज्ञा का पता चलता है।

(९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से और मोहनीय कर्म के उदय से कुबुद्धिजनित

---

(७) માયાસંજ્ઞા—

માયામોહનીય કર્મના ઉદયથી જીવની કપટરૂપ વિભાવપરિણતિ માયા-સંજ્ઞા કહેવાય છે બીજાને ઠગવાની ઇચ્છાથી, મોહજનક મન, વચન અને કાયાના વ્યાપારથી તેની પ્રતીતિ થાય છે

(૮) લોભસંજ્ઞા—

લોભમોહનીય કર્મના ઉદયથી સચિત્ત આદિ વસ્તુઓમાં આસકિતરૂપ જીવની વિભાવપરિણતિ તે લોભસંજ્ઞા કહેવાય છે આરંભ-પરિગ્રહ આદિની પ્રવૃત્તિથી લોભ સંજ્ઞાનો પતો લાગે છે.

(૯) લોકસંજ્ઞા—

જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી અને મોહનીયકર્મના ઉદયથી કુબુદ્ધિજનિત

रूपा आत्मनो विभावपरिणतिर्लोकसंज्ञा। यथा–"अपुत्रस्य गतिर्नास्ती"–त्यादि।

(१०) ओघसंज्ञा–

(१०) ज्ञानावरणीयाल्पक्षयोपशमसमुद्भूता, अव्यक्तोपयोगरूपा जीवस्य परिणतिः ओघसंज्ञा। सा लतादीनां मतानारोहणादिना ज्ञायते।

(११) सुखसंज्ञा—

(११) संसारिणां सातवेदनीयोदयात् सकलेन्द्रियाणामनुकूलतया ज्ञायमाना आत्मनः परिणतिः सुखसंज्ञा।

तर्करूप आत्मा की विभावपरिणति लोकसंज्ञा कहलाती है यथा–'निपूत को सद्गति नहीं मिलती" आदि।

(१०) ओघसंज्ञा–

ज्ञानावरणीय कर्म के अल्प क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली तथा अव्यक्त (अप्रकट) उपयोगरूप जीव का विभावपरिणमन ओघसंज्ञा कहलाती है। लता वगैरह का मंडप पर चढने आदि से उसका ज्ञान होता है

(११) सुखसंज्ञा–

संसारी जीवोंको सातावेदनीय के उदय से सब इन्द्रियों के अनुकूल प्रतीत होने वाली आत्मा की एक विशिष्ट परिणतिको सुखसंज्ञा कहते हैं।

तर्डरूप आत्मानी विलावपरिणुति लोकसंज्ञा कहेवाय छे जेम– अपुत्रियाने सद्गति मળती नथी

(१०) ओघसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्मना अल्प क्षयोपशमथी उत्पन्न थनारी अने अप्रगट उपयोग रूप જીવનું વિભાવપરિણમન તે ઓઘસંજ્ઞા કહેવાય છે વેલા વગેરેનું મંડપ ઉપર ચઢવું વગેરેથી તેનું જ્ઞાન થાય છે

(૧૧) સુખસંજ્ઞા—

સંસારી જીવોને સાતાવેદનીયના ઉદયથી સવ ઇન્દ્રિયોમાં અનુકૂલતાનું ભાન કરાવનારી આત્માની એક વિશિષ્ટ પરિણતિને સુખસંજ્ઞા કહે છે.

(७) मायासंज्ञा—

(७) मायामोहनीयोदयात् कपटलक्षणा प्रवृत्तिर्जीवस्य विभावपरिणतिर्मायासंज्ञा। परवञ्चनेच्छया व्यामोहोत्पादकमनोवाकायव्यापारेण सा विज्ञायते।

(८) लोभसंज्ञा—

(८) लोभमोहनीयोदयेन सचित्तादिवस्तुगृद्धिरूपा जीवस्य विभाव परिणतिर्लोभसंज्ञा। आरम्भपरिग्रहादिप्रवृत्त्या लोभसज्ञा विज्ञायते।

(९) लोकसज्ञा—

(९) ज्ञानावरणीयक्षयोपशमेन मोहनीयकर्मोदयेन च कुबुद्धिजनिततर्क

---

(७) मायासंज्ञा—

मायामीहनीय के उदय से जीव को कपटरूप विभावपरिणति मायासज्ञा कहलाती है। दूसरे को ठगने की इच्छा से मोहजनक मन, वचन और काय के व्यापार से उस की प्रतीति होती है।

(८) लोभसज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से सचित्त आदि वस्तुओं में आसक्तिरूप जीवकी विभावपरिणति लोभसज्ञा कहलाती है। आरम्भ परिग्रह आदि की प्रवृत्ति से लोभसज्ञा का पता चलता है।

(९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से और मोहनीय कर्म के उदय से कुबुद्धिजनित

---

(७) માયાસંજ્ઞા—

માયામોહનીય કર્મના ઉદયથી જીવની કપટરૂપ વિભાવપરિણુતિ માયા-સંજ્ઞા કહેવાય છે બીજાને ઠગવાની ઇચ્છાથી, મોહજનક મન, વચન અને કાયાના વ્યાપારથી તેની પ્રતીતિ થાય છે

(૮) લોભસંજ્ઞા—

લોભમોહનીય કર્મના ઉદયથી સચિત્ત આદિ વસ્તુઓમા આસકિતરૂપ જીવની વિભાવપરિણુતિ તે લોભસંજ્ઞા કહેવાય છે આરંભ-પરિગ્રહ આદિની પ્રવૃત્તિથી લોભ સંજ્ઞાનો પતો લાગે છે.

(૯) લોકસંજ્ઞા—

જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી અને મોહનીયકર્મના ઉદયથી કુબુદ્ધિજનિત

विचिकित्सासंज्ञा । यथा दानादिधर्मस्य फलं प्रति संशयः । सा द्विधा–देशतः, सर्वतश्च । 'द्वाविंशतिपरिषहसहनब्रह्मचर्यकेशलुञ्चनादिक्लेशसहनस्य फलं भविष्यति न वे'–तिरूपा देशतः । 'परलोकोऽपि सत्यं न वे'–तिरूपा, सर्वज्ञप्ररूपितजीवादितत्त्वं यथार्थं न वे'–त्यादिरूपा वा सर्वतः ।

(१५) शोकसंज्ञा—

(१५) मोहनीयकर्मोदयादिष्टवियोगजनिता विलाप–वैमनस्यरूपा आत्मनः परिणतिः शोकसंज्ञा । सा आक्रन्दनादिना ज्ञायते ।

(१६) धर्मसंज्ञा—

(१६) मोहनीयक्षयोपशमेन सर्वविरति–देशविरतिलक्षणा कर्मक्षपणक–

संज्ञा कहलाती है। जैसे–दान धर्म आदि के फल में संदेह होना। यह संज्ञा दो प्रकार की है–देश से और सर्व से। 'बाईस परीषहों के सहने का, ब्रह्मचर्य पालने का, केशलोच आदि क्लेश सहने का फल मिलेगा या नहीं' इस प्रकार का संशय होना देशतः विचिकित्सासंज्ञा है। 'वास्तव में परलोक है या नहीं सर्वज्ञ के द्वारा प्ररूपित जीव आदि तत्त्व यथार्थ हैं या नहीं' इस प्रकार का संशय सर्वतः विचिकित्सासंज्ञा है।

(१५) शोकसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से इष्टवियोग से उत्पन्न होनेवाली विलाप और विमनस्कतारूप आत्मा की परिणति शोकसंज्ञा कहलाती है।

(१६) धर्मसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से कर्मक्षपणक सर्वविरति तथा देशविरति

વિચિકિત્સા સંજ્ઞા કહેવાય છે જેમકે–દાન ધર્મ આદિના ફલમાં સંદેહ થવો. આ સંજ્ઞા બે પ્રકારની હોય છે–(૧) દેશથી (૨) સર્વથી બાવીસ પરિષહોનું સહન કરવું તે, બ્રહ્મચર્ય પાલન કરવું તે, કેશનું લોચન કરવું વગેરે ક્લેશ સહન કરવાનું ફલ મળશે કે નહિ? આ પ્રકારનો સંશય તે દેશથકી વિચિકિત્સાસંજ્ઞા છે. વાસ્તવમાં પરલોક છે કે નહિ સર્વજ્ઞદ્વારા પ્રરૂપિત જીવ આદિ તત્ત્વો યથાર્થ છે કે નહિ આ પ્રકારનો સંશય તે સર્વથકી વિચિકિત્સાસંજ્ઞા છે

(૧૫) શોકસંજ્ઞા—

મોહનીય કર્મના ઉદયને લીધે, ઇષ્ટવિયોગથી ઉત્પન્ન થવા વાળી વિલાપ અને વિમનસ્કતા (વ્યાકુલ ચિત્ત) રૂપ આત્માની પરિણતિ શોકસંજ્ઞા કહેવાય છે.

(૧૬) ધર્મસંજ્ઞા—

મોહનીયકર્મના ક્ષયોપશમથી કર્મક્ષપણક સર્વવિરતિ તથા દેશવિરતિરૂપ

(१२) दुःखसंज्ञा—

(१२) संसारिणामसातवेदनीयोदयात् सकलेन्द्रियाणा प्रतिकूलतया ज्ञायमाना विविधतापानुभवरूपा जीवस्य परिणतिर्दुःखसंज्ञा ।

(१३) मोहसज्ञा—

(१३) मोहनीयकर्मोदयाद् मिथ्यादर्शनरूपा ज्ञानादिगुणरोधकसकलपापस्थानहेतुरात्मनो विभावपरिणतिर्मोहसज्ञा । कुदेवकुगुरुकुधर्मादौ प्रवृत्त्या मोहसंज्ञा विज्ञायते ।

(१४) विचिकित्सासज्ञा—

(१४) मोहनीयोदयाद् ज्ञानावरणीयोदयाच्च सशयरूपा जीवस्य परिणति-

---

(१२) दुःखसज्ञा—

ससारी जीवों को असातावेदनीय के उदय से सब इन्द्रियों के प्रतिकूल प्रतीत होने वाली, विविध प्रकार के सतापों का अनुभवरूप जीव की परिणति दु खसज्ञा कहलाती है ।

(१३) मोहसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यादर्शनरूप, तथा ज्ञानादि गुणों का निषेध करने वाली, समस्त पापस्थानकों का कारणरूप आत्मा की विभावपरिणति मोहसज्ञा है । कुदेव कुगुरु और कुधर्म आदि में प्रवृत्ति होने से मोहसज्ञा का ज्ञान होता है ।

(१४) विचिकित्सासंज्ञा—

मोहनीय और ज्ञानावरण कर्म के उदय से सशयरूप आत्मा का परिणमन विचिकित्सा-

---

(૧૨) દુ ખસ જ્ઞા—

સ સારી જીવોને અસાતાવેદનીયના ઉદયથી સર્વ ઇન્દ્રિયોમા પ્રતિકૂળતાનુ જ્ઞાન કરાવવા વાળી, વિવિધ પ્રકારના સ તાપોના અનુભવરૂપ જીવની પરિણતિ તે દુ ખસ જ્ઞા કહેવાય છે

(૧૩) મોહસ જ્ઞા—

મોહનીય કર્મના ઉદયથી મિથ્યાદર્શનરૂપ, તથા જ્ઞાનાદિ ગુણોનો નિરોધ કરવાવાળી, સમસ્ત પાપસ્થાનના કારણરૂપ આત્માની વિભાવપરિણતિ તે મોહસંજ્ઞા છે કુદેવ, કુગુરુ અને કુધર્મ આદિમા પ્રવૃત્તિ હોવાના કારણે મોહસ જ્ઞાનુ જ્ઞાન થાય છે

(૧૪) વિચિકિત્સાસ જ્ઞા—

મોહનીય અને જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ઉદયથી સ શયરૂપ આત્માનુ પરિણમન તે

(२) श्रुतज्ञानम्–

श्रुतम्=श्रुतिः श्रवणं ज्ञानविशेषः । तच्च कीदृशम्? उच्यते–शब्दस्य श्रवणेन, भाषणादिना वा यज्ज्ञानमुत्पद्यते तदेव श्रुतम् ।

अत्र श्रुतशब्देन ज्ञानं गृह्यते, ज्ञानप्रभेदप्रकरणान्तःपातित्वात् । न तु श्रूयते इति व्युत्पत्त्या शब्दार्थकः श्रुतशब्दः । लब्धिरूपे मतिज्ञाने सति पश्चात्–श्रुतज्ञान-मुत्पद्यते, न तु मतिज्ञानाभावे, अतो मतिज्ञानं कारणं श्रुतज्ञानस्य ।

ननु मतिज्ञानमेव श्रुतज्ञानं सम्पद्यते यथा–मृत्तिकैव घटः, तन्तुरेव पटः

---

(२) श्रुतज्ञान—

श्रुति या श्रवण (सुनना), यह एक प्रकार का ज्ञान कहलाता है। शब्द के श्रवण से या भाषण आदि से वाच्य–वाचकभाव सम्बन्ध के अनुसार जो पदार्थ का ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।

यहाँ श्रुत शब्द से ज्ञान का ग्रहण किया जाता है, क्यों कि वह ज्ञान के प्रभेदों के अन्तर्गत है, किन्तु 'श्रूयते' इस व्युत्पत्ति से शब्दार्थक श्रुत–शब्द नहीं है। लब्धिरूप मतिज्ञान के होने पर बादमें श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, मतिज्ञान के अभाव में नहीं होता, अत एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान का कारण है।

शङ्का—मतिज्ञान ही श्रुतज्ञानरूप में परिणत हो जाता है जैसे मिट्टी घटरूप में पलट जाती है, और तन्तु पट (वस्त्र) रूप में बदल जाते हैं ऐसी स्थिति में भगवान्ने श्रुतज्ञान का पृथक् ग्रहण किस प्रयोजन से किया है?

---

(२) શ્રુતજ્ઞાન—

શ્રુતિ અથવા શ્રવણ-સાંભળવારૂપ એક પ્રકારનું જ્ઞાન તે શ્રુત-જ્ઞાન કહેવાય છે શ્રુત-જ્ઞાન કેવું હોય છે? શબ્દના સાંભળવાથી અથવા ભાષણ આદિથી, વાચ્ય-વાચક ભાવ સંબંધ પ્રમાણે જે પદાર્થનું જ્ઞાન થાય છે તેને શ્રુતજ્ઞાન કહે છે.

અહિં શ્રુત-શબ્દથી જ્ઞાન ગ્રહણ કરી શકાય છે કેમકે તે જ્ઞાનના પ્રભેદોની અંદર છે પરંતુ શ્રૂયતે આ વ્યુત્પત્તિથી શબ્દાર્થક શ્રુત-શબ્દ નથી. લબ્ધિરૂપ મતિજ્ઞાન થયા પછી શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે મતિજ્ઞાનના અભાવમાં થતું નથી તે કારણથી મતિજ્ઞાન તે શ્રુતજ્ઞાનનું કારણ છે

શંકા—મતિજ્ઞાન જ શ્રુતજ્ઞાનરૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે જેમકે માટી ઘટ રૂપમાં ફરી જાય છે. અને તન્તુ વસ્ત્રરૂપમાં બદલાઈ જાય છે. એવી સ્થિતિમાં ભગવાને શ્રુતજ્ઞાનનું જુદું ગ્રહણ શા પ્રયોજનથી કર્યું?

सर्वविरतिदेशविरतिरूपाऽऽत्मनः स्वभावपरिणतिः धर्मसंज्ञा। सा जीवरक्षणादि-व्यापारेण ज्ञायते।

ज्ञानसंज्ञाभेदाः—

ज्ञानसंज्ञा तु मतिश्रुतादिभेदात् पञ्चधा—(१) मतिज्ञानं, (२) श्रुतज्ञानं, (३) अवधिज्ञानं, (४) मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञानं, चेति।

(१) मतिज्ञानम्—

मननं मतिरवबोधः। मतिश्चासौ ज्ञानं च मतिज्ञानम्। अत्र ज्ञानशब्दः सामान्यज्ञानवाचकः। इन्द्रिय-नोइन्द्रिजयन्यं ज्ञान मतिर्ज्ञानविशेषः, अतः सामान्य-विशेषयोर्ज्ञानयोः सामानाधिकरण्यम्।

रूप आत्मा की स्वभावपरिणति को धर्मसज्ञा कहते हैं। जीवरक्षा आदि व्यापारों से उसका ज्ञान होता है।

ज्ञानसंज्ञा के भेद

मति, श्रुत आदिके भेद से ज्ञानसज्ञा पाच प्रकार की है। वह इस प्रकार—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मन पर्ययज्ञान, और (५) केवलज्ञान।

(१) मतिज्ञान

मनन करना मति है, अर्थात् बोध। मतिरूप ज्ञान मतिज्ञान कहलाता है। यहाँ ज्ञान शब्द सामान्य ज्ञान का वाचक है। 'इन्द्रिय और मनसे होनेवाला ज्ञान मति है'। ऐसा अर्थ करने से सामान्य और विशेष ज्ञानों में समानाधिकरणता हो जाती है।

આત્માની સ્વભાવપરિણતિને ધર્મસંજ્ઞા કહે છે જીવરક્ષા આદિ વ્યાપારોથી તેનુ જ્ઞાન થાય છે

જ્ઞાનસંજ્ઞાના ભેદ—

મતિ, શ્રુત આદિ ભેદ વડે-કરી જ્ઞાનસંજ્ઞા પાચ પ્રકારની કહી છે તે આ પ્રમાણે છે-(૧) મતિજ્ઞાન, (૨) શ્રુતજ્ઞાન, (૩) અવધિજ્ઞાન, (૪) મન પર્યયજ્ઞાન, અને (૫) કેવલજ્ઞાન

(૧) મતિજ્ઞાન—

મનન કરવુ તે મતિ છે અર્થાત્ બોધ છે, મતિરૂપ જ્ઞાન તે મતિજ્ઞાન કહેવાય છે અહિ જ્ઞાન શબ્દ સામાન્ય જ્ઞાનનો વાચક છે 'ઇન્દ્રિય અને મનથી ઉત્પન્ન જ્ઞાન તે મતિ છે' એવો અર્થ કરવાથી સામાન્ય અને વિશેષ જ્ઞાનોમા સમાનાધિકરણતા (સમાનપણુ) થઈ જાય છે

तस्मिन् पक्षे-श्रुतस्याप्तवचनस्य ज्ञानं श्रुतज्ञानमिति षष्ठीतत्पुरुषः। आप्तो=रागादि-रहितः सर्वज्ञस्तस्य वचनम्-आप्तवचनम्। तदर्थाध्यवसायरूपं ज्ञानं श्रुतज्ञानमिति। अध्यवसायो निर्णयः। श्रुतज्ञाने मति शब्दस्य निमित्तकारणतया शब्देऽपि श्रुतव्यपदेशो भवति। ज्ञानभेदव्यवस्थायां तु श्रुतशब्दः अवणार्थवाचीत्यवधेयम्।

(३) अवधिज्ञानम्-

अवशब्दोऽधःशब्दार्थे, अव=अधः विस्तृतं वस्तु धीयते-ज्ञायतेऽने-नेत्यवधिः। अवधिश्चासौ तज्ज्ञानं चेति विग्रहः। विस्तृतविषयकं ज्ञानमवधि-

---

वचन का भी ग्रहण होता है। उस पक्ष में श्रुत का अर्थात् आप्तवचन का ज्ञान श्रुतज्ञान है, ऐसा षष्ठीतत्पुरुष समास होगा। आप्त अर्थात् रागादिसे रहित सर्वज्ञ, उनका वचन आप्तवचन कहलाता है। अध्यवसाय अर्थात् निश्चय। ऐसा अध्यवसायरूप अर्थात् पदार्थ का निश्चयात्मक ज्ञान श्रुतज्ञान होता है। शब्द, श्रुतज्ञान में निमित्त कारण है, इस लिये शब्द भी श्रुत कहलाता है किन्तु ज्ञान-भेदकी व्यवस्था में श्रुत-शब्द श्रवण अर्थ का वाचक है।

(३) अवधिज्ञान—

'अव' का अर्थ है 'अध' अर्थात् नीचे। तात्पर्य यह है कि जो ज्ञान अधोदिशा की वस्तु को विस्तार से जानता है वह अवधिज्ञान कहलाता है। अवधिरूप ज्ञान अवधिज्ञान है, अर्थात् विस्तृतविषयक ज्ञान। जैसे-अनुत्तरोपपातिक देव अवधिज्ञान

આપ્તવચનનું ગ્રહણ પણ થાય છે તે પક્ષમાં શ્રુતનું અર્થાત્ આપ્તવચનનું જ્ઞાન તે શ્રુતજ્ઞાન છે એ પ્રમાણે ષષ્ઠીતત્પુરુષ સમાસ થશે. આપ્ત અર્થાત્ રાગાદિથી રહિત, સર્વજ્ઞ, તેનું વચન તે આપ્તવચન કહેવાય છે અધ્યવસાય અર્થાત્ નિશ્ચય, એવા અધ્યવસાયરૂપ અર્થાત્ પદાર્થનું નિશ્ચયાત્મક જ્ઞાન તે શ્રુતજ્ઞાન કહેવાય છે શબ્દ, શ્રુતજ્ઞાનમાં કારણ છે એટલા માટે શબ્દ પણ શ્રુત કહેવાય છે પરન્તુ જ્ઞાન-ભેદની વ્યવસ્થામાં શ્રુત-શબ્દ સાંભળવું એ અર્થનો વાચક છે

(૩) અવધિજ્ઞાન—

'અવ'નો અર્થ છે 'અધ' અર્થાત્ નીચે, તાત્પર્ય એ છે કે-જે જ્ઞાન અધો દિશાની વસ્તુઓને વિસ્તારથી જાણે છે તે અવધિજ્ઞાન કહેવાય છે. અવધિરૂપ જ્ઞાન અવધિજ્ઞાન છે અર્થાત્ વિસ્તૃતવિષયક જ્ઞાન. જેમકે-અનુત્તરોપપાતિક દેવ અવધિ

तर्हि श्रुतज्ञानस्य पृथगुपादानं भगवता किमर्थं कृतम् ? उच्यते—दृष्टान्तद्वयमिदं विषमम्, यथा घटप्रादुर्भावे पिण्डाकारा मृत्तिका प्रणश्यति, पटोत्पत्तौ सत्यां तन्तुपुञ्जश्च, तथा श्रुतज्ञाने समुपन्ने मतिज्ञानं न प्रणश्यति, उक्तञ्च भगवता—

'जत्थ मई तत्थ सुयं, जत्थ सुय तत्थ मई' (नन्दी)

छाया—यत्र मतिस्तत्र श्रुतं, यत्र श्रुतं तत्र मतिः।

श्रुतस्य सद्भावे मतेर्विद्यमानता भगवताऽभिहिता, तस्मादपेक्षाकारणमेव मतिज्ञानं श्रुतज्ञानस्येति मन्तव्यम्, तथा च-मतिज्ञानपूर्वकमिन्द्रियमनोजन्यमाप्तवचनानुसारि ज्ञान श्रुतज्ञानमिति निष्कर्षः। इति।

'श्रूयते यत् तच्छ्रुत'-मितिव्युत्पत्त्या श्रुतशब्देनाप्तवचनमपि गृह्यते

समाधान-ये दोनों दृष्टान्त विषम हैं, जैसे-घट प्रकट होने पर पिण्डाकार मिट्टी मिट जाती है, और जैसे पटकी उत्पत्ति होने पर तन्तुओं का पुञ्ज नष्ट हो जाता है, उस प्रकार श्रुतज्ञान उत्पन्न होने पर मतिज्ञान नष्ट नहीं होता। भगवानने कहा है—

"जहाँ मतिज्ञान है वहाँ श्रुतज्ञान है, जहाँ श्रुतज्ञान है वहाँ मतिज्ञान है।" श्रुतज्ञान के सद्भाव में मतिज्ञान का अस्तित्व भगवानने बतलाया है, अत एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान का अपेक्षाकारण ही है, ऐसा मानना चाहिए। तात्पर्य यह निकलता है कि-मतिज्ञानपूर्वक इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होने वाला, तथा आप्तवाक्यका अनुसरण करने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान है।

'जो सुनाजाय वह श्रुत है' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'श्रुत' शब्द से आप्त

સમાધાન-એ બંને દૃષ્ટાંત વિષમ છે, જેમકે ઘટ પ્રગટ થતા પિંડાકાર માટી મટી જાય છે, જેમ વસ્ત્રની ઉત્પત્તિ થતાં તંતુઓનો જથ્થો નાશ પામે છે, તે પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતા મતિજ્ઞાન નાશ પામતુ નથી ભગવાને કહ્યુ છે કે—

"જ્યા મતિજ્ઞાન છે ત્યાં શ્રુતજ્ઞાન છે, જ્યા શ્રુતજ્ઞાન છે ત્યાં મતિજ્ઞાન છે" શ્રુતજ્ઞાનના સદ્ભાવમા મતિજ્ઞાનનુ અસ્તિત્વ ભગવાને બતાવ્યુ છે એ કારણથી મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાનનુ અપેક્ષાકારણુ જ છે એમ માનવુ જોઇએ, તો તાત્પર્ય એ નીકળ્યુ કે મતિજ્ઞાનપૂર્વક, ઇન્દ્રિય અને મનથી ઉત્પન્ન થવાવાળુ, તથા આપ્તવાકયનુ અનુસરણુ કરવાવાળુ જ્ઞાન તે શ્રુતજ્ઞાન છે

'જે સાભળવામા આવી શકે તે શ્રુત છે' આ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે 'શ્રુત' શબ્દથી

(४) मनःपर्ययज्ञानम्-

पर्ययनं-सर्वतः परिच्छेदनम्-अवबोधनं पर्ययः। मनसः पर्ययो मनःपर्ययः, मनोविषयकः, स चासौ ज्ञानं च मनःपर्ययज्ञानम्। यद्वा मनःपर्ययस्य ज्ञानं मनःपर्ययज्ञानम्।

मनो द्विविधं द्रव्यभावभेदात्। तत्र द्रव्यमनो मनोवर्गणाः। संज्ञिना मनोवर्गणा गृहीताः सत्यो मन्यमानाश्चिन्त्यमाना भावमनोऽभिधीयते।

तत्रेह भावमनः परिगृह्यते। भावमनसः पर्ययाश्च परेषां सार्धद्वितीयद्वीपाभ्यन्तरवर्तिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां चिन्त्यमानविषयाध्यवसायरूपाः। यथा-अन्यः

(४) मनःपर्ययज्ञान—

पर्यय अर्थात् जानना मन को सर्वथा जानना मनःपर्ययज्ञान है, अर्थात् मनोविषयक, सम्पूर्ण ज्ञान मनःपर्ययज्ञान कहलाता है। अथवा-मनःपर्यय (मनके पर्याय) का ज्ञान मनःपर्ययज्ञान कहलाता है।

मन दो प्रकार का है—द्रव्य-मन और भाव-मन। मनोवर्गणाओं को द्रव्यमन कहते हैं। संज्ञी जीव द्वारा ग्रहण की हुई मनोवर्गणाएँ जब चिन्तन की जाती हैं वे भावमन कहलाती हैं।

मनःपर्यय ज्ञान के प्रकरण में भावमन ही लिया जाता है। अढाई द्वीप के अन्तर्गत संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के द्वारा चिन्तन किये जाने वाले विषयाध्यवसायरूप पर्यायों को मनःपर्यय ज्ञान जानता है। जैसे-कोई दूसरा जीव ऐसा विचार करे-आत्मा कैसा

(४) મનઃપર્યય જ્ઞાન—

પર્યય અર્થાત્ જાણવું, મનને જાણવું તે મનઃપર્યય જ્ઞાન છે. અર્થાત્-મન વિષયકનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન મનઃપર્યય કહેવાય છે. અથવા મન પર્યયનું જ્ઞાન તે મનઃપર્યયજ્ઞાન કહેવાય છે.

મન બે પ્રકારના છે-(૧) દ્રવ્યમન અને (૨) ભાવમન. મનોવર્ગણાઓને દ્રવ્ય મન કહે છે અને સંજ્ઞી જીવ દ્વારા ગ્રહણ કરાએલી મનોવર્ગણાઓનું જ્યારે ચિંતન કરવામાં આવે છે તેને ભાવમન કહે છે.

મનઃપર્યય જ્ઞાનના પ્રકરણમાં ભાવમન જ લેવામાં આવે છે. અઢી દ્વીપના સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવો દ્વારા ચિન્તન કરવામાં આવતા વિષયાધ્યવસાયરૂપ પર્યાયોને મનઃપર્યય જ્ઞાન જાણે છે. જેમ કે-કોઈ બીજો જીવ એવો વિચાર કરે-આત્મા કેવો

ज्ञानम्। यथा–अनुत्तरोपपातिका देवा अवधिज्ञानबलेन भगवन्तमापृच्छ्य जीवादितत्त्वस्वरूपं निर्धारयन्ति।

यद्वा–'अवधिना ज्ञानम्' इति तृतीयासमासः। अवधिर्मर्यादा-'रूपिद्रव्याण्येव विषयीकरोति नेतराणी'–तिव्यवस्थारूपा, तथा चायमर्थः–अरूपिद्रव्यपरिहारेण रूपिद्रव्यमात्रविषयकं ज्ञानमवधिज्ञानमिति।

यद्वा–अधोऽधोऽधिकं पश्यति येन तदवधिज्ञानम्। तच्च चतुर्गतिवर्तिनां जीवानामिन्द्रियमनोनिरपेक्षं प्रतिविशिष्टक्षयोपशमनिमित्तकं रूपिद्रव्यसाक्षात्कारजनकं भवति। एतस्य ज्ञानस्य देव–मनुष्य–तिर्यङ्–नारका अधिकारिणः।

के बल से भगवान् से प्रश्न पूछ कर जीवादितत्त्वों का स्वरूप निश्चित कर लेते हैं।

अथवा–अवधि के साथ जो ज्ञान हो वह अवधिज्ञान कहलाता है। अवधिका अर्थ है मर्यादा। अवधिज्ञान, रूपी द्रव्यों को ही जानता है, अरूपी को नहीं, वह व्यवस्था ही यहाँ मर्यादा समझनी चाहिए। तात्पर्य यह हुआ कि–अरूपी द्रव्यों को छोडकर केवल रूपी द्रव्यों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है।

अथवा–जिस ज्ञान के द्वारा नीचे नीचे अधिक जाना जाय वह अवधिज्ञान है। यह ज्ञान चारों गतियों के जीवों को हो सकता है। यह, सिर्फ रूपी पदार्थों को साक्षात् जानता है, और विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नारकी, सभी इस ज्ञान के अधिकारी हैं, अर्थात् यह चारों को हो सकता है।

જ્ઞાનના બળથી ભગવાનને પ્રશ્ન પૂછીને જીવાદિ તત્ત્વોનો નિશ્ચય કરી લે છે અથવા–અવધિની સાથે જે જ્ઞાન થાય છે તે અવધિજ્ઞાન કહેવાય છે અવધિનો અર્થ છે મર્યાદા અવધિજ્ઞાન, રૂપી દ્રવ્યોને જ જાણે છે, અરૂપી દ્રવ્યોને જાણતુ નથી, આ વ્યવસ્થા જ અહિં મર્યાદા સમજવી જોઇએ તાત્પર્ય એ થયુ કે અરૂપી-દ્રવ્યોને છોડીને કેવળ રૂપી દ્રવ્યોને જાણવાવાળુ જ્ઞાન તે અવધિજ્ઞાન કહેવાય છે. અથવા જે જ્ઞાન દ્વારા નીચે–નીચે વિશેષ જાણવામા આવે, તે અવધિજ્ઞાન છે તે જ્ઞાન ચાર ગતિઓના જીવોને થઇ શકે છે, માત્ર રૂપી પદાર્થોને સાક્ષાત્ જાણે છે, અને વિશિષ્ટ ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થાય છે, દેવ, મનુષ્ય, તિર્યંચ અને નારકી, આ સર્વ તે જ્ઞાનના અધિકારી છે, અર્થાત્ એ ચારેયને અવધિજ્ઞાન થઈ શકે છે

तथा मनःपर्ययज्ञानी कस्यचित् मानसम् मनः सर्वतोभावेन प्रत्यक्षीकृत्यानुमानेन बाह्य विषयमवबुध्यते–'इदं वस्त्वनेन चिन्त्यते' इति । बाह्यपदार्थचिन्तनसमये हि बाह्यपदार्थाकारसदृशाकारं मनो भवति ।

इदं मनःपर्ययज्ञानं रूपिविषयत्व-क्षायोपशमिकत्व-प्रत्यक्षत्वादिसाम्येऽप्यवधिज्ञानाद् भिन्नं, स्वाम्यादिभेदात् । तथाहि–अवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृष्टेरपि भवति, तद् द्रव्यतोऽशेषरूपिद्रव्यविषयं, क्षेत्रतो लोकविषयम्, कालतोऽतीतानागताऽसंख्यातोत्सर्पिण्यवसर्पिणीविषयम्, भावतः सकलरूपिद्रव्येषु प्रतिद्रव्यमसंख्यातपर्यायविषयम् ।

मनःपर्ययज्ञानं तु प्रमादरहितस्याऽऽमर्षौषध्यादिलब्धिधारिणः संयतस्य भवति । द्रव्यतः–संज्ञिपञ्चेन्द्रियमनोद्रव्यविषयं क्षेत्रतः–समयक्षेत्रमात्रविषयम्

मनःपर्ययज्ञान अवधिज्ञान की तरह रूपी पदार्थों को विषय करता है, क्षयोपशम से उत्पन्न होता है किन्तु अवधिज्ञान से भिन्न है क्यों कि स्वामी आदि के भेद से दोनों में भेद है, वह इस प्रकार—अवधिज्ञान अविरतसम्यग्दृष्टि को भी होता है, वह द्रव्यतः समस्त रूपी द्रव्यों को जानता है, क्षेत्र से समस्त लोक को जानता है, काल से असंख्यात भूत और भावी उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी को विषय करता है, भाव से समस्त रूपी द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य की असंख्यात पर्यायों को जानता है ।

मनःपर्ययज्ञान अप्रमत्त संयत को तथा आमर्ष आदि किसी लब्धि के धारक को ही होता है । वह द्रव्य से संज्ञी पञ्चेन्द्रिय के मनोद्रव्य को, क्षेत्र से समयक्षेत्रमात्र को

મનઃપર્યયજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન પ્રમાણે રૂપી પદાર્થોને વિષય કરે છે–જાણે છે મનઃપર્યયજ્ઞાન ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થાય છે પરંતુ અવધિજ્ઞાનથી તે ભિન્ન છે કેમકે સ્વામી આદિના ભેદથી તે બન્નેમાં ભેદ છે. તે આ પ્રમાણે–અવધિજ્ઞાન અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિને પણ થાય છે તે દ્રવ્યથી સર્વ રૂપી દ્રવ્યોને જાણે છે ક્ષેત્રથી સમસ્ત લોકને જાણે છે, કાલથી અસંખ્યાત ભૂત અને ભાવી ઉત્સર્પિણી અવસર્પિણીને જાણી શકે છે ભાવથી સમસ્ત રૂપી દ્રવ્યોમાંથી પ્રત્યેક દ્રવ્યની અસંખ્યાત પર્યાયોને જાણે છે.

મનઃપર્યયજ્ઞાન અપ્રમત્ત સંયતને (મુનિને) તથા આમર્ષ આદિ કોઈ લબ્ધિના ધારકને જ થાય છે તે દ્રવ્યથી સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિયના મનોદ્રવ્યને, ક્ષેત્રથી સમયક્ષેત્ર

कश्चिदेव चिन्तयेत्-'आत्मा कीदृशः ? अरूपी, चेतनास्वभावः, कर्मणां कर्ता, तत्फलभोक्ता चेत्यादयो ये ज्ञानविशेषरूपास्तस्यात्मनः परिणामास्तेषां यद् ज्ञानं तन्मनःपर्ययज्ञानम् ।

मनःपर्ययज्ञानी च मनःपर्ययानेव प्रत्यक्षीकरोति न तु बाह्यं वस्तु । न च-'मनःपर्ययज्ञानिना बाह्यं वस्तु न ज्ञायते' इति वाच्यम्, अनुमानतस्तस्य बाह्यवस्तु-ज्ञानसद्भावात् । यथा-विशिष्टक्षायोपशमिकप्रतिभाशाली प्रेक्षावान् प्रशान्तः कस्यचिदाकारेङ्गितादिकं विलोक्य तदीयमनोगतं भावं सामर्थ्यं चानुमानतो विजानाति ।

है ? अरूपी, चेतनास्वरूप, कर्मों का कर्ता, कर्मफलभोक्ता, इत्यादि आत्मा के जो ज्ञान-विशेषरूप परिणाम है, उन्हें जानना मनःपर्ययज्ञान है । मनःपर्ययज्ञानी जीव, मन के पर्यायों को ही प्रत्यक्ष करता है, बाह्य वस्तु को नहीं । परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि-मनःपर्ययज्ञानी बाह्य वस्तुओं को जानता ही नहीं है । मनःपर्ययज्ञानी को अनुमान से बाह्य पदार्थों का ज्ञान होता है । जैसे-विशिष्टक्षयोपशम-जन्य प्रतिभा वाला बुद्धिमान् पुरुष किसी के इशारे या चेष्टा को देखकर उसके मनका भाव और उसका सामर्थ्य अनुमान से जान लेता है, इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी दूसरे के भावरूप मन को पूर्णतया प्रत्यक्ष करके अनुमान से बाह्य वस्तु को जान लेता है कि-'इसने अमुक वस्तु का विचार किया है' । बाह्य पदार्थों का विचार करते समय उसी पदार्थ के आकार का मन हो जाता है ।

છે ? અરૂપી, ચેતના-સ્વરૂપ, કર્મોનો કર્તા, કર્મફલભોક્તા, ઇત્યાદિ આત્માના જ્ઞાન વિશેષરૂપ જે પરિણામ છે, તેને જાણવા તે મનઃપર્યય જ્ઞાન છે

મનઃપર્યય જ્ઞાની જીવ મનના પર્યાયોને જ પ્રત્યક્ષ કરે છે બહારની વસ્તુઓને નહિ પરંતુ એમ કહેવું ઠીક નથી કે-મનઃપર્યયજ્ઞાની બહારની વસ્તુઓને જાણતા જ નથી, મનઃપર્યયજ્ઞાનીઓને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓનું જ્ઞાન હોય છે જેમકે — વિશિષ્ટક્ષયોપશમજન્ય પ્રતિભાવાળા બુદ્ધિમાન પુરૂષ કોઈના ઇશારાથી અથવા ચેષ્ટાને જોઈને તેના મનનો ભાવ અને તેનું સામર્થ્ય અનુમાનથી જાણી લે છે, એ પ્રમાણે મનઃપર્યયજ્ઞાની બીજાના ભાવરૂપ મનને પૂર્ણ રૂપમાં પ્રત્યક્ષ કરીને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓને જાણી લે છે કે —"તેણે અમુક વસ્તુનો વિચાર કર્યો છે" બહારના પદાર્થોનો વિચાર કરવાના સમયે તેજ પદાર્થના આકારરૂપ મન થઈ જાય છે.

मतिज्ञानं चानेकविधम् , ईहादिभेदात् । उक्तञ्च भगवता—

"ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा ।

सन्ना सई मई पन्ना, सव्वं आभिणिबोहियं" ॥ (नन्दी मतिज्ञानगाथा २७)

छाया-ईहा, अपोह' विमर्शः मार्गणा च गवेषणा ।

संज्ञा स्मृतिः मतिः प्रज्ञा सर्वम् आभिनिबोधिकम् ॥

'आभिणिबोहिय' इत्यनेन त्रिकालविषयकं मतिज्ञानमुच्यते तथा चोक्तं भगवता-"पचविहं णाणं पण्णत्तं । तंजहा-(१) आभिणिबोहियणाणं, (२) सुयणाणं, (३) ओहिणाणं (४) मणपज्जवणाणं (५) केवलणाणं । इति (नन्दी, १)

(१) ईहा—

ईहा-पोहादयो मतिज्ञानप्रभेदाः । तत्र-ईहनम्-ईहा । नाममात्यादि

यहाँ मतिज्ञान का ही प्रसङ्ग है । मतिज्ञान, ईहा आदि के भेद से अनेक प्रकार का है । भगवान्ने कहा है —

'ईहा अपोह, विमर्श, मार्गणा संज्ञा, स्मृति मति और प्रज्ञा, यह सब आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) है" (नन्दीसूत्र मतिज्ञान गाथा २७)

आभिनिबोधिक ज्ञान का अर्थ है-त्रिकालविषयक मतिज्ञान । भगवान्ने कहा है- 'ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार-(१) आभिनिबोधिकज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान (४) मनःपर्ययज्ञान और (५) केवलज्ञान" (नन्दी-सू १)

(१) ईहा-

ईहा अपोह आदि मतिज्ञान के भेद हैं । नाम और जाति आदि की विशेष

મતિજ્ઞાનનો જ પ્રસંગ છે મતિજ્ઞાન ઈહા આદિ ભેદોથી અનેક પ્રકારનું છે ભગવાને કહ્યું છે કે -ઈહા, અપોહ, વિમર્શ માર્ગણા, ગવેષણા સંજ્ઞા સ્મૃતિ, મતિ, અને પ્રજ્ઞા એ સવ આભિનિબોધિક જ્ઞાન-મતિજ્ઞાન છે (નન્દીસૂત્ર મતિજ્ઞાનગાથા ૨૭) આભિનિબોધિક જ્ઞાનનો અર્થ છે-ત્રિકાલવિષયક મતિજ્ઞાન, ભગવાને કહ્યું છે કે - 'જ્ઞાન પાંચ પ્રકારનું છે, તે આ પ્રમાણે (૧) આભિનિબોધિકજ્ઞાન (૨) શ્રુતજ્ઞાન, (૩) અવધિજ્ઞાન (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાન અને કેવલજ્ઞાન (નન્દી સૂ ૧)

(૧) ઈહા—

ઈહા તથા અપોહ વગેરે મતિજ્ઞાનના ભેદ છે. નામ અને જાતિ આદિની વિશેષ

कालतोऽतीतानागतपल्योपमासंख्यातभागविषयम्, भावतो मनोद्रव्यगतानन्तपर्यायविषयकम्।

(५) केवलज्ञानम् —

केवलम्-एकमसहायं ज्ञानावरणीयकर्मात्यन्तक्षयसमुद्भूतम्-अतीतानागतवर्तमानयथावस्थितसकलद्रव्यगुणपर्ययविषयकमप्रतिपाति ज्ञान केवलज्ञानम्। अत्र ग्रन्थविस्तरभिया विरमामः।

ज्ञानप्रसङ्गेन मत्यादिभेदपञ्चकं प्रदर्शितं, प्रकृते तु मतिज्ञानस्यैवाधिकारः।

(अढाई द्वीप को), काल से पल्योपम के असख्यातवें भाग—भूत—भविष्यत् कालको और भाव से मनोद्रव्य की अनन्त पर्यायों को विषय करता है।

(५) केवलज्ञान—

केवलज्ञान, केवल अर्थात् एक ही है। उस के साथ दूसरा ज्ञान नहीं होता। वह असहाय है अर्थात् इन्द्रिय मन आदि किसी की सहायता की उसे अपेक्षा नहीं है। वह ज्ञानावरण कर्म के आत्यन्तिक क्षय से उत्पन्न होता है। अतीत, अनागत, वर्तमान काल के समस्त द्रव्यों गुणों और पर्यायों को यथार्थरूप में जानता है, अप्रतिपाती है, अर्थात् एकवार उत्पन्न हो कर कभी नष्ट नहीं होता। ऐसा ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है। ग्रन्थविस्तार के भय से अधिक विस्तार नहीं करते।

ज्ञान का प्रकरण होने से मतिज्ञान आदि पाच भेद बतलाये जा चुके हैं।

માત્રને (અઢી દ્વીપને) કાલથી પલ્યોપમના અસખ્યાતમા ભાગે ભૂત-ભવિષ્ય કાલને અને ભાવથી મનોદ્રવ્યની અનત પર્યાયોને જાણે છે

(૫) કેવલજ્ઞાન—

કેવલજ્ઞાન, કેવલ અર્થાત્ એકજ છે તેની સાથે બીજુ જ્ઞાન થતુ નથી, તે અસહાય છે, અર્થાત્ ઇન્દ્રિય, મન આદિ કોઈની પણ સહાયતાની તેને અપેક્ષા નથી. અને તે કેવલજ્ઞાન જ્ઞાનાવરણીય કર્મના આત્યતિક ક્ષયથી ઉત્પન્ન થાય છે કેવલજ્ઞાન ભૂતકાલ, ભવિષ્યકાલ અને વર્તમાન કાલના સમસ્ત દ્રવ્યો, ગુણો અને પર્યાયોને યથાર્થરૂપથી જાણે છે તે અપ્રતિપાતી છે, અર્થાત્ એક વાર ઉત્પન્ન થઈને ફરી કોઈ પણ વખત નાશ પામતુ નથી, એવુ જે જ્ઞાન તે કેવલજ્ઞાન કહેવાય છે ગ્રથવિસ્તારના ભયથી અધિક વિસ્તાર અહિ કરતા નથી

જ્ઞાનનુ પ્રકરણ હોવાથી મતિજ્ઞાન આદિ પાચ ભેદો બતાવ્યા છે અહિ

सामान्यज्ञानोत्तरं काले विशेषनिश्चयार्थे विचारणायां प्रवृत्तायां तदनु गुणदोषविचारणाजनितो निश्चयः, यथा-'किमयं कमलनालस्पर्शः, आहोस्वित् भुजङ्गमस्पर्शः ?' इति विचारणायां 'मृणालस्यैवायं स्पर्शः, अत्यन्तशीतादिगुणवत्त्वा-दित्यस्यैवाय'-मिति निश्चयोऽन्यं भुजङ्गमस्पर्शमपनुदति, तस्मादयं निश्चयोऽपोहोऽ-पनोदश्चापि निगद्यते ।

(३) मीमांसा—

मीमांसा-मातुमिच्छा, मातुं-जीवादिस्वरूपं ज्ञातुमिच्छा ।

(४) मार्गणा—

जीवादिपदार्थस्य यथावस्थितस्वरूपान्वेषणं मार्गणा ।

सामान्य ज्ञान के पश्चात् विशेष का निश्चय करने के लिए विचारणा प्रवृत्त होने पर पश्चात् गुण-दोष की विचारणा से उत्पन्न निश्चय अपोह कहलाता है। यथा-'यह कमलनाल का स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ?' इस प्रकार की विचारणा होने पर 'यह कमलनाल का ही स्पर्श है, क्यों कि इस में अत्यन्त शीतलता है" इस प्रकार का निश्चय होना और यह निश्चय अन्य का अर्थात् सर्प के स्पर्श का निराकरण करदेता है, अत एव यह निश्चय अपोह अपाय और अपनोद भी कहलाता है।

(३) विमर्श-

जीव आदि के स्वरूप को जानने की इच्छा विमर्श है।

(४) मार्गणा-

जीव आदि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का अन्वेषण करना मार्गणा है।

સામાન્ય જ્ઞાન થયા પછી વિશેષનો નિશ્ચય કરવા માટે વિચારણા થતાં પછી તેના ગુણ-દોષની વિચારણાથી ઉત્પન્ન નિશ્ચય તેને અપોહ કહે છે જેમ- આ કમલના નાળનો સ્પર્શ છે કે સર્પનો સ્પર્શ છે ? આ પ્રકારની વિચારણા થયા પછી નક્કી કરવામા આવે કે આ સ્પર્શ કમલના નાળનો જ છે કેમકે તેમાં અત્યન્ત શીતલતા છે એ પ્રકારનો નિશ્ચય થાય છે અને એ નિશ્ચય બીજાનો અર્થાત્ સર્પના સ્પર્શનો નિરાકરણ કરી દે છે તેથી કરી આ નિશ્ચય તે અપોહ, અપાય અને અપનોદ પણ કહેવાય છે.

(૩) વિમર્શ—

જીવ આદિના સ્વરૂપને જાણવાની ઇચ્છા તે વિમર્શ છે

(૪) માર્ગણા—

જીવ આદિ પદાર્થોના યથાર્થ સ્વરૂપનુ અન્વેષણ કરવુ તે માર્ગણા છે

विशेषकल्पनारहितसामान्यज्ञानोत्तरं विशेषनिश्चयार्थं विचारणा-ईहा। यथा-स्पर्शनेन्द्रियेण स्पर्शसामान्ये ज्ञाते सति, तदनु कीदृशोऽयं स्पर्शः?, कस्यायं स्पर्शः ?, किमयं कमलनालस्पर्शः उताहो भुजङ्गमस्पर्शः? इति गाढान्धकारे चक्षुष्मतोऽपि विचारणा प्रवर्तते।

(२) अपोहः—

अपोहनम्—अपोहः निश्चयः। कोऽयमपोह ? उच्यते—मतिज्ञानस्यावग्रहादि-भेदचतुष्टये तृतीयभेदो योऽपायः स एवात्रापोहशब्देनोच्यते। अवग्रहादिभेद-चतुष्टयं च नन्दीसूत्रे भगवतैव प्रदर्शितमस्ति।

कल्पना से रहित सामान्यज्ञान के पश्चात् होने वाली विचारणा ईहा कहलाती है। जैसे—स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा स्पर्शका सामान्य ज्ञान होने के पश्चात् गाढ अन्धकार होने पर चक्षुवाले को भी यह विचारणा होती है कि यह स्पर्श कैसा है? किसका यह स्पर्श है? यह कमल के नाल का स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है?, इस प्रकार की विचारणा को ईहा कहते है।१।

(२) अपोह—

अपोह का अर्थ है—निश्चय। अपोह क्या है? कहते हैं—मतिज्ञान के अवग्रह आदि चार भेदों मे तीसरा भेद जो अपाय है उसी को यहाँ 'अपोह' शब्द द्वारा कहा है। अवग्रह आदि चार भेद नन्दीसूत्र में भगवान्‌ने कहे है।

કલ્પનાથી રહિત, સામાન્ય જ્ઞાનની પછી થવા વાળી વિચારણાને ઇહા કહે છે, જેમકે-સ્પર્શનેન્દ્રિયના દ્વારા સ્પર્શનું સામાન્ય જ્ઞાન થયા પછી ગાઢો અંધકાર થાય ત્યારે નેત્રવાળાને પણ એ વિચાર થાય છે કે-આ સ્પર્શ કેવો છે? આ કોણે સ્પર્શ કર્યો છે શેનો સ્પર્શ છે?, આ કમલના નાળનો સ્પર્શ છે કે સર્પનો સ્પર્શ છે?, આ પ્રકારની વિચારણા તેને ઇહા કહે છે

(૨) અપોહ—

અપોહનો અર્થ છે નિશ્ચય, અપોહ એ શું છે? કહે છે કે-મતિજ્ઞાનના અવગ્રહ આદિ ચાર ભેદો પૈકીનો ત્રીજો ભેદ જે અપાય છે, તેને અહિં 'અપોહ' શબ્દથી કહેલ છે અવગ્રહ આદિ ચાર ભેદ નન્દીસૂત્રમાં ભગવાને કહેલા છે

सामान्यज्ञानोत्तरं काले विशेषनिश्चयार्थं विचारणायां प्रवृत्तायां तदनु गुणदोषविचारणाजनितो निश्चयः, यथा-'किमयं कमलनालस्पर्शः, आहोस्विद् भुजङ्गमस्पर्शः ?' इति विचारणायां 'मृणालस्यैवायं स्पर्शः, अत्यन्तशीतादिगुणवत्त्वादिस्यस्यैवाय'-मिति निश्चयोऽन्यं भुजङ्गमस्पर्शमपनुदति, तस्मादयं निश्चयोऽपोहोऽपनोदश्चेति निगद्यते ।

(३) मीमांसा—

मीमांसा-मातुमिच्छा, मातुं-जीवादिस्वरूपं ज्ञातुमिच्छा ।

(४) मार्गणा—

जीवादिपदार्थस्य यथावस्थितस्वरूपान्वेषणं मार्गणा ।

सामान्य ज्ञान के पश्चात् विशेष का निश्चय करने के लिए विचारणा प्रवृत्त होने पर पश्चात् गुण-दोष की विचारणा से उत्पन्न निश्चय अपोह कहलाता है। यथा-'यह कमलनालका स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ?' इस प्रकार की विचारणा होने पर "यह कमलनाल का ही स्पर्श है, क्यों कि इस में अत्यन्त शीतलता है" इस प्रकार का निश्चय होना और यह निश्चय अन्य का अर्थात् सर्प के स्पर्श का निराकरण करदेता है, अत एव यह निश्चय अपोह अपाय और अपनोद भी कहलाता है।

(३) विमर्द-

जीव आदि के स्वरूप को जानने की इच्छा विमर्श है।

(४) मार्गणा-

जीव आदि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का अन्वेषण करना मार्गणा है।

સામાન્ય જ્ઞાન થયા પછી વિશેષનો નિશ્ચય કરવા માટે વિચારણા થતાં પછી તેના ગુણ-દોષની વિચારણાથી ઉત્પન્ન નિશ્ચય તેને અપોહ કહે છે જેમ- આ કમલના નાળનો સ્પર્શ છે કે સર્પનો સ્પર્શ છે ? આ પ્રકારની વિચારણા થયા પછી નક્કી કરવામાં આવે કે આ સ્પર્શ કમલના નાળનો જ છે કેમકે તેમાં અત્યન્ત શીતલતા છે એ પ્રકારનો નિશ્ચય થાય છે અને એ નિશ્ચય બીજાનો અર્થાત્ સર્પના સ્પર્શનો નિરાકરણ કરી દે છે. તેથી કરી આ નિશ્ચય તે અપોહ અપાય અને અપનોદ પણ કહેવાય છે.

(૩) વિમર્શ—

જીવ આદિના સ્વરૂપને જાણવાની ઇચ્છા તે વિમર્શ છે

(૪) માર્ગણા—

જીવ આદિ પદાર્થોના યથાર્થ સ્વરૂપનું અન્વેષણ કરવું તે માર્ગણા છે

(५) गवेषणा–

मार्गणानन्तरमनुपलभ्यस्य जीवादिपदार्थस्य सर्वतः परिभावनं–निर्णयाभिमुखविचारपरायणता गवेषणा।

(६) संज्ञा—

इन्द्रियजन्यज्ञानविषयीभूतस्यार्थस्य पुनर्दर्शनेन "स एवाय"–मिति जायमानं ज्ञान संज्ञा। यथा–"स एवायमाहारकलब्धिमान महात्मा, यो मया कानने दृष्टः"।

(७) स्मृतिः–

अनुभूतार्थविषयक ज्ञान स्मृतिः। इद ज्ञानमतीतविषयक भवति। अत्रोदाहरण यथा—

(५) गवेपणा—

मार्गणा के पश्चात् उपलब्ध न होने वाला जीवादि पदार्थों का पूर्ण तरह विचार करना अर्थात् निर्णय के अभिमुख विचारपरायणता गवेपणा है।

(६) संज्ञा–

इन्द्रियजन्य ज्ञानके विषयभूत पदार्थ का पुन दर्शन होने पर 'यह वही है' इस प्रकार से उत्पन्न होने वाला ज्ञान सज्ञा कहलाता है। जैसे–"यह वही आहारकलब्धि वाले महात्मा है जिन्हे मैंने वनमें देखा था"।

(७) स्मृति—

पहले अनुभव किये हुए पदार्थ को विषय करनेवाला ज्ञान स्मृति कहलाता है। स्मृतिज्ञान अतीतविषयक ही होता है। यहा एक उदाहरण है, जैसे—

(૫) ગવેષણા—

માર્ગણાની પછી ઉપલબ્ધ નહિ થવા વાળા જીવાદિ પદાર્થોનો પૂરી રીતે વિચાર કરવો અર્થાત્ નિર્ણયને અભિમુખ–વિચાર પરાયણતાને ગવેષણા કહે છે

(૬) સંજ્ઞા—

ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનના વિષયભૂત પદાર્થોનુ ફરી દર્શન થતા "આ તેજ છે" એ પ્રકારે ઉત્પન્ન થવા વાળુ જ્ઞાન તે સંજ્ઞા કહેવાય છે જેમ–"આ તેજ આહારક–લબ્ધિવાળા મહાત્મા છે જેને મે વનમા જોયા હતા"

(૭) સ્મૃતિ—

પ્રથમ અનુભવ કરેલા પદાર્થનો વિષય કરનારૂ જ્ઞાન સ્મૃતિ કહેવાય છે સ્મૃતિ–જ્ઞાન અતીત વિષયનુ જ, (વીતી ગયેલા પ્રસંગનુ જ) હોય છે અહીં એક ઉદાહરણ છે, જેમકે–

चेल्लना देवी हेमन्ते भगवत्समवसरणात् प्रत्यागच्छन्ती मार्गे महारण्ये स्वप्रतिज्ञाऽदिन जिनकल्पिनं कमपि मुनिं ध्यानावस्थमालोक्य भक्त्या तद्दर्शनवन्दनादिकं विधाय स्वप्रासादमागता रात्रौ सुप्ता। निद्रावस्थायां तस्याः पाणिरावरणवशात् बहिर्भूतः शीतेन शिथिलीबभूव। अथाऽसौ जागरिता जडीभूतं स्वहस्तं विलोक्य शीतादिपरिषहपरिगत महारण्यस्थ मुनिं स्मृतवती "कथमहो असौ मुनिरिदानीं बहिर्महावने शीतपरिभूतो भविष्यति"। इति कर्मणां महानिर्जरां महापर्यवसानं चकार।

चेलना देवी हेमन्त ऋतु में भगवान् के समवसरणसे लौटती हुई, मार्ग में महा-अरण्य में अपनी प्रतिज्ञा पालने वाले किन्ही जिनकल्पी मुनि को ध्यान में स्थित देखकर, भक्तिपूर्वक उन का दर्शन वन्दन आदि कर के अपने महल में आई और रात्रि में सो गई। निद्रावस्था में उस का हाथ ओढ़ने के बल से बाहर निकल गया और ठंड के कारण ठर गया। रानी की नींद खुल गई। उसने अपने हाथ को जडीभूत देख कर शीत परिषहों से आक्रान्त महा-अरण्यवासी मुनिका स्मरण किया। कहने लगी-अहो! महावन में नगर के बाहर वह मुनि इस समय शीत से कैसा कष्ट पा रहे होंगे! ऐसा सोच कर उसने कर्म की महानिर्जरा की।

ચેલના દેવી હેમન્ત ઋતુમાં ભગવાનના સમવસરણમાંથી પાછી ફરે ત્યારે માર્ગમાં મહાવનમાં પોતાની પ્રતિજ્ઞા પાળનાર, કોઈ એક જિનકલ્પી મુનિને ધ્યાનમાં સ્થિત જોઈને, ભક્તિપૂર્વક તેના દર્શન, વંદન વગેરે કરીને પોતાના મહેલમાં આવી અને રાત્રીએ સુઈ ગઈ નિદ્રાવસ્થામાં તેનો એક હાથ ઓઢવાના વસ્ત્રમાંથી બહાર રહી ગયો, અને ઠંડી હોવાના કારણે તે હાથ ઠરી ગયો, રાણીની નિદ્રા ઉડી ગઇ ત્યારે તેણે પોતાના હાથને ઠરી જવાથી જડ જેવો જોઈને શીત આદિ પરીષહોથી આક્રાન્ત, મહા-વનવાસી મુનિ યાદ આવ્યા; અને કહેવા લાગી કે-અહો! મહાવનમાં નગર બહાર તે મુનિ આ સમયમાં શીતથી કેવું કષ્ટ પામતા હશે? એવો વિચાર કરીને કર્મની મહાનિર્જરા કરી.

(५) गवेषणा-

मार्गणानन्तरमनुपलभ्यस्य जीवादिपदार्थस्य सर्वतः परिभावनं-निर्णयाभिमुखविचारपरायणता गवेषणा।

(६) संज्ञा—

इन्द्रियजन्यज्ञानविषयीभूतस्यार्थस्य पुनर्दर्शनेन "स एवाय"-मिति जायमानं ज्ञानं संज्ञा। यथा-"स एवायमाहारकलब्धिमान् महात्मा, यो मया कानने दृष्टः"।

(७) स्मृतिः-

अनुभूतार्थविषयकं ज्ञान स्मृतिः। इदं ज्ञानमतीतविषयक भवति। अत्रोदाहरणं यथा—

---

(५) गवेषणा—

मार्गणा के पश्चात् उपलब्ध न होने वाले जीवादि पदार्थों का पूरी तरह विचार करना अर्थात् निर्णय के अभिमुख विचारपरायणता गवेषणा है।

(६) संज्ञा-

इन्द्रियजन्य ज्ञानके विषयभूत पदार्थ का पुन दर्शन होने पर 'यह वही है' इस प्रकार से उत्पन्न होने वाला ज्ञान संज्ञा कहलाता है। जैसे-"यह वही आहारकलब्धि वाले महात्मा है जिन्हे मैने वनमें देखा था"।

(७) स्मृति—

पहले अनुभव किये हुए पदार्थ को विषय करनेवाला ज्ञान स्मृति कहलाता है। स्मृतिज्ञान अतीतविषयक ही होता है। यहा एक उदाहरण है, जैसे—

---

(૫) ગવેષણા—

માર્ગણાની પછી ઉપલબ્ધ નહિ થવા વાળા જીવાદિ પદાર્થોનો પૂરી રીતે વિચાર કરવો અર્થાત્ નિર્ણયને અભિમુખ-વિચાર પરાયણતાને ગવેષણા કહે છે

(૬) સંજ્ઞા—

ઈન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનના વિષયભૂત પદાર્થોનું ફરી દર્શન થતા "આ તેજ છે" એ પ્રકારે ઉત્પન્ન થવા વાળુ જ્ઞાન તે સંજ્ઞા કહેવાય છે જેમ-"આ તેજ આહારકલબ્ધિવાળા મહાત્મા છે જેને મે વનમા જોયા હતા"

(૭) સ્મૃતિ—

પ્રથમ અનુભવ કરેલા પદાર્થનો વિષય કરનારૂ જ્ઞાન સ્મૃતિ કહેવાય છે સ્મૃતિ-જ્ઞાન અતીત વિષયનુ જ, (વીતી ગયેલા પ્રસંગનુ જ) હોય છે અહી એક ઉદાહરણ છે, જેમકે-

सा संज्ञा किंस्वरूपा, या न भवत्येकेषाम्? इत्याकाङ्क्षायामाह-"तञ्जहा" इति। सा यथा—

"पुरत्थिमाओ वा दिसाओ" इत्यारभ्य-"अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि" इत्यन्तेनेदमुक्तं भवति-वर्तमानजन्मन: प्राक् कस्यां दिशि ममावस्थान मासीदिति स्वगत्यागत्यवधिविशिष्टपूर्वादिषड्दिशाज्ञानं नास्ति संज्ञिनामपि कियतांचित्। यथा-मदिरामदघूर्णितनयनो मूर्छित: पथि पतित: स्वजनादिना समुत्थाप्य गृहमानीयते। अथ मूर्छापगमेऽप्यसौ न जानाति-क्वाऽहं पतितः?, कथमुत्थापितः?, केन कया रीत्याऽत्र समानीतोऽस्मी?-ति। तद्वद् विशिष्टसंज्ञाया

वह संज्ञा किस प्रकारकी है जो किन्हीं २ जीवों को नहीं होती?। इस प्रकार की जिज्ञासा होने पर कहा गया है-तंजहा-अर्थात् वह इस प्रकार-

'पुरत्थिमाओवा वा दिसाओ' से लेकर 'अहोदिसाओवा आगओ अहमंसि' तक का आशय यह है कि-इस वर्तमान जन्म से पहले मैं कहाँ रहता था? इस प्रकारका अपनी गति-आगति से युक्त छह दिशाओं का ज्ञान कितनेक संज्ञी जीवोंको भी नहीं होता। जैसे-मदिरा के मद से छका हुआ मूर्छित और रास्ते में पड़ा हुआ पुरुष स्वजन आदि के द्वारा उठाकर घर लाया जाता है, किन्तु मूर्छा हट जाने पर भी उसे ज्ञान नहीं होता कि-मैं कहाँ गिरा था?, किस प्रकार उठाया गया? कौन किस प्रकार मुझे यहाँ लाया? इसी प्रकार विशिष्ट संज्ञा के अभाव के कारण जीव

તે સંજ્ઞા કેવા પ્રકારની છે, જે કોઈ-કોઈ જીવોને નથી હોતી? આ પ્રમાણે જીજ્ઞાસા થવાથી કહ્યું છે કે-'તંજહા' અર્થાત્ તે આ પ્રકારે—

"પુરત્થિમાઓવા દિસાઓ" થી લઇને "અહોદિસાઓ વા આગઓ અહમંસિ" સુધીનો આશય એ છે કે-આ વર્તમાન જન્મ પહેલાં હું ક્યાં રહેતો હતો, આ પ્રકારનું પોતાની ગતિ-આગતિથી યુક્ત છ દિશાઓનું જ્ઞાન કેટલાક સંજ્ઞી જીવોને પણ નથી થતું. જેમ મદિરાના કેફથી છકેલા મૂર્છિત-બેભાન રસ્તામાં પડેલા પુરુષને સ્વજનદ્વારા ઉઠાવીને પોતાના ઘેર લાવવામાં આવે છે. પરંતુ મૂર્છા ઉતરી જવા પછી પણ તેને જ્ઞાન થતું નથી કે-હું ક્યાં પડી ગયો હતો? કેવી રીતે મને ઉઠાવ્યો? કોણ કેવી રીતે મને અહિં લાવ્યા? આ પ્રકારની વિશિષ્ટ સંજ્ઞાના

(८) मतिः—

वर्तमानविषयकं ज्ञान मतिः । यथा–'मुनिः संयमार्थं भिक्षामटति'।

(९) प्रज्ञा–

विशिष्टक्षयोपशमजन्यं प्रभूतपदार्थवर्ति यथावस्थितस्वरूपनिर्णयात्मकं ज्ञान प्रज्ञा ।

आभिनिबोधिकस्वरूपस्य मतिज्ञानस्य प्रभेदा उक्ताः ।

"इहैकेषां नो संज्ञा भवती"–त्यत्र संज्ञाशब्देन मतिज्ञानान्तर्गतं स्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं भगवता नोशब्दनिर्देशेन प्रतिषेधितम्, न तु सर्वविधसंज्ञारूपं सामान्यं ज्ञानम् ।

---

(८) मति—

वर्तमानविषयक ज्ञान मति कहलाता है। जैसे–'मुनि संयम पालने के अर्थ भिक्षाके लिए भ्रमण करता है।'

(९) प्रज्ञा—

विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला और प्रभूत पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का निर्णयात्मक ज्ञान प्रज्ञा है।

आभिनिबोधिकरूप मतिज्ञान के प्रभेद कहे गये।

'कितनेक जीवोंको संज्ञा नहीं होती' यहाँ संज्ञा शब्द से मतिज्ञान के अन्तर्गत स्मृतिरूप विशिष्ट ज्ञान का भगवान्‌ने 'नो' शब्द का निर्देश करके निषेध किया है, किन्तु सब प्रकार की संज्ञारूप सामान्य ज्ञानका निषेध नहीं किया है।

---

(८) મતિ—

વર્ત્તમાન વિષયનું જ્ઞાન તે મતિ કહેવાય છે, જેમ 'મુનિ સંયમ પાલન માટે ભિક્ષા લેવા ભ્રમણ કરે છે'

(૯) પ્રજ્ઞા—

વિશિષ્ટ ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થનારૂ પ્રભૂત પદાર્થોના યથાર્થ સ્વરૂપનું નિર્ણયાત્મક જ્ઞાન તે પ્રજ્ઞા છે

આભિનિબોધિકરૂપ મતિજ્ઞાનના પ્રભેદ કહેવાયા

'કેટલાક જીવોને સંજ્ઞા નથી થતી' અહિં સંજ્ઞા-શબ્દથી મતિજ્ઞાનના અંતર્ગત સ્મૃતિરૂપ વિશિષ્ટ જ્ઞાનનો ભગવાને 'નો' શબ્દનો નિર્દેશ કરીને નિષેધ કર્યો છે પરંતુ સર્વ પ્રકારની સંજ્ઞારૂપ સામાન્ય જ્ઞાનનો નિષેધ કર્યો નથી

पूर्वा, दक्षिणा, पश्चिमा, उत्तरा चेति चतस्रो दिशः, ऐशानी आग्नेयी, नैर्ऋती, वायवी चेति चतस्रो विदिशः, आसामष्टानामन्तराला अष्टान्तरदिशः, मिलित्वा षोडश। अथोर्ध्वम्, अधश्चेति द्वे इति, तयोर्योगेऽष्टादश। द्रव्यदिगेव प्रज्ञापकदिक्शब्देनाप्युच्यते।

तथा-संमूर्छिममनुष्याः, गर्भजकर्मभूमिमनुष्याः, गर्भजाकर्मभूमिमनुष्याः, षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपमनुष्याः, इति चतुर्विधा मनुष्याः, द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदेन चतुर्विधास्तिर्यञ्चः,

पृथिव्यप्तेजोवायुकायभेदाच्चतुर्विधाः स्थावराः। अग्रबीज-मूलबीज-पर्वबीज-स्कन्धबीज-भेदाच्चतुर्विधा वनस्पतयः। इति मिलित्वा षोडश। नरकगति-

---

पश्चिम, दक्षिण और उत्तर चार दिशाएँ हैं। ईशान आग्नेय नैर्ऋत्य वायव्य ये चार विदिशाएँ हैं। इन आठों के बीच में आठ अवान्तर दिशाएँ हैं। ये सब मिलकर सोलह होती है। इन में ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा शामिल कर देने से अठारह द्रव्य-दिशाएँ होती हैं। द्रव्यदिशाको ही प्रज्ञापकदिशा भी कहते हैं।

तथा—सम्मूर्च्छिम मनुष्य गर्भज-कर्मभूमिज मनुष्य गर्भज-अकर्मभूमिज मनुष्य, छप्पन अन्तरद्वीपों के मनुष्य ये चार प्रकार के मनुष्य। द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भेद से चार प्रकार के तिर्यञ्च। पृथ्वीकाय अप्काय तेजस्काय और वायुकाय के भेद से चार प्रकार के स्थावर और अग्रबीज मूलबीज पर्वबीज तथा

દક્ષિણ અને ઉત્તર આ ચાર દિશાઓ છે અગ્નિ ઇશાન નૈઋત્ય અને વાયવ્ય, આ ચાર વિદિશાઓ છે આ આઠની વચ્ચમાં આઠ અવાન્તર દિશાઓ છે આ સબ મળીને સોળ દિશાઓ થાય છે તેમ ઉર્ધ્વદિશા અને અધોદિશા શામિલ કરવાથી અઢાર દ્રવ્ય દિશાઓ થાય છે દ્રવ્યદિશાને પ્રજ્ઞાપકદિશા પણ કહે છે તથા—સમ્મૂર્ચ્છિમ મનુષ્ય ગર્ભજ કર્મભૂમિજ મનુષ્ય, ગર્ભજ—અકર્મભૂમિજ મનુષ્ય છપ્પન અન્તરદ્વીપોના મનુષ્ય, આ ચાર પ્રકારના મનુષ્ય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિયના ભેદથી ચાર પ્રકારના તિર્યંચ પૃથ્વીકાય, અપ્કાય તેજસ્કાય અને વાયુકાયના ભેદથી ચાર પ્રકારના સ્થાવર અને અગ્રબીજ મૂળબીજ પર્વબીજ

अभावाज्जीवः पूर्वभवं न जानाति ।

"अण्णयरीओ वा दिसाओ" इति । यावत्यो दिशः सन्ति तत्र कस्याश्चिदेकस्या दिशः समागतोऽस्मीति स्वागमनावधिदिशं सामान्यरूपेणापि न जानन्ति कतिचन सञ्ज्ञिनः, सर्वदिग्ज्ञानाभावेनान्यतरदिग्ज्ञानासम्भवादिति भावः ।

"अणुदिसाओ वा" इति । ईशानादयः कोणरूपा विदिशोऽनुदिशः । तासां मध्ये कस्याश्चिदेकस्या अनुदिशः समागतोऽस्मीति सामान्यरूपेण, तथैशान्या आग्नेय्या इत्यादि विशेषरूपेण च स्वागत्यवधिभूताया अनुदिशो ज्ञानं न भवतीत्यभिप्रायः ।

अथ दिशः कति सन्ति ? उच्यते-संक्षेपतो द्रव्य-भाव-भेदेन दिशा द्विविधा।

अपना पूर्व भव नहीं जानता ।

'अण्णयरीओ वा दिसाओ' अर्थात् जितनी दिशाए है, उनमें किसी भी एक दिशा से मै आया हूँ, इस प्रकार अपने आगमन की दिशा को सामान्यरूप से भी कितनेक सज्ञी नहीं जानते है । क्यों कि सभी दिशाओं के ज्ञानके अभाव मे किसी एक दिशा का ज्ञान होना असम्भव ही है । 'अणुदिशाओ वा' ईशान वगैरह कोणरूप विदिशाओं को अनुदिशा कहते हैं । उनमें से सामान्यरूप से किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, या विशेषरूप से ईशान, आग्नेय आदि विदिशा से मैं आया हूँ, ऐसा ज्ञान नहीं होता ।

प्रश्न-दिशाएँ कितनी है ?

उत्तर-सक्षेप से दिशा के दो भेद हैं-द्रव्य-दिशा, और भाव-दिशा । पूर्व,

---

અભાવથી જીવ પોતાના પૂર્વભવને જાણતો નથી

'अण्णयरीओ वा दिसाओ' અર્થાત્ જેટલી દિશાઓ છે, તેમાથી કોઈ પણ એક દિશાથી હુ આવ્યો છુ આ પ્રમાણે પોતાના આગમનની દિશાને સામાન્ય રૂપથી પણ કેટલાક સંજ્ઞી જાણતા નથી કેમકે સર્વ દિશાઓના જ્ઞાનના અભાવથી કોઇ એક દિશાનું જ્ઞાન થવુ તે અસભવ છે 'अणुदिसाओ वा' ઈશાન વગેરે કોણ રૂપ વિદિશાઓને અનુદિશા કહે છે તેમાથી સામાન્યરૂપે કોઈ પણ એક દિશાથી હુ આવ્યો છુ, અથવા વિશેષરૂપથી ઈશાન આગ્નેય આદિ વિદિશાઓથી હું આવ્યો છુ એવુ જ્ઞાન થતુ નથી

પ્રશ્ન—દિશાઓ કેટલી છે ?

ઉત્તર—સક્ષેપથી દિશાના બે ભેદ છે—દ્રવ્યદિશા અને ભાવદિશા પૂર્વ, પશ્ચિમ,

पूर्वा, दक्षिणा, पश्चिमा उत्तरा चेति चतस्रो दिशः, ऐशानी आग्नेयी, नैर्ऋती, वायवी चेति चतस्रो विदिशः, आसामष्टानामन्तराला अष्टावन्तरदिशः, मिलित्वा षोडश। अयोर्ध्वम्, अधश्चेति द्वे इति, तयोर्योगेऽष्टादश। द्रव्यदिगेव प्रज्ञापकदिक्शब्देनाप्युच्यते।

तथा-संमूर्छिममनुष्या, गर्भजकर्मभूमिमनुष्याः, गर्भजाकर्मभूमिमनुष्याः, षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपमनुष्या, इति चतुर्विधा मनुष्याः, द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदेन चतुर्विधास्तिर्यञ्चः,

पृथिव्यप्तेजोवायुकायभेदाच्चतुर्विधाः स्थावराः। अग्रबीज-मूलबीज पर्वबीज-स्कन्धबीज-भेदाच्चतुर्विधा वनस्पतयः। इति मिलित्वा षोडश। नरकगति

पश्चिम, दक्षिण और उत्तर चार दिशाएँ है। ईशान आग्नेय नैर्ऋत्य, वायव्य ये चार विदिशाएँ है। इन आठों के बीच में आठ अवान्तर दिशाएँ है। ये सब मिलकर सोलह होती हैं। इन में ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा शामिल कर देने से अठारह द्रव्य-दिशाएँ होती है। द्रव्यदिशाको ही प्रज्ञापकदिशा भी कहते हैं।

तथा—सम्मूर्छिम मनुष्य गर्भज-कर्मभूमिज मनुष्य, गर्भज-अकर्मभूमिज मनुष्य, छप्पन अन्तरद्वीपों के मनुष्य ये चार प्रकार के मनुष्य। द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भेद से चार प्रकार के तिर्यंच। पृथ्वीकाय अप्काय तेजस्काय और वायुकाय के भेद से चार प्रकार के स्थावर और अग्रबीज मूलबीज, पर्वबीज तथा

દક્ષિણ અને ઉત્તર આ ચાર દિશાઓ છે અગ્નિ ઇશાન નૈર્ઋત્ય અને વાયવ્ય આ ચાર વિદિશાઓ છે આ આઠની વચ્ચમાં આઠ અવાન્તર દિશાઓ છે આ સવ મળીને સોળ દિશાઓ થાય છે તેમ ઉર્ધ્વદિશા અને અધોદિશા શામિલ કરવાથી અઢાર દ્રવ્ય દિશાઓ થાય છે દ્રવ્યદિશાને પ્રજ્ઞાપકદિશા પણ કહે છે તથા—સંમૂર્છિમ મનુષ્ય, ગર્ભજ કર્મભૂમિજ મનુષ્ય, ગર્ભજ-અકર્મભૂમિજ મનુષ્ય, છપ્પન અન્તરદ્વીપના મનુષ્ય આ ચાર પ્રકારના મનુષ્ય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિયના ભેદથી ચાર પ્રકારના તિર્યંચ, પૃથ્વીકાય, અપ્કાય તેજસ્કાય અને વાયુકાયના ભેદથી ચાર પ્રકારના. સ્થાવર, અને અગ્રબીજ, મૂલબીજ, પર્વબીજ

अभावाज्जीवः पूर्वभवं न जानाति ।

"अण्णयरीओ वा दिसाओ" इति । यावत्यो दिशः सन्ति तत्र कस्याश्चिदेकस्या दिशः समागतोऽस्मीति स्वागमनावधिदिशं सामान्यरूपेणापि न जानन्ति कतिचन सञ्ज्ञिनः, सर्वदिग्ज्ञानाभावेनान्यतरदिग्ज्ञानासंभवादिति भावः ।

"अणुदिसाओ वा" इति । ईशानादयः कोणरूपा विदिशोऽनुदिशः । तासां मध्ये कस्याश्चिदेकस्या अनुदिशः समागतोऽस्मीति सामान्यरूपेण, तथैशान्या आग्नेय्या इत्यादि विशेषरूपेण च स्वागत्यवधिभूताया अनुदिशो ज्ञानं न भवतीत्यभिप्रायः ।

अथ दिशः कति सन्ति ? उच्यते-संक्षेपतो द्रव्य-भाव-भेदेन दिशा द्विविधा।

अपना पूर्व भव नहीं जानता ।

'अण्णयरीओ वा दिसाओ' अर्थात् जितनी दिशाए है, उनमें किसी भी एक दिशा से मै आया हूँ, इस प्रकार अपने आगमन की दिशा को सामान्यरूप से भी कितनेक सञ्ज्ञी नहीं जानते हैं । क्यों कि सभी दिशाओं के ज्ञानके अभाव मे किसी एक दिशा का ज्ञान होना असम्भव ही है । 'अणुदिशाओ वा' ईशान वगैरह कोणरूप विदिशाओं को अनुदिशा कहते हैं । उनमें से सामान्यरूप से किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, या विशेषरूप से ईशान, आग्नेय आदि विदिशा से मैं आया हूँ, ऐसा ज्ञान नहीं होता ।

प्रश्न-दिशाएँ कितनी हैं ?

उत्तर-सक्षेप से दिशा के दो भेद हैं-द्रव्य-दिशा, और भाव-दिशा । पूर्व,

---

અભાવથી જીવ પોતાના પૂર્વભવને જાણતો નથી

'अण्णयरीओ वा दिसाओ' અર્થાત્ જેટલી દિશાઓ છે, તેમાથી કોઈ પણ એક દિશાથી હુ આવ્યો છુ આ પ્રમાણે પોતાના આગમનની દિશાને સામાન્ય રૂપથી પણ કેટલાક સંજ્ઞી જાણતા નથી કેમકે સર્વ દિશાઓના જ્ઞાનના અભાવથી કોઈ એક દિશાનુ જ્ઞાન થવુ તે અસભવ છે 'अणुदिसाओ वा' ઈશાન વગેરે કોણ રૂપ વિદિશાઓને અનુદિશા કહે છે તેમાથી સામાન્યરૂપે કોઈ પણ એક દિશાથી હુ આવ્યો છુ, અથવા વિશેષરૂપથી ઈશાન આગ્નેય આદિ વિદિશાઓથી હું આવ્યો છુ એવુ જ્ઞાન થતુ નથી

પ્રશ્ન—દિશાઓ કેટલી છે ?

ઉત્તર—સક્ષેપથી દિશાના બે ભેદ છે.—દ્રવ્યદિશા અને ભાવદિશા પૂર્વ, પશ્ચિમ,

द्रव्यदिग्विषयकं ज्ञानं न भवत्येकेषामिति विवक्षया-"इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ" इत्युक्तं भगवता। भावदिग्विषयकं च ज्ञानं न भवत्येकेषामिति वक्ष्यतेऽनन्तरसूत्रे एव-"एवमेगेसिं णो णायं भवइ" इत्यादिना। ॥ सू० २॥

भावदिग्विषयकं च ज्ञानं भवति संज्ञिनां कियतांचिदित्याह-'एवमेगेसिं' इत्यादि।

मूलम्।

एवमेगेसिं णो णायं भवइ-अत्थि मे आया ओववाइए, नत्थि मे आया ओववाइए, के अहं आसी, के वा इओ चुए इह पेच्चा भविस्सामि॥ सू० ३॥

(छाया)

एवमेकेषां नो ज्ञातं भवति-अस्ति मे आत्मा औपपातिकः, नास्ति मे आत्मा औपपातिकः, कोऽहमासम्, को वा इतश्च्युत इह प्रेत्य भविष्यामि?॥ सू० ३॥

कितनेक जीवों को द्रव्यदिशासम्बन्धी ज्ञान नहीं होता, इस अपेक्षा से भगवानने कहा है कि-'इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ'। भावदिशाविषयक ज्ञान कितनेको नहीं होता है, यह बात 'एवमेगेसिं णो णायं भवइ' इत्यादि आगे के सूत्र में कही जायगी॥ सू० २॥

कितनेक भव्य जीवोंको भावदिशाविषयक ज्ञान नहीं होता यह कहते हैं-'एवमेगेसिं' इत्यादि।

मूलार्थ-किन्ही जीवोंको यह ज्ञान नहीं होता कि-मेरा आत्मा उत्पत्तिशील है या मेरा आत्मा उत्पत्तिशील नहीं है। मैं पहले कौन था और यहाँ से मरकर परलोक में कौन होऊँगा?॥ सू० ३॥

કેટલાક જીવોને દ્રવ્યદિશાસંબંધી જ્ઞાન નથી હતું એ અપેક્ષાથી ભગવાને કહ્યું છે કે-'इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ' ભાવદિશા વિષયનું જ્ઞાન કેટલાક જીવોને નથી. એ વાત 'एवमेगेसिं णो णायं भवइ' ઇત્યાદિ આગળના સૂત્રમાં કહીશું ॥ સૂ० २॥

કેટલાક સંજ્ઞી જીવોને ભાવદિશાવિષયનું જ્ઞાન નથી તે કહે છે-'एवमेगेसिं' ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—કોઇ કોઇ જીવોને એ જ્ઞાન નથી કે મારો આત્મા ઉત્પત્તિશીલ છે મારો આત્મા ઉત્પત્તિશીલ નથી, હું પ્રથમ કોણ હતો અને અહિંથી મૃત્યુબાદ પરભવમાં હું કોણ થઈશ? (હું ક્યાં જઈશ?) (સૂ. ૩)

देवगतिश्चेति द्वे। सर्वयोगेऽष्टादश भावदिशः सन्ति।

अथ दिशां विदिशा च प्रवृत्तिः कुतः स्थानाद्भवति? उच्यते—

तिर्यग्लोकस्य मध्यभागे रत्नप्रभा भूमि, तदुपरि मध्यभागे मेरु-पर्वताभ्यन्तरे द्वौ लघुतरौ प्रतरौ स्तः। तदुपरि गोस्तनाकाराश्चत्वारश्चत्वारः प्रदेशाः सन्ति। ईदृशाष्टप्रदेशी चतुष्कोणो रुचकनामा भागोऽस्ति। तत एव दिशां विदिशां च प्रवृत्तिर्भवति। उक्तञ्च—

" तिर्यग्लोकस्य मध्ये यो, रुचकोऽष्टप्रदेशकः।
दिशामनुदिशा चैव, प्रवृत्तिर्जायते ततः " ॥१॥

स्कन्धबीज के भेद से चार प्रकार की वनस्पति, ये सब मिलकर सोलह होते हैं। तथा नरकगति और देवगनि मिलकर अठारह प्रकार की भाव-दिशाएँ है।

प्रश्न—दिशाओं और विदिशाओंकी प्रवृत्ति किस स्थान से होती है?

उत्तर—तिर्यगलोक के मध्यभाग में रत्नप्रभा भूमि है। उसके उपर मध्यभाग में मेरु पर्वत के अन्दर दो छोटे प्रतर हैं। उनके उपर गाय के स्तन के आकारवाले चार चार प्रदेश हैं। ऐसा अष्टप्रदेशी चौकोना रुचक नामक भाग है। वहां से दिशाओं और विदिगाओ की प्रवृत्ति होती है। कहा भी है—

" तिर्छे लोक के मध्य में आठ प्रदेशवाला रुचक भाग है। उसी से सब दिशाओं और अनुदिशाओं की प्रवृत्ति होती है ॥ १ ॥ "

તથા સ્કંધબીજના ભેદથી ચાર પ્રકારની વનસ્પતિ, આ સર્વ મળીને સોળ થાય છે, તથા નરકગતિ અને દેવગતિ મળીને અઢાર પ્રકારની ભાવ-દિશાઓ છે

પ્રશ્ન—દિશાઓ અને વિદિશાઓની પ્રવૃત્તિ કયા સ્થાનથી હોય છે?

ઉત્તર-તિર્યગ્લોકના મધ્ય ભાગમા રત્નપ્રભા ભૂમિ છે, તેના ઉપર મધ્ય ભાગમા મેરૂ પર્વતની અંદર નાના બે પ્રતર છે, તેના ઉપર ગાયના સ્તનના આકાર વાળા ચાર-ચાર પ્રદેશ છે એવો આઠપ્રદેશી ચાર ખુણાવાળો રૂચક નામનો ભાગ છે, તેનાથી દિશાઓ અને વિદિશાઓની પ્રવૃત્તિ થાય છે કહ્યું પણ છે—

"તિર્છા લોકના મધ્યમા આઠ પ્રદેશવાળો રૂચક ભાગ છે, ત્યાથી સર્વ દિશાઓ અને અનુદિશાઓની પ્રવૃત્તિ થાય છે." ॥ ૧ ॥

"दोण्हं उववाए पण्णत्ते तंजहा-देवाणं चेव णेरइयाणं चेव" इति। (स्थानाङ्ग० २ स्था० ३ उ०)

द्वयोरुपपातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-देवानां चैव नैरयिकाणां चैव। इति च्छाया।

उपपातादागत औपपातिकः। देवभवाद् नरकभवाद्वा ममायमात्मा समागतोऽस्तीत्यर्थः। नास्ति मे आत्मा औपपातिक इति, अत्र-नञर्थस्यौपपातिकेऽन्वयः। ममात्मा-अनौपपातिकोऽस्तीत्यर्थः। सम्मूर्छनभवाद् गर्भभवाद् वा ममात्मा समागतोऽस्तीति भावः। इममर्थं स्पष्टीकर्तुमाह-'कोऽहमासम्?' इति।

अत्र प्रसङ्गवशात् जन्मतद्भेदाश्च निरूप्यन्ते—

दो प्रकार के जीवों के उपपातजन्म कहा गया है। वह इस प्रकार-देवोंके और नारकों के।" (स्था० २ उ ३)

उपपात से उत्पन्न होनेवाला औपपातिक कहलाता है। तात्पर्य यह हुआ कि-मेरा आत्मा देवभव या नरकभव से आया है' इस प्रकार का ज्ञान नहीं होता।

'णत्थि मे आया उववाइए' यहां निषेध का औपपातिक के साथ अन्वय है अर्थात् मेरा आत्मा औपपातिक नहीं है, ऐसा अर्थ समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि-मेरा आत्मा गर्भभव से या सम्मूर्छनभव से आया है। इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कहा गया है-मैं कौन था।

प्रसङ्ग पाकर यहाँ जन्म और जन्म के भेदों का निरूपण करते हैं—

બે પ્રકારના જીવોને ઉપપાત જન્મ કહેલો છે તે આ પ્રમાણે-(૧) દેવોને અને (૨) નારકીઓને. (સ્થા ૨ ઉ ૩)

ઉપપાતથી ઉત્પન્ન થવા વાળા તે ઔપપાતિક કહેવાય છે તાત્પર્ય એ થયું કે -મારો આત્મા દેવભવ અથવા નરકભવથી આવ્યો છે? આ પ્રકારનું જ્ઞાન થતું નથી.

"णत्थि मे आया उववाइए" અહિં નિષેધનો ઔપપાતિકની સાથે અન્વય છે અર્થાત્-મારો આત્મા ઔપપાતિક નથી. એવો અર્થ સમજવો જોઈએ. તાત્પર્ય એ છે કે-મારો આત્મા ગર્ભભવથી અથવા સમ્મૂર્છનભવથી આવ્યો છે? આ અર્થની સ્પષ્ટતા કરવાને માટે કહેલ છે કે-"હું કોણ હતો?"

પ્રસંગ પ્રાપ્ત થવાથી અહિં જન્મ અને જન્મના ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે—

टीका।

'एवमेगेसिं' इति, एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण एकेषां संज्ञिनां कियतांचित् ज्ञातं-ज्ञानम् आत्मनि विषये वर्तमानातीतानागतजन्मविषयकं नो भवति=नो समुत्पद्यते।

किंस्वरूपं ज्ञानं नोत्पद्यते तेषाम्? इति दर्शयति-अस्ति मे आत्मा औपपातिक इत्यादि। औपपातिक इति। उपपतनम्-उपपातः, प्रादुर्भावः= चतुर्गतिषु जन्मतो जन्मान्तरे संक्रमणम्। उपपाते भवः-औपपातिकः। मे मम आत्मा-औपपातिको जन्मान्तरसंक्रान्तोऽस्तीति। तथा-नास्ति मे आत्मा औपपातिक इति, ममात्मा वर्तमानजन्मनि कर्मक्षयसंभवाद् भाविजन्मान्तरसम्बन्धरहितोऽस्तीति। इदं ज्ञानद्वय वर्तमानजन्मविषयकम्।

यद्वा - उपपातः - गर्भसंमूर्छनलक्षणजन्मद्वयविलक्षणो जन्मविशेषः। स च देवनारकाणां भवति। उक्तञ्च—

टीकार्थ—आगे कहे अनुसार कितनेक सञ्ज्ञी जीवोंको अपने विषय में वर्तमान अतीत और अनागत जन्म सम्बन्धी ज्ञान नहीं होता। उन्हे किस प्रकार का ज्ञान नहीं होता? इस विषय में कहा गया कि-मेरा आत्मा औपपातिक है या नहीं? अर्थात् चार गतियों में, एक जन्म, से दूसरे जन्म में गमन करता है या वर्तमान जन्म में कर्मों का क्षय होने से भावी जन्म के सम्बन्ध से रहित है?, ये दोनों ज्ञान वर्तमान जन्मसम्बन्धी है।

अथवा-उपपातका अर्थ है-गर्भजन्म और समूर्छनजन्म से विलक्षण एक तीसरे प्रकार का जन्म। वह देवों और नारकों का होता है। कहा भी है—

ટીકાર્થ—આગળ કહેવા પ્રમાણે કેટલાક સંજ્ઞી જીવોને પોતાના વિષયમા વર્તમાન, ભૂતકાલ, અને ભવિષ્યકાલના જન્મ સબંધી જ્ઞાન હોતુ નથી તેને કયા પ્રકારનુ જ્ઞાન નથી હોતુ તે વિષયમા કહે છે કે-મારો આત્મા ઓપપાતિક છે કે નહિ? અર્થાત્ ચાર ગતિઓમા એક જન્મથી બીજા જન્મમા ગમન કરે છે, અથવા વર્તમાન જન્મમા કર્મોનો ક્ષય થવાથી ભાવી જન્મના સબધથી રહિત છે? તે બને જ્ઞાન વર્તમાનજન્મસબધી છે

અથવા ઉપપાતનો અર્થ છે-ગર્ભજન્મ અને સમૂર્છન જન્મથી વિલક્ષણ એક ત્રીજા પ્રકારનો જન્મ છે, તે દેવો અને નારકીજીવોને થાય છે કહ્યું છે કે.—

आध्यात्मिकपुद्गलनिमित्तकं जन्म, यथा – जीवितश्वशृगालादीनां शरीरेषु जायमाना कीटादयस्तदीयशरीरान्तर्गतपुद्गलान् स्वशरीरतया परिणमयन्तो जायन्ते। पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पति-द्वित्रिचतुरिन्द्रिय-गर्भजव्यतिरिक्त-पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्-मनुष्याणां संमूर्छनजन्म भवति।

(२) गर्भजन्म–

उत्पत्तिस्थानावस्थितानामागन्तुकशुक्रशोणितपुद्गलानां स्वशरीररूपेण परिणतिकरणं मातृभुक्ताहाररसपरिपुष्टिसापेक्षं च गर्भजन्म। जरायुजानामण्डजानां पोतजानां च गर्भजन्म भवति, जरायुर्गर्भवेष्टनचर्म, तत्र जाताः जरायुजाः।

जीवित कुत्ते और शृगाल आदि के शरीरों में उत्पन्न होने वाले कीड़े आदि उनके शरीरके अन्तर्गत पुद्गलों को अपने शरीररूप में परिणत करते हैं वह आध्यात्मिक पुद्गलनिमित्तक जन्म कहलाता है, पृथ्वीकाय अप्काय तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और गर्भज के सिवाय पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों और मनुष्यों का जन्म संमूर्छन होता है।

(२) गर्भजन्म–

उत्पत्तिस्थान में स्थित आगन्तुक रज-वीर्य के पुद्गलों को अपने शरीररूप में परिणत करना और माता द्वारा भोगे हुए आहार के रस से पोषण की अपेक्षा रखनेवाला गर्भजन्म होता है। जरायुज, अण्डज और पोतज जीवों का जन्म गर्भज होता है, गर्भ को लपेट रखनेवाली चमड़े की थैली जरायु कहलाती है, उसमें उत्पन्न होने वाले

જીવતા કુતરા અને શિયાળ આદિના શરીરોમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા કીડા આદિ તેના શરીરની અંદરના પુદ્ગલોને પોતાના શરીરરૂપમા પરિણત કરે છે તે આધ્યાત્મિક પુદ્ગલનિમિત્તક જન્મ છે પૃથ્વીકાય અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, વનસ્પતિકાય, દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય ચતુરિન્દ્રિય અને ગર્ભજ સિવાય પંચેન્દ્રિય, તિર્યંચો અને મનુષ્યોનો જન્મ સમ્મૂર્છન હોય છે

(૨) ગર્ભજન્મ—

ઉત્પત્તિસ્થાનમાં સ્થિત, આગન્તુક રજ-વીર્યના પુદ્ગલોને પોતાના શરીરરૂપમા પરિણત કરવુ, અને માતાએ કરેલા આહારના રસથી પોષણની અપેક્ષા રાખવા વાળો તે ગર્ભજન્મ કહેવાય છે જરાયુજ અંડજ અને પોતજ જીવોનુ જન્મ ગર્ભજ હોય છે ગર્ભને લપેટી રાખનારી ચામડાની થેલી જરાયુ કહેવાય છે તેમા ઉત્પન્ન થવા વાળા જીવ જરાયુજ કહેવાય છે મનુષ્ય, ગાય ભેંસ બકરી.

पूर्वभवसम्बन्धि — स्थूलशरीरपरित्यागानन्तरमन्तरालगत्या तैजस-कार्मणशरीरमात्रेण सहागतस्य जीवस्य नवीनभवयोग्यस्थूलशरीरार्थं प्रथमं योग्यपुद्गलानां ग्रहणं जन्म । तच्च त्रिविध-संमूर्छन-गर्भो-पपातभेदात् ।

(१) समूर्छनजन्म-

मातापित्रोः सम्बन्धं विनैवोत्पत्तिस्थानावस्थितानामौदारिकपुद्गलानां बाह्यानामाध्यात्मिकाना वा स्वशरीररूपेण जीवकर्तृकं परिणतिकरण संमूर्छनम् । बाह्यपुद्गलनिमित्तकं जन्म, यथा-काष्ठत्वकूपक्वफलादिपूत्पद्यमानाः कीटादयो जन्तवः काष्ठफलवर्तिनो बाह्यपुद्गलान् स्वशरीररूपेण परिणमयन्त उत्पद्यन्ते ।

पूर्वभवसम्बन्धी स्थूल शरीर का त्याग करने के अनन्तर विग्रहगतिसे तैजस और कार्मण शरीर के साथ आया हुआ जीव नवीन भव के योग्य स्थूल शरीर के लिए सर्व प्रथम योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वही जन्म कहलाता है ।

जन्म तीन प्रकारका है—समूर्छन, गर्भ, और उपपात ।

(१) समूर्छनजन्म—

माता-पिता के सम्बन्ध विना ही, उत्पत्तिस्थान मे रहे हुए बाह्य या आध्यात्मिक औदारिक पुद्गलोंका अपने शरीररूप से जीव द्वारा परिणत कर लेना समूर्छन जन्म कहलाता है । काठ, त्वचा और पके फल आदि मे उत्पन्न होने वाले कीडे वगरह जन्तु काठ या फल आदि के बाह्य पुद्गलों को अपने शरीर के रूप मे परिणत कर लेते हैं । यह बाह्य पुद्गलनिमित्तक जन्म है,

---

પૂર્વભવસબધી સ્થૂલ શરીરનો ત્યાગ કરીને પછી વિગ્રહગતિથી તૈજસ અને કાર્મણ શરીરની સાથે આવેલો જીવ નવા ભવને યોગ્ય સ્થૂલ શરીર માટે સર્વપ્રથમ યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, તે જન્મ કહેવાય છે જન્મ ત્રણ પ્રકારના છે-(૧) સમૂર્છન (૨) ગર્ભ, અને (૩) ઉપપાત

(૧) સમૂર્છનજન્મ—

માતા-પિતાના સબધ વિના જ, ઉત્પત્તિસ્થાનમા રહેલા બહારના અથવા આધ્યાત્મિક ઔદારિક પુદ્ગલોને, પોતાના શરીરરૂપથી જીવદ્વારા પરિણુત કરી લેવુ તે સમૂર્છન જન્મ કહેવાય છે કાષ્ઠ ત્વચા (છાલ) અને ફળ આદિમા ઉત્પન્ન થવા વાળા કીડા વગેરે જન્તુ કાષ્ઠ અથવા ફળ આદિમા બહારના પુદ્ગલોને પોતાના શરીરના રૂપમા પરિણુત કરી લે છે તે બહારના પુદ્ગલ નિમિત્તક જન્મ છે

उपपातजन्म—

उपपातक्षेत्रप्राप्तिमात्रनिमित्तस्थानस्थितवैक्रियपुद्गलानां प्रथमं स्वशरीररूपेण परिणतिकरणम् उपपातजन्म। यथा—देवानां नारकाणां च। तत्र देवसमुद्भवो यथा—प्रच्छदपटस्योपरिष्टाद् देवदूष्यस्याधस्ताद् उभयोरन्तरालवर्तमानपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् देव उत्पद्यते। नारकोत्पत्तिर्यथा—नरकस्थितातिसंकटमुख-कुम्भीषु स्थितान् वैक्रियशरीरपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् नारक उत्पद्यते।

तथा—"अहं कः—चतुर्गतिषु प्राग्जन्मनि नारको वा तिर्यग् वा नरो

उपपातजन्म—

उपपातक्षेत्र में प्राप्तिमात्र निमित्त जिस में है ऐसे उत्पत्तिस्थान में स्थित वैक्रिय पुद्गलों का पहले-पहल अपने शरीररूप में परिणत करना उपपात-जन्म कहलाता है, देव और नारकों को यह जन्म होता है। देव की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—प्रच्छद पटके ऊपर और देवदूष्य वस्त्रके नीचे अर्थात् दोनों के बीचमें वर्तमान पुद्गलों को वैक्रियशरीररूप ग्रहण करता हुआ देव उत्पन्न होता है। नारकों की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—नरकवर्ती अत्यन्त संकुट (सकड़े) मुखवाली कुम्भियों में स्थित वैक्रिय शरीरके पुद्गलों को वैक्रियशरीर के रूप में ग्रहण करता हुआ नारकी जीव उत्पन्न होता है।

तथा— मैं कौन था ? चार गतियों में से पूर्वभव में मैं नारक था, तिर्यञ्च था,

---

(३) ઉપપાતજન્મ—

ઉપપાત ક્ષેત્રમાં પ્રાપ્તિમાત્ર જેમાં નિમિત્ત છે એવા ઉત્પત્તિસ્થાનમાં સ્થિત વૈક્રિય પુદ્ગલોને પહેલા-પહેલાં પોતાના શરીરરૂપમાં પરિણત કરવું તે ઉપપાતજન્મ કહેવાય છે. દેવ અને નારકીજીવોનો આ જન્મ હોય છે

દેવની ઉત્પત્તિ આ પ્રમાણે થાય છે:—પ્રચ્છદપટ-ઉત્તરીય વસ્ત્રના ઉપર અને દેવદૂષ્ય વસ્ત્રની નીચે, એટલે કે બન્નેની વચ્ચમાં વર્તમાન પુદ્ગલોને વૈક્રિયશરીરના રૂપમાં ગ્રહણ કરતા થકા દેવ ઉત્પન્ન થાય છે નારકીઓની ઉત્પત્તિ આ પ્રમાણે છે કે —નરકવર્તી અત્યન્ત સાંકડા મુખવાળી કુંભિઓમાં સ્થિત વૈક્રિય શરીરનાં પુદ્ગલોને વૈક્રિય શરીરના રૂપમાં ગ્રહણ કરતા થકા નારકી જીવ ઉત્પન્ન થાય છે

તથા—"હું કોણ હતો ? ચાર ગતિઓમાંથી પૂર્વભવમાં હું નારકી હતો, તિર્યંચ

तत्र – मनुष्य – गो –महिष्य–जा–ऽविका–ऽश्व – खरो – ष्ट्र – मृग–चमर–वराह–गवय–सिंह–व्याघ्र–र्क्ष–द्वीपि–श्व–शृगाल–मार्जारादयो जरायुजाः। सर्प–गोधा–कृकलास–गृहगोधिका–(पल्ली)–मत्स्य–कूर्म–नक्र–शिशुमारादयः, पक्षिषु यथा–लोमपक्षाः, हंस–चाष–शुक–गृध्र–श्येन–पारावत–काक–मयूर–मण्डु–बकादयश्चा–ण्डजाः। पोता–ज्जाता इति पोतजाः शुद्धप्रसवाः, न तु जरायुजवच्चर्मा–दिवेष्टिता इति यावत्, यथा – शल्लक–हस्ति–श्वाविल्लापक–शश–शारिका–नकुल–मूषिकादयः, पक्षिषु च चर्मपक्षाः, जलूका–वल्गुलि–भारण्डपक्षि–विरालादयश्च–पोतजाः।

जीव जरायुज कहलाते हैं। मनुष्य, गौ, भैंस, बकरी, मेष, घोडा, गधा, ऊंट, मृग, चमर शूकर, गेंडा, सिंह, वाघ, रीछ, द्वीपि, कुत्ता, सियार बिलाव आदि जरायुज हैं। सर्प, गोहेरा, कृकलास, छिपकली, मच्छ, कछुवा, नक्र, शिशुमार आदि, तथा पक्षियों मे लोमपक्षी, हंस, चाप, शुक, गृध्र, बाज, कबूतर, कौवा, मोर, मण्डु (एक जातका पक्षी), बगुला आदि अण्डज है। जो जरायुज की भाँति चमडे से लिपटे हुए उत्पन्न न हों, वे पोतज कहलाते हैं, जैसे—सेही, हाथी, श्वाविल्लापक, शशक, शारिका नकुल, मूषिक आदि। पक्षियों में चर्मपक्षी, जलूका (जौंक), वल्गुली, भारण्डपक्षी विराल आदि पोतज हैं।

घेटा, घोडा, गधेडा, ऊंट, મૃગલા, ચમર (હિમાલયમા થતી એક ગાય વિશેષ) ભૂંડ, રોઝ, સિંહ, વાઘ, રીંછ, છીપલા, કુતરા, શિયાળ, બિલાડા, વગેરે જરાયુજ છે, સર્પ ઘોયરા, કાચીંડા, ઢેઢગરોડી, મચ્છ, કાચબા, નક્ર (મગર) શિશુમાર (એક પ્રકારનુ જલચર પ્રાણી) આદિ તથા પક્ષિઓમા લોમપક્ષી, હંસ, ચાષ (એક જાતનુ લીલી પાંખોવાળુ કાબરના જેવુ પખી) શુક-(પોપટ), ગીધ, બાજ, કબૂતર, કાગડો, મોર, મંડૂ (એક પક્ષી) બગલા વગેરે અંડજ છે જે જરાયુજ પ્રમાણે ચામડીથી વિંટાએલા ઉત્પન્ન ન થાય તે પોતજ કહેવાય છે જેમકે-સેહી-(સાહુડી) હાથી, શ્વાવિલ્લાપક, શશક, શારિકા, નકુલ-નોળીઓ, મૂષિક-ઉંદર વગેરે પક્ષીઓમા ચર્મપક્ષ-(રૂવાડા વગરના ચામડાની પાંખોવાળા) જલૂકા (જળો) વલ્ગુલી (વડવાગળ) ભારંડ-પક્ષી, વિરાલ આદિ પોતજ છે.

उपपातजन्म—

उपपातक्षेत्रप्राप्तिमात्रनिमित्तस्थानस्थितवैक्रियपुद्गलानां प्रथम स्वशरीररूपेण परिणतिकरणम् उपपातजन्म। यथा – देवानां नारकाणां च। तत्र देवसमुद्भवो यथा–प्रच्छदपटस्योपरिष्टात् देवदूष्यस्याधस्तात् उभयोरन्तरालवर्तमानपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् देव उत्पद्यते। नारकोत्पत्तिर्यथा–नरकस्थितातिसंकुटमुख-कुम्भीषु स्थितान् वैक्रियशरीरपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् नारक उत्पद्यते।

तथा—"आसं कः–चतुर्गतिषु प्राग्जन्मनि नारको वा तिर्यग् वा नरो

उपपातजन्म—

उपपातक्षेत्र में प्राप्तिमात्र निमित्त जिस में है ऐसे उत्पत्तिस्थान में स्थित वैक्रिय पुद्गलों का पहले–पहल अपने शरीररूप में परिणत करना उपपात–जन्म कहलाता है, देव और नारकों को यह जन्म होता है। देव की उत्पत्ति इस प्रकार होती है–प्रच्छद पटके ऊपर और देवदूष्य वस्त्रके नीचे अर्थात् दोनों के बीचमें वर्तमान पुद्गलों को वैक्रियशरीररूप ग्रहण करता हुआ देव उत्पन्न होता है। नारकों की उत्पत्ति इस प्रकार होती है–नरकवर्ती अत्यन्त संकुट (सकडे) मुखवाली कुंभियों में स्थित वैक्रिय शरीरके पुद्गलों को वैक्रियशरीर के रूप में ग्रहण करता हुआ नारकी जीव उत्पन्न होता है।

तथा—"मै कौन था? चार गतियों में से पूर्वभव में मैं नारक था तिर्यञ्च था

---

(३) ઉપપાતજન્મ—

ઉપપાત ક્ષેત્રમાં પ્રાપ્તિમાત્ર જેમાં નિમિત્ત છે એવા ઉત્પત્તિસ્થાનમાં સ્થિત વૈક્રિય પુદ્ગલોને પહેલા–પહેલાં પોતાના શરીરરૂપમાં પરિણત કરવું તે ઉપપાતજન્મ કહેવાય છે દેવ અને નારકીજીવોનો આ જન્મ હોય છે

દેવની ઉત્પત્તિ આ પ્રમાણે થાય છે—પ્રચ્છદપટ–ઉત્તરીય વસ્ત્રના ઉપર અને દેવદૂષ્ય વસ્ત્રની નીચે, એટલે કે બંનેની વચ્ચમાં વર્તમાન પુદ્ગલોને વૈક્રિયશરીરના રૂપમાં ગ્રહણ કરતા થકા દેવ ઉત્પન્ન થાય છે નારકીઓની ઉત્પત્તિ આ પ્રમાણે છે કે—નરકવર્તી અત્યન્ત સાંકડા મુખવાળી કુંભિઓમાં સ્થિત વૈક્રિય શરીરના પુદ્ગલોને વૈક્રિય શરીરના રૂપમાં ગ્રહણ કરતા થકા નારકી જીવ ઉત્પન્ન થાય છે

તથા– હું કોણ હતો? ચાર ગતિઓમાંથી પૂર્વભવમાં હું નારકી હતો, તિર્યંચ

वा देवो वा आसम् ?," इति पूर्वजन्मस्मृतिरूपं ज्ञानं, तथा–"इतः=अस्माल्लोकात् च्युतः=वियुक्तः प्रेत्य=जन्मान्तरे इह चतुर्गतिरूपे संसारे को भविष्यामि ? चतुर्गतिषु कीदृशीं गतिं प्राप्स्यामि" इत्यागामिजन्मविषयकं निश्चयात्मकं ज्ञानं च न भवतीत्यर्थः। भावदिशाविषयकमपि ज्ञानं नास्ति कियताचित् संज्ञिनाम्, असंज्ञिनां तु जीवानां नास्त्येव दिशाज्ञानमिति का वार्ता तेषामिति भावः ॥ सू. ३ ॥

संसारिणां स्वगत्यागतिज्ञानं न भवतीत्युक्तम्, संप्रति तज्ज्ञानं यथा भवति तत् प्रदर्शयितुमाह—'से जं पुण' इत्यादि।

मूलम्।

से जं पुण जाणेज्जा, सहसम्मइयाए, परवागरणेणं अण्णेसिं अंतिए वा

मनुष्य था या देव था ?," इस प्रकार की पूर्व जन्म की स्मृति, और "इस भव से च्युत होकर अगले जन्म में चार गतियों में से कौन गति पाऊँगा ?," इस प्रकार का आगामी जन्म सम्बन्धी निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता। कितने ही संज्ञियों को भी भावदिशा–विषयक ज्ञान नहीं होता। असंज्ञी जीवों को तो दिशा का ज्ञान होता ही नहीं ॥ सू० ३ ॥

संसारी जीवों को अपनी गति और आगति का ज्ञान नहीं होता, यह बतलाया जाचुका, अब यह कथन किया जाता है कि–वह ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ?–

–'से जं पुण' इत्यादि।

मूलार्थ–सहसम्मति से (परोपदेश के विना ही सहज ज्ञानसे) पर की वागरणा (स्पष्टीकरण) से, दूसरों के समीप से सुनकर जाने कि मैं पूर्व दिशा

હતો, મનુષ્ય હતો અથવા દેવ હતો ?" આ પ્રમાણે આગલા જન્મની સ્મૃતિ અને "આ ભવથી નીકળીને આગલા હવેના જન્મમા ચાર ગતિમાથી હુ કઇ ગતિમા જઇશ અથવા હુ કઇ ગતિ પામીશ ?" આ પ્રમાણે આગામી–હવે પછી થવાવાળા જન્મ સબધી નિશ્ચયાત્મક જ્ઞાન થતુ નથી, કેટલાક સજ્ઞીઓને (સજ્ઞીજીવોને) પણ ભાવદિશા–વિષયનુ જ્ઞાન થતુ નથી અસજ્ઞી જીવોને દિશાઓ સબધીતુ જ્ઞાન થતુ જ નથી ॥૩॥

સસારી જીવોને પોતાની ગતિ અને આગતિ વિષેનુ જ્ઞાન નથી થતુ, તે બતાવી ગયા છીએ હવે તે કહેવામા આવે છે કે–તે જ્ઞાન કેવી રીતે થઈ શકે છે ?–
'से जं पुण' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ–સહસમતિથી, (બીજાના ઉપદેશ વિના પણ સહજ જ્ઞાનથી), બીજાની વાગરણાથી (સ્પષ્ટીકરણથી), બીજાની પાસેથી સાભળીને જાણે કે હુ

सोच्चा, तंजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, जाव अण्णयरीओ दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि, एवमेगेसिं णायं भवइ-अत्थि मे आया ओववाइए, जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ वा संचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ जो आगओ अणुसंचरइ सोऽहं ॥ सू० ४ ॥

(छाया)

अथ यत् पुनर्जानीयात्-सहसंमत्या, परव्याकरणेन, अन्येषामन्तिके वा श्रुत्वा, तद्यथा-पूर्वस्या दिशाया आगतोऽहमस्मि यावत् अन्यतरस्या दिशाया अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मि। एवमेकेषां ज्ञातं भवति-अस्ति मे आत्मा औपपातिकः, योऽस्या दिशाया अनुदिशाया वा अनुसंचरति, सर्वस्या दिशायाः सर्वस्या अनुदिशाया य आगतः अनुसंचरति सोऽहम् ॥ सू० ४ ॥

'से ज्ज पुण' इति। 'से' इत्यव्ययं मागधभाषायामथशब्दार्थकम्। 'अथ' इति, अनेन 'नो सन्ना भवइ' इति द्रव्यदिग्ज्ञानाभावं 'नो णायं भवइ' इति भावदिग्ज्ञानाभावं च भवर्ण्य तज्ज्ञानमारभ्य इति द्योत्यते।

से आया हूँ (यावत्) अन्यतर दिशा से अथवा विदिशा से मैं आया हूँ। इस प्रकार कितनेक जीवों को ज्ञान होता है कि-मेरा आत्मा औपपातिक (जन्म लेने वाला) है, जो इस दिशा से अथवा अनुदिशा से संचार करता है, सभी दिशाओं से सभी अनुदिशाओं से आया हुआ जो आत्मा भ्रमण करता है, वह मैं हूँ। (सू० ४)

टीकार्थ-मागधी भाषा में 'से' अव्यय 'अथ' शब्द के अर्थ में है। यहाँ 'अथ' शब्द से यह प्रकट किया गया है कि-पहले के सूत्रमें 'नो सन्ना भवइ' इत्यादि कहकर द्रव्यदिशा के ज्ञानका निषेध करके, और 'नो णायं भवइ' इत्यादि कह कर भावदिशासम्बन्धी ज्ञान का निषेध करके अब इस ज्ञान की उत्पत्ति का प्रकार प्रदर्शित करते हैं-

पूर्व दिशाथी आवेलो छुं यावत् बीजी दिशाओथी अथवा विदिशाओथी हुं आव्यो छुं आ प्रमाणे केटलाक जीवोने ज्ञान थाय छे के-मारो आत्मा औपपातिक (जन्म लेवावाळो) छे, जे आ दिशाथी अथवा अनुदिशाथी संचार करे छे सर्व दिशाओथी सर्व अनुदिशाओथी, आवेलो जे आत्मा भ्रमण करे छे ते हुं छुं (सू ४)

टीकार्थ—मागधी भाषामां 'से' अव्यय अथ, शब्दना अर्थमां छे अहिं 'अथ' शब्दथी ओ प्रगट कर्युं छे के-प्रथमना सूत्रोमां 'नो सन्ना भवइ' इत्यादि कहीने द्रव्यदिशाना ज्ञानने निषेध करीने अने 'नो णायं भवइ-इत्यादि कहीने भावदिशासंबंधी ज्ञानने निषेध करीने हवे ते ज्ञाननी उत्पत्तिनो प्रकार प्रदर्शित करे छे-

टीका—

यत्=यदि पुनर्जानीयात् स्वस्त्रगत्यागत्यादिकं कश्चित्, तत् त्रिविधेन कारणेन, तदाह—सहसंमत्येत्यादि। आत्मना सह वर्तते या सम्यग्मतिः, सा सहसंमतिः, परोदेशमन्तरेण समुत्पन्ना जातिस्मरणावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानरूपा, तया सहसंमत्या। तत्र जातिस्मरणवान्नियमतः संख्यातभवान् जानाति, अवधिज्ञानी संख्यातभवानसंख्यातभवान् वेत्ति, तथैव मनःपर्ययज्ञानी च। केवलज्ञानी तु नियमतोऽनन्तान् भवान् विजानाति। जातिस्मरणज्ञानवानवान्तरे यद्यसंज्ञिभवं न कुर्यात्, तर्हि स्वकीयसंज्ञिपञ्चेन्द्रियभवस्योत्कृष्टतो नवशतभवान् विज्ञातुं शक्नुयात्। जातिस्मरणेन स्वकीयपूर्वभवं विज्ञातुर्दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

अगर कोई अपनी–अपनी गति और आगति को जाने तो तीन प्रकार के कारण से जान सकता है, उसी को कहते है—सहसम्मति आदि से, आत्मा के साथ रहने वाली सम्यग्मति कहलाती है, अर्थात् परोपदेश के विना ही उत्पन्न होनेवाली जातिस्मरण, अवधि, मन पर्यय और केलज्ञान रूप मति सहहम्मति कहलाती है, उनमे जाति स्मरणवाला नियम से सख्यात भवोंको जानता है, अवधिज्ञानी सख्यात या असख्यात भवों को जानता है, इसी प्रकार मन पर्ययज्ञानी भी जानता है, किन्तु केवलज्ञानी नियम से अनन्त भवों को जानता है। जातिस्मरण–ज्ञानवाला बीच में यदि असज्ञी का भव न करे तो अपने सज्ञी–पञ्चेन्द्रिय के उत्कृष्ट नौ सौ भवों को जान सकता है। जातिस्मरण से अपना पूर्वभव जानने वाले का दृष्टान्त प्रदर्शित किया जाता है—

અથવા કોઈ પોતપોતાની ગતિ અને આગતિને જાણે તો ત્રણ પ્રકારના કારણથી જાણી શકે છે, તેને કહે છે–સહસમતિ આદિથી, આત્માની સાથે રહેવા વાળી સમ્યગ્ મતિ–બુદ્ધિ અર્થાત્ પરોપદેશ વિનાજ ઉત્પન્ન થવા વાળી જાતિસ્મરણ, અવધિ, મનઃપર્યય, અને કેવલ–જ્ઞાનરૂપ મતિ તે સહસમતિ કહેવાય છે જાતિ સ્મરણ વાળા નિયમથી સખ્યાત ભવોને જાણે છે અવધિજ્ઞાની સખ્યાત અથવા અસખ્યાત ભાવોને જાણે છે એ પ્રમાણે મનઃપર્યાયજ્ઞાની પણ જાણે છે પરતુ કેવલજ્ઞાની નિયમથી અનન્ત ભવોને જાણે છે જાતિસ્મરણ જ્ઞાનવાળા જીવ વચમા જો અસજ્ઞીનો ભવ ન કરે તો પોતાના સજ્ઞી પચેન્દ્રિયના ઉત્કૃષ્ટ નવસો (૯૦૦) ભવોને જાણી શકે છે જાતિસ્મરણથી પોતાના પૂર્વભવને જાણનારાનુ દ્રષ્ટાત બતાવે છે–

सुग्रीवनगरे बलभद्रनामा नृप आसीत्। तस्याग्रमहिषी मृगानाम्नी बभूव। बलभद्रनृपस्य तस्यां पुत्रो जातः। स च मातापितृभ्यां बलश्री-नाम लब्ध्वाऽपि लोके मृगापुत्र इति नाम्ना प्रसिद्धो बभूव। अथ मातापित्रोः परमप्रियः कृतयौवराज्याभिषेको मुदितचित्तो मृगापुत्रः प्रासादे दोगुन्दुगदेववत् प्रमदाभिः सह क्रीडतिस्म।

स चैवं विलसन् मणिरत्नराजितकुट्टिमतले सर्वोपरिवर्तिनि प्रासादप्रदेशे समुपविष्टः सकुतूहलं चतुष्क-त्रिक-चत्वर-मार्गान् विलोकमानः पथि शीलाढ्यं गुणसागरं तपोनियमसंयमधरं संयतमनिमिषचक्षुषाऽद्राक्षीत्। तमवलोक्य मृगाप्य-

सुग्रीव नगर में बलभद्र नामक राजा था। उसकी पटरानी का नाम मृगा था। उस मृगारानी से बलभद्र को पुत्र की प्राप्ति हुई। माता-पिताने उसका नाम बलश्री रक्खा, किन्तु वह लोक में मृगापुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ वह माता-पिता का परम प्रिय था। उसका युवराज पद पर अभिषेक किया गया। वह प्रसन्न-चित्त होकर दोगुन्दुग (त्रिलासी एक देवकी जाति) देव के समान अपने महलमें क्रीडा करता था।

एक बार मृगापुत्र मणियों और रत्नों से सुशोभित फर्शवाले महल के सब से ऊपर के मंजिल पर बैठा था। वह कौतूहल के साथ नगर के चौपड त्रिक तथा चत्वर मार्गों का अवलोकन कर रहा था। तब उसे मार्ग में शील से विभूषित गुणों के सागर तप नियम और संयम धारण करने वाले एक मुनि दृष्टिगोचर हुए। उसने टकटकी लगाकर

સુગ્રીવ નગરમાં બલભદ્ર નામનો રાજા હતો. તેની પટરાણીનું નામ-મૃગા હતું તે મૃગા રાણી થકી બલભદ્રને પુત્રની પ્રાપ્તિ થઈ માતા-પિતાએ તેનું નામ બલશ્રી રાખ્યું પરંતુ તે લોકને વિષે મૃગાપુત્ર નામથી પ્રસિદ્ધ થયો. તે માતા-પિતાને પરમપ્રિય હતો, તેનો યુવરાજ પદ પર અભિષેક કર્યો. પછી તે પ્રસન્નચિત્ત થઈને દોગુન્દુગ (વિલાસી એક દેવની જાતિ) દેવ સમાન પોતાના મહેલમાં ક્રીડા કરતો હતો

એક વાર મૃગાપુત્ર મણિઓ અને રત્નોથી-સુશોભિત ફર્શ-સુંદર તળિયાવાળો મહેલનો સૌથી ઉપરનો ખંડ હતો, તેના ઉપર બેઠો હતો તે કુતુહલપૂર્વક નગરના ચૌપડ ત્રિક તથા ચત્વર માર્ગોનું અવલોકન કરી રહ્યો હતો. તે વખતે એ માર્ગમાં શીલથી વિભૂષિત, ગુણોના સાગર તપ, નિયમ, સંયમ ધારણ કરવાવાળા એક મુનિ દૃષ્ટિગોચર

वसायेन मृगापुत्रो मूर्छामवाप्य जातिस्मरणं प्राप। ' पूर्वजन्मनि प्रव्रज्यां गृहीत्वा पञ्चमहाव्रतपालनेन स्वर्गसुख लब्ध्वाऽहमिह राजकुले संजातः ' इति। अनेन जातिस्मरणेन पुनरात्मकल्याणाय प्रयतते स्म।

अवधिज्ञानिना मल्लीनाथेन भगवता ससारावस्थायां पूर्वजन्मवृत्तान्तोऽवलोकितः। मनःपर्यय-केवलज्ञानयोस्तु दृष्टान्तौ सुप्रतीतौ।

तथा—परव्याकरणेन-परस्तीर्थङ्करस्तस्य व्याकरण यथावस्थितार्थस्य-

---

उनकी ओर देखा। उन्हें देख कर मृगापुत्र को मूर्छा आ गई और जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया। उससे मालूम हुआ कि—' पूर्व जन्म में दीक्षा धारण करके, पाचमहाव्रतों का पालन करके, पश्चात् स्वर्ग के सुख भोगकर मै इस राजकुल म उ पन्न हुआ हूँ।' इस जातिस्मरण से वह फिर आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो गया।

अवधिज्ञानी भगवान् मल्लीनाथने ससार-अवस्थामें अपना पूर्व जन्म का वृत्तान्त देख लिया था। मन पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान के दृष्टान्त तो प्रसिद्ध ही हैं।

तथा—परके व्याकरण से भी गति-आगति का ज्ञान होता है। पर का अर्थ है—तीर्थंकर। उनका व्याकरण अर्थात् पदार्थ का स्वरूप यथार्थरूप से जानकर समझाकर कहना, अथवा परव्याकरण का अर्थ तीर्थंकर का प्रवचनरूप आगम समझना चाहिए।

थया, ते वखते मृगापुत्र એક नजरथी तेमनी सामे જોયુ, અને તેને જોઇને મૃગાપુત્રને મૂર્છા આવી ગઇ અને જાતિસ્મરણુ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયુ, તેનાથી માલૂમ પડયુ કે—" હુ પૂર્વ જન્મમા દીક્ષા ધારણુ કરીને, પાચ મહાવ્રતોનુ પાલન કરી, પછી સ્વર્ગના સુખો ભોગવીને આ રાજકુલમા ઉત્પન્ન થયો છુ " આ પ્રમાણે જાતિસ્મરણુ થવાથી તે ફરીને આત્મકલ્યાણુમા પ્રવૃત્ત થઈ ગયો

અવધિજ્ઞાની મલ્લીનાથ ભગવાને સસાર-અવસ્થામા પોતાના પૂર્વ જન્મનો વૃત્તાન્ત જોઈ લીધો હતો મન પર્યયજ્ઞાન અને કેવલજ્ઞાનના દ્રષ્ટાત તો પ્રસિદ્ધ જ છે

તથા-પરના વ્યાકરણુથી પણુ ગતિ-આગતિનુ જ્ઞાન થાય છે પરનો અર્થ છે-તીર્થ કર, તેનુ વ્યાકરણુ-અર્થાત્ પદાર્થનુ સ્વરૂપ યથાર્થરૂપથી જાણી-સમજીને કહેવું, અથવા પરવ્યાકરણુનો અર્થ-તીર્થંકરના પ્રવચનરૂપ આગમ સમજવુ જોઈએ

साक्षात्कारेण सम्बाध्य कथनम्, तीर्थङ्करप्रवचनरूप आगमो वा, तेन। परव्याकरणोदाहरणं यथा—साक्षात् भगवतो देशनया मेघकुमाराद्यो जातिस्मरणमाप्नुवन्तः।

तथा—अन्येषामन्तिके वा श्रुत्वेति, अन्येषां समीपे, श्रुत्वा स्वगत्या-गत्यादिबोधकतद्वचनश्रवणेन। तृतीयोदाहरणं यथा—षड् मित्रभूपाश्छद्मस्थावस्थस्य मल्लीनाथभगवतः समीपे तद्वचनेन जातिस्मरणमवापुः।

अथात्मनि विषये यादृशं गत्यागत्यादिज्ञानं भवति, तदेव दर्शयति—तद्यथा—इत्यादि 'पूर्वस्या दिशाया आगतोऽहमस्मि यावत् अन्यतरस्या दिशाया अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मी'त्यनेन स्वगमनावधि-द्रव्यदिग्ज्ञानं, तथा-

परव्याकरणका उदाहरण जैसे—साक्षात् भगवान् की देशना से मेघकुमार आदिने जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त किया था।

तथा—दूसरों से सुनकर भी गति आगति का ज्ञान होता है। तात्पर्य यह है कि—अपनी गति एवं आगति समझाने वाले दूसरे के वचनों से भी जातिस्मरण हो जाता है। जैसे—छह मित्र-राजाओंने छद्मस्थ-अवस्था वाले भगवान् मल्लिनाथ के वचनों से जातिस्मरण प्राप्त किया था।

आत्मा के विषय में गति-आगति आदि का ज्ञान जिस प्रकार होता है, उसे दिखलाते हैं—मैं पूर्व दिशा से आया हूँ (यावत्) अन्यतर दिशा से अथवा अनुदिशा से मैं आया हूँ इस कथन से अपने गमन तक की द्रव्य-दिशा का ज्ञान सूचित किया है। तथा मेरा आत्मा औपपातिक है यहाँ से लेकर 'भ्रमण करता है

પરવ્યાકરણનું ઉદાહરણ, જેમકે—સાક્ષાત્ ભગવાનની દેશનાથી મેઘકુમાર આદિએ જાતિસ્મરણ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું હતું.

તથા—બીજા પાસેથી સાંભળીને પણ ગતિ-આગતિનું જ્ઞાન થાય છે કે—પોતાની ગતિ અને આગતિ સમજાવવાવાળા બીજાના વચનોથી પણ જાતિસ્મરણ જ્ઞાન થઈ જાય છે. જેમ—છ મિત્ર-રાજાઓએ છદ્મસ્થ-અવસ્થા વાળા ભગવાન મલ્લિનાથના વચનોથી જાતિ સ્મરણ પ્રાપ્ત કર્યું હતું.

આત્માના વિષયમાં ગતિ-આગતિનું જ્ઞાન જે પ્રમાણે થાય છે તેને દેખાડે છે—હું પૂર્વ દિશાથી આવ્યો છું (યાવત્) અન્યતર દિશાથી અથવા અનુદિશાથી હું આવ્યો છું આ કથનથી પોતાના ગમન સુધીની દ્રવ્યદિશાનું જ્ઞાન સૂચિત કર્યું છે,

'अस्ति मे आत्मा औपपातिकः' इत्यारभ्य 'अनुसंचरित सोऽहम्' इत्यन्तेन द्रव्य-भावोभयदिशाज्ञानं भगवता प्रदर्शितम्।

सोऽहमस्मी' त्येनेनेदमावेदितं भवति। त्रिविधान्यतमेन कारणेन ज्ञानं प्राप्तो जीवः स्वात्मस्वरूपमेवं विजानाति-यदयमात्मा सकलकर्मक्षयावधि चतुर्गति-भ्रमणकर्ता पुनरपि कस्याश्चिदेकस्यां दिशायामनुदिशायां वा गमिष्यति नास्त्यस्य गतिविरामस्तावदिति। एवमयमात्मा सर्वस्या दिशाया अनुदिशाया आगतःपुनरपि स्वकर्मवशगः सन् सर्वस्यां दिशायामनुदिशायां वा परिभ्रमिष्यति। न कदाचिदस्य विश्रान्तिलेशोऽपि तादृशोऽहमस्मीति ॥ सू० ४ ॥

वह मै हूँ' यहाँ तक द्रव्यदिशा और भावदिशा, दोनों का ज्ञान भगवान्ने प्रदर्शित किया है।

'वही मैं हूँ' इस कथन से यह प्रकट होता है कि—तीन में से किसी एक कारण के द्वारा ज्ञान को प्राप्त जीव इस रूप में अपना आत्मस्वरूप जानता है कि—यह आत्मा जब तक समस्त कर्मों का क्षय नहीं कर देता तब तक चारों गतियों में भ्रमण करता है और फिर किसी एक दिशा में या अनुदिशामें गमन करेगा परन्तु कर्मों का क्षय जब तक न हो तब तक उसकी गति का अन्त नहीं आता है। इस प्रकार यह आत्मा सब दिशाओं से और अनुदिशाओं से आया है और कर्मों के अधीन हो कर फिर सब दिशाओं अथवा विदिशाओं मे परिभ्रमण करेगा, इसे लेशमात्र भी कभी विश्राम नहीं मिल सकता, ऐसा मै हूँ ॥ सू० ४ ॥

તથા-'મારો આત્મા ઔપપાતિક છે' ત્યાથી લઇને 'ભ્રમણ કરે છે' તે હુ છુ, ત્યા સુધી દ્રવ્યદિશા અને ભાવદિશા, એ બન્નેનુ જ્ઞાન ભગવાને પ્રદર્શિત કર્યુ છે "તે હુ છુ" આ કથનથી એમ પ્રગટ થાય છે કે એ ત્રણમાથી કોઈ કારણ દ્વારા જ્ઞાનને પામેલો જીવ આ રૂપમા પોતાના આત્મસ્વરૂપને જાણે છે કે આ આત્મા જ્યા સુધી સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય કરતો નથી, ત્યા સુધી ચારેય ગતિઓમા ભ્રમણ કરતો રહે છે, અને ફરી કોઈ દિશામા અથવા તો અનુદિશામા ગમન કરશે પરતુ જ્યા સુધી કર્મોનો ક્ષય નહિ હોય ત્યા સુધી તેની ગતિનો અત આવતો નથી એ પ્રમાણે આ આત્મા સર્વ દિશાઓથી અને અનુદિશાઓથી આવ્યો છે અને કર્મોને આધીન થઇને ફરીથી સર્વ દિશાઓ અથવા વિદિશાઓમા પરિભ્રભમણ કરશે. તેને લેશમાત્ર પણ વિશ્રામ મલી શકતો નથી એવો હુ છુ, (સૂ૦ ૪)

आत्मवादिप्रकरणम्—

यस्तु द्रव्यदिक्षु भावदिक्षु चात्मनो गत्यागती अवगम्य स्वमात्मानमेव विजानाति–' अयमात्मा असिद्धगतिप्राप्तिश्चतुर्गतिषु घूर्णमानो जन्मान्तरसंक्रान्त-स्त्रिकालवर्ती शरीराद् भिन्नो नित्यपरिणामी ज्ञानसम्यक्त्वचारित्रसुखवीर्यादिगुणवा-निति, स एवात्मवादीत्याह—' से आयावादी ' इत्यादि ।

मूलम्—

से आयावादी, लोगावादी, कम्मावादी, किरियावादी ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स आत्मवादी, लोकवादी कर्मवादी, क्रियावादी ॥ सू० ५ ॥

आत्मवादिप्रकरण–

जो जीव द्रव्य दिशाओं में और भावदिशाओं में आत्मा का गमन–आगमन जान कर अपनी आत्मा के विषय में इस प्रकार जानता है कि–यह आत्मा सिद्धगति की प्राप्तिरहित चार गतियों में भ्रमण करता हुआ एक जन्म से दूसरे जन्म को ग्रहण करता है, त्रिकालवर्ती है शरीर से भिन्न है, नित्यपरिणामी है और सम्यक्त्व, ज्ञान चारित्र, सुख वीर्य आदि गुणों वाला है वही आत्मवादी है । अब इसी विषय का निरूपण किया जाता है —' से आयावादी ' इत्यादि ।

मूलार्थ—' से आयावादी ' इति । वही आत्मवादी है, लोकवादी है, कर्मवादी है क्रियावादी है (सू. ५)

આત્મવાદીપ્રકરણ

જે જીવ દ્રવ્યદિશાઓમાં અને ભાવદિશાઓમાં આત્માનું જવું–આવવું જાણીને પોતાના આત્માના વિષયમાં એ પ્રમાણે જાણે છે કે:–આ આત્મા સિદ્ધગતિની પ્રાપ્તિ વિના બીજી ચાર ગતિઓમાં ભ્રમણ કરતો કરતો એક જન્મથી બીજો જન્મ ગ્રહણ કરે છે ત્રિકાલવર્તી છે શરીરથી ભિન્ન છે નિત્યપરિણામી છે અને સમ્યક્ત્વ, જ્ઞાન, ચારિત્ર, સુખ વીર્ય આદિ ગુણો વાળો છે તે આત્મવાદી છે. હવે આ વિષયનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે—'से आयावादी' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ–'से आयावादी' ઇતિ. તે આત્મવાદી છે, લોકવાદી છે, કર્મવાદી છે અને ક્રિયાવાદી છે. (સૂ. ૫)

टीका—

'से आयावादी' इति। सः=इत्थमात्मानं ज्ञाता, आत्मवादी=आत्मानं वदितुं शीलमस्येति विग्रहे कर्तरि णिनि, आत्मस्वरूपकथनस्वभाववान्। अयं भावः–आत्मस्वरूप वक्तारो जगति बहवः सन्ति, परन्तु स एवात्मवादी वेदितव्यो, यः पूर्वोक्तरीतिमनुसृत्यात्मानं विजानातीति।

आत्मस्वरूपपरिचयं विना बन्धस्वरूपं ज्ञातुमशक्यम्। तद् विना न रोचते कस्मैचिदात्मोत्कर्षकरणम्, तद्रुचिमन्तरेण च कस्यचिन्मोक्षोपाय-भूतनिश्चयव्यवहारलक्षणज्ञानक्रिययोः प्रवृत्तिर्न स्यात्, तस्मादत्रात्मज्ञानप्रसङ्गेन किञ्चिदुच्यते—

टीकार्थ—जो इस (पूर्वोक्त) प्रकार से आत्मा को जानता है वही आत्मवादी है अर्थात् आत्मा के स्वरूप को कहने वाला है। तात्पर्य यह है कि—आत्मा का स्वरूप कहने वाले ससार में बहुत हैं किन्तु वास्तव में सच्चा आत्मवादी वही है जो पूर्वोक्त प्रकार से आत्मा का ज्ञाता है।

आत्मा का स्वरूप समझे विना बन्ध का स्वरूप अशक्य है। उसके अभाव में किसीको आत्मा का उत्कर्ष करना रुचिकर नहीं होता, और इस रुचि के अभाव में किसीको निश्चय–व्यवहाररूप ज्ञान और क्रिया में—जो मोक्ष के कारण हैं—प्रवृत्ति नहीं होती, अत आत्मज्ञान का प्रसङ्ग होने से यहाँ कुछ विवेचन किया जाता है—

ટીકાર્થ—જે આ (પૂર્વોક્ત) પ્રકારથી આત્માને જાણે છે, તે આત્મવાદી છે, અર્થાત્–આત્માના સ્વરૂપને કહેવા વાળા છે, તાત્પર્ય એ છે કે—આત્માનુ સ્વરૂપ કહેવા વાળા સમારમા ઘણા છે પરતુ વાસ્તવમા સાચા આત્મવાદી તે છે કે જે પૂર્વોક્ત પ્રકારથી આત્માના જ્ઞાતા છે, અર્થાત્ પૂર્વોક્ત પ્રકારે આત્માને જાણે છે

આત્માના સ્વરૂપને સમજ્યા વિના બધનુ સ્વરૂપ સમજવુ અશક્ય છે, તેના અભાવમા કોઈને આત્મા ઉત્કર્ષ કરવુ રૂચિકર થતુ નથી અને તે રૂચિના અભાવમા કોઈને નિશ્ચય–વ્યવહારરૂપ જ્ઞાન અને ક્રિયામા જે મોક્ષનુ કારણ છે તેમાં પ્રવૃત્તિ થતી નથી. તે કારણથી આત્મજ્ઞાનનો પ્રસગ હોવાથી અહિં થોડુ વિવેચન કરવામા આવે છે—

आत्मशब्दार्थः—

अतति-नित्यं जानातीति आत्मा। 'अत सातत्यगमने' इत्यत्रात-धातोर्गत्यर्थकत्वाद्, गत्यर्थानां च ज्ञानार्थकतया स्वीकाराद्यमर्थो लभ्यते। सिद्धसंसारिभेदेन द्विविधस्यापि जीवस्य सर्वदाऽप्युपयोगसद्भावादात्मनः कस्यांचिदवस्थायामुपयोगवियोगो न जायते। कदाचिदप्युपयोगाभावे च जीवत्वमेव व्याहन्येत। अत एव-'जीवो उवओगलक्खणो' इत्युक्तम् (उत्तरा २८ अ १० गा०)

यद्वा-अतति-सततं गच्छति, निरन्तरं प्राप्नोति स्वकीयान् पर्यायानिति-आत्मा।

आत्मशब्द का अर्थ-

'अतति'-इति-आत्मा अर्थात् जो नित्य जानता रहता है वह आत्मा कहलाता है। 'अत' धातु सतत गमन करने के अर्थ में है और गमनार्थक सभी धातु ज्ञानार्थक होते हैं, अत उपर्युक्त अर्थ किया गया है। क्या सिद्ध और क्या संसारी, दोनों ही प्रकार के जीवों में सदैव ज्ञान विद्यमान रहता है और किसी भी अवस्था में उपयोगका वियोग नहीं होता। किसी समय ज्ञान का अभाव हो जाय तो जीव में जीवत्व ही नहीं रहे। इसी कारण उत्तराध्ययन सूत्र (अ. २८ गा. १) में कहा है -"जीवो उवओगलक्खणो" जीव उपयोग लक्षण वाला है।

अथवा—अतति अर्थात् जो अपने पर्यायों को सतत प्राप्त होता रहता है वह आत्मा है।

આત્મા શબ્દનો અર્થ—

અતતિ ઇતિ આત્મા અર્થાત્ જે જાણતો રહે છે તે આત્મા કહેવાય છે. 'અત' ધાતુ સતત ગમન કરવાના અર્થમાં છે. અને ગમનાર્થક સવ ધાતુ જ્ઞાનાર્થક પણ હોય છે (ગમન કરવું એવા અર્થવાળા તમામ ધાતુ જ્ઞાન અર્થવાળા પણ હોય છે) એ કારણથી ઉપર કહેલો અર્થ કર્યો છે તો શુ સિદ્ધ અને સંસારી બન્ને પ્રકારના જીવોમાં હમેશા જ્ઞાન વિદ્યમાન રહે છે અને કોઈ પણ અવસ્થામાં ઉપયોગનો વિયોગ થતો નથી કોઈ સમય જ્ઞાનનો અભાવ થઈ જાય તો જીવમાં જીવત્વ જ ન રહે. એ કારણથી ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ. ૨૮ ગો. ૧૦) માં કહ્યુ છે કે—'જીવો ઉવઓગલક્ખણો' "જીવ ઉપયોગ લક્ષણવાળો છે."

અથવા—અતતિ અર્થાત્ જે પોતાના પર્યાયોને સતત પ્રાપ્ત થતો રહે છે, તે આત્મા છે

नन्वेवं गगनादीनामपि सततं स्वपर्यायप्राप्त्या तत्रात्मशब्दप्रयोगो दुर्वारः, कदापि पर्यायाभावे त्वपरिणामित्वेन तेषां वस्तुत्वमेव न स्यादिति चेन्मैवम्, सततस्वपर्यायप्राप्तिकर्तृत्वमिति व्युत्पत्तिनिमित्तमात्रमात्मशब्दस्य, न तु तत् प्रवृत्तिनिमित्तम्। प्रवृत्तिनिमित्तं चास्योपयोग एवेति गगनादिषु नात्मशब्दः प्रवर्तते।

यद्वा—सततं गच्छतीत्ययमर्थोऽपि न विरुध्यते संसारदशायां कर्मवशेन नानागतिषु सततगमनात्, मुक्तावस्थायामपि भूतकालिकसततगमनसद्भावात्।

शङ्का—आकाश आदि भी अपने अपने पर्यायों को निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं तो उनके लिये भी आत्मा शब्द का प्रयोग करना अनिवार्य होगा। किसी समय उन में पर्याय का अभाव हो तो वे अपरिणामी ठहरेंगे और तब उन में वस्तुत्व ही नहीं रहेगा।

समाधान—ऐसा मत कहिए। निरन्तर अपने पर्यायों को प्राप्त करना तो आत्मा शब्द का व्युत्पत्तिनिमित्त मात्र है, वह प्रवृत्तिनिमित्त नहीं है, प्रवृत्तिनिमित्त तो उपयोग ही है, अतः आकाश आदि में आत्मा शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता।

अथवा 'निरन्तर गमन करता है' इस अर्थ का भी विरोध नहीं है, क्यों कि संसार-अवस्था में कर्म के अधीन होकर आत्मा नाना गतियों में सदैव गमन करता रहता है, मुक्त अवस्था मे भी भूतकालीन सतत गमन विद्यमान है।

શંકા—આકાશ આદિ પણ પોત પોતાના પર્યાયોને નિરંતર પ્રાપ્ત થતા રહે છે, તો તેને માટે પણ આત્મા શબ્દનો પ્રયોગ કરવો અનિવાર્ય થશે કોઇ સમય તેનામાં પર્યાયનો અભાવ હોય તો તે અપરિણામી ઠરશે ત્યારે તેનામાં વસ્તુત્વ પણ નહિ રહે

સમાધાન—એ પ્રમાણે ન કહો નિરન્તર પોતાના પર્યાયોને પ્રાપ્ત કરવું તે તો આત્મ શબ્દની વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત માત્ર છે, પરંતુ તે પ્રવૃત્તિનિમિત્ત નથી, પ્રવૃત્તિનિમિત્ત તો ઉપયોગ જ છે, તેથી આકાશ આદિમાં આત્મ શબ્દનો પ્રયોગ થઈ શકતો નથી

અથવા—નિરન્તર ગમન કરે છે, આ અર્થનો પણ વિરોધ નથી કેમકે—સંસાર અવસ્થામાં કર્મના આધીન બનીને આત્મા અનેક ગતિઓમાં હમેશાં ગમન કરતો રહે છે મુક્ત-અવસ્થામાં પણ ભૂતકાલીન સતત ગમન વિદ્યમાન છે

आत्मनोऽस्तित्वसिद्धिः—

तावत् प्रत्यक्षप्रमाणत एवात्मनः सिद्धिरुच्यते—(१) किमयमात्मा-अस्ति नास्ति वेति संशयादिविज्ञानं स्वस्वात्मनि स्वसंवेदनप्रत्यक्षेण सिद्धम्, स एवात्मा, संशयादिविज्ञानस्यैव तदनन्यत्वेनात्मरूपत्वात्।

(२) तथा-आत्मानमाश्रित्यैव सुखदुःखादयः स्वस्वशरीर एव प्रत्यक्षेण संवेद्यन्ते।

(३) यथा-कृतवानहं, करोम्यहं, करिष्याम्यहम्, इत्यादिप्रकारेण योऽयम्-अहम्प्रत्ययः, एतस्मादपि प्रत्यक्ष एवायमात्मा। कथमसत्यात्मनि—

आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि—

सब प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण से ही आत्मा की सिद्धि कहते हैं—

(१) आत्मा है या नहीं है, इस प्रकार का संशय आदि ज्ञान अपनी अपनी आत्मा में स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से सिद्ध है। वही ज्ञान आत्मा है अर्थात् संशय आदि ज्ञान आत्मासे अभिन्न होने के कारण आत्मस्वरूप ही है।

(२) आत्मा को आश्रित करके ही दुःख-सुख आदि अपने२ शरीर में प्रत्यक्ष से जाने जाते हैं।

(३) अथवा-मैं कर चुका, मैं करता हूँ मैं करूँगा इत्यादि रूप से जो अहम्प्रत्यय होता है उससे भी आत्मा का प्रत्यक्ष होता है। आत्मा न होता तो आत्मा के विषय में अहम्प्रत्यय (मैं का ज्ञान) किस प्रकार हो सकता था? आत्मरूप विषय के

આત્માના અસ્તિત્વની સિદ્ધિ—

સૌથી પ્રથમ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી જ આત્માની સિદ્ધિ કહે છે—(૧) આત્મા છે કે નહિ, આ પ્રકારનું સંશય આદિ જ્ઞાન પોત પોતાના આત્મામાં સ્વસંવેદન પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે તે જ્ઞાન આત્મા છે અર્થાત્ સંશય આદિ જ્ઞાન આત્માથી અભિન્ન હોવાના કારણે આત્મસ્વરૂપ જ છે

(૨) આત્માના આશ્રિતપણાથી જ દુઃખ-સુખ આદિ પોત-પોતાના શરીરમાં પ્રત્યક્ષ જાણવામાં આવે છે.

(૩) અથવા-હું કરી ચૂક્યો હું કરું છું હું કરીશ, ઇત્યાદિરૂપથી જે અહંપ્રત્યય થાય છે તેથી પણ આત્માનું પ્રત્યક્ષપણું થાય છે આત્મા ન હોય તો આત્માના વિષયમાં અહંપ્રત્યય (હું પણાનું જ્ઞાન) કેવી રીતે થઈ શકે? આત્મરૂપ

अहमिति ज्ञानम् आत्मविषयकं जायते। आत्मरूपविषयाभावे विषयिणोऽनुत्थानप्रसंगात्। न च देह एवास्य ज्ञानस्य विषय इति वाच्यम्। जीवरहितेऽपि देहे तदुत्पत्तिप्रसंगात्। अस्मिन्नहम्प्रत्यय आत्मविषयके सति तु किमहस्मि नास्मीति सशयो नोपपद्यते, अहम्प्रत्ययविषयस्यात्मनः सद्भावादहमस्मीति निश्चय एव संभवति। आत्मास्तित्वसंशये तु कस्यायमहम्प्रत्ययः स्यात्?, निर्मूलत्वेन तदनुत्थानप्रसङ्गात्। यदि संशयी जीव एव नास्ति, तर्हि अस्ति नास्तीति संशयः कस्य भवतु। संशयो हि विज्ञानाख्यो गुण एव, न च गुणिनमन्तरेण गुणः सिध्यति।

अभाव में विषयी अर्थात् ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। शरीर ही इस ज्ञान का विषय है–अर्थात् 'अहम्' (मैं) का अर्थ आत्मा नहीं वरन् शरीर है, ऐसा कहना उचित नहीं, क्यों कि–ऐसा होता तो मृत शरीर में भी अहम्प्रत्यय होने लगता। आत्मा को विषय करनेवाले इस अम्हप्रत्यय की विद्यमानता में 'मैं हूँ या नहीं हूँ', इस प्रकार का सशय ही नहीं होता है, अहम्प्रत्यय के विषयभूत आत्मा का सद्भाव होने से 'मै हूँ' इस प्रकार का निश्चय ही हो सकता है। आत्मा के अस्तित्व के विषय में सशय किया जाय तो प्रश्न उपस्थित होता है कि यह अहम्प्रत्यय किसे होता है। विना कारण के ही तो उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि सशय करने वाला जीव ही नहीं है तो 'है या नहीं ?' इस प्रकार का सशय करता कौन है? सशय एक प्रकार का ज्ञान–गुण है और गुण, गुणी के अभाव में नहीं हो सकता।

વિષયના અભાવમા વિષયી અર્થાત્ જ્ઞાનની ઉત્પત્તિ નથી થઈ શકતી શરીર જ આ જ્ઞાનનો વિષય છે, અર્થાત્ 'અહમ્,' (હુ) નો અર્થ આત્મા નથી બલ્કે શરીર છે, એમ કહેવુ તે ઉચિત નથી, કેમકે જો એમ હોય તો મૃત શરીરમા અહમ્પ્રત્યય થઈ શકશે આત્માને વિષય કરવા વાળો આ–અહમ્પ્રત્યયની વિદ્યમાનતામા "હુ છુ કે નથી" આ પ્રકારનો સશય જ થતો નથી અહમ્પ્રત્યયના વિષયભૂત આત્માનો સદ્ભાવ હોવાથી "હુ છુ" આ પ્રકારનો નિશ્ચય જ થઈ શકે છે આત્માના અસ્તિત્વના વિષયમા સશય કરવામા આવે તો પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થાય છે કે આ અહમ્પ્રત્યય કોને થાય છે? કારણુ વિના તો તેની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી જો સશય કરવા વાળો જીવ નથી તો "હુ છુ કે નહિ" એ પ્રકારનો સશય કરનાર કોણુ છે? સશય એક પ્રકારનો જ્ઞાન–ગુણુ છે, અને ગુણુ ગુણીના અભાવમા થઈ શકતો નથી

न च देहोऽत्र गुणीति वाच्यम्, देहस्य मूर्तत्वात् जडत्वाच्च ज्ञानस्य चामूर्तत्वात् बोधरूपत्वाच्च। अहं नाहं चेतिवदतो 'माता मे वन्ध्या' इत्यादिवत् स्ववचनव्याघातः।

(४) यद्वा-आत्मा गुणी प्रत्यक्ष एव, स्मृति-जिज्ञासा-चिकीर्षा-जिगमिषा-संशयादिज्ञानविशेषाणां तद्गुणानां स्वात्मनि स्वसंवेदनप्रत्यक्षसिद्धत्वात्, इह यस्य गुणाः प्रत्यक्षाः स प्रत्यक्षो दृष्टः, यथा घटः, प्रत्यक्षगुणश्चात्मा, तस्मात् प्रत्यक्षः। यथा घटोऽपि गुणी रूपादिगुणप्रत्यक्षत्वादेव प्रत्यक्षः, तथा विज्ञानादिगुणप्रत्यक्षत्वादात्मापीति।

यहाँ यह कहना ठीक नहीं है कि—'देह गुणी है' क्यों कि देह मूर्त है और जड है जब कि ज्ञान अमूर्त है और चेतनरूप है। मूर्त गुणी का अमूर्त गुण नहीं हो सकता और न जड का गुण चेतना हो सकता है। इस कारण 'मैं हूँ या नहीं' इस प्रकार कहने वाले को 'मेरी माता वन्ध्या है' ऐसा कहने वाले के समान स्ववचनबाध दोष आता है।

(४) अथवा आत्मा गुणी प्रत्यक्ष से ही सिद्ध है, क्योंकि स्मृति, जिज्ञासा, करने की इच्छा, गमन की इच्छा संशय आदि ज्ञान—जो आत्मा के गुण हैं—अपनी आत्मा में प्रत्यक्ष से सिद्ध हैं, जिस पदार्थ के गुण प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं वह पदार्थ भी प्रत्यक्ष माना जाता है, जैसे घट, आत्माके गुण भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं इस कारण आत्मा प्रत्यक्ष है। घट के रूप आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से ही गुणी घट का प्रत्यक्ष होना देखा जाता है, इसी प्रकार विज्ञान आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से आत्मा भी प्रत्यक्ष है।

અહીં 'દેહ ગુણી છે' એમ કહેવું તે ઠીક નથી કારણ કે દેહ મૂર્ત છે અને જડ છે જ્યારે જ્ઞાન અમૂર્ત છે અને ચેતનરૂપ છે મૂર્ત ગુણીનો અમૂર્ત ગુણ હોઈ શકે નહિ. અને જડનો ગુણ ચેતન થઈ શકે નહિ. આ કારણથી "હું છું કે નહિ" એ પ્રમાણે કહેવાવાળાને 'મારી માતા વંધ્યા છે' એ પ્રમાણે કહેનારના જેવો સ્વવચનબાધા નામનો દોષ આવે છે

(૪) અથવા-આત્મા ગુણી પ્રત્યક્ષથી જ સિદ્ધ છે કેમકે-સ્મૃતિ, જીજ્ઞાસા કરવાની ઇચ્છા, ગમનની ઇચ્છા, સંશય આદિજ્ઞાન વગેરે જે આત્માના ગુણ છે તે પોતાના આત્મામાં પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે. જે પદાર્થનો ગુણ પ્રત્યક્ષથી પ્રતીત થાય છે તે પદાર્થ પણ પ્રત્યક્ષ માનવામાં આવે છે જેમ-ઘટ, આત્માનો ગુણ પ્રત્યક્ષથી પ્રતીત થાય છે તે કારણથી આત્મા પ્રત્યક્ષ છે ઘટના રૂપ આદિ ગુણો પ્રત્યક્ષ હોવાથી જ ગુણી ઘટનું પ્રત્યક્ષ હોવું જોવામાં આવે છે તે પ્રમાણે વિજ્ઞાન આદિ ગુણો પ્રત્યક્ષ હોવાથી આત્મા પણ પ્રત્યક્ષ છે.

अहमिति ज्ञानम् आत्मविषयकं जायते । आत्मरूपविषयाभावे विषयिणोऽनुत्थानप्रसंगात्। न च देह एवास्य ज्ञानस्य विषय इति वाच्यम्। जीवरहितेऽपि देहे तदुत्पत्तिप्रसंगात् । अस्मिन्नहम्प्रत्यय आत्मविषयके सति तु किमहमस्मि नास्मीति संशयो नोपपद्यते, अहम्प्रत्ययविषयस्यात्मनः सद्भावादहमस्मीति निश्चय एव संभवति। आत्मास्तित्वसंशये तु कस्यायमहम्प्रत्ययः स्यात्?, निर्मूलत्वेन तदनुत्थानप्रसङ्गात्। यदि संशयी जीव एव नास्ति, तर्हि अस्ति नास्तीति संशयः कस्य भवतु। संशयो हि विज्ञानाख्यो गुण एव, न च गुणिनमन्तरेण गुणः सिध्यति ।

अभाव मे विषयी अर्थात् ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। शरीर ही इस ज्ञान का विषय है-अर्थात् 'अहम्' (मैं) का अर्थ आत्मा नहीं वरन् शरीर है, ऐसा कहना उचित नहीं, क्यों कि-ऐसा होता तो मृत शरीर में भी अहम्प्रत्यय होने लगता। आत्मा को विषय करनेवाले इस अम्हप्रत्यय की विद्यमानता में 'मैं हूँ या नहीं हूँ', इस प्रकार का सशय ही नहीं होता है, अहम्प्रत्यय के विषयभूत आत्मा का सद्भाव होने से 'मै हूँ' इस प्रकार का निश्चय ही हो सकता है। आत्मा के अस्तित्व के विषय में सशय किया जाय तो प्रश्न उपस्थित होता है कि यह अहम्प्रत्यय किसे होता है। विना कारण के ही तो उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि सशय करने वाला जीव ही नहीं है तो 'है या नहीं?' इस प्रकार का सशय करता कौन है? सशय एक प्रकार का ज्ञान-गुण है और गुण, गुणी के अभाव में नहीं हो सकता।

વિષયના અભાવમા વિષયી અર્થાત્ જ્ઞાનની ઉત્પત્તિ નથી થઈ શકતી શરીર જ આ જ્ઞાનનો વિષય છે, અર્થાત્ 'અહમ્,' (હુ) નો અર્થ આત્મા નથી બલ્કે શરીર છે, એમ કહેવુ તે ઉચિત નથી, કેમકે જો એમ હોય તો મૃત શરીરમા અહમ્પ્રત્યય થઈ શકશે આત્માને વિષય કરવા વાળો આ-અહમ્પ્રત્યયની વિદ્યમાનતામા "હુ છુ કે નથી" આ પ્રકારનો સંશય જ થતો નથી અહમ્પ્રત્યયના વિષયભૂત આત્માનો સદ્ભાવ હોવાથી "હુ છુ" આ પ્રકારનો નિશ્ચય જ થઈ શકે છે આત્માના અસ્તિત્વના વિષયમા સશય કરવામા આવે તો પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થાય છે કે આ અહમ્પ્રત્યય કોને થાય છે? કારણ વિના તો તેની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી જો સશય કરવા વાળો જીવ નથી તો "હુ છુ કે નહિ" એ પ્રકારનો સશય કરનાર કોણ છે? સશય એક પ્રકારનો જ્ઞાન-ગુણ છે, અને ગુણ ગુણીના અભાવમા થઈ શકતો નથી

रूपादिगुणमात्रस्यैव प्रत्यक्षत्वात्। अन्यस्मिन् ज्ञातेऽन्यज्ज्ञात न भवति, यथा घटे ज्ञाते पटो न ज्ञायते। गुणा कदापि द्रव्यात् भिन्नतया सत्तां न लभन्ते, एवं द्रव्यमपि गुणेभ्यो भिन्नतया न सत्तां लभते। अय गुणः, अयं गुणीति नाममात्रतो भेदसत्वेऽपि न तत्त्वतो भेदः। यथा—अग्निर्गुणी स्वकीयादुष्णत्वगुणादत्यन्तभिन्न स्याच्चर्हि दाहकार्यं कर्तुमलो न भवनुयात्।

तथा—यद्यात्मा ज्ञानगुणादत्यन्तभिन्नो भवेत् तदा तस्य जडत्वापत्तिः स्यात्। तस्माद् द्रव्यगुणयोर्भेदो न कदाचिदासीत्, नाप्यस्ति, न च भविष्यतीति सिद्धम्।

तुष्यतु दुर्जनन्यायेन तव मते गुणेभ्यः भिन्नत्वाङ्गीकारेऽप्यात्मा प्रत्यक्षो मा

अन्य का ज्ञान होने से अन्य का बोध नहीं हो जाता। जैसे—घट के जाननेसे पट मालूम नहीं होता। गुण द्रव्य से भिन्न कदापि नहीं रह सकते, और द्रव्य भी गुणों से भिन्न कदापि नहीं रह सकता। यह गुण है, यह गुणी है इस प्रकारका भेद नाममात्रका है, वास्तव में गुण-गुणी में भेद नहीं है। अगर अग्नि गुणी अपने उष्णतागुण से अत्यन्त भिन्न होता तो वह दाह-कार्य (जलाने का काम) करने में असमर्थ होता।

दूसरी बात यह है कि—आत्मा यदि अपने ज्ञानगुण से भिन्न होता तो आत्मा में जडता आ जाती। अत एव द्रव्य और गुण का भेद न कभी था न है, और न होगा।

दुर्जनसन्तोषन्याय से, तुम्हारे मत के अनुसार कदाचित् यह मान लिया जाय कि आत्मा गुणों से भिन्न है और इस कारण आत्मा का प्रत्यक्ष भले ही न हो

घट ક્યારેય પ્રત્યક્ષ નથી થતો. અન્યનું જ્ઞાન થવાથી અન્યનો બોધ થતો નથી, જેમકે ઘટના જ્ઞાનથી પટ માલૂમ થતો નથી (પરતુ જ્ઞાન થતું નથી). ગુણ દ્રવ્યથી ભિન્ન કદાપિ રહી શકતો નથી. આ ગુણ છે અને આ ગુણી છે એ પ્રકારનો ભેદ નામમાત્રનો છે વાસ્તવિક રીતે ગુણ-ગુણીમાં ભેદ નથી અગર અગ્નિ ગુણી પોતાના ઉષ્ણતાગુણથી અત્યન્ત ભિન્ન થઈ જાય તો તે દાહકાર્ય (બાળવાનું કાર્ય) કરવામાં અસમર્થ થઈ જાય છે.

બીજી વાત એ છે કે-આત્મા જો પોતાના જ્ઞાનગુણથી ભિન્ન હોય તો આત્મામાં જડતા આવી જાય. એટલા માટે દ્રવ્ય અને ગુણનો ભેદ કોઈ પણ વખતે હતો નહિ છે નહિ અને થશે પણ નહિ

દુર્જનસંતોષ ન્યાયથી તમારા મત પ્રમાણે કદાચિત્ એમ માની લઈએ કે આત્મા ગુણોથી ભિન્ન છે અને તે કારણે આત્મા પ્રત્યક્ષ ભલે ન થાય તો પણ

न चाऽनैकान्तिकोऽयं हेतुः, यस्मादाकाशगुणः शब्दः प्रत्यक्षोऽस्ति, न पुनराकाशमिति वाच्यम्, शब्दस्याकाशगुणत्वाभावात्। शब्दो हि पुद्गलगुणः ऐन्द्रियकत्वाद् रूपादिवदिति।

अस्तु, गुणाः प्रत्यक्षाः, गुणिनस्तु प्रत्यक्षत्वे किं मानम्? उच्यते—गुणेभ्योऽनन्यो गुणीति ज्ञानादिगुणानां प्रत्यक्षत्वादेवात्माऽपि गुणी प्रत्यक्षेण ज्ञायते। यदि गुणेभ्योऽन्यो गुणी स्यात्, तदा घटादयोपि गुणिनः प्रत्यक्षा न भवेयुः,

---

शङ्का–आप का दिया हुआ हेतु अनैकान्तिक है, क्यों कि आकाश के गुण शब्द का तो प्रत्यक्ष होता है किन्तु आकाश का प्रत्यक्ष नहीं होता।

समाधान–ऐसा न कहिए, क्यों कि शब्द आकाश का गुण नहीं है। शब्द पुद्गल का गुण है, क्यों कि वह इन्द्रिय (श्रोत्रेन्द्रिय) का विषय है, जो इन्द्रिय का विषय होता है वह पौद्गलिक ही होता है, जैसे—रूप आदि

शङ्का–गुणों को प्रत्यक्ष मान ले किन्तु गुणी के प्रत्यक्ष होने में क्या प्रमाण है?

समाधान–गुण और गुणी का कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध है—गुणी, गुणों से अभिन्न होता है, अत एव गुणों का प्रत्यक्ष होने से आत्मा गुणी भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होता है। अगर गुणी, गुणों से भिन्न होता तो गुणी घट आदिका भी प्रत्यक्ष न होता, क्योंकि सिर्फ रूपादि गुणों से भिन्न घट का कभी प्रत्यक्ष नहीं होता।

શંકા—આપે જે હેતુ અહિં આપ્યો છે તે અનૈકાન્તિક છે, કેમકે આકાશનો ગુણ શબ્દ તે તો પ્રત્યક્ષ થાય છે, પરંતુ આકાશ પ્રત્યક્ષ થતું નથી

સમાધાન—એ પ્રમાણે ન કહો, કેમકે શબ્દ તે આકાશનો ગુણ નથી પણ શબ્દ તે પુદ્ગલનો ગુણ છે. કેમકે તે ઇન્દ્રિય (શ્રોત્રેન્દ્રિય)નો વિષય છે જે ઇન્દ્રિયનો વિષય હોય છે તે પૌદ્ગલિક જ હોય છે, જેમ–રૂપ આદિ

શંકા—ગુણોને પ્રત્યક્ષ માની લઇએ. પરંતુ ગુણીના પ્રત્યક્ષપણામા શુ પ્રમાણુ છે?

સમાધાન—ગુણ અને ગુણીનો કથંચિત્ તાદાત્મ્ય સંબંધ છે-ગુણી, ગુણોથી અભિન્ન હોય છે, એટલે ગુણોના પ્રત્યક્ષપણાથી આત્મા ગુણી પણ પ્રત્યક્ષ પ્રતીત થાય છે અગર જો ગુણી, ગુણોથી ભિન્ન હોત તો ગુણી ઘટ આદિ પણ પ્રત્યક્ષ થઇ શકત નહિ કેમકે માત્ર રૂપાદિ ગુણોજ પ્રત્યક્ષ હોય છે, રૂપાદિ ગુણોથી ભિન્ન

रूपादिगुणमात्रस्यैव प्रत्यक्षत्वात्। अन्यस्मिन् ज्ञातेऽन्यस्य ज्ञातं न भवति, यथा घटे ज्ञाते पटो न ज्ञायते। गुणाः कदापि द्रव्याद् भिन्नतया सत्तां न लभन्ते, एवं द्रव्यमपि गुणेभ्यो भिन्नतया न सत्तां लभते। अयं गुणः, अयं गुणीति नाममात्रतो भेदसत्त्वेऽपि न तत्त्वतो भेदः। यथा-अग्निर्गुणी स्वकीयादुष्णत्वगुणादत्यन्तभिन्नः स्यात्तर्हि दाहकार्यं कर्तुमसौ न प्रभवेत्।

तथा-यद्यात्मा ज्ञानगुणादत्यन्तभिन्नो भवेत् तदा तस्य जडत्वापत्तिः स्यात्। तस्माद् द्रव्यगुणयोर्भेदो न कदाचिदासीत्, नाप्यस्ति, न च भविष्यतीति सिद्धम्।

तुष्यतु दुर्जनन्यायेन तव मते गुणेभ्यः भिन्नत्वाङ्गीकारेऽप्यात्मा प्रत्यक्षो मा

अन्य का ज्ञान होने से अन्य का बोध नहीं हो जाता। जैसे-घट के जाननेसे पट मालूम नहीं होता। गुण द्रव्य से भिन्न कदापि नहीं रह सकते, और द्रव्य भी गुणों से भिन्न कदापि नहीं रह सकता। 'यह गुण है, यह गुणी है' इस प्रकारका भेद नाममात्रका है, वास्तव में गुण-गुणी में भेद नहीं है। अगर अग्नि गुणी अपने उष्णतागुण से अत्यन्त भिन्न होता तो वह दाह-कार्य (जलने का काय) करने में असमर्थ होता।

दूसरी बात यह है कि-आत्मा यदि अपने ज्ञानगुण से भिन्न होता तो आत्मा में जडता आ जाती। अत एव द्रव्य और गुण का भेद न कभी था, न है, और न होगा।

दुर्जनसन्तोषन्याय से, तुम्हारे मत के अनुसार कदाचित् यह मान लिया जाय कि आत्मा गुणों से भिन्न है और इस कारण आत्मा का प्रत्यक्ष भले [illegible] न हो

ઘટ ઢંકાયેલ પ્રત્યક્ષ નથી થતો. અન્યનું જ્ઞાન થવાથી અન્યનો બોધ થતો નથી, જેમકે ઘટના જ્ઞાનથી પટ માલૂમ થતો નથી (પરંતુ જ્ઞાન થતું નથી.). ગુણ, દ્રવ્યથી ભિન્ન કદાપિ રહી શકતો નથી. આ ગુણ છે અને આ ગુણી છે એ પ્રકારનો ભેદ નામમાત્રનો છે વાસ્તવિક રીતે ગુણ-ગુણીમાં ભેદ નથી. અગર અગ્નિ ગુણી પોતાના ઉષ્ણતાગુણથી અત્યન્ત ભિન્ન થઈ જાય તો તે દાહકાર્ય (બાળવાનું કાર્ય) કરવામાં અસમર્થ થઈ જાય છે

બીજી વાત એ છે કે-આત્મા જો પોતાના જ્ઞાનગુણથી ભિન્ન હોય તો આત્મામાં જડતા આવી જાય. એટલા માટે દ્રવ્ય અને ગુણનો ભેદ કોઈ પણ વખતે હતો નહિ, છે નહિ અને થશે પણ નહિ.

દુર્જનસંતોષ ન્યાયથી તમારા મત પ્રમાણે કદાચિત્ એમ માની લઈએ કે આત્મા ગુણોથી ભિન્ન છે અને તે કારણે આત્મા પ્રત્યક્ષ ભલે ન થાય તો પણ

भवतु, अस्तित्वं च तस्य निर्बाधमेव। ज्ञानादिगुणाः सन्ति यस्य स गुणिरूप आत्मा कथमपलप्येत।

ननु देह एव ज्ञानादिगुणाः उपलभ्यन्ते तदाश्रयतया देह एव रूपादीनां घट इव गुणी सिध्यति, न त्वात्मा। प्रयोगश्चैवम्–देहगुणा एव ज्ञानादयः, तत्रैवोपलभ्यमानत्वाद्, गौरकृशस्थूलतादिवदिति चेन्न, ज्ञानादयो गुणा न देह-सम्बन्धिनः, अमूर्तत्वाद्, अचाक्षुषत्वाद् वा, गगनवत्। द्रव्यविरहितो गुणो न भवति।

तथापि उसके अस्तित्व में कोई बाधा नही आती। जिस के ज्ञानादि गुण मौजुद है उस गुणीरूप आत्मा का अपलाप किस प्रकार किया जा सकता है?।

शङ्का—देह मे ही ज्ञानादि गुण पाये जाते है, अत इन गुणों का आधार गुणी देह ही है, जैसे–रूपादि गुणों का आधार घट है। आत्मा ज्ञानादि गुणों का आश्रयभूत गुणी नहीं है। अनुमान इस प्रकार है—ज्ञान आदि देह के गुण है, क्यों कि वे देह में ही उपलब्ध होते, जैसे–गौरपन, दुवलापन और स्थूलता आदि।

समाधान—यह कहना ठीक नहीं, ज्ञान आदि गुण देह के नहीं है, क्यों कि वे अमूर्त है और अचाक्षुष (जो आंखसे नहीं दीखता) हैं, जो अमूर्त और अचाक्षुष होते है वे देहके गुण नहीं होते, जैसे आकाश।

गुण, द्रव्य के विना रह नहीं सकते अत ज्ञान आदि गुणोंका आधारभूत कोई द्रव्य अवश्य होना चाहिए। ज्ञानादि गुणोंके अनुरूप जो अरूपी एव अचाक्षुष गुणी है वह देह से भिन्न आत्मा ही है।

આત્માના અસ્તિત્વમા કોઈ પ્રકારની હરકત આવતી નથી જેના જ્ઞાનાદિ ગુણ હૈયાત છે, તે ગુણીરૂપ આત્માનો અપલાપ–(છતી વસ્તુને નથી એમ કહેવુ તે) કેમ કરવામા આવે?

શ કા—દેહમા જ જ્ઞાનાદિ ગુણ દેખાય છે, તે કારણથી એ ગુણોનો–આધાર ગુણી દેહ જ છે, જેમ રૂપાદિ ગુણેનો આધાર ઘટ છે આત્મા જ્ઞાનાદિ ગુણોનો આશ્રયભૂત ગુણી નથી અનુમાન આ પ્રમાણે છે–જ્ઞાન આદિ દેહના ગુણ છે, કેમકે તે દેહમા જ ઉપલબ્ધ જણાય છે, જેમકે ગોરાપણુ, દુબલાપણુ અને સ્થૂળતા–જાડાપણું વગેરે

સમાધાન—એ પ્રમાણે કહેવુ તે યોગ્ય નથી, જ્ઞાન આદિ ગુણ તે દેહના ગુણ નથી, કેમકે તે અમૂર્ત્ત છે, અને અચાક્ષુષ છે (જે નેત્રથી દેખાતા નથી) જે અમૂર્ત્ત અને અચાક્ષુષ હોય છે તે દેહના ગુણ થઈ શકતા નથી, જેમ આકાશ ગુણ, દ્રવ્ય વિના રહી શકતા નથી, તે કારણથી જ્ઞાન આદિ ગુણોના આધારભૂત કોઈ દ્રવ્ય હોવું જોઇએ એટલા માટે જ્ઞાનાદિ ગુણોને અનુરૂપ જે અરૂપી અને અચાક્ષુષ ગુણી છે, તે દેહથી ભિન્ન આત્મા જ છે

तस्माद् ज्ञानादिगुणानामनुरूपो यो रूपरहितोऽपाश्रयश्च गुणी स देहाद् भिन्न आत्माऽस्तीति विज्ञेयं ।

न च ज्ञानादयो गुणा न देहसम्बन्धिन इत्यनुमानं प्रत्यक्षबाधितम्, ज्ञानादिगुणानां देह एव प्रत्यक्षेण ज्ञानसद्भावादिति वाच्यम्, अस्य प्रत्यक्षस्यानुमानबाधितत्वात्। शरीरेन्द्रियभिन्नं ज्ञानादिगुणवत्त्वमनुमानेन सिध्यति। तथाहि—शरीरेन्द्रियभिन्नो ज्ञानादिगुणवान् तदुपरमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात्। यो हि यदुपरमेऽपि यदुपलब्धमर्थमनुस्मरति, स तस्मादन्यो दृष्टः, यथा-पञ्चवातायनोपलब्धार्थानुस्मर्ता देवदत्तः, इत्यादि। केनचित् कारणेन दृष्टिशक्तिविघातेऽपि पूर्वदृष्टपदार्थानुस्मरणं भवतीत्यतो देहेन्द्रियादिभिन्न आत्मा गुणी सिध्यति।

ज्ञानादि गुण देहसम्बन्धी नहीं है यह अनुमान, प्रत्यक्ष से बाधित है, क्यों कि-प्रत्यक्षप्रमाण से वे देह में ही प्रतीत होते हैं यह कथन ठीक नहीं है, क्यों कि यह प्रत्यक्ष ही अनुमान से बाधित है। अनुमान से यह सिद्ध है कि-ज्ञान आदि गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियों से कोई भिन्न पदार्थ (आत्मा) ही है। अनुमान इस प्रकार है-ज्ञानादि गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियों से भिन्न है, क्यों कि उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है। जिसके नष्ट हो जाने पर भी जिसके द्वारा जाने हुए पदार्थ का जो स्मरण करता है वह उस से भिन्न होता है। जैसे-पांच खिडकियों द्वारा जाने हुए पदार्थों का स्मरण करने वाला देवदत्त है, उसको किसी कारण से देखने की शक्ति नष्ट हो जाने पर भी पहले देखे हुए पदार्थ का स्मरण होता है। इस से भलीभाँति सिद्ध है कि-देह और इन्द्रिय आदि से भिन्न आत्मा ही गुणी है।

જ્ઞાનાદિ ગુણ દેહસંબંધી નથી આવું જે તે અનુમાન પ્રત્યક્ષથી બાધિત છે કેમકે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી તે દેહમાં જ પ્રતીત થાય છે, તે કથન ઠીક નથી. કેમકે તે પ્રત્યક્ષ અનુમાનથી બાધિત છે અનુમાનથી એ સિદ્ધ છે કે જ્ઞાન આદિ ગુણોના આધાર શરીર અને ઇન્દ્રિયોથી કોઈ ભિન્ન પદાર્થ (આત્મા) જ છે અનુમાન આ પ્રમાણે છે—જ્ઞાનાદિ ગુણોનો આધાર શરીર અને ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન છે કેમકે તેના નષ્ટ થવા છતાંય તેના દ્વારા જાણેલા પદાર્થનું સ્મરણ હોય છે જેના નષ્ટ થયા પછી પણ, જેના દ્વારા જાણેલા પદાર્થ તેનું જે સ્મરણ કરે છે તે તેનાથી ભિન્ન હોય છે જેમ પાંચ બારીઓ દ્વારા જોએલા જાણેલા પદાર્થોનું સ્મરણ કરવા વાળો દેવદત્ત છે તેને કોઈ કારણથી દેખવાની શક્તિ નષ્ટ થઈ જવા છતાંય પ્રથમ દેખેલા પદાર્થોનું

भवतु, अस्तित्वं च तस्य निर्बाधमेव। ज्ञानादिगुणाः सन्ति यस्य स गुणिरूप आत्मा कथमपलप्येत।

ननु देह एव ज्ञानादिगुणाः उपलभ्यन्ते तदाश्रयतया देह एव रूपादीनां घट इव गुणी सिध्यति, न त्वात्मा। प्रयोगश्चैवम्-देहगुणा एव ज्ञानादयः, तत्रैवोपलभ्यमानत्वाद्, गौरकृशस्थूलतादिवदिति चेन्न, ज्ञानादयो गुणा न देह-सम्बन्धिनः, अमूर्तत्वाद्, अचाक्षुषत्वाद् वा, गगनवत्। द्रव्यविरहितो गुणो न भवति।

तथापि उसके अस्तित्व में कोई बाधा नही आती। जिस के ज्ञानादि गुण मौजुद हैं उस गुणीरूप आत्मा का अपलाप किस प्रकार किया जा सकता है?।

शङ्का—देह में ही ज्ञानादि गुण पाये जाते हैं, अत इन गुणों का आधार गुणी देह ही है, जैसे—रूपादि गुणों का आधार घट है। आत्मा ज्ञानादि गुणों का आश्रयभूत गुणी नहीं है। अनुमान इस प्रकार है—ज्ञान आदि देह के गुण हैं, क्यों कि वे देह में ही उपलब्ध होते, जैसे—गौरपन, दुवलापन और स्थूलता आदि।

समाधान—यह कहना ठीक नहीं, ज्ञान आदि गुण देह के नहीं है, क्यों कि वे अमूर्त हैं और अचाक्षुष (जो आंखसे नहीं दीखता) हैं, जो अमूर्त और अचाक्षुष होते हैं वे देहके गुण नहीं होते, जैसे आकाश।

गुण, द्रव्य के विना रह नहीं सकते अत ज्ञान आदि गुणोंका आधारभूत कोई द्रव्य अवश्य होना चाहिए। ज्ञानादि गुणोंके अनुरूप जो अरूपी एव अचाक्षुष गुणी हैं वह देह से भिन्न आत्मा ही है।

આત્માના અસ્તિત્વમા કોઈ પ્રકારની હરકત આવતી નથી જેના જ્ઞાનાદિ ગુણ હૈયાત છે, તે ગુણીરૂપ આત્માનો અપલાપ-(છતી વસ્તુને નથી એમ કહેવુ તે) કેમ કરવામા આવે?

શંકા—દેહમા જ જ્ઞાનાદિ ગુણ દેખાય છે, તે કારણથી એ ગુણોનો-આધાર ગુણી દેહ જ છે, જેમ રૂપાદિ ગુણોનો આધાર ઘટ છે આત્મા જ્ઞાનાદિ ગુણોનો આશ્રયભૂત ગુણી નથી અનુમાન આ પ્રમાણે છે-જ્ઞાન આદિ દેહના ગુણ છે, કેમકે તે દેહમા જ ઉપલબ્ધ જણાય છે, જેમકે ગોરાપણુ, દુબલાપણુ અને સ્થૂળતા--જાડાપણુ વગેરે

સમાધાન—એ પ્રમાણે કહેવુ તે યોગ્ય નથી, જ્ઞાન આદિ ગુણ તે દેહના ગુણ નથી, કેમકે તે અમૂર્ત્ત છે, અને અચાક્ષુષ છે (જે નેત્રથી દેખાતા નથી) જે અમૂર્ત્ત અને અચાક્ષુષ હોય છે તે દેહના ગુણ થઈ શકતા નથી, જેમ આકાશ. ગુણ, દ્રવ્ય વિના રહી શકતા નથી, તે કારણથી જ્ઞાન આદિ ગુણોના આધારભૂત કોઈ દ્રવ્ય હોવું જોઇએ એટલા માટે જ્ઞાનાદિ ગુણોને અનુરૂપ જે અરૂપી અને અચાક્ષુષ ગુણી છે, તે દેહથી ભિન્ન આત્મા જ છે

सात्मकं न भवति तत्रेष्टानिष्टप्रवृत्तिनिवृत्ती न भवतः, यथा घट इति। तथा च परशरीरे प्रवृत्तिनिवृत्ती दृश्येते तस्मात् तत् सात्मकम्, इति।

यद्वा-शरीरं सकर्तृकं, आदिमत्प्रतिनियताकारत्वात्, यत् पुनरकर्तृकं तत् आदिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति, यथा-अभ्रविकारः। यश्च कर्ता शरीरस्य, स आत्मा। मेर्वादावनैकान्तिकत्ववारणायादिमत्त्वविशेषणम्।

यद्वा-अस्तीन्द्रियाणामधिष्ठाता-आत्मा, तथानुमानप्रयोगश्चेत्थम्—

नहीं होता उसमें इष्ट-अनिष्ट की प्रवृत्ति-निवृत्ति भी नहीं होती, जैसे घट। दूसरे के शरीर में भी प्रवृत्ति-निवृत्ति देखी जाती है अतः वह सात्मक है।

(२) शरीर सकर्तृक (कर्ता से युक्त) है, क्यों कि वह आदिवाला और नियत आकार वाला है, जैसे घट। जो सकर्तृक नहीं होता वह आदि वाला और नियत आकार वाला नहीं होता जैसे मेघों का विकार (बनावट)। शरीर का जो कर्ता है वही आत्मा है। यहाँ नियत आकार वाले सुमेरु आदि से व्यभिचार (हेतु हो और साध्य न हो) निवारण करने के लिए 'आदि वाला' विशेषण लगाया गया है।

अथवा इन्द्रियोंका अधिष्ठाता आत्मा है, इस विषय में अनुमान का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए —

(આત્માથીયુક્ત) નથી તેમાં ઈષ્ટ-અનિષ્ટની પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિ પણ હોતી નથી, જેમકે-ઘટ, બીજાના શરીરમાં પણ પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિ જોવામાં આવે છે તેથી તે સાત્મક છે

(૨) શરીર સકર્તૃક (કર્તાથી યુક્ત) છે કેમકે તે આદિવાળું અને નિયત આકાર વાળું છે; જેમ ઘટ જે સકર્તૃક નથી હોતાં તે આદિવાળાં અને નિયમ આકાર વાળાં નથી હોતાં જેમ મેઘોનો વિકાર (બનાવટ) શરીરનો જે કર્તા છે તે આત્મા છે અહિં નિયત આકારવાળા સુમેરુ આદિથી વ્યભિચાર (હેતુ હોય અને સાધ્ય ન હોય) નિવારણ કરવા માટે 'આદિવાળા' વિશેષણ લગાડ્યું છે

અથવા-ઈન્દ્રિયોનો અધિષ્ઠાતા આત્મા છે. આ વિષયમાં અનુમાનનો પ્રયોગ આ પ્રમાણે કરવો જોઈએ-

एवं च प्रत्यक्षप्रमाणेनात्मनोऽस्तित्वं निरूपितम् ।

अथ ज्ञानादिगुणानां स्वात्मनि प्रत्यक्षतया तदनन्यभूतः स्वात्माऽपि प्रत्यक्षो भवतु, परशरीरे तु कथमात्मनोऽस्तित्वं विजानीयात् ? इति, उच्यते-यथा स्वदेहे प्रत्यक्षेणात्मा विज्ञायते, तथा परदेहेऽप्यनुमानतो विज्ञेयः ।

(१) परशरीरं सात्मकम् इष्टानिष्टयोः प्रवृत्तिनिवृत्तिदर्शनात्, यत्रेष्टानिष्टयो प्रवृत्तिनिवृत्ती दृश्येते, तत् सात्मकं दृष्टं यथा-स्वशरीरम्, तथा यत्

इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्मा का अस्तित्व निरूपण किया गया।

अनुमान से आत्मा की सिद्धि-

शङ्का-ज्ञान आदि गुणों का अपनी आत्मा में प्रत्यक्ष होने से उन गुणों से अभिन्न अपनी आत्मा को प्रत्यक्ष मान लिया जाय किन्तु दूसरे के शरीर में आत्मा का अस्तित्व कैसे जान सकते हैं ?

समाधान—जैसे-अपने शरीर मे प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्मा प्रतीत होता है, उसी प्रकार दूसरे के शरीर मे अनुमानप्रमाण से आत्मा समझना चाहिए ।

अनुमान प्रमाण इस प्रकार है—

(१) दूसरे का शरीर सात्मक (आत्मा से युक्त) है, क्यों कि उस की इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट मे निवृत्ति देखी जाती है। जहाँ इष्ट-अनिष्ट में प्रवृत्ति और निवृत्ति देखी जाती है, वह सात्मक होता है, जैसे-अपना शरीर। तथा जो सात्मक

સ્મરણ રહે છે તેથી બરાબર સિદ્ધ છે કે દેહ અને ઇન્દ્રિય આદિથી ભિન્ન આત્મા જ ગુણી છે

આ પ્રમાણે પ્રત્યક્ષપ્રમાણથી આત્માના અસ્તિત્વનુ નિરૂપણ કર્યું છે

અનુમાનથી આત્માની સિદ્ધિ—

શંકા—જ્ઞાન આદિ ગુણો પોતાના આત્મામા હોવાથી, તે ગુણોથી અભિન્ન પોતાના આત્માને તો પ્રત્યક્ષ માની લેવામાં આવે, પરતુ બીજાના શરીરમા આત્માનુ અસ્તિત્વ કેવી રીતે જાણી શકાય ?

સમાધાન—જેવી રીતે પોતાના શરીરમા પ્રત્યક્ષપ્રમાણથી આત્મા પ્રતીત થાય છે તે પ્રમાણે બીજાના શરીરમા અનુમાનપ્રમાણથી આત્મા સમજવો જોઈએ અનુમાનપ્રમાણ આ પ્રમાણે છે -

(૧) બીજાનુ શરીર સાત્મક (આત્માથીયુક્ત) છે, કેમકે તેની ઇષ્ટમા પ્રવૃત્તિ અને અનિષ્ટમા નિવૃત્તિ જોવામા આવે છે જ્યા ઇષ્ટ-અનિષ્ટમા પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિ જોવામા આવે છે તે સાત્મક હોય છે જેમ પોતાનુ શરીર. તથા જે સાત્મક

(५) यद्वा-देहादिकं विद्यमानभोक्तृकम्, भोग्यत्वात्, यथा-अन्नवस्त्रादिकम्। अन्नवस्त्रादीनां भोक्ता मनुष्योऽस्ति। यस्य च भोक्ता नास्ति तद् भोग्यमपि न भवति, यथा खरविषाणम्, भोग्यं च शरीरादिकं, तस्माद् विद्यमानभोक्तृकम्।

(६) यद्वा-अस्ति देहादिकं सस्वामिकं, संघातरूपत्वात्, मूर्तिमत्त्वात्, ऐन्द्रियत्वात्, चाक्षुषत्वात्, यथा-गृहादिकम्। गृहादीनां स्वामिनः देवदत्तादयः सन्ति। यत् पुनरस्वामिकं तत् संघातरूपं न भवति, मूर्तिमच्च भवति, ऐन्द्रियं न भवति, चाक्षुषं च न भवति, यथा-गगनकुसुमम्। देहादिकं, चास्ति संघातादिरूपम्, तस्माद् विद्यमानस्वामिकम्। यश्च देहादीनां स्वामी स चात्मेति।

(५) अथवा-देह आदि का भोक्ता कोई अवश्य है, क्यों कि वे भोग्य हैं जो भोग्य होते हैं उन का भोक्ता भी होता है, जैसे—अन्न, वस्त्र आदि का। अन्न-वस्त्र आदिका भोक्ता मनुष्य है। जिसका भोक्ता नहीं होता वह भोग्य भी नहीं होता जैसे गधे का सींग। शरीर आदि भोग्य हैं अतः उनका भोक्ता अवश्य है।

(६) अथवा-देह आदि का कोई स्वामी है, क्यों कि वे संघातरूप हैं, मूर्तिमान् हैं, इन्द्रियों के विषय हैं और चाक्षुष हैं, घर आदि के समान। घर आदि के स्वामी देवदत्त आदि हैं। जिसका कोई स्वामी नहीं होता वह संघातरूप नहीं होता मूर्तिमान् नहीं होता इन्द्रिय का विषय नहीं होता और चाक्षुष (आंख से दीखने लायक) भी नहीं होता, जैसे—आकाशपुष्प। देह आदि संघातरूप है, अतः उन का स्वामी अवश्य है। देह आदि का जो स्वामी है वही आत्मा है।

(५) અથવા-દેહ આદિનો ભોક્તા કોઈ અવશ્ય છે, કેમકે તે ભોગ્ય છે જે ભોગ્ય હોય છે તેનો ભોક્તા પણ હોય છે જેમકે અન્ન, વસ્ત્ર આદિનો. અન્ન-વસ્ત્ર આદિનો ભોક્તા મનુષ્ય છે જેનો ભોક્તા નથી તે ભોગ્ય પણ નથી, જેમ ગધેડાના શીંગ. શરીર આદિ ભોગ્ય છે તેથી તેનો ભોક્તા અવશ્ય છે

(६) અથવા દેહ આદિનો કોઈ સ્વામી છે કેમકે તે સંઘાતરૂપ છે મૂર્તિમાન છે ઈન્દ્રિયોનો વિષય છે અને ચાક્ષુષ છે ઘર આદિ પ્રમાણે. ઘર આદિનો સ્વામી દેવદત્ત આદિ છે જેનો કોઈ સ્વામી નથી તે સંઘાતરૂપ પણ નથી, અને તે મૂર્તિમાન પણ હોય નહિ ઈન્દ્રિયોનો વિષય પણ હોય નહિ અને ચાક્ષુષ (નેત્રથી જોઈ શકાય તેવા) પણ હોય નહિ, જેમકે આકાશપુષ્પ. દેહ આદિ સંઘાતરૂપ છે તેથી તેનો સ્વામી અવશ્ય છે, દેહ આદિનો સ્વામી છે તે આત્મા છે

(३) इन्द्रियं साधिष्ठातृकं, करणत्वात् , यथा चक्रचीवरमृत्सूत्रदण्डादयः, अस्ति हि चक्रचीवरादीनामधिष्ठाता कुलालः। यच्च निरधिष्ठातृकं तत् करणमपि न भवति, यथा—आकाशम् , यश्चेन्द्रियाणामधिष्ठाता स आत्मेति ।

(४) यद्वा—इन्द्रियविषयाणामादाता संभवति, इन्द्रियविषया शब्दादय आदातृसहिताः आदानादेयभावसद्भावात् , सदंशकलोहवत् । यथा लोके सदंशकलोहानामयस्कार आदाताऽस्ति । इन्द्रियविषयाणा चादानादेयभावो विद्यते, अतस्तेषामप्यादाताऽस्तीत्यनुमीयते । यत्र तु आदाता नास्ति, तत्रादानादेयभावोऽपि न विद्यते, यथा—आकाशे ।

---

(३) इन्द्रियाँ किसी सधिष्ठाता से युक्त है, क्यों कि—वे करण हैं, जैसे चक्र, चीवर, मृत्तिका, सूत और दण्ड आदि । चक्र, चीवर आदि का अधिष्ठाता कुमार है, जिस का कोई अधिष्ठाता नहीं होता वह करण भी नहीं होता, जैसे —आकाश । इन्द्रियों का जो अधिष्ठाता है, वही आत्मा है ।

(४) अथवा इन्द्रियों के विषय शब्द आदि आदातायुक्त (ग्रहण करने वाले से युक्त) है, क्यों कि उन मे आदान आदेयभाव मौजूद है, जैसे सडासी और लोहे में, तात्पर्य यह है कि—लोक में सडासी और लोहे में आदान (लेना) आदेयभाव (जो लिया जाय) प्रसिद्ध है और उन का आदाता लुहार है, इसी प्रकार इन्द्रियाँ तथा विषयों का भी आदान-आदेयभाव है, अत उनका भी कोई आदाता होना चाहिए । जहाँ आदाता नहीं होता वहाँ आदान—आदेयभाव भी नहीं होता, जैसे—आकाश में ।

---

(૩) ઇન્દ્રિયો કોઈ પણ અધિષ્ઠાતાથી યુક્ત છે, કેમકે તે કરણ છે, જેમકે ચક્ર, ચીવર, મૃત્તિકા, સૂત અને દંડ આદિ ચક્ર, ચીવર વગેરેનો અધિષ્ઠાતા કુંભાર છે, જેનો કોઈ અધિષ્ઠાતા હોય નહિ, તે કરણ પણ હોય નહિ, જેમકે-આકાશ ઇન્દ્રિયોનો જે અધિષ્ઠાતા છે, તે આત્મા છે

(૪) અથવા-ઇન્દ્રિયોના વિષય શબ્દ આદિ આદાનયુક્ત-(ગ્રહણ કરવાવાળા-યુક્ત) છે, કેમકે તેમા આદાન-આદેય ભાવ મોજુદ છે જેમ સાણસી અને લોહમા તાત્પર્ય એ છે કે લોકમા સાણસી અને લોહમા આદાન-આદેય ભાવ પ્રસિદ્ધ છે અને તેના આદાતા લુહાર છે, આ પ્રમાણે ઇન્દ્રિયો તથા વિષયોનો પણ આદાન-આદેય ભાવ છે તેથી તેનો પણ કોઈ આદાતા હોવો જોઈએ જ્યા આદાતા નથી, ત્યા આદાન-આદેય ભાવ પણ હોય નહિ, જેમ આકાશમા

पुद्गलसंघातोपगूढत्वात्, सशरीरत्वाच्च कथंचिन्मूर्तत्वादिधर्मयुक्त एवास्तीति।

(७) यद्वा-'जीव' इति पदं सार्थकं, व्युत्पत्तिमत्त्वे सति असमासपदत्वाद् एकपदत्वाद् घटादिपदवत्। घटादिपदं व्युत्पत्तिमद् असमासपदमेकपदं लोके दृष्टम्, तथा च जीवपदं, तस्मात् सार्थकम्। यत्तु सार्थकं नास्ति तद् व्युत्पत्तिमद् असमासपदमेकपदं च नास्ति, यथा-खरविषाणादिकं, डित्थादिकं च पदम्। जीवपदं च न तथा, तस्मात् सार्थकम्।

यद् व्युत्पत्तिमच्च भवति तदेकपदमपि सद् न सार्थकम्, यथा डित्थादिपदम्, इति हेतोरनैकान्तिकत्वापत्तिवारणाय व्युत्पत्तिमत्त्वविशेषणमुपात्तम्।

हुए हैं, इस लिए कोई दोष नहीं आता। संसारी आत्मा आठ कर्मों के समूह से युक्त होने के कारण तथा सशरीर होने के कारण मूर्तत्व आदि धर्मों से युक्त ही है।

(७) अथवा— 'जीव' पद का वाच्य अवश्य है, क्यों कि यह पद व्युत्पत्ति वाला होते हुए समासरहित है, एक पद है, घट आदि पदों के समान। घट वगैरह पद व्युत्पत्तिवाले असमासपद एक पद लोक में देखे जाते हैं अतः उनके वाच्य भी अवश्य हैं। 'जीव' पद भी ऐसा ही है, अतः यह भी सार्थक है। जो पद सार्थक नहीं होता वह व्युत्पत्तिवाला असमासपद, एक पद भी नहीं होता जैसे— 'खरविषाण' पद, अथवा 'डित्थ' पद, जीव पद ऐसा नहीं है अतः यह सार्थक है।

जो व्युत्पत्ति वाला नहीं होता वह एक पद होते हुए भी सार्थक नहीं होता, जैसे 'डित्थ' आदि पद। इस हेतु में अनैकान्तिकता निवारण करने के लिए 'व्युत्पत्ति

છીએ, એટલા માટે કોઈ દોષ આવતો નથી. સંસારી આત્મા આઠ કર્મોના સમૂહથી યુક્ત હોવાના કારણે તથા સશરીર હોવાના કારણે મૂર્તત્વ આદિ ધર્મોથી યુક્તજ છે.

(૭) અથવા જીવ પદનો વાચ્ય અવશ્ય છે કારણ કે આ પદ વ્યુત્પત્તિવાળું હોવા છતાંય સમાસરહિત છે એક પદ છે ઘટ આદિ પદોના સમાન. 'ઘટ' એ વ્યુત્પત્તિવાળું અસમાસ પદ એક પદ લોકમાં જોવામાં આવે છે, તે કારણથી તેનું વાચ્ય પણ અવશ્ય છે જીવ પદ પણ એવું જ છે તેથી તે પણ સાર્થક છે. જે પદ સાર્થક નથી તે વ્યુત્પત્તિવાળા અસમાસ પદ એક પદ પણ હોતું નથી જેમકે ખરવિષાણ (ગધેડાના શીંગ) પદ અથવા 'ડિત્થ' પદ. જીવ-પદ એવું નથી. તેથી તે સાર્થક છે.

જે વ્યુત્પત્તિવાળું હોતું નથી તે એક પદ હોવા છતાંય પણ સાર્થક નથી હોતું જેમ 'ડિત્થ' આદિ પદ.

આ હેતુમાં અનેકાન્તિકતા નિવારણ કરવા માટે 'વ્યુત્પત્તિવાળું' વિશેષણ

न च—आदिमत्प्रतिनियताकारत्वादिहेतुभिः शरीरादीनां कर्त्रादय एव सिध्यन्ति, न तु प्रस्तुत आत्मेति वाच्यम्। अन्यस्येश्वरादेर्युक्त्यसहत्वेन कर्तृत्वाद्यसंभवाद् देहादीनां कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता, स्वामी चायमात्मैवेति निश्चयात्।

ननु—घटादीनां कर्त्रादिरूपाः कुलालादयो मूर्तिमन्तः संघातरूपा अनित्यादिस्वभावाश्च दृष्टाः, इत्यतो जीवोऽप्येतादृश एव सिध्यति, एतद्विपरीतश्चास्माकं साधनीयः, इत्येवं साध्यविरुद्धसाधकतया हेतूनां विरुद्धत्वापत्तिरिति चेन्मैवम्, संसारिणमात्मानं साधयितुं प्रवृत्तानामस्माकमेतद्दोषासंभवात्। संसारी चात्माऽष्टविधकर्म-

पूर्वोक्त—'आदिमान होते हुए नियत आकार वाले होने से' इत्यादि हेतुओं से शरीर आदि के कर्ता आदि ही सिद्ध होते है, प्रस्तुत आत्मा सिद्ध नहीं होता, ऐसा नहीं कहना चाहिये क्यों कि—आत्मा से भिन्न ईश्वर आदिका कर्तापन युक्तिसङ्गत नही ठहरता, अत देह आदिका कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता और स्वामी आत्मा ही है, ऐसा निश्चय हो जाता है।

शङ्का—घट आदि के कर्ता कुभार वगैरह मूर्तिक, सघातरूप और अनित्य आदि स्वभाव वाले देखे जाते है, अत जीव भी ऐसा ही सिद्ध होता है, मगर आपको इस से विपरीत धर्मोंवाला आत्मा सिद्ध करने के कारण पूर्वोक्त हेतुओं में विरुद्ध दोष आता है।

समाधान—ऐसा मत कहो। हम ससारी आत्मा सिद्ध करने के लिए उद्यत

પૂર્વોક્ત—'આદિમાન હોવા છતાય નિયત આકારવાળા હોવાથી' ઇત્યાદિ હેતુઓથી શરીર આદિના કર્તા આદિ જ સિદ્ધ હોય છે પ્રસ્તુત આત્મા સિદ્ધ થતો નથી એમ નહિ કહેવુ જોઈએ, કેમકે આત્માથી ભિન્ન ઈશ્વર આદિનુ કર્તાપણુ યુક્તિ સગત થતુ નથી, તેથી દેહ આદિનો કર્તા, અધિષ્ઠાતા, આદાતા, ભોકતા અને સ્વામી આત્મા જ છે એમ નિશ્ચય થઈ જાય છે

શકા—ઘટ આદિના કર્તા કુભાર વગેરે મૂર્તિક, સઘાતરૂપ અને અનિત્ય આદિ સ્વભાવવાળા જોવામા આવે છે, તેથી જીવ પણ એવો જ સિદ્ધ થાય છે પરતુ તમને તેનાથી વિપરીત ધર્મોવાળો આત્મા સિદ્ધ કરવો છે, એવી સ્થિતિમા સાધ્યથી વિરૂદ્ધ સિદ્ધ કરવાના કારણે પૂર્વોકત હેતુઓમા વિરૂદ્ધતા દોષ આવે છે

સમાધાન—એ પ્રમાણે ન કહો, અમે સસારી આત્મા સિદ્ધ કરવા માટે તૈયાર થયા

भिन्नता प्रतीयते। प्रकृतेऽपि प्राणी, भूत, जीवः, सत्त्व, इत्यादयो जीवशब्दस्य पर्यायाः, शरीर वपु, कायो, देह, गात्रमित्यादयस्तु शरीरशब्दपर्याया 'अयं जीवस्तस्मान्न हन्तव्य' इत्यनेनापि देहस्थितस्य प्राणिन एव हिंसा निषिध्यते।

आप्तागमस्तु समस्त एवात्मानं बोधयति, आत्मतत्त्वस्यैव सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रार्थं तस्य प्रवृत्तत्वात्। तथापि कानिचिदागमवचनानि प्रमाणतया प्रदर्शयामः

'से आयावादी' इति प्रस्तुतमेव वचनं तावद् गृहाण। 'से ज पुण

शब्द अलग है, इस लिए घटका अर्थ और आकाश का अर्थ अलग-अलग है। इसी प्रकार जीव के पर्यायवाचक प्राणी, भूत जीव सत्त्व आदि शब्द अलग हैं और देह के पर्यायवाचक शरीर, वपु, काय गात्र आदि भिन्न हैं, अत इन दोनों का अर्थ भी अलग होना चाहिए। 'यह जीव है अत हनन करने योग्य नहीं है' इस वाक्य द्वारा देह में स्थित प्राणी की ही हिंसा का निषेध किया जाता है।

आगम से आत्मा की सिद्धि-

आप्त पुरुष द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण आगम आत्मा का बोधक है। आत्मतत्त्व के सम्यग् दर्शन ज्ञान और चारित्र के लिए ही आगम की प्रवृत्ति होती है फिर भी आगम के कतिपय वाक्य प्रमाणरूप में प्रदर्शित करते हैं —

सब से पहले- 'से आयावादी', इस प्रस्तुत वाक्य को ही लीजिए

प्रमाणे जीवनां पर्यायवाचक-प्राणी भूत, जीव सत्त्व आदि शब्द अलग छे अने देहना पर्यायवाचक-शरीर, वपु काय, गात्र आदि भिन्न छे ते माटे बन्नेनो अर्थ पण अलग थवो जोइये. "आ जीव छे तेथी हनन करवा योग्य नथी" आ वाक्य द्वारा देहमां रहेला प्राणीनी ज हिंसानो निषेध करवामां आव्यो छे

आगमथी आत्मानी सिद्धि—

आप्त पुरुष द्वारा प्रणीत सपूर्ण आगम आत्मानुं बोधक छे आत्मतत्त्वना सम्यग्दर्शन, ज्ञान अने चारित्र माटे ज आगमनी प्रवृत्ति होय छे. तो पण आगमना केटलाक वाक्य प्रमाणरूपमां प्रदर्शित करे छे—

सौथी प्रथम 'से आयावादी' आ प्रस्तुत-चालु वाक्यने ज ग्रहण करो 'से जं पुण

यच्चैकपदं नास्ति किन्तु सामासिकम्, तदपि व्युत्पत्तिमत्त्वे सत्यपि सार्थकं नास्ति, यथा खरविषाणादिकमिति। तत्रानैकान्तिकत्वापत्तिदोषस्तत्परिहारार्थमेकपदत्वमिति।

ननु देह एव जीवपदस्यार्थोऽस्तु कथं पुनरात्मा विज्ञायेत। देहरूपेऽर्थे जीवशब्दप्रयोगोऽपि दृष्टः, यथा–'अयं जीवः, तस्मान्न हन्तव्यः' इति। अतो देह एव जीवशब्दार्थतया ग्रहीतव्यः, इति चेन्न, पर्यायशब्दभेदाद् देहजीव-शब्दयोरर्थो भिन्न एवेति बोधनात्, यथा घटाकाशयोः, तत्र–घटकुम्भकलशादयो घटशब्दस्य पर्यायाः, आकाशनभोव्योमादयस्त्वाकाशशब्दपर्यायाः, अतस्तयोरर्थे

वाला' विशेषण लगाया है। तथा जो एक पद नहीं है किन्तु समासयुक्त पद है वह व्युत्पत्तिवाला होते हुए भी सार्थक नहीं होता। जैसे खरविषाण आदि पद। इस में अनैकान्तिकता हटाने के लिए 'एकपद' का प्रयोग किया गया है।

शङ्का–जीव पदका अर्थ देह ही क्यों न मान लिया जाय? आत्मा अर्थ कैसे समझा जाय? देह के अर्थ में जीव शब्दका प्रयोग देखा भी जाता है, जैसे 'यह जीव है, अत हनन करने योग्य नहीं है'। इस लिए जीव शब्द का अर्थ शरीर ही लेना चाहिए।

समाधान–देहके और जीव के पर्यायवाची शब्द अलग अलग हैं, अत दोनों का अर्थ अलग–अलग ही मानना चाहिए। जैसे घटके पर्यायवाची कुम्भ, कलश आदि शब्द अलग हैं, और आकाश के पर्यायवाची शब्द नभ, व्योम, गगन आदि

આપ્યુ છે તથા જે એક પદ નથી પરતુ સમાસયુક્ત પદ છે તે વ્યુત્પત્તિવાળુ હોવા છતાય સાર્થક થતુ નથી જેમ ખરવિષાણ આદિ પદ, તેમા અનૈકાન્તિકતા હઠાવવા માટે–'એક પદ'નો પ્રયોગ કરેલો છે

શ કા—'જીવ' પદનો અર્થ દેહ શા માટે માનવામા નથી આવતો? આત્મા અર્થ કેમ સમજાય છે? દેહના અર્થમા જીવ શબ્દનો પ્રયોગ જોવામા પણ આવે છે. જેમ–'આ જીવ છે, તેથી હણવા યોગ્ય નથી' એટલા માટે જીવ શબ્દનો અર્થ શરીર જ લેવો જોઈએ

સમાધાન—દેહ અને જીવના પર્યાયવાચી શબ્દ જૂદા જૂદા છે તેથી એ બંનેનો બોધ જૂદો–જૂદો માનવો જોઈએ જેમ ઘટના પર્યાયવાચી કુભ, કલશ આદિ શબ્દ અલગ છે, અને આકાશના પર્યાયવાચી શબ્દ–નભ, વ્યોમ, ગગન આદિ શબ્દ અલગ છે એ કારણથી ઘટનો અર્થ અને આકાશનો અર્થ અલગ છે એ

चेतना चात्मद्रव्यादात्मगतान्यसुखादिगुणतश्चानपायिनो । तामेवाश्रित्य ज्ञानदर्शनादिविविधोपयोगानां भिन्नभिन्नसमयवर्तिनां त्रैकालिकः प्रवाहो भवति । तस्याश्चेतनायाः कार्यरूपः पर्यायप्रवाहः स्वरूपेणोपयोग एव ।

उपयोगात्मकपर्यायप्रवाह इव सुखदुःखसंवेदनात्मकपर्यायप्रवाहस्तथा भव्यत्वात्मकपर्यायप्रवाहादयोऽनन्तपर्यायप्रवाहाः सह-युगपत् प्रवर्तन्ते । अतश्चेतनागुण इवात्मनि आनन्दवीर्यप्रभृत्येकैकगुणस्वीकरणीयतयाऽनन्तगुणाः सिध्यन्ति ।

आत्मनि चेतनाऽऽनन्दवीर्यादिगुणानां भिन्नभिन्ना विविधपर्याया एकस्मिन् समये समुपलभ्यन्ते परन्त्वेकस्य चेतनागुणस्य विविधाऽउपयोगपर्याया

के द्वारा आत्मा नाना प्रकार के उपयोगों के रूप में परिणत होता है किन्तु चेतना, आत्मद्रव्य के रूप में तथा आत्मा में रहने वाले सुख आदि गुणों के रूप में सदा विद्यमान रहती है—कभी नष्ट नहीं होती उस के आधार पर ज्ञान दर्शन आदि भिन्न भिन्न समयों में होने वाले अनेक उपयोगों का प्रवाह बहता है। उस चेतना का कार्यरूप पर्याय–प्रवाह स्वरूपसे उपयोग ही है।

उपयोगात्मक पर्याय–प्रवाह के समान सुख–दुःखसंवेदनरूप पर्याय का प्रवाह है, तथा भव्यत्वात्मक पर्यायप्रवाह आदि अनन्त पर्याय–प्रवाह एक साथ जारी रहते हैं अतः चेतनागुण के समान आत्मा में आनन्द, वीर्य आदि एक एक गुण स्वीकार करने योग्य होने से अनन्त गुण सिद्ध होते हैं।

आत्मा में चेतना सुख वीर्य आदि गुणों की भिन्न२ विविध पर्यायें एक ही समय में उपलब्ध होती हैं, किन्तु एक ही समय में अनेक चेतनागुण की विविध

તથા આત્મામાં રહેવાવાળા સુખ આદિ ગુણોના રૂપમાં હમેશાં વિદ્યમાન રહે છે. કોઇ વખત પણ નાશ પામતી નથી. તેના આધાર પર જ્ઞાન, દર્શન આદિ ભિન્ન ભિન્ન સમયોમાં થવાવાળા અનેક ઉપયોગોનો પ્રવાહ વહેતો રહે છે તે ચેતનાના કાર્યરૂપ પર્યાયપ્રવાહ સ્વરૂપથી ઉપયોગ જ છે

ઉપયોગાત્મક પર્યાય–પ્રવાહના સમાન સુખ–દુઃખસંવેદનરૂપ પર્યાયનો પ્રવાહ છે તથા ભવ્યત્વાત્મક પર્યાય–પ્રવાહ આદિ અનંત પર્યાયપ્રવાહ એક સાથે જારી રહે છે તેથી ચેતનાગુણ સમાન આત્મામાં આનંદ વીર્ય આદિ એક–એક ગુણ સ્વીકાર કરવા યોગ્ય હોવાથી અનંત ગુણ સિદ્ધ થાય છે

આત્મામાં ચેતના, સુખ, વીર્ય આદિ ગુણોની ભિન્ન–ભિન્ન વિવિધ પર્યાયો એક સમયમાં ઉપલબ્ધ થાય છે પરંતુ એક સમયમાં એકલા ચેતનાગુણની

जाणेज्जा ' इत्यादि–' सोऽहं ' इत्यन्तं प्रागुव्याख्यातं च (आचा० १ अ०१ उ०)। ' अत्थि आया ' (अस्त्यात्मा) इति । ' अत्थि जीवा ' (सन्ति जीवाः) इति। ' एगे आया ' (एक आत्मा) (स्था० १ स्था० १ उ०) इति ।

" कइविहा णं भंते ! दव्वा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–जीवदव्वा य, अजीवदव्वा य " (अनु सू. १४१)

इत्यादीन्यनुसन्धेयानि। अन्येऽपि सांख्यादयः प्रायश स्वीकुर्वन्त्येव शरीराद्भिन्नतयाऽऽत्मनोऽस्तित्वमिति ।

आत्मनो द्रव्यत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा द्रव्यमस्ति, चेतनाद्यनन्तगुणवत्त्वात्, ज्ञानदर्शनलक्षणविविधोपयोगाद्यनन्तपर्यायवत्त्वाच्च । चेतनाद्वारेणात्मा नानारूपोपयोगरूपेण परिणमते।

' से जं पुण जाणेज्जा ' से लेकर ' सोऽहं ' तक पहले व्याख्यान किया जा चुका है। (आचा १ अ १ उ) तथा 'अत्थि आया' 'अत्थि जीवा' 'एगे आया' (स्था १ स्था १ उ) तथा ' कइविहा णं भंते दव्वा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तजहा–जीवदव्वा य अजीवदव्वा य, (अनु सू. १४१) इत्यादि अनेक आगमवाक्य समझ लेने चाहिए। दूसरे सांख्य वगैरह भी प्राय शरीर से भिन्न आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करते है ।

आत्माका द्रव्यत्वनिरूपण—

आत्मा द्रव्य है, क्यों कि वह चेतना आदि अनन्त गुणों से युक्त है और वह ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग आदि अनन्त पर्यायों वाला भी है। चेतना

जाणेज्जा' थी लईने 'सोऽहं' सुधी पहेला व्याख्यान करी दीधु छे (आचा १–अ १–उ) तथा 'अत्थि आया' 'अत्थि जीवा' 'एगे आया' (स्था १ स्था १ उ) 'कइविहा णं भंते ! दव्वा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–जीवदव्वा य अजीवदव्वा य' (अनु सू १४१) ईत्यादि अनेक आगम–वाक्य समजी लेवा जोईए बीजा सांख्य शास्त्र वगेरे पण प्राय शरीरथी भिन्न आत्माना अस्तित्वनो स्वीकार करे छे.

આત્માનુ દ્રવ્યત્વનિરૂપણ—

આત્મા દ્રવ્ય છે, કેમકે તે ચેતના આદિ અનન્ત ગુણોથી યુકત છે, અને તે જ્ઞાનોપયોગ તથા દર્શનોપયોગ આદિ અનન્ત પર્યાયો વાળો પણ છે ચેતનાદ્વારા આત્મા નાના પ્રકારના રૂપમા પરિણત થાય છે. પરતુ ચેતના આત્મદ્રવ્યના રૂપમા

अनन्तगुणानामखण्डसमुदाय एव द्रव्यम्, तथाप्यात्मनश्चेतनाऽऽनन्द-चारित्रवीर्यादयो गुणा परिमिता एव साधारणधियां छद्मस्थानां ज्ञेया भवन्ति, न तु सर्वे गुणाः। इदमत्र कारणम्-विशिष्टज्ञानमन्तरेणात्मनः सर्वे पर्यायप्रवाहा विज्ञातुमशक्याः भवन्ति। यो य पर्यायप्रवाहः साधारणबुद्ध्या ज्ञातु शक्यते तत्कारणीभूतानां गुणानां व्यवहारः क्रियते, अतस्ते गुणा व्यवहार्या भवन्ति। यथा-आत्मनश्चेतनाऽऽनन्दचारित्रवीर्यादयो गुणा व्यवहार्याः सन्ति। शेषास्तु सर्वे केवलिगम्या इति।

त्रैकालिकानामनन्तपर्यायाणामेकैकप्रवाहस्य कारणीभूतश्चैकैकगुणोऽस्ति, तादृशानन्तगुणानां समुदायो द्रव्यम्। एतदपि कथञ्चिद् भेदविवक्षया। अभेद-

अनन्त गुणों का अखण्ड समुदाय ही द्रव्य है फिर भी आत्मा के चेतना सुख, चारित्र वीर्य आदि गुण साधारणबुद्धि वाले छद्मस्थ के द्वारा परिमित ही जाने जाते है, सब गुण नहीं जाने जाते। इस का कारण यह है कि-विशिष्ट ज्ञान के बिना आत्मा के समस्त पर्याय-प्रवाहों को जानना अशक्य है। जो जो पर्याय-प्रवाह साधारण बुद्धि के द्वारा जाना जा सकता है उसके कारणभूत गुणो का व्यवहार किया जाता है, अत एव वे गुण व्यवहार्य होते है, जैसे-आत्मा के चेतना, सुख चारित्र और वीर्य आदि गुण व्यवहार्य होते हैं। शेष सब केवलिगम्य है।

तीन काल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों के एक-एक प्रवाह का कारण एक-एक गुण है, और ऐसे अनन्त गुणों का समुदाय द्रव्य है। यह कथन क्वचित् भेद

અનન્ત ગુણોના અખંડ સમુદાય જ દ્રવ્ય છે, તો પણ આત્માના ચેતના સુખ ચારિત્ર, વીર્ય આદિ ગુણ સાધારણ બુદ્ધિવાળા છદ્મસ્થોદ્વારા પરિમિત-મર્યાદિત જ જાણવામાં આવે છે પરંતુ સર્વ ગુણ જાણવામાં આવતા નથી તેનું કારણ એ છે કે-વિશિષ્ટ જ્ઞાન વિના આત્માના સમસ્ત પર્યાય-પ્રવાહોને જાણવા અશક્ય છે જે જે પર્યાય-પ્રવાહ સાધારણ બુદ્ધિવાળા દ્વારા જાણી શકાય છે તેના કારણભૂત ગુણોનો વ્યવહાર કરવામાં આવે છે એ કારણથી તે ગુણ વ્યવહાર્ય થાય છે જેમ આત્માનો ચેતના સુખ, ચારિત્ર અને વીર્ય આદિ ગુણ વ્યવહાર્ય થાય છે બાકી સર્વ કેવલિગમ્ય છે

ત્રણ કાળ સંબંધી અનન્ત પર્યાયોના એક-એક પ્રવાહનું કારણ એક-એક ગુણ છે અને એવા અનન્ત ગુણોનો સમુદાય તે દ્રવ્ય છે. આ કથન ક્વચિત્

एकस्मिन् समये न समुपलभ्यन्ते, तथैकस्यानन्दगुणस्य वा विविधा वेदनपर्याया एकस्मिन् समये नोपलभ्यन्ते ।

प्रत्येकगुणस्यैकस्मिन् समये एक एव पर्यायः प्रकटीभवति । यथा-जलावस्थितस्यापि नरस्य शीतोष्णोपयोगौ न युगपद् भवतः । उष्णोपयोगसमये शीतोपयोगो नोपलभ्यते, शीतोपयोगसमये चोष्णोपयोगोपि नैवेति ।

आत्मा नित्यः । तस्य चेतनादिगुणा अपि नित्याः । परन्तु चेतनाजन्य उपयोगपर्यायो न नित्यः, सतु सदैवोत्पादविनाशशालितया व्यक्तिरूपेणानित्यः । उपयोगपर्यायप्रवाहस्तु त्रैकालिकतया नित्य इति ।

उपयोगरूप पर्यायें उपलब्ध नहीं होती । उसी प्रकार एक ही समयमें अकेले आनन्दगुणकी भी विविध वेदनरूप पर्यायें उपलब्ध नहीं होती ।

प्रत्येक गुण की एक समय में एक ही प्रर्याय प्रकट होती है, परन्तु जैसे-जल में स्थित पुरुष के शीत और उष्ण, दोनों उपयोग एक साथ नही हो ते । उष्णोपयोग के समय शीतोपयोग नही पाया जाता, और शीतोपयोग के समय उष्णोपयोग नही पाया जाता ।

आत्मा नित्य है, उसके चेतना आदि गुण भी नित्य है, परन्तु चेतना-जन्य उपयोग-पर्याय नित्य नहीं है, वह सदैव उत्पन्न और विनष्ट होती रहती है, अत व्यक्तिरूपसे अनि य है, उपयोग-पर्याय का प्रवाह त्रिकालवर्ती होनेके कारण नित्य है ।

વિવિધ ઉપયોગરૂપ પર્યાયો ઉપલબ્ધ થતી નથી એજ પ્રમાણે એક જ સમયમા એકલા આનદ ગુણની પણ વિવિધ વેદનરૂપ પર્યાયો ઉપલબ્ધ થતી નથી.

પ્રત્યેક ગુણની એક સમયમા એકજ પર્યાય પ્રગટ થાય છે, જેમ જલમા ઉભા રહેલા પુરૂષને શીત અને ઉષ્ણ, એ બને ઉપયોગ એક સાથે થશે નહિ, ઉષ્ણોપયોગના સમયે શીતોપયોગ થશે નહિ અને શીતોપયોગના સમયે ઉષ્ણોપયોગ જણાશે નહી

આત્મા નિત્ય છે, તેના ચેતના આદિ ગુણ પણ નિત્ય છે, પરતુ ચેતનાજન્ય ઉપયોગ-પર્યાય નિત્ય નથી, તે હમેશા ઉત્પન્ન અને નાશ થતી રહે છે, તેથી વ્યક્તિરૂપથી અનિત્ય છે, તો પણ ઉપયોગ-પર્યાયનો પ્રવાહ ત્રિકાલવર્તી હોવાથી નિત્ય છે

आत्मनः स्वरूपम्–

आत्मनः स्वरूपं तावदुच्यते–

आत्मा—(१)–जीवः (२)–नित्यः (३)–चेतनावान्, (४)–उपयोगवान्, (५)–परिणामी, (६)–प्रभुः, (७)–कर्ता, (८)–साक्षाद्भोक्ता, (९)–स्वशरीर-परिमाणः, (१०)–अमूर्तः, (११)–प्रतिशरीरं भिन्नः, (१२)–पौद्गलिककर्मसंयुक्तः, (१३)–ऊर्ध्वगतिशीलश्च ।

तत्राऽऽत्मनो जीवत्वादिस्वरूपं निरूप्यते—

(१) जीवत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन सत्ता-चैतन्य-ज्ञानादिरूपैः शुद्धप्राणैः, तथा

आत्मा का स्वरूप–

अब आत्मा का स्वरूप कहते हैं —

आत्मा–(१)–जीव है, (२)–नित्य है, (३)–चेतनावान् है, (४)–उपयोगवान् है, (५)–परिणामी है (६)–प्रभु है (७)–कर्ता है, (८)–साक्षात् भोक्ता है, (९)–अपने शरीर के बराबर है, (१०)–अमूर्त है, (११)–प्रत्येक शरीर से भिन्न है, (१२)–पौद्गलिक कर्मों से युक्त है, और (१३)–ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला है ।

उन में अब आत्मा के जीवत्वादि स्वरूप का निरूपण करते हैं–

(१) जीवत्व का निरूपण–

आत्मा निश्चयनय से सत्ता चैतन्य और ज्ञान आदिरूप शुद्ध प्राणों से तथा

આત્માનુ સ્વરૂપ—

હવે આત્માનુ સ્વરૂપ કહે છે—

આત્મા-(૧) જીવ છે (૨) નિત્ય છે, (૩) ચેતનાવત છે (૪) ઉપયોગવત છે (૫) પરિણામી છે (૬) પ્રભુ છે (૭) કર્તા છે (૮) સાક્ષાત્ ભોક્તા છે (૯) પોતાના શરીર બરાબર છે, (૧૦) અમૂર્ત છે (૧૧) પ્રત્યેક શરીરમાં ભિન્ન ભિન્ન છે (૧૨) પૌદ્ગલિક કર્મોથી યુક્ત છે અને (૧૩) ઊર્ધ્વગમન સ્વભાવવાળો છે

તેમા આત્માના જીવત્વાદિ સ્વરૂપનુ નિરૂપણ કરવામાં આવે છે—

(૧) જીવત્વ નિરૂપણ—

આત્મા નિશ્ચયનયથી સત્તા, ચૈતન્ય અને જ્ઞાન આદિરૂપ શુદ્ધ પ્રાણોથી, તથા

दृष्ट्या तु पर्यायाः स्वस्वकारणीभूतस्य गुणस्य स्वरूपाः, गुणा अपि द्रव्यस्वरूपा इति गुणपर्यायात्मकमेव द्रव्यमित्युच्यते ।

द्रव्येषु सर्वे गुणा एकरूपा न सन्ति । तत्र कतिचन साधारणाः अनेकद्रव्यवर्तिनः सर्वद्रव्यवर्तिनश्च । यथा—अस्तित्व-प्रदेशवत्त्व-ज्ञेयत्वादयः सर्वद्रव्यवर्तिनः, निष्क्रियत्वाऽचेतनत्वाऽरूपित्वादयोऽनेकद्रव्यवर्तिनः । कतिचिदसाधारणा गुणा एकद्रव्यमात्रवर्तिनः सन्ति । यथा—आत्मनश्चेतनाऽऽनन्दचारित्रवीर्यादयः । स्वस्वाऽसाधारणगुणानां तज्जन्यपर्यायाणां चापेक्षया प्रत्येकद्रव्यमन्यद्रव्याद् भिन्नमस्तीति बोध्यम् ।

विविक्षा से ही है । अमेद-विवक्षा से तो पर्यायें अपने कारणभूत गुण से अभिन्न हैं और गुण, द्रव्य से अभिन्न है, अत गुणपर्यायरूप ही द्रव्य कहलाता है ।

द्रव्य में सभी गुण एकरूप नही हैं । कोई-कोई गुण साधारण है, अर्थात् सामान्य रूप से अनेक द्रव्यों में पाये जाते हैं, या समस्त द्रव्यों में पाये जाते हैं । जैसे-अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रदेशवत्व, और ज्ञेयत्व, ये गुण समस्त द्रव्यों में पाये जाते हैं ।

निष्क्रियत्व, अचेतनत्व, और अरूपित्व आदि गुण अनेक द्रव्यवर्ती हैं । कोई-कोई गुण असाधारण हैं-सिर्फ एक, द्रव्य में रहते हैं, जैसे-आत्मा के चैतन्य, सुख, चारित्र, वीर्य आदि गुण । अपने-अपने असाधारण गुणों और गुणों से उत्पन्न पयायों की अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य दूसरे द्रव्य से भिन्न है, ऐसा जानना चाहिए ।

ભેદવિવક્ષાથી જ છે અભેદવિવક્ષાથી તો પર્યાયો પોતાના કારણભૂત ગુણથી અભિન્ન છે, અને ગુણ દ્રવ્યથી અભિન્ન છે તેથી ગુણપર્યાયરૂપજ દ્રવ્ય કહેવાય છે

દ્રવ્યમા સર્વ ગુણ એકરૂપ નથી, કોઇ કોઈ ગુણ સાધારણ છે, અર્થાત્-સામાન્ય રૂપથી અનેક દ્રવ્યોમા જેવામા આવે છે અથવા સમસ્ત દ્રવ્યોમા જેવામા આવે છે જેમ-અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ અને જ્ઞેયત્વ, એ ગુણ સમસ્ત દ્રવ્યોમા જેવામા આવે છે નિષ્ક્રિયત્વ, અચેતનત્વ, અને અરૂપિત્વ આદિ ગુણ અનેક દ્રવ્યવર્તી છે કોઈ કોઇ ગુણ અસાધારણ છે-માત્ર એક દ્રવ્યમા રહે છે જેવી રીતે આત્માના ચૈતન્ય, સુખ, ચારિત્ર, વીર્ય આદિ ગુણ પોત-પોતાના સાધારણ ગુણો અને ગુણોથી ઉત્પન્ન પર્યાયોની અપેક્ષા પ્રત્યેક દ્રવ્ય બીજા દ્રવ્યથી ભિન્ન છે, એમ સમજવુ જોઇએ.

दहन-पवन-गगनरूपपञ्चभूतेषु पुनःपुनः मिलितेषु चेतनालक्षण आत्मा कथं नोपलभ्यते ? ।

यद्वा-मृतशरीरे पञ्चभूतसद्भावेऽपि चेतनालक्षण आत्मा नोपलभ्यते । अतोऽयमात्मा जडरूपपाञ्चभौतिकदेहाद् भिन्नो निर्णीयते ।

अपरञ्च-आत्मनो देहरूपत्वस्वीकारे कृतनाशोऽकृताभ्यागमश्चापद्येत । कृतस्य कर्मणः फलमप्राप्य विनैव नाशः स्यात्, अकृतस्य कर्मणः फलप्राप्तिश्च । अकर्तुः फलप्राप्तिः, कर्तुश्च नेति द्वयमयुक्तम् । तस्मात्-आत्मा देहाद् भिन्नो जन्मान्तरसंक्रान्तोऽपीति निश्चेयम् ।

होता है तो चेतनारूप आत्मा क्यों नहीं पैदा हो जाता ?, वहाँ पाँचों भूतों का संयोग विद्यमान है और उसीसे आत्मा की उत्पत्ति मानते हो ?

अथवा-मृत शरीर में पाँचों भूतों का सद्भाव होने पर भी चेतनस्वरूप आत्मा क्यों उपलब्ध नहीं होता ? इस से निश्चित होता है कि आत्मा जडरूप पाँच भूतों से भिन्न है और नित्य है ।

और भी आत्मा को देहरूप स्वीकार करने से कृतनाश और अकृताभ्यागम दोष की प्राप्ति होगी । किए हुए कर्म फल दिए बिना ही नाश हो जायगा, और अकृत कर्म के फल को भोगना पडेगा । कर्म न करने वाला फल भोगे और करने वाला फल से बच जाय यह दोनों बातें अनुचित हैं, अत अब यह निश्चय कर लेना चाहिए कि-आत्मा शरीर से भिन्न है और जन्मान्तर में गमन करता है ।

चेतनारूप आत्मा केम पेदा थतो नथी ? ज्यांहि पांच भूतोनो संयोग विद्यमान छे अने तेमांथी तमे (नास्तिको) आत्मानी उत्पत्ति मानो छो ?

अथवा—मृत्यु पामेला शरीरमां पांच भूतोनो सद्भाव होवा छतांय चेतनस्वरूप आत्मा केम उपलब्ध थतो नथी ? ए कारणथी निश्चय थाय छे के—आत्मा जड स्वरूप पांचभूतोथी भिन्न छे अने नित्य छे

अने बीजुं ए पण छे के—आत्माने देहरूप स्वीकार करवाथी कृतनाश अने अकृताभ्यागम दोषनी प्राप्ति थशे, करेला कर्म फल आप्या विना ज नाश थई जशे. अने अकृत—नहि करेला कर्मनुं फल भोगवबुं पडशे. कर्म नहि करवावाळाने कर्मनुं फळ भोगववुं पडे, अने कर्म करनार फळ भोगववामांथी बची जाय. आ बन्ने वात अनुचित छे माटे हवे ए निश्चय करी लेवो जोईए के आत्मा शरीरथी भिन्न छे, अने जन्मान्तर गमन करे छे

व्यवहारनयतो यथासंभवं क्षायोपशमिकैरिन्द्रियादिद्रव्यप्राणैश्च जीवति, जीविष्यति, जीवितवांश्चेत्यतोऽयमात्मा ' जीवः ' इत्युच्यते ।

" अयमात्मा न देहादन्यः, नापि जन्मान्तरसंक्रान्त " इति नास्तिकमतं निराकर्तुमुक्तम्–' अयमात्मा जीवः ' इति । पूर्वभवसंस्कारं विना कथमिह प्रसूत एव बालो मातुः स्तन्यपाने प्रवर्तते । प्रवृत्तिं प्रति स्वकृतिसाध्यत्वस्येष्टसाधनताज्ञानस्य च कारणतया बालस्य तज्ज्ञानजनकपूर्वभवीयसंस्कारोऽस्तीति विज्ञायते । तस्मादात्मनः पूर्वभवसम्बन्धोऽवधार्यते । तेन च देहभिन्नत्वमपि ज्ञायते ।

अयमात्मा यदि पाञ्चभौतिकदेहरूपः स्यात् , तर्हि मृन्मयभाण्ड–सलिल–

व्यवहारनय से यथासभव क्षयोपगम–जन्य इन्द्रियादि द्रव्यप्राणों से जीवित है, जीवित रहेगा और जीवित था, इस कारण आत्मा ' जीव ' कहलाता है ।

" आत्मा शरीर से भिन्न नही है और न एक जन्म से दूसरे जन्म में जाता है " नास्तिकों के इस मत का निराकरण करने के लिए कहा गया है कि– " आत्मा जीव है " । पूर्वभव के सस्कार के विना इस भव में तत्काल जन्मा हुआ शिशु माता के स्तन–पान में कैसे प्रवृत्त हो सकता है ?, शिशु की इस प्रवृत्ति से सिद्ध होता है कि उस मे पूर्व भव का सस्कार विद्यमान है । इस से निश्चित हो जाता है कि–आत्मा पूर्व भव में भी था, और इस कारण वह शरीर से भिन्न भी मालूम होता है ।

पाच भूतों से बना हुआ शरीर ही यदि आत्मा है तो मिट्टी का पात्र, पानी, पावक–(अग्नि), पवन और आकाश रूप पाचों भूतों का चूले के ऊपर जब सयोग

વ્યવહારનયથી યથાસભવ ક્ષયોપશમજન્ય ઇન્દ્રિયાદિ દ્રવ્યપ્રાણોથી જીવિત છે, જીવિત રહેશે અને જીવિત હતો, તેથી આત્મા 'જીવ' કહેવાય છે **" આત્મા શરીરથી ભિન્ન નથી, અને એક જન્મથી બીજા જન્મમાં જતો નથી "** નાસ્તિકોના એ પ્રમાણે જે મત છે, તેનુ નિરાકરણ કરવા માટે કહ્યુ છે કે **" આત્મા જીવ છે."** પૂર્વ ભવના સસ્કાર વિના આ ભવમા તત્કાલ જન્મ પામેલુ બાળક માતાના સ્તનપાનમા (ધાવવામા) પ્રવૃત્તિ કેવી રીતે કરી શકે છે ?, બાળકની આ પ્રવૃત્તિથી સિદ્ધ થાય છે કે –તેનામા પૂર્વ ભવના સસ્કાર વિદ્યમાન છે આ કારણથી નિશ્ચય થાય છે કે આત્મા પૂર્વભવમા પણ હતો, અને તે કારણથી આત્મા શરીરથી ભિન્ન માલૂમ પડે છે

પાચ ભૂતોથી બનેલુ શરીર જ જો આત્મા છે તો માટીનુ પાત્ર, પાણી, અગ્નિ, આકાશ, પવન વગેરે પાચ ભૂતોનો ચુલા ઉપર જ્યારે સયોગ થાય છે, તો તે વખતે

यथा-जातिस्मरणशक्त्या मृगापुत्रवत् संयमी पूर्वभवं स्मरति, व्याध्यादिकारणेन नष्टदृष्टिः पूर्वानुभूतं रक्तपीतादिवर्णं, नष्टश्रवणश्च शब्दं स्मरति। यथा गेहगवाक्षैः पूर्वदृष्टस्य पूर्वश्रुतस्याप्यन्यत्रानुस्मर्ता देवदत्तः।

(२) नित्यत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा नित्यत्वादमूर्त इति विज्ञायते। अमूर्तत्वाच्च देहादन्य इति निर्णीयते। तथाहि-आत्माऽनुत्पत्तौ सम्भवविनाशी, तथा सर्वकालावस्थायी। तथा-आत्मा क्षणापेक्षयापि न निरन्वयनाशवान्; वस्तुत्वे सति उत्पत्तेरभावात्,

ज्ञान से मृगापुत्र को पूर्व भव का स्मरण हुआ था। कोई-कोई संयमी अपने पूर्वभव का स्मरण करता है। रोग आदि किसी कारण से जिस की दृष्टि नष्ट हो गई है, वह पुरुष पहले अनुभव किए हुए लाल पीले आदि रंगों का स्मरण करता है और जिसके कान नष्ट हो गये हैं वह शब्द का स्मरण करता है। किसी घर की खिड़कियों के द्वारा पहले देखे हुए पदार्थों का या सुने हुए शब्दों का देवदत्त को अन्यत्र स्मरण होता है, अतः वह देवदत्त खिड़कियों से भिन्न है। उसी प्रकार आत्मा इन्द्रियों से भिन्न है।

(२) आत्माकी नित्यता—

आत्मा नित्य होने के कारण अमूर्त प्रतीत होता है और अमूर्त होने के कारण देह से भिन्न है। वह इस प्रकार-आत्मा उत्पत्तिरहित और अविनाशी है तथा सर्वकाल में स्थायी है तथा आत्मा क्षण की अपेक्षा भी निरन्वय (समूल) नाशवान् नहीं है क्यों कि वस्तु होने पर भी उस की उत्पत्ति नहीं होती, जैसे आकाश।

જ્ઞાનથી મૃગાપુત્રને પૂર્વભવનું સ્મરણ થયું હતું કોઈ કોઈ સંયમીને પોતાના પૂર્વભવનું સ્મરણ થાય છે રોગ આદિ કોઈ કારણથી જેની દૃષ્ટિ (નેત્રથી જોવાની શક્તિ) નાશ પામી ગઈ છે તે પુરૂષ પ્રથમ અનુભવેલા લાલ, પીળા આદિ રંગોનું સ્મરણ કરે છે અને જેના કાન નષ્ટ થઈ ગયા હોય-(સાંભળવાની શક્તિ નાશ પામી હોય) તે શબ્દનું સ્મરણ કરે છે કોઈ ઘરની બારીઓ દ્વારા પ્રથમ જોયેલા પદાર્થોનું અથવા તો સાંભળેલા શબ્દનું દેવદત્તને અન્યત્ર-બીજા સ્થળે સ્મરણ થાય છે એ કારણથી દેવદત્ત એ બારીઓથી ભિન્ન છે તે પ્રમાણે આ આત્મા ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન છે

(૨) આત્માની નિત્યતા—

આત્મા નિત્ય હોવાના કારણે અમૂર્ત જણાય છે અને અમૂર્ત હોવાના કારણે, દેહથી ભિન્ન છે. તે આ પ્રમાણે-આત્મા ઉત્પત્તિરહિત અને અવિનાશી છે તથા સર્વ કાળમાં સ્થાયી છે અને ક્ષણની અપેક્ષા પણ નિરન્વય (સમૂળ) નાશવાન્ નથી,

आत्मा देहे कदाचित्तिष्ठति, कदाचिन्न तिष्ठति, अतः तस्याभावस्तत्र नियतो नास्ति । तस्माद् देहादन्य इति मन्तव्यम् । एवमनुमानप्रयोगः—

आत्मा—देहादन्यः, तद्भावेऽपि तत्र तस्यानियमेनाभावात्, उपाश्रयगतसाधु-श्रावकवत् । ननु देहे जीवस्य गमनागमन न दृश्यते, तथा च जीवस्य देहे सदा सद्भावसत्त्वेनाभावरूपो हेतुरसिद्ध इति चेन्न, मृतशरीरे तस्यादर्शनात् ।

यद्वा—आत्मा देहेन्द्रियभिन्नः तद्विगमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात् ।

आत्मा शरीर में कभी रहता है, कभी नही रहता, अत उसका अभाव वहाँ नियत नही है । अत एव मानना चाहिए कि—आत्मा देह से भिन्न है । अनुमान का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए —

आत्मा शरीर से भिन्न है, क्यों कि देह के होने पर भी आत्मा वहाँ नियम से नही रहता, उपाश्रय में स्थित साधु श्रावक के समान ।

शका—शरीर में जीव का गमन और आगमन दिखाई नहीं देता अत वह देह में सदैव विद्यमान रहता है । ऐसी अवस्था में आप का यह अभाव सिद्ध करने वाला हेतु असिद्ध है ।

समाधान—ऐसा कहना समीचीन नही है, क्यों कि मृत शरीर में आत्मा मालूम नहीं होता ।

अथवा—आत्मा देह और इन्द्रियों से भिन्न है, क्यों कि उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है । जैसे जातिस्मरण

આત્મા શરીરમા કોઇ વખત રહે છે, કોઈ વખત નથી રહેતો તેથી તેનો અભાવ ત્યા ચોક્કસ રૂપથી નથી તેથી માનવુ જોઇએ કે:–આત્મા દેહથી ભિન્ન છે. અનુમાનનો પ્રયોગ આ પ્રમાણે કરવો જોઇએ —

આત્મા શરીરથી ભિન્ન છે, કેમકે દેહ હોવા છતાય આત્મા ત્યા નિયમથી રહેતો નથી, ઉપાશ્રયમા રહેલા સાધુ શ્રાવક પ્રમાણે

શંકા—શરીરમા જીવનુ ગમન–જવુ, અને આગમન–આવવુ તે નજરે જોવામા આવતુ નથી, તેથી તે દેહમા સદૈવ વિદ્યમાન રહે છે એવી અવસ્થામા આપનો એ અભાવ સિદ્ધ કરવાનો હેતુ અસિદ્ધ છે એમ કહેવુ તે બરાબર નથી, કેમકે મૃત શરીરમા આત્મા માલૂમ પડતો નથી

અથવા–આત્મા દેહ અને ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન છે, કારણ કે–તેનો નાશ થયા પછી પણ તેના દ્વારા જાણવામા આવેલા પદાર્થનુ સ્મરણ થાય છે જેમ જાતિસ્મરણ

त्वामूर्तत्वयोरात्मन्येकान्ततोऽनङ्गीकारात् ।

यद्वा-आत्मा नित्यः संसारात्, त्रिकालविषयकक्रियापर्यालोचकत्वात्, 'स एव' इति प्रत्यभिज्ञानत्वात् । अनेन हेतुत्रयेण क्षणिकवादो निरस्तः ।

यत्तु-आत्मा-एकान्तनित्यः 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इत्यादिवचनप्रामाण्यात्, 'स एव अक्षयोऽज्र' इत्यादिश्रुतिप्रामाण्याच्च, इति, तन्न युक्तम्, आत्मन एकस्वभावत्वे संसरणादिव्यवहारोच्छेदापत्तिः स्यात् तस्मात् कथञ्चिन्नित्यः कथञ्चिदनित्य इति

में व्यभिचार की आशङ्का नहीं करना क्यों कि आत्मा में नित्यत्व और अमूर्त्तत्व एकान्त रूप से नहीं माना गया है ।

अथवा-आत्मा नित्य है, क्यों कि वह एक गति से दूसरी गति में जाता है, क्यों कि वह त्रिकालविषयक क्रियाका आलोचक है, और वह प्रत्यभिज्ञान (यह वही है इस प्रकार का जोडरूप ज्ञान) वाला है । इन तीन हेतुओं से क्षणिकवादका निराकरण हो गया ।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इत्यादि वचन से और 'स एषः अक्षयोऽज्र' इत्यादि श्रुति के प्रमाण से आत्मा एकान्त नित्य सिद्ध होता है । ऐसा कहना भी युक्त नहीं है क्यों कि आत्मा को एकान्त नित्य स्वभाव वाला मानने से संसरण (एक जन्म से दूसरे जन्म में जाना) आदि व्यवहारों का नाश हो जायगा । अत एव कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य आत्मा स्वीकार करना चाहिए ।

વ્યભિચારની આશંકા કરવી નહિ કારણ કે આત્મામાં નિત્યત્વ અને અમૂર્તત્વ એકાન્તરૂપથી માનવામાં આવ્યું નથી.

અથવા—આત્મા નિત્ય છે કારણ કે તે એક ગતિથી બીજી ગતિમાં જાય છે કારણ કે-તે ત્રિકાળવિષયક ક્રિયાનો આલોચક (વિચાર કરનાર) છે અને તે પ્રત્યભિજ્ઞાન (આ તેજ છે એ પ્રકારનું જોડરૂપ જ્ઞાન) વાળો છે આ ત્રણ હેતુઓ વડે કરી ક્ષણિકવાદનું નિરાકરણ થઈ ગયું છે

"નૈનં છિન્દન્તિ શસ્ત્રાણિ" ઈત્યાદિ વચનથી અને સ એષ અક્ષયોઽજ્ર ઈત્યાદિ શ્રુતિના પ્રમાણથી આત્મા એકાન્ત નિત્ય સિદ્ધ થાય છે એમ કહેવું તે પણ યુક્ત નથી, કારણ કે આત્માને એકાન્ત નિત્ય સ્વભાવ વાળો માનવાથી સંસરણ (એક જ ભવથી બીજા જ ભવમાં જવું તે) આદિ વ્યવહારોનો નાશ થઈ જશે, એ કારણથી કથંચિત્ નિત્ય અને કથંચિત્ અનિત્ય આત્મા છે એ પ્રમાણે સ્વીકાર કરવો જોઈએ.

यथा गगनम्। अनुत्पत्त्या सत्यामविनाशित्वेन, तथा सर्वकालावस्थायित्वेन, तथा क्षणापेक्षयाऽपि निरन्वयनाशाभावत्त्वेन चात्मनो नित्यत्वं सिध्यति। देहात्मवादिना परिमितकालावस्थायित्वमात्मनो मन्यते, तथा क्षणिकवादिनापि निरन्वयक्षणिकपरिणामप्रवाहस्य नित्यत्वं स्वीक्रियते। तौ चैवंविधनित्यत्वसाधनेन निराकृतौ। शशशृङ्गादावपि जन्माभावसत्त्वेन हेतौ साध्यव्याप्तिर्न स्यादतो वस्तुत्वे सतीत्युक्तम्।

न चामूर्त्तत्वस्य परमाणौ व्यभिचार आशङ्कनीयः, आर्हतमते नित्य-

उत्पत्तिरहित और अविनाशी होने के कारण, तथा सर्वकाल में विद्यमान रहने के कारण और क्षण की अपेक्षा भी समूल नाशवान न होने के कारण आत्मा की नित्यता सिद्ध होती है। देह को ही आत्मा मानने वाला कहता है कि-आत्मा परिमित काल तक ठहरता है। तथा क्षणिकवादी भी निरन्वय क्षणिक परिणाम-प्रवाह को नित्य मानता है। इस प्रकार आत्मा की नित्यता सिद्ध करके इन दोनों के मत का निराकरण किया गया है। प्रस्तुत हेतु में 'वस्तु होते हुए भी' यह विशेषण इस लिये लगाया है कि शश-विषाण आदि से व्यभिचार (हेतु हो और साध्य न हो) न हो, क्यों कि उत्पत्ति का अभाव तो उन में भी है किन्तु वस्तुत्व उन में नहीं है।

अमूर्तत्व, परमाणु में नहीं है और वहाँ नित्यत्व हेतु है, इस लिये परमाणु

કેમકે વસ્તુ છતાંય તેની ઉત્પત્તિ નથી હોતી, જેમકે આકાશ. ઉત્પત્તિરહિત અને અવિનાશી હોવાના કારણે, તથા સર્વકાલમા વિદ્યમાન રહેવાના કારણે, અને ક્ષણની અપેક્ષાએ પણ સમૂળગો નાશવાન નહિ હોવાના કારણે આત્માની નિત્યતા સિદ્ધ થાય છે દેહને જ આત્મા માનવાવાળા કહે છે કે-આત્મા પરિમિત કાલ સુધી થોભે છે, તથા ક્ષણિકવાદી પણ નિરન્વય ક્ષણિક-પરિણામપ્રવાહને નિત્ય માને છે આ પ્રમાણે આત્માની નિત્યતા સિદ્ધ કરીને એ બને (દેહવાદી અને ક્ષણિકવાદી)ના મતનુ નિરાકરણ કર્યું છે પ્રસ્તુત હેતુમા "વસ્તુ હોવા છતાંય પણ" એ વિશેષણ એ કારણથી આપ્યું છે કે-શશ-વિષાણ-(સસલાના શિંગડા) આદિથી વ્યભિચાર (હેતુ હોય અને સાધ્ય ન હોય) ન થાય, કારણ કે ઉત્પત્તિનો અભાવ તો તેમા પણ છે, પરંતુ વસ્તુત્વ તેમા નથી

અમૂર્તત્વ, પરમાણુમા નથી, અને ત્યા નિત્યત્વ હેતુ છે, એ કારણથી પરમાણુમા

यद्वा—आत्मा नित्यः स्वकारणविभागाभावात् आकाशवत्। आकाशस्य कारणाभावादेव कारणविभागो नास्ति। यस्तु न नित्यः, स न स्वकारणविभागाभाववान्, यथा पटः। दृश्यते हि पटस्तन्तूनां विभागो भवतीति।

किञ्च—आत्मा नित्यः कारणविनाशाभावात् आकाशवदेव। कारणाभावादेव हि कारणस्य विनाशाभावः, यथा गगनमेव। यो न नित्यः, स न कारणविनाशाभाववान् अर्थात् कारणविनाशवानेव, यथा पटः। दृश्यते हि पटकारणीभूतस्य तन्तोर्विनाशो भवतीति। अयं चात्मा स्वकारणाभावेन कारणविनाशाभाववान्, तस्मान्नित्य इति। नित्यत्वादयममूर्तः, अमूर्तत्वाच्च शरीराद् भिन्न इति निर्णीयते।

अथवा—आत्मा नित्य है, क्यों कि उस के कारणों का विभाग नहीं है, जैसे आकाश। आकाश के कारणों का अभाव है, इसी कारण उसके कारणों का विभाग भी नहीं है। जो नित्य नहीं है, वह अपने कारणों के विभाग का अभाव वाला भी नहीं होता जैसे—पट। पट से तन्तुओं का विभाग होता दिखाई देता है।

और भी—आत्मा नित्य है, क्यों कि उसके कारणों के विनाश का अभाव है, जैसे—आकाश। कारणों का अभाव होने से ही कारणों के विनाश का अभाव है जैसे आकाश। जो नित्य नहीं होता वह कारण—विनाशाभाव वाला भी नहीं होता, जैसे पट, देखा जाता है कि—पट के कारणभूत तन्तुओं का नाश हो जाता है। आत्मा के जनक कारणों का अभाव है अतः वह कारणों के विनाशका अभाव वाला है, अर्थात् आत्मा के कारण ही नहीं है तो उसके कारणों का अभाव क्या होगा?

અથવા—આત્મા નિત્ય છે કેમકે તેના કારણોનો વિભાગ નથી, જેમ આકાશ. આકાશને કારણોનો અભાવ છે તેથી જ તેના કારણોનો વિભાગ પણ નથી. જે નિત્ય નથી તે પોતાના કારણોના વિભાગના અભાવવાળો પણ નહિ થાય, જેમ પટ. પટથી તંતુઓનો વિભાગ થતો જોવામાં આવે છે

હજી પણ—આત્મા નિત્ય છે કારણ કે તેના કારણોના વિનાશનો અભાવ છે જેમ આકાશ. કારણોનો અભાવ હોવાથી જ કારણોના વિનાશનો અભાવ છે જેમ આકાશ જે નિત્ય નથી તે કારણવિનાશાભાવવાળું પણ નથી, જેમ પટ. જોવામાં આવે છે કે—પટના કારણભૂત તંતુઓનો નાશ થાય છે પણ આત્માના જનક કારણોનો અભાવ છે તેથી તે કારણોના વિનાશનો અભાવવાળો છે અર્થાત્ આત્માને

स्वीकर्तव्यम्। द्रव्यार्थिकनयेन नित्यः, पर्यायार्थिकनयेन—अनित्य इति। एवमनङ्गीकारे हि 'संसारा'—दित्याद्युक्तहेतूनामसंगतिः स्यात्। आत्मन एकस्वभावत्वस्वीकारे स्वभावान्तरानापत्त्या वर्तमानकालिकभावातिरिक्तं भावान्तरं न लब्धुमर्हेत्। एवमनित्यत्वामूर्तत्वयोरपि स्याद्वाद आलम्बनीयः, अन्यथा व्यवहारोच्छेद-प्रसङ्गः स्यात्, एकान्तामूर्तस्य, तथैकान्ततो देहभिन्नस्य चातिपातादिप्रसंगाभावे सति हिंसादिनिवृत्तिदेशनादिपरकचरणकरणादिबोधकसकलशास्त्रानर्थक्य, तथाऽऽत्मनः संसारगर्तादनुद्धारश्च स्यात्।

आत्मा द्रव्यार्थिकनय से नित्य है और पर्यायार्थिकनय से अनित्य है। ऐसा स्वीकार न करने पर 'संसरण करने से' इत्यादि पूर्वोक्त हेतु असङ्गत हो जायेंगे। एक स्वभाव वाला आत्मा स्वीकार किया जाय तो उस मे दूसरे स्वभाव की उत्पत्ति नही होगी, और वर्तमानकालीन भाव के अतिरिक्त दूसरा भाव कभी प्राप्त नही होगा। इसी प्रकार अनित्यत्व और अमूर्तत्व के विषय में भी स्याद्वादका ही आश्रय लेना चाहिए, अन्यथा व्यवहार के अभाव का प्रसङ्ग आएगा। आत्मा को एकान्त अमूर्त मानने से, तथा देह से एकान्त भिन्न मानने से उस का घात होना असभव है, और इस दिशा में हिंसा आदि से निवृत्त होने का उपदेश देने वाले चरण—करण आदि के बोधक सब शास्त्र व्यर्थ हो जाएँगे। इस के अतिरिक्त आत्मा का ससाररूपी खड्डे से कभी उद्धार भी नही होगा।

આત્મા દ્રવ્યાર્થિક નયથી નિત્ય છે, અને પર્યાયાર્થિક નયથી અનિત્ય છે એ પ્રમાણે સ્વીકાર નહિ કરવાથી 'સંસરણ કરવાથી' ઇત્યાદિ પૂર્વોકત હેતુ અસંગત થઇ જશે એક સ્વભાવવાળો આત્મા સ્વીકાર કરવામા આવશે તો તેમા બીજા સ્વભાવની ઉત્પત્તિ નહિ થાય, અને વર્તમાનકાલીન ભાવ વિના બીજો ભાવ કોઇ પણ વખત પ્રાપ્ત નહિ થાય, એ પ્રમાણે અનિત્યત્વ અમૂર્તત્વના વિષયમા પણ સ્યાદ્વાદનો જ આશ્રય લેવો જોઇએ અન્યથા વ્યવહારના અભાવનો પ્રસંગ આવશે આત્માને એકાન્ત અમૂર્ત માનવાથી તથા દેહથી એકાન્ત ભિન્ન માનવાથી તેનો ઘાત થવો અસંભવ છે, અને એ દશામા હિંસા આદિથી નિવૃત્ત થવાનો ઉપદેશ દેવાવાળા ચરણ-કરણ આદિના બોધક તમામ શાસ્ત્રો વ્યર્થ થઇ જશે તે સિવાય આત્માનો સંસારરૂપી ખાડાથી કોઇ વખત પણ ઉદ્ધાર નહિ થાય

समाश्रयणे तु सुखदुःखादयः सर्वे आत्मनोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावतयाऽन्यथात्वरूपपरिणामासंभवान्नोपपद्येरन्, नारकत्वादिभावो यस्य यादृशो विद्यते, तदन्यरूपतां नासौ प्रपद्येत ।

प्रसन्नतोऽप्रसन्नस्यात्मनः पूर्वरूपापरित्यागे सति पुनः प्रसन्नरूपताया असंभवः स्यात् । दृश्यते पुनरप्रसन्नस्य कदाचित् प्रसन्नताऽपि, सा नोपपद्येत । तस्मादेकान्तवादं परित्यज्यानेकान्तवादः समालम्बनीयः ।

(२) चेतनात्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन शुद्धचेतनासहितः, व्यवहारनयेन च कर्मादि

स्वीकार करने पर आत्मा अप्रच्युत अनुत्पन्न और स्थिर एकरूप तथा एक स्वभाव वाला होने के कारण और उसमें रूपान्तर होना असंभव होने से सुख दुःखादि नहीं होंगे अत विभिन्न अवस्थाएँ भी नहीं हो सकेंगी, फिर जो आत्मा नारकत्वादि जिस रूप में है वह सर्वथा उसी रूप में रहेगी—एक भव से दूसरे भव में नहीं जा सकेगी। जो आत्मा अप्रसन्न है, मगर अप्रसन्न का भी कभी प्रसन्न होना दिखाई देता है, फिर ऐसा न हो सकेगा। अत एव एकान्तवाद का त्याग करके अनेकान्तवाद का आश्रय लेना चाहिए।

(२) चेतनात्व—

यह आत्मा निश्चयनय से शुद्ध चेतना से युक्त है और व्यवहारनय से

સ્વીકાર કરવાથી આત્મા અપ્રચ્યુત અનુત્પન્ન અને સ્થિર એકરૂપ તથા એક સ્વભાવ વાળા હોવાના કારણે તેમાં રૂપાન્તર થવું અસંભવિત હોવાથી સુખ-દુઃખાદિ નહિ હોય. તે કારણથી વિભિન્ન અવસ્થાઓ પણ થઈ શકશે નહિ. ફરી જે આત્મા નારકત્વાદિ જે રૂપમાં છે તે સર્વદા તે રૂપમાં જ રહેશે. એટલે એક ભવમાંથી બીજા ભવમાં જઈ શકશે નહિ. વળી જે આત્મા અપ્રસન્ન છે તે પોતાના પૂર્વરૂપનો પરિત્યાગ ન કરે તો તેને ફરી પ્રસન્નતામાં આવવું તે અસંભવ છે પરંતુ અપ્રસન્ન પણ કોઈ વખત પ્રસન્ન હોય એમ દેખાય છે ફરી એમ નહિ થઈ શકે. એ કારણથી એકાન્તવાદનો ત્યાગ કરીને અનેકાન્તવાદનો આશ્રય લેવા જોઈએ

(૨) ચેતનાત્વ—

આ આત્મા નિશ્ચયનયથી શુદ્ધ ચેતનાથી યુક્ત છે અને વ્યવહારનયથી 'આ મારે

परन्त्वेकान्तनित्यत्वे, एकस्यात्मनो नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिपरिणामा नोपपद्येरन्। एकान्तक्षणिकत्वेऽपि स्वाध्यायाध्ययनध्यानादिपरिश्रमप्रत्यभिज्ञान नोपपद्येत। तस्मादात्मा कथञ्चिन्नित्यः, कथञ्चिदनित्यः, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम्।

यत्तु-"द्रव्यक्षेत्रकालभावैरेकान्तेनैव नित्यः, अविचलितस्वभाव आत्मे"-ति वदन्ति तत्सर्वमयुक्तम्। तथा सति सुखदुःखससारमोक्षाणामनुपपत्तिरापद्येत। तत्र हि आह्लादानुभवरूपं क्षणं सुखं, तापानुभवरूप दुःखम्, तिर्यङ्मनुष्यनारकदेवभवसंसरणरूपः संसारः, अष्टविधकर्मबन्धवियोगो मोक्षः। एकान्तवाद-

---

इस लिए आत्मा नित्य है। आत्मा नित्य होने के कारण अमूर्त है, और अमूर्त होने के कारण शरीर से भिन्न है।

किन्तु आत्मा को एकान्त नित्य मानने पर एक ही आत्मा नरक तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिरूप नाना पर्यायों को प्राप्त नहीं होगा। और एकान्त क्षणिक मानने पर भी स्वाध्याय, अध्ययन, ध्यान आदि का परिश्रम वृथा हो जायगा, और प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो जायगा। अत एव आत्मा कथचित् नित्य और कथचित् अनित्य है, ऐसा अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

जो लोग द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से आत्मा को एकान्त नित्य अविचल स्वभाव वाला मानते हैं, वह सब अयुक्त है। ऐसा मानने से सुख, दुख, ससार और मोक्ष नहीं बन सकते। आह्लाद का अनुभव करनारूप क्षण सुख कहलाता है। सताप का अनुभव करना दुख है। तिर्यञ्च, मनुष्य, नारक और देव भव में जाना ससार है। आठ प्रकार के कर्मबन्ध का वियोग होना मोक्ष है। एकान्तवाद

કારણુ જ નથી તો પછી તેના કારણોનો અભાવ શુ થશે? એ કારણુથી આત્મા નિત્ય છે આત્મા નિત્ય હોવાના કારણે અમૂર્ત છે અને અમૂર્ત હોવાના કારણે શરીરથી ભિન્ન છે

પરતુ આત્માને એકાન્ત નિત્ય માનવાથી એક જ આત્મા નરક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવગતિરૂપ નાના પર્યાયોને પ્રાપ્ત નહિ થાય, અને એકાન્ત ક્ષણિક માનવાથી પણ સ્વાધ્યાય, અધ્યયન, ધ્યાન આદિનો પરિશ્રમ વૃથા થઈ જશે, અને પ્રત્યભિજ્ઞાનનો અભાવ થઇ જશે, એ કારણુથી આત્મા કથચિત્ નિત્ય અને કથચિત્ અનિત્ય છે એ પ્રમાણે જરૂર સ્વીકારવુ જોઇએ

જે માણુસો દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ અને ભાવથી આત્માને એકાન્ત નિત્ય, અવિચલ સ્વભાવ વાળો માને છે, તે સર્વ અયુક્ત છે એ પ્રમાણે માનવાથી સુખ, દુ ખ સ સાર અને મોક્ષ બની શકશે નહિ આહ્લાદનો અનુભવ કરવારૂપ ક્ષણ સુખ કહેવાય છે સતાપનો અનુભવ કરવો તે દુ ખ છે તિર્યંચ, મનુષ્ય, નારકી અને દેવભવમા જવુ તે સમાર છે. આઠ પ્રકારના કર્મ બ ધનો વિયોગ થવો તે મોક્ષ છે એકાન્તવાદ

अयमात्मा ज्ञानदर्शनोपयोगाभ्यां न भिन्न इति बोधयितुमुपयोगवानिति, इदं च ज्ञानात्मनोरेकान्तभेद इति नैयायिकमतं निराकर्तुमुक्तम्। सर्वज्ञसिद्धान्ते तु द्रव्यं वस्तुतो गुणपर्यायाभ्यां न भिन्नम्, अतः कथञ्चिद्भेदविवक्षयाऽऽधारविभावं परिकल्प्य-उपयोगवानिति निगदितम्।

उपयोगो द्विधा-ज्ञानदर्शनभेदात्। सविकल्प उपयोग एव ज्ञानोपयोगः, निर्विकल्प उपयोगो दर्शनोपयोग। तत्र ज्ञानोपयोगोऽष्टविधः-मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि पञ्च सम्यग्ज्ञानानि, मति-श्रुत-विभङ्ग-भेदेन त्रीण्यज्ञानानि चेति। अज्ञानान्यपि ज्ञानरूपतया ज्ञानवर्गे निक्षिप्तानि। अत्रैकमेव केवलज्ञानं क्षायिकं सर्वा-

---

आत्मा ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग से भिन्न नहीं है' यह बतलाने के लिए उसे उपयोगवान् कहा है। ज्ञान और आत्मा का एकान्त भेद है' ऐसा नैयायिकों का मत है। इस मत का निराकरण करने के लिए यह कथन किया गया है। सर्वज्ञ के सिद्धान्त में द्रव्य वास्तव में गुण और पर्यायों से भिन्न नहीं है, अतः कथंचित् भेद की विवक्षा करके आधाराधेय भाव की कल्पना से उपयोगवान् कहा है।

उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। सविकल्प उपयोग को ज्ञानोपयोग कहते हैं और निर्विकल्प उपयोग दर्शनोपयोग कहलाता है। इनमें से ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है-(१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मनःपर्ययज्ञान (५) केवलज्ञान, (६) कुमतिज्ञान (७) कुश्रुतज्ञान और (८) विभङ्गज्ञान, अन्तके तीन अज्ञान कहलाते हैं। ये विपरीतज्ञानरूप होने के कारण इन्हें ज्ञान की कोटि में रक्खा है। इनमें

આત્મા જ્ઞાનોપયોગ અને દર્શનોપયોગથી ભિન્ન નથી, એ બતાવવા માટે જ તેને ઉપયોગવાન્ કહ્યો છે જ્ઞાન અને આત્માનો એકાન્ત ભેદ છે એવો નૈયાયિકોનો મત છે એ મતનું નિરાકરણ કરવા માટે એ કથન કરવામાં આવ્યું છે સર્વજ્ઞના સિદ્ધાન્તમાં દ્રવ્ય એ વાસ્તવમાં ગુણ અને પર્યાયોથી ભિન્ન નથી તેથી કથંચિત્ ભેદની વિવક્ષા કરીને આધારાધેય ભાવની કલ્પનાથી ઉપયોગવાન્ કહ્યો છે.

ઉપયોગના બે ભેદ છે-(૧) જ્ઞાનોપયોગ અને (૨) દર્શનોપયોગ સવિકલ્પ ઉપયોગને જ્ઞાનોપયોગ કહે છે અને નિર્વિકલ્પ ઉપયોગ તે દર્શનોપયોગ કહેવાય છે. તેમાં જ્ઞાનોપયોગ આઠ પ્રકારનો છે (૧) મતિજ્ઞાન (૨) શ્રુતજ્ઞાન, (૩) અવધિજ્ઞાન, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાન, (૫) કેવલજ્ઞાન, તથા (૬) કુમતિજ્ઞાન, (૭) કુશ્રુતજ્ઞાન અને (૮) વિભંગજ્ઞાન. તેમાં છેવટના ત્રણ અજ્ઞાન કહેવાય છે પરંતુ વિપરીતજ્ઞાનરૂપ હોવાના કારણે તેને જ્ઞાનની કોટિમાં રાખ્યા છે એમાં એક

पीडयत्यात्मानमिति ज्ञानरूपाशुद्धचेतनया सहितश्चेतनावानित्युच्यते। चेतनावानिति कथञ्चिदुच्यते; आत्मा वस्तुतश्चेतनास्वरूप एवास्ति। आत्मनो गुणश्चेतनेति सर्वेषां मतं, तदभिप्रायेण चेतनावानित्युक्तम्। चेतना द्विविधा-शुद्धा, अशुद्धा चेति। ज्ञानचेतनैव शुद्धचेतना। कर्मचेतना, तथा कर्मफलचेतना चाशुद्धचेतनोच्यते।

(४) उपयोगवत्त्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपाभ्यां शुद्धोपयोगाभ्यां सहितो व्यवहारनयेन मतिज्ञानाद्युपयोगयुक्तश्चेत्यतोऽयमुपयोगवानित्युच्यते।

'आत्मा को कर्म पीडित करते हैं' इस प्रकार के ज्ञानरूप अशुद्ध चेतना से युक्त है, अत एव आत्मा चेतनावान् कहलाता है। आत्मा को किसी अपेक्षा से ही चेतनावान् कहते हैं, वास्तव में तो आत्मा चेतनारूप ही है। 'चेतना आत्मा का गुण है' ऐसा सबका मत है, इसी अभिप्राय से उसे चेतनावान् कह दिया है। चेतना दो प्रकार की है-शुद्ध चेतना और अशुद्ध चेतना। ज्ञान चेतना ही शुद्ध है। कर्मचेतना और कर्म-फलचेतना अशुद्ध चेतना है।

(४) उपयोगवत्त्व—

यह आत्मा निश्चयनय से केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप शुद्ध उपयोगों से युक्त है। व्यवहारनय से मतिज्ञान आदि उपयोगों से युक्त है, अत एव आत्मा उपयोगवान् कहलाता है।

કર્મો પીડિત કરે છે' એ પ્રકારના જ્ઞાનરૂપ અશુદ્ધ ચેતનાથી યુક્ત છે એટલા માટે આત્મા ચેતનવાન્ કહેવાય છે આત્માને કોઈ અપેક્ષાથી જ ચેતનવાન્ કહે છે, વાસ્તવમા તો આત્મા ચેતનારૂપ જ છે 'ચેતના આત્માનો ગુણ છે' એ પ્રમાણે સર્વનો મત છે એ અભિપ્રાયથી તેને ચેતનાવાન્ કહી દીધો છે ચેતના બે પ્રકારની છે (૧) શુદ્ધ-ચેતના અને (૨) અશુદ્ધ-ચેતના જ્ઞાનચેતના જ શુદ્ધ છે, કર્મચેતના અને કર્મફલચેતના તે અશુદ્ધ-ચેતના છે

(૪) ઉપયોગવત્વ—

આ આત્મા નિશ્ચયનયથી કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનરૂપ શુદ્ધ ઉપયોગોથી યુક્ત છે વ્યવહારનયથી મતિજ્ઞાન આદિ ઉપયોગોથી યુક્ત છે એ કારણે આત્મા ઉપયોગવાન્ કહેવાય છે

नवस्थापत्तिः। आत्मनि ज्ञानस्य नित्यानादिसम्बन्धस्वीकारेऽपि पदार्थद्वय कल्पनायां पुनस्तत्सम्बन्धकसमवायस्य कल्पनायां महद् गौरवम्, तस्माद् गुणगुणिनोर्वस्तुतस्तादात्म्यस्वीकार एवौचित्यमर्हति। यदि गुणगुणिनोरभेद एव समवायोऽभीष्टुच्यते तर्हि नास्ति काऽपि क्षतिः। उक्तञ्च—

" गुणपर्ययतादात्म्य,-विशिष्टं द्रव्यमुच्यते।
उत्पत्तिव्ययनैयत्य,-पर्यायास्तस्य शाश्वताः॥ १ ॥ " इति।

(५) परिणामित्वनिरूपणम्—

अयमात्मा परिणामी। प्रतिसमयमपरापरपर्यायेषु गमनं परिणामः,

हो जायगा। आत्मा में ज्ञान का नित्य-अनादि सम्बन्ध स्वीकार किया जाय तो दो पदार्थ मानने पड़ेंगे और उन दोनों अर्थात् आत्मा और ज्ञान को सम्बद्ध करने के लिए तीसरा समवाय सम्बन्ध मानना होगा यह बड़ा गौरव होगा। अत एव गुण और गुणीका वास्तव में तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार करना ही उचित है। अगर गुण और गुणी के अभेद को ही समवाय सम्बन्ध कहते हो तो उसे स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है। कहा भी है —

" जो गुण और पर्याय के तादात्म्य से युक्त हो वह द्रव्य कहलाता है। उस द्रव्य की पर्यायें सदा उत्पत्ति और विनाशवाली हैं और वे अनादिप्रवाहरूप हैं " ॥ १ ॥

(५) आत्मा का परिणामीपन—

आत्मा परिणामी है। प्रत्येक समय एक पर्याय को छोडकर दूसरा पर्याय

આત્મા જડ થઈ જશે. આત્માને વિષે જ્ઞાનનો નિત્ય-અનાદિ સંબંધ સ્વીકાર કરવામાં આવે તો બે પદાર્થ માનવા પડશે અને તે બન્ને અર્થાત્ આત્મા અને જ્ઞાન તે બન્ને ને સમ્બદ્ધ કરવા માટે ત્રીજો કોઈ સમવાય સંબંધ માનવો પડશે. એ ભારે ગૌરવ થશે. તે કારણથી ગુણ અને ગુણીનો વાસ્તવમાં તાદાત્મ્ય સંબંધ સ્વીકાર કરવો એજ ઉચિત છે. અથવા ગુણ-ગુણીના અભેદને જ સમવાય સંબંધ કહો તો તેનો સ્વીકાર કરવામાં કોઈ પ્રકારે હાનિ નથી. કહ્યું પણ છે —

જે ગુણ અને પર્યાયના તાદાત્મ્યથી યુક્ત હોય તે દ્રવ્ય કહેવાય છે તે દ્રવ્યની પર્યાયો સદાય ઉત્પત્તિ અને વિનાશ વાળી છે અને તે અનાદિપ્રવાહરૂપ છે " ॥૧॥

(૫) આત્માનું પરિણામીપણું—

આત્મા પરિણામી છે પ્રત્યેક સમય એક પર્યાયને છોડી બીજો પર્યાય ધારણ કરવો તે પરિણામ કહેવાય છે તે પરિણામ જેમાં હોય તે પરિણામી કહેવાય છે

वरणरहितं सर्वतः शुद्धमस्ति। अन्यानि मतिज्ञानादिकानि चत्वारि ज्ञानानि क्षायोपशमिकानि देशत आवरणरहितानि देशतः शुद्धानि। त्रीण्यज्ञानान्यशुद्धानि। दर्शनोपयोगस्य चत्वारो भेदाः- (१) चक्षुर्दर्शनम्, (२) अचक्षुर्दर्शनम्, (३) अवधिदर्शनम्, (४) केवलदर्शनं च। तत्रैकं केवलदर्शनं क्षायिकं सर्वतोऽनावरणं सर्वतः शुद्धं च। चक्षुर्दर्शनादीनि त्रीणि क्षायोपशमिकानि देशतोऽनावरणानि देशतः शुद्धानि च सन्ति।

'ज्ञानादिगुणतः सर्वथा भिन्न आत्मे' ति नैयायिकाद्यभिमतं तु न युक्तम्, ज्ञानादिगुणसम्बन्धात् प्राक् कदाचिद् ज्ञानादिगुणहीनोऽप्यासीदिति तस्य मते

एक मात्र केवलज्ञान क्षायिक है, सम्पूर्ण आवरण से रहित और पूर्ण शुद्ध है। शेष मतिज्ञान आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक है, देशत आवरणरहित हैं और देशत शुद्ध हैं। तीनों कुज्ञान अशुद्ध हैं।

दर्शनोपयोग के चार भेद हैं—(१) चक्षुर्दर्शन, (२) अचक्षुर्दर्शन, (३) अवधिदर्शन और (४) केवलदर्शन। इनमें से अकेला केवलदर्शन क्षायिक है, पूर्ण रूप से आवरणरहित है और पूर्णरूप से शुद्ध है। चक्षुदर्शन आदि तीन क्षायोपशमिक हैं, देशत निरावरण हैं, और देशतः शुद्ध है।

'आत्मा ज्ञानादि गुणों से सर्वथा भिन्न है' ऐसा नैयायिक आदि का मत युक्त नहीं है, क्यों कि ज्ञानादि गुणों का सम्बन्ध होने से पहले किसी समय आत्मा को ज्ञानादि गुणों से रहित भी मानना पडेगा और इस प्रकार उन के मत मे आत्मा जड

માત્ર કેવલજ્ઞાન ક્ષાયિક છે, સંપૂર્ણ આવરણથી રહિત અને પૂર્ણ શુદ્ધ છે બાકીના મતિજ્ઞાન આદિ ચાર જ્ઞાન ક્ષાયોપશમિક છે, દેશ થકી આવરણરહિત છે અને દેશ થકી શુદ્ધ છે, ત્રણ કુજ્ઞાન અશુદ્ધ છે.

દર્શનોપયોગના ચાર ભેદ છે-(૧) ચક્ષુર્દર્શન, (૨) અચક્ષુર્દર્શન, (૩) અવધિદર્શન અને (૪) કેવલદર્શન તેમાથી એક કેવલદર્શન ક્ષાયિક છે પૂર્ણરૂપથી આવરણરહિત છે, અને પૂર્ણરૂપથી શુદ્ધ છે ચક્ષુર્દર્શન આદિ ત્રણ ક્ષાયોપશમિક છે, દેશ થકી નિરાવરણ છે અને દેશ થકી શુદ્ધ છે

"આત્મા જ્ઞાનાદિ ગુણોથી સર્વથા ભિન્ન છે" એવો નૈયાયિક આદિનો મત યુક્ત નથી-ઉચિત નથી, કારણ કે જ્ઞાનાદિ ગુણોનો સંબંધ થયા પહેલા કોઈ સમય આત્માને જ્ઞાનાદિ ગુણોથી રહિત પણ માનવો પડશે, અને એ પ્રમાણે તેના મતમા

सामर्थ्यात्, तथा व्यवहारनयत संसारतत्कारणरूपाशुद्धपरिणामार्थं परिणमनशक्तिमत्त्वाच्च प्रभुरित्युच्यते ।

अयमात्मा मोक्षमार्गोपदेशकतया, रत्नत्रयेण मोक्षसाधकतया, सर्वज्ञत्वप्राप्तिशक्तिमत्तया च प्रभुरित्युच्यते । "सर्वज्ञो नास्ति कश्चि"-दिति नास्तिकमतं निराकर्तुं सर्वज्ञतयाऽप्यात्मनः प्रभुत्वमस्तीति सूच्यते । यथा-अभ्रपटलमलाच्छन्नं रविचन्द्र-ज्योतिः, सुवर्णं रजतं वा क्रमशो नैर्मल्यं प्राप्नुवत्, सर्वथाऽभ्रपटलमलादिव्यपगमे सर्वतो भावनापि शुद्धिं प्राप्नोति, तथा रागद्वेषादितिमिरयुक्त आत्मा क्रमशः शुद्धिं लभमानः पूर्णशुद्धिमपि प्राप्नोति स एवात्मा 'सर्वज्ञः' इत्युच्यते ।

परिणमन-सामर्थ्यवाला है, तथा व्यवहार नय से संसार और संसार के कारणरूप अशुद्ध परिणामों के लिए परिणत होने की शक्ति से युक्त है। इस कारण आत्मा प्रभु कहलाता है।

यह आत्मा मोक्षमार्ग का उपदेश देने की, रत्नत्रय के द्वारा मोक्षसाधन की और सर्वज्ञताप्राप्ति की शक्ति से युक्त होने के कारण प्रभु है, 'कोई सर्वज्ञ नहीं है' ऐसे नास्तिकमत का निराकरण करने के लिए सर्वज्ञरूप में भी आत्मा का प्रभुत्व सूचित किया गया है। जैसे-मेघपटल तथा मल से आच्छादित सूर्य, चन्द्रमा की ज्योति, सुवर्ण या चांदी, क्रम से निर्मल होते-होते, अभ्रपटल या मल के सर्वथा हट जाने पर पूर्णरूप से शुद्ध हो जाते हैं उसी प्रकार रागद्वेष आदि से अशुद्ध आत्मा धीरे-धीरे शुद्ध होता हुआ पूर्ण शुद्धता प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार पूर्ण शुद्ध आत्मा ही सर्वज्ञ कहलाता है।

માટે પરિણમન-સામર્થ્ય વાળો છે તથા વ્યવહાર નયથી સંસાર અને સંસારના કારણરૂપ અશુદ્ધ પરિણામો માટે પરિણત થવાની શક્તિથી યુક્ત છે આ કારણથી આત્મા પ્રભુ કહેવાય છે

આ આત્મા મોક્ષમાર્ગનો ઉપદેશ દેવાની રત્નત્રયના દ્વારા મોક્ષસાધનની અને સર્વજ્ઞતાપ્રાપ્તિની શક્તિથી યુક્ત હોવાના કારણે પ્રભુ છે. "કોઈ સર્વજ્ઞ નથી' એવો જે નાસ્તિકમત છે તેનું નિરાકરણ કરવા માટે સર્વજ્ઞરૂપમાં પણ આત્માનું પ્રભુત્વ સૂચિત કર્યું છે જેમ-મેઘસમૂહ તથા મળથી આચ્છાદિત સૂર્ય, ચન્દ્રમાની જ્યોતિ, સુવર્ણ અથવા ચાંદી વગેરે ક્રમથી નિર્મળ થતાં થતાં મેઘસમૂહ અથવા મળના ખસી જવાથી પૂર્ણ શુદ્ધ રૂપમાં આવી જાય છે-શુદ્ધ થઈ જાય છે, તે પ્રમાણે રાગ-દ્વેષ આદિથી અશુદ્ધ આત્મા ધીરે ધીરે શુદ્ધ થઈને પૂર્ણ શુદ્ધતા પ્રાપ્ત કરી લે છે એ પ્રમાણે પૂર્ણ શુદ્ધ આત્મા જ સર્વજ્ઞ કહેવાય છે.

सोऽस्यास्तीति परिणामी। अनेन 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति मतं निराकृतम्। 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति स्वीकारे पूर्वदशायां यथाविध आत्मा, तथाविध एव ज्ञानोत्पत्तिसमयेऽपि भवेत्, तदा पूर्वमविज्ञातात्मा कथं पदार्थविज्ञाता स्यात्, प्रतिनियतस्वरूपस्याप्रच्युतिरूपता कौटस्थ्यमिति स्वीकारात्। यदि तदा पदार्थ-विज्ञातृत्वं स्वीक्रियते तदा पूर्वमविज्ञातुर्विज्ञातृरूपत्वे परिणामापत्त्या तन्मते कौटस्थ्य-भङ्गः। तस्मादात्मनः परिणामित्वमवश्यं स्वीकरणीयम्।

(६) प्रभुत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन मोक्षतत्कारणरूपशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-

धारण करना परिणाम कहलाता है। यह परिणाम जिस में हो वह परिणामी। इस विशेषण से आत्मा की कूटस्थनित्यता का निराकरण किया गया है। आत्मा कूटस्थ नित्य है, ऐसा स्वीकार करने पर आत्मा जैसा पहले अज्ञाता था वैसा ही ज्ञान की उत्पत्ति के समय भी रहेगा। ऐसी दशा मे आत्मा पहले अज्ञाता था तो बाद में पदार्थों का ज्ञाता कैसे होगा?, क्यों कि आप के मत के अनुसार प्रतिनियत स्वरूप से च्युत न होना—जैसा का तैसा ही बना रहना—कूटस्थता है। अगर बाद में आत्मा को पदार्थों का ज्ञाता स्वीकार करते हो तो पहले जो अज्ञाता था, उस का ज्ञाता के रूप में परिणमन हो गया अत कूटस्थनित्यता नष्ट हो गई। अत एव आत्मा को परिणामी अवश्य मानना चाहिए। आत्मा कूटस्थ नित्य नहीं वरन् परिणामी नित्य है।

(६) आत्मा का प्रभुत्व—

निश्चयनय से आत्मा मोक्ष और मोक्ष के कारणरूप शुद्ध परिणामों के लिए

આ વિશેષણથી આત્માની કૂટસ્થનિત્યતાનુ નિરાકરણ કર્યું છે "આત્મા કૂટસ્થ નિત્ય છે" એવો સ્વીકાર કરવાથી આત્મા જેવો પહેલા હતો તેવો જ જ્ઞાનની ઉત્પત્તિના સમયમા પણ રહેશે, એવી દશામા આત્મા પહેલા અજ્ઞાતા હતો તો પછી પદાર્થોનો જ્ઞાતા કેવી રીતે થશે?, કેમકે—આપના મત પ્રમાણે પ્રતિનિયત સ્વરૂપથી ચ્યુત નહિ થતા જેવો છે તેવો જ બની રહે તે કૂટસ્થતા છે અગર તો પછીથી આત્માને પદાર્થોનો જ્ઞાતા સ્વીકાર કરો છો તો પ્રથમ જે અજ્ઞાતા હતો તેનુ જ્ઞાતાના રૂપમા પરિણમન થઈ ગયુ, તેથી કૂટસ્થરૂપ નિત્યતા નાશ પામી ગઈ, આ કારણથી આત્માને પરિણામી અવશ્ય માનવો જોઈએ આત્મા કૂટસ્થ નિત્ય નથી પરંતુ પરિણામી નિત્ય છે

(૬) આત્માનુ પ્રભુત્વ—

નિશ્ચય નય પ્રમાણે આત્મા મોક્ષ અને મોક્ષના કારણરૂપ શુદ્ધ પરિણામો

सामर्थ्यात्, तथा व्यवहारनयतः संसारतत्कारणरूपाशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-शक्तिमत्त्वाच्च प्रभुरित्युच्यते।

अयमात्मा मोक्षमार्गोपदेशकतया, रत्नत्रयेण मोक्षसाधकतया, सर्वज्ञत्वप्राप्ति-शक्तिमत्तया च प्रभुरित्युच्यते। "सर्वज्ञो नास्ति कश्चि"-दिति नास्तिकमतं निराकर्तुं सर्वज्ञतयाऽप्यात्मनः प्रभुत्वमस्तीति सूच्यते। यथा-अभ्रपटलमलाच्छन्न रविचन्द्र-ज्योतिः, सुवर्णं रजतं वा क्रमशो नैर्मल्यं प्राप्नुवत्, सर्वथाऽभ्रपटलमलादि-व्यपगमे सर्वतो भावेनापि शुद्धिं प्राप्नोति, तथा रागद्वेषादिभिरशुद्ध आत्मा क्रमशः शुद्धिं लभमानः पूर्णशुद्धिमपि प्राप्नोति स एवात्मा 'सर्वज्ञः' इत्युच्यते।

परिणमन-सामर्थ्यवाला है, तथा व्यवहार नय से ससार और संसार के कारणरूप अशुद्ध परिणामों के लिए परिणत होने की शक्ति से युक्त है। इस कारण आत्मा प्रभु कहलाता है।

यह आत्मा मोक्षमार्ग का उपदेश देने की, रत्नत्रय के द्वारा मोक्षसाधन की और सर्वज्ञताप्राप्ति की शक्ति से युक्त होने के कारण प्रभु है, 'कोई सर्वज्ञ नहीं है' ऐसे नास्तिकमत का निराकरण करने के लिए सर्वज्ञरूप में भी आत्मा का प्रभुत्व सूचित किया गया है। जैसे-मेघपटल तथा मल से आच्छादित सूर्य, चन्द्रमा की ज्योति सुवर्ण या चांदी, क्रम से निर्मल होते-होते, अभ्रपटल या मल के सर्वथा हट जाने पर पूर्णरूप से शुद्ध हो जाते हैं उसी प्रकार रागद्वेष आदि से अशुद्ध आत्मा धीरे-धीरे शुद्ध होता हुआ पूर्ण शुद्धता प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार पूर्ण शुद्ध आत्मा ही सर्वज्ञ कहलाता है।

માટે પરિણમન-સામર્થ્ય વાળો છે તથા વ્યવહાર નયથી સંસાર અને સંસારના કારણરૂપ અશુદ્ધ પરિણામો માટે પરિણત થવાની શક્તિથી યુક્ત છે આ કારણથી આત્મા પ્રભુ કહેવાય છે

આ આત્મા મોક્ષમાર્ગનો ઉપદેશ દેવાની રત્નત્રયના દ્વારા મોક્ષસાધનની અને સર્વજ્ઞતાપ્રાપ્તિની શક્તિથી યુક્ત હોવાના કારણે પ્રભુ છે. "કોઈ સર્વજ્ઞ નથી" એવો જે નાસ્તિકમત છે તેનું નિરાકરણ કરવા માટે સર્વજ્ઞરૂપમાં પણ આત્માનું પ્રભુત્વ સૂચિત કર્યું છે જેમ-મેઘસમૂહ તથા મળથી આચ્છાદિત સૂર્ય, ચંદ્રમાની જ્યોતિ, સુવર્ણ અથવા ચાંદી વગેરે ક્રમથી નિર્મળ થતાં થતાં મેઘસમૂહ અથવા મળના ખસી જવાથી પૂર્ણ શુદ્ધરૂપમાં આવી જાય છે-શુદ્ધ થઈ જાય છે, તે પ્રમાણે રાગ-દ્વેષ આદિથી અશુદ્ધ આત્મા ધીરે ધીરે શુદ્ધ થઈને પૂર્ણ શુદ્ધતા પ્રાપ્ત કરી લે છે એ પ્રમાણે પૂર્ણ શુદ્ધ આત્મા જ સર્વજ્ઞ કહેવાય છે.

किञ्च–आत्मा स्वस्य हितं कर्तुमन्यं नापेक्षते; स्वयमेव स्वहितसाधने क्षमः, अत एवात्मनः प्रभुत्वं सिध्यति, तस्मात् स्वहितमिच्छुना मोक्षप्राप्तिकारणी-भूते तपःसंयमाराधने प्रवर्तितव्यम् ।

(७) कर्तृत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा–अदृष्टादिकर्मकरणात् , निश्चयनयेन शुद्धभावकर्तृत्वात् , व्यवहार-नयतो द्रव्यभावकर्मणां नोकर्मवाह्यशरीरादीनां कर्तृत्वाच्च, कर्तेत्युच्यते । आत्मै-कान्तरूपेणाऽकर्तेति सांख्यमतमपाकर्तुमुक्तम्–'आत्मा कर्ते'ति ।

दूसरी बात यह है कि–आत्मा अपना कल्याण करने में अन्य की अपेक्षा नहीं रखता। वह स्वकीय कल्याण–साधन में स्वयं समर्थ है। इसी से आत्मा का प्रभुत्व सिद्ध होता है। अत आत्महित के अभिलाषी पुरुष को मोक्षकारणभूत तप और संयम की आराधना में प्रवृत्त होना चाहिए।

(७) आत्माका कर्तृत्व–

यह आत्मा अदृष्ट आदि कर्म करने से, निश्चयनय की अपेक्षा शुद्ध भावों का कर्त्ता होने से, तथा व्यवहारनय से द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म–बाह्यशरीर आदिका कर्ता होने से कर्ता कहलाता है,

'आत्मा एकान्तरूप से अकर्ता है' सांख्य के इस मत का निराकरण करने के लिए आत्मा को कर्ता विशेषण लगाया है।

બીજી વાત એ છે કે–આત્મા પોતાનુ કલ્યાણ કરવામા બીજાની અપેક્ષા રાખતો નથી, તે પોતાના કલ્યાણસાધનમા પોતે જ સમર્થ છે તે કારણથી આત્માનું પ્રભુત્વ સિદ્ધ થાય છે એ કારણથી આત્મહિતના અભિલાષી પુરૂષોએ મોક્ષના કારણભૂત તપ અને સયમની આરાધનામા પ્રવૃત્ત થવુ જોઈએ

(૬) આત્માનુ કર્તૃત્વ—

આ આત્મા અદૃષ્ટ આદિ કર્મો કરવાથી, નિશ્ચયનયની અપેક્ષાએ શુદ્ધ ભાવોનો કર્તા હોવાથી તથા વ્યવહારનયથી દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મ તથા નોકર્મ–બાહ્યશરીર આદિનો કર્ત્તા હોવાથી કર્ત્તા કહેવાય છે.

"આત્મા એકાન્તરૂપથી અકર્ત્તા છે." સાખ્યના આ મતનુ નિરાકરણ કરવા માટે આત્માને કર્તા વિશેષણ આપ્યુ છે.

औदारिकादिशरीरस्य कर्ताऽस्ति, आदिमत्प्रतिनियताकारित्वात्, कुम्भस्य यथा कुम्भकारः। यत्पुनरकर्तृकं तदादिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति, यथाऽभ्रविकारः। यश्च शरीरस्य कर्ता स आत्मा, इत्यत्रमात्मनः कर्तृत्वं सिध्यति। अत्रादिमत्त्वविशेषणं मेर्वादीनुपादाय हेतोरनैकान्तिकत्ववारणाय।

यद्वा—आत्मा कर्ता, स्वकर्मफलभोक्तृत्वात् वणिक्कृषीवलादिवत्। आत्मा स्वकृतकर्मफलभोक्ता तस्मात् कर्ता, यथा वणिक्कृषीवलादयोऽकृतकर्मणः फलं न प्राप्नुवन्ति।

इस औदारिकादि शरीर का कोई कर्ता है, क्यों कि औदारिकादि शरीर आदिमान् और प्रतिनियत आकारवाला है, जैसे-घड़ेका कर्ता कुम्हार। जो वस्तु बिना कर्ता की होती है वह आदिमान् और नियत आकार वाली नहीं होती, जैसे-बादल का विकार। जो शरीर का कर्ता है, वह आत्मा है। इस प्रकार आत्मा का कर्तृत्व सिद्ध होता है। यहाँ 'आदिमत्' विशेषण से मेरु आदि से होने वाले अनेकान्तिक दोषका निवारण किया गया है, क्यों कि वे आदिमान् नहीं है।

अथवा आत्मा कर्ता है, क्यों कि वह अपने कर्मों का भोक्ता है जैसे वणिक् या किसान। आत्मा अपने कर्मों के फलका भोक्ता है इस कारण कर्ता है। जैसे-वणिक् या किसान आदि बिना किये कर्म का फल नहीं भोगते इसी प्रकार आत्मा बिना किये कर्म का फल नहीं भोगता।

આ ઓદારિકાદિ શરીરનો કોઇ કર્તા છે કારણ કે ઓદારિકાદિ શરીર, આદિમાન્ અને પ્રતિનિયત આકાર વાળું છે જેમ ઘડાનો કર્તા કુંભાર. જે વસ્તુ કર્તા વિનાની હોય છે તે આદિમાન્ અને નિયત આકાર વાળી હોય નહિ, જેમ વાદળનો વિકાર. જે શરીરનો કર્તા છે તે આત્મા છે એ પ્રકારે આત્માનું કર્તૃત્વ સિદ્ધ થાય છે અહીં 'આદિમત્' વિશેષણથી મેરુ આદિથી થવા વાળા અનેકાન્તિક દોષનું નિવારણ કર્યું છે કારણ કે તે આદિમાન્ નથી

અથવા—આત્મા કર્તા છે કારણ કે-તે પોતાના કર્મોનો ભોક્તા છે જેમ વણિક્ અથવા ખેડુત. આત્મા પોતાનાં કર્મોનાં ફલનો ભોક્તા છે, તે કારણથી કર્તા છે જેમ વણિક્ અથવા ખેડુત આદિ, કર્મ કર્યા વિના કર્મનું ફળ ભોગવતા નથી. તે પ્રમાણે આત્મા કર્મ કર્યા વિના તેનું ફળ ભોગવતો નથી.

किञ्च—आत्मा स्वस्य हितं कर्तुमन्यं नापेक्षते; स्वयमेव स्वहितसाधने क्षमः, अत एवात्मनः प्रभुत्वं सिध्यति, तस्मात् स्वहितमिच्छुना मोक्षप्राप्तिकारणी-भूते तपःसंयमाराधने प्रवर्तितव्यम् ।

(७) कर्तृत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा—अदृष्टादिकर्मकरणात् , निश्चयनयेन शुद्धभावकर्तृत्वात् , व्यवहार-नयतो द्रव्यभावकर्मणां नोकर्मबाह्यशरीरादीनां कर्तृत्वाच्च, कर्तेत्युच्यते । आत्मै-कान्तरूपेणाऽकर्तेति सांख्यमतमपाकर्तुमुक्तम्—'आत्मा कर्ते'ति ।

दूसरी वात यह है कि—आत्मा अपना कल्याण करने मे अन्य की अपेक्षा नहीं रखता। वह स्वकीय कल्याण—साधन में स्वय समर्थ है। इसी से आत्मा का प्रभुत्व सिद्ध होता है। अत आत्महित के अभिलापी पुरुप को मोक्षकारणभूत तप और सयम की आराधना में प्रवृत्त होना चाहिए।

(७) आत्माका कर्तृत्व—

यह आत्मा अदृष्ट आदि कर्म करने से, निश्चयनय की अपेक्षा शुद्ध भावों का कर्त्ता होने से, तथा व्यवहारनय से द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म—बाह्यशरीर आदिका कर्ता होने से कर्ता कहलाता है,

'आत्मा एकान्तरूप से अकर्ता है' साख्य के इस मत का निराकरण करने के लिए आत्मा को कर्ता विशेषण लगाया है।

બીજી વાત એ છે કે—આત્મા પોતાનુ કલ્યાણ કરવામા બીજાની અપેક્ષા રાખતો નથી, તે પોતાના કલ્યાણસાધનમા પોતે જ સમર્થ છે તે કારણથી આત્માનુ પ્રભુત્વ સિદ્ધ થાય છે એ કારણથી આત્મહિતના અભિલાષી પુરૂષોએ મોક્ષના કારણભૂત તપ અને સયમની આરાધનામા પ્રવૃત્ત થવુ જોઈએ

(૬) આત્માનુ કર્તૃત્વ—

આ આત્મા અદૃષ્ટ આદિ કર્મો કરવાથી, નિશ્ચયનયની અપેક્ષાએ શુદ્ધ ભાવોનો કર્તા હોવાથી તથા વ્યવહારનયથી દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મ તથા નોકર્મ—બાહ્યશરીર આદિનો કર્ત્તા હોવાથી કર્ત્તા કહેવાય છે.

"આત્મા એકાન્તરૂપથી અકર્ત્તા છે." સાખ્યના આ મતનુ નિરાકરણ કરવા માટે આત્માને કર્તા વિશેષણ આપ્યુ છે

अकर्तृत्वाच्च तस्य सांसारिकविषयसुखानामभोक्तृत्वं च सिध्यति। प्रकृते हि कर्तृशब्देनादृष्टादिजनककर्मण एव कर्तृत्वं विवक्षितम्, तेन मुक्तात्मनि नातिप्रसंग। तथा च यः सांसारिकसुखदुःखाद्यनुभविता स एव तत्कारणीभूतकर्मणः कर्ता, अकर्तुर्भोक्तृत्वानुपपत्तेः।

(८) भोक्तृत्वसिद्धिः—

अयमेवात्मा मोहोदयेन शुद्धात्मस्वभावं विस्मृत्य परवस्तुनि मोहितः सन् रागद्वेषं करोति, रागद्वेषवशीभूतोऽहर्निशं नवनवविषयसंग्रहार्थं प्रयतमानस्तद्वियोगे सति चिन्ताव्याकुलितचेता आर्तरौद्रध्यानमुपगतः स्वात्मनि कर्मरजः

विषयसुख आदि के जनक कर्मों के कर्ता नहीं हैं, इस कारण वे अकर्ता हैं। और अकर्ता होने के कारण वे सांसारिक विषयसुखों के भोक्ता भी नहीं हैं। यहाँ 'कर्ता' शब्द से अदृष्ट आदि के जनक कर्मों का कर्ता ही विवक्षित है, अतः मुक्त आत्मा में अति-प्रसङ्ग नहीं आता अत एव सिद्ध हुआ कि जो सांसारिक सुख-दुःख आदि का भोक्ता होता है, वही उन के कारणभूत कर्म का कर्ता भी होता है। जो कर्ता नहीं है वह भोक्ता भी नहीं है।

(८) आत्मा का भोक्तृत्व

आत्मा मोह के उदय से शुद्ध आत्मस्वरूप को भूलकर पर-पदार्थों में मोहित होता हुआ राग-द्वेष करता है। राग-द्वेष के वश हो कर रात-दिन नवीन नवीन विषयों का संग्रह करने के लिए प्रयत्नशील होता हुआ और उनका वियोग होने पर चिन्ता से व्याकुलचित हो कर आर्तध्यान और रौद्रध्यान को प्राप्त होता है, और इस

સંસારના વિષય-સુખ વગેરેને ઉત્પન્ન કરનાર કર્મોના કર્તા નથી. એ કારણથી તે આત્મા અકર્તા છે અને અકર્તા હોવાના કારણે તે સંસારના વિષયસુખોના ભોક્તા પણ નથી. અહિં 'કર્તા' શબ્દથી અદૃષ્ટ આદિના જનક કર્મોના કર્તા જ વિવક્ષિત છે તેથી મુક્ત આત્મામાં અતિપ્રસંગ આવતો નથી. એ કારણથી એમ સિદ્ધ થયું કે જે સંસારના સુખ-દુઃખ વગેરેનો ભોક્તા છે તે એના કારણભૂત કર્મોના કર્તા પણ હોય છે. જે કર્તા નથી તે ભોક્તા પણ નથી.

(૮) આત્માનું ભોક્તૃત્વ—

આત્મા મોહના ઉદયથી શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપને ભૂલી જઈને પર-પદાર્થોમાં મોહિત થઈને રાગ-દ્વેષ કરે છે. રાગ-દ્વેષને વશ થઈને રાત્રી અને દિવસ નવા-નવા વિષયોને સંગ્રહ કરવા માટે પ્રયત્નશીલ રહેતો થકો, અને તેનો વિયોગ થતાં ચિન્તાથી વ્યાકુલ-ચિત્ત થઈને આર્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાન ને પ્રાપ્ત થાય છે, અને તે કારણથી પોતાના

समुपादत्ते। यथा कोऽप्यज्ञानी व्याधिनिदानभूतमपथ्यमश्नन्अवाञ्छितमपि ज्वरादिकं स्वयमुत्पादयति, तथाऽयमात्मा कर्मबन्धनमवाञ्छन्नप्यार्तरौद्रध्यानवशेन कर्मबन्धनं प्राप्नोति। यथा कर्मबन्धनं स्वयमेवादत्ते, तथा तत्फलमपि बाह्यं किञ्चिन्निमित्तमपेक्ष्य स्वयमेवोपभुङ्क्ते। एवं चात्मनो भोक्तृत्वं सिध्यति। भोक्तृत्वाच्च कर्तृत्वमपि तस्य निर्बाधम्।

साङ्ख्यसिद्धान्ते प्रकृतेः कर्तृत्वं, न तु जीवस्य, भोक्तृत्वं चापि जीवस्योपचरितमेव। दर्पणाकारायां बुद्धौ संक्रान्तानां सुखदुःखादीनां स्वात्मनि

कारण अपनी आत्मा में कर्म–रज इकट्ठी कर लेता है। जैसे अज्ञानी मनुष्य रोग के कारणभूत अपथ्य का सेवन करता हुआ न चाहते हुए भी ज्वर आदि को उत्पन्न कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा कर्मबन्धन की इच्छा न कर के भी आर्त–रौद्रध्यान के अधीन होकर कर्मबन्ध को प्राप्त होता है। जैसे कर्मबन्ध को आत्मा स्वयं ग्रहण करता है, उसी प्रकार किसी बाह्य निमित्त की अपेक्षा से उसका फल भी स्वयं ही भोगता है। इसी प्रकार आत्मा में भोक्तापन सिद्ध होता है, और भोक्ता होने से उस में कर्तापन भी विना किसी बाधा के सिद्ध हो जाता है।

सांख्यमत से प्रकृति कर्ता है, जीव नहीं, और भोक्तापन जीव में उपचार से है। दर्पणाकार बुद्धि में प्रतिबिम्बित होने वाले सुख–दुःख आदि का आत्मा में प्रतिबिम्ब

આત્માને વિષે કર્મ–રજ (કર્મના રજકણો) એકઠી કરી લે છે, જેમ અજ્ઞાની મનુષ્ય રોગના કારણભૂત અપથ્યનુ (રોગ ઉત્પન્ન કરે તેવુ) સેવન કરીને, પોતે ઇચ્છતો નથી તો પણ જવર (તાવ) આદિને ઉત્પન્ન કરી લે છે. તે પ્રમાણે આત્મા કર્મબંધનની ઇચ્છા નહિ કરવા છતાંય પણ આર્ત્ત–રૌદ્ર ધ્યાનને આધીન થઇને કર્મબંધનને પ્રાપ્ત થાય છે જેવી રીતે કર્મબંધનને આત્મા પોતે જ ગ્રહણ કરે છે, તે પ્રમાણે કોઈ બાહ્ય નિમિત્તની અપેક્ષાથી તેનુ ફલ પણ પોતે જ ભોગવે છે એ પ્રમાણે આત્મામા ભોક્તાપણુ સિદ્ધ થાય છે અને ભોક્તા હોવાથી તેમાં કોઈ પ્રકારની બાધા વિના કર્તાપણુ પણ સિદ્ધ થઈ જાય છે

સાંખ્યમત પ્રમાણે પ્રકૃતિ કર્તા છે, જીવ કર્તા નથી ભોક્તાપણુ તે પણ જીવમા ઉપચારથી છે દર્પણાકાર બુદ્ધિમા પ્રતિબિમ્બિત (પ્રતિબિંબરૂપે) થવાવાળા (દેખાવવાવાળા) સુખ–દુઃખ આદિનુ પ્રતિબિંબ આત્મામા પડી શકતુ નથી, સ્ફટિક

प्रतिबिम्बोऽप्यसम्भवात्। स्फटिकदर्पणादावपि परिणामेनैव प्रतिबिम्बोदय-समर्थनात्। तादृशपरिणामाङ्गीकारे च जीवस्य कर्तृत्वं, स्वत एव भोक्तृत्वं च सिद्धम्।

(९) आत्मनः स्वशरीरपरिमाणत्वम्–

अयमात्मा स्वशरीरपरिमाण। निश्चयनयेन लोकाकाशपरिमाणोऽ-संख्यातप्रदेशी च। व्यवहारनयतः शरीरनामकर्मोदयाज्जातेन सूक्ष्मशरीरेण स्थूलशरीरेण वा समानपरिमाणो भवति, तस्मादयं स्वशरीरपरिमाण इत्युच्यते।

नहीं पड सकता। स्फटिक तथा दर्पण आदि में जो प्रतिबिम्ब पडता है सो परिणामी होने के कारण ही पडता है। स्फटिक आदि एकान्त अपरिणामी होते तो उन में किसी भी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पड सकता था। इस प्रकार का परिणाम स्वीकार कर लेने पर जीव में कर्तापन सिद्ध हो जायगा और फिर भोक्तापन भी स्वत सिद्ध हो जायगा।

(९) आत्मा का शरीरपरिमाण—

आत्मा प्राप्त शरीर के बराबर है, अर्थात् शरीर का जो परिमाण है। वही आत्मा का भी परिमाण है। आत्मा निश्चयनय से लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेशी है। व्यवहारनय से शरीरनामकर्म के उदय से प्राप्त हुए सूक्ष्म या स्थूल शरीर का जो परिमाण है उसी परिमाणवाला आत्मा है, अत एव आत्मा शरीर परिमाण कहलाता है।

તથા દર્પણ આદિમાં જે પ્રતિબિમ્બ પડે છે તે પરિણામી હોવાના કારણે પડે છે. સ્ફટિક આદિ જો એકાન્ત અપરિણામી હોત તો તેમાં કોઈ પણ વસ્તુનું પ્રતિબિમ્બ પડી શકત નહી. આ પ્રમાણે પરિણામ સ્વીકાર કરી લેવાથી જીવમાં કર્તાપણું સિદ્ધ થઈ જશે, અને ભોક્તાપણું પણ સ્વતઃ સિદ્ધ થઈ જશે.

(૯) આત્માનું શરીરપ્રમાણ—

આત્મા પ્રાપ્ત શરીરની બરાબર છે અર્થાત્ શરીરનું જે પરિમાણ છે તે આત્માનું પણ પરિમાણ છે. આત્મા નિશ્ચયનયથી લોકાકાશની બરાબર અસંખ્યાતપ્રદેશી છે. વ્યવહારનયથી શરીર-નામકર્મના ઉદયથી પ્રાપ્ત થયેલ સૂક્ષ્મ અથવા સ્થૂલ શરીરનું જે પરિમાણ છે તે પરિમાણ વાળો આત્મા છે. એટલા માટે આત્મા શરીરપરિમાણ કહેવાય છે.

आत्मा सर्वव्यापीति वेदान्तिकादिमतं, तथाऽऽत्मा–अणुरिति कस्यचिन्मतं च निराकर्तुं शरीरपरिमाण इत्युक्तम्। आत्मनः सर्वव्यापित्वे निष्क्रियत्वाद् भवान्तरसंक्रान्तेरसंभवापत्तिराकाशवत्।

आत्मा शरीरमात्रव्यापी, शरीर एव तद्गुणोपलब्धेः, अग्न्यौष्ण्यवत्, अथवा घटादिगुणवत्। यथा घटादेर्वर्णादयो गुणा यत्रैव देशे दृश्यन्ते तत्रैव तस्यास्तित्वं प्रतीयते, नान्यत्र। एवमात्मनोऽपि गुणाश्चैतन्यादयो शरीर एव दृश्यन्ते, न बहिः, तस्माद् देहप्रमाण एवायमात्मेति। न च पुष्पादीनां

'आत्मा सर्वव्यापक है' ऐसा वेदान्तिक आदि का मत है। कोई–कोई यह भी मानते हैं कि–'आत्मा अणु–परिमाणवाला है' इन सब मतों का निराकरण करने के लिए आत्मा को शरीर–परिमाण विशेषण लगाया है। आत्मा को सर्वव्यापक माने तो वह निष्क्रिय ठहरेगा और भवान्तर मे नहीं जा सकेगा, जैसे आकाश।

आत्मा शरीरमात्रव्यापी है, क्यों कि शरीर में ही उसके गुण उपलब्ध होते हैं, जैसे अग्नि की उष्णता अथवा घट आदि। जैसे घट आदि के गुण रूप वगैरह जिस जगह देखे जाते हैं उसी जगह उसका अस्तित्व प्रतीत होता है, अन्यत्र नहीं। इस प्रकार आत्मा के गुण चैतन्य आदि जहाँ पाये जाएँ वहीं उसका अस्तित्व मानना चाहिए। आत्मा के गुण शरीर में ही पाये जाते हैं अत शरीर में ही आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करना उचित है, अत आत्मा शरीरपरिमाण ही है।

'આત્મા સર્વવ્યાપક છે" એવો વેદાતિક આદિનો મત છે કોઈ કોઈ એમ પણ માને છે કે –"આત્મા અણુ–પરિમાણવાળો છે" તે સર્વ મતોનું નિરાકરણ કરવા માટે આત્માને શરીર–પરિમાણ વિશેષણ લગાડયુ છે આત્માને સર્વવ્યાપક માનશો તો તે નિષ્ક્રિય ઠરશે અને ભવાન્તરમા જઈ શકશે નહિ, જેમ આકાશ

આત્મા શરીરમાત્રવ્યાપી છે કારણ કે શરીરમા જ તેના ગુણ ઉપલબ્ધ થાય છે જેમ અગ્નિની ઉષ્ણતા અથવા ઘટ આદિના ગુણ રૂપ વગેરે જે જગ્યામા જોવામા આવે છે, તે જ જગ્યામા તેનું અસ્તિત્વ પ્રતીત થાય છે, અન્યત્ર (બીજા સ્થળે) નહિ એ પ્રમાણે આત્માના ચૈતન્ય આદિ ગુણ જોવામા આવે, ત્યા જ તેનુ અસ્તિત્વ માનવુ જોઈએ આત્માનો ગુણ શરીરમા જ જોવામા આવે છે તે કારણથી શરીરમા જ આત્માના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરવો તે ઉચિત છે. તેથી આત્મા શરીર

गन्धादिगुणः पुष्पाद्यवस्थितिदेशादन्यत्राप्युपलभ्यते, तथा च हेतोरनैकान्तिकत्वापत्तिरिति वाच्यम्, पुष्पाद्याश्रितगन्धादिपुद्गलानां वैस्रसिक्या प्रायोगिक्या वा गत्या गतिमत्त्वेन तदुपलम्भकघ्राणादिदेशपर्यन्तगमनोपपत्तेरिति ।

आत्मा सर्वगतो न भवति, तद्गुणस्य सर्वत्रानुपलभ्यमानत्वात्। यस्य यस्य गुणः सर्वत्रानुपलभ्यमानः स स सर्वगतो न भवति, यथा घटः। अयं चात्मा सर्वत्रानुपलभ्यमानगुणवान्, तस्मात् सर्वगतो न भवतीति। व्यतिरेक्युदाहरणं तु व्योमादि। न चासिद्धोऽयं हेतुरिति वाच्यम्, देहव्यतिरिक्तदेशे बुद्ध्यादीनां

यह कहना ठीक नहीं है कि-'फूल आदि का गुण-गन्ध वगैरह फूल की जगह से दूसरी जगह भी पाये जाते हैं, इस कारण आपका हेतु अनेकान्तिक है' क्यों कि गन्ध के आधारभूत पुद्गल स्वाभाविक गति से या प्रयत्नजन्य गति से गतिमान् होने के कारण, गन्ध को ग्रहण करने वाले घ्राण-देश तक आते हैं। तात्पर्य यह है कि जहां फूलकी गन्ध है वहाँ उस गन्ध के आधारभूत गन्ध-पुद्गल भी होते हैं इस कारण हेतु में व्यभिचार नहीं आता।

आत्मा सर्वव्यापक नहीं है, क्यों कि आत्मा के गुण सर्वत्र नहीं पाये जाते। जिस-जिस के गुण सर्वत्र उपलब्ध नहीं होते, वह पदार्थ सर्वव्यापक नहीं होता जैसे घट। आत्मा के गुण सर्वत्र नहीं पाये जाते, अत वह सर्वव्यापक नहीं है। 'आकाश यहां व्यतिरेकी उदाहरण है। 'यह हेतु असिद्ध है,' ऐसा नहीं कह सकते, क्यों कि देह से भिन्न

ભરિભાષુ છે "ફૂલ આદિનો ગુણ-ગંધ વગેરે ફૂલની જગ્યા વિના બીજી જગ્યાએ પણ જોવામાં આવે છે તે કારણથી આપનો હેતુ અનેકાન્તિક છે" એમ કહેવું તે ઠીક નથી. કારણ કે ગંધના આધારભૂત પુદ્ગલ સ્વાભાવિક ગતિથી અથવા પ્રયત્નજન્ય ગતિથી ગતિમાન હોવાના કારણે, ગંધને ગ્રહણ કરવા વાળા ઘ્રાણદેશ સુધી આવે છે. તાત્પર્ય એ છે કે-જ્યાં ફૂલની ગંધ છે ત્યાં તે ગંધના આધારભૂત ગંધપુદ્ગલ પણ હોય છે આ કારણ હેતુમાં વ્યભિચાર આવતો નથી.

આત્મા સર્વવ્યાપક નથી કેમકે આત્માનો ગુણ સર્વત્ર જોવામાં આવતો નથી, જેનો ગુણ સર્વત્ર ઉપલબ્ધ થતો નથી, તે પદાર્થ સર્વવ્યાપક હોય નહિ, જેમ ઘટ. આત્માનો ગુણ સર્વત્ર જોવામાં આવતો નથી, એ કારણથી તે સર્વવ્યાપક નથી. આકાશ અહિં વ્યતિરેકનું ઉદાહરણ છે. તે હેતુ અસિદ્ધ છે." એમ કહી શકાશે

गुणानामसद्भाव इति सर्वैः स्वीकारात्। शरीरे तद्गुणसत्त्वे हेतोर्नाप्रसिद्धता, इत्थं च देहाद् बहिर्देशेऽपि आत्माऽस्तीति वादं परित्यज्य स्वदेह एवात्माऽस्तीति मन्तव्यम्।

यद्वा—आत्मा व्यापको न भवति चेतनत्वात्, यत्तु व्यापकं तन्न चेतनम्, यथा गगनम्। चेतनं चात्मा, तस्मान्न व्यापकः। इत्थमव्यापकत्वे सिद्धे तस्य तत्रैवोपलभ्यमानगुणत्वे कायप्रमाणताऽपि सिद्धा। यत् पुनरष्टसमयसाध्य-केवलिसमुद्घातावस्थायामार्हतानामपि चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकव्यापित्वेनात्मनः

रिक्त देश में बुद्धि आदि गुणों का सद्भाव नहीं है, ऐसा सभी ने स्वीकार किया है। शरीर में आत्मा के गुणों का अस्तित्व है ही, अत एव हेतु असिद्ध नहीं है। इस प्रकार शरीर से बाहर आत्मा का अस्तित्व मानना छोड कर स्वदेह में ही अस्तित्व मानना चाहिए

अथवा—आत्मा व्यापक नहीं है, क्यों कि वह चेतन है। जो व्यापक होता है वह चेतन नहीं होता, जैसे आकाश। आत्मा चेतन है, अतः व्यापक नहीं है।

इस से आत्मा की अव्यापकता सिद्ध हो जाने पर पूर्वोक्त हेतु से (क्यों कि शरीर में ही उस के गुण पाये जाते हैं, इस हेतु से) आत्मा की शरीरप्रमाणता भी सिद्ध हो जाती है। आठ समय में सम्पन्न होने वाले केवलिसमुद्घात की अवस्था में चौदहराजू लोक में आत्मा का व्याप्त हो जाना जो यहाँ माना है, वह

નહિ કારણ કે દેહથી અતિરિક્ત (દેહ સિવાય) દેશમા બુદ્ધિ આદિ ગુણોનો સદ્ભાવ નથી એ પ્રમાણે સૌએ સ્વીકારેલુ છે શરીરમા આત્માના ગુણોનુ અસ્તિત્વ છે જ, એ કારણથી હેતુ અસિદ્ધ નથી આ પ્રમાણે શરીરની બહાર આત્માનું અસ્તિત્વ માનવું ત્યજીને પોતાના દેહમા જ અસ્તિત્વ માનવું જોઈએ

અથવા—આત્મા વ્યાપક નથી, કારણ કે તે ચેતન છે જે વ્યાપક હોય-છે તે ચેતન હોય નહિ, જેમ આકાશ આત્મા ચેતન છે તે કારણથી વ્યાપક નથી.

આ હેતુથી આત્માની અવ્યાપકતા સિદ્ધ થવાથી પૂર્વોક્ત હેતુથી (કેમકે શરીરમા જ તેના ગુણ જોવામા આવે છે એ હેતુથી) આત્માની શરીરપ્રમાણતા પણ સિદ્ધ થઇ જાય છે આઠ સમયમાં સપન્ન થવા વાળા કેવલિસમુદ્ઘાતની અવસ્થામાં ચૌદ રાજૂલોકમા આત્માનુ વ્યાપ્ત થઈ જવાનુ અહિ જે માન્યુ છે, તે કાદાચિત્ક

सर्वव्यापित्व, तत् कादाचित्कमिति न तेन व्यभिचारः ।

आत्मा श्यामाकतण्डुलमात्रो न भवति, अङ्गुष्ठपर्वमात्रो वा न भवति, तावन्मात्रस्योपात्तशरीरव्यापित्वात्, तिले तैलवत् त्वक्पर्यन्तशरीरव्यापित्वेन चोपलभ्यमानगुणत्वात्, तस्मादुपात्तशरीरे त्वक्पर्यन्तशरीरव्यापीति सिद्धम् ।

(१०) अमूर्तत्वनिरूपणम्—

आत्मा अमूर्तः, इन्द्रियैरग्राह्यत्वात्, शस्त्रादिभिरच्छेद्यत्वात्, शूलादिभिरभेद्यत्वात्, रूपरहितत्वात्, अनाद्यमूर्तपरिणामत्वात्, नित्यत्वात् ।

कादाचित्क (कभी-कभी होनेवाला) है, उस से व्यभिचार नहीं आता ।

आत्मा श्यामाक धान्यकण बराबर नहीं है, न अंगूठे के पर्व (पोर) के बराबर ही है, इतना सा आत्मा एक साथ समस्त शरीर में व्यापक नहीं हो सकता, मगर आत्मा के गुण तो संपूर्ण शरीर में उपलब्ध होते हैं, जैसे तिलों में तेल सर्वत्र पाया जाता है अत एव सिद्ध हुआ कि आत्मा प्राप्त शरीर में त्वचापर्यन्तव्यापी है ।

(१०) आत्मा का अमूर्तत्व–

आत्मा अमूर्त है, क्यों कि वह इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता, वह शस्त्र आदि से छेदा नहीं जा सकता शूल आदि से भेदा नहीं जा सकता वह अरूपी है, अनादि काल से अमूर्त परिणामवाला है और वह नित्य है ।

(क्वचित् थवावाणुं) છે તેમાં વ્યભિચાર આવતો નથી.

આત્મા શ્યામાક ધાન્યના કણ બરાબર નથી; તેમજ અંગૂઠાના પર્વ (પેર) બરાબર પણ નથી. એટલો આત્મા એક સાથે સમસ્ત શરીરમાં વ્યાપક થઈ શકતો નથી, પરન્તુ આત્માના ગુણ તો સંપૂર્ણ શરીરમાં ઉપલબ્ધ થાય છે જેમ તલમાં તેલ સર્વત્ર હોય છે એ કારણથી એ સિદ્ધ થયું કે આત્મા આ પ્રાપ્ત શરીરમાં ત્વચા-ચામડી સુધી વ્યાપી રહેલો છે

(૧૦) આત્માનું અમૂર્તત્વ

આત્મા અમૂર્ત છે કારણ કે તે ઇન્દ્રિયો દ્વારા ગ્રહણ કરી શકાતો નથી, ખડ્ગ (તલવાર) આદિથી છેદી શકાતો નથી, શૂલ આદિથી ભેદી શકાતો નથી, અરૂપી છે, અનાદિ કાલથી અમૂર્ત પરિણામવાળો છે. અને તે નિત્ય છે.

गुणानामसद्भाव इति सर्वैः स्वीकारात्। शरीरे तद्गुणसत्त्वे हेतोर्नासिद्धता, इत्थं च देहाद् बहिर्देशेऽपि आत्माऽस्तीति वादं परित्यज्य स्वदेह एवात्माऽस्तीति मन्तव्यम्।

यद्वा—आत्मा व्यापको न भवति चेतनत्वात्, यत्तु व्यापकं तन्न चेतनम्, यथा गगनम्। चेतनं चात्मा, तस्मान्न व्यापकः। इत्थमव्यापकत्वे सिद्धे तस्य तत्रैवोपलभ्यमानगुणत्वे कायप्रमाणताऽपि सिद्धा। यत् पुनरष्टसमयसाध्य-केवलिसमुद्घातावस्थायामार्हतानामपि चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकव्यापित्वेनात्मनः

रिक्त देश में बुद्धि आदि गुणों का सद्भाव नहीं है, ऐसा सभी ने स्वीकार किया है। शरीर में आत्मा के गुणों का अस्तित्व है ही, अत एव हेतु असिद्ध नहीं है। इस प्रकार शरीर से बाहर आत्मा का अस्तित्व मानना छोड कर स्वदेह में ही अस्तित्व मानना चाहिए

अथवा—आत्मा व्यापक नहीं है, क्यों कि वह चेतन है। जो व्यापक होता है वह चेतन नहीं होता, जैसे आकाश। आत्मा चेतन है, अतः व्यापक नहीं है।

इस से आत्मा की अव्यापकता सिद्ध हो जाने पर पूर्वोक्त हेतु से (क्यों कि शरीर में ही उस के गुण पाये जाते हैं, इस हेतु से) आत्मा की शरीरप्रमाणता भी सिद्ध हो जाती है। आठ समय में सम्पन्न होने वाले केवलिसमुद्घात की अवस्था में चौदहराजू लोक में आत्मा का व्याप्त हो जाना जो यहाँ माना है, वह

નહિ કારણ કે દેહથી અતિરિક્ત (દેહ સિવાય) દેશમા બુદ્ધિ આદિ ગુણોનો સદ્‌ભાવ નથી એ પ્રમાણે સૌએ સ્વીકારેલુ છે શરીરમા આત્માના ગુણોનું અસ્તિત્વ છે જ, એ કારણુથી હેતુ અસિદ્ધ નથી આ પ્રમાણે શરીરની બહાર આત્માનુ અસ્તિત્વ માનવું ત્યજીને પોતાના દેહમાં જ અસ્તિત્વ માનવું જોઈએ

અથવા—આત્મા વ્યાપક નથી, કારણુ કે તે ચેતન છે જે વ્યાપક હોય-છે તે ચેતન હોય નહિ, જેમ આકાશ આત્મા ચેતન છે તે કારણુથી વ્યાપક નથી

આ હેતુથી આત્માની અવ્યાપકતા સિદ્ધ થવાથી પૂર્વોક્ત હેતુથી (કેમકે શરીરમા જ તેના ગુણ જોવામા આવે છે એ હેતુથી) આત્માની શરીરપ્રમાણુતા પણ સિદ્ધ થઇ જાય છે આઠ સમયમા સમ્પન્ન થવા વાળા કેવલિસમુદ્‌ઘાતની અવસ્થામા, ચૌદ રાજૂલોકમા આત્માનુ વ્યાપ્ત થઈ જવાનુ અહિં જે માન્યુ છે, તે કાદાચિત્ક,

इयं च पुत्तलिका न किञ्चिदिच्छति, पुनरयं बालः सकलेन्द्रियैर्विषय-मुपभुज्य सुखीभवितुमिच्छति। यदि कोऽपि खड्गमुत्थाप्येमावभिधावेत् तदा पुत्तलिका पूर्ववदेवावस्थिता भविष्यति, बालस्तु खड्गाभिघातजनितदुःखादुद्विज्य पलायिष्यते। असौ बालः कमपि बुभुक्षितं बालमुपकरिष्यति भोजनीयवस्तु-प्रदानेन, कमपि चान्यं बालं चपेटादिप्रहारेण क्रन्दयिष्यति। पुत्तलिका तु हितमहितं वाऽपि किञ्चिन्नैव कर्तुं प्रभविष्यति। यदि मिष्टान्नाय बाल आहूतो भवेत् तदानीं सत्वरमागतो बालो भोक्तुं प्रवर्तेत, तज्जन्यसुखानुभवोऽपि तस्य भावेव। पुत्तलिका तु नागमिष्यति न किञ्चिद् भोक्ष्यते, का वार्ता सुखानुभवस्य ?।

यह पुतली कुछ भी इच्छा नहीं करती मगर बालक सभी इन्द्रियों के विषयों का भोग करके सुखी होने की इच्छा करता है। अगर कोई तलवार उठाकर इन्हें मारने दौड़े तो पुतली ज्यों की त्यों खड़ी रहेगी मगर बालक तलवार के आघात के दुःख से उद्विग्न हो कर या आघात की आशङ्का से भाग जायगा। यह बालक किसी भूखे बालक को भोजन देकर उसका उपकार भी करेगा और किसी बालक को थप्पड़ आदि मारकर रुलाएगा मगर पुतली किसीका हित या अहित करने में समर्थ नहीं है। अगर बालक को मिठाई खाने के लिए बुलाया जाय तो उसी समय आकर वह मिठाई पर टूट पड़ेगा और उसे मिठाई खाने के सुख का अनुभव भी होगा। पुतली न मिठाई के लिए आएगी न खाएगी, सुख का अनुभव करने की तो बात ही अलग रही। अत एव यह निश्चय होता है कि बालक में जीव का लक्षण ज्ञान

આ પુતળી કાંઈ પણ ઇચ્છા કરતી નથી. પરંતુ બાળક સર્વ ઇન્દ્રિયોના વિષયોનો ભોગ કરીને સુખી થવાની ઇચ્છા કરે છે અથવા કોઈ તલવાર ઉઠાવીને તેને મારવા દોડે તો પુતળી તો જેમ છે તેમ ત્યાં ઉભી રહેશે. પરંતુ બાળક તલવાર મારવાના દુઃખથી ઉદ્વિગ્ન-ચિંતાતુર બનીને અથવા તો મારવાની આશંકાથી નાસી જશે.

એ બાળક કોઈ ભૂખ્યા બાળકને ભોજન આપીને તેનો ઉપકાર પણ કરશે અને બીજા બાળકને થપડ આદિ મારીને તેને રોવરાવશે, પરંતુ પુતળી કોઈનું હિત કે અથવા અહિત કરવા સમર્થ નથી. અથવા બાળકને મિઠાઈ ખાવા માટે બોલાવવામાં આવે તો તેજ સમયે આવીને મિઠાઈ પર તુટી પડશે અને તેને મિઠાઈ ખાવાનો સુખનો અનુભવ પણ થશે. પુતળી મિઠાઈ માટે આવશે નહીં. અને ખાશે પણ નહીં. તો સુખના અનુભવની તો વાત જ ક્યાં રહી. એ કારણથી નિશ્ચય થાય છે કે

अनेन-"आत्मा नातीन्द्रियो नापि जडाद् भिन्नः" इति नास्तिकमतं निरस्तम् ।

नन्वमूर्तोऽयमात्मा नेत्रादिभिरिन्द्रियैस्तु न विज्ञेयस्तर्हि कथमिमं जनो जानीयात्-'अस्त्यत्रात्मे'-ति ।

श्रूयताम्-कस्यचित् समक्षमष्टवर्षीयो बालस्तिष्ठति; तत्समानाकृति-र्मृन्मयी पुत्तलिकाऽपि तिष्ठति । तत्रासौ द्रष्टा पश्यति-इयं पुत्तलिका चक्षुर्घ्राण-कर्णयुक्ताऽपि द्रष्टुं घ्रातुं श्रोतुं वा न शक्नोति, पुनरयं बालश्चक्षुर्भ्यां पश्यति, पुष्पमाघ्राति, कस्यचिद्भाषितं शृणोति च ।

इस कथन से नास्तिक के इस मत का निराकरण हो गया कि-'आत्मा न अतीन्द्रिय है और न जड से भिन्न है'।

शङ्का—आत्मा अमूर्त है, नेत्र आदि इन्द्रियों से जाना नहीं जा सकता तो मनुष्य कैसे समझे कि आत्मा का अस्तित्व है ?।

समाधान—सुनिये। मान लीजिए किसी के सामने आठ वर्ष का बालक खडा है, उसी के समान आकृतिवाली मिट्टी की एक पुतली भी रक्खी है। दोनों को देखने वाला देखता है कि-यह पुतली नेत्र, नाक और कान से युक्त तो है किन्तु देखने में सूंघने में और सुनने में समर्थ नहीं है, और यह बालक आँखों से देखता है, फूल सूंघता है, और किसी का भाषण सुनता है ।

આ કથનથી નાસ્તિકના એ મતનુ નિરાકરણ થઈ ગયુ કે "આત્મા અતીન્દ્રિય નથી, અને જડથી ભિન્ન નથી"

શંકા—આત્મા અમૂર્ત છે, નેત્ર આદિ ઈન્દ્રિયોથી જાણી શકાતો નથી, તો પછી માણુસો કેવી રીતે સમજી શકશે કે આત્માનુ અસ્તિત્વ છે

સમાધાન—સાભળો ? માની લો કે કોઈ (માણુસ)ના સામે એક આઠ વર્ષનો બાળક ઉભો છે તેની બાજુમા તેના જેવી સમાન આકૃતિવાલી માટીની એક પુતળી પણુ રાખી છે આ બન્નેને જોવાવાળા જુવે છે કે-આ પુતલી નેત્ર, નાક, કાનથી યુક્ત તો છે, પરન્તુ જોવામા, સુઘવામા અને સાભળવામા સમર્થ નથી. અને આ બાળક નેત્રથી જુવે છે, ફૂલ સૂઘે છે અને કોઈનુ ભાષણુ સાભળે છે.

(११) आत्मनः प्रतिशरीरं भिन्नत्वम्—

आत्मा-प्रतिशरीरं भिन्नः। एकस्यैवात्मनः प्रतिशरीरसत्त्वे तु जन्ममरणबन्धमोक्षव्यवस्था नोपपद्येत। अन्यो जातः, अन्यो मृतः। अन्यो बद्धः, अन्यस्तु मुक्त इति व्यवस्था कथमुपपद्येत, तस्मात् प्रतिशरीरं भिन्न इति सिद्धम्। तथा चानन्ता आत्मान इति मन्तव्यम्। अनेनाऽद्वैतवादो निराकृतः।

(१२) आत्मनः पौद्गलिककर्मसंयुक्तत्वम्—

अयमात्मा—पौद्गलिककर्मसंयुक्तः। निश्चयनयेन कर्मरहितोऽपि व्यवहारनयतोऽनादिकालतः पौद्गलिककर्मसम्बद्धोऽस्ति, तस्मादयं पौद्गलिककर्मसंयुक्त इति कथ्यते।

---

(११) आत्मा का प्रतिशरीरभिन्नत्व—

आत्मा अलग-अलग शरीरों में अलग-अलग है। समस्त शरीरों में एक ही आत्मा का अस्तित्व माना जाय तो जन्म, मरण बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था नहीं हो सकेगी। अर्थात् कोई जनमा कोई मरा, कोई बद्ध हुआ और कोई मुक्त हुआ, ऐसी व्यवस्था कैसे बन सकेगी? अतः आत्मा प्रत्येक शरीर में अलग ही सिद्ध होता है। आत्माएँ अनन्त हैं, ऐसा मानना चाहिए। इस से अद्वैतवाद का निराकरण हो गया।

(१२) आत्मा का पौद्गलिक कर्मसंयोग—

यह आत्मा पौद्गलिक कर्मों से संयुक्त है। निश्चयनय से कर्मरहित होने पर भी व्यवहारनयकी अपेक्षा अनादिकाल से पौद्गलिक कर्मों के साथ आत्मा

---

(११) આત્માનું પ્રતિશરીરભિન્નત્વ

આત્મા જુદા-જુદા શરીરોમાં જુદો-જુદો છે સમસ્ત શરીરોમાં એક જ આત્માનું અસ્તિત્વ માનવામાં આવે તો જન્મ, મરણ, બંધ અને મોક્ષની વ્યવસ્થા થઈ શકશે નહી. અર્થાત્, કોઈનું જન્મ, કોઈનું મરણ, કોઈ બદ્ધ થાય અને કોઈ મુક્ત થાય એવી વ્યવસ્થા કેવી રીતે બની શકશે? આ કારણથી 'આત્મા પ્રત્યેક શરીરમાં અલગ છે' એમ સિદ્ધ થાય છે આત્મા અનંત છે એમ માનવું જોઈએ, આથી અદ્વૈતવાદનું નિરાકરણ થઈ ગયું

(१२) આત્માનો પૌદ્ગલિક કર્મસંયોગ

આ આત્મા પૌદ્ગલિક કર્મોથી સંયુક્ત (કર્મો સાથે જોડાએલો) છે નિશ્ચય નયથી કર્મરહિત હોવા છતાંય પણ વ્યવહારનયની અપેક્ષા અનાદિકાલથી પૌદ્ગલિક

तथा चायं निश्चयः–बाले जीवलक्षणस्य ज्ञानस्य सद्भावाद् बालशरीरे जीवोऽस्तीति। एवमन्यत्रापि सजीवशरीरे जीवस्य सत्ता निश्चेतुं शक्यते। वस्तुतोऽयमात्मैव कर्ता भोक्ता नानाविधशुभपरिणतिकर्ता चेति। अयमात्मा संसारावस्थायां स्वज्ञानवशेन दुःखमर्जयति। उक्तञ्च—

"संसारे पर्यटन् जन्तु,–र्बहुयोनिसमाकुले,
शारीरं मानसं दुःखं, प्राप्नोति बत दारुणम् ॥१॥
आर्तध्यानरतो मूढो, न करोत्यात्मनो हितम्,
तेनासौ सुमहत् क्लेशं, परत्रेह च गच्छति" ॥२॥

विद्यमान है, इस लिए उस में जीव है। इसी प्रकार अन्यत्र भी सजीव शरीर में जीव की सत्ता का निश्चय किया जा सकता है। वास्तव में यही आत्मा कर्ता, भोक्ता और नाना प्रकार की शुभ और अशुभ परिणतियों का कर्ता है। आत्मा ससार–अवस्था में अपने अज्ञान के आधीन हो कर दु ख उपार्जन करता है, कहा भी है :—

"नाना प्रकार की योनियों से युक्त इस ससार में भ्रमण करता हुआ जीव अनेक और भयानक शारीरिक एव मानसिक दुःख प्राप्त करता है ॥ १ ॥

आर्तध्यान और रौद्रध्यान में लीन रहने वाला मूढ जीव आत्मा का हित नहीं करता। इसी कारण वह इस लोक और पर लोक में महान् क्लेश पाता है" ॥२॥

બાલકમા જીવનુ લક્ષણ–જે જ્ઞાન તે વિદ્યમાન છે, તે કારણથી તેમા જીવ છે એ પ્રમાણે અન્યત્ર પણ સજીવ શરીરમા જીવની સત્તાનો નિશ્ચય કરી શકાય છે વાસ્તવમા આ આત્મા કર્ત્તા, ભોક્તા અને નાના પ્રકારની શુભ અને અશુભ પરિણતિઓનો કર્ત્તા છે આત્મા સ સાર અવસ્થામા પોતાના અજ્ઞાનને આધીન થઈને દુ ખ ઉપાર્જન કરે છે કહ્યુ પણ છે કે —

"નાના પ્રકારની યોનિયોથી યુક્ત આ સસારમા ભ્રમણ કરતો થકો જીવ અનેક ભયાનક શારીરિક અને માનસિક દુ ખ પ્રાપ્ત કરે છે ॥૧॥

આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનમા લીન રહેવા વાળો મૂઢ જીવ આત્માનુ હિત કરતો નથી. આ કારણથી તે આ લોક અને પરલોકમા મહાન્ ક્લેશ પામે છે. ॥૨॥

कर्मबन्धापेक्षयाऽऽत्मना सह पुद्गलस्यैक्यरूपः संबन्धः, परन्तु लक्षणा-पेक्षया द्वयोर्भिन्नता प्रतीयते। तस्मादात्मन एकान्तेनाऽमूर्तत्वं नास्ति। इदमत्र तत्त्वम्-बन्धस्तु वस्तुतः पुद्गलस्य पुद्गलेन सह भवति; यथा पृथक् पृथक् पुद्गला रूक्षस्निग्धगुणाभ्यां परस्परं बन्धं प्राप्नुवन्ति तद्वत्-आत्मना सह पूर्वबद्धैः कर्मपुद्गलैः सह नूतनकर्मपुद्गला निबध्यन्ते। आत्मनोऽसंख्यातप्रदेशेष्वेषां कर्मपुद्गलानामवगाहनं भवति। आत्मन एकैकप्रदेशेऽनन्तकर्मपुद्गलास्तिष्ठन्ति। आत्मप्रदेशानां कर्मपुद्गलानां चैकक्षेत्रेऽवगाहनरूप एव बन्धः। ईदृशोऽयं बन्धो नास्ति।

कर्मबन्ध की अपेक्षा आत्मा के साथ पुद्गल का एकत्व-रूप-सम्बन्ध है किन्तु लक्षणों से दोनों भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं इस लिए आत्मा में एकान्त अमूर्तता नहीं है। तात्पर्य यह है कि-वास्तव में पुद्गलका बन्ध तो पुद्गल के साथ ही होता है, जैसे पृथक् पृथक् पुद्गल रूक्षता और स्निग्धता गुणों के कारण परस्पर बद्ध हो जाते हैं, इस प्रकार आत्मा के साथ पहले से बँधे हुए कर्मपुद्गल के साथ नवीन कर्मपुद्गलों का बन्ध होता है, इन पुद्गलों की अवगाहना आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में होती है। आत्मा के एक-एक प्रदेश में अनन्त पुद्गल रहते हैं। आत्मप्रदेशों का और कर्म-पुद्गलों का बन्ध एकक्षेत्रावगाहन रूप ही है, जैसे एक पुद्गल दूसरे पुद्गल के साथ स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण मिल कर स्कन्ध बन जाता है वैसा आत्मा और पुद्गल का बन्ध नहीं होता। कर्म

કર્મબંધની અપેક્ષા આત્માની સાથે પુદ્ગલનો એકત્વરૂપ સંબંધ છે પરન્તુ લક્ષણોથી બન્ને ભિન્ન ભિન્ન પ્રતીત થાય છે એ કારણથી એકાન્ત મૂર્તતા નથી. તાત્પર્ય એ છે કે:—વાસ્તવમાં પુદ્ગલનો બંધ તો પુદ્ગલની સાથે જ થાય છે. પૃથક્-પૃથક્ પુદ્ગલ રૂક્ષતા અને સ્નિગ્ધતા ગુણોના કારણે પરસ્પર બદ્ધ થઈ જાય છે એ પ્રમાણે આત્માની સાથે પ્રથમથી બદ્ધ થયેલા (આત્માને પ્રથમ ચોટેલા) કર્મપુદ્ગલોની સાથે નવીન કર્મપુદ્ગલોનો બંધ થાય છે. તે પુદ્ગલોની અવગાહના આત્માના અસંખ્યાત પ્રદેશોમાં થાય છે આત્માના એક એક પ્રદેશમાં અનન્ત પુદ્ગલ રહે છે આત્માના પ્રદેશો અને કર્મપુદ્ગલોનો બંધ એકક્ષેત્રાવગાહનરૂપ જ છે એવી રીતે એક પુદ્ગલ બીજા પુદ્ગલની સાથે સ્નિગ્ધતા અને રૂક્ષતા ગુણના કારણે મળીને સ્કંધ બની જાય છે તેવી રીતે આત્મા અને પુદ્ગલનો બંધ થતો નથી. કર્મપુદ્ગલોની અવગાહના આત્માની સાથે આ પ્રકારે અનાદિકાળથી ચાલી આવે છે

आत्मनो मिथ्यात्वेन सहानादिः सम्बन्धः। अनादिमिथ्यात्वजनित-विभावपरिणामरूपरागद्वेषपरिणत्याऽऽत्मा संतप्तायोगोलक इव सलिलं सर्वतोभावेन ज्ञानावरणीयादिकर्मदलं समाकृष्य स्वस्मिन् संयोजयति। ततोऽसौ वह्निनाऽयोगोलक इव, नीरेण क्षीरमिव तेन कर्मदलेनैक्यभावं प्राप्य मूर्त इव भवति, अत एव निश्चयनयेनाऽमूर्तोऽपि व्यवहारनयेनात्मा मूर्त इत्युच्यते। कर्मसम्बन्धोऽयमात्मनो व्यवहारनयत एव।

का संयोग है। अत एव उसे पौद्गलिक कर्मों से संयुक्त कहते हैं। मिथ्यात्व के साथ आत्मा का अनादि सम्बन्ध है। अनादिकालीनमिथ्यात्वजनित विभाव–परिणतिरूप राग–द्वेष से आत्मा अपने समस्त प्रदेशों से ज्ञानावरण आदि के कर्मदलिकों को उसी प्रकार ग्रहण करता है, जैसे खूब तपा हुआ लोहे का गोला जल को ग्रहण करता है। अत जैसे अग्नि और लोहगोलक एकमेक से हो जाते हैं, और दूध–पानी एक–मेक होया हुआ प्रतीत होता है, इसी प्रकार कर्मदलिकों के साथ आत्मा एकमेक होकर मूर्त–सा हो जाता है। इस प्रकार निश्चयनय से अमूर्त होने पर भी व्यवहारनय से आत्मा मूर्त है। आत्मा और कर्म का वह सम्बन्ध व्यवहारनय से ही समझना चाहिए।

કર્મોની સાથે આત્માનો સંયોગ છે એ કારણથી તેને પૌદ્‌ગલિક કર્મોથી સંયુક્ત કહે છે

મિથ્યાત્વની સાથે આત્માનો અનાદિ સંબંધ છે અનાદિકાલીન મિથ્યાત્વથી ઉત્પન્ન વિભાવ–પરિણુતિરૂપ રાગ–દ્વેષથી આત્મા પોતાના સમસ્ત પ્રદેશોથી જ્ઞાનાવરણ આદિના કર્મદળોને એવી રીતે ગ્રહણ કરે છે કે જેવી રીતે ખૂબ તપેલો લોઢાનો ગોળો જલનું ગ્રહણ કરે છે એટલે કે જેમ અગ્નિ અને લોઢાનો ગોળો એકમેક થઇ જાય છે, અને દૂધ–પાણી એકમેક થયેલા પ્રતીત થાય છે. તે પ્રમાણે કર્મ-દલિકોની સાથે આત્મા એક–મેક થઇને મૂર્ત્ત જેવો થઇ જાય છે આ પ્રમાણે નિશ્ચયનયથી અમૂર્ત્ત હોવા છતાય પણ વ્યવહારનયથી આત્મા મૂર્ત્ત છે આત્મા અને કર્મનો આ સંબંધ વ્યવહારનયથી જ સમજવો જોઇએ

स्कन्धात् पुरातना पुद्गलाः क्षरन्ति नूतनास्तु समागत्य मिलन्ति, तथाऽन्योन्यतैजस-कार्मण-शरीरयोः स्वरूपं न कदाचिद् विनश्यति, परन्तु तत्रत्याः पुरातनाः कर्मपुद्गलाः स्वस्वफलमदानपुरस्सरं स्वावस्थितिसमयं समाप्यापगच्छन्ति, नूतनाः पुनः कर्मपुद्गला आत्मप्रदेशेषु मिलित्वा बद्धा भवन्ति। एवमात्मप्रदेशैः सहानादिकालतः प्रवाहरूपेऽप्य समायातः कर्मणां सम्बन्धः।

अथ च कर्मसम्बन्धस्तदैव विनङ्क्ष्यति, यदाऽयमात्मा मुक्तिं लभेत। आभ्यां तैजसकार्मणशरीराभ्यां वियोग एव मुक्तिरुच्यते। यद्यनादिकालतः कार्मणशरीरं संसारिणो न स्यात् तदा कदाचिदपि नवीनकार्मणवर्गणाभिर्बन्धो न भवेत्। कार्मणशरीराभावादेव सिद्धानां कार्मणवर्गणापरिपूर्णेऽपि सिद्धक्षेत्रे कर्मबन्धो न भवति।

फिर भी उस स्कन्ध से पुराने पुद्गल खिरते रहते हैं और नवीन पुद्गल आकर उसमें मिल जाते हैं इसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीर का स्वरूप कभी नष्ट नहीं होता, किन्तु उसमें के पुराने कर्म-पुद्गल अपना-अपना फल देकर, अपनी स्थिति का काल समाप्त करके हट जाते हैं और नवीन पुद्गल आत्मप्रदेशों में मिलकर बद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार आत्मप्रदेशों के साथ कर्मों का सम्बन्ध अनादिकाल से प्रवाहरूप में चला आता है।

यह कर्म-सम्बन्ध उसी समय नष्ट होगा, जब आत्मा मुक्त हो जायगा। तैजस और कार्मण शरीर से सर्वथा वियोग हो जाना ही आत्मा की मुक्ति है। संसारी जीव के साथ अनादि काल से कार्मण शरीर का सम्बन्ध न होता तो नवीन कर्मवर्गणाओं का सम्बन्ध कभी न होता। यद्यपि सिद्धक्षेत्र कार्मणवर्गणा से भरा हुआ है, फिर भी सिद्धों में कार्मण शरीर न होने से उन्हें कर्मबन्ध नहीं होता।

વિદ્યમાન રહે છે તો પણ તે સ્કંધમાંથી પુરાણા પુદ્‌ગલ ખરતાં રહે છે. અને નવીન પુદ્‌ગલ આવીને તેમાં મળી જાય છે એ પ્રમાણે તૈજસ અને કાર્મણ શરીરનું સ્વરૂપ કોઈ વખત પણ નાશ થતું નથી, પરંતુ તેમાં પુરાણા કર્મપુદ્‌ગલ પોત-પોતાનું ફળ આપીને પોતાની સ્થિતિનો સમય સમાપ્ત કરીને હટી જાય છે અને નવીન પુદ્‌ગલ આત્મપ્રદેશોમાં મળીને બદ્ધ થઈ જાય છે. આ પ્રમાણે આત્મ પ્રદેશોની સાથે કર્મોનો સંબંધ અનાદિ કાળથી પ્રવાહરૂપમાં ચાલ્યો આવે છે.

આ કર્મ-સંબંધ તે સમયે નાશ થશે કે જ્યારે આત્મા મુક્ત થઈ જશે તૈજસ અને કાર્મણ શરીરની સર્વથા વિયોગ થઈ જવો તેજ આત્માની મુક્તિ છે સંસારી જીવની સાથે અનાદિ કાળથી કાર્મણ શરીરનો સંબંધ જો ન હોત તો નવીન કર્મવર્ગણાઓનો સંબંધ પણ કોઈ વખત નહી થતે, જો કે સિદ્ધક્ષેત્ર

यथा-पुद्गलस्य पुद्गलेन सह स्निग्धरूक्षगुणसद्भावे सति स्कन्धभावरूपो वन्धो भवति। कर्मपुद्गलानामवगाहनाऽऽत्मना सहेत्थमनादिकालतः प्रवृत्ता, यत्-एकपिण्डरूप कार्मणशरीरमेव संजायते। तच्च शरीरमात्मनः प्रदेशमेकमपि न मुञ्चति। आत्मनः सर्वप्रदेशमभिव्याप्य तिले तैलमिव कार्मणशरीरं तिष्ठति, किन्तु-अक्षरस्यानन्ततमो भागो वर्त्तत एव, मेघपटलाच्छादितसूर्यरश्मिवत्। इदं कार्मणं शरीरं तैजसं चेति द्वय शरीरमतिसूक्ष्मं सदाऽऽत्मना सह वर्तते। यत्र सूक्ष्मशरीरे स्थूलशरीरे वाऽयमात्मा गच्छति तत्प्रमाणो भवन् संकुचितो विस्तृतो वा भवति। तदानीमिदं द्वयं शरीरमपि सूक्ष्मस्थूलशरीरानुसारेण संकुचितं विस्तृतं वा भवति।

यथा—अकृत्रिमपर्वतादौ स्कन्धरचना विद्यमानैव, तथापि तस्मात्

पुद्गलों की अवगाहना आत्मा के साथ इस प्रकार अनादिकाल से चली आती है कि एक पिण्डरूप कार्मण शरीर ही उत्पन्न होता है। यह कार्मण शरीर आत्मा के एक भी प्रदेशको नहीं छोडता। आत्मा के समस्त प्रदेशों को व्याप्त करके, तिल में तेल की तरह कार्मण शरीर रहता है, किन्तु ज्ञान का अनन्तवाँ भाग बादलों से आच्छादित सूर्य की प्रभा के समान खुला रहता ही है।

यह कार्मण शरीर और तैजस शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है और आत्मा के साथ सदैव रहते हैं। जिस सूक्ष्म या स्थूल शरीर में आत्मा जाता है उसी शरीरप्रमाण सकुचित या विस्तृत हो जाता है, और उस समय ये दोनों शरीर भी सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीर के अनुसार सकुचित अथवा विस्तृत हो जाते हैं।

जैसे अकृत्रिम पर्वत आदि में स्कन्ध की रचना तो ज्यों की त्यों विद्यमान रहती है

કે એકપિંડરૂપ કાર્મણ શરીર જ ઉત્પન્ન થાય છે તે કાર્મણ શરીર આત્માના એક પણ પ્રદેશને છોડતો નથી આત્માના તમામ પ્રદેશોને વ્યાપ્ત (ચારેય તરફ ઘેરાયેલું) કરીને તલમા તેલ રહે છે તે પ્રમાણે કાર્મણ શરીર રહે છે

પરતુ જ્ઞાનનો અનંતમો ભાગ, વાદળાઓથી ઢકાએલી સૂર્યની પ્રભા પ્રમાણે ખુલ્લો રહે જ છે। તે કાર્મણ શરીર અને તૈજસ શરીર અત્યન્ત સૂક્ષ્મ છે અને આત્માની સાથે તે હમેશા રહે છે જે સૂક્ષ્મ કે સ્થૂલ શરીરમા આત્મા જાય છે તે શરીર પ્રમાણે સકુચિત અથવા વિસ્તૃત થઈ જાય છે અને તે સમય આ બન્ને શરીર પણ સૂક્ષ્મ અથવા સ્થૂલ શરીરના અનુસારે સકુચિત અથવા વિસ્તૃત થઈ જાય છે.

જેવી રીતે અકૃત્રિમ પર્વત આદિના સ્કધની રચના તો જેવી છે તેવી જ

लोकवादिप्रकरणम्–

यः पुनरेवंरूपमात्मानं सर्वथा विज्ञायात्मस्वरूपनिरूपणपरः स एव वस्तुतो लोकवादीत्याह–'लोकवादी' इति। लोक्यते सर्वज्ञैरिति लोकः–षड्जीवनिकायरूपः। अत्र लोकशब्देन षड्जीवनिकायो गृह्यते, भगवताऽऽत्मज्ञानमेव पुरस्कृत्य लोकवादिमतिपादनात्। यः षड्जीवनिकायरूपं लोकं विजानाति स एव लोकवादी=लोकस्वरूपकथनसमर्थवान्, न तु षड्जीवनिकायानभिज्ञ इत्यर्थः।

षड्जीवनिकायरक्षणेनैवात्मस्वरूपं प्रकटीभवति। तत्र षड्जीव–

लोकवादिप्रकरण—

जो इस प्रकार आत्मा के स्वरूप को जान कर आत्मा के निरूपण में तत्पर होता है वही वास्तव में लोकवादी है।

सर्वज्ञों द्वारा जो लोका जाय–अवलोकन किया जाय वह लोक है, अर्थात् षड्जीवनिकाय को लोक कहते हैं। 'लोक' शब्द से यहाँ षड्जीवनिकाय का ही ग्रहण किया गया है, क्यों कि भगवान् ने आत्मज्ञान को ही आगे रखकर लोकवादी का कथन किया है। जो षड्जीवनिकायरूप लोक को जानता है वही लोकवादी है, अर्थात् लोक के स्वरूप का कथन करने वाला है, किन्तु षड्जीवनिकाय से अनभिज्ञ नहीं।

षड्जीवनिकाय की रक्षा करने से ही आत्मा का स्वरूप प्रकट होता है। षड्जीव–

લોકવાદીપ્રકરણ

જે આ પ્રમાણે આત્માના સ્વરૂપને જાણી કરીને આત્માના નિરૂપણમાં તત્પર થાય છે તે વાસ્તવિક રીતે લોકવાદી છે

સર્વજ્ઞ દ્વારા જે લોકાય–અવલોકન કરાય–અર્થાત્ સર્વજ્ઞ જેને જોઈ શકે છે તે લોક છે. અર્થાત્ ષડ્જીવનિકાયને લોક કહે છે 'લોક' શબ્દથી ષડ્જીવનિકાયનું જ ગ્રહણ કર્યું છે કારણ કે ભગવાને આત્મજ્ઞાનને જ આગળ રાખીને લોકવાદીનું કથન કર્યું છે જે ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકને જાણે છે તે લોકવાદી છે અર્થાત્ લોકના સ્વરૂપનું કથન કરવા વાળા છે ષડ્જીવનિકાયથી અનભિજ્ઞ હોય તે નહિ.

ષડ્જીવનિકાયની રક્ષા કરવાથી જ આત્માનું સ્વરૂપ પ્રગટ થાય છે ષડ્

(१३) आत्मन ऊर्ध्वगतिस्वभावत्वम्–

अयमात्मा–ऊर्ध्वगतिशीलः, अगुरुलघुत्वात्। यद्येवं तर्हि कथमधो गच्छति?। अलाबुर्यथा स्वभावत ऊर्ध्वगमनशीलोपि मृल्लेपाज्जलेऽधो गच्छति; तदपगमादूर्ध्वमाजलान्ताद् गच्छति, एवमात्मापि कर्मलेपादधो गच्छति तदपगमादूर्ध्वमालोकान्ताद् गच्छति। यथा वा–एरण्डबीजमपि बन्धनमुक्तं सदूर्ध्वं गच्छति।

---

(१३) आत्माका ऊर्ध्वगतिस्वभाव—

यह आत्मा ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाला है, क्यों कि वह अगुरुलघु है। प्रश्न किया जा सकता है कि अगर ऐसी बात है तो आत्मा अधोगमन क्यों करता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे पानी में ऊपर की ओर गमन करने का तूवेका स्वभाव है, फिर भी मिट्टी का लेप कर देने से वह अधोगमन करता है और लेप हट जाने पर जल की सतह तक ऊपर की ओर उठता है। इसी प्रकार आत्मा कर्मलेप के कारण नीचे जाता है और कर्मलेप हट जाने से लोक के अग्रभाग तक उपर की ओर जाता है। अथवा जैसे–एरण्ड का बीज बन्धन से मुक्त होकर उपर जाता है उसी प्रकार आत्मा भी कर्मबन्धन का नाश होने पर उपर जाता है।

કાર્મણવર્ગણાઓથી ભરેલા છે, તો પણ સિદ્ધોમા કાર્મણ શરીર નહિં હોવાથી તેને કર્મબંધ થતો નથી

(૧૩) આત્માના ઊર્ધ્વગતિસ્વભાવ—

આ આત્મા ઊર્ધ્વ–ગતિ–ગમન–સ્વભાવ વાળો છે, કારણ કે તે અગુરુ–લઘુ છે તો પ્રશ્ન કરી શકાય છે કે અગર જો એ પ્રમાણે છે તો આત્મા અધોગમન કેમ કરે છે? આ પ્રશ્નને ઉત્તર એ છે કે–તુબડાને સ્વભાવ જેમ પાણીમા ઉપરની તરફ આવવાનો છે તો પણ તેને માટીનો લેપ કરી દેવાથી તે પાણીમા નીચે જાય છે અને માટીનો લેપ દૂર થતા જલની સપાટી સુધી ઉપરના ભાગમા આવે છે એ પ્રમાણે આત્મા કર્મલેપના કારણે નીચે જાય છે, અને કર્મલેપ દૂર થવાથી લોકના અગ્રભાગ સુધી ઉપરના ભાગમા જાય છે અથવા જેવી રીતે એરંડાનું બીજ બંધનથી મુકત થતા ઉપર જાય છે તે પ્રમાણે આત્મા પણ કર્મબંધન નાશ થતા ઉપર જાય છે

अत्र पञ्च स्थावराः एकत्रसश्चेति मिलित्वा षड्जीवनिकाया भवन्ति एषां प्रत्येकं भेदान् प्रदर्शयामः–

(१) पृथिवीकायभेदाः–

पृथिवीकायस्तावदुच्यते–पृथिव्येव कायो यस्य स पृथिवीकायः। पृथिवीकायादयः पञ्च स्थावरनामकर्मोदयात् समुत्पन्नास्तस्मादिमे स्थावरा इति कथ्यन्ते। पृथिवीकायोऽनेकविधः, शुद्धपृथिवीशर्करा–वालुकादिभेदात्। तत्र शर्करादिभेदरहिता मृत्तिकारूपा, तथा गोमयकचवरादिरहिता या पृथिवी–

पांच स्थावर और एक त्रस मिलकर षड्जीवनिकाय हैं। इन सबके भेद दिखलाते हैं—

(१) पृथिवीकाय के भेद—

पृथिवी ही जिस का शरीर हो, वह पृथ्वीकाय कहलाता है। पृथ्वीकाय आदि पांचों स्थावरनामकर्म के उदय से उत्पन्न होने के कारण स्थावर कहलाते हैं। पृथिवीकाय अनेक प्रकार का है—शुद्ध पृथिवी, शर्करा बालू आदि। उनमें शर्करा आदि भेदों से रहित मृत्तिकारूप तथा गोबर या कचरा आदि से रहित पृथिवी शुद्धपृथिवी कहलाती है। पत्थर के छोटे–छोटे टुकड़ों से मिली हुई मृत्तिका शर्करा पृथिवी है।

છે, મનુષ્ય આદિ પંચેન્દ્રિય છે

પાંચ સ્થાવર અને એક ત્રસ મળીને ષડ્જીવનિકાય છે એ તમામના ભેદો બતાવે છે—

(૧) પૃથિવીકાયના ભેદ—

પૃથિવી એજ શરીર હોય, તે પૃથિવીકાય કહેવાય છે. પૃથ્વીકાય આદિ પાંચેય સ્થાવરનામકર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન હોવાના કારણે સ્થાવર કહેવાય છે પૃથ્વીકાય અનેક પ્રકારે છે શુદ્ધપૃથ્વી, શર્કરા, વાલૂ (રેતી) આદિ તેમાં શર્કરા આદિ ભેદોથી રહિત મૃત્તિકારૂપ, અને છાણ અગર કચરા આદિથી રહિત પૃથ્વી શુદ્ધપૃથ્વી કહેવાય છે. પત્થરના નાના–નાના કકડાઓથી મળેલી માટી તે શર્કરા પૃથિવી છે. વાલૂ (રેતી)

निकायज्ञान विना तद्रक्षणं न संभवति। अतः षड्जीवनिकायस्वरूपं निरूप्यते—

जीवास्तावत् संक्षेपतो द्विविधाः-सिद्धा असिद्धाश्चेति। तत्र मुक्तिं प्राप्ताः सिद्धाः, संसारिणोऽसिद्धाः। संसारिणः पुनर्द्विविधाः-त्रस-स्थावरभेदात्। तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः। त्रसाश्चतुर्विधाः – द्वीन्द्रिय – त्रीन्द्रिय – चतुरिन्द्रिय – पञ्चेन्द्रियभेदात्। तत्रेन्द्रियाणि पञ्च श्रोत्र-चक्षु-घ्राण-रसन-स्पर्शनाख्यानि। पृथिवीकायोऽप्कायस्तेजस्कायो वायुकायो वनस्पतिकायश्चेति पञ्चविधा जीवा एकेन्द्रियाः। कृम्यादयो द्वीन्द्रियाः,। पिपीलिकादयस्त्रीन्द्रियाः, भ्रमरादयश्चतुरिन्द्रियाः। मनुष्यादयःपञ्चेन्द्रियाः।

निकाय की रक्षा उसके ज्ञान के अभाव में नहीं हो सकती, अत षड्जीवनिकाय के स्वरूप का निरूपण किया जाता है—

संक्षेप में जीवों के दो भेद हैं—सिद्ध जीव और असिद्ध जीव। मुक्त जीव सिद्ध कहलाते हैं और ससारी जीव असिद्ध कहलाते हैं। ससारी जीव भी दो प्रकार के हैं—त्रस और स्थावर। पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, और वनस्पतिकाय स्थावर हैं। त्रस जीव चार प्रकार के हैं—द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय,चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। श्रोत्र, चक्षु, घ्राण (नाक), रसना और स्पर्शन, ये पाच इन्द्रियाँ हैं। पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय, ये पाच स्थावर जीव एकेन्द्रिय हैं। कृमि आदि द्वीन्द्रिय हैं। पिपीलिका (चिउटी) आदि त्रीन्द्रिय हैं। भौंरा आदि चौइन्द्रिय हैं। मनुष्य आदि पञ्चेन्द्रिय हैं।

જીવનિકાયની રક્ષા તેના જ્ઞાનના અભાવમા થઈ શકતી નથી, તે કારણથી ષડ્-જીવનિકાયના સ્વરૂપનુ નિરૂપણ કરવામા આવે છે —

સક્ષેપમા જીવના બે ભેદ છે-(૧) સિદ્ધજીવ અને (૨) અસિદ્ધજીવ મુક્તજીવ તે સિદ્ધ કહેવાય છે અને અસિદ્ધ તે સસારી જીવ કહેવાય છે સસારી જીવ પણ બે પ્રકારના છે (૧) ત્રસ અને (૨) સ્થાવર પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, અને વનસ્પતિકાય તે સ્થાવર છે ત્રસ જીવ ચાર પ્રકારના છે દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પચેન્દ્રિય શ્રોત્ર (કાન) ચક્ષુ (નેત્ર), ઘ્રાણ (નાક), રસના (જીભ), અને સ્પર્શન (ચામડી), આ પાચ ઇંદ્રિયો છે પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય અને વનસ્પતિકાય, આ પાચ સ્થાવરજીવ એકેન્દ્રિય છે, કૃમિ આદિ દ્વીન્દ્રિય છે કીડી આદિ ત્રીન્દ્રિય છે, ભમરા વગેરે ચોઇન્દ્રિય

उक्तबादरपृथिवीकायानां यत्रैको जीवस्तत्र नियमतोऽसंख्याताः पृथिवीकाया जीवाः सन्ति। स्थानमप्येषां पृथिवी-पाताल-भवन-नरक-प्रस्तर-विमानादिकं ज्ञेयम्। सूक्ष्मपृथिवीकायजीवास्तु सर्वलोकव्यापिनः। उभयेषां भेदप्रभेदाः सर्वज्ञप्रणीतादागमादवगन्तव्याः।

(२) अप्कायभेदाः—

अप्कायोऽनेकविधः-अवश्याय-मिहिका-करक-हरतनु-शुद्ध-शीतो-ष्ण-क्षारा-म्ल-लवण-क्षीरोदक-घृतोदकादिभेदात्। एको यत्राप्कायस्तत्रासंख्याता अप्कायाः सन्ति। बादराप्कायानां समुद्र-ह्रद-नदी-वापी-कूपादि स्थानम्। सूक्ष्माप्कायस्तु सर्वलोकव्यापकः। अस्यापि भेदप्रभेदा आगमतो विज्ञेयाः।

उक्त बादर पृथिवीकाय आदि का जहाँ एक जीव है वहाँ नियम से असंख्यात पृथिवीकाय के जीव हैं। पृथिवी, पाताल भवन, नरक-प्रस्तर, विमान आदि इनके स्थान हैं। सूक्ष्म पृथिवीकाय के जीव समस्त लोक में व्याप्त हैं। दोनों के भेद-प्रभेद सर्वज्ञोक्त आगम से समझ लेने चाहिए।

(२) अप्काय के भेद—

अप्काय अनेक प्रकार का है—ओस, मिहिका, ओले, हरतनु, शुद्धजल, शीतजल, उष्णजल क्षार जल लवणजल (खारा पानी) क्षीरोदक, और घृतोदक आदि। जहाँ एक अप्काय है वहाँ असंख्यात अप्काय हैं। बादर अप्-कायका स्थान समुद्र, तालाब नदी, बावड़ी, कूप आदि हैं और सूक्ष्म अप्काय समस्त लोक में व्याप्त है। इसके भी भेद-प्रभेद आगम से समझना चाहिए।

ઉપર કહેલા બાદર પૃથિવીકાય આદિનો જ્યાં એક જીવ છે ત્યાં નિયમથી અસંખ્યાત પૃથિવીકાય જીવ છે પૃથિવી, પાતાલ, ભવન, નરક-પ્રસ્તર, વિમાન આદિ તેના સ્થાન છે સૂક્ષ્મ પૃથિવી કાયના જીવ સમસ્ત લોકમાં વ્યાપ્ત છે. એ બન્નેના ભેદ-પ્રભેદ સર્વજ્ઞોના આગમથી સમજી લેવા જોઈએ.

(૨) અપ્કાયના ભેદ—

અપ્કાયના અનેક પ્રકાર છે-ઓસ મિહિકા (નિહાર) ઓળો, હરતનુ-(પૃથ્વીને ભેદીને તૃણના અગ્રભાગ ઉપર રહેનારૂં પાણી) શુદ્ધ જલ (અંતરિક્ષથી પડેલું અથવા નદીનું પાણી) શીતજલ, ઉષ્ણજલ (સ્વભાવથી ગરમ પાણીના કુંડોનું પાણી) ખાટું જલ, ખારૂં જલ, ક્ષીરોદક અને ઘૃતોદક આદિ, (લવણ, વારૂણ ક્ષીર, ઇક્ષુરસ અને પુષ્કરવર સમુદ્રનાં પાણી) જ્યાં એક અપ્કાય છે ત્યાં અસંખ્યાત અપ્કાય છે બાદર અપ્કાયના સ્થાન સમુદ્ર, તળાવ નદી વાવડી, કૂવા આદિ છે અને સૂક્ષ્મ અપ્કાય સમસ્ત લોકમાં વ્યાપ્ત છે તેના ભેદ-પ્રભેદ પણ આગમથી સમજવા જોઈએ.

शुद्धपृथिवी। अश्मलघुखण्डमिश्रिता मृत्तिका–शर्करापृथिवी। वालुकाव्यतिमिश्रा मृत्तिका–वालुकापृथिवी। एवं बहुविधाः पृथिवीकायाः, तथाहि–

उपल–शिला–लवणो-षर-लोह-त्रपु-ताम्र-सीसक-रजत-सुवर्ण हरिताल–हिङ्गुलक–मनःशिला–सस्यकाञ्जन–प्रवाला–भ्रकपटला–भ्रवालुका–गोमेद–रुचका-ङ्क-स्फटिक–लोहिताक्ष–मरकत–मसारगल्ल-भुजगे-न्द्रनील-गोपीचन्दन-गैरिक-हंसगर्भ-पुलक-सौगन्धिक-चन्द्रकान्त-सूर्यकान्त–वैडूर्य–जलकान्तादयः सर्वे वादरपृथिवीकाय-भेदाः। एते च शुद्धपृथिव्यादयः स्वखनिस्थिता एव चेतनावन्तः। गोमय-कचवरादिरूपशस्त्रोपहता रविवह्नितापरूपशस्त्रोपहताश्च गतचेतना भवन्ति।

बालू मिली मृत्तिका बालुका पृथिवी कहलाती है। इस प्रकार पृथिवीकाय के अनेक भेद हैं, वे इस प्रकार :—

पत्थर, शिला, नमक, उषर, लोहा, रांगा, तांबा, शीशा, चांदी, सोना, हडताल, हिंगलु, मैनसिल, सस्यकाजन, मूगा, अभ्रक अभ्रवालुका गोमेद, रुचक, अङ्क, स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजग, इन्द्रनील, गोपीचन्दन, गेरू, हसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रकान्त सूर्यकान्त, वैडूर्य, जलकान्त, आदि बादर पृथिवीकाय के भेद हैं। वे शुद्ध पृथिवी आदि जब अपनी खान में स्थित होते हैं तभी सचेतन होते हैं। गोबर, कचरा आदि शस्त्रों से उपहत होकर या सूर्य की धूप और अग्नि के तापरूप शस्त्र से अचेमन हो जाते हैं।

મળેલી માટી વાલુકાપૃથિવી કહેવાય છે એ પ્રમાણે પૃથિવી કાયના અનેક ભેદ છે

પત્થર, શિલા, મીઠું, ઉષર–ખારો, લોઢું, રંગો, (કલઇ), ત્રાંબુ, સીસું, ચાંદી, સોનુ, હડતાલ, હિંગલો, મનશિલ, સુરમો, મૂગા–પરવાળા, અભ્રક, અભ્રવાલુકા, ગોમેદ, રૂચક, અંક, સ્ફટિક, લોહિતાક્ષ, મરકત, મસારગલ્લ, ભુજંગ, ઈન્દ્રનીલ, ગોપીચન્દન, ગેરૂ, હંસગર્ભ, પુલક, સૌગંધિક, ચંદ્રકાન્ત, સૂર્યકાન્ત, વૈડૂર્ય, જલકાન્ત આદિ બાદરપૃથિવીકાયના ભેદ છે (આ ખર બાદર પૃથ્વીકાય છે) એ શુદ્ધ પૃથિવી આદિ જ્યારે પોતાની ખાણુમા સ્થિત હોય છે, ત્યારે તે સચેતન હોય છે છાણુ–કચરો આદિ શસ્ત્રોથી ઉપહત (હણાએલા) થઇને, અથવા તો સૂર્ય અને અગ્નિના તાપરૂપ શસ્ત્રથી અચેતન થઈ જાય છે

इमौ तेजस्काय-वायुकायौ गतिस्वभावतया त्रसावपि निगद्येते ।

(५) वनस्पतिकायभेदाः—

वनस्पतिकायोऽनेकविधः —शैवाल—पनक—हरिद्रा—ऽऽर्द्रक—मूलका—लशुन—सूरण—पलाण्डु—लशुन—कन्दादिभेदात् । इमे वनस्पतिकायाः साधारणा उच्यन्ते । वृक्षगुच्छगुल्मलतादयः प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते । साधारणवनस्पतिकायस्यैकस्मिन्

इनके भेद-प्रभेद पूर्ववत् आगम से जानने चाहिए । तेजस्काय और वायुकाय गतिशील होने के कारण त्रस भी कहे जाते हैं ।

(५) वनस्पतिकाय के भेद-

वनस्पतिकाय अनेक प्रकार का है । जैसे—शैवाल, पनक हरिद्रा, (हल्दी), आर्द्रक (अदरख) मूलक, लशुन (आलु) सूरण प्याज लहसुन, और कन्द आदि । ये वनस्पतियाँ साधारण कहलाती हैं । तथा वृक्ष, गुच्छ गुल्म लता आदि प्रत्येकशरीर कहलाती हैं । साधारण वनस्पतिकाय के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं । इनका

તેના ભેદ-પ્રભેદ પૂર્વ પ્રમાણે આગમથી સમજી લેવા જોઈએ. તેજસ્કાય અને વાયુકાય ગતિશીલ હોવાના કારણે ત્રસ પણ કહેવામાં આવે છે

(૫) વનસ્પતિકાયના ભેદ—

વનસ્પતિ કાય અનેક પ્રકારે છે જેમકે—સેવાલ, પનક હરિદ્રા આદુ મૂલક આલુ, સૂરણ, ડુંગળી, લસણ અને કંદ આદિ. આ વનસ્પતિઓ સાધારણ કહેવાય છે (જેમાં અનંત જીવો હોય તેને સાધારણ કહે છે) તથા વૃક્ષ, (ભગવતી સૂત્રમાં વૃક્ષોના ત્રણ ભેદો પાડેલા છે (૧) શીંગબેર (આદુ)ની પેઠે અનંત જીવોવાળાં ઝાડો, (૨) આંબાની માફક અસંખ્ય જીવોવાળાં ઝાડો, (૩) અને તાડ-તમાલ વગેરે પ્રમાણે સંખ્યાત જીવોવાળાં ઝાડો) ગુચ્છ ગુલ્મ (નવમાલિકા જાઈ વગેરે) લતા આદિ પ્રત્યેક શરીર કહેવાય છે સાધારણ વનસ્પતિ કાયના એક શરીરમાં અનન્ત જીવ હોય છે તેનું સ્થાન ઘનોદધિ આદિ છે. સૂક્ષ્મ વનસ્પતિકાય સર્વ લોકવ્યાપી છે

(३) तेजस्कायभेदाः—

तेजस्कायोऽनेकविधः—अङ्गारार्चिरलातशुद्धाग्न्यादिभेदात्। इमे तेजस्काया जीवा वादराः। यत्रैकस्तेजस्कायस्तत्राऽसंख्यातास्तेजस्कायाः सन्ति। तेषां स्थानं सार्धतृतीयद्वीपरूपसमयक्षेत्रमेव, न ततो वहिः। सूक्ष्मास्तु सर्वलोकव्यापिनः। एषां भेद-प्रभेदाः पूर्ववद् विज्ञेयाः

(४) वायुकायभेदाः—

वायुकायः पौरस्त्य-पाश्चात्याद्युत्कलिमण्डलिकादिभेदादनेकविधः। वादर वायुकायानां स्थानं घनवात-तनुवात-तद्वलयाधोलोकपातालभवनादिकम्। सूक्ष्मा वायुकाया सर्वलोकव्यापिनः। एषा भेदप्रभेदाः पूर्ववद् वेदितव्याः।

---

(३) तेजस्काय के भेद–

तेजस्काय अनेक प्रकार का है, जैसे—अगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध-अग्नि आदि। जहाँ एक बादर तेजस्काय का जीव होता है वहाँ असख्यात तेजस्काय होते हैं। इन का स्थान अढाईद्वीपरूप समय क्षेत्र ही है, उस से बाहर ये नहीं होते। सूक्ष्म तेजस्काय के जीव 'लोकव्यापी हैं। इन के भी भेद-प्रभेद आगम से समझने चाहिए।

(४) वायुकाय के भेद–

वायु के भी पूर्वा और पश्चिमी आदि के भेद से और उत्कलिक मण्डलिक आदि के भेद से अनेक प्रकार हैं। घनवात, तनुवात, वलय, अघोलोक और पाताल, भवन आदि बादर वायुकाय के स्थान हैं। सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी है।

---

(3) તેજસ્કાયના ભેદ—

તેજસ્કાય અનેક પ્રકારના છે, જેમ કે અ ગાર, જવાલા, અલાત, શુદ્ધ અગ્નિ, આદિ, જ્યા એક બાદર તેજસ્કાયનો જીવ હોય છે ત્યા અસખ્યાત તેજસ્કાય હોય છે તેનુ સ્થાન અઢીદ્વીપરૂપ સમયક્ષેત્ર જ છે, તેનાથી બહાર તે નથી સૂક્ષ્મ તેજસ્કાયના જીવ લોકવ્યાપી છે તેના પણ ભેદ-પ્રભેદ આગમથી જાણી લેવા જોઈએ

(૪) વાયુકાયના ભેદ—

વાયુકાય પણ પૂર્વ અને પશ્ચિમ આદિના ભેદથી, અને ઉત્કલિક (જેમ સમુદ્રમા કલ્લોલો) મ ડલિક, (મૂળમાથી જે ગોળ ફરતો વાતો હોય તે વાયુ) આદિ ભેદથી અનેક પ્રકારને છે, ઘનવાત, તનુવાત, વલય, અધોલોક, અને પાતાલ, ભવન આદિ બાદર વાયુકાયના સ્થાન છે, અને સૂક્ષ્મ વાયુકાય સર્વલોકવ્યાપી છે.

अप्या पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः सर्वे स्थावरा एव। एवं च त्रसाः षड्विधा तेजस्काय-वायुकाय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रिय-भेदात्। तत्र तेजस्कायो वायुकायश्च प्रागुक्तः।

द्वीन्द्रियादिषु चतुर्विधेषु त्रसजीवेषु द्वीन्द्रियाणामादावुच्यते—

(१) द्वीन्द्रिय—

शरीरकाष्ठाग्निजा—कृमयः, कुक्ष्यादिजा—जीलूकप्रभृतयः, गोमयादिजा—गण्डोलकादयः, अप्सुजा—शङ्खशुक्तिजलूकप्रभृतयो द्वीन्द्रियाः।

गमन करना प्रिय है द्वीन्द्रिय आदि में ये दोनों पाए जाते हैं। स्थावरनामकर्मोदयवश अग्नि की भाँति पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और वनस्पति ये सब स्थावर हैं। इस प्रकार त्रसजीव छह प्रकार के हैं—तेजस्काय वायुकाय द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। इन में से तेजस्काय और वायुकाय का वर्णन पहले किया जा चुका है।

द्वीन्द्रिय आदि चार प्रकार के त्रसजीवों में से प्रथम द्वीन्द्रिय का स्वरूप बतलाते हैं—

(१) द्वीन्द्रिय—

शरीर और काष्ठ आदि में उत्पन्न होने वाले कृमि, पेट आदि में उत्पन्न [illegible] जलौक और गोबर में उत्पन्न होने वाले गिडोले आदि, जल में पैदा होने वाले शङ्ख और [illegible] आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं। [illegible]

[illegible] स्थावरनामकर्मोदयने लीधे अग्नि-पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, [illegible] स्थावर छे [illegible] त्रस छ प्रकारना छे—तेजस्काय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रिय. आमांथी तेजस्काय अने वायुकायनुं वर्णन [illegible]

[illegible]

(૧) [illegible]

[illegible]

इमे स्पर्शन–रसनोभयेन्द्रियाः द्वीन्द्रिया जीवा असंख्याताः ।

(२) त्रीन्द्रियाः—

त्रीन्द्रियाः पिपीलिकादयः–पिपीलिका–रोहिणिका–कुन्थु–यूक–लिक्ष–मत्कुण–मत्कोटक–शुलशुल–गोपदिका–खर्जूरा–कर्णशूलादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन–रसन–घ्राणेन्द्रियाः । त्रीन्द्रिया असंख्याताः ।

(३) चतुरिन्द्रियाः—

चतुरिन्द्रियाः भ्रमरादयः–भ्रमर–वटर–मक्षिका–दंश–मशक–वृश्चिक–कीट–कसारी–पतङ्गादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षु–रिन्द्रियाः । चतुरिन्द्रिया अपि असंख्याताः ।

इन्द्रिया होती है । द्वीन्द्रिय जीव असख्यात हैं ।

(२) त्रीन्द्रिय—

पिपीलिका (कीडी), रोहिणिका, कुन्थुवा, जू, लीख, खटमल, मकोडा, शुलशुल, गोपदिका, खजूरा, कर्णशूल, आदि त्रीन्द्रिय जीव प्रसिद्ध है । इनके स्पर्शन रसना और घ्राण, ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं । त्रीन्द्रिय जीव असख्यात है ।

(३) चतुरिन्द्रिय—

भ्रमर, वटर, मक्खी, डास, मच्छर, विच्छू, कीट, पतङ्ग, कसारी, आदि चौइन्द्रिय जीव प्रसिद्ध है । इनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, और चक्षु, ये चार इन्द्रियाँ होती हैं । ये जीव असख्यात है ।

રસના એ બે ઇન્દ્રિયો વાળા જીવો અસખ્યાત છે

(૨) ત્રીન્દ્રિય—

કીડી, રોહિણિકા, કથુવા, જુ, લીખ, માકડ, મકોડા, શુલશુલ, ગોપદિકા, કાનખજૂરા, કર્ણશૂલ આદિ ત્રીન્દ્રિય જીવ પ્રસિદ્ધ છે તેને સ્પર્શન, રસના, અને ઘ્રાણ આ ત્રણ ઇન્દ્રિયો હોય છે ત્રીન્દ્રિય જીવ અસખ્યાત છે

(૩) ચતુરિન્દ્રિય—

ભમરા, વટર, માખી, ડાસ, મચ્છર, વીછી, કીટ, પતગ, કસારી આદિ ચાર ઇન્દ્રિયવાળા જીવ પ્રસિદ્ધ છે તેમને સ્પર્શન રસના, ઘ્રાણ અને નેત્ર આ ચાર ઇન્દ્રિયો હોય છે એ જીવ અસખ્યાત છે

(४) पञ्चेन्द्रियजीवाः—

पञ्चेन्द्रियजीवाश्चतुर्धा—नारक-तिर्यक्-मनुष्य-देव-भेदात्, नारकाः सप्तविधाः, सप्तनरकेषु समुद्भवात्। रत्न(१)-शर्करा(२)-वालुका(३)-पङ्क(४)-धूम(५)-तमो(६)-महातमो(७)-नाम्न्यः सप्त पृथिव्यस्तम सप्त नरकभूमयः, तत्र ये निवसन्ति ते नारकाः सप्तविधा इति। नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति।

पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चो द्विविधाः— गर्भज-संमूर्छिमभेदात्। तत्र-गर्भजाः पञ्चधा-जलचर-स्थलचर-खेचरो-रःपरिसर्प-भुजपरिसर्पभेदात्। संमूर्छिमा अपि

(४) पञ्चेन्द्रियजीव—

पञ्चेन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं—(१) नारक, (२) तिर्यञ्च, (३) मनुष्य, और (४) देव।

नारक सात प्रकार के हैं क्यों कि सात नरकों में उनकी उत्पत्ति होती है। (१) रत्नप्रभा (२) शर्कराप्रभा (३) वालुकाप्रभा (४) पंकप्रभा (५) धूमप्रभा, (६) तमःप्रभा और (७) तमस्तमःप्रभा नामक सात पृथिवी हैं। यही सात नरकभूमियाँ है। इन भूमियों में निवास करने वाले नारकी भी सात प्रकार के कहलाते हैं। नारक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मनुष्य और देवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पांच इन्द्रियाँ होती हैं।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च दो प्रकार के है—गर्भज और संमूर्छिम। इन में गर्भज के पांच भेद हैं—(१) जलचर, (२) स्थलचर (३) खेचर, (४) उरःपरिसर्प और (५) भुजपरिसर्प।

(४) પંચેન્દ્રિય—

પાંચ ઇન્દ્રિયો વાળા જીવ ચાર પ્રકારના છે-(૧) નારકી, (૨) તિર્યંચ, (૩) મનુષ્ય, અને (૪) દેવ નારકીના સાત પ્રકાર છે કારણ કે સાત નરકોમાં તેની ઉત્પત્તિ હોય છે (૧) રત્નપ્રભા, (૨) શર્કરાપ્રભા (૩) વાલુકાપ્રભા, (૪) પંકપ્રભા, (૫) ધૂમપ્રભા (૬) તમઃપ્રભા અને (૭) તમસ્તમઃ-પ્રભા નામની સાત પૃથિવી છે તે સાત નરકભૂમિઓ છે તે નરકભૂમિઓમાં નિવાસ કરવા વાળા નારકી પણ સાત પ્રકારના કહેવાય છે નારકી, પંચેન્દ્રિય-તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવોને સ્પર્શન રસના ઘ્રાણ ચક્ષુ અને શ્રોત્ર આ પાંચ ઇન્દ્રિયો હોય છે

પંચેન્દ્રિય તિર્યંચ બે પ્રકારના છે-(૧) ગર્ભજ (૨) સંમૂર્છિમ. તેમાં ગર્ભજના પાંચ ભેદ છે:-(૧) જલચર (૨) સ્થલચર, (૩) ખેચર, (૪) ઉરઃપરિસર્પ, અને

पञ्चधा–जलचर(१)–स्थलचर(२)–खेचरो(३)–रःपरिसर्प(४)–भुजपरि
जलचरा मत्स्यमकरादयः, स्थलचरा गोमहिष्यादयः, खेचराः
उरःपरिसर्पाः सर्पादयः, भुजपरिसर्पाः गोधादयः।

मनुष्या द्विविधाः—कर्मभूमिजाः, अकर्मभूमिजाः। यत्र जात
सिध्यन्ति; बुध्यन्ते, परिनिर्वान्ति; सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्ति सा कर्मभूमि
संसारान्तप्राप्तिकारकस्य रत्नत्रयरूपमोक्षमार्गस्य विज्ञातारः कर्तार उ
भगवन्तस्तीर्थङ्करा अवतरन्ति। ते च स्वयं संसारार्णवं तरन्ति, परान्
तारयन्ति। अर्धतृतीयद्वीपाभ्यन्तरे कर्मभूमयः पञ्चदशक्षेत्ररूपा भर्ता

समूर्च्छिम के भी पाच भेद हैं—(१) जलचर, (२) स्थलचर, (३) खेचर, (४
परिसर्प और (५) भुजपरिसर्प। मच्छ, मकर, आदि जल के जीव जलचर कहलाते है।
भैंस आदि स्थलचर कहलाते हैं। मयूर आदि खेचर कहलाते हैं। सर्प आदि उरःप
और गुहेरा (गोह) आदि भुजपरिसर्प कहलाते हैं।

मनुष्य दो प्रकार के हैं—कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज। जहाँ उत्पन्न ह
जीव सिद्ध बुद्ध होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं और सब दुःखों का अन्त करते
उसे कर्मभूमि कहते है। ससार का अन्त करने वाले, रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग के ज्ञात
कर्ता और उपदेशक तीर्थङ्कर भगवान कर्मभूमि मे ही उत्पन्न होते हैं। वे स्वयं ससा
समुद्र तरते है और दूसरे भव्य जीवों को भी तारते है। अढाई द्वीप में पन्द्रह कर्म–
भूमियाँ हैं—पाच भरत क्षेत्र में, पांच ऐरवत क्षेत्र में, और पांच महाविदेह मे। पांच

(૫) ભુજપરિસર્પ મચ્છ, મકર (મગર) આદિ જલના જીવ જલચર કહેવાય છે.
ગાય, ભેંસ આદિ સ્થલચર કહેવાય છે મયૂર (મોર) આદિ ખેચર કહેવાય છે
સર્પ આદિ ઉરપરિસર્પ, અને ઘોયરા આદિ ભુજપરિસર્પ છે

મનુષ્ય બે પ્રકારના છે—(૧) કર્મભૂમિજ, (૨) અકર્મભૂમિજ, જ્યા ઉત્પન્ન
થઇને જીવ સિદ્ધ બુદ્ધ હોય છે, નિર્વાણ પ્રાપ્ત કરે છે, અને સર્વ દુ ખોનો અત
કરે છે તેને કર્મભૂમિ કહે છે સસારનો અત કરવાવાળા, રત્નત્રયરૂપ મોક્ષમાર્ગના
જ્ઞાતા કર્ત્તા, અને ઉપદેશક તીર્થંકર ભગવાન્ કર્મભૂમિમા જ ઉત્પન્ન થાય છે તે
સ્વય સસાર સમુદ્રને તરે છે અને બીજા ભવ્ય જીવોને પણ તારે છે અઢી
દ્વીપમા પદર કર્મભૂમિઓ છે—પાચ ભરતક્ષેત્રમા, પાચ ઐરવત ક્ષેત્રમા, અને

भरतानि, पञ्चैरवतानि, पञ्च महाविदेहाः। तत्र पञ्चसु महाविदेहेषु पञ्च देवकुरवोऽपि पञ्चोत्तरकुरुक्षेत्राणि अन्तर्गतानि; तानि विहाय पञ्च महाविदेहा कर्मभूमयो भवन्ति। एषु पञ्चदशसु क्षेत्रेषु जाता एव ज्ञानावरणीयादिसकलकर्मतस्करेभ्यः संसारमहारण्ये परिमुक्ता मोक्षधामाभिधावन्ति। एतत्पञ्चदशव्यतिरिक्तेषु क्षेत्रेषु जन्म प्राप्ताः पुनः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणमोक्षमार्गं लब्धुं न प्रभवन्ति।

अहो भव्यप्राणिनः! स्वनिःश्रेयसाय शीघ्रं प्रयतन्ताम्, अनन्तकालतः षड्जीवनिकायानां भवस्थिति-कायस्थितिषु-अनन्तजन्म-जरा-मरणाद्यनन्तदुःखमनुभूय पूर्वपुण्योदयेन दुर्लभमिदं मनुष्यजन्म कर्मभूमौ लब्धम्। देशविरति-सर्वविरति-

महाविदेहों में पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु क्षेत्र भी अन्तर्गत हैं, उन्हें छोड़कर पांच महाविदेह कर्मभूमि हैं। इन पन्द्रह कर्मभूमियों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य ही ज्ञानावरणीय आदि समस्त कर्मरूपी चोरों से संसाररूपी महा अरण्य में छूटकर मोक्षधाम जाते हैं। इन पन्द्रह क्षेत्रों से भिन्न क्षेत्रों में जन्म लेने वाले, सम्यग्, दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वरूप मोक्षमार्ग प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते।

अहो भव्य जीवो! अपने श्रेय (कल्याण) के लिए शीघ्र प्रयत्न करो। अनादि काल से षड्जीवनिकाय की भवस्थिति और कायस्थिति में अनन्त जन्म, जरा, मरण आदि का दुःख भोगकर पूर्वपुण्य के उदय से कर्मभूमि में दुर्लभ मनुष्य भव मिला है। देशविरति और सर्वविरति के रूप सुधा से परिपूर्ण मनुष्यायु रूप कटोरेको

પાંચ મહાવિદેહોમાં પાંચ દેવકુરૂ, અને ઉત્તરકુરૂ ક્ષેત્ર પણ અન્તર્ગત છે. તેને છોડીને પાંચ મહાવિદેહ કર્મભૂમિ છે આ પંદર કર્મભૂમિમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા મનુષ્ય જ જ્ઞાનાવરણીય આદિ તમામ કર્મરૂપી ચોરોથી સંસારરૂપી મહા-અરણ્યમાંથી છુટીને મોક્ષધામ જાય છે આ પંદર ક્ષેત્રોથી ભિન્ન ક્ષેત્રોમાં જન્મ લેવાવાળા સમ્યગ્દર્શન, જ્ઞાન, ચારિત્ર સ્વરૂપ મોક્ષમાર્ગને પ્રાપ્ત કરવા સમર્થ થતા નથી.

અહો ભવ્ય જીવો! પોતાના કલ્યાણ માટે શીઘ્ર-જલ્દી પ્રયત્ન કરો! અનાદિ કાળથી ષડ્જીવનિકાયની ભવસ્થિતિ અને કાયસ્થિતિમાં અનન્ત જન્મ, જરા, મરણ આદિનું દુઃખ ભોગવીને પૂર્વપુણ્યના ઉદયથી કર્મભૂમિમાં દુર્લભ મનુષ્ય ભવ મળ્યો છે. દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિરૂપ અમૃતથી પરિપૂર્ણ મનુષ્યાયુરૂપ આ

पीयूषपूर्णमेतन्मनुष्यायुःकटोरकं मृत्युरपहर्तुं पुरोऽवतिष्ठते। तदत्र विरतिसुधास्वाद-सुखवञ्चिता भवन्तो मा भवन्तु।

अकर्मभूमयः कथ्यन्ते—

पञ्च हैमवतानि, पञ्च हरिवर्षाणि, पञ्च रम्यकवर्षाणि, पञ्चैरण्यवतवर्षाणि, पञ्च देवकुरवः पञ्चोत्तरकुरवः, इति त्रिंशत्, षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपाः। अन्तरद्वीपा अपि युगलक्षेत्रत्वादकर्मभूमयो भवन्ति। एताः सर्वा अकर्मभूमयः, तीर्थङ्करजन्मादिरहितत्वात्।

जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रमर्यादाकारकहिमवत्पर्वतस्य पूर्वपश्चिमान्तभागद्वयात् वक्राकारे द्वे द्वे दंष्ट्रे निःसृते स्तः। एवम् ऐरवतक्षेत्रमर्यादाकारकशिखरि-

---

छीनने के लिए मृत्यु सामने खडा है, अत आप विरतिरूपी सुधा के आस्वाद के सुख से वञ्चित मत रहो।

अकर्मभूमिका कथन—

पांच हैमवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच ऐरण्यवत, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु, ये तीस, और छप्पन अन्तर द्वीप, ये सब अकर्मभूमि हैं। अन्तरद्वीप भी युगलियाक्षेत्र होने के कारण अकर्मभूमि ही हैं। इन में कभी भी तीर्थंकर का जन्म आदि नहीं होता।

जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाले हिमवत्पर्वत के पूर्वभाग और पश्चिमभाग से वक्र आकार की दो-दो दाढाएँ निकली हैं। इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र की मर्यादा करने वाले शिखरिपर्वत के पूर्व और पश्चिम भागों से दो दो वक्राकार दाढाएँ

કટોરાને છીનવી લેવા માટે મૃત્યુ સામેજ ઉભેલો છે. એ કારણથી તમે વિરતિરૂપી અમૃતના સ્વાદના સુખથી વંચિત રહેશો નહિ

અકર્મભૂમિનું કથન—

પાચ હૈમવત, પાંચ હરિવર્ષ, પાચ રમ્યક વર્ષ, પાચ ઐરણ્યવત, પાચ દેવકુરૂ, અને પાચ ઉત્તરકુરૂ, આ ત્રીસ, અને છપ્પન અન્તરદ્વીપ, આ સર્વ અકર્મભૂમિ છે અતર દ્વીપ પણ જુગળીયા ક્ષેત્ર હોવાના કારણે અકર્મભૂમિ જ છે, તેમા કોઇ પણ સ્થળે તીર્થંકરનો જન્મ આદિ થતો નથી.

જમ્બૂદ્વીપમાં ભરત ક્ષેત્રની મર્યાદા કરવાવાળા હિમવત પર્વતના પૂર્વભાગ અને પશ્ચિમ ભાગથી વક્ર આકારની બે-બે દાઢો નીકળી છે એ પ્રકારે ઐરવત ક્ષેત્રની મર્યાદા કરવાવાળા શિખરી પર્વતના પૂર્વ અને પશ્ચિમ ભાગોથી બે-બે વક્રાકાર દાઢો નિકળી છે

पर्वतस्य पूर्व-पश्चिमान्तभागद्वयात् वक्राकारे द्वे द्वे दंष्ट्रे निःसृते स्तः। अष्टासु दंष्ट्रासूर्ध्वभागे सप्त सप्तान्तरद्वीपाः सन्ति। एवं षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपा भवन्ति। अन्तरद्वीपजा अप्यकर्मभूमिजाः। तयोरुभयेषां मनुष्याणामुच्चारादिषु संमूर्छिमा मनुष्या उभयविधासु भूमिषु जायन्ते।

तत्र गर्भजा मनुष्या एकोत्तरशतम् (१०१), पर्याप्तापर्याप्तभेदाद् द्व्यधिकशतद्वयम् (२०२), संमूर्छिममनुष्या अपर्याप्तमात्रतया-एकोत्तरशतमेव (१०१), सर्वेषु संमिलितेषु त्र्युत्तरशतत्रयं (३०३) मनुष्याणां भेदाः भवन्ति।

देवनिकायः—

देवाश्चतुर्विधाः—भवनपति१—व्यन्तर२—ज्योतिष्क३—वैमानिक४—भेदात्।

निकली हैं। इन आठ दाढ़ों पर सात-सात अन्तरद्वीप हैं। इस प्रकार छप्पन अन्तरद्वीप हैं। अन्तरद्वीपज (अन्तरद्वीप में उत्पन्न हुए) जीव भी अकर्मभूमिज (अकर्मभूमि में उत्पन्न हुए) कहलाते हैं। इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के मल आदि में, दोनों भूमियों में संमूर्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

गर्भज मनुष्य एक सौ एक (१०१) प्रकार के हैं। इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद करने से दो सौ दो (२ २) भेद होते हैं। संमूर्छिम मनुष्य अपर्याप्त ही होते हैं, अतः उनके एक सौ एक (१ १) भेद मिला देने से मनुष्यों के कुल भेद तीन सौ तीन (१०३) हो जाते हैं।

देवनिकाय—

देव चार प्रकार के हैं—(१)भवनपति (२) व्यन्तर (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक।

આ આઠ દાઢો પર સાત-સાત અન્તરદ્વીપ છે આ પ્રમાણે છપ્પન અન્તરદ્વીપ છે અન્તરદ્વીપજ (અન્તરદ્વીપમાં ઉત્પન્ન થનારા) જીવ પણ અકર્મભૂમિજ (અકર્મ ભૂમિમાં ઉત્પન્ન થનારા) કહેવાય છે આ બન્ને પ્રકારના મનુષ્યોનાં મળ આદિમાં એ બન્ને ભૂમિઓમાં સંમૂર્છિમ મનુષ્ય ઉત્પન્ન થાય છે

ગર્ભજ મનુષ્ય એકસો એક (૧૦૧) પ્રકારના છે તેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી બસો બે (૨૦૨) ભેદ થાય છે સંમૂર્છિમ મનુષ્ય અપર્યાપ્તજ હોય છે તે કારણથી તેના એકસો એક (૧૦૧) ભેદ તેમાં મેળવવાથી મનુષ્યોના કુલ ત્રણસો ત્રણ (૩૦૩) ભેદ થાય છે

દેવનિકાય—

દેવ ચાર પ્રકારના છે—(૧) ભવનપતિ, (૨) વ્યન્તર, (૩) જ્યોતિષ્ક અને (૪) વૈમાનિક

(१) भवनपतिदेवभेदाः—

तत्र भवनपतयो दशविधाः-(१) असुरकुमाराः, (२) नागकुमाराः, (३) सुवर्णकुमारा, (४) विद्युत्कुमाराः, (५) अग्निकुमाराः, (६) द्वीपकुमाराः, (७) उदधिकुमाराः, (८) दिशाकुमाराः, (९) वायुकुमाराः, (१०) स्तनितकुमाराश्च। कुमारा इव सुकुमारा मनोहरा मृदुमधुरललितगतयः कुमारवदभिव्यक्तरागाः केलिविलोलितचेतस. कुमारवच्चोद्धतरूपवेषभाषाभरणप्रहरणावरणयानवाहनाश्चेत्यतः 'कुमारा' इत्युच्यन्ते। जम्बूद्वीपे सुमेरुपर्वतस्याधस्ताद्दक्षिणोत्तरभागयोस्तिर्यग्भागेऽनेककोटिकोटिलक्षयोजनं यावद् भवनपतयो निवसन्ति।

(१) भवनपतिदेव-

भवनपति देव दश प्रकार के है-(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) वायुकुमार और (१०) स्तनितकुमार।

कुमार के समान सुकुमार, मनोहर, मृदु, मधुर, ललित गतिवाले, कुमार के समान राग व्यक्त करने वाले, क्रीडा में चित्त लगाने वाले, कुमार के समान ही उद्धत रूप, वेष, भाषा, आभूषण, आयुध, यान, वाहन आदि धारण करने वाले होने से ये देव, कुमार कहलाते हैं। जम्बू द्वीप में सुमेरु पर्वत के नीचे दक्षिण भाग और उत्तर भाग के तिरछे भाग में अनेक कोडा-कोडी लाख योजन तक भवनपति देव निवास करते हैं।

(૧) ભવનપતિદેવ—

ભવનપતિ દેવ દસ પ્રકારના છે—(૧) અસુરકુમાર, (૨) નાગકુમાર, (૩) સુવર્ણ-કુમાર, (૪) વિદ્યત્કુમાર, (૫) અગ્નિકુમાર, (૬) દ્વીપકુમાર, (૭) ઉદધિકુમાર, (૮) દિશાકુમાર (૯) વાયુકુમાર, અને (૧૦) સ્તનિતકુમાર

કુમાર પ્રમાણે, સુકુમાર, મનોહર, મૃદુ, મધુર, લલિતગતિવાળા, કુમારના સમાન રાગ વ્યક્ત કરવા વાળા, ક્રીડામા ચિત્ત લગાવવા વાળા, કુમારના પ્રમાણે ઉદ્ધત-રૂપ, વેષ, ભાષા આભૂષણ, આયુધ, યાન, વાહન આદિ ધારણ કરવા વાળા હોવાથી તે દેવ, કુમાર કહેવાય છે જમ્બૂદ્વીપમા સુમેરુ પર્વતની નીચે દક્ષિણભાગ અને ઉત્તર ભાગના તિર્છા ભાગમા અનેક કોડા-કોડી લાખ યોજન સુધી ભવનપતિ દેવ નિવાસ કરે છે

तत्र बहवोऽसुरकुमारा आवासेषु, तथा कदाचित् भवनेषु च निवसन्ति। तथा नागकुमारादयः सर्वे प्रायशो भवनेष्वेव प्रतिवसन्ति। रत्नप्रभापृथ्वी-पिण्डादूर्ध्वमधश्चैकैकसहस्रयोजनं विहायैकलक्षाष्टसप्ततिसहस्रयोजनानि तु रत्न-प्रभातोऽधस्तान्नवतिसहस्रयोजनपरिमाणभाग एव भवन्ति, तत्र भवनानि दक्षिणा-धिपतीनां चमरेन्द्रादीनाम्, उत्तरार्धाधिपतीनां बलीन्द्रादीनाम्। महामण्डप-वदावासाः, भवनानि नगरसदृशानि भवन्ति, परन्तु तानि भवनानि बहिर्वृत्तानि, अभ्यन्तरे समचतुष्कोणानि, तलभाग तु पुष्करकर्णिकावद् भवन्ति। अम्बादयः परमाधार्मिका अपि असुरकुमारजातीयाः पञ्चदश सन्ति-१अम्बा२म्बरीष-

---

वहाँ बहुत से असुरकुमार आवासों में और कभी-कभी भवनों में निवास करते हैं। नागकुमार सब प्रायः भवनों में ही रहते हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी के पिण्ड से ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर एक लाख अठहत्तर हजार योजन परिमाण में मध्य भाग में सभी जगह असुरकुमार देवों के आवास हैं, किन्तु भवन रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे नब्बे हजार योजन परिमित भाग में ही हैं। वहाँ दक्षिणार्धाधिपति चमरेन्द्र आदि के और उत्तरार्धाधिपति बलीन्द्र आदि के भवन हैं। महामण्डप के समान आवास हैं। नगर के समान भवन हैं, किन्तु वे बाहर गोलाकार और भीतर समचतुष्कोण हैं। उनका तलभाग कमल की कर्णिका के समान होता है। अम्ब आदि पन्द्रह परमाधार्मिक भी असुरकुमार जाति के हैं। उनके नाम-(१) अम्ब (२) अम्बरीष, (३) श्याम (४) शबल,

---

त्यां घणा असुर कुमारो, आवासोमां अने कोई कोई वखत भवनोमां निवास करे छे नागकुमार सव प्राय. भवनोमांज निवास करे छे. रत्नप्रभा पृथ्वीना पिंडथी उपर अने नीचे ओक-ओक हजार योजन छोडीने, ओक लाख अठ्योतेर हजार योजन परिमाणमां मध्यभागमां सव जग्याओ असुरकुमार देवोना आवास छे. परन्तु भवन् रत्नप्रभा पृथ्वीनी नीचे (९००००) नेवुं हजार योजन परिमित भागमां ज छे. त्यां दक्षिणाधीपति चमरेन्द्र आदिना अने उत्तराधीपति बलीन्द्र आदिना भवन छे महामंडपनी समान आवास छे नगरना समान भवन छे परन्तु ते भवनो बहारथी गोळाकार अने अंदरथी समचतुष्कोण छे तेनो तळीआनो भाग कमळनी कर्णिकासमान होय छे अम्ब आदि पंदर परमाधार्मिक पण असुरकुमार जातिना छे. तेओना नाम जेमके-(१) अम्ब, (२) अम्बरीष, (३) श्याम (४)

३श्याम४शबल५रुद्र६वैरुद्र७काल८महाकाल९ऽसिपत्र१०धनुः११कुम्भ१२वालुक१३वैतरणी१४खरस्वर१५महाघोष-भेदात् ।

(२) व्यन्तरदेवाः—

रत्नप्रभाकाण्डस्य सहस्रयोजनपरिमाणयुक्तस्याधस्तादेकशतयोजनमूर्ध्वं च तथैकशतयोजनं विहायाष्टशतयोजनपरिमाणयुक्तरत्नप्रभाकाण्डे व्यन्तरदेवानामसंख्यातानि नगराणि सन्ति। तथैव भवनानि तेषामावासाश्च सन्ति। तत्र बालवत् स्वेच्छया शक्रादिदेवेन्द्राज्ञया वा चक्रवर्त्यादिपुरुषाज्ञया वा प्रायेणानियतगतिप्रचारा भवन्ति। मनुष्यानपि केचिद् भृत्यवदुपचरन्ति। विविधेषु च शैलकन्दरान्तरवनविवरादिषु प्रतिवसन्ति; अतो व्यन्तरा इत्युच्यन्ते ।

(५) रुद्र, (६) वैरुद्र, (७) काल, (८) महाकाल, (९) असिपत्र, (१०) धनुष, (११) कुम्भ, (१२) वालुक, (१३) वैतरणी, (१४) खरस्वर, (१५) महाघोष ।

(२) व्यन्तर देव–

एक हजार योजन परिमाण वाले रत्नप्रभाकाण्ड के नीचे और एक सौ योजन ऊपर तथा एक सौ योजन छोडकर आठ सौ योजन परिमाण युक्त रत्नप्रभाकाण्ड में व्यन्तर देवों के असख्यात नगर हैं। उसी प्रकार भवन और उनके आवास हैं। बालकों के समान अपनी इच्छासे, शक्र आदि देवों की आज्ञा से, या चक्रवर्ती आदि की आज्ञासे प्राय अनियतगति वाले होते हैं। ये देव किन्हीं–किन्हीं मनुष्यों की दास के समान सेवा करते हैं। ये विविध प्रकार के पर्वतों की गुफाओ में और वनविवर आदि में निवास करते हैं अत इन्हें व्यन्तर कहते हैं।

શબલ, (૫) રુદ્ર, (૬) વૈરુદ્ર, (૭) કાલ, (૮) મહાકાલ, (૯) અસિપત્ર, (૧૦) ધનુષ, (૧૧) કુંભ, (૧૨) વાલુક, (૧૩) વૈતરણી, (૧૪) ખરસ્વર, (૧૫) મહાઘોષ.

(૨) વ્યન્તરદેવ—

એક હજાર યોજન પરિમાણુવાળા રત્નપ્રભાકાડની નીચે અને એકસો યોજન ઉપર તથા એકસો યોજન છોડીને આઠસો યોજન પરિમાણુયુક્ત રત્નપ્રભાકાડમા વ્યતર દેવોના અસખ્યાત નગર છે તે પ્રમાણે ભવન અને તેના આવાસો છે બાળકોની જેમ પોતાની ઇચ્છાથી, ઇદ્ર આદિ દેવોની આજ્ઞાથી અથવા ચક્રવર્તી આદિની આજ્ઞાથી પ્રાય અનિયત ગતિવાળા હોય છે. આ દેવ કોઇ કોઇ મનુષ્યની દાસની સમાન સેવા કરે છે તે વિવિધ પ્રકારના પર્વતોની ગુફાઓમા અને વન-ગુફાઓ આદિમા નિવાસ કરે છે.

व्यन्तरा षोडशविधाः- १ पिशाच-२ भूत-३ यक्ष-४ राक्षस -५ किंनर ६किंपुरुष ७महोरग-८गन्धर्वा-९अप्रज्ञप्तिक-१०पञ्चप्रज्ञप्तिक-११ऋषिवादिक१२भूतवादिक - १३ क्रन्दित - १४ महाक्रन्दित१५कूष्माण्ड-१६पतंग भेदात् । (स्था स्था २ उ ३)

जृम्भका अपि व्यन्तरदेवा दश सन्ति। यथा-(१) अन्नजृम्भकाः (२) पानजृम्भकाः, (३) वस्त्रजृम्भकाः, (४) लयनजृम्भकाः, (५) शयनजृम्भकाः, (६) पुष्पजृम्भकाः, (७) फलजृम्भकाः, (८) पुष्पफलजृम्भकाः, (९) विद्याजृम्भकाः, (१) अव्यक्तजृम्भकाः।

(६) ज्योतिष्कदेवाः-

ज्योतींषि-प्रभापुञ्जस्वरूपाणि समुज्ज्वलानि विमानानि, तत्र भवाः

व्यन्तर देव सोलह हैं-(१) पिशाच (२) भूत (३) यक्ष (४) राक्षस (५) किन्नर, (६) किंपुरुष (७) महोरग, (८) गन्धर्व (९) अप्रज्ञप्तिक, (१०) पञ्चप्रज्ञप्तिक, (११) ऋषिवादिक, (१२) भूतवादिक, (१३) क्रन्दित (१४) महाक्रन्दित, (१५) कूष्माण्ड और (१६) पतङ्ग (स्था स्था २ उ ३)

जृम्भक व्यन्तर देव भी दस प्रकार के हैं। जैसे—

(१) अन्नजृंभक, (२) पानजृंभक, (३) वस्त्रजृंभक (४) लयनजृंभक (५) शयनजृंभक, (६) पुष्पजृंभक (७) फलजृंभक, (८) पुष्पफलजृंभक, (९) विद्याजृंभक और (१) अव्यक्त-जृंभक।

(३) ज्योतिष्क देव

प्रभा के पुञ्ज के समान अत्यन्त उज्ज्वल विमानों में उत्पन्न होने वाले

વ્યન્તર દેવ સોળ છે (૧) પિશાચ, (૨) ભૂત (૩) યક્ષ, (૪) રાક્ષસ (૫) કિન્નર, (૬) કિંપુરૂષ, (૭) મહોરગ, (૮) ગંધર્વ (૯) અપ્રજ્ઞપ્તિક, (૧૦) પંચપ્રજ્ઞપ્તિક, (૧૧) ઋષિવાદિક (૧૨) ભૂતવાદિક (૧૩) ક્રન્દિત, (૧૪) મહાક્રન્દિત, (૧૫) કૂષ્માંડ અને (૧૬) પતંગ (સ્થા. સ્થા ૨ ઉ. ૩)

જૃંભક વ્યન્તર દેવ પણ દસ પ્રકારના છે જેમ-(૧) અન્નજૃંભક (૨) પાન જૃંભક (૩) વસ્ત્રજૃંભક (૪) લયનજૃંભક (૫) શયનજૃંભક (૬) પુષ્પ જૃંભક (૭) ફલજૃંભક (૮) પુષ્પફલજૃંભક (૯) વિદ્યાજૃંભક અને (૧૦) અવ્યક્તજૃંભક

(૩) જ્યોતિષ્કદેવો—

પ્રભાના પુંજ સમાન અત્યંત ઉજ્જવલ વિમાનોમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા દેવ

ज्योतिष्काः। ज्योतिष्कदेवास्तिर्यग्लोके ज्योतिःप्रकाशं कुर्वन्ति। ज्योतिष्कदेवाः पञ्चविधाः-(१) चन्द्र-(२) सूर्य-(३) ग्रह-(४) नक्षत्र-(५) तारा-भेदात्। इमे पञ्च समयक्षेत्रान्तर्वर्तिनश्चरस्वभावाः सन्ति। अपरे पञ्च चन्द्रादयः समयक्षेत्राद् बहिः स्थिरा एव तिष्ठन्ति।

(४) वैमानिकदेवाः—

ऊर्ध्वलोके विमानेषु वसन्तीति वैमानिकाः। यद्वा-विशेषेण मानयन्ति= विशंति यत्र विशिष्टसुकृतिन इति विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः। यद्वा-वि= विशिष्टं मानं=ज्ञान यत्र, समदर्शितया, अन्यदेवापेक्षया च हेयोपादेयज्ञान-विशिष्टा भवन्ति यत्र तानि विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः।

देव ज्योतिष्क कहलाते हैं। ज्योतिष्क देव मध्यम लोक में प्रकाश करते हैं। ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के हैं—

१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, और ५ तारागण। ये पांचों समयक्षेत्र (अढाई द्वीप) में चलते हैं और समयक्षेत्र से बाहर स्थिर स्वभाव वाले हैं।

(४) वैमानिक देव–

ऊर्ध्व लोक में विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं। अथवा जहां विशिष्ट पुण्यात्मा प्रवेश करते हैं उन्हे विमान कहते हैं, और विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं। अथवा समदर्शी होने के कारण जहा विशिष्ट ज्ञान हो, या अन्य देवों की अपेक्षा जहा हेय उपादेय का विशिष्ट ज्ञान हो, वे विमान हैं और उन में होने वाले वैमानिक हैं।

જ્યોતિષ્ક કહેવાય છે જ્યોતિષ્ક દેવ મધ્ય લોકમા પ્રકાશ કરે છે જ્યોતિષ્ક દેવ પાંચ પ્રકારના છે (૧) ચન્દ્ર, (૨) સૂર્ય, (૩) ગ્રહ, (૪) નક્ષત્ર અને (૫) તારાગણ આ પાચ સમયક્ષેત્ર (અઢીદ્વીપ)મા ચાલે છે અને સમયક્ષેત્રની બહાર સ્થિર સ્વભાવવાળા છે

(૪) વૈમાનિક દેવ–

ઉર્ધ્વલોકમા વિમાનોમા વાસ કરવા વાળા વૈમાનિક કહેવાય છે, અથવા જ્યા વિશિષ્ટ પુણ્યાત્મા પ્રવેશ કરે છે તેને વિમાન કહે છે અને વિમાનોમા વાસ કરવા વાળા વૈમાનિક કહેવાય છે, અથવા-સમદર્શી હોવાના કારણે જ્યા વિશિષ્ટ જ્ઞાન હોય, અથવા અન્ય દેવોની અપેક્ષાએ, જ્યા હેય-ઉપાદેયનુ વિશિષ્ટ જ્ઞાન હોય તે વિમાન છે, અને તેમાં થવા વાળા વૈમાનિક છે

वैमानिकदेवानां द्वौ भेदौ-कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च। कल्पः=आचारः स चेहेन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशादिव्यवहाररूपस्तमुपगताः कल्पोपपन्नाः= सौधर्मादिदेवलोकनिवासिनो वैमानिका देवाः। यद्वा-कल्पेषु सौधर्मादिषु उपपन्नाः सौधर्मादिदेवलोकोत्पन्ना वैमानिकदेवाः कल्पोपपन्नाः। यद्वा-कल्पेन=नियमेन इन्द्रसामानिकादिस्वामिसेवकादिभावरूपमर्यादयोपपन्नाः=युक्ताः=कल्पोपपन्नाः।

१इन्द्र-२सामानिक-३त्रायस्त्रिंश-४लोकपाल-५पारिषद्य-६नीक-७आत्मरक्षका-८ऽऽभियोगिक-९प्रकीर्णाः, किल्विषिकाश्च१० स्वस्वमर्यादापालकतया कल्पोपपन्ना इत्युच्यन्ते। तत्रेन्द्राः-सामानिकादिदेवानामधिपतयः। इन्द्रसमानाः-सामानिकाः। मन्त्रिपुरोहितस्थानीयास्त्रायस्त्रिंशाः। सीमारक्षका

वैमानिक देव दो प्रकार के हैं-कल्पोपपन्न और कल्पातीत। कल्प का अर्थ है-आचार। यहां इन्द्र, सामानिक त्रायस्त्रिंश आदि का व्यवहार कल्प माना गया है, और यह कल्प जिन में पाया जाय वे कल्पोपपन्न कहलाते हैं। सौधर्म आदि देवलोकों मे निवास करने वाले वैमानिक देव कल्पोपपन्न हैं। अथवा कल्प से अर्थात् नियम से अर्थात् इन्द्र, सामानिक आदि, या स्वामी-सेवक आदिभावरूप मर्यादा से युक्त देव कल्पोपपन्न कहलाते हैं।

इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल, पारिषद्य आनीक, आत्मरक्षक, आभियोग्य प्रकीर्णक और किल्विषिक ये दश अपनी-अपनी मर्यादा का पालन करते हुए कल्पोपपन्न कहलाते हैं।

सामानिक आदि देवों के अधिपति इन्द्र कहलाते हैं। इन्द्र के समान

વૈમાનિક દેવ બે પ્રકારના છે-(૧) કલ્પોપપન્ન અને (૨) કલ્પાતીત. કલ્પનો અર્થ છે-આચાર. અહિં ઈન્દ્ર સામાનિક ત્રાયસ્ત્રિંશ આદિનો વ્યવહાર કલ્પ માન્યો છે અને આ કલ્પ જેનામાં જોવામાં આવે છે તે કલ્પોપપન્ન કહેવાય છે. સૌધર્મ આદિ દેવલોકોમાં નિવાસ કરવાવાળા વૈમાનિક દેવ કલ્પોપપન્ન છે અથવા કલ્પથી અર્થાત્ નિયમથી અર્થાત્ ઈન્દ્ર સામાનિક આદિ, અથવા સ્વામી-સેવક આદિ ભાવરૂપ મર્યાદાથી યુક્ત દેવ કલ્પોપપન્ન કહેવાય છે

ઈન્દ્ર સામાનિક, ત્રાયસ્ત્રિંશ, લોકપાલ, પારિષદ્ય, આનીક આત્મરક્ષક આભિયોગ્ય, પ્રકીર્ણક અને કિલ્વિષિક પોત-પોતાની મર્યાદાનું પાલન કરતા થકા કલ્પોપપન્ન કહેવાય છે.

સામાનિક આદિ દેવોના અધિપતિ ઈન્દ્ર કહેવાય છે. ઈન્દ્રના સમાન સામાનિક

लोकपालाः। मित्रस्थानीयाः पारिषद्याः। सैनिकाः सेनाधिपतिरूपाश्च-आनीकाः। इन्द्रशरीररक्षाकारका आत्मरक्षकाः। दासस्थानीयाः सेवका आभियोग्याः। नागरिक-पौरजनसमानाः प्रकीर्णकाः। अन्त्यजसमानाः कल्विषिकाः। सौधर्मादि-द्वादशकल्पेषु दशविधा इन्द्रसामानिकादयो देवाः भवन्ति। व्यन्तरज्योतिष्कदेवेषु त्रायस्त्रिंशा लोकपालाश्च न भवन्ति।

कल्पोपपन्नदेवानां निवासस्थानानि द्वादश सन्ति-१सौधर्म-२शान-३सनत्कुमार-४माहेन्द्र-५ब्रह्मलोक-६लान्तक-७महाशुक्र-८सहस्रारा-९ऽऽनत १०प्राणता-११ऽऽरणा-१२ऽच्युताः। इमे द्वादश देवलोकाः कल्पविमानानि। तत्र सौधर्मस्य

सामानिक होते है। मन्त्री और पुरोहित जसे त्रायस्त्रिंश देव हैं। सीमा की रक्षा करने वाले लोकपाल हैं। मित्र के समान पारिषद्य हैं। सैनिक और सेनाधिपतिरूप आनीक हैं। इन्द्र के शरीर की रक्षा करने वाले आत्मरक्षक कहलाते हैं। नागरिक-पौरजनके समान प्रकीर्णक देव हैं। दास के समान देव आभियोगिक कहलाते हैं, और अन्त्यजों के समान किल्विषिक हैं। ये इन्द्र सामानिक आदि दशप्रकारके देव सौधर्म आदि सभी कल्पों में होते हैं। व्यतरों और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते।

कल्पोपपन्न देवों के निवसस्थान वारह हैं—

१ सौधर्म, २ ऐशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ आनत, १० प्राणत, ११ आरण, १२ अच्युत। ये वारह देवलोक कल्पविमान हैं। सौधर्म कल्प की बराबरी पर ऐशान कल्प है। ऐशान

હોય છે મંત્રી અને પુરોહિત જેવા ત્રાયસ્ત્રિંશ દેવ છે સીમાની રક્ષા કરનારા તે લોકપાલ છે મિત્રની સમાન પારિષદ્ય છે, સૈનિક અને સેનાધિપતિરૂપ આનીક છે ઈન્દ્રના શરીરની રક્ષા કરવાવાળા આત્મરક્ષક કહેવાય છે નાગરિક-પૌરજનની સમાન પ્રકીર્ણક દેવ છે. દાસના સમાન સેવક દેવ આભિયોગિક કહેવાય છે, અન્ત્યજોની સમાન કલ્વિષિક છે. આ ઈન્દ્ર, સામાનિક આદિ દેવ સાધર્મ આદિ સર્વ કલ્પોમા હોય છે વ્યતરો અને જ્યોતિષ્ક દેવોમાં ત્રાયસ્ત્રિંશ અને લોકપાલ હોતા નથી

કલ્પોપપન્ન દેવોના નિવાસસ્થાન બાર છે (૧) સૌધર્મ, (૨) ઐશાન (૩) સનત્કુમાર (૪) માહેન્દ્ર (૫) બ્રહ્મલોક (૬) લાન્તક, (૭) મહાશુક્ર, (૮) સહસ્રાર, (૯) આનત, (૧૦) પ્રાણત, (૧૧) આરણ, (૧૨) અચ્યુત

આ બાર દેવલોક કલ્પ વિમાન છે સૌધર્મ કલ્પની બરાબરી પર ઐશન કલ્પ છે

कल्पस्य समानदेशे ऐशानः कल्पः । ऐशानस्योपरि सनत्कुमारः कल्पः । सनत्कुमार स्योपरि माहेन्द्रः कल्पः । एवमुपर्युपरि सर्वे कल्पाः सन्ति ।

तत्र ज्योतिष्कलोकादूर्ध्वम् सख्यातयोजनकोटिकोटिमुमार्गमास्य रूपलक्षित दक्षिणभागे गगनप्रदेशे सौधर्मकल्पस्तथैशानकल्पश्चाऽस्ति । सौधर्मकल्पः पूर्व पश्चिमदीर्घः, उत्तरदक्षिणविस्तीर्णोऽर्धचन्द्राकारः सूर्यवद्भास्वरः, आयामविष्कम्भाभ्यां परिक्षेपतश्चाऽसंख्येययोजनकोटिकोटयः, सर्वरत्नमयः लोकान्तविस्तारोऽस्ति । तत्र मध्यभागे सर्वरत्नमयाशोक-सप्तपर्ण-चम्पका-ऽऽम्र-सौधर्मावतंसकसुशोभितः शक्रावासः । तत्र सुधर्मा नाम शक्रस्य देवेन्द्रस्य सभा तस्मिन् कल्पेऽस्तीति सौधर्म कल्प ।

के ऊपर सनत्कुमार कल्प है । सनत्कुमार के ऊपर माहेन्द्र कल्प है । इसीप्रकार ऊपर-ऊपर सभी कल्प समझने चाहिए ।

ज्योतिष्क मण्डल से ऊपर असंख्यात कोड़ाकोडी योजन ऊपर जाकर मेरु से उपलक्षित दक्षिण भाग में आकाश-प्रदेश में सौधर्मकल्प और ऐशान कल्प हैं । सौधर्मकल्प पूर्व पश्चिम में लम्बा उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण और अर्धचन्द्र के आकार का है । सूर्य के समान चमकदार, लम्बाई, चौडाई और परिधि से असंख्यात कोड़ाकोडी योजन सर्वरत्नमय और लोक के अन्ततक विस्तृत है । उसके मध्य भाग में सर्वरत्नमय अशोक, सप्तवर्ण, चम्पक, आम्र, एवं सौधर्मावतंसक से शोभित शक्र का आवास है । शक्र देवेन्द्र की सुधर्मानामक सभा जिस कल्प में हो वह सौधर्मकल्प कहलाता है ।

ઐશાનના ઉપર સનત્કુમાર કલ્પ છે સનત્કુમારના ઉપર માહેન્દ્ર કલ્પ છે. એ પ્રમાણે ઉપર ઉપર તમામ કલ્પ સમજવા જોઈએ.

જ્યોતિષ્કમંડળની ઉપર અસખ્યાત કોડા-કોડી યોજન ઉપર જઈને મેરૂથી ઉપલક્ષિત દક્ષિણ ભાગમાં આકાશ-પ્રદેશમાં સૌધર્મ કલ્પ અને ઐશાન કલ્પ છે સૌધર્મ કલ્પ પૂર્વ પશ્ચિમમાં લાંબો ઉત્તર-દક્ષિણમાં વિસ્તીર્ણ અને અર્ધચન્દ્રાકારે છે સૂર્યના સમાન ચમકદાર લંબાઈ પહોળાઈ અને પરિધિથી અસખ્યાત કોડાકોડી યોજન, સર્વ રત્નમય છે, અને લોકના અંત સુધી વિસ્તૃત છે તેના મધ્ય ભાગમાં સર્વ રત્નમય અશોક સપ્તપર્ણ ચમ્પક આમ્ર, એવ સૌધર્માવતંસથી શોભિત ઇન્દ્રનો આવાસ છે. શક્ર દેવેન્દ્રની સુધર્મા નામની સભા જે કલ્પમાં હોય, તે સૌધર્મ કલ્પ કહેવાય છે.

तथैशानकल्पोऽप्यर्धचन्द्राकारोऽस्ति। उभौ मिलितौ पूर्णचंन्द्रकारेणावस्थितौ स्तः ततोऽसंख्यातयोजनकोटिकोटिपूपरि समानप्रदेशे सनत्कुमार-माहेन्द्रौ कल्पौ वर्तेते। अर्धचन्द्राकार इव सनत्कुमारस्तथैव माहेन्द्रोऽपि। उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्रसदृशाकारेण स्तः। ततोऽसख्यातयोजनकोटिकोटयुपरि ब्रह्मलोकः पूर्णचन्द्राकारोऽस्ति। एवमेव लान्तक–महाशुक्र–सहस्रारास्तावत्ताव-द्योजनोर्ध्वमुपर्युपरि प्रत्येकं पूर्णचन्द्राकाराः सन्ति ततोऽप्यसंख्यातयोजनकोटि-कोटयुपरि समानगगनप्रदेशे आनत–प्राणतलोकौ प्रत्येकमर्धचन्द्राकारौ स्तः। उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्राकारेण भवतः। ततोऽप्यसंख्यातयोजनकोटि कोटयुपरि–आरणाच्युतलोकौ प्रत्येकमर्धचन्द्राकारौ स्तः। उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्राकारं भजतः।

ऐशानकल्प भी अर्धचन्द्राकार है। दोनों कल्प मिलकर पूर्ण चन्द्रमा के समान हैं। इन से असख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर समान देश में सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प हैं। सनत्कुमार कल्प अर्धचन्द्राकार है और माहेन्द्र कल्प भी इसी प्रकार का है। दोनों मिलकर पूर्णचन्द्रमा के सदृश आकार वाले है। इन से असख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर ब्रह्मलोक पूर्णचन्द्राकार है। इसी प्रकार लान्तक, महाशुक्र, और सहस्रार उतने-उतने योजन ऊपर–ऊपर प्रत्येक पूर्णचन्द्रमा के समान अवस्थित हैं। उन से असख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर आकाश प्रदेश में आनत और प्राणत बराबरी पर प्रत्येक अर्धचन्द्राकार है। ये दोनों मिलकर पूर्णचन्द्रके आकार के हो जाते हैं। उन से असख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर आरण और अच्युत लोक प्रत्येक अर्धचन्द्राकार है। ये दोनों मिलकर पूर्णचन्द्र के आकार के जैसे हो जाते हैं।

ઐશાન કલ્પ પણ અર્ધચન્દ્રાકાર છે બન્ને કલ્પો મળીને પૂર્ણ ચન્દ્રમાની સમાન છે. તેનાથી અસખ્યાત કોડા–કોડી યોજન ઉપર સમાન દેશમા સનત્કુમાર અને માહેન્દ્ર કલ્પ છે સનત્કુમાર કલ્પ અર્ધચન્દ્રાકાર છે અને માહેન્દ્ર કલ્પ પણ એ પ્રકારનો છે બન્ને મળીને પૂર્ણચન્દ્રમાની બરાબર આકારવાળા છે તેનાથી અસખ્યાત કોડા–કોડી યોજન ઉપર બ્રહ્મલોક પૂર્ણચન્દ્રાકાર છે એ પ્રમાણે લાન્તક, મહાશુક્ર અને સહસ્રાર તેટલા–તેટલા યોજન ઉપર–ઉપર પ્રત્યેક, પૂર્ણચન્દ્રમાસમાન અવસ્થિત છે તેથી અસખ્યાત કોડા–કોડી યોજન ઉપર આકાશપ્રદેશમા આનત અને પ્રાણત બરાબરી પર પ્રત્યેક અર્ધચન્દ્રાકાર છે એ બન્ને કલ્પો મળીને પૂર્ણ ચન્દ્રમાના આકારના થઈ જાય છે. તેથી અસખ્યાત કોડા–કોડી યોજન ઉપર આરણ અને અચ્યુત લોક પ્રત્યેક અર્ધચન્દ્રાકાર છે એ બન્ને મળીને પણ પૂર્ણચન્દ્રાકાર જેવા થઈ જાય છે.

द्वादशकल्पनिवासिनामिन्द्राणां नामानि यथा–सौधर्मकल्पस्य शक्रः १, ऐशानस्येशानः २, सनत्कुमारस्य सनत्कुमारः ३, माहेन्द्रस्य महेन्द्रः ४, ब्रह्मलोकस्य ब्रह्मेन्द्रः ५, लान्तकस्य-लन्तकः ६, महाशुक्रस्य महाशुक्रः ७, सहस्रारस्य सहस्रारः ८, आनत–प्राणतयोः कल्पयोः एक-एव प्राणतनामा सुरपति ९, आरणाच्युतयोरपि तथैवैकोऽच्युतनामा देवराजोऽस्ति १० ।

एषु नव लोकान्तिकाः-सारस्वता१-ऽऽदित्य२-वह्नि३-वरुण४-गर्दतोय५-तुषिता६-ऽव्याबाधा७-ऽऽग्नेय८-रिष्ट९-नामानः सन्ति। ब्रह्मलोके लोकान्तिका निवसन्ति। ईशानकोणे सारस्वताः१, पूर्वस्यामादित्याः२, आग्नेयकोणे वह्नयः३, दक्षिणस्यां वरुणाः४, नैर्ऋत्ये गर्दतोयाः५, पश्चिमायां तुषिताः६, वायव्यकोणे-अव्याबाधाः७, उत्तरस्याम् अग्निाभा (आग्नेयाः)८, मध्ये रिष्टाः ९ निवसन्ति।

बारह कल्पवासी इन्द्रों के नाम इस प्रकार हैं–सौधर्म कल्प का शक्र १, ऐशान का ईशान २, सनत्कुमार का सनत्कुमार ३ माहेन्द्र का महेन्द्र ४, ब्रह्मलोकका ब्रह्मेन्द्र ५, लान्तक का लन्तक ६, महाशुक्र का महाशुक्र ७, सहस्रार का सहस्रार ८ और आनत–प्राणत कल्पों का एक प्राणतनामक इन्द्र है ९। आरण और अच्युत कल्पों का अच्युत नामक एक ही इन्द्र है १ ।

इन में नौ लोकान्तिक देव हैं–(१) सारस्वत (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण (५) गर्दतोय, (६) तुषित, (७) अव्याबाध (८) आग्नेय और, (९) रिष्ट। ये लोकान्तिक देव ब्रह्मलोक में निवास करते हैं। ईशान कोण में सारस्वत, पूर्व में आदित्य आग्नेय कोण में वह्नि, दक्षिण में वरुण, नैऋत्य में गर्दतोय, पश्चिम में तुषित वायव्य में अव्याबाध उत्तर में अग्निाभा (आग्नेय) और मध्य में रिष्ट निवास करते हैं।

બાર કલ્પવાસી ઇન્દ્રોના નામો આ પ્રમાણે છે–સૌધર્મકલ્પના શક્ર (૧) ઐશાનના ઈશાન (૨) સનત્કુમારના સનત્કુમાર (૩) માહેન્દ્રના મહેન્દ્ર, (૪) બ્રહ્મલોકના બ્રહ્મેન્દ્ર, (૫) લાન્તકના લન્તક (૬) મહાશુક્રના મહાશુક્ર (૭) સહસ્રારના સહસ્રાર અને આનત–પ્રાણત કલ્પોના એક પ્રાણત નામના ઇન્દ્ર છે આરણ અને અચ્યુત કલ્પોના અચ્યુત નામના એક ઇન્દ્ર છે (૧૦) તેમાં નવ લોકાન્તિક દેવ છે—(૧) સારસ્વત, (૨) આદિત્ય, (૩) વહ્નિ, (૪) વરુણ, (૫) ગર્દતોય, (૬) તુષિત, (૭) અવ્યાબાધ (૮) આગ્નેય, અને (૯) રિષ્ટ આ લોકાન્તિક દેવ બ્રહ્મલોકમાં નિવાસ કરે છે ઈશાનકોણમાં સારસ્વત, પૂર્વમાં આદિત્ય, આગ્નેયકોણમાં વહ્નિ, દક્ષિણમાં વરુણ, નૈઋત્યમાં ગર્દતોય પશ્ચિમમાં તુષિત,વાયવ્યમાં અવ્યાબાધ,ઉત્તરમાં અગ્નિાભા(આગ્નેય)અને મધ્યમાં રિષ્ટ નિવાસ કરે છે

कल्पातीताः—

कल्पमतीताः—अतिक्रान्ताः कल्पातीताः । सौधर्मादिद्वादशकल्पबहिर्भूताः स्वामिसेवकाद्याचारवर्जिताः, स्वातन्त्र्यादहमिन्द्रनाम्ना प्रसिद्धाः, भद्रादिनवग्रैवेयक-विमान-विजयादिपञ्चानुत्तरविमानाधिवासिनो देवाः कल्पातीताः ।

सौधर्मादिद्वादशकल्पतश्चोर्ध्वमसंख्यातयोजनकोटिकोटिपूपरि नवग्रैवेय-कानि विमानान्युपर्युपरि सन्ति । पुरुषाकारलोकस्य ग्रीवास्थानीयतया विमानानि ग्रैवेयकान्युच्यन्ते । तद्वासिनो देवा अपि ग्रैवेयका उच्यन्ते । सर्वोपरितनग्रैवेयक-विमानादूर्ध्वमसंख्यातयोजनकोटिकोटयुपरि पञ्चानुत्तरविमानानि सन्ति । तत्रैकं मध्यभागे, चतुर्दिक्षु चत्वारि । अनुत्तरविमानवासिनो देवा अनुत्तरा उच्यन्ते ।

कल्पातीत—

जो देव कल्प से परे है वे कल्पातीत कहलाते हैं, अर्थात् सौधर्म आदि कल्पों से बाहर, स्वामी, सेवक आदि मर्यादा से रहित—स्वतंत्र होने के कारण अहमिन्द्र नाम से प्रसिद्ध भद्र आदि नौ ग्रैवेयकों में तथा विजय आदि पाच अनुत्तर विमानों में निवास करने वाले देव कल्पातीत कहलाते हैं ।

सौधर्म आदि बारह कल्पों से ऊपर असख्यात कोडाकोडी योजन जाकर नौ ग्रैवेयक विमान एक दूसरे के उपर अवस्थित हैं । पुरुषाकार लोक की ग्रीवा के स्थान पर जो विमान हैं, वे ग्रैवेयक विमान कहलाते है । सब से ऊपर के ग्रैवेयक विमान से ऊपर असख्यात कोडाकोडी योजन जाकर पाच अनुत्तर विमान हैं । उन में से एक मध्य भाग में है और चार चारों दिशाओं मे हैं । अनुत्तरविमानवासी देव अनुत्तर कहलाते हैं ।

કલ્પાતીત—

જે દેવો કલ્પથી બહાર છે તે કલ્પાતીત કહેવાય છે અર્થાત્ સૌધર્મ આદિ કલ્પોથી બહાર સ્વામી—સેવક આદિ મર્યાદાથી રહિત, સ્વતંત્ર હોવાના કારણે અહમિન્દ્ર નામથી પ્રસિદ્ધ છે ભદ્ર આદિ નવગ્રૈવેયકમા, તથા વિજય આદિ પાચ અનુત્તર વિમાનોમા નિવાસ કરવા વાળા દેવ તે કલ્પાતીત કહેવાય છે

સૌધર્મ આદિ બાર કલ્પોથી ઉપર અસખ્યાત કોડા—કોડી યોજન જઈને નવ ગ્રૈવેયક વિમાન એક બીજાની ઉપર અવસ્થિત છે પુરૂષાકાર લોકની ગ્રીવા (ડોક) ના સ્થાન પર જે વિમાન છે તે ગ્રૈવેયક વિમાન કહેવાય છે

સૌથી ઉપરના ગ્રૈવેયક વિમાન ઉપર અસખ્યાત કોડા—કોડી યોજન જઈને પાચ અનુત્તર વિમાન છે તેમાથી એક મધ્ય ભાગમા છે, ચાર ચારેય દિશાઓમા છે અનુત્તરવિમાનવાસી દેવ અનુત્તર કહેવાય છે

नवग्रैवेयकनामानि यथा — १ भद्र — २ सुभद्र — ३ सुजात — ४ सुमानस — ५ सुदर्शन — ६ प्रियदर्शना — ७ऽमोघ — ८सुप्रतिभद्र — ९यशोधराणि ।

पञ्चानुत्तरविमानानि यथा — १ विजय — २वैजयन्त — ३जयन्ता — ४ऽपराजित — ५ सर्वार्थसिद्धाख्यानि । अविद्यमानमुत्तर — मुत्कृष्टं विमानादि येभ्यस्तान्यनुत्तराणि । तानि च विमानानि — अनुत्तरविमानानि ।

तीर्थङ्करादीनां समवसरणादौ कल्पोपपन्नदेवा गमनागमनं कुर्वन्ति । कल्पातीतदेवास्तु स्वस्थानादन्यत्र न गच्छन्ति ।

षड्जीवनिकायभेद — संकलनम्

षड्जीवनिकायानां त्रिषष्ट्युत्तरपञ्चशतानि (५६३) भेदाः । तथाहि पृथिव्यप्तेजोवायुकायानां प्रत्येकं बादर — सूक्ष्म — भेदात् द्वैविध्येऽष्टधा । तेषां

नौ ग्रैवेयकों के नाम — (१) भद्र (२) सुभद्र, (३) सुजात (४) सुमानस (५) सुदर्शन, (६) प्रियदर्शन (७) अमोघ (८) सुप्रतिभद्र, और (९) यशोधर हैं ।

पांच अनुत्तर विमान — (१) विजय (२) वैजयन्त (३) जयन्त (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध । जिन से ऊपर अर्थात् उत्कृष्ट और कोई विमान नहीं वे अनुत्तर विमान कहलाते हैं । तीर्थंकर आदि के समवसरण आदि में कल्पोपपन्न देव गमनागमन करते हैं । कल्पातीत देव अपने स्थान से अन्य जगह नहीं जाते ।

षड्जीवनिकाय के भेदों का संकलन —

षड्जीवनिकायों के कुल पांचसो त्रेसठ (५६३) भेद हैं । वे इस प्रकार हैं — पृथिवी, अप्, तेज, और वायुकाय के बादर और सूक्ष्म के भेद से आठ भेद हुए ।

નવગ્રૈવેયકના નામ— (૧) ભદ્ર, (૨) સુભદ્ર, (૩) સુજાત, (૪) સુમાનસ (૫) સુદર્શન, (૬) પ્રિયદર્શન, (૭) અમોઘ, (૮) સુપ્રતિભદ્ર અને (૯) યશોધર છે.

પાંચ અનુત્તર વિમાન—(૧) વિજય (૨) વૈજયન્ત, (૩) જયન્ત, (૪) અપરાજિત અને (૫) સર્વાર્થસિદ્ધ જેનાથી ઉત્તર અર્થાત્ ઉત્કૃષ્ટ કોઈ વિમાન ન હોય તે અનુત્તર વિમાન કહેવાય છે તીર્થંકર આદિના સમવસરણ આદિમાં કલ્પોપપન્ન દેવ ગમનાગમન કરે છે કલ્પાતીત દેવ પોતાના સ્થાનથી અન્ય જગ્યાએ જતા નથી.

ષડ્જીવનિકાયના ભેદોનો યોગ

ષડ્જીવનિકાયોના કુલ પાંચસો ત્રેસઠ (૫૬૩) ભેદ છે તે આ પ્રકારે છે— પૃથ્વી, અપ્ તેજ અને વાયુકાય, તેના બાદર અને સૂક્ષ્મના ભેદથી આઠ ભેદ થયા.

पर्याप्तापर्याप्तभेदाद् द्वैविध्ये षोडश (१६) भेदाः। वनस्पतिकायस्य सूक्ष्म-साधारणप्रत्येकभेदात् त्रैविध्यम्, त्रिविधस्य वनस्पतिकायस्य पर्याप्तापर्याप्त-भेदेन प्रत्येक द्वैविध्ये तस्य षड् भेदाः, इत्थं (२२) द्वाविंशतिर्भेदाः स्थावर-पञ्चकस्यैकेन्द्रियजीवस्य भवन्ति।

द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रियाणां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन प्रत्येकं द्वैविध्ये षड् भेदाः। सर्वसकलनयाऽष्टाविंशिति (२८) भेदाः।

तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाः–जलचर-स्थलचर-खेचरो –रःपरिसर्पभुजपरिसर्प–भेदात्-पञ्चविधाः। तेषां पञ्चाना संज्ञ्यसंज्ञिभेदेन द्वैविध्ये दश भेदाः। तेषां पर्याप्ता-पर्याप्तभेदेन विंशति(२०)र्भेदाः। पूर्वोक्ताष्टाविंशतिसकलनतोऽष्टचत्वारिंशद् (४८) भेदास्तिरश्चाम्।

इन आठों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से सोलह भेद होते हैं। वनस्पतिकाय–सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक के भेद से-तीन प्रकार का है। इन तीनों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद करने से छह भेद हुए। इस प्रकार पांच एकेन्द्रिय स्थावर जीवों के बाईस (२२)भेद हैं।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त भेद से छह भेद। सबको जोड देने पर अट्ठाईस (२८) भेद हुए।

तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय–जलचर, स्थलचर, खेचर, उर परिसर्प और भुजपरिसर्प के भेद से पाच प्रकार के हैं। पाचों के सज्ञी, असज्ञी के भेद से दश हुए, इन के पर्याप्त, अपर्याप्त भेद करने से वीस (२०) भेद हुए। इन वीस में पूर्वोक्त अट्ठाईस और मिलाने से तिर्यञ्चों के अडतालीस (४८) भेद होते हैं।

તે આઠના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી સોળ ભેદ થાય છે વનસ્પતિકાય સૂક્ષ્મ, સાધારણ અને પ્રત્યેકના ભેદથી ત્રણ પ્રકારના છે એ ત્રણેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી છ ભેદ થયા આ પ્રમાણે પાચ એકેન્દ્રિય સ્થાવર જીવોના બાવીસ ભેદ છે

બેઇન્દ્રિય, ત્રણ–ઇન્દ્રિય અને ચૌઇન્દ્રિયના પર્યાપ્ત અપર્યાપ્તના ભેદથી છ ભેદ થયા તે સર્વને એક કરવાથી અઠાવીસ (૨૮) ભેદ થયા

તિર્યંચ પચેન્દ્રિય–જલચર, સ્થલચર, ખેચર, ઉર પરિસર્પ અને ભુજપરિસર્પના ભેદથી પાચ પ્રકારના છે તે પાચના સ જ્ઞી અને અસ જ્ઞીના ભેદથી દસ થયા, તેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી વીશ (૨૦) ભેદ થયા, તે વીસમા પૂર્વોક્ત અઠાવીસ મેળવવાથી તિર્યંચોના અડતાલીસ (૪૮) ભેદ થાય છે

रत्नप्रभाद्यः सप्त नरकभूमयः। तत्र भवा नारकाः सप्तविधाः, तेषां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्वैविध्ये चतुर्दश भेदाः

मनुष्याणां त्र्युत्तरशतत्रय (३०३) भेदाः पूर्वमेव तत्प्रकरणे सुस्पष्टं कथिताः।

देवानामष्टनवत्युत्तरशत (१९८) भेदाः। तत्र भवनपतीनां दश भेदाः असुरकुमारादयः। परमाधार्मिकाः पञ्चदश। एवं (२५)पञ्चविंशतिर्भेदाः। व्यन्तराणां षड्विंशतिर्भेदाः। तत्र पिशाचादयः षोडश, अजृम्भकादयो दश (२६)। ज्योतिष्कानां दश भेदा। तत्र चन्द्रादयः पञ्च। तेषां पञ्चानां चर-स्थिरभेदेन द्वैविध्ये दश भेदाः (१०) सन्ति। वैमानिकानामष्टत्रिंशद् भेदाः। तत्र सुधर्मादयो द्वादश, सारस्वतादयो नव, किल्बिषिकास्त्रयः, ग्रैवेयकाः—भद्रादयो

रत्नप्रभा आदि सात नरकभूमियों में सात प्रकार के नारकी हैं। उनके पर्याप्त, अपर्याप्त भेद करने से चौदह भेद होते हैं।

मनुष्यों के तीनसौ तीन (३०३) भेद पहले स्पष्ट कहे जा चुके हैं।

देवों के एकसौ अट्ठानवे (१९८) भेद हैं। वे इस प्रकार-भवनपतियों के असुर कुमार आदि दस परमाधार्मिक पन्द्रह, सब पच्चीस (२५) भेद हुए। व्यन्तरों के छब्बीस भेद हैं-सोलह पिशाच आदि और दस अजृंभक आदि (२६)। चन्द्रमा आदि पांच के चर और अचर भेद होने से ज्योतिष्क देवों के दश (१०) भेद हैं। वैमानिकों के अड़तीस भेद हैं-सुधर्म आदि बारह सारस्वत आदि नौ किल्बिषिक आदि तीन, भद्र आदि ग्रैवेयक नौ विजय आदि पांच अनुत्तर विमान (३८)। इन सब का योग करने से

રત્નપ્રભા આદિ સાત નરકભૂમિઓમાં સાત પ્રકારના નારકી છે. તેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી ચૌદ ભેદ થાય છે.

મનુષ્યોના ત્રણસોત્રણ (૩૦૩) ભેદ પ્રથમ સ્પષ્ટ કહી ચુકયા છીએ. દેવોના એકસો અઠ્ઠાણુ (૧૯૮) ભેદ છે. ભવનપતિઓના અસુરકુમાર આદિ દસ પરમાધામી પંદર, સર્વ પચીસ ભેદ થયા વ્યન્તરોના છવીસ ભેદ છે-સોળ પિશાચ આદિ, અને દસ અજૃંભક-આદિ. ચંદ્રમા આદિ પાંચના ચર અને અચર ભેદ હોવાથી જ્યોતિષ્ક દેવોના દશ (૧૦) ભેદ છે વૈમાનિક દેવોના આડત્રીસ(૩૮) ભેદ છે-સુધર્મ આદિ બાર સારસ્વત આદિ નવ,કિલ્વિષિક આદિ ત્રણ ભદ્ર આદિ ગ્રૈવેયક નવ, વિજય આદિ પાંચ અનુત્તર વિમાન, આ સર્વને જોડ

नव, विजयादयः पञ्चानुत्तरविमानाः (३८)। सर्वेषां संकलनेन (९९) नव-नवतिर्भेदाः। तेषां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्वैविध्ये सत्यष्टनवत्युत्तरशतं (१९८) भेदाः देवानां भवन्ति। इत्थं सकलभेदसकलनया षड्जीवनिकायानां त्रिषष्ट्युत्तर-पञ्चशतानि (५६३) भेदाः सन्ति।

जीवानां संख्या—

जीवा अनन्ताः सन्ति। तथाहि—

(१) संज्ञिनो मनुष्याः संख्याताः। (२) असंज्ञिनो मनुष्या असंख्याताः
(३) नारकिणोऽप्यसंख्याताः। (४) देवाः संख्याताः।
(५) तिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रिया असंख्याताः। (६) द्वीन्द्रिया असंख्याताः।
(७) त्रीन्द्रिया असंख्याताः। (८) चतुरिन्द्रिया असंख्याताः।

निन्यानवे (९९) भेद होते हैं, और इन के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से एकसौ अट्ठानवे (१९८) भेद देवों के हैं। इस प्रकार सब भेदों का जोड करने से पांचसौ त्रेसठ (५६३) षड्जीवनिकाय के भेद होते हैं।

जीवों की संख्या—

जीव अनन्त हैं। वे इस प्रकार—

(१) सञ्ज्ञी मनुष्य सख्यात। (२) असञ्ज्ञी मनुष्य असंख्यात।
(२) नारकी असख्यात। (४) देव असख्यात।
(५) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय असख्यात। (६) द्वीन्द्रिय असख्यात।
(७) त्रीन्द्रिय असख्यात। (८) चतुरिन्द्रिय असख्यात।

કરવાથી નવાણુ (૯૯) ભેદ થાય છે અને તેના પર્યાપ્ત અર્પાપ્ત ભેદ કરવાથી એકસો અઠાણું (૧૯૮) ભેદ દેવોના છે આ પ્રમાણે ઉપર કહેલા સર્વ ભેદોને એકઠા કરવાથી પાંચસો ત્રેસઠ (૫૬૩) ષટ્જીવનિકાયના ભેદ થાય છે.

જીવોની સખ્યા—

જીવ અનન્ત છે, તે આ પ્રકારે છે —

(૧) સંજ્ઞી મનુષ્ય સખ્યાત છે (૨) અસજ્ઞી મનુષ્ય અસખ્યાત છે.
(૩) નારકી અસખ્યાત છે (૪) દેવ અસખ્યાત છે
(૫) તિર્યંચ પચેન્દ્રિય અસખ્યાત છે (૬) દ્વિન્દ્રિય અસખ્યાત છે.
(૭) ત્રીન્દ્રિય અસખ્યાત છે (૮) ચતુરિન્દ્રિય અસખ્યાત છે.

(९) पृथिवीकाया असंख्याताः । (१०) अप्कायाः असंख्याताः ।
(११) तेजस्काया असंख्याताः । (१२) वायुकाया असंख्याताः ।
(१३) प्रत्येकवनस्पतिकाया असंख्याताः। (१४) तदपेक्षया सिद्धजीवा अनन्ताः ।
(१५) तेभ्योऽपि कन्दमूलादिरूपा बादरनिगोदजीवा अनन्तगुणा । (१६) सूक्ष्मनिगोदजीवाः सर्वतोऽनन्तगुणाः ।

कर्मवादिप्रकरणम्-

यः पुनरेवं षड्जीवनिकायस्वरूपनिरूपणपरः स एव लोकवादी वस्तुतः कर्मवादीत्याह-'कर्मवादी' इति । कर्म=ज्ञानावरणीयादि, तद् वदितुं शीलमस्येति कर्मवादी-कर्मस्वरूपकथनशीलः । षड्जीवनिकायतत्त्वज्ञः खलु लोकवादी ज्ञाना

(९) पृथ्वीकाय असंख्यात । (१०) अप्काय असंख्यात ।
(११) तेजस्काय असंख्यात । (१२) वायुकाय असंख्यात ।
(१३) प्रत्येकवनस्पतिकाय असंख्यात । (१४) इस से सिद्ध जीव अनन्त-।
(१५) बादरनिगोदजीव कन्दमूल आदि सिद्धों से भी अनन्तगुणा । (१६) सूक्ष्म निगोदजीव सब से अनन्त गुणा ।

कर्मवादिप्रकरण—

जो इस प्रकार षड्जीवनिकाय का स्वरूप निरूपण करने वाला है, वही लोकवादी वास्तव में कर्मवादी है। ज्ञानावरण आदि कर्मों का कथन करना जिस का स्वभाव हो, वह कर्मवादी है। षड्जीवनिकाय का तत्त्व समझने वाला लोकवादी ज्ञानावरण

(९) पृथ्वीकाय असंख्यात छे. (१०) अप्काय असंख्यात छे
(११) तेजस्काय असंख्यात छे (१२) वायुकाय असंख्यात छे
(१३) प्रत्येकवनस्पतिकाय असंख्यात छे (१४) तेनाथी सिद्धजीव अनन्त छे
(१५) बादर निगोद जीव कन्दमूल आदि सिद्धोथी पण अनन्त छे (१६) सूक्ष्म निगोद जीव सौथी अनन्तगणा छे.

कर्मवादीप्रकरण—

जे आ प्रमाणे षड्जीवनिकायना स्वरूपनुं निरूपण करवावाळा छे ते लोकवादी वास्तविक रीते कर्मवादी छे. ज्ञानावरण आदि कर्मोनुं कथन करवुं ते जेनो स्वभाव होय, ते कर्मवादी छे षड्जीवनिकायना तत्त्वने समजवावाळा लोकवादी ज्ञानावरण

वरणीयाद्यष्टविधकर्मैव नरकादिचतुर्गतिभ्रमणकारणतया विजानाति। ज्ञानावरणीयादिकर्मबन्धादेव हि जीवाश्चतुर्विधासु गतिषु परिभ्रमन्तः सम्यग्ज्ञानचारित्रप्राप्तिमन्तरेण संसारदावाग्निपतितमात्मानं समुद्धर्त्तुं न प्रभवन्ति। एवं कर्मबन्धवेदी भव्यः कर्मवादी बोद्धव्य इत्यर्थः।

(१) कर्मस्वरूपम्—

अत्र कर्मप्रसङ्गेन तत्स्वरूपं निरूप्यते—

जीवेन मिथ्यात्वादिहेतुभिः क्रियते यत्, तत् कर्म। यथा तप्तायोगोलकः सलिले निक्षिप्तः सन् सर्वतः सलिलमाकर्षति तथाऽनादिमिथ्यात्वा-

---

आदि आठ कर्मों को ही नरक आदि चार गतियों में भ्रमण का कारण जानता है। ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बन्ध के कारण ही जीव चार गतियों में परिभ्रमण करते हुए सम्यग्ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति के विना ससाररूपी दावानल में पडे हुए आत्मा का उद्धार करने में समर्थ नहीं होते। इस प्रकार कर्मबन्ध के वेत्ता (जाननेवाले) भव्यजीव कर्मवादी कहलाते है।

(१) कर्मका स्वरूप—

कर्म का प्रसङ्ग होने से उसके स्वरूप का निरूपण करते है:—

जीव के द्वारा मिथ्यात्व आदि कारणों से जो कियाजाय वह कर्म है। जैसे-तपा हुआ लोहे का गोला जल में डाल दिया जाय तो वह सभी तरफ से जल को खींचता है, उसी प्रकार अनादिकालीन मिथ्यात्व आदि कारणों से आत्मा निरन्तर

આદિ આઠ કર્મોનેજ નરક આદિ ચાર ગતિઓમા ભ્રમણનુ કારણ જાણે છે જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોના બ ધના કારણથીજ જીવ ચાર ગતિઓમા પરિભ્રમણ કરતો થકો સમ્યગ્જ્ઞાન અને ચારિત્રની પ્રાપ્તિ વિના સ સારરૂપી દાવાનલમા પડેલા આત્માનો ઉદ્ધાર કરવામાં સમર્થ થતો નથી. આ પ્રકારે કર્મબ ધને જાણનાર ભવ્યજીવ કર્મવાદી કહેવાય છે.

(૧) કર્મનું સ્વરૂપ—

કર્મનો પ્રસ ગ હોવાથી તેના સ્વરૂપનુ નિરૂપણ કરે છે·—

જીવદ્વારા મિથ્યાત્વઆદિ કારણોથી જે કરવામા આવે તે કર્મ છે જેવી રીતે અગ્નિથી તપાવેલો લોઢાનો ગોળો પાણીમા નાખવામા આવે તો તે ચારેય તરફથી પાણીને ખેંચે છે, તે પ્રમાણે અનાદિકાલીન મિથ્યાત્વ આદિ કારણોથી આત્મા

दिहेतुभिर्निरन्तरमयमात्मा रागद्वेषपरिणत्या स्वस्मिन् सकलप्रदेशेषु कर्मवर्गणा रूपं पुद्गलं समाकर्षन् क्षीरनीरन्यायेन तादात्म्यसमापन्नं करोति तदेव कर्मोच्यते।

(२) कर्मणः सिद्धिः—

आत्मत्वधर्मेण सर्वेषामात्मनामेकरूपत्वेऽपि देवनारकमनुष्यतिर्यगादि रूपं सुखि-दुःखि-सधन-निर्धन-सुरूप-कुरूप-सबल-ऽबल-नीरोग-सरोगादिरूपं वा यद् वैचित्र्यं तत्र निर्हेतुकं भवितुमर्हति, तदा भवाऽभावदोषप्रसङ्गात्। निर्हेतुकत्वे देवनारकादिभवः शाश्वतिकः स्यात्, तथा देवनारकादिभवा

रागद्वेषरूप परिणामों से अपने समस्त आत्मप्रदेशों में कर्मवर्गणा के पुद्गलों को खींचता है और क्षीर-नीर की तरह तद्रूप बना लेता है उन्हीं को कर्म कहते हैं।

(२) कर्मकी सिद्धि—

सब आत्माओं में आत्मत्व समान होने पर भी कोई देव है, कोई नारक कोई मनुष्य है, कोई तिर्यञ्च कोई सुखी है, कोई दुःखी, कोई सधन, कोई निर्धन, कोई सुरूप कोई कुरूप, कोई सबल, कोई निर्बल, कोई रोगी है, कोई नीरोगी है, यह सब विचित्रता निष्कारण नहीं हो सकती, अगर इसका कोई कारण न होता तो या तो यह विचित्रता होती ही नहीं, अगर होती भी तो सदैव के लिए होती। निष्कारण ही देवगति या नरकगति होती तो वह नित्य होती। तथा देव नरक आदि भवका

निरंतर रागद्वेषरूप परिणामोथी पोताना समस्त आत्मप्रदेशोमां कर्मवर्गणाना पुद्गलोने खेंचे छे अने क्षीर-नीर प्रमाणे तद्रूप बनावी ले छे, तेने कर्म कहे छे

(२) कर्मनी सिद्धि—

सर्व आत्माओमां आत्मत्व समान होवा छताय पण कोई देव छे कोई नारकी; कोई मनुष्य छे; कोई तिर्यंच कोई सुखी छे कोई दुःखी छे कोई धनवान् छे कोई निर्धन छे; कोई स्वरूपवान छे कोई कुरूप छे कोई सबल छे कोई निर्बल छे कोई रोगी छे कोई निरोगी छे. आ सर्व विचित्रता कोई कारण विना होई शके नहीं. तेनु कोई कारण न होय तो आवी विचित्रता पण होय नहीं. अने होय तो पछी ते हमेशां माटे रही शकते. कोई पण कारण विना देवगति अथवा नरकगति होय तो ते नित्य होय, तथा देव अने नारक आदि भवनो अभाव पण नित्य होत. ए प्रमाणे

भावोऽपि शाश्वतिकः स्यात्, एवं यः सुखी, तस्य सर्वदा सुखमेव स्यात्, यश्च दुःखी, तस्य सर्वदा दुःखमेव स्यात्-सर्वदा सुखाभावस्तस्य स्यात्।

अत एव-"नित्यं सत्त्वं वा हेतोरन्यानपेक्षणात्" इत्याहुः। सहेतुकत्वस्वीकारे च य एवास्य हेतुः स एवास्माकं कर्मेति। उक्तञ्च—

"आत्मत्वेन विशिष्टस्य, वैचित्र्यं तस्य यद्वशात्।
नरादिरूप तच्चित्रमदृष्टं कर्मसञ्ज्ञितम्" ॥ १ ॥

अभाव ही शाश्वतिक होता। इसी प्रकार जो सुखी है वह सदा के लिए सुखी होता। जो दुःखी है उसे सदैव दुःख ही होता-उस के लिए सदैव सुख का अभाव होता। इसी लिए कहा गया है कि- "जो वस्तु किसी कारणकी अपेक्षा नहीं रखती वह, या तो आकाश की भाँति सदैव विद्यमान रहती अथवा खरविषाण की तरह कदापि नहीं होती।" अगर इस विचित्रता का जो कारण है उसी कारण को हम कर्म कहते हैं। कहा भी है—

"आत्मत्व की समानता होने पर भी जिस कारण से मनुष्यादिरूप विचित्रता होती है वही अदृष्ट है। उसी को कर्म कहते हैं, वह नाना प्रकार का है ॥ १ ॥"

જે સુખી છે તે હમેશા માટે સુખીજ હોત અને જે દુખી છે તે હમેશા દુખીજ રહેત, તેને હમેશા માટે સુખનો અભાવ રહેત એ કારણથી કહ્યુ છે કે-"જે વસ્તુ કોઈ કારણની અપેક્ષા રાખતી નથી તે આકાશ પ્રમાણે સદૈવ વિદ્યમાન રહે છે, અથવા ખર-વિષાણ (ગધેડાના શિંગડા)ની પ્રમાણે કદાપિ હોય નહી" અગર આ વિચિત્રતાનુ કોઈ કારણ માનવામા આવે તો તે કારણને અમે કર્મ કહીએ છીએ, કહ્યું છે—

"આત્મત્વ-(આત્માપણુ)ની સમાનતા હોવા છતા પણ જે કારણથી મનુષ્યાદિરૂપ વિચિત્રતા હોય છે-દેખાય છે. તે અદૃષ્ટ છે તેને કર્મ કહે છે અને તે નાના પ્રકારના છે-અર્થાત્ ઘણા પ્રકારના છે" ॥ ૧ ॥

एतत् कर्म पुद्गलस्वरूपं, नामूर्तमस्ति, अमूर्तत्वे हि कर्मणः सकाशा दात्मनामनुग्रहोपघातासम्भवात्, गगनादिवत्। उक्तञ्च—

" तुल्यप्रतापोद्यमसाहसानां,
 केचिल्लभन्ते निजकार्यसिद्धिम्।
परे न तां मित्र! निगद्यतां मे,
 कर्मास्ति हित्वा यदि कोऽपि हेतुः? ॥१॥ "

अपरञ्च—

" निवध्य मासान्नव गर्भमध्ये,
 बहुप्रकारैः कललादिभावैः।
उदर्यं निष्काशयते सविघ्नात्,
 को गर्भतः कर्म विहाय पूर्वम्? " इति।

यह कर्म पुद्गलस्वरूप है, अमूर्त नहीं। अगर कर्म अमूर्त माना जाय तो उस से आत्मा का अनुग्रह और उपघात होना असंभव है, जैसे आकाश से नहीं होता। कहा भी है :—

"समान प्रताप, उद्यम और साहस वालों में से कोई कोई अपना कार्य सिद्ध करलेते हैं और दूसरे नहीं करपाते। मित्र! कर्म के सिवाय इस का और कोई कारण हो तो कहो! अर्थात् कर्म ही इस का एकमात्र कारण है" ॥ १ ॥

और भी कहा है –

"गर्भ में नौ महीने तक कलल आदि अनेक रूपों में बढ़ाकर माता के गर्भ से पूर्वकर्म के सिवाय और कौन बाहर निकालता है?" ॥ १ ॥

એ કર્મ પુદ્ગલસ્વરૂપ છે અમૂર્ત નથી, અથવા કર્મને અમૂર્ત માનવામાં આવે તો તેનાથી આત્માનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થવો અસંભવ છે, જેમ આકાશથી થતો નથી. કહ્યુ પણ છે—

'સમાન પરાક્રમ, ઉદ્યમ, અને સાહસવાળી વ્યક્તિઓમાં કોઈ-કોઈ પોતાનું કામ સિદ્ધ કરી લે છે અને કોઈ કોઈ નથી કરી શકતી મિત્ર! આ બાબતમાં કર્મ વિના બીજું કોઈ કારણ હોય તો કહો! અર્થાત્ કર્મજ એનું એક માત્ર કારણ છે." ॥૧॥

બીજું પણ કહ્યુ છે—"ગર્ભમાં નવ માસ સુધી કલલ (ગર્ભનું પ્રથમ સ્વરૂપ) આદિ અનેક રૂપોમાં વૃદ્ધિ પામીને માતાના ગર્ભમાંથી પૂર્વકર્મ સિવાય બીજું કોણ બહાર કાઢે છે? ' ॥૧॥

ननु यथा कर्म विनाऽपि विचित्रा अभ्रादिविकारा दृश्यन्ते तथा संसारिणां सुखदुःखादिभावेन वैचित्र्यं यदि विनाऽपि कर्म भवेत्, तर्हि का हानिः? इति चेत्, उच्यते—

अभ्रविकारा गन्धर्वनगरशक्रधनुरादयो गृहप्राकारवृक्षरक्तनीलपीतादिभावेन वैचित्र्य बिभ्रति तत्र विस्रसापरिणतेन्द्रधनुरादिपुद्गलपरिणामवैचित्र्यं दृश्यते, तदपेक्षया विशिष्ट परिणामवैचित्र्यं प्रायेण चित्रन्यस्तानां चित्रकरादिशिल्पपरिगृहीतानां लेप्यकाष्ठकर्मानुगतपुद्गलानामुपलभ्यते, तर्हि जीवपरिगृहीतानामान्तरकर्मपुद्गलानां सुखदुःखादिनानारूपतया कथं न विशिष्टतरं परिणामवैचित्र्यं संभवेत्?।

शङ्का—जैसे कर्म के विना भी भाँति-भाँतिके मेघ आदि के विकार देखे जाते हैं, उसी प्रकार कर्म के अभाव में भी ससारी जीवों में सुख—दु.ख आदि की विचित्रता हो तो क्या हानि है?।

समाधान—मेघविकार—गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त, नील, पीत, आदि रूप में विचित्रता धारण करते हैं वहाँ स्वभाव से परिणत इन्द्रधनुष आदि, पुद्गल के परिणामों की विचित्रता देखी जाती है, लेकिन चित्रकार आदि किसी शिल्पी के द्वारा गृहीत चित्र मे अङ्कित, लेप्य काष्ठ आदि पुद्गलों में उस से भी अधिक विशिष्टता दिखाई देती है तो फिर जीवद्वारा ग्रहण किये हुए आन्तरिक कर्मपुद्गलों की सुख—दु ख आदि नाना रूपों में परिणमन की विशिष्टतर विचित्रता क्यों न होगी?।

શંકા—જેવી રીતે કર્મ વિના પણ ભાત-ભાતના મેઘ આદિના વિકારો જોવામાં આવે છે, તે પ્રમાણે કર્મના અભાવમાં પણ સસારી જીવોમા સુખ—દુ ખ આદિની વિચિત્રતા હોય છે એમ માનવામાં શું હાનિ છે?

સમાધાન—મેઘવિકાર—ગ ધર્વનગર, ઈન્દ્રધનુષ આદિ, ગૃહ, પ્રાકાર, વૃક્ષ, રક્ત નીલ, પીત આદિ રૂપમા વિચિત્રતા ધારણ કરે છે ત્યાં સ્વભાવથી પરિણત ઈન્દ્રધનુષ આદિ પુદ્ગલના પરિણામોની વિચિત્રતા જોવામા આવે છે પરન્તુ ચિત્રકાર આદિ કોઈ શિલ્પીદ્વારા ગૃહીત ચિત્રમા અ કિત, લેપ્ય, કાષ્ઠ આદિ પુદ્ગલો મા તેનાથી પણ અધિક વિશિષ્ટતા જોવામા આવે છે તો પછી જીવદ્વારા ગ્રહણ કરેલા આન્તરિક કર્મપુદ્ગલોની સુખ—દુખ આદિ નાના (જૂદા—જૂદા) રૂપોમા પરિણમનની વિશિષ્ટતર વિચિત્રતા કેમ ન હોય?

, ननु अभ्रादिवत् कर्मपुद्गलानां विचित्रपरिणतिस्वीकारे बाह्यमिदं शरीर मेव सुखदुःखादिनानारूपतया विविधपरिणामं करोतीत्येव मन्यताम्, किं पुनस्तद्वैचित्र्यहेतुभूतस्य कर्मणः परिकल्पनया, स्वभावात एव सर्वस्यापि पुद्गलपरिणाम वैचित्र्यस्य सिद्धत्वादिति चेत्, अत्रोच्यते—

अभ्रादेरिव शरीरस्य सुखदुःखादिविचित्रपरिणामाङ्गीकारे यदि परितोष मपि, तर्हि कर्मापि ननु तनुरेव, सेयं कर्मतनुस्तनुते विचित्रपरिणाममित्यवेहि। जीवेन सहातिसंश्लिष्टत्वादतीन्द्रियत्वाच्चाभ्यन्तरं सूक्ष्मं च कार्मणं शरीरम्, औदारिकं तु बाह्यं स्थूलमित्येतावानेव द्वयोः शरीरयोर्विशेषो दृश्यते।

शंका—अभ्र–मेघ आदि के समान कर्मपुद्गलों का विचित्र परिणमन स्वीकार करते हो तो यह क्यों नहीं मान लेते कि बाह्य शरीर ही सुख–दुःख आदि नाना रूपों में विचित्र परिणमन करता है, कर्म को इस विचित्रता का कारण मानने से क्या लाभ है?, पुद्गलों की सारी विचित्रता स्वभाव से ही सिद्ध है।

समाधान—अभ्र आदि के समान शरीर का ही सुख–दुःख आदि विचित्र परिणमन अङ्गीकार करने में आप को सन्तोष मिलता है तो कर्म भी तो शरीर ही है, और वही कर्मशरीर विचित्र परिणमन करता है, ऐसा समझ लीजिए। जीव के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण और अतीन्द्रिय होने के कारण कर्मशरीर आभ्यन्तर और सूक्ष्म कहलाता है, तथा औदारिक शरीर बाह्य और स्थूल है। बस इतना ही दोनों शरीरों में अन्तर है।

શંકા—અભ્ર (મેઘ) આદિના સમાન કર્મપુદ્ગલોનું વિચિત્ર પરિણમન સ્વીકાર કરો છો તો પછી 'બાહ્ય શરીર જ સુખ–દુઃખ આદિ નાના રૂપોમાં વિચિત્ર પરિણમન કરે છે' એમ શા માટે માનતા નથી? કર્મને એ વિચિત્રતાનું કારણ માનવાથી શું લાભ છે? પુદ્ગલોની પરિણમનની તમામ વિચિત્રતા સ્વભાવથીજ સિદ્ધ છે.

સમાધાન—મેઘ આદિના સમાન શરીરનું પણ સુખ દુઃખ આદિ વિચિત્ર પરિણમન અંગીકાર કરવામાં આપને સંતોષ મળે છે તો કર્મ તે શરીરજ છે, અને તે કર્મ–શરીર વિચિત્ર પરિણમન કરે છે એ પ્રમાણે સમજી લ્યો. જીવની સાથે ઘનિષ્ઠ સંબંધ હોવાના કારણે અને અતીન્દ્રિય હોવાના કારણે કર્મ–શરીર આભ્યંતર અને સૂક્ષ્મ કહેવાય છે તથા ઔદારિક શરીર બાહ્ય અને–સ્થૂલ છે એટલું જ એ બે શરીરોમાં અન્તર છે.

ननु यथा कर्म विनाऽपि विचित्रा अभ्रादिविकारा दृश्यन्ते तथा संसारिणां सुखदुःखादिभावेन वैचित्र्यं यदि विनाऽपि कर्म भवेत्, तर्हि का हानिः ? इति चेत्, उच्यते—

अभ्रविकारा गन्धर्वनगरशक्रधनुरादयो गृहप्राकारवृक्षरक्तनीलपीतादि-भावेन वैचित्र्य बिभ्रति तत्र विस्रसापरिणतेन्द्रधनुरादिपुद्गलपरिणामवैचित्र्यं दृश्यते, तदपेक्षया विशिष्ट परिणामवैचित्र्यं प्रायेण चित्रन्यस्तानां चित्रकरादि-शिल्पपरिगृहीतानां लेप्यकाष्ठकर्मानुगतपुद्गलानामुपलभ्यते, तर्हि जीवपरि-गृहीतानामान्तरकर्मपुद्गलानां सुखदुःखादिनानारूपतया कथं न विशिष्टतरं परिणामवैचित्र्यं संभवेत् ? ।

शङ्का—जैसे कर्म के विना भी भाँति—भाँतिके मेघ आदि के विकार देखे जाते हैं, उसी प्रकार कर्म के अभाव में भी ससारी जीवों में सुख—दु.ख आदि की विचित्रता हो तो क्या हानि है ? ।

समाधान—मेघविकार—गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त, नील, पीत, आदि रूप में विचित्रता धारण करते हैं वहाँ स्वभाव से परिणत इन्द्रधनुष आदि, पुद्गल के परिणामों की विचित्रता देखी जाती है, लेकिन चित्रकार आदि किसी शिल्पी के द्वारा गृहीत चित्र मे अङ्कित, लेप्य काष्ठ आदि पुद्गलों में उस से भी अधिक विशिष्टता दिखाई देती है तो फिर जीवद्वारा ग्रहण किये हुए आन्तरिक कर्मपुद्गलों की सुख—दु ख आदि नाना रूपों में परिणमन की विशिष्टतर विचित्रता क्यों न होगी ? ।

શકા—જેવી રીતે કર્મ વિના પણ ભાત—ભાતના મેઘ આદિના વિકારો જોવામાં આવે છે, તે પ્રમાણે કર્મના અભાવમા પણ સસારી જીવોમાં સુખ—દુ ખ આદિની વિચિત્રતા હોય છે એમ માનવામા શું હાનિ છે ?

સમાધાન—મેઘવિકાર—ગ ધર્વનગર, ઈન્દ્રધનુષ આદિ, ગૃહ, પ્રાકાર, વૃક્ષ, રક્ત નીલ, પીત આદિ રૂપમા વિચિત્રતા ધારણ કરે છે ત્યા સ્વભાવથી પરિણત ઈન્દ્રધનુષ આદિ પુદ્ગલના પરિણામોની વિચિત્રતા જોવામાં આવે છે પરન્તુ ચિત્રકાર આદિ કોઈ શિલ્પીદ્વારા ગૃહીત ચિત્રમા અ કિત, લેપ્ય, કાષ્ઠ આદિ પુદ્ગલો મા તેનાથી પણ અધિક વિશિષ્ટતા જોવામા આવે છે તો પછી જીવદ્વારા ગ્રહણ કરેલા આન્તરિક કર્મપુદ્ગલોની સુખ—દુખ આદિ નાના (જૂદા—જૂદા) રૂપોમા પરિણમનની વિશિષ્ટતર વિચિત્રતા કેમ ન હોય ?

, ननु अभ्रादिवत् कर्मपुद्गलानां विचित्रपरिणतिस्वीकारे बाह्यमिदं शरीरमेव सुखदुःखादिनानारूपतया विचित्रपरिणामं करोतीत्येव मन्यताम्, किं पुनस्तद्वैचित्र्यहेतुभूतस्य कर्मणः परिकल्पनया, स्वभावात एव सर्वस्यापि पुद्गलपरिणामवैचित्र्यस्य सिद्धत्वादिति चेत्, अत्रोच्यते—

अभ्रादेरिव शरीरस्य सुखदुःखादिविचित्रपरिणामाङ्गीकारे यदि परितोषमेषि, तर्हि कर्मापि ननु तनुरेव, सेयं कर्मतनुस्तनुते विचित्रपरिणाममित्यवेहि। जीवेन सहातिसंश्लिष्टत्वादतीन्द्रियत्वाच्चाभ्यन्तरं सूक्ष्मं च कार्मणं शरीरम्, औदारिकं तु बाह्यं स्थूलमित्येतावानेव द्वयोः शरीरयोर्विशेषो दृश्यते।

शंका—अभ्र-मेघ आदि के समान कर्मपुद्गलों का विचित्र परिणमन स्वीकार करते हो तो यह क्यों नहीं मान लेते कि बाह्य शरीर ही सुख-दुःख आदि नाना रूपों में विचित्र परिणमन करता है, कर्म को इस विचित्रता का कारण मानने से क्या लाभ है ?, पुद्गलों की सारी विचित्रता स्वभाव से ही सिद्ध है।

समाधान—अभ्र आदि के समान शरीर का ही सुख-दुःख आदि विचित्र परिणमन अङ्गीकार करने में आप को सन्तोष मिलता है तो कर्म भी तो शरीर ही है, और वही कर्मशरीर विचित्र परिणमन करता है, ऐसा समझ लीजिए। जीव के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण और अतीन्द्रिय होने के कारण कर्मशरीर आभ्यन्तर और सूक्ष्म कहलाता है, तथा औदारिक शरीर बाह्य और स्थूल है। बस इतना ही दोनों शरीरों में अन्तर है।

શંકા—અભ્ર (મેઘ) આદિના સમાન કર્મપુદ્ગલોનું વિચિત્ર પરિણમન સ્વીકાર કરો છો તો પછી, “બાહ્ય શરીર જ સુખ-દુઃખ આદિ નાના રૂપોમાં વિચિત્ર પરિણમન કરે છે” એમ શા માટે માનતા નથી ? કર્મને એ વિચિત્રતાનું કારણ માનવાથી શું લાભ છે ? પુદ્ગલોની પરિણમનની તમામ વિચિત્રતા સ્વભાવથીજ સિદ્ધ છે

સમાધાન—મેઘ આદિના સમાન શરીરનું પણ સુખ દુઃખ આદિ વિચિત્ર પરિણમન અંગીકાર કરવામાં આપને સંતોષ મળે છે તો કર્મ તે શરીરજ છે અને તે કર્મ-શરીર વિચિત્ર પરિણમન કરે છે, એ પ્રમાણે સમજી લ્યો. જીવની સાથે ઘનિષ્ઠ સંબંધ હોવાના કારણે અને અતીન્દ્રિય હોવાના કારણે કર્મ-શરીર આભ્યંતર અને સૂક્ષ્મ કહેવાય છે તથા ઔદારિક શરીર બાહ્ય અને-સ્થૂલ છે. એટલું જ એ બે શરીરોમાં અન્તર છે.

ननु बाह्यशरीरस्य स्थूलत्वात् प्रत्यक्षदृष्टत्वाच्चाभ्रादिसादृश्येन बाह्यशरीरस्यैव सुखदुःखादिविचित्रपरिणामोऽस्तु किं पुनरप्रत्यक्षभूतस्य कर्मरूपातीन्द्रियशरीरस्य कल्पनेन, कार्मणशरीरानङ्गीकारे यदि कोऽपि दोष आपतति, ततोऽर्थापत्तेरेव कर्मवैचित्र्यमङ्गीकरिष्यामः ? इति । अत्रोच्यते—

मरणसमये प्रत्यक्षदृष्टबाह्यस्थूलशरीराद् विमुक्तस्य जीवस्य भवान्तरीयबाह्यस्थूलशरीरग्रहणे कारणभूतं सूक्ष्मं कार्मणशरीरं विनाऽग्रिमदेहग्रहणाभावरूपो दोषः समापद्यते, ततश्च देहान्तरग्रहणानुपपत्तेर्मरणानन्तरं सर्वस्यापि जीवस्य शरीराभावात् संसारोच्छेदः स्यात्। न च दृश्यते संसारसमुच्छेदः।

शङ्का—बाह्य शरीर स्थूल है और प्रत्यक्ष दिखाई देता है, अत एव बाह्य शरीर के साथ ही अभ्र आदि की समानता है, ऐसी स्थिति में बाह्य शरीर का ही सुख दुःख आदिरूप परिणमन मानना चाहिए। कभी प्रत्यक्ष दिखाई न देने वाले कर्मरूप अतीन्द्रिय शरीर की कल्पना करने का कष्ट क्यों उठाते हैं ? हाँ !, कर्मणशरीर को स्वीकार न करने से अगर कोई दाष आया तो फिर अर्थापत्ति प्रमाण से ही कर्म की विचित्रता स्वीकार कर लेंगे ?।

समाधान—मृत्यु के समय प्रत्यक्ष दीखने वाले बाह्य स्थूल शरीर को ग्रहण करने का कारणभूत सूक्ष्म शरीर न हो तो जीव आगामी शरीर को ग्रहण ही नहीं कर सकेगा। सूक्ष्म शरीर न मानने से यह दोष आता है। जीव अगर अगले शरीर को ग्रहण न करे तो मृत्यु के पश्चात् अशरीर होने के कारण सभी जीव मुक्त हो जाएँगे, और

શંકા—બાહ્ય શરીર સ્થૂલ છે અને પ્રત્યક્ષ દેખાય છે, એ કારણુથી બાહ્ય શરીરની સાથેજ મેઘ આદિની સમાનતા છે એવી સ્થિતિમા બાહ્ય શરીરનુ જ સુખ–દુઃખ આદિ રૂપ પરિણુમન માની લેવું જોઈએ કોઈ વખત પ્રત્યક્ષ નહિ દેખાતા એવા કર્મરૂપ અતીન્દ્રિય શરીરની કલ્પના કરવાનુ કષ્ટ શા માટે ઉઠાવો છો ? હા ! કાર્મણુ શરીરનો સ્વીકાર નહિ કરવાથી જો કોઈ દોષ આવશે તો પછી અર્થાપત્તિ પ્રમાણુથીજ કર્મની વિચિત્રતા સ્વીકારી લઈશું

સમાધાન—મૃત્યુના સમયે પ્રત્યક્ષ દેખાતાં બાહ્ય સ્થૂલ શરીરથી જીવ અલગ થઈ જાય છે આગલા ભવમા બાહ્ય સ્થૂલ શરીરને ગ્રહણુ કરવાના કારણુભૂત સૂક્ષ્મ શરીર નહિ હોય તો જીવ આગામી શરીરને ગ્રહણુજ કરી શકશે નહિ સૂક્ષ્મ શરીર નહિ માનવાથી આ દોષ આવે છે જીવ જો મૃત્યુ પછી બીજા શરીરને ગ્રહણુ ન કરે તો મૃત્યુ પછી અશરીર હોવાને કારણે સર્વ જીવો મુક્ત થઇ જશે અને સંસાર બંધ થઇ જશે.

शरीरान्तरग्रहणं च निष्कारणं न सम्भवति । तस्मात् । स्थूलशरीकारणभूतं सूक्ष्मकार्मणशरीरमस्तीत्यवश्यमङ्गीकर्तव्यम् ।

ननु कर्मरहितः शुद्धजीवो नानाविधशरीरादीनां कर्ताऽस्तु, तथेश्वरः, स्वभावो यदृच्छा वा विविधशरीरादिकं करोतीत्येव मन्यते, किं कर्मकल्पनेन ? अत्रोच्यते—

अयं जीवेश्वरादिरकर्मा न शरीरसुखदुःखादीनां कर्ता, उपकरणाभावात्, दण्डाद्युपकरणरहितकुम्भकारवत् । कर्म विनाऽन्यदुपकरणं शरीराद्यारम्भकं जीवेश्वरादीनां न संभवति, गर्भाद्यवस्थासुन्योपकरणासंभवात्, कर्म विना शुक्रशोणितादिग्रहणस्याप्यनुपपत्ते ।

संसार मिट जायगा, मगर संसार का मिटना दिखाई नहीं देता, और बिना कारण के शरीर का ग्रहण नहीं हो सकता, अत एव स्थूल शरीर का कारण सूक्ष्म कार्मणशरीर का अस्तित्व अङ्गीकार करना चाहिए ।

शंका—कर्मरहित शुद्ध जीव को नाना प्रकार के शरीरों का कर्ता मान लिया जाय, या ईश्वर; स्वभाव अथवा यदृच्छा को कर्ता स्वीकार कर लिया जाय, कर्म की कल्पना से क्या लाभ है ? ।

समाधान—कर्मरहित जीव या ईश्वर आदि, शरीर, सुख—दुःख आदि का कर्ता नहीं है, क्यों कि उसके पास उपकरण नहीं हैं दण्ड आदि उपकरणों से रहित कुमार के समान । कर्म के सिवाय, शरीर आदि रचने में ईश्वर आदि को और कोई भी उपकरण नहीं हो सकता । कर्म के अतिरिक्त और कोई उपकरण न होने के कारण गर्भ आदि अवस्थाओं में शुक्र शोणित आदिका ग्रहण भी नहीं हो सकता ।

પરન્તુ સંસાર બંધ થયો તેવું જોવામાં આવતું નથી. અને કારણ વિના શરીરનું ગ્રહણ કોઈ થઈ શકે નહીં એ કારણથી સ્થૂલ શરીરનું કારણ સૂક્ષ્મ-કાર્મણ શરીરના અસ્તિત્વનો અંગીકાર કરવો જોઈએ.

શંકા-કર્મરહિત શુદ્ધ જીવને નાના પ્રકારના શરીરોના કર્તા માની લઈએ, અથવા ઈશ્વર સ્વભાવ યા યદૃચ્છાને કર્તા માની લઈએ તો પછી કર્મની કલ્પના કરવાથી શું લાભ ? ।

સમાધાન-કર્મરહિત જીવ અથવા તો ઈશ્વર આદિ શરીર સુખ, દુઃખના કર્તા નથી. કારણ કે તેની પાસે ઉપકરણ-(મુખ્ય સાધન) નથી, દંડ આદિ પ્રધાન સાધનો વિનાનો જેમ કુંભાર, તે પ્રમાણે, કર્મ વિના શરીર આદિ રચવામાં ઈશ્વર વગેરેને બીજુ કોઈ પણ ઉપકરણ કોઈ થઈ શકે નહિ કર્મના વિના બીજુ કોઈ પ્રધાન સાધન નહિ હોવાને કારણે ગર્ભ આદિ અવસ્થાઓમાં શુક્ર શોણિત વગેરેનું ગ્રહણ પણ થઈ શકે નહીં

यद्वा—अकर्मा शरीरादिकं नारभते, निश्चेष्टत्वात्, अमूर्तत्वात्, आकाशवत्। तथा-एकत्वात् एकपरमाणुवत्।

यदि शरीरवानीश्वरः करोति विविधशरीरादिकमित्युच्यते तदाऽनवस्था-दोषः समापद्यते। तथाहि-शरीरस्येश्वरस्य जगद्वैचित्र्यकर्तृत्वस्वीकारे स्वशरीर-कर्तृत्वमकर्मणस्तस्यश्वरस्य न संभवति, निरुपकरणत्वात्, दण्डादिरहितकुम्भकारवत्। अथान्यः कोऽपीश्वरस्तदीयशरीरकरणाय प्रवर्तते ततः सोऽपि शरीरवान् अशरीरो वा? यद्यशरीरस्तर्हि नासौ शरीरकर्ता निरुपकरणत्वात्। शरीरवांश्चेत्-तर्हि

अथवा-जो कर्मरहित है वह शरीर आदि का उत्पादक नहीं हो सकता, क्यों कि वह चेष्टारहित है, अथवा अमूर्त है। जो चेष्टाहीन या अमूर्त होता है वह शरीर आदि का जनक नहीं होता, जैसे आकाश। तथा वह एक होने के कारण भी शरीर आदिका जनक नहीं हो सकता, जैसे एक परमाणु।

कदाचित् यह कहा जाय कि सशरीर ईश्वर विविध शरीर आदिका कर्ता है तो अनवस्था दोष आता है। वह इस प्रकार-जब सशरीर ईश्वर जगत् की विचित्रता का कारण है तो वह विना शरीर के अपना शरीर भी नहीं बना सकेगा, क्यों कि वह उपकरणहीन है, दण्डआदि से रहित कुंभार के समान। अब यह कहा जाय कि कोई दूसरा ईश्वर, पहले ईश्वर का शरीर बनाने के लिए प्रवृत्त होता है तो उसके विषय में भी वही प्रश्न उपस्थित होता है कि—वह सशरीर है अथवा अशरीर है?, अगर वह अशरीर है तो उपकरणहीन होने के कारण शरीर का कर्ता

અથવા-જે કર્મરહિત છે તે શરીર આદિના ઉત્પાદક થઈ શકે નહિ, કારણ કે તે ચેષ્ટારહિત છે અથવા અમૂર્ત્ત છે જે ચેષ્ટાહીન અથવા અમૂર્ત્ત હોય છે, તે શરીર આદિના ઉત્પન્ન કરનાર હોય નહિ જેવી રીતે-આકાશ, તથા તે એક હોવાના કારણે પણ શરીર આદિના ઉત્પન્ન કરનાર હોય નહિ. જેવી રીતે એક પરમાણુ.

કદાચિત્ એમ કહેવામા આવે કે—સશરીર ઈશ્વર વિવિધ શરીર આદિના કર્તા છે તો અનવસ્થા દોષ આવે છે તે આ પ્રમાણે કે —જ્યારે સશરીર ઈશ્વર જગતની વિચિત્રતાનું કારણ છે તો તે, શરીર વિના પોતાનુ શરીર પણ બનાવી શકશે નહી, કારણ કે તે ઉપકરણહીન છે, જેમ દંડ આદિથી રહિત કુંભાર હવે જો એમ કહેવામા આવે કે કોઈ બીજો ઈશ્વર પ્રથમના ઈશ્વરનુ શરીર બનાવવામા પ્રવૃત્ત થાય છે, તો તે વિષયમા પણ એ પ્રશ્ન ઉભો થાય છે કે—તે સશરીર છે અથવા અશરીર છે? અગર જો અશરીર છે તો ઉપકરણહીન

तच्छरीरारम्भेऽपि तुल्यता प्रसङ्गस्य । सोऽप्यकर्मा निजशरीरं नारभते निरुपकरण स्यात् । यदि तच्छरीरकर्ताऽन्यः कोऽपि, तर्हि सोऽपि शरीरवान् अशरीरो वा ? इत्थं चानवस्था । अनिष्टं च सर्वमेतत् । तस्मान्नेश्वरो देहादीनां कर्ता, किन्तु कर्मसहितो जीव एव स्वकीयं देहादिकं करोति ।

किञ्च–ईश्वरस्य देहादिकरणे निष्प्रयोजनमिति तदोन्मत्ततुल्यता स्यात् । सप्रयोजनकर्तृत्वे तु तस्यानीश्वरत्वप्रसङ्गः । किञ्चानादिशुद्धस्य तस्येश्वरस्य देहादिकरणेच्छा नोपपद्यते, इच्छाया रागरूपत्वात् ।

नहीं हो सकता । अगर सशरीर है तो उसका शरीर बनाने वाला कोई तीसरा ईश्वर मानना पड़ेगा । वह तीसरा ईश्वर भी अशरीर है या सशरीर है ?, इत्यादि विकल्प फिर उपस्थित होनेके कारण अनवस्था दोष आता है ।

यह सब अभीष्ट नहीं है । अत देह आदिका कर्ता ईश्वर नहीं हो सकता, बल्कि कर्मसहित जीव ही अपने शरीर आदि का कर्ता है ।

दूसरी बात यह है कि ईश्वर, बिना किसी प्रयोजन के ही अगर शरीर आदि की रचना करता है तो वह उन्मत्त के समान होगा । अगर उसका कोई प्रयोजन है तो वह ईश्वर नहीं रहेगा ।

एक बात और–अनादि काल से शुद्ध ईश्वर की देह आदि रचने में इच्छा ही नहीं हो सकती, क्यों कि इच्छा एक प्रकार का राग है और रागी ईश्वर नहीं हो सकता ।

હોવાના કારણે શરીરકર્તા થઈ શકતો નથી. અગર સશરીર છે તો તેનું શરીર બનાવવાવાળો કોઈ ત્રીજો ઈશ્વર માનવો પડશે. તે ત્રીજો ઈશ્વર પણ સશરીર છે અથવા અશરીર છે ? ઈત્યાદિ વિકલ્પ કરીને ઉપસ્થિત હોવાના કારણે અનવસ્થા દોષ આવે છે તે સર્વ અભીષ્ટ નથી, તે કારણથી દેહ આદિના કર્તા ઈશ્વર થઈ શકતા નથી. પરન્તુ કર્મસહિત જીવ પોતાના શરીર આદિનો કર્તા છે.

બીજી વાત એ છે કે-ઈશ્વર કોઈ પ્રયોજન વિના જો શરીર આદિની રચના કરે છે તો તે ઉન્મત્તની સમાન ગણાશે. અથવા તો તેને કોઈ પ્રયોજન છે તો તે ઈશ્વર નહીં રહે. એક બીજી વાત એ છે કે-અનાદિ કાળથી શુદ્ધ ઈશ્વરની, દેહ આદિ રચનામાં ઈચ્છા રહેતી નથી, કારણ કે ઈચ્છા એક પ્રકારનો રાગ છે અને રાગી ઈશ્વર થઈ શકતા નથી.

नापि स्वभावो देहादीना कर्ता भवितुमर्हति। स स्वभावः ।
विशेषो वा ? अकारणता वा ? वस्तुधर्मो वा ?, तत्र न तावद् वस्तुवि
वस्तुविशेषरूपत्वे प्रमाणाभावात्। प्रमाणरहितस्यापि वस्तुत्वस्वीकारे
कथं नाङ्गीकरोषि ?, त्वन्मते कर्मणोऽपि प्रमाणरहितत्वात्।

किञ्च-वस्तुविशेषरूपः स स्वभावो मूर्त्तो वा स्यादमूर्तो।
मूर्तस्तर्हि स्वभाव इति नामान्तरेण कर्मैव सिध्यति। यदि पुनरमूर्तस्तर्हि
स्वभावो देहादीनां कर्ता भवितुमर्हति, अमूर्तत्वात् निरुपकरणत्वाच्च, गग

स्वभाव भी देह आदि का कर्ता नहीं हो सकता। आखिर स्वभाव
क्या है? स्वभाव कोई वस्तु है? अथवा कोई भी कारण न होना स्वभाव
किसी वस्तु का धर्म है?। स्वभाव कोई वस्तु तो है नहीं, क्यों कि उसे वस्तु
कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण के अभावमें भी स्वभाव को वस्तु मान
तो कर्म मानने में क्या आपत्ति है? तुम्हारे मत के अनुसार कर्म मानने
प्रमाण नहीं है।

स्वभाव अगर कोई वस्तु है तो वह मूर्त है या अमूर्त?, अगर
तो स्वभाव और कर्म एक ही वस्तु है। आप कर्म को ही स
से कहते हैं तो कह लीजिये। स्वभाव को अमूर्त मानते हैं तो वह
आदिका कर्ता नहीं हो सकता, क्यों कि वह अमूर्त है और उपकरणर
है, जैसे आकाश। मूर्त शरीर का अनुरूप कारण मूर्त ही होना चाहि

સ્વભાવ પણ દેહ આદિનો કર્તા થઈ શકતો નથી છેવટ સ્વભાવનો અર્થ શું
સ્વભાવ કોઈ વસ્તુ છે? અથવા કોઈપણ કારણ નહીં હોવું તે સ્વભાવ છે? અથવા
વસ્તુનો ધર્મ છે? સ્વભાવ કોઇ વસ્તુ તો છે નહીં, કારણ કે તેને વસ્તુ માનવામા
પ્રમાણ નથી, પ્રમાણના અભાવમા પણ સ્વભાવને વસ્તુ માની લેવામા આવે તો
માનવામા શું આપત્તિ છે? તમારા મત પ્રમાણે કર્મ માનવામા પણ કોઈ પ્રમાણ

સ્વભાવ અગર કોઈ પણ વસ્તુ છે તો તે મૂર્ત્ત છે અથવા અમૂર્ત્ત છે? જો મ
છે તો સ્વભાવ અને કર્મ એકજ વસ્તુ છે, તમે કર્મનેજ સ્વભાવ-શબ્દથી કહો છો
ખુશીથી કહો જો સ્વભાવને અમૂર્ત્ત માનશો તો તે દેહ આદિનો કર્તા થઈ શકશે ન
કારણ કે તે અમૂર્ત છે અને ઉપકરણ (પ્રધાન સાધનો) રહિત છે જેવી ...

मूर्तस्य शरीरादिकार्यस्यानुरूपं कारणं मूर्तमेव समवति, यथा मृत्पिण्डो घटस्य।

अकारणतारूपः स्वभावः ? इति चेत्, एवं सति शरीरादिकमकारणमेवोत्पद्यते, इत्ययमर्थः स्यात्, तथा सति कारणाभावस्य समानत्वादेकस्मिन्नेव समये सकलशरीरोत्पत्तिप्रसंगः।

यदि स्वभावो वस्तुधर्म इत्युच्यते, तथापि यदि विज्ञानादिवदात्मनो धर्मस्तर्हि नासौ स्वभावः शरीरकारणं भवितुमर्हति, अमूर्तत्वात्, आकाशवदित्युक्तं प्रागेव। यदि स मवभावो मूर्तवस्तुधर्मस्तर्हि सिद्धसाधनम्, कर्मापि पुद्गलस्य धर्मेति वयं ब्रूमः। तस्मात् कर्मैव जगद्वैचित्र्यकारणमिति सिद्धम्।

जैसे घट का कारण मिट्टी का पिण्ड है।

अगर कोई भी कारण न होना ही स्वभाव है तो इसका अर्थ यह हुआ कि शरीर आदि निष्कारण ही उत्पन्न हो जाते हैं। अगर निष्कारण ही शरीर की उत्पत्ति होती है तो फिर ससार के समस्त शरीर एक साथ क्यों नहीं हो जाते ?।

स्वभाव किसी वस्तु का धर्म है, यह कहना भी युक्तिसंगत नहीं है। अगर वह ज्ञान आदि के समान आत्मा का धर्म है तो आकाश की तरह अमूर्त होने के कारण शरीर का कर्ता नहीं हो सकता यह पहले ही कहा जा चुका है। स्वभाव अगर किसी मूर्त वस्तु का धर्म है तो यह हमें भी इष्ट है, क्यों कि हमारे कथनानुसार कर्म भी पुद्गल का स्वभावी धर्म है, अत एव यह सिद्ध हुआ कि कर्म ही जगत् की विचित्रता का कारण है।

મૂર્ત શરીરનું અનુરૂપ કારણ મૂર્તજ હોવું જોઈએ, જેમ ઘડાનું કારણ માટીનો પિંડ છે

અથવા કોઈ જ કારણ ન હોય એવો જ સ્વભાવ છે તો તેનો અર્થ એ થયો કે શરીર આદિ નિષ્કારણજ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે અને નિષ્કારણ જ શરીરની ઉત્પત્તિ થાય છે તો પછી સંસારના સમસ્ત શરીર એક સાથે કેમ થઈ નથી જતાં ?

'સ્વભાવ કોઈ વસ્તુનો ધર્મ છે એ પ્રમાણે કહેવું તે પણ યુક્તિસંગત નથી. અથવા તો તે જ્ઞાન આદિના સમાન આત્માનો ધર્મ છે તો આકાશની માફક અમૂર્ત હોવાના કારણે શરીરના કર્તા થઈ શકશે નહી, આ હકીકત પ્રથમથીજ કહી આપી છે. સ્વભાવ એ કોઈ મૂર્ત વસ્તુનો ધર્મ છે તો તે વાત અમારે પણ માન્ય છે કારણ કે અમારા કહેવા પ્રમાણે કર્મ પણ પુદ્ગલરૂપજ છે, એ માટે એમ સિદ્ધ થયું કે કર્મ જ જગતની વિચિત્રતાનું કારણ છે

(३) कर्मणो मूर्तत्वम्-

नन्वतीन्द्रियस्य कार्मणशरीरस्य मूर्तत्वे किं मानम्? अत्रोच्यते—

शरीरादिकार्यदर्शनात्तत्कारणभूतं कर्म सिध्यति चेत् तर्हि कार्यानुरूपमेव कारणं भवितुमर्हतीति शरीरादिकार्याणां मूर्तत्वात्तत्कारणं कर्मापि मूर्तमेव। यथा मूर्तस्य घटादिकार्यस्य कारणं परमाणुपुद्गलास्ते मूर्ता एव सन्ति। यच्च पुनरमूर्तं कार्यं तस्य कारणमपि-अमूर्तम्, यथा ज्ञानस्यात्मेति।

ननु सुखदुःखादयोऽपि कर्मणः कार्यं तर्हि तेषाममूर्तत्वात् कर्मणोऽमूर्तत्वमपि प्राप्नोति, नहि मूर्तादमूर्तोत्पत्तिः संभवति, यथा पुद्गलाद् ज्ञानपर्यायः,

(३) कर्म का मूर्तपन-

शङ्का—अतीन्द्रिय कार्मण शरीर के मूर्त होने में क्या प्रमाण है?

समाधान—शरीर आदि कार्यों के देखने से उनके कारणभूत कर्म की सिद्धि होती है, और कारण, कार्य के अनुरूप ही होता है, अत एव जब शरीर आदि कार्य मूर्त हैं तो उन का कारण कर्म भी मूर्त ही होना चाहिए। जैसे मूर्त घट आदि कार्यों के कारणभूत पुद्गल परमाणु भी मूर्त ही है, जो कार्य अमूर्त होता है, उसका कारण भी अमूर्त ही होता है, जैसे ज्ञान का कारण आत्मा।

शङ्का—सुख और दुःख आदि का कारण भी कर्म है, और सुख दुःख आदि अमूर्त हैं, अतः उन का कारण कर्म अमूर्त भी होना चाहिए। मूर्त से अमूर्त की उत्पत्ति नही हो सकती, जैसे पुद्गल से ज्ञानपर्याय की उत्पत्ति नहीं हो

(૩) કર્મનું મૂર્તપણું—

શંકા-અતીન્દ્રિય કાર્મણુ શરીરમાં મૂર્તપણુ હોવામાં શું પ્રમાણુ છે?

સમાધાન-શરીર આદિ કાર્યોના દેખવાથી તેના કારણુભૂત કર્મની સિદ્ધિ થાય છે, અને કારણુ, કાર્યના અનુરૂપજ હોય છે એ કારણુથી જ્યારે શરીર આદિ કાર્ય મૂર્ત છે, તો તેનું કારણુ કર્મ પણુ મૂર્તજ હોવું જોઈએ જેવી રીતે મૂર્ત ઘટ આદિ કાર્યોના કારણુભૂત પુદ્ગલપરમાણુ પણુ મૂર્ત છે જે કાર્ય અમૂર્ત હોય છે તેનુ કારણુ પણુ અમૂર્ત જ હોય છે, જેમકે જ્ઞાનનું કારણુ આત્મા

શંકા-સુખ અને દુઃખ આદિનું કારણુ કર્મ છે, અને સુખ દુઃખ આદિ અમૂર્ત છે, તેથી તેનુ કારણુ કર્મ પણુ અમૂર્તજ હોવુ જોઈએ. મૂર્તથી અમૂર્તની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી, જેવી રીતે પુદ્ગલથી જ્ઞાનપર્યાયની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી, અને એકજ

नाप्येकस्यैव कर्मणो मूर्तत्वममूर्तत्वं च युज्यते, विरुद्धत्वादिति चेत्? उच्यते—

अत्र कारणशब्देनोपादानकारणं परिगृह्यते; न तु निमित्तकारणम्, सुखदुःखादीनां निमित्तकारणमेव कर्म, यथाऽन्नपानादयो विषादयो वा सुखदुःखादीनां निमित्तकारणमस्ति। उपादानकारणं तु तेषामात्मैव सुखदुःखादीनामात्मधर्मत्वादिति नास्ति दोषलेशोऽपि।

(४) जीवकर्मणोः सम्बन्धः।

ननु कर्म मूर्तमस्तीत्युक्तं परन्तु मूर्तस्य कर्मणोऽमूर्तेन जीवेन सह कथं संयोगलक्षणः सम्बन्धः? इति चेन्मैवम्, यथा मूर्तस्य घटस्यामूर्तेन गगनेन संयोगलक्षणः सम्बन्धस्तथाऽत्रापि जीवकर्मणोः सम्बन्धोऽस्तीति। उक्तञ्च—

सकती। और एक ही कर्म मूर्त भी हो और अमूर्त भी हो, यह कैसे हो सकता है?, ये दोनों धर्म विरोधी हैं एक जगह नहीं रह सकते।

समाधान—यहाँ कारण-शब्द से उपादान कारण ग्रहण किया गया है, निमित्त कारण नहीं। कर्म सुख-दुःख के प्रति निमित्त कारण ही है, जैसे अन्न, पान, विष आदि सुख-दुःख के निमित्त कारण हैं। सुख दुःख का उपादान कारण तो आत्मा ही है, क्यों कि वे आत्मा के धर्म हैं, अतः यहां दोष का लेश भी नहीं है।

(४) जीव और कर्म का सम्बन्ध—

शङ्का—आपने कर्म को मूर्त सिद्ध किया मगर मूर्त कर्म का अमूर्त जीव के साथ सम्बन्ध किस प्रकार हो सकता है?।

समाधान—ऐसा न कहिए। जैसे मूर्त घट का अमूर्त आकाश के साथ संयोग-सम्बन्ध है, उसी प्रकार जीव और कर्म का भी सम्बन्ध है। कहा भी है—

કર્મ મૂર્ત પણ હોય અને અમૂર્ત પણ હોય, એ કેવી રીતે હોઈ શકે? આ બન્ને ધર્મ વિરોધી છે તેથી એક જગ્યાએ રહી શકતા નથી.

સમાધાન—અહિં કારણ-શબ્દથી ઉપાદાન કારણ ગ્રહણ કરવામાં આવે છે, નિમિત્ત કારણ નહિ. કર્મ સુખ-દુઃખ થવામાં નિમિત્ત કારણજ છે જેવી રીતે અન્ન પાન, વિષ આદિ સુખ-દુઃખના નિમિત્ત કારણ છે પરન્તુ સુખ-દુઃખનું ઉપાદાન કારણ તો આત્માજ છે, કારણ કે તે આત્માનો ધર્મ છે તેથી તેમાં લેશ પણ દોષ નથી.

(૪) જીવ અને કર્મનો સમ્બન્ધ—

શંકા—આપે કર્મને મૂર્ત છે એમ સિદ્ધ કર્યું તો પછી મૂર્ત કર્મનો અમૂર્ત જીવની સાથે સમ્બન્ધ કેવી રીતે હોઈ શકે છે?

સમાધાન—આ પ્રમાણે નહિ કહો? જેમ મૂર્ત ઘટનો અમૂર્ત આકાશની સાથે સંયોગસમ્બન્ધ છે તે પ્રમાણે જીવ અને કર્મનો પણ સમ્બન્ધ છે કહ્યુ પણ છે—

"यथा ह्यरूपमाकाशं, रूपिद्रव्यादिभाजनम् ।
तथा ह्यरूप आत्मापि, रूपिकर्मादिभाजनम् ॥१॥"

यथा वा – अमूर्तयाऽऽकुञ्चनादिक्रियया सह मूर्तद्रव्यस्याङ्गुल्यादेः सम्बन्धस्तथाऽत्रापि जीवकर्मणोः सम्बन्ध इति बोध्यम् ।

यद्वा–यथा बाह्यशरीरमिद जीवेन सह सम्बद्धं प्रत्यक्षदृष्टमेवास्ति, एवं भवान्तरं गच्छता जीवेन सह कार्मणशरीर सम्बद्धमेवेति ।

यदि बाह्यशरीरस्य जीवेन सह सम्बन्धे धर्माधर्मयोः कारणताऽस्तीत्युच्यते तर्हि तावपि धर्माधर्मौ मूर्तौ स्याताममूर्तौ वा ? । यदि मूर्तौ तर्हि

"जैसे अरूपी आकाश रूपी द्रव्य आदि का आधार है, उसी प्रकार अरूपी आत्मा कर्मों का आधार है" ॥ १ ॥

अथवा जैसे–आकुञ्चन (सिकोडना) आदि अमूर्त क्रिया के साथ अंगुली आदि मूर्त द्रव्य का सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार यहां जीव और कर्म का सम्बन्ध समझ लेना चाहिए ।

अथवा जैसे बाह्य शरीरका जीव के साथ सम्बन्ध है, वह प्रत्यक्ष सिद्ध है, उसी प्रकार भवान्तर में जाते जीव के साथ कार्मण शरीर का सम्बन्ध है ।

अगर कहा जाय कि जीव के साथ बाह्य शरीर का सम्बन्ध होने में धर्म और अधर्म कारण है तो प्रश्न खडा होता है कि–धर्म अधर्म मूर्त हैं या अमूर्त है ?

"જેવી રીતે અરૂપી આકાશ, રૂપી દ્રવ્ય આદિનો આધાર છે તે પ્રમાણે અરૂપી આત્મા, રૂપી કર્મોનો આધાર છે" ॥૧॥

અથવા–જેવી રીતે–સંકોચવું આદિ અમૂર્ત ક્રિયાની સાથે આંગલી આદિ મૂર્ત દ્રવ્યનો સમ્બન્ધ હોય છે તે પ્રમાણે જીવ અને કર્મનો સમ્બન્ધ સમજી લેવો જોઈએ.

અથવા જેવી રીતે આ બાહ્ય શરીર જીવની સાથે સંબદ્ધ છે તે પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે. તે પ્રમાણે ભાવાન્તરમાં જતા જીવની સાથે કાર્મણ શરીરનો સંબંધ છે

અથવા તો એમ કહેવામાં આવે કે જીવની સાથે બાહ્ય શરીરનો સમ્બન્ધ હોવામાં ધર્મ અને અધર્મ કારણ છે તો પ્રશ્ન ઉભો થાય છે. કે–ધર્મ અધર્મ મૂર્ત છે કે અમૂર્ત છે ? જો તે મૂર્ત છે એમ કહો તો અમૂર્ત જીવની સાથે તેનો સંબંધ કેવી રીતે થયો ?

तयोरप्यमूर्तेन जीवेन कथं सम्बन्धः ?, यदि कथञ्चित् सम्बन्धस्तर्हि कर्मणोऽपि जीवेन सह सम्बन्धः कुतो न स्यात्। यद्यमूर्तौ धर्माधर्मौ तर्हि बाह्येन स्थूलशरीरेण मूर्तेन सह तयोः कथं सम्बन्धः ? त्वन्मते मूर्तामूर्तयोः सम्बन्धासम्भवात्। यद्यमूर्तयोरपि धर्माधर्मयोर्बाह्यशरीरेण मूर्तेन सह सम्बन्धोऽङ्गीक्रियते तर्हि जीवेन सह कर्मणः सम्बन्धे कथं दोषः ?।

नन्वमूर्तस्य जीवस्य मूर्तेन कर्मणा कथं सुखदुःखाद्यनुग्रहोपघातौ स्याताम्, न ह्यमूर्तस्याकाशस्य मूर्तैश्चन्दनाग्निज्वालादिभिरनुग्रहोपघातौ भायेते ?।

अगर वे मूर्त हैं तो अमूर्त जीव के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हुआ ?, अगर किसी प्रकार उनका सम्बन्ध हो गया तो कर्म का सम्बन्ध क्यों नहीं हो सकता ?। अगर धर्म अधर्म अमूर्त हैं तो बाह्य स्थूल और मूर्त शरीर के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हो गया ?, आपके मत से मूर्त और अमूर्त का तो सम्बन्ध हो नहीं सकता। अगर अमूर्त धर्म अधर्म का मूर्त शरीर के साथ सम्बन्ध होना स्वीकार करते हो तो जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध मानने में क्या दोष है ?।

शङ्का—अमूर्त जीव का मूर्त कर्म के द्वारा सुख दुःख आदिरूप अनुग्रह और उपघात कैसे हो सकता है, मूर्त माला चन्दन अग्नि ज्वाला आदि से अमूर्त आकाश का अनुग्रह और उपघात नहीं होता ?

અથવા કોઈ પ્રકારે તેનો સમ્બન્ધ થઈ જાય તો કર્મનો સમ્બન્ધ શા માટે નહિ થઈ શકે ? અગર ધર્મ અધર્મ અમૂર્ત છે તો બાહ્ય સ્થૂલ અને મૂર્ત શરીરની સાથે તેનો સમ્બન્ધ કેવી રીતે થઈ ગયો ? આપના મત પ્રમાણે તો મૂર્ત અને અમૂર્તનો સમ્બન્ધ જ કોઈ થાય નહી. પરન્તુ જો અમૂર્ત ધર્મ–અધર્મનો મૂર્ત શરીરની સાથે સમ્બન્ધ થવો તે સ્વીકાર કરતા હો તો જીવની સાથે કર્મનો સમ્બન્ધ માનવામાં દોષ શું છે ?

શંકા—અમૂર્ત જીવનો, મૂર્ત કર્મદ્વારા સુખ–દુઃખ આદિરૂપ અનુગ્રહ અને ઉપઘાત કઈ રીતે થઈ શકે ? મૂર્ત માળા ચન્દન, અગ્નિ, જ્વાળા આદિથી અમૂર્ત આકાશનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થઈ શકતો નથી.

शृणु–यथामदिरापानैर्विपपिपीलिकादिभिर्भक्षितैरमूर्तानामपिधृतिस्मृति–मेधादीनामात्मगुणानामुपघातो जायते, "मेधां पिपीलिका हन्ति" इत्यादिवचनात्, तथा पयःशर्कराघृतादिभिश्चानुग्रहः क्रियते तथैवामूर्तस्यात्मनो मुर्तेन कर्मणाऽनुग्रहोपघातौ जायेते। इद च जीवस्यामूर्तत्वमङ्गीकृत्य समाहितम्, न ह्येकान्तरूपेणाऽमूर्त एवात्मा किन्तु वह्न्ययोगोलकवत् क्षीरनीरवच्च कार्मणशरीरा भेदरूपता प्राप्तः कथञ्चिन्मूर्तोऽपीति। तस्य मूर्तेन कर्मणानुग्रहोपघातौ भवत एव। आकाशस्य तु तौ न भवतः, तस्यैकान्तरूपेणामूर्तत्वादचेतनत्वाच्च।

समाधान–सुनिये जैसे–मदिरा का पान करने से, विपभक्षण से और कीडी आदि के खाये जाने से अमूर्त धैर्य, स्मृति और बुद्धि आदि आत्मिक गुणों का उपघात होता है, "मेधां पिपीलिका हन्ति" इत्यादि वचन से, तथा दूध, शक्कर और घृत आदि से अनुग्रह होता है, उसी प्रकार अमूर्त आत्मा का मूर्त कर्म द्वारा अनुग्रह और उपघात होता है। जीव को अमूर्त अङ्गीकार करके यह समाधान किया है, किन्तु जीव एकान्तरूप से अमूर्त नहीं है। क्षीर–नीर की तरह अथवा अग्नि और लोहे के गोले की तरह आत्मा कार्मणशरीर से कथञ्चित् अभिन्न है, अत एव मूर्त भी है। कर्मलिप्त आत्मा मूर्त होने के कारण मूर्त कर्मों से उसका अनुग्रह और उपघात होता ही है। हाँ! आकाश का अनुग्रह और उपघात नहीं होता, क्यों कि वह एकान्तत अमूर्त और अचेतन है।

સમાધાન–સાભળો! જેમ મદિરાનુ પાન કરવાથી, વિષભક્ષણથી, અથવા કીડી આદિ પેટમા ખાઈ જવામાં આવવાથી અમૂર્ત ધૈર્ય, અને બુદ્ધિ આદિ આધ્યાત્મિક ગુણોનો ઉપઘાત થાય છે "મેધા પિપીલિકા हन्ति" ઈત્યાદિ વચનોથી, તથા દૂધ, સાકર અને ઘી આદિથી અનુગ્રહ થાય છે, તે પ્રમાણે અમૂર્ત આત્માનો મૂર્ત કર્મ અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થાય છે

જીવને અમૂર્ત અગીકાર કરીને આ સમાધાન કર્યુ છે, પરન્તુ જીવ એકાન્તથી અમૂર્ત નથી ક્ષીર–નીરની પ્રમાણે અથવા અગ્નિ અને લોઢાના ગોળાની માફક આત્મા કાર્મણશરીરથી કથચિત્ અભિન્ન છે આ કારણથી મૂર્ત પણ છે કર્મલિપ્ત આત્મા મૂર્ત હોવાના કારણે મૂર્ત કર્મોથી તેનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થાયજ છે. હા! આકાશનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થતો નથી, કારણ કે તે એકાન્તથી અમૂર્ત અને અચેતન છે.

(५) कर्मणोऽनादित्वम्—

अनादिः कर्मणः प्रवाहः। शरीरकर्मणोः परस्परं कार्यकारणभावात्, बीजाङ्कुरवत्। यथा बीजादङ्कुरो जायते, अङ्कुरादपि क्रमेण बीजमुपजायते। एवं शरीरात् कर्म जायते कर्मतस्तु शरीरमित्येवं पुनः पुनरपि परस्परमनादिकालतः कार्यकारणभावसम्बन्धोऽस्ति। इह ययोः परस्परं कार्यकारणभावस्तयोरनादिप्रवाहो दृश्यते यथा बीजाङ्कुरयोः, यथा वा कुक्कुटाण्डयोः, तथा शरीरकर्मणोरनादिप्रवाह इति।

(५) कर्मों का अनादिपन—

कर्मों की परम्परा अनादिकालीन है, क्यों कि शरीर और कर्म का परस्पर कार्य-कारणभाव है, जैसे बीज और अंकुर का। तात्पर्य है कि जैसे बीज से अंकुर उत्पन्न होता है, और अंकुर से क्रमशः बीज की उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार शरीर से कर्म और कर्म से शरीर उत्पन्न होता है। यह पारस्परिक कार्यकारणभाव अनादि काल से चला आता है। जिन दो पदार्थों में परस्पर कार्य-कारणभाव होता है उनका प्रवाह अनादिकालीन देखा जाता है, जैसे पूर्वोक्त बीज और अंकुर का अथवा मुर्गी और अण्डे का। इस प्रकार शरीर और कर्म का प्रवाह अनादिकालीन है।

(५) કર્મોનું અનાદિપણું—

કર્મોની પરંપરા અનાદિકાલીન છે કારણ કે-શરીર અને કર્મોનો પરસ્પર કાર્ય-કારણભાવ છે, જેવી રીતે બીજ અને અંકુરનો. તાત્પર્ય એ છે કે-જેવી રીતે બીજથી અંકુર ઉત્પન્ન થાય છે અને અંકુરથી ક્રમશઃ (ક્રમે-ક્રમે) બીજની ઉત્પત્તિ થાય છે તે પ્રમાણે શરીરથી કર્મ અને કર્મથી શરીર ઉત્પન્ન થાય છે આ પરસ્પરનો કાર્ય-કારણ ભાવ અનાદિ કાળથી ચાલ્યો આવે છે જે બે પદાર્થોમાં પરસ્પર કાર્ય-કારણભાવ હોય છે તેનો પ્રવાહ અનાદિકાલીન જોવામાં આવે છે જેવી રીતે પૂર્વોક્ત બીજ અને અંકુરનો, અથવા મરઘી અને ઇંડાનો એ પ્રમાણે શરીર અને કર્મનો પ્રવાહ અનાદિકાલીન છે

(६) अकर्मवादिमतनिराकरणम्—

यः पुनरदृष्टं कर्म नोस्तीति मन्यते स च नास्तिकः प्रष्टव्यः—अयमदृष्टाभावः किम् अप्रत्यक्षत्वात् , विचाराक्षमत्वात् , साधकाभावाद् वा मन्यसे ?

अप्रत्यक्षत्वान्नादृष्टाभावः सिध्यति, यतस्तत्र यदप्रत्यक्ष तन्नास्तीति स्वीकारे त्वदीयपितामहादेरप्यभावः स्यात् , तस्य त्वज्जन्मतः पूर्वमेवातीतत्वेन तवाप्रत्यक्षत्वात् । तथा च भवन्मते पितामहादेरतीतकालिकसत्ताया अभावेन भवतोऽपि सत्ता कथमुपपद्येत ? ।

---

(६) अकर्मवादी के मत का निराकरण—

जो नास्तिक यह मानता है कि—अदृष्ट कर्म का सद्भाव नहीं है, उससे पूछना चाहिए कि—तुम अदृष्ट के अभाव को क्यों मानते हो ? प्रत्यक्ष न होने से, विचार को सहन न करने से अर्थात् विचारके योग्य नही होने से, या साधक प्रमाणों का अभाव होने से अदृष्ट का अभाव कहते हो ?

प्रत्यक्ष न होने मात्र से अदृष्ट का अभाव सिद्ध नहीं हो सकता। जो तुम्हे प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता वह होता ही नहीं है, ऐसा मान लिया जाय तो तुम्हारे पितामह आदि का भी अभाव हो जायगा। वह तुम्हारे जन्म से पहले ही गुजर चुके हैं, अत तुम्हे प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दे सकते। ऐसी अवस्था में तुम्हारे पितामह आदि की भूतकालीन सत्ता का अभाव होजाने के कारण तुम्हारी सत्ता भी खतरे में पड जायगी।

---

(६) અકર્મવાદીના મતનુ નિરાકરણ—

જે નાસ્તિક એવુ માને છે કે—અદષ્ટ કર્મનો સદ્ભાવ (અસ્તિત્વ) નથી, તેમને પૂછવું જોઈએ કે—તમે અદષ્ટનો અભાવ શા માટે માનો છો ? પ્રત્યક્ષ નહી હોવાથી, વિચારને સહન નહી કરવાથી અર્થાત્—વિચારવાયોગ્ય નહિ હોવાથી, અથવા સાધક પ્રમાણોનો અભાવ હોવાથી અદષ્ટનો અભાવ કહો છો ?

પ્રત્યક્ષ નહી હોવા માત્રથી અદષ્ટનો અભાવ સિદ્ધ થઈ શકતો નથી, જે વસ્તુ તમને પ્રત્યક્ષ જોવામા ન આવે તે વસ્તુ હોયજ નહી, એ પ્રમાણે જો માની લેશો તો તમારા પિતામહ (બાપનો બાપ) આદિનો અભાવ થઈ જશે, કારણ કે તે તમારા જન્મતા પહેલાજ ગુજરી ગયા છે તેથી તમને તે પ્રત્યક્ષ જોવામાં આવતા નથી, એવી અવસ્થામા તમારા પિતામહ આદિની ભૂતકાલીન સત્તાનો અભાવ થઈ જવાથી તમારી સત્તા પણ ખતરામા (ભયમા) પડી જશે.

अथ सर्वप्रमातॄणां यदप्रत्यक्षं तस्याऽसत्त्वमिति चेत् तदपि न संभवति। यतः सर्वं मतीन्द्रियं वस्तु सर्वप्रमातॄणां प्रत्यक्षं न भवति, तादृशज्ञानशक्त्यन्तराभावात्। अस्मा भिस्तु समस्तभावावभासनभास्करः सर्वज्ञः स्वीक्रियते।

विचाराऽक्षमत्वमपि न युक्तं, कर्कश(दुर्भेद्य)तर्कैस्तत्कर्मभावस्य कर्मणः सद्भावसंभवात्।

साधकाभावादपि नाऽस्त्यभावः, पूर्वोक्तागमानुमानयोस्तत्साधकयोः सत्त्वात्। यथा च—शुभः पुण्यस्य, अशुभः पापस्येत्यागम। शुभयोगः पुण्यस्य, अशुभयोगः पापस्य कारणमित्यर्थः।

अगर कहा जाय कि एक—दो के अप्रत्यक्ष होने से किसीका अभाव नहीं होता बरन् जो वस्तु सभी के अप्रत्यक्ष है, उसका अभाव होता है। यह कथन भी ठीक नहीं है, क्यों कि सब अतीन्द्रिय वस्तुएँ सब प्रमाताओं के प्रत्यक्ष नहीं होती, इसका कारण विशिष्ट ज्ञानशक्ति का अभाव है। मगर हम लोग तो समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने में सूर्य के समान सर्वज्ञ स्वीकार करते हैं।

अदृष्ट, विचार को सहन नहीं करता अर्थात् विचारने के योग्य नहीं है, यह कथन भी युक्त नहीं, कठोर तर्कों द्वारा विचार करने से कर्म का अस्तित्व सिद्ध हो ही जाता है।

साधक प्रमाणों का अभाव होने से कर्म का अभाव बतलाना भी ठीक नहीं, क्यों कि पूर्वोक्त आगम और अनुमान प्रमाण उसका सद्भाव सिद्ध करते हैं। 'शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य' यह आगमप्रमाण है। अर्थात् शुभयोग पुण्य का और अशुभ योग पाप का कारण होता है।

અથવા કહેવામાં કે એક-બેના અપ્રત્યક્ષ હોવાથી કોઈનો અભાવ થતો નથી. પરન્તુ જે વસ્તુ સર્વને અપ્રત્યક્ષ છે તેનો અભાવ હોય છે એમ કહેવું તે પણ ઠીક નથી, કારણ કે સર્વ અતીન્દ્રિય વસ્તુઓ પ્રમાતાઓને પ્રત્યક્ષ થતી નથી. તેનું કારણ વિશિષ્ટ જ્ઞાનશક્તિનો અભાવ છે અથવા અમે તો સમસ્ત પદાર્થોને પ્રકાશિત કરવામાં સૂર્યના સમાન સર્વજ્ઞનો સ્વીકાર કરીએ છીએ.

અદૃષ્ટ વિચારને સહન કરતા નથી અર્થાત્ વિચારવા યોગ્ય નથી, એમ કહેવું તે પણ યુક્ત નથી, કઠિન તર્કો દ્વારા વિચાર કરવાથી કર્મનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થઈ જ જાય છે

સાધક પ્રમાણોનો અભાવ હોવાથી કર્મોનો અભાવ બતાવવો તે પણ ઠીક નથી, કારણ કે પૂર્વોક્ત આગમ અને અનુમાન પ્રમાણ તેનો સદ્ભાવ (અસ્તિત્વ-હોવાપણું) સિદ્ધ કરે છે. 'शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य' એ આગમપ્રમાણ છે, અર્થાત્ શુભ યોગ પુણ્યનું અશુભ યોગ પાપનું કારણ હોય છે

कार्यविशेषेण कारणस्यानुमानं भवति यथा कार्यविशेषः सकारणकः, कार्यत्वात्, कुम्भवत्। उक्तञ्च—

"तुल्याकृत्योश्च यमयो,-र्दृश्यते महदन्तरम्।
चारित्र-वीर्य-विज्ञान,-वैराग्या-रोग्य-संपदाम्" ॥१॥ इति।

अदृष्टरूपकारणमन्तरेणेद महदन्तरं न सभवति, तस्मादवश्यं स्वीकरणीयं कर्म।

(७) बन्धस्वरूपनिरूपणम्—

अत्र बन्धशब्देन भावबन्धो गृह्यते, न तु निगडादिबन्धरूपो द्रव्यबन्धः। बन्धनं बन्धः। कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धानामात्मप्रदेशानां च परस्परं क्षीर-

---

कार्यविशेष से कारण का अनुमान होता है। जैसे—इस कार्य का कोई कारण है, क्यों कि कार्य है, जैसे—घट, कहा भी है—

"समान आकृति वाले यमल (जोडली सन्तान) में चारित्र, वीर्य, विज्ञान, वैराग्य, और सम्पत्ति का महान् अन्तर दिखाई देता है" ॥ १ ॥

अदृष्टरूप कारण के विना यह महान् अन्तर नहीं हो सकता, अत एव कर्म अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

(७) बन्ध के स्वरूपका निरूपण—

बन्ध-शब्द से यहाँ भावबन्ध का ग्रहण करना चाहिए। बेडी आदि द्रव्यबन्धका नही। कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्धों का और आत्मप्रदेशों का आपस में दूध

કાર્ય-વિશેષથી કારણનુ અનુમાન થાય છે જેવી રીતે આ કાર્યનું કોઈ કારણ છે, કારણ કે કાર્ય છે, જેવી રીતે ઘટ. કહ્યુ પણ છે—

'સમાન આકૃતિ વાળા યમલ-જોડલા સતાનમા ચારિત્ર, વીર્ય, વિજ્ઞાન, વૈરાગ્ય, આરોગ્ય અને સમ્પત્તિનુ મહાન અતર જોવામા આવે છે" ॥૧॥

અદષ્ટરૂપ કારણ વિના આ મહાન અન્ત હોઈ શકે નહિ, એ કારણથી કર્મનો અવશ્ય સ્વીકાર કરી લેવો જોઈએ

(૭) બધસ્વરૂપનુ નિરૂપણ—

બધ-શબ્દથી અહિં ભાવ-બધનુ ગ્રહણ કરવું જોઈએ, બેડી આદિ દ્રવ્યબંધનુ નહિ, કર્મવર્ગણાને યોગ્ય પુદ્ગલસ્કધોનો અને આત્મ-પ્રદેશોનો પરસ્પર દૂધ અને

नीरवत् सम्बन्धो बन्धः। यद्वा-बध्यतेऽस्वातन्त्र्यमापद्यते आत्मा येन, सम्बन्धः। ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मपुद्गलानामवस्थानं हि जीवस्याऽनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यरूपसामर्थ्यप्रतिबन्धकतया स्वातन्त्र्यविघातकं भवति।

यद्यपि निश्चयनयेन रागद्वेषरहितोऽयमात्मा, तथाप्यसौ व्यवहारनयेन रागद्वेषरूपभावकर्मणां ज्ञानावरणीयादिद्रव्यकर्मणां च कर्ता भवति। आत्मसंबद्धशरीरावगाढक्षेत्रावस्थितकर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धाः स्वकीयोपादानकारणशक्त्यैव कर्मरूपामवस्थां प्राप्नुवन्ति। ते च कर्मपुद्गला आत्मप्रदेशैः सह परस्परमेकक्षेत्रावगाहरूपं बन्धं क्षीरनीरवत् प्राप्नोति। यथा समुड्डीयमानानि रजांसि

और पानी की तरह सम्बन्ध हो जाना बन्ध है। अथवा-जीव जिस के द्वारा बाँधा जाय-पराधीन किया जाय वह बन्ध है। ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की स्थिति, जीव के अनन्त ज्ञान दर्शन सुख और वीर्यरूप सामर्थ्य में बाधक होने के कारण स्वतन्त्रता का घात करने वाली है।

यद्यपि निश्चयनय से आत्मा राग-द्वेष से रहित है, किन्तु व्यवहारनय से राग-द्वेषरूप भावकर्मों का तथा ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मों का कर्ता है। जिस आकाश-क्षेत्र में आत्मा से संबद्ध शरीर है, उसी आकाशक्षेत्र में स्थित कार्मणवर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्ध, अपनी उपादानकारण-शक्ति से ही कर्मरूप अवस्था को प्राप्त करते हैं। वे कर्मपुद्गल आत्मप्रदेशों के साथ परस्पर एकक्षेत्रावगाहरूप बन्ध को क्षीर-नीर की नाईं प्राप्त होते हैं। जैसे-उड़ती हुई रज तेल से चिकने घड़े आदि पर चिपक जाती है,

---

પાણીની પ્રમાણે સમ્બન્ધ થઈ જવો તે બંધ છે. આત્મા-જીવ જેના દ્વારા બંધાઈ જાય-પરાધીન થઈ જાય. તે બંધ છે. જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોની સ્થિતિ, જીવના અનન્ત જ્ઞાન, દર્શન સુખ અને વીર્યરૂપ સામર્થ્યમાં બાધક હોવાના કારણે સ્વતંત્રતાનો ઘાત કરવા વાળી છે.

જો કે નિશ્ચયનયથી આત્મા રાગ-દ્વેષથી રહિત છે પરન્તુ વ્યવહારનયથી રાગ-દ્વેષરૂપ ભાવકર્મોનો, તથા જ્ઞાનાવરણ આદિ દ્રવ્યકર્મોનો કર્તા છે. જે આકાશક્ષેત્રમાં આત્માથી સંબદ્ધ શરીર છે તે આકાશક્ષેત્રમાં સ્થિત (રહેલા) કર્મ-વર્ગણાના યોગ્ય પુદ્ગલસ્કંધ પોતાની ઉપાદાન કારણ-શક્તિથી જ કર્મરૂપ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે તે કર્મપુદ્ગલ આત્મપ્રદેશોની સાથે પરસ્પર એકક્ષેત્રાવગાહરૂપ બંધને ક્ષીર-નીરના ન્યાય પ્રમાણે પ્રાપ્ત થાય છે જેવી રીતે ઉડતી રજ તેલના ચિકણા ઘડા આદિને

तैलस्निग्धे घटादौ संश्लिष्टानि भवन्ति, तथा रागद्वेषरूपतैलस्निग्धमलिनात्मप्रदेशेषु कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलाः स्वकीयोपादानशक्त्या ज्ञानावरणीयादिकर्मरूपामवस्थां प्राप्य संश्लिष्टा भवन्ति ।

परमाणुरूपा द्विप्रदेशिप्रभृतिस्कंन्धरूपाश्च पुद्गला औदारिक-वैक्रिया--ऽऽहारक-तैजस-भाषा-श्वासोच्छ्वास-मनः-कार्मण-भेदादष्टविधाः । तत्र कर्मवर्गणापुद्गला अपि समस्तलोकं व्याप्य वर्तन्ते, यत्र संसारिणां शरीराणि सन्ति, तत्रापि तद्बहिश्चापि सर्वत्र ते वर्तन्ते, तत्र कर्मयोग्यपुद्गला आत्मना परिगृहीताः कर्मरूपेण परिणता भवन्ति ।

रागद्वेषपरिणत्याऽऽर्द्रीकृतस्यात्मनो मनोवाक्कायरूपकरणसाहाय्येन

उसीप्रकार राग-द्वेषरूपी तेल से चिकने मलिन आत्मप्रदेशों में, कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल, अपनी-अपनी उपादानशक्ति से ज्ञानावरण आदि कर्म-रूप अवस्था को प्राप्त कर के चिपक जाते हैं ।

परमाणुरूप और द्विप्रदेशी वगैरह स्कन्धरूप पुद्गल औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, मन और कार्मण के भेद से आठ प्रकार के होते हैं । इन में से कार्मणवर्गणा के पुद्गल भी सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है । जहां ससारी जीवों के शरीर हैं, वहा भी हैं, और वाहर भी सर्वत्र हैं । ये कर्मयोग्य पुद्गल आत्माद्वारा जब ग्रहण किये जाते हैं तब कर्मरूप मे परिणत हो जाते हैं ।

राग-द्वेषरूप परिणति से युक्त आत्मा का, मन, वचन, काय, की सहायता से

ચોટી જાય છે, તે પ્રમાણે રાગ-દ્વેષ રૂપી તેલથી ચિકણા અને મલિન આત્મપ્રદેશોમા કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલ પોત-પોતાની ઉપાદાનશક્તિથી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ-રૂપ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરીને ચોટી જાય છે

પરમાણુરૂપ અને દ્વિ-પ્રદેશી વગેરે સ્કધરૂપ પુદ્ગલ ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક તૈજસ, ભાષા, શ્વાસોચ્છ્વાસ, મન અને કાર્મણના ભેદથી આઠ પ્રકારના હોય છે તેમાંથી કાર્મણવર્ગણાના પુદ્ગલ પણ સ પૂર્ણ લોકમા વ્યાપ્ત છે જ્યા સસારી જીવોના શરીર છે ત્યા પણ છે અને બહાર સર્વત્ર પણ છે તે કર્મયોગ્ય પુદ્ગલ આત્માદ્વારા જ્યારે ગ્રહણ કરવામા આવે છે ત્યારે તે કર્મરૂપમા પરિણત થઈ જાય છે

રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણતિયુક્ત આત્માની મન, વચન અને કાયાની સહાયતાથી

वीर्यगुणपरिणामात्मिका शुभाशुभक्रिया भवति। इयं क्रिया आत्मनः प्रदेशानां परिस्पन्दः, कम्पनं, व्यापारो, योग इति चोच्यते। इयमेव मनोवाक्काययोग इति च कथ्यते। इयमात्मनो ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मसम्बन्धरूप बन्धे हेतुश्च।

आत्मन शुभाशुभक्रियायां सत्यामात्मसंलग्नानादिकार्मणशरीरेणा ऽऽत्माऽनन्तानन्तप्रदेशिस्कन्धरूपांश्चतुःस्पर्शान् कर्मयोग्यपुद्गलानादाय कार्मणशरीर तया परिणमयति। आत्मसंलग्नं यदनादि कार्मणशरीरं, तदि आत्मैक्यात् कर्म योग्यपुद्गलानां ग्रहणे स्वाधीनकरणे स्वस्मिन्नेकत्वपरिणामकरणे च समर्थं भवति। अनादिकार्मणशरीरसम्बन्धादेव संसारी जीवो मूर्तोऽस्ति। मूर्तत्वादेव च तस्य पौद्गलिककर्मसम्बन्धो भवति।

वीर्यगुण के परिणमनरूप शुभा-शुभ क्रिया होती है। इस क्रिया को आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन, कम्पन व्यापार या योग कहते हैं। यही मन वचन और काय का योग कहलाता है। यही क्रिया ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के बन्ध का कारण है।

आत्मा की जब शुभ या अशुभ क्रिया होती है तो आत्मा के साथ पहले से बंधे हुए कार्मणशरीर के द्वारा आत्मा अनन्तानन्तप्रदेशी-स्कन्धरूप चौस्पर्शी कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण कर के कार्मणशरीर के रूप में परिणत करता है। आत्मा से सम्बद्ध अनादिकालीन कार्मणशरीर आत्मा के साथ एकमेक होने के कारण कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण करने में, अपने अधीन करने में और अपने साथ एकमेक करलेने में समर्थ होता है। अनादिकालीन कार्मण शरीर के सम्बन्ध से ही संसारी जीव मूर्त है, और मूर्त होने के कारण ही उसका पौद्गलिक कर्मों के साथ सम्बन्ध होता है।

વીર્યગુણના પરિણમનરૂપ શુભાશુભ ક્રિયા થાય છે તે ક્રિયાને આત્માના પ્રદેશોનું પરિસ્પન્દન, કમ્પન, વ્યાપાર અથવા યોગ કહે છે આજ મન વચન અને કાયાનો યોગ કહેવાય છે આ ક્રિયા જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોના બંધનું કારણ છે

આત્માની જ્યારે શુભ અથવા અશુભ ક્રિયા થાય છે તો આત્માની સાથે પહેલાથી બાંધેલા કાર્મણશરીરદ્વારા આત્મા અનન્તાનન્તપ્રદેશી-સ્કન્ધરૂપ, ચોસ્પર્શી કર્મયોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરીને કાર્મણશરીરના રૂપમાં પરિણત કરે છે. આત્માથી સંબદ્ધ અનાદિકાલીન કાર્મણશરીર આત્માની સાથે એકમેક હોવાના કારણે કર્મયોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરવામાં પોતાના આધીન કરવામાં અને પોતાની સાથે એકમેક કરી લેવામાં સમર્થ થાય છે અનાદિકાલીન કાર્મણશરીરના સંબંધથી જ સંસારી જીવ મૂર્ત હોવાના કારણે જ તેનો પૌદ્ગલિક કર્મોની સાથે સમ્બન્ધ થાય છે.

यथा दीपक ऊष्मगुणयोगाद् वर्तिद्वारा तैलमादाय ज्वालारूपेण परिणमयति तथा रागद्वेषोष्मगुणसम्बन्धान्मनोवागादियोगवर्त्याऽऽत्मदीपः कर्मयोग्यपुद्गलस्कन्धतैलमादाय कर्मज्वालारूपेण परिणतं करोति। मनोवागादिरूपकरणसंयोगादात्मनो वीर्यपरिणामो भवति, अतो मनोवागादिव्यापारो योगशब्देनोच्यते। यथा मृन्मयघटस्याग्निसंयोगाद् रक्तत्वादिपरिणतिर्घटस्यैव भवति तथा मनोवागादिसंयोगात् शुभाशुभक्रियारूपा वीर्यपरिणतिरात्मन एव भवति, न तु पुद्गलरूपमनोवागादेः।

यथा च तैलाभ्यक्ते शरीरे जलार्द्रे वस्त्रे वा धूलिराश्लिष्टा भवति, तथा

जैसे—दीपक उष्मागुण के कारण वत्तीद्वारा तैल ग्रहण कर के ज्वाला के रूप में परिणत करता है, उसी प्रकार राग–द्वेष रूप उष्मागुणके सम्बन्ध से मन, वचन आदि योगों की बत्ती द्वारा आत्मरूपी दीपक कर्मयोग्यपुद्गलस्कन्धरूप तैल को ग्रहण कर के कर्मरूप ज्वाला में परिणत कर लेता है। मन, वचन और कायरूप करण के द्वारा आत्मा का वीर्यरूप परिणमन होता है। इसीलिए मन, वचन, आदि का व्यापार योग कहलाता है। जैसे—अग्नि के सयोग से मिट्टी के घडे की ललाई आदिरूप परिणति होती है, और वह घडे की ही कहलाती है, उसीप्रकार मन, वचन आदि के सयोग से शुभा–शुभक्रियारूप वीर्य की परिणति आत्मा की ही होती है, पुद्गलरूप मन, वचन आदि की नही।

जैसे तेल से लिप्त शरीर पर या भीगे हुए वस्त्र पर धूल लग जाती है,

---

જેવી રીતે દીપક ઉષ્માગુણના કારણે બત્તીદ્વારા તેલને ગ્રહણ કરીને જ્વાળાના રૂપમા પરિણત કરે છે તે પ્રમાણે રાગ–દ્વેષરૂપ ઉષ્માગુણના સમ્બન્ધથી મન વચન આદિ યોગોની બત્તી દ્વારા આત્મારૂપી દીપક કર્મયોગ્ય–પુદ્ગલસ્કન્ધરૂપ તેલને ગ્રહણ કરીને કર્મરૂપ જ્વાલામા પરિણત કરી લે છે મન, વચન અને કાયારૂપ કરણદ્વારા આત્માનુ વીર્યરૂપ પરિણમન થાય છે, એ કારણથી મન, વચન આદિનો વ્યાપાર યોગ કહેવાય છે જેવી રીતે અગ્નિના સયોગથી માટીના ઘડાની જ લાલી (રાતાશપણુ) રૂપ પરિણતિ થાય છે, અને તે ઘડાની જ કહેવાય છે. તે પ્રમાણે મન, વચન આદિના સયોગથી શુભા–શુભક્રિયારૂપ વીર્યની પરિણતિ આત્માની જ થાય છે પુદ્ગલરૂપ મન, વચન આદિની નહિ

જેવી રીતે તેલથી લિપ્ત શરીર પર, અથવા ભિંજાએલા વસ્ત્ર પર ધૂળ લાગી જાય છે. તે પ્રમાણે રાગ–દ્વેષરૂપી તેલથી યુક્ત આત્માના કાર્મણશરીરરૂપ

रागादिरूपतैलाभ्यक्तस्यात्मनः कार्मणशरीरपरिणामो नवीनकर्मग्रहणे योग्यतां संपादयति। आत्मशरीरयोरैक्ये सति सम्यग्ज्ञानाभावरूपानाभोगवीर्यतः कर्मबन्धो भवति। इत्थं कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानां ज्ञानावरणीयादिकर्मतया परिणतानां सकषायस्यात्मनः सकलप्रदेशेषु लोलीभावो बन्ध इति बोध्यम्।

(८) बन्धकारणनिरूपणम्-

बन्धस्य पञ्च साधारणकारणानि मिथ्यात्वाऽविरति प्रमाद-कषाय-योग-भेदात्।

तत्रातत्त्वे तत्त्वाध्यवसायरूपो विपरीतावबोधो मोहकर्मोदयजनित आत्म-परिणामो मिथ्यात्वम्। यद्वा-कुदेव-कुगुरु-कुधर्मेष्वभिरुचिरूपमतत्त्वार्थश्रद्धानं

इसी प्रकार राग-द्वेषरूपी तेल से युक्त आत्मा का कार्मणशरीररूप परिणाम नवीन कर्मों को ग्रहण करने में योग्य हो जाता है। आत्मा और शरीर के एकमेक होने पर सम्यग्ज्ञान के अभावरूप अनाभोग वीर्य से कर्मबन्ध होता है। इस प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मरूप में परिणत कार्मणवर्गणाओं के योग्य पुद्गलों का कषायुक्त-आत्मा के समस्त प्रदेशों में एकमेक हो जाना बन्ध है।

(९) बन्धके कारण-

बन्ध के साधारण कारण पाँच हैं-(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, और (५) योग।

अतत्त्व को तत्त्व समझनेरूप मोहनीयकर्मजन्य विपरीतज्ञानरूप आत्मपरिणाम को मिथ्यात्व कहते हैं, अथवा कुदेव कुगुरु और कुधर्म में रुचिरूप अतत्त्व का

પરિણામ નવીન કર્મો ગ્રહણ કરવામાં યોગ્ય થઈ જાય છે આત્મા અને શરીરના એકમેક થવાથી સમ્યગ્જ્ઞાનના અભાવરૂપ અનાભોગ વીર્યથી કર્મબંધ થાય છે.

એ પ્રમાણે જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મરૂપમાં પરિણત કાર્મણવર્ગણાના યોગ્ય પુદ્ગલોનું કષાયયુક્ત આત્માના સમસ્ત પ્રદેશોમાં એકમેક થઈ જવું તે બંધ છે.

(૮) બંધનું કારણ—

બંધના સાધારણ કારણો પાંચ છે.—(૧) મિથ્યાત્વ, (૨) અવિરતિ, (૩) પ્રમાદ, (૪) કષાય અને (૫) યોગ

અતત્ત્વને તત્ત્વ સમજવા રૂપ મોહનીયકર્મજન્ય વિપરીતજ્ઞાનરૂપ આત્મ પરિણામને મિથ્યાત્વ કહે છે. અથવા કુદેવ કુગુરુ અને કુધર્મમાં રુચિરૂપ અતત્ત્વની

मिथ्यात्वम् १ । सावद्ययोगेषु प्रवृत्तिरविरतिः२ । सदुपयोगाभावः प्रमादः, मोक्षमार्गं प्रति शैथिल्यं वा प्रमाद ३ । कष्यते=पुनःपुनर्जन्ममरणादिक्लेशोऽनुभूयते येन स कषायः, मोहनीयकर्मोदयजनित आत्मपरिणतिविशेषः, यद्वा-कष्यते यत्र शारीरिकमानसिकदुखैः, स कषः-संसारः, तस्य आयः-प्राप्तिकारण कषायः= क्रोधादि ४ । युज्यते-आत्माऽनेनेति योगः=मनोवाक्कायव्यापाररूपः ५ । उक्तञ्च-

"पच आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा-मिच्छत्तं १, अविरई २, पमाया ३, कसाया ४, जोगा ५"। (समवा० समवाय ५) 'आसवदारा' इति-आस्रवो वन्ध-कारणम् ।

श्रद्धान मिथ्यात्व कहलाता है १ । सावद्य योगों में प्रवृत्ति करना अविरत्ति है २ । सम्यक् उपयोग (यतना) का अभाव प्रमाद कहलाता है, या मोक्षमार्ग के विषय में शिथिलता होना प्रमाद है ३ । जिस के द्वारा आत्मा कषा जाय अर्थात् वारवार जन्म-मरण का क्लेश भोगा जाय उसे कषाय कहते हैं । कषाय, मोहकर्म से उत्पन्न आत्मा की एक परिणति है । अथवा - जहाँ शारीरिक एव मानसिक दु खों से जीव कषा जाय (युक्त हो) उसे कष अर्थात् संसार कहते है और उस कष (ससार) की आय प्राप्ति जिस से हो वह कषाय कहलाता है ४ । जिस से आत्मा व्याप्त हो, ऐसा मन, वचन और काय का व्यापार योग कहलाता है ५ । कहा है—

"पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा-मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कसाया, जोगा"। (समवायाङ्ग, समवाय ५) यहाँ 'आसवदारा' का अर्थ है-आश्रव के द्वार अर्थात् वन्धके कारण ।

શ્રદ્ધા તેને મિથ્યાત્વ કહે છે (૧) સાવદ્ય યોગોમા પ્રવૃત્તિ કરવી તે અવિરતિ છે (૨) સમ્યક્ ઉપયોગનો અભાવ તે પ્રમાદ કહેવાય છે, અથવા મોક્ષમાર્ગના વિષયમા શિથિલતા થવી તે પ્રમાદ છે (૩) જેના દ્વારા આત્મા કષાય અર્થાત્ વારવાર જન્મ મરણનો ક્લેશ ભોગવવાય તેને કષાય કહે છે કષાય, મોહ કર્મથી ઉત્પન્ન આત્માની એક પરિણતિ છે અથવા—જ્યા શારીરિક અને માનસિક દુ ખોથી જીવ કષાય અર્થાત્ પીડાય તેને કષ અર્થાત્ સ સાર કહે છે, અને તે સ સારની આય-પ્રાપ્તિ જેનાથી હોય તે કષાય કહેવાય છે (૪) જેનાથી આત્મા વ્યાપ્ત હોય એવા મન, વચન અને કાયાના વ્યાપાર તે યોગ કહેવાય છે (૫), કહ્યુ છે કે —

"पंच आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा-मिच्छत्त, अविरई, पमाया, कसाया जोगा" (સમવાયાગ, સમવાય ૫,) અહિં "आसवदारा" નો અર્થ એ છે કે-આશ્રવના દ્વાર, અર્થાત્ બ ધના કારણ

एषु पञ्चसु कारणेषु कषायः प्रधानम्। स च क्रोधमानमायालोभभेदाच्चतुर्विधः। चतुर्विधोऽप्ययं कषायो रागद्वेषान्तर्गत एवास्ति। उक्तञ्च—

"दोहिं ठाणेहिं पावकम्मा बंधति, तंजहा-रागेण य, दोसेण य। रागे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—माया य लोभे य। दोसे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—कोहे य माणे य" (स्था० स्थान २ उ०)

बन्धश्चतुर्विधः-प्रकृति-स्थित्य-नुभाव-प्रदेशभेदात्। उक्तञ्च—

"चउव्विहे बंधे पण्णत्ते, तंजहा—पगइबंधे१, ठिइबंधे२, अणुभावबंधे३, पएसबंधे४।" (समवायाङ्ग समवाय४)

इन पांच कारणों में कषाय प्रधान है। क्रोध, मान, माया और लोभ के भेदसे वह चार प्रकार का है। कषाय के ये चारों भेद राग और द्वेष में ही अन्तर्गत हो जाते हैं। कहा भी है—

"दो स्थानों से पाप कर्मों का बन्ध होता है। वह इस प्रकार—राग से और द्वेष से। राग दो प्रकार का है—माया और लोभ। द्वेष भी दो प्रकार का है—क्रोध और मान"। (स्था० स्थान २ उ २)

बन्ध चार प्रकार का है—(१) प्रकृति-बन्ध, (२) स्थिति बन्ध, (३) अनुभाग-बन्ध, और (४) प्रदेश-बन्ध। कहा भी है—

"बन्ध चार प्रकार का कहा गया है वह इस प्रकार—(१) प्रकृतिबन्ध, (२) स्थितिबन्ध (३) अनुभागबन्ध (४) प्रदेशबन्ध'। (सम स ४)

આ પાંચ કારણોમાં કષાય પ્રધાન છે- મુખ્ય છે ક્રોધ માન, માયા અને લોભના ભેદથી તે ચાર પ્રકારના છે. કષાયના તે ચારે ય ભેદ રાગ-અને દ્વેષમાં સમાઈ જાય છે કહ્યું છે કેઃ-

બે સ્થાનોથી પાપકર્મોનો બંધ થાય છે તે આ પ્રમાણે છે-રાગથી અને દ્વેષથી. રાગ બે પ્રકારનો છે-માયા અને લોભ. દ્વેષ પણ બે પ્રકારનો છે-ક્રોધ અને માન" (સ્થા. સ્થાન ૨-ઉ ૨)

બંધ ચાર પ્રકારના છે-(૧) પ્રકૃતિબંધ (૨) સ્થિતિબંધ, (૩) અનુભાવબંધ (૪) પ્રદેશબંધ. કહ્યું પણ છે-

બંધ ચાર પ્રકારના છે. (૧) પ્રકૃતિબંધ, (૨) સ્થિતિબંધ, (૩) અનુભાવબંધ, (૪) પ્રદેશબંધ," (સમ૦ સ. ૪)

तत्र प्रकृतिः-स्वभावः। आत्मपरिगृहीतकर्मपुद्गलानां तच्छक्तिरूपेण परिणमनम्। यथा निम्बस्य तिक्तत्वम्, गुडस्य मधुरत्वम्। प्रकृतिर्द्विविधा-मूलप्रकृतिः, उत्तरप्रकृतिश्च। मूलरूपः कर्मणः स्वभावो मूलप्रकृतिः। मूलप्रकृतिरष्टधा-ज्ञानावरणीय१ - दर्शनावरणीय२ - वेदनीय३ - मोहनीया४-ऽऽयुष्य५-नाम६-गोत्रा७-न्तराय८-भेदात्। उक्तञ्च—

"अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-णाणावरणिज्जं१, दंसणावरणिज्जं२, वेयणिज्ज३ मोहणिज्ज४, आउय५, नाम६, गोयं७, अंतराइयं८"। (प्रज्ञापना० पद-२१ उ. १ सू. २८८)

प्रकृति अर्थात् स्वभाव। आत्मा के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मपुद्गलों में अमुक-अमुक प्रकार की शक्ति (स्वभाव) उत्पन्न हो जाना प्रकृतिबन्ध है। जैसे—नीम में कटुकता और गुड में मधुरता होती है।

प्रकृति दो प्रकार की है—मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृति। कर्म का मूल स्वभाव मूलप्रकृति कहलाती है। मूलप्रकृति के आठ भेद हैं-(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, और (८) अन्तराय। कहा भी है—

"आठ कर्मप्रकृतियां हैं, वे इस प्रकार-(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयुष्य, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अन्तराय।" (प्रज्ञा पद २१ उ १ सू २८८)

પ્રકૃતિ અર્થાત્ સ્વભાવ,-આત્માદ્વારા ગ્રહણ કરેલા કર્મપુદ્ગલોમા અમુક-અમુક પ્રકારની શક્તિ (સ્વભાવ) નુ ઉત્પન્ન થઈ જવુ તે પ્રકૃતિબધ છે જેવી રીતે લીબડામા કડવાશ અને ગોળમા મધુરતા હોય છે

પ્રકૃતિ બે પ્રકારની છે- (૧) મૂલપ્રકૃતિ અને (૨) ઉત્તરપ્રકૃતિ કર્મનો મૂલ સ્વભાવ તે મૂલપ્રકૃતિ કહેવાય છે તે મૂલ પ્રકૃતિના આઠ ભેદ છે- (૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય, (૩) વેદનીય, (૪) મોહનીય, (૫) આયુ, (૬) નામ, (૭) ગોત્ર અને (૮) અતરાય કહ્યું છે કે -

"આઠ કર્મપ્રકૃતિઓ છે, તે આ પ્રમાણે-જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય, મોહનીય, આયુષ્ય, નામ, ગોત્ર, અતરાય" (પ્રજ્ઞા પદ ૨૧ ઉ. ૧ સૂ. ૨૮૮)

ज्ञानावरणीयं कर्म, जीवस्य ज्ञानगुणमावृणोति१। दर्शनावरणीयं कर्म दर्शनगुणम्२। वेदनीयकर्म जीवस्याव्याबाधगुणं संरुणद्धि३। मोहनीयकर्म जीवस्याविरतिं तत्त्वानभिरुचिं च जनयति४। आयुष्यकर्म जीवस्यामरत्वं प्रतिहन्ति५। नामकर्म जीवस्याऽमूर्तत्वं प्रतिबध्नाति६। गोत्रकर्म तस्यागुरुलघुगुणं व्याहन्ति७। अन्तरायकर्म जीवस्यानन्तवीर्यगुणं रुणद्धि८।

यथा-गवादिभक्षिततृणादयो दुग्धरूपेण परिणता भवन्ति, माधुर्यस्वभावः सहैव जायते, स येतावत्कालपर्यन्तस्थायीति स्थितिसमयमर्यादाऽपि जायते माधुर्ये तीव्रमन्दभावादिविशेषोऽपि भवति, तस्य दुग्धस्य पौद्गलिक-

---

(१) ज्ञानावरणीय कर्म जीव के ज्ञानगुणको रोकता है, (२) दर्शनावरणीयकर्म दर्शनगुणको। (३) वेदनीयकर्म जीव के अव्याबाधगुण को रोकता है और (४) मोहनीय-कर्म जीव में अविरति और तत्त्व के प्रति अरुचि उत्पन्न करता है। (५) आयुकर्म जीव की अमरता को रोकता है और (६) नामकर्म जीव के अमूर्तत्व गुण को रोकता है। (७) गोत्रकर्म अगुरु-लघुत्व गुण को नष्ट करता है और (८) अन्तरायकर्म जीव के अनन्त वीर्य का घात करता है।

जैसे गायद्वारा खाये हुए तृण आदि दूध रूप में परिणत होते हैं, और उस में मधुरता का स्वभाव भी साथ ही उत्पन्न हो जाता है। उस में अमुक कालपर्यन्त ठहरने की स्थिति-मर्यादा भी उत्पन्न हो जाती है, और मधुरता में तीव्रता या मन्दता की विशेषता भी आजाती है। उस दूध का पौद्गलिक परिणाम भी साथ ही उत्पन्न होता है।

---

(૧) જ્ઞાનાવરણીય કર્મ જીવના જ્ઞાન-ગુણને રોકે છે (૨) દર્શનાવરણીય કર્મ દર્શનગુણને રોકે છે (૩) વેદનીય કર્મ જીવના અવ્યાબાધ ગુણને, રોકી રહે છે (૪) મોહનીય કર્મ જીવમાં અવિરતિ અને તત્ત્વપ્રતિ અરૂચી ઉત્પન્ન કરાવે છે. (૫) આયુ કર્મ જીવની અમરતાને રોકે છે (૬) નામ-કર્મ જીવના અમૂર્તત્વ ગુણને રોકે છે (૭) ગોત્ર-કર્મ અગુરૂલઘુત્વ ગુણનો નાશ કરે છે અને (૮) અંતરાય કર્મ જીવના અનંતવીર્યનો ઘાત કરે છે.

જેવી રીતે ગાયે ખાધેલું ઘાસ આદિ દૂધ રૂપમાં પરિણત થાય છે અને તેમાં મધુરતાનો સ્વભાવ પણ સાથે જ ઉત્પન્ન થાય છે તેમાં અમુકકાળપર્યન્ત સ્થિર રહેવાની સ્થિતિ-મર્યાદા પણ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે અને મધુરતામાં તીવ્રતા અથવા મંદતાની વિશેષતા પણ આવી જાય છે તે દૂધનું પૌદ્ગલિક પરિણામ પણ સાથે જ

परिणामश्चापि सहैव प्रादुर्भवति तथा जीवेन परिगृहीतानां कर्मवर्गणायोग्य-पुद्गलानां कर्मरूपेण परिणमने चतुर्विधा अंशा सहैव भवन्ति। त एवांशाः बन्धभेदाः प्रकृत्यादयः सन्ति।

कणिकागुडघृतकटुकादिद्रव्याणामौषधमोदकरूपेण परिणमने सहैवा-नेकाकारपरिणामो भवति। यथा मोदको हि कश्चिद् वातपित्तहरणशीलः, कश्चिद् बुद्धिवर्धनः, कश्चित् संमोहकारी, कश्चिन्मारकः, इत्यनेकाकारेण परिणमते जीवसंयोगात्, तथा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानामात्मसम्बन्धात्कर्मरूपेण परिणामे कश्चित्कर्मपुद्गलः ज्ञानमावृणोति, कश्चिद्दर्शनमावृणोति; अपरः सुखदुःखानुभवं जनयतीत्यादि योजनीयम्।

इस प्रकार जीव द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मवर्गणा के योग्यपुद्गलोंका कर्मरूप परिणमन होने पर चार प्रकार के अश उन में साथ ही उत्पन्न होते है। वही अश बन्ध के प्रकृति आदि भेद कहलाते हैं।

आटा, गुड, घी और कटुक आदि द्रव्यों से बने हुए लडडू में एक साथ अनेक प्रकार के परिणमन होते हैं। कोई लाड्डू वात–पित्त का नाशक होता है, कोई वुद्धिवर्धक होता है, कोई सम्मोहजनक होता है, और कोई घातक होता है, इस प्रकार जीव के सयोग से लड्डू अनेक आकारों में परिणत होता है। इसी प्रकार कर्मवर्गणा-योग्य पुद्गलों का आत्मा के निमित्त से कर्मरूप परिणमन होने पर कोई कर्म, ज्ञान को आच्छादित करता है, कोई दर्शनको कोई कर्म, सुख–दु ख का अनुभव कराता है। इत्यादि सव घटा लेना चाहिए।

ઉત્પન્ન થાય છે એ પ્રમાણે જીવદ્વારા ગ્રહણ કરેલા કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલોનુ કર્મરૂપ પરિણમન થવાની સાથે ચાર પ્રકારના અ શ તેમા સાથે જ ઉત્પન્ન થાય છે તે અ શ, બ ધના પ્રકૃતિ આદિ ભેદ કહેવાય છે

લોટ, ગોળ, ઘી અને કટુક આદિ દ્રવ્યો નાંખીને બનાવેલા લાડુમા એક સાથે અનેક પ્રકારનુ પરિણમન થાય છે, કોઈ લાડુ વાત–પિત્તનો નાશ કરનાર હોય છે કોઈ બુદ્ધિપૂર્વધ હોય છે કોઈ સ મોહ ઉત્પન્ન કરનાર હોય છે અને કોઈ ઘાતક હોય છે એ પ્રમાણે જીવના સયોગથી લાડુ અનેક આકારોમા પરિણત થાય છે તે પ્રમાણે કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલોનુ આત્માના નિમિત્તથી કર્મરૂપ પરિણમન થાય ત્યારે કોઈ કર્મ જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરે છે કોઈ દર્શનને, કોઈ કર્મ સુખ–દુ ખનો અનુભવ કરાવે છે એ પ્રમાણે સર્વ બાબતમા ઘટાવી લેવુ જોઈએ.

यथा वा—वातहारिद्रव्यनिर्मितो मोदकः प्रकृत्या वातं हरति, पित्तोपशम-कद्रव्यनिर्मितो मोदकः प्रकृत्या पित्तं नाशयति, कफापहारकद्रव्यनिर्मितः कफं हरति। इत्येवं मोदकस्य नानाविधा प्रकृतिः। तस्यैव मोदकस्य स्थितिस्तु कस्यचिदेकदिनव्यापिनी, अपरस्य दिनद्वयस्थायिनी, अन्यस्य कस्यचिन्मासादि कालं व्याप्य स्थितिर्भवति, तत परं तत्तन्मोदकस्य विनाशात्। एवं मोदकस्यानुभावो मधुरकटुकषायादिरूपः। रसस्तीव्रमन्दभावेन कस्यचिन्मोदकस्यैकगुणः, कस्यचिद् द्विगुणः, कस्यचित् त्रिगुणो भवति। प्रदेशोऽपि मोदकस्य कस्यचिदेक-कर्षमितः, कस्यचिद् द्विकर्षपरिमितः, कस्यचित्त्रिकर्षपरिमितो भवति।

अथवा जैसे—वातहारक द्रव्यों से बना मोदक स्वभाव से वात का नाश करता है, पित्तका नाश करने वाले द्रव्यों से बना मोदक पित्तका नाश करता है, कफहारी द्रव्यों से बना मोदक कफको दूर करता है, इस प्रकार मोदक की प्रकृति नाना प्रकार की है। कोई मोदक एकदिन तक ही ठहर सकता है, कोई दो दिन तक और कोई महीने भरतक ठहर सकता है, उसके पश्चात् मोदक में वह शक्ति नहीं रहती है। इसी प्रकार किसी मोदक का मधुर या कटुक रस तीव्र होता है किसी का मन्द होता है, किसी मोदक में एकगुण रस होता है, किसी में द्विगुण और किसी में तीन गुणा किसी मोदक का प्रदेशसमूह एक कर्ष परिमित होता है, किसीका दो कर्ष परिमित होता है, और किसीका तीन कर्ष परिमित होता है।

અથવા—જેમ વાયુનાશક દ્રવ્યોથી બનેલા લાડુ સ્વભાવથી વાયુનો નાશ કરે છે પિત્તને શાન્ત કરવા વાળા દ્રવ્યોથી બનેલા લાડુ પિત્તનો નાશ કરે છે. કફ નાશ કરનાર દ્રવ્યોથી બનેલા લાડુ કફને દૂર કરે છે એ પ્રમાણે લાડુની પ્રકૃતિ જુદા-જુદા પ્રકારની છે. કોઈ લાડુ એક દિવસ સુધી રહી શકે છે કોઈ બે દિવસ અને કોઈ મહિના સુધી રહી શકે છે. તે પછી લાડુમાં તે પ્રથમના જેવી શક્તિ રહેતી નથી. એ પ્રમાણે કોઈ લાડુનો મધુર અથવા કટુક રસ તીવ્ર હોય છે કોઈનો મંદ હોય છે કોઈ લાડુમાં એક ગુણ રસ હોય છે, કોઈમાં દ્વિગુણ અને કોઈમાં ત્રણ ગુણ રસ હોય છે કોઈ લાડુના પ્રદેશસમૂહ એક કર્ષ (બે તોલા) પરિમિત હોય છે કોઈના બે કર્ષ (ચાર તોલા) પરિમિત હોય છે, અને કોઈના ત્રણ કર્ષ (છ તોલા) પરિમિત હોય છે

एवं कर्मणोऽपि कस्यचिद् ज्ञानावरणस्वभावा प्रकृतिः, अपरस्य दर्शनावरणरूपा, कस्यचित् सम्यग्दर्शनादिविघातस्वभावा ।

कर्मणः स्थितिश्च कस्यचित् त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीरूपा, अपरस्य कस्यचित् कर्मणः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीरूपेत्यादि । रसस्तु कस्यचित् कर्मणस्तीव्रः, कस्यचित्तीव्रतरः, कस्यचित्तीव्रतमः, कस्यचिन्मन्दः, कस्यचिन्मन्दतर इत्यादि बोध्यम् ।

(१) प्रकृतिबन्धः-

॥ अष्टविध-मूलप्रकृतिबन्ध-लक्षणम्-

(१) ज्ञानस्य (विशेषबोधस्य) आवरकं कर्म ज्ञानावरणीयम् ।

इसी प्रकार किसी कर्म की ज्ञानको आच्छादित करने की प्रकृति है, किसीका दर्शन को ढँकने की है, किसी की सुख–दु ख का अनुभव कराने की प्रकृति है, और किसी की सम्यग्दर्शन का घात करने की है । किसी कर्म की तीस कोडाकोडी सागरोपमकी स्थिति है, किसी की सत्तर (७०) कोडाकोडी सागरोपम की है ।

इसी प्रकार किसी कर्म का रस तीव्र है, किसी का तीव्रतर है, किसी का तीव्रतम है । किसी का रस मन्द है, किसी का मन्दतर है । इत्यादि समझ लेना चाहिए ।

(१) प्रकृतिबन्ध

(१) ज्ञान अर्थात् विशेष धर्मों के बोधको आच्छादित करने वाला कर्म ज्ञानावरण कहलाता है ।

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મની જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરવાવી પ્રકૃતિ છે, કોઈની દર્શનને ઢાંકી દેવાની છે, કોઈની સુખ–દુ ખનો અનુભવ કરાવવાની પ્રકૃતિ છે, અને કોઈની સમ્યગ્દર્શનનો ઘાત કરવાની પ્રકૃતિ છે.

કોઈ કર્મની ત્રીશ કોડાકોડી સાગરોપમની સ્થિતિ છે કોઈની સીતેર (૭૦) કોડાકોડી સાગરોપમની છે.

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મનો રસ તીવ્ર છે કોઈનો તીવ્રતર છે, અને કોઈનો તીવ્રતમ છે. કોઈનો રસ મ દ છે, કોઈનો મદ તર છે ઇત્યાદિ સમજી લેવુ જોઈએ

(૧) પ્રકૃતિબ ધ

(૧) જ્ઞાન અર્થાત્ વિશેષ ધર્મોના બોધને જે આચ્છાદિત કરવાવાળુ કર્મ તે જ્ઞાનાવરણીય કહેવાય છે

(२) दर्शनस्य (सामान्यबोधस्य) आवरकं कर्म दर्शनावरणीयम् ।
(३) सुखदुःखानुभवजनकं कर्म वेदनीयम् ।
(४) मदिरावन्मोहजनकं कर्म मोहनीयम् ।
(५) भवधारककारणं कर्म आयुष्कम् ।
(६) विशिष्टगतिजात्यादिप्राप्तिकारणं कर्म नाम ।
(७) उत्कर्षापकर्षप्राप्तिकारणं कर्म गोत्रम् ।
(८) दानलाभादिविघातकं कर्म अन्तराय ।

मूलरूपं कर्मणः स्वभावोऽष्टविध इति मूलप्रकृतिरष्टविधा संक्षेपतः कथिता । अष्टानां मूलप्रकृतीनां प्रत्येकमवान्तरभेद एवोत्तरप्रकृतिः । सा च

---

(२) दर्शन अर्थात् सामान्य बोधको आच्छादित करने वाला कर्म दर्शनावरण है ।

(३) सुख-दुःखका वेदन कराने वाला कर्म वेदनीय कहलाता है ।

(४) मदिरा के समान मोह उत्पन्न करने वाला कर्म मोहनीय कहलाता है ।

(५) भवधारण का कारण कर्म आयुष्क कहलाता है ।

(६) विशेष प्रकार की गति, जाति आदि की प्राप्ति का कारण नामकर्म है ।

(७) उत्कर्ष और अपकर्ष की प्राप्ति का कारण गोत्रकर्म कहलाता है ।

(८) दान लाभ आदि में विघ्न डालने वाला अन्तराय कर्म कहलाता है ।

कर्म का मूल स्वभाव आठ प्रकार का ही है, अत आठ प्रकृतियों का संक्षिप्त कथन किया गया है इन आठ प्रकृतियों के अवान्तर भेदों को उत्तर-प्रकृति कहते है ।

---

(२) દર્શન અર્થાત્ સામાન્ય બોધને જે આચ્છાદિત કરવાવાળું કર્મ તે દર્શનાવરણ છે
(૩) સુખ-દુઃખનું વેદન કરાવવાવાળું કર્મ તે વેદનીયકર્મ કહેવાય છે
(૪) મદિરાના સમાન મોહ ઉત્પન્ન કરાવવાવાળું કર્મ તે મોહનીય કહેવાય છે
(૫) ભવ-ધારણ કરવાનું જે કારણ કર્મ તે આયુષ્ય કહેવાય છે
(૬) વિશેષ પ્રકારની ગતિ-જાતિ આદિની પ્રાપ્તિનું કારણ તે નામકર્મ કહેવાય છે
(૭) ઉત્કર્ષ અને અપકર્ષની પ્રાપ્તિનું કારણ તે ગોત્રકર્મ કહેવાય છે.
(૮) દાન-લાભ આદિમાં વિઘ્ન નાખવાવાળું તે અન્તરાય કર્મ કહેવાય છે

કર્મનો મૂળ સ્વભાવ આઠ પ્રકારનો છે તેથી આઠ પ્રકૃતિઓનું સંક્ષિપ્તમાં કથન કર્યું છે એ આઠ પ્રકૃતિઓના અવાન્તર ભેદોને ઉત્તરપ્રકૃતિ કહે છે છત્રાનું પુરૂષોને

विस्तरतो जिज्ञासूनां बोधाय शास्त्रे निर्दिष्टा। ज्ञानावरणीयादिमूलप्रकृतीनामष्टानामवान्तरभेदा यथाक्रमम्-(१) पञ्च, (२) नव, (३) द्वौ, (४) अष्टाविंशतिः, (५) चत्वारः, (६) द्विचत्वारिंशत्, (७) द्वौ, (८) पञ्च सन्ति। एतत्सर्वमागमतोऽववगन्तव्यम्।

(२) स्थितिबन्धः-

आत्मसंलग्नानां कर्मपुद्गलानां यया जघन्यमध्यमोत्कृष्टकालमर्यादयाऽऽत्मप्रदेशेष्ववस्थानं सा कालमर्यादा स्थितिबन्धः। किञ्च-अध्यसायविशेषगृहीतस्य कर्मदलिकस्य स्थितिकालनियमनं स्थितिबन्धः।

वेदनीयकर्मणो जघन्यस्थितिर्द्वादशमुहूर्तप्रमाणा। नाम-गोत्रकर्मणो-

---

विस्तार से जिज्ञासु पुरुषों की जानकारी के लिए शास्त्र में वर्णन किया गया है। ज्ञानावरणीय आदि मूल प्रकृतियों के अवान्तर भेदों की सख्या क्रम से पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो और पांच है। इन सबको आगम से समझ लेना चाहिए।

(२) स्थितिबन्ध

आत्मा के साथ लगे हुए कर्मपुद्गल जिस जघन्य मध्यम या उत्कृष्ट कालमर्यादा से आत्मप्रदेशों में स्थिर है, उस कालमर्यादाको स्थितिबन्ध कहते है। अथवा यों कहिए कि-अध्यवसायविशेष द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मदलियों के आत्मा में ठहरने के कालसम्बन्धी नियमन को स्थितिबन्ध कहते हैं।

वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की, तथा नाम और गोत्रकर्म की

જાણવા માટે શાસ્ત્રમા વિસ્તારથી વર્ણનકરવામા આવ્યુ છે જ્ઞાનાવરણીય આદિ મૂલ પ્રકૃતિના અવાન્તર ભેદોની સખ્યા ક્રમથી-પાચ, નૌ, બે, અઠાવીસ, ચાર, બેતાલીસ, બે, અને પાચ છે, આ સર્વને આગમથી સમજી લેવુ જોઈએ

(૨) સ્થિતિબ ધ

આત્માની સાથે લાગેલા કર્મપુદ્ગલ જે જઘન્ય, મધ્યમ, અને ઉત્કૃષ્ટ કાલ મર્યાદાથી આત્મપ્રદેશોમા સ્થિતિ છે, તે કાલમર્યાદાને સ્થિતિબ ધ કહે છે અથવા એમ કહીએ કે-અધ્યવસાયવિશેષદ્વારા ગ્રહણ કરેલા કર્મદલિકોને આત્મામા ટકી શકવાના કાલસબ ધી નિયમનને સ્થિતિબ ધ કહે છે

વેદનીય કર્મની જઘન્ય સ્થિતિ બાર મુહુર્તની, તથા નામ અને ગોત્ર કર્મની

जघन्य स्थितिरष्टमुहूर्तप्रमाणा। ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय मोहनीया-ऽऽयुष्या-ऽन्तरायकर्मणां जघन्यस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा।

ज्ञानावरणीय - दर्शनावरणीय - वेदनीया-ऽन्तरायकर्मणामुत्कृष्टस्थिति स्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः, मोहनीयकर्मणः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटयः स्थितिरुत्कृष्टा। नाम-गोत्र-कर्मणोर्विंशतिसागरोपमकोटीकोटयः स्थितिरुत्कृष्टा। आयुष्यकर्मणस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा स्थितिरुत्कृष्टा। मध्यमा स्थितिस्त्व सङ्ख्यातप्रकारा, कषायपरिणामतारतम्येन तस्या असंख्यातभेदात्।

आठ मुहूर्त की है, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु और अन्तराय कर्म की जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त की है।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, और अन्तराय कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडा-कोडी सागरोपम की मोहनीय कर्म की सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम की, नाम और गोत्र कर्म की बीस कोडा-कोडी सागरोपम की है। आयुष्य कर्म की तेतीस सागरोपम की है। मध्यम स्थिति असंख्यात प्रकार की है, कषायरूप परिणामों की हीनता और अधिकता के कारण उसके असंख्य प्रकार होते है।

स्थितिबन्धका कोष्टक टीका के अनुसार पृष्ठ ३२६ से समझ लेना चाहिए।

આઠ મુહુર્તની છે. જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, મોહનીય, આયુ અને અન્તરાય કર્મની જઘન્ય સ્થિતિ અન્તમુહૂર્તની છે

જ્ઞાનાવરણીય દર્શનાવરણીય, વેદનીય, અને અન્તરાય કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ ત્રીસ કોડા-કોડી સાગરોપમની મોહનીય કર્મની સીતેર (૭૦) કોડા-કોડી સાગરોપમની નામ અને ગોત્ર કર્મની વીશ કોડા-કોડી સાગરોપમની, આયુષ્ય કર્મની તેત્રીસ સાગરોપમની છે મધ્યમ સ્થિતિ અસંખ્યાત પ્રકારની છે. કષાયરૂપ પરિણામોની હીનતા અને અધિકતાના કારણે તેના અસંખ્ય પ્રકાર થાય છે

સ્થિતિબંધનું કોષ્ટક ટીકાના અનુસાર પૃષ્ઠ ૩૩૬થી સમજી લેવું જોઈએ.

स्थितिबन्ध–कोष्टकम् ।

कर्मणां नाम	उत्कृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उत्कृष्टः अबाधा-कालः	जघन्यः अबाधा-कालः	उत्कृष्टः बाधाकालः (कर्मनिषेकः)	जघन्यः बाधाकालः (कर्मनिषेकः)
(१) ज्ञानावरणीय-कर्मणः	३० त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः	अन्तर्मुहूर्त्तः	३००० त्रिसहस्रवर्षाणि	अन्तर्मुहूर्त्तः	३००० त्रिसहस्रवर्षोनत्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः	अन्तर्मुहूर्त्तन्यूनोऽन्तर्मुहूर्त्तः
(२) दर्शनावरणीय-कर्मणः	”	”	”	”	”	”
(३) वेदनीय-कर्मणः	”	द्वादश १२ मुहूर्त्ताः	”	”	”	अन्तर्मुहूर्त्तन्यूना एकादश ११ मुहूर्त्ताः
(४) अन्तराय-कर्मणः	”	अन्तर्मुहूर्त्तः	”	”	”	अन्तर्मुहूर्त्तन्यूनोऽन्तर्मुहूर्त्तः
(५) मोहनीय-कर्मणः	७० सप्ततिसागरोपमकोटीकोटयः	”	७००० सप्तसहस्रवर्षाणि	”	सप्तसहस्रवर्षोनसप्ततिसागरोपमकोटीकोटयः।	”

कर्मणां नाम	उत्कृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उत्कृष्टः अबाधा कालः	जघन्यः अबाधा कालः	उत्कृष्टः बाधाकालः (कर्मनिषेकः)	जघन्यः बाधाकालः (कर्मनिषेकः)
(६) नाम कर्मणः	२० विंशति सागरोपम-कोटीकोट्यः	अष्टौ मुहूर्ताः	२००० द्विसहस्र-वर्षाणि	"	२००० द्विसहस्रवर्षोन-विंशतिसाग रोपमकोटी-कोट्यः	अन्तर्मुहूर्त-न्यूनाः सप्त मुहूर्ताः
(७) गोत्र-कर्मणः	"	"	"	"	"	"
(८) आयुष्य कर्मणः	पूर्वकोटि त्रि भागाधिका नि ३३ त्रय स्त्रिंशत्साग-रोपमाणि ।	अन्त र्मुहूर्तः	पूर्वकोटि त्रिभागः	"	पूर्वकोटि त्रिभागोन-त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि	अन्तर्मुहूर्त न्यूनोऽन्त र्मुहूर्तः

पूर्वकोटित्रिभाग-२३ लक्षाणि, १३ सहस्राणि, ३ शतानि, ३३ पूर्वाणि, २३ लक्षाणि, ५२ सहस्रकोटिवर्षाणि । अन्तर्मुहूर्तस्यासंख्यभेदाः सन्ति, तेनान्त र्मुहूर्तरूपाया जघन्यस्थितेरन्तर्मुहूर्त एवाबाधाकालः, तथाऽन्तर्मुहूर्तन्यूनोऽन्तर्मु हूर्तश्च बाधाकाल इति विज्ञेयम् ।

वरणीयाद्यष्टविधमूलप्रकृतिष्वेव प्रवर्तते, नतूत्तरप्रकृतिषु। कस्यापि मूलप्रकृतिरूपकर्मबन्धस्य काचिदुत्तरप्रकृतिस्तदीयेतरोत्तरप्रकृतिरूपेण विपरिणता भवति, कर्मपुद्गलस्य तादृशपरिणमनसामर्थ्यात्। तत्र प्राक्तनोत्तरप्रकृतिगतानुभावः परिवर्तितोत्तरप्रकृतिस्वभावानुरूपं तीव्रं मन्दं वा फलं प्रदत्ते।

यथा–मतिज्ञानावरणीयं यदा श्रुतज्ञानावरणीयादिसजातीयोत्तरप्रकृतिरूपं प्राप्नोति तदा मतिज्ञानावरणीयानुभावोऽपि श्रुतज्ञानावरणीयादिस्वभावानुरूपमेव श्रुतज्ञानादीनामावरणं विधत्ते।

उत्तरप्रकृतिषु कतिचित् सजातीया अपि प्रकृतयो नान्यरूपेण परिणता भवन्ति। यथा-दर्शनमोहश्चारित्रमोहरूपेण न परिणमति; तथा चारित्रमोहोऽपि न

यह नियम नहीं है। किसी भी मूलप्रकृति की कोई उत्तरप्रकृति उसी मूलप्रकृति की किसी दूसरी उत्तरप्रकृति के रूप में भी परिणत हो सकती है, क्यों कि कर्मपुद्गल में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति विद्यमान है। वहाँ पहले वाली उत्तरप्रकृति में रहा हुआ अनुभाव बदली हुई उत्तरप्रकृति के स्वभाव के अनुसार तीव्र या मन्द फल देता है।

जैसे–मतिज्ञानावरणीय जब श्रुतज्ञानावरणीयसजातीय उत्तरप्रकृति के रूप में पलटता है तब मतिज्ञानावरणीय का अनुभाव भी श्रुतज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार श्रुतज्ञान का आवरण करता है।

उत्तरप्रकृतियों में कुछ ऐसी भी प्रकृतियाँ है जो सजातीय होते हुए भी अन्यरूप में पलटती नहीं है, जैसे–दर्शनमोहनीय, कभी चारित्रमोहनीय के रूप में नहीं

આ નિયમ નથી કોઈ પણ મૂલપ્રકૃતિની કોઈ ઉત્તરપ્રકૃતિ તે મૂલપ્રકૃતિની કોઈ બીજી ઉત્તર પ્રકૃતિના રૂપમા પણ પરિણત થઈ શકે છે, કારણકે કર્મપુદ્ગલમા એ પ્રમાણે પરિણમનની શક્તિ વિદ્યમાન છે ત્યા પ્રથમ વાળી ઉત્તરપ્રકૃતિમા રહેલો અનુભાવ બદલી ગયેલી ઉત્તર પ્રકૃતિના સ્વભાવ અનુસાર તીવ્ર અથવા મદ ફલ આપે છે.

જેમ—મતિજ્ઞાનાવરણીય જ્યારે શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય–સજાતીય ઉત્તર પ્રકૃતિના રૂપમા પલટાય છે, ત્યારે મતિજ્ઞાનાવરણીયનો અનુભાવ પણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણીયના સ્વભાવ પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાનનુ આવરણ કરે છે

ઉત્તરપ્રકૃતિઓમા કેટલીક એવી પણ પ્રકૃતિઓ છે કે જે સજાતીય હોવા છતાય પણ અન્યરૂપમા પલટતી નથી. જેવી રીતે–દર્શનમોહનીય કોઈ વખત ચારિત્રમોહનીયના

दर्शनमोहरूपेण, एवं यथा नारकायुष्य तिर्यगायुष्यरूपेण न परिणमति तथा तदा युष्यमपि न पुनरन्यायुष्यरूपेण।

एतत्सर्वं प्रकृतिबन्धविषये परिवर्तनं यथा भवति तथाऽध्यवसाय-सामर्थ्यात् स्थितिरसयोरपि परिवर्तनं भवति। तीव्रादिर्मन्दादिभावेन परिण मति, मन्दादिरपि तीव्रादिभावेन परिणमति। एवमुत्कृष्टा स्थितिर्जघन्यरूपेण परिणमति, जघन्या चोत्कृष्टरूपेण।

अनुभावानुसारं तीव्रं मन्दं वा यस्य कर्मणः फलमनुभूतं भवति चेत् तदा तत्कर्मप्रदेशा आत्मप्रदेशेभ्योऽपगता भवन्ति, न पुनरते कर्मपुद्गलाः संलग्ना भवन्ति।

बदलता, और चारित्रमोहनीय दर्शनमोहनीय के रूप में नहीं पलटता। उसी प्रकार नरकायु कभी तिर्यंचायु के रूप में नहीं पलटती और तिर्यंचायु किसी अन्य आयुके रूप में नहीं बदलती।

यह सब परिवर्तन जैसे प्रकृतिबन्ध के विषय में होता है उसी प्रकार अध्यवसाय की शक्ति से स्थिति और रस में भी होता है। कभी तीव्र रस मंद रस के रूप में बदल जाता है, और कभी मन्द रस, तीव्र रस के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति जघन्यरूप में और जघन्य स्थिति उत्कृष्टरूप में बदल जाती है।

अनुभाव के अनुसार जिस कर्म का तीव्र या मन्द फल भोग लिया जाता है, उस कर्म के प्रदेश आत्मप्रदेशों से हट जाते हैं—फिर वे आत्मा के साथ नहीं लगे रहते हैं।

રૂપમાં બદલાતી નથી અને ચારિત્રમોહનીય દર્શનમોહનીયના રૂપમાં બદલાતી નથી. એ પ્રમાણે નરકાયુ કોઈ વખત પણ તિર્યંચ આયુના રૂપમાં પલટાતું નથી, અને તીર્યંચાયુ બીજા કોઈ આયુના રૂપમાં પલટાતું નથી.

આ તમામ પરિવર્તન જેવી રીતે પ્રકૃતિબંધના વિષયમાં થાય છે તે પ્રમાણે અધ્યવસાયની શક્તિથી સ્થિતિ અને રસમાં પણ થાય છે—ક્યારેક તીવ્રરસ મંદરસના રૂપમાં બદલાઈ જાય છે, અને ક્યારેક મંદરસ, તીવ્રરસના રૂપમાં પરિવર્તિત થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ જઘન્ય રૂપમાં અને જઘન્ય સ્થિતિ ઉત્કૃષ્ટ રૂપમાં બદલાઈ જાય છે.

અનુભાવપ્રમાણે કોઈ કર્મનું તીવ્ર અથવા મંદ ફલ ભોગવી લેવાય તો તે કર્મના પ્રદેશ આત્મપ્રદેશોથી હટી જાય છે—પછી તે આત્માની સાથે લાગેલા રહેતા નથી.

(३) अनुभावबन्धः ।

कर्मपुद्गलानामेव शुभोऽशुभो वा घात्यघाती वा यो रसो विपाकः सोऽनुभावबन्धः । कर्मणां विशिष्टो विविधो वा पाको विपाकः । कर्मबन्धस्य फलं विपाकस्तस्योदयोऽनुभाव इति बोध्यम् । किञ्च-कर्मणा विविधफलदानशक्ति-र्विपाकः सोऽनुभावः ।

बन्धकारणस्य कषायपरिणामस्य तीव्रमन्दभावानुसारेण प्रत्येककर्मणि तीव्रमन्दफलदानशक्तिः प्रादुर्भवति । इदं च फलोत्पादनसामर्थ्यम्-अनुभवः, तत्तत्फलानुभवनं चेति ।

(३) अनुभावबन्ध—

कर्मपुद्गलों का शुभ या अशुभ अथवा घाती या अघाती रूप जो रस है वही अनुभाव कहलता है । गृहीत कर्मपुद्गलों में यह रस उत्पन्न हो जाना अनुभाव या अनुभाग बन्ध है । कर्मों का विशिष्ट या विविध प्रकार का पाक विपाक कहलाता है । तात्पर्य यह है कि—कर्म का फल विपाक है, और उसका उदय अनुभाव कहा जाता है । अथवा कर्मों की भाँति-भाँतिकी फल देने की शक्ति को विपाक कहते हैं, और वही अनुभाव है, और तत्तत्फल का अनुभव भी अनुभाव है ।

बन्ध के कारण कषायरूप परिणाम की तीव्रता और मन्दता के अनुसार प्रत्येक कर्म मे तीव्र या मन्द फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, इस फल को उत्पन्न करने का सामर्थ्य अनुभाव है ।

(3) અનુભાવબંધ—

કર્મપુદ્ગલોનો શુભ અથવા અશુભ, અથવા-ઘાતી કે અઘાતીરૂપ જે રસ છે તે અનુભાવ કહેવાય છે ગૃહીત કર્મપુદ્ગલોમાં એ રસનુ ઉત્પન્ન થવુ તે અનુભાવ, અથવા અનુભાગ બંધ છે કર્મોનો વિશિષ્ટ અથવા વિવિધ પ્રકારનો પાક તે વિપાક કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે -કર્મનુ ફલ તે વિપાક છે, અને તેનો ઉદય તે અનુભાવ કહેવાય છે અથવા કર્મોની તરેહ-તરેહની ફળ દેવાની શક્તિ :તેને વિપાક કહે છે અને તેજ અનુભાવ છે અને તે તે ફળનો અનુભવ પણ અનુભાવ છે *

બંધના કારણ કષાયરૂપ પરિણામની તીવ્રતા અને મન્દતાના પ્રમાણે પ્રત્યેક કર્મોમા તીવ્ર અથવા મંદ ફલ દેવાની શક્તિ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, તે ફળને ઉત્પન્ન કરવાનુ સામર્થ્ય તે અનુભાવ છે

* "अणुभागे, अणुभावे, विवागे, रसे-त्ति एगट्ठा" अनुभागोऽनुभावो, विपाको रस, इत्येकार्थका । અનુભાગ, અનુભાવ, વિપાક અને રસ એ બધા એકાર્થક છે.

कर्मणः फलप्रदानशक्तिरूपोऽयमनुभावो यत्कर्मनिष्ठस्तत्कर्मस्वभावानुसारं फलं प्रयच्छति, न त्वन्यकर्मस्वभावानुसारम्। यथा-ज्ञानावरणीयकर्मणोऽनुभावस्तत्कर्मस्वभावानुरूपं ज्ञानावरणमेव तीव्रं मन्दं वा फलं समुत्पादयति, न तु दर्शनावरणीय-वेदनीयादि-कर्मप्रकृत्यनुसारं दर्शनावरणं सुखदुःखानुभवादिरूपं फलम्। एवं दर्शनावरणीयकर्मणोऽनुभावस्तीव्रमन्दादिरूपेण दर्शनावरणमेव फलं ददाति, न तु ज्ञानावरणादिरूपमन्यकर्मप्रकृत्यनुसारम्।

अनुभावबन्धस्य चायं कर्मप्रकृत्यनुरूपेणैव फलदाननियमोऽपि ज्ञाना-

---

कर्म का फलदान-शक्तिरूप अनुभाव जिस कर्म में रहता है वह कर्म अपने स्वभाव के अनुसार ही फल देता है-दूसरे कर्म के स्वभाव के अनुसार नहीं। जैसे ज्ञानावरणीय कर्म का अनुभाव ज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार ही होता है अर्थात् वह तीव्र या मन्द रूप में ज्ञान का आच्छादन ही करता है। उस से दर्शनावरणीय या वेदनीय कर्म की प्रकृति के अनुसार दर्शन का आवरण अथवा सुख-दुःख का वेदन नहीं होता। इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म का अनुभाव तीव्र या मन्द रूप में दर्शन का आवरण करना ही है, ज्ञान का आवरण करना या अन्य कर्मप्रकृति के अनुसार फल देना नहीं।

अनुभावबन्ध का अपनी कर्मप्रकृति के अनुसार फल देने का यह नियम ज्ञानावरणीय आदि आठ मूलप्रकृतियों में ही लागू होता है; उत्तरप्रकृतियों के लिए

કર્મના ફલદાનશક્તિરૂપ અનુભાવ જે કર્મમાં રહે છે, તે કર્મ પોતાના સ્વભાવ પ્રમાણેજ ફલ આપે છે બીજા કર્મના સ્વભાવ પ્રમાણે નહિ. જેવી રીતે કે-જ્ઞાનાવરણીય કર્મના અનુભાવ જ્ઞાનાવરણીયના સ્વભાવના પ્રમાણેજ હોય છે અર્થાત્-તે તીવ્ર અથવા મંદરૂપમાં જ્ઞાનનુંજ આચ્છાદન કરે છે તેનાથી દર્શનાવરણીય અથવા વેદનીય કર્મની પ્રકૃતિ અનુસાર દર્શનનું આવરણ અથવા સુખ-દુઃખનું વેદન થતું નથી. એ પ્રમાણે દર્શનાવરણીય કર્મનો અનુભાવ તીવ્ર અથવા મંદરૂપમાં દર્શનનું આવરણ કરવું તેજ છે પરન્તુ જ્ઞાનનું આવરણ કરવું અથવા અન્ય કર્મપ્રકૃતિ અનુસાર ફળ આપવું તે નથી.

અનુભાવ કર્મનો પોતાની કર્મપ્રકૃતિના અનુસાર ફળ આપવાનો આ નિયમ જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ મૂલપ્રકૃતિઓમાંજ લાગુ થાય છે, પરન્તુ ઉત્તર પ્રકૃતિઓ માટે

वरणीयाद्यष्टविधमूलप्रकृतिष्वेव प्रवर्त्तते, नतूत्तरप्रकृतिषु। कस्यापि मूलप्रकृतिरूपकर्मबन्धस्य काचिदुत्तरप्रकृतिस्तदीयेतरोत्तरप्रकृतिरूपेण विपरिणता भवति, कर्मपुद्गलस्य तादृशपरिणमनसामर्थ्यात्। तत्र प्राक्तनोत्तरप्रकृतिगतानुभावः परिवर्तितोत्तरप्रकृतिस्वभावानुरूपं तीव्रं मन्दं वा फलं प्रदत्ते।

यथा-मतिज्ञानावरणीयं यदा श्रुतज्ञानावरणीयादिसजातीयोत्तरप्रकृतिरूपं प्राप्नोति तदा मतिज्ञानावरणीयानुभावोऽपि श्रुतज्ञानावरणीयादिस्वभावानुरूपमेव श्रुतज्ञानादीनामावरणं विधत्ते।

उत्तरप्रकृतिषु कतिचित् सजातीया अपि प्रकृतयो नान्यरूपेण परिणता भवन्ति। यथा-दर्शनमोहश्चारित्रमोहरूपेण न परिणमति; तथा चारित्रमोहोऽपि न

यह नियम नहीं है। किसी भी मूलप्रकृति की कोई उत्तरप्रकृति उसी मूलप्रकृति की किसी दूसरी उत्तरप्रकृति के रूप में भी परिणत हो सकती है, क्यों कि कर्मपुद्गल में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति विद्यमान है। वहाँ पहले वाली उत्तरप्रकृति में रहा हुआ अनुभाव बदली हुई उत्तरप्रकृति के स्वभाव के अनुसार तीव्र या मन्द फल देता है।

जैसे—मतिज्ञानावरणीय जब श्रुतज्ञानावरणीयसजातीय उत्तरप्रकृति के रूप में पलटता है तब मतिज्ञानावरणीय का अनुभाव भी श्रुतज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार श्रुतज्ञान का आवरण करता है।

उत्तरप्रकृतियों में कुछ ऐसी भी प्रकृतियाँ हैं जो सजातीय होते हुए भी अन्यरूप में पलटती नहीं हैं, जैसे—दर्शनमोहनीय, कभी चारित्रमोहनीय के रूप में नहीं

આ નિયમ નથી કોઈ પણ મૂલપ્રકૃતિની કોઈ ઉત્તરપ્રકૃતિ તે મૂલપ્રકૃતિની કોઈ બીજી ઉત્તર પ્રકૃતિના રૂપમા પણ પરિણત થઈ શકે છે, કારણકે કર્મપુદ્ગલમા એ પ્રમાણે પરિણમનની શક્તિ વિદ્યમાન છે ત્યા પ્રથમ વાળી ઉત્તરપ્રકૃતિમા રહેલો અનુભાવ બદલી ગયેલી ઉત્તર પ્રકૃતિના સ્વભાવ અનુસાર તીવ્ર અથવા મદ ફલ આપે છે

જેમ—મતિજ્ઞાનાવરણીય જ્યારે શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય-સજાતીય ઉત્તર પ્રકૃતિના રૂપમા પલટાય છે, ત્યારે મતિજ્ઞાનાવરણીયનો અનુભાવ પણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણીયના સ્વભાવ પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાનનુ આવરણ કરે છે

ઉત્તરપ્રકૃતિઓમા કેટલીક એવી પણ પ્રકૃતિઓ છે કે જે સજાતીય હોવા છતાય પણ અન્યરૂપમા પલટતી નથી. જેવી રીતે—દર્શનમોહનીય કોઈ વખત ચારિત્રમોહનીયના

दर्शनमोहरूपेण, एवं यथा नारकायुष्यं तिर्यगायुष्यरूपेण न परिणमति तथा तदा युष्यमपि न पुनरन्यायुष्यरूपेण।

एतत्सर्वं प्रकृतिबन्धविषये परिवर्तनं यथा भवति तथाऽध्यवसायसामर्थ्यात् स्थितिरसयोरपि परिवर्तनं भवति। तीव्रादिर्मन्दादिभावेन परिणमति, मन्दादिरपि तीव्रादिभावेन परिणमति। एवमुत्कृष्टा स्थितिर्जघन्यरूपेण परिणमति, जघन्या चोत्कृष्टरूपेण।

अनुभावानुसारं तीव्रं मन्दं वा यस्य कर्मणः फलमनुभूतं भवति चेत् तदा तत्कर्मप्रदेशा आत्मप्रदेशेभ्योऽपगता भवन्ति, न पुनस्ते कर्मपुद्गलाः संलग्ना भवन्ति।

बदलता और चारित्रमोहनीय दर्शनमोहनीय के रूप में नहीं पलटता। उसी प्रकार नरकायु कभी तिर्यचायु के रूप में नहीं पलटती और तिर्यंचायु किसी अन्य आयु के रूप में नहीं बदलती।

यह सब परिवर्तन जैसे प्रकृतिबन्ध के विषय में होता है उसी प्रकार अध्यवसाय की शक्ति से स्थिति और रस में भी होता है। कभी तीव्र रस, मंद रस के रूप में बदल जाता है, और कभी मन्द रस, तीव्र रस के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति जघन्यरूप में और जघन्य स्थिति उत्कृष्टरूप में बदल जाती है।

अनुभाव के अनुसार जिस कर्म का तीव्र या मन्द फल भोग लिया जाता है, उस कर्म के प्रदेश आत्मप्रदेशों से हट जाते हैं—फिर वे आत्मा के साथ नहीं लगे रहते हैं।

રૂપમાં બદલાતી નથી, અને ચારિત્રમોહનીય દર્શનમોહનીયના રૂપમાં બદલાતી નથી એ પ્રમાણે નરકાયુ કોઈ વખત પણ તિર્યંચ આયુના રૂપમાં પલટાતું નથી, અને તીર્યંચાયુ બીજા કોઈ આયુના રૂપમાં પલટાતું નથી.

આ તમામ પરિવર્તન જેવી રીતે પ્રકૃતિબંધના વિષયમાં થાય છે તે પ્રમાણે અધ્યવસાયની શક્તિથી સ્થિતિ અને રસમાં પણ થાય છે—ક્યારેક તીવ્રરસ મંદરસના રૂપમાં બદલાઈ જાય છે અને ક્યારેક મંદરસ, તીવ્રરસના રૂપમાં પરિવર્તિત થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ જઘન્ય રૂપમાં અને જઘન્ય સ્થિતિ ઉત્કૃષ્ટ રૂપમાં બદલાઈ જાય છે.

અનુભાવપ્રમાણે કોઈ કર્મનું તીવ્ર અથવા મંદ ફલ ભોગવી લેવાય તો તે કર્મના પ્રદેશ આત્મપ્રદેશોથી છૂટી જાય છે—પછી તે આત્માની સાથે લાગેલા રહેતા નથી.

इदमत्र तत्त्वम्-कर्मणां फल विविधं भवति। कर्मैव मूलप्रकृतिः। सर्वासां मूलप्रकृतीनां फलविविधत्व तथाऽन्यथा चेति प्रकारद्वयेन भवति।

येनाध्यवसायप्रकारेण यादृक्स्वभावं कर्म बद्धं, तत् तथा=तेनैव प्रकारेण अन्यथा च=प्रकारान्तरेणापि विपच्यते=तस्य विपाको भवति। स च तीव्र-मन्दाद्यवस्थाभेदेन शुभस्तथाऽशुभोऽपि। तत्र कदाचिच्छुभमप्यशुभरसतयाऽनुभूतये कर्म, अशुभं च शुभरसतयेति बोध्यम्।

सकषायजीवेन मनोवागादिद्वारेण क्रियाविशेषस्य कर्ता भिन्नभिन्नस्वभावानां कर्मपुद्गलाना स्वभावानुसार तत्तत्परिमाणविभागेन सम्बन्धः प्रदेशबन्धः।

तात्पर्य यह है कि कर्मों का फल विविध प्रकार का होता है। कर्म ही मूल प्रकृति है। समस्त मूलप्रकृतियों का फल उसी रूप मे या अन्यथा रूप मे दो प्रकार से होता है।

जिस प्रकार के अध्यवसाय से जिस स्वभाव वाला कर्म बँधा है वह उसी रूप में या अन्यथा रूप में फल देता है। वह फल तीव्र या मन्द अवस्था-भेद से शुभ भी होता है और अशुभ भी होता है। कभी शुभ भी अशुभ रस के रूप मे और कभी अशुभ शुभ रस के रूप में भोगा जाता है।

(४) प्रदेशबन्ध—

मन वचन आदि के द्वारा क्रियाविशेष करने वाले कषाययुक्त जीव के साथ भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले कर्मपुद्गलों का स्वभाव के अनुसार अमुक-अमुक परिमाण विभाग के साथ सम्बन्ध होना प्रदेशबन्ध है।

તાત્પર્ય એ છે કે – કર્મોના ફલ વિવિધ પ્રકારના હોય છે કર્મ જ મૂલપ્રકૃતિ છે તમામ મૂળપ્રકૃતિઓનુ ફલ તે રૂપમા અથવા બીજારૂપમા, એમ બે પ્રકારથી હોય છે

જે પ્રકારના અધ્યવસાયથી જે સ્વભાવવાળા કર્મ બાધ્યા છે તે એજ રૂપમા અથવા બીજા રૂપમા ફલ આપે છે તે ફલ તીવ્ર અથવા મદ અવસ્થા-ભેદથી શુભ પણ હોય છે, અને અશુભ પણ હોય છે, કોઈ વખત શુભ પણ અશુભ રસના રૂપમા અને કોઈ વખત અશુભ તે શુભ રસના રૂપમા ભોગવવામા આવે છે

(૪) પ્રદેશબધ—

મન, વચન આદિ દ્વારા ક્રિયા-વિશેષ કરવા વાળા કષાયયુક્ત જીવની સાથે ભિન્ન-ભિન્ન સ્વભાવ વાળા કર્મપુદ્ગલોના સ્વભાવ અનુસાર અમુક-અમુક પરિમાણુવિભાગની સાથે સમ્બન્ધ થવો તે પ્રદેશબધ છે

(१) ज्ञानावरणीयादिकर्मणां कारणीभूताः, (२) सर्वदिक्स्वस्थिताः, (३) तीव्रमन्दादिभेदात् मनोवाक्कायक्रियाविशेषसंयोगात् कर्मवर्गणायोग्याः पुद्गलाः सर्वात्मप्रदेशेषु बद्धा भवन्ति। (४) औदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारक-तैजस-भाषा-श्वासोच्छ्वास-मनोवर्गणा-पेक्षयाऽपि सूक्ष्मपरिणतिरूपा एव कर्मवर्गणा योग्याः बद्धाः भवन्ति, न तु बादराः। (५) तत्रापि त एव पुद्गला बद्धा भवन्ति ये खलु यत्राकाशे जीवोऽवगाढस्तत्रैव वर्तमानाः, न तु तद्बहिःक्षेत्रवर्तिनः।

(६) तथाविधा अपि पुद्गलाःस्थिता एव बद्धा भवन्ति, न तु गतिपरिणताः, चलितस्वभावत्वेन बन्धानर्हत्वात्। (७) असंख्यातप्रदेशिनो जीवस्यैकैकः

---

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के कारणभूत (२) समस्त दिशाओं में स्थित, (३) तीव्र मन्द आदि के भेद से मन, वचन और काय की क्रियाविशेष के संयोग से कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल समस्त आत्मप्रदेशों में बद्ध हो जाते हैं। (४) औदारिक वैक्रिय आहारक, तैजस भाषा श्वासोच्छ्वास और मनोवर्गणा की अपेक्षा भी सूक्ष्म परिणतिरूप कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल ही बंधते हैं, बादर नहीं बंधते। (५) उन में भी वही पुद्गल बंधते हैं जो एकक्षेत्रावगाढ हों, अर्थात् जिन आकाशप्रदेशों में जीव है उन्हीं आकाशप्रदेशों में विद्यमान हों बाहर के क्षेत्र में अवगाहन करने वाले नहीं बंधते। (६) ऐसे पुद्गल भी स्थित ही बंधते हैं चलते-फिरते हुए पुद्गल नहीं बंधते चलित स्वभाव वाले होने के कारण वे बन्ध के योग्य नहीं हैं, (७) असंख्यातप्रदेशी जीव का

---

(१) જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોના કારણભૂત (૨) સમસ્ત દિશાઓમાં સ્થિત, (૩) તીવ્ર, મંદ આદિના ભેદથી મન, વચન અને કાયાની ક્રિયા-વિશેષના સંયોગથી કર્મવર્ગણાના યોગ્ય પુદ્ગલ સમસ્ત આત્મપ્રદેશોમાં બદ્ધ થઈ જાય છે (૪) ઔદારિક વૈક્રિય, આહારક તૈજસ ભાષા, શ્વાસોચ્છ્વાસ અને મનોવર્ગણાની અપેક્ષાએ પણ સૂક્ષ્મપરિણતિરૂપ કર્મવર્ગણાના યોગ્ય પુદ્ગલજ બાંધે છે, બાદર બાંધતા નથી, (૫) એમાં પણ તે પુદ્ગલ બાંધે છે કે જે એક ક્ષેત્રાવગાઢ હોય અર્થાત્-જે આકાશપ્રદેશોમાં જીવ છે તેજ આકાશપ્રદેશોમાં વિદ્યમાન હોય. બહારના ક્ષેત્રમાં અવગાહન કરવાવાળા બંધાતા નથી. (૬) એવા પુદ્ગલ પણ જો સ્થિર હોય તો બંધાય છે પણ ચાલતા ફરતાં પુદ્ગલો બંધાતા નથી કારણ કે ચલિત સ્વભાવવાળા હોવાના કારણે તે બંધને યોગ્ય નથી. (૭) અસંખ્યાત પ્રદેશી જીવને

प्रदेशोऽनन्तैर्ज्ञानावरणीयकर्मस्कन्धैर्बद्धः। एवमनन्तैर्दर्शनावरणीयादिकर्मस्कन्धैर्बद्धः। (८) तत्र ते स्कन्धा अपि प्रत्येकमनन्तानन्तप्रदेशिनः सन्ति। इति प्रदेशबन्धेऽष्ट हेतवः।

पुण्यपापकर्मनिरूपणम्—

ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं पौद्गलिक कर्म प्रत्येकं द्विविधम्–पुण्यपापभेदात्। शुभंकर्म–पुण्यम्। अशुभं कर्म–पापम्। ननु विनाऽपि पुण्यपापाभ्या स्वभावत एव जगद्वैचित्र्य जायते किं पुनस्तत्कल्पनया? उच्यते–शृणु–स्वभावादेव हि त्रयो विकल्पाः समुत्पद्यन्ते यथा–(१) स्वभावः किं वस्तुरूपः? (२) कारणाभावो

एक–एक प्रदेश अनन्त ज्ञानावरणीय आदि कर्मस्कन्धों के साथ बंधता है, उसी प्रकार अनन्तदर्शनावरणीय आदि कर्मस्कन्धों के साथ भी बंधता है। (८) कर्म के वे स्कन्ध भी अनन्तानन्तप्रदेशी होते हैं। प्रदेशबन्ध में ये आठ हेतु है।

पुण्यकर्म और पापकर्म—

ज्ञानवरणीय आदि प्रत्येक पौद्गलिक कर्म दो–दो प्रकार का है, पुण्यरूप और पापरूप। शुभ कर्म पुण्य और अशुभ पाप कहलाता है।

शङ्का–पुण्य और पाप के विना ही स्वभाव से जगत् की विचित्रता हो सकती है, फिर पुण्य पाप की कल्पना करने से क्या लाभ है?।

समाधान–स्वभाववाद में तीन विकल्प हो सकते हैं, जैसे स्वभाव कोई वस्तु है?, या कारण का अभाव ही स्वभाव कहलाता है?, अथवा स्वभाव किसी

એક એક પ્રદેશ અનન્ત જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મસ્કંધોની સાથે પણ બંધાય છે એ પ્રમાણે દર્શનાવરણીય આદિ કર્મસ્કંધોની સાથે પણ બંધાય છે (૮) કર્મના તે સ્કંધ પણ અનન્તાનન્તપ્રદેશી હોય છે પ્રદેશ બંધમા આ આઠ હેતુ છે.

પુણ્યકર્મ અને પાપકર્મ—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રત્યેક પૌદ્ગલિક કર્મ બે–બે પ્રકારના છે–(૧) પુણ્યરૂપ અને (૨) પાપરૂપ શુભ કર્મ–પુણ્ય અને અશુભ કર્મ પાપ કહેવાય છે

શંકા—પુણ્ય અને પાપ વિનાજ, સ્વભાવથી જગતની વિચિત્રતા હોઈ શકે છે, તો પછી પુણ્ય પાપની કલ્પના કરવાથી શું લાભ છે?

સમાધાન–સ્વભાવવાદમા ત્રણ વિકલ્પ (તર્ક–વિતર્ક) થઈ શકે છે, જેમકે સ્વભાવ શું કોઈ વસ્તુ છે? અથવા કારણનો અભાવજ સ્વભાવ કહેવાય છે? અથવા સ્વભાવ કોઈ

वा स्वभावः ? अथवा (३) स्वभावः कोऽपि वस्तुधर्मः ? । इति विकल्पत्रयगत-दोषाणां कथन पूर्वं कृतमासीदतो विरम्यते, तस्मात् पुण्यपापे कर्मणी पौद्गलिके विद्येते, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम् ।

पुण्यपापसद्भावे युक्तीस्तावत् प्रदर्शयामः—

पुण्यपापे द्वे अपि भिन्ने स्वतन्त्रे स्तः, तत्कार्यभूतयोः सुखदुःखयो-र्यौगपद्येनानुभवाभावात्, अतोऽनेनैव भिन्नकार्यदर्शनेन तत्कारणभूतयोः पुण्यपापयोर्भिन्नताऽनुमीयते । जीवकर्मणोः परिणामरूपे पुण्यपापे कारणतः कार्यतश्चानुमीयेते ।

दानादिक्रियाणां हिंसादिक्रियाणां च कारणरूपत्वात् तत्कार्यरूपपुण्य

वस्तु का धर्म है ? इन तीनों विकल्पों में आने वाले दोषों का कथन पहले किया जा चुका है, अत एव यहाँ पुनरुक्ति नहीं की जाती । अत एव पुण्य और पाप को पौद्गलिक कर्म ही स्वीकार करना चाहिए ।

पुण्य और पाप के सद्भाव में युक्तियाँ दिखलाते हैं—

पुण्य और पाप दोनों भिन्न और स्वतन्त्र हैं, क्यों कि उनका फल सुख और दुःख एक साथ नहीं भोगा जाता । कार्य की यह भिन्नता देखने से उनके कारणभूत पुण्य और पाप की भिन्नता का अनुमान होता है । जीव और कर्म के परिणामरूप पुण्य और पाप का अनुमान कारण से और कार्य से होता है ।

दानादि क्रियाएँ और हिंसा आदि क्रियाएँ कारण हैं, अत एव उनका कार्य

વસ્તુનો ધર્મ છે? આ ત્રણેય વિકલ્પોમાં આવવાવાળા દોષોનું કથન પ્રથમ કરી ચૂક્યા છીએ, એટલા કારણથી અહિં પુનરુક્તિ કરવી નથી. એ માટે પુણ્ય અને પાપને પૌદ્ગલિક કર્મજ સ્વીકાર કરવો જોઈએ.

પુણ્ય અને પાપના સદ્‌ભાવમાં યુક્તિઓ બતાવે છે —

પુણ્ય અને પાપ બન્ને જૂદા અને સ્વતંત્ર છે કારણ કે તેનું ફળ સુખ અને દુઃખ એક સાથે ભોગવવામાં આવતું નથી. કાર્યની આ ભિન્નતા જોવાથી તેના કારણભૂત પુણ્ય અને પાપની ભિન્નતાનું અનુમાન થાય છે જીવ અને કર્મના પરિણામરૂપ પુણ્ય અને પાપનું અનુમાન કારણથી અને કાર્યથી થાય છે

દાન આદિ ક્રિયાઓ અને હિંસા આદિ ક્રિયાઓ કારણ છે તે માટે તેનું કાર્ય

पापात्मको जीवकर्मपरिणामोऽस्ति। यथा–कृष्यादिक्रियाणां शालि–यव–गोधूमादिकं नियमेन फलं भवति। इदमनुमान कारणतो भवति।

एवं कार्यतोऽपि कारणस्यानुमानं भवति। यथा–अस्ति शरीरादीनां कारणं, तेषां कार्यरूपत्वात्। यथा–घटस्य मृद्दण्डचक्रादिसामग्रीसहितः कुम्भकारः कारणम्।

न च, दृष्ट एव मातापितादिकः शरीरादीनां कारणमस्तु, इति वाच्यम्, दृष्टकारणस्य समानत्वेऽपि सुरूपकुरूपादिभावेन शरीरादीना वैचित्र्यदर्शनात्तस्य

भी अवश्य होना चाहिए, और वही कार्य जीव और कर्म का परिणामरूप पुण्य और पाप है। जैसे कृषि आदि क्रियाओं का शालि, जौ, गेहुँ आदि फल नियम से होता है। यह कारण से अनुमान है।

इसी प्रकार कार्य से भी कारण का अनुमान होता है, जैसे शरीर आदि का कारण अवश्य है, क्यों कि वह कार्य है, जैसे घटका कारण मिट्टी, दण्ड, चक्र आदि सामग्री से युक्त कुभार होता है।

शङ्का–शरीर आदि का कारण प्रत्यक्ष से प्रतीत होने वाले माता–पिता आदि ही मानना चाहिए।

समाधान–दिखाई देने वाले कारण की समानता होने पर भी शरीर में सुरूपता कुरूपता आदि की विचित्रता देखी जाती है, अत उन्हें कारण नहीं माना जा सकता,

---

પણ અવશ્ય હોવું જોઈએ, અને તે કાર્ય જીવ અને કર્મના પરિણામરૂપ પુણ્ય અને પાપ છે જેવી રીતે ખેતી આદિ ક્રિયાઓમા શાલિ–ડાંગર, જવ, ઘઉ આદિ ફલ નિયમથી થાય છે આ કારણથી અનુમાન છે

આ પ્રમાણે કાર્યથી પણ કારણનુ અનુમાન થાય છે જેમ શરીર આદિનુ કારણ જરૂર છે, કારણ કે તે કાર્ય છે, જેવી રીતે ઘટનુ કારણ માટી, દંડ, ચક્ર–ચાકડો, આદિ સામગ્રીથી યુક્ત કુભાર હોય છે

શંકા—શરીર આદિનું કારણ પ્રત્યક્ષથી જણાતા માતા–પિતા આદિ માનવા જોઈએ

સમાધાન–દેખાવાવાળા કારણની સમાનતા હોવા છતાય પણ શરીરમા સુરૂપતા કુરૂપતા આદિની વિચિત્રતા જોવામા આવે છે, તેથી તેમને કારણ માની શકાશે નહિ

तत्कारणत्वासिद्धेः। तद्वैचित्र्यस्य चादृष्टकर्मारूपहेतुं विनाऽभावात्। शुभशरीरादीनां पुण्यकार्यत्वात्, अशुभशरीरादीनां पापकार्यत्वाच्च पुण्यपापभेदेन तस्य कर्मणो द्वैविध्यं सिद्धम्।

पुण्यं पापं चेति द्वे कर्मणी भिन्ने स्वतन्त्ररूपे स्तः, इत्यत्रागमोऽपि प्रमाणम्। उक्तञ्च स्थानाङ्गसूत्रे-"एगे पुण्णे। एगे पावे" इति। एवमेव समवायाङ्गेऽपि।

सर्वघातिप्रकृतयः—

(१) केवलज्ञानावरणीयम्। (२) केवलदर्शनावरणीयम्। (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा, (५) प्रचला, (६) प्रचलाप्रचला, (७) स्त्यानर्द्धिः, (८-११) अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयम्, (१२-१५) अप्रत्याख्यानकषायचतुष्टयम्,

---

यह विचित्रता अदृष्ट कारण-कर्म के बिना नहीं हो सकती, शुभ शरीर आदि पुण्य का कार्य है और अशुभ शरीर आदि पाप का कार्य है। अत पुण्य और पाप के भेद से कर्म दो प्रकार का सिद्ध होता है।

पुण्यकर्म और पापकर्म दोनों स्वतन्त्र-भिन्न हैं, इस विषय में आगम भी प्रमाण है। स्थानाङ्ग सूत्र में कहा है- 'पुण्य एक है पाप एक है'। इसी प्रकार समवायाङ्गसूत्र में भी कहा है।

सर्वघाती प्रकृतियाँ—

(१) केवलज्ञानावरणीय, (२) केवलदर्शनावरणीय, (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा (५) प्रचला (६) प्रचलाप्रचला (७) स्त्यानर्द्धि, (८-११) अनन्तानुबन्धी-क्रोध मान, माया लोभ (१२-१५) अप्रत्याख्यानावरण-क्रोध मान, माया लोभ (१६-१९) प्रत्याख्याना

આ વિચિત્રતા અદૃષ્ટ કારણ-કર્મના વિના હોઈ શકે નહિ શુભ શરીર આદિ પુણ્યનું કાર્ય છે અને અશુભ શરીર આદિ પાપનું કાર્ય છે તે કારણથી પુણ્ય અને પાપના ભેદથી કર્મ બે પ્રકારનાં સિદ્ધ થાય છે

પુણ્યકર્મ અને પાપકર્મ બન્ને સ્વતંત્ર-ભિન્ન છે આ વિષયમાં આગમ પણ પ્રમાણ છે, સ્થાનાંગ સૂત્રમાં કહ્યું છે- પુણ્ય એક છે, પાપ એક છે" એ જ પ્રમાણે સમવાયાઙ્ગ-સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે

સર્વઘાતી પ્રકૃતિઓ—

(૧) કેવલજ્ઞાનાવરણીય (૨) કેવલદર્શનાવરણીય, (૩) નિદ્રા, (૪) નિદ્રાનિદ્રા (૫) પ્રચલા, (૬) પ્રચલાપ્રચલા, (૭) સ્ત્યાનર્દ્ધિ (૮-૧૧) અનન્તાનુબંધી-ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, (૧૨-૧૫) અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ-ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, (૧૬-૧૯) પ્રત્યાખ્યાનાવરણ

(१६-१९) प्रत्याख्यानकषायचतुष्टयम्, (२०) मिथ्यात्वं च, एता विंशतिः प्रकृतयः सर्वघातिन्य. ।

समस्तावरणक्षयादाविर्भूतं सकलद्रव्यपर्यायग्राहि केवलज्ञानं, तदाच्छादनकृत् केवलज्ञानावरणीयम् । इद हि केवलज्ञानोपघातेन सर्वमेव द्रव्यपर्यायज्ञानं प्रतिहन्ति, तस्मात् सर्वघातीत्युच्यते ।

ननु-सर्वजीवानां केवलज्ञानस्यानन्तभागोऽनावृत एवावतिष्ठते, तस्याप्यावरणे तु जीवस्याजीवत्वमापद्येत तर्हि कथं केवलज्ञानावरणीयस्य सर्वघातित्वसंभवः ? इति चेत्, उच्यते—

यथा घनीभूतघनपटलेन सूर्यचन्द्रमसोर्बहुतरप्रभासमावरणे सर्वाऽपि प्रभा

वरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व । ये वीस प्रकृतियाँ सर्वघाती हैं ।

केवलज्ञान समस्त आवरणों के क्षय से प्रकट होने वाला तथा समस्त द्रव्यों और पर्यायों को ग्रहण करने वाला है । इसे आच्छादित करने वाला कर्म केवलज्ञानावरणीय कहलाता है । यह कर्म केवलज्ञान का घात करके समस्त द्रव्य पर्यायों के ज्ञान का घात करता है, अत एव यह सर्वघाती कहलाता है ।

शङ्का—सब जीवों के केवलज्ञान का अनन्तवाँ भाग प्रकट रहता है, अगर उतना भी प्रकट न रहे तो जीव अजीव हो जायगा । ऐसी स्थिति में केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती कैसे हो सकता है ?

समाधान—जैसे अत्यन्त सघन मेघपटल के द्वारा सूर्य या चन्द्रमा की बहुत सी प्रभा छिप जाने के कारण लोक में कहा जाता है कि सूर्य-चन्द्र की सारी प्रभा छिप

-ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, (૨૦) મિથ્યાત્વ આ વીસ પ્રકૃતિઓ સર્વઘાતી છે

કેવલજ્ઞાન સમસ્ત આવરણોના ક્ષયથી પ્રગટ થવાવાળુ, તથા સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને ગ્રહણ કરવા વાળુ છે, તેને આચ્છાદિત કરવાવાળુ કર્મ કેવલજ્ઞાનાવરણીય કહેવાય છે એ કર્મ કેવલ જ્ઞાનનો ઘાત કરીને સમસ્ત દ્રવ્ય-પર્યાયોના જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે એટલા માટે તે સર્વઘાતી કહેવાય છે

શંકા—સર્વ જીવોને કેવલજ્ઞાનનો અનન્તમો ભાગ પ્રગટ રહે છે પણ જો એટલો પણ પ્રગટ ન રહે તો જીવ, અજીવ થઈ જશે આવી સ્થિતિમા કેવલજ્ઞાનાવરણીય સર્વઘાતી કેવી રીતે થઈ શકે છે?

સમાધાન—જેવી રીતે અત્યન્ત, સઘન મેઘપટલ (ઘનઘોર વાદલ) દ્વારા સૂર્ય અથવા ચન્દ્રમાની ઘણીખરી પ્રભા-કાંતિ ઢકાઈ જાવાથી લોકમા કહેવાય છે કે સૂર્ય-ચન્દ્રની

तमोरात्रवेति लोकव्यवहारस्तत् जीवस्य सर्वज्ञानावरणं केवलज्ञानावरणीयप्रकृत्या क्रियते, इति व्यपदिश्यते।

मतिज्ञानादिविषयान् अर्थान् न जानाति जीवस्तत्र मतिज्ञानावरणीयादि प्रकृत्युदय एव मतिज्ञानादिकमावृणोति, न तु केवलज्ञानावरणीयोदयस्तत्र कारणं भवतीति बोध्यम्। एवं केवलदर्शनस्यानन्तभागोऽप्यनावृत एव, तत्रापि मेघदृष्टान्तानुसारेणावरणव्यवहारमादाय केवलदर्शनावरणीयस्य सर्वघातित्वमुपपद्यते। तत्रापि चक्षुर्दर्शनावरणीयादिप्रकृत्युदयादेव जीवश्चक्षुर्दर्शनादिविषयानर्थान् ज्ञातुं न शक्नोति, न तु केवलदर्शनावरणीयोदयस्तत्र कारणमिति बोध्यम्।

गई। इसी प्रकार 'केवलज्ञानावरण प्रकृति जीव के समस्त ज्ञानका आवरण करती है' ऐसा कहा जाता है।

जीव मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों को नहीं जानता, इस में मतिज्ञानावरणीय प्रकृति का उदय ही कारण है, वही मतिज्ञान को रोकता है। इस में केवलज्ञानावरणीय का उदय कारण नहीं है। इसी प्रकार केवलदर्शन का अनन्तवाँ भाग उघाड़ रहता है। यहाँ भी मेघ के दृष्टान्त के अनुसार आवरण का व्यवहार समझ कर केवलदर्शनावरणीय को सर्वघाती प्रकृति समझना चाहिए। यहां भी चक्षुदर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों को जीव चक्षुर्दर्शनावरणीय आदि के उदय से ही नहीं जानता। वहाँ केवलदर्शनावरणीय कारण नहीं समझना चाहिए।

तमाम रात्रि-प्रकाश थई गई ओ प्रमाणे केवलज्ञानावरण प्रकृति ज्वना समस्त ज्ञाननुं आवरण करे छे ओम कहेवाय छे

ज्व मतिज्ञानना विषयभूत पदार्थोने जाणतो नथी, तेमां मतिज्ञानावरणीय प्रकृति-कर्मनो उदय ज कारणरूप छे तेज मतिज्ञानने रोके छे ओमां केवलज्ञानावरणीयनो उदय कारण रूप नथी. ओ प्रमाणे केवलदर्शनने अनन्तमो भाग उघाडो रहे छे. त्यां पण मेघना दृष्टान्त प्रमाणे आवरणनो व्यवहार समजी लईने केवलदर्शनावरणीयने सर्वघाती प्रकृति समजवुं जोईओ, अहीं पण चक्षुदर्शन आदिना विषयभूत पदार्थोने ज्व चक्षुर्दर्शनावरणीय आदिना उदयथी जाणतो नथी, त्यां केवलदर्शनावरणीय कारण नहि समजवुं जोईओ.

ननु केवलज्ञानावरणीयस्य केवलदर्शनावरणीयस्य च क्षये सत्यपि मतिज्ञानादीनां चक्षुर्दर्शनादीनां च विषया ज्ञातुमशक्याः स्युः, तेषां केवलज्ञानावरणीय-केवलदर्शनावरणीय-प्रकृत्योर्विषयाभावात्, मतिज्ञानावरणीयादीनां च क्षयाभावात्ताभिर्मतिज्ञानादीना समावृतत्वादिति चेत् ? उच्यते—

केवलज्ञानलाभे शेषावबोधलाभस्य तदन्तर्गतत्वात्। यथा–ग्रामलाभे क्षेत्रलाभो ग्रामलाभान्तर्भूत एव भवति।

निद्रादिपञ्चकमपि सकलपदार्थावबोधं मतिहन्तीति सर्वघाति भवति। यदि पुनः स्वापदशायामपि किंचिद् ज्ञानमस्तीति संभाव्यते, तर्हि तत्रापि जलधरदृष्टान्तमाश्रित्य समाधेयम्।

शङ्का—केललज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय का क्षय होने पर भी मतिज्ञान आदि और चक्षुर्दर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों का जानना अशक्य होना चाहिए, क्यों कि वे केवलज्ञानावरणीय, और केवलदर्शनावरणीय प्रकृतियों के विषय नहीं हैं, और मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों का क्षय नहीं हुआ है, उन्हीं से मतिज्ञान आदि आवृत होते हैं।

समाधान—केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर शेष ज्ञानों की प्राप्ति उसी में अन्तर्गत हो जाती है। जैसे ग्राम मिलने पर खेत आप ही मिल जाता है।

निद्रा आदि पाच प्रकृतियाँ भी सकल पदार्थों के ज्ञान का घात करती हैं, अत एव सर्वघाती हैं। अगर निद्रा–अवस्था में भी किञ्चित् ज्ञान की सभावना की जा सकती है तो वहाँ भी मेघ का दृष्टान्त लेकर समाधान करना चाहिए।

શંકા—કેવલજ્ઞાનાવરણીય અને કેવલદર્શનાવણીયનો ક્ષય થવા છતાય પણ મતિજ્ઞાન આદિ અને ચક્ષુર્દર્શન આદિના વિષયભૂત પદાર્થોને જાણવુ તે અશકય હોવુ જોઈએ, કારણ કે તે કેવલજ્ઞાનાવરણીય અને કેવલદર્શનાવરણીય પ્રકૃતિઓનો વિષય નથી અને મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રકૃતિઓનો ક્ષય થયો નથી, તેનાથી મતિજ્ઞાન આદિ આવૃત થાય છે.

સમાધાન—કેવલ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થવાથી શેષ જ્ઞાનોની પ્રાપ્તિ તેમા અન્તર્ગત થઈ જાય છે જેવી રીતે ગામ મળવાથી ખેતર પોતેજ મલી જાય છે

નિદ્રા આદિ પાચ પ્રકૃતિઓ પણ તમામ પદાર્થોના જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે, એ માટે તે સર્વઘાતી છે અથવા નિદ્રા અવસ્થામા પણ કિંચિત્ જ્ઞાનની સભાવના કરાય છે. તો ત્યા પણ મેઘનુ દૃષ્ટાત લઈને સમાધાન કરી લેવું જોઈએ

अनन्तानुबन्ध्यादयो द्वादश कषायाः प्रत्येकं यथाक्रमं सम्यक्त्वं देशविरतिचारित्रं सर्वविरतिचारित्रं च सर्वमेव घ्नन्ति, तस्मादेते द्वादश कषायाः सर्वघातिनः इत्युच्यन्ते। तेषां प्रबलोदयेऽपि कुलाचारप्रभृतिकारणवशादशुद्धाहारादिविरमणदर्शनात् सर्वघातित्वं न संभवतीति नाशङ्कनीयम्, नवीनघनघटादृष्टान्ताश्रयणेन तस्यापि समाधेयत्वात्। मिथ्यात्वं तु सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं सर्वमपि प्रतिहन्ति, तस्मात् सर्वघातीत्युच्यते। यदि मिथ्यात्वस्य प्रबलोदयेऽपि मनुष्यपश्वादिवस्तुविषयकं सम्यक्त्वमस्ति, कथं तर्हि सर्वघातित्वं मिथ्यात्वस्येति संभाव्यते, तदाऽत्राप्युक्तघनघटादृष्टान्तः शरणीकरणीयः।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषाय क्रमशः सम्यक्त्व का, देशविरति का और सर्वविरतिका पूर्णरूप से घात करते हैं, अतः ये बारह कषाय भी सर्वघाती कहलाते हैं। यह शङ्का नहीं करनी चाहिए कि–इन कषायों का प्रबल उदय होने पर भी कुलाचार आदि कारणों से अशुद्ध आहार आदि का त्याग देखा जाता है अत एव इन्हें सर्वघाती नहीं कहा जा सकता, क्यों कि नवीन मेघघटाका दृष्टान्त लेकर इस शङ्का का भी समाधान किया जा सकता है।

मिथ्यात्व प्रकृति तो तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व का पूर्णरूप से घात करती ही है, अतः वह सर्वघाती है। यदि मिथ्यात्व का प्रबल उदय होने पर भी मनुष्य पशु आदि वस्तुओं सम्बन्धी सम्यक्त्व रहता है तो मिथ्यात्व को सर्वघाती कैसे कहा जा सकता है? इस शङ्का के समाधान के लिए भी उक्त मेघपटल के ही दृष्टान्त का आश्रय लेना चाहिए।

અનન્તાનુબંધી આદિ બાર કષાય ક્રમશઃ સમ્યક્ત્વનો દેશવિરતિનો અને સર્વવિરતિનો પૂર્ણરૂપથી ઘાત કરે છે, તેથી એ બાર કષાય પણ સર્વઘાતી કહેવાય છે એવી શંકા નહિ કરવી જોઈએ કે–એ કષાયોના પ્રબલ ઉદય વખતે પણ કુલાચાર આદિ કારણોથી અશુદ્ધ આહાર આદિનો ત્યાગ જોવામાં આવે છે તે માટે તેને સર્વઘાતી કહી શકાશે નહિ; કારણ કે નવીન મેઘ ઘટાનું દ્રષ્ટાંત લઈને આ શંકાનું સમાધાન કરી શકાય છે

મિથ્યાત્વ પ્રકૃતિ તો તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાનરૂપ સમ્યક્ત્વનો પૂર્ણરૂપથી ઘાત કરે છે; તેથી તે સર્વઘાતી છે એ મિથ્યાત્વનો પ્રબલ ઉદય હોય તે વખતે પણ–મનુષ્ય, પશુ આદિ વસ્તુઓસંબંધી સમ્યક્ત્વ રહે છે તો મિથ્યાત્વને સર્વઘાતી કેવી રીતે કહી શકાશે? એ શંકાના સમાધાન માટે પણ આગળ કહેલ મેઘપટલનાંજ દ્રષ્ટાંતનો આશ્રય લેવો જોઈએ.

देशघातिप्रकृतयः—

अथ देशघातिप्रकृतयः कथ्यन्ते—। (१) मतिज्ञानावरणीयम्, (२) श्रुतज्ञानावरणीयम्, (३) अवधिज्ञानावरणीयम्, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीयम्, एतानि चत्वारि ज्ञानावरणीयानि ४। (१) चक्षुर्दर्शनावरणीयम्, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीयम्, (३) अवधिदर्शनावरणीयम्, इति त्रीणि दर्शनावरणीयानि७। सञ्ज्वलनरूपाः क्रोधमानमायालोभाश्चत्वारः कषायाः ११। हास्य–रत्य–रति–भय–शोक–जुगुप्सा–स्त्रीवेद–पुवेद–नपुंसकवेदभेदतो नवसंख्यका नोकषायाः २०। तथा दान-लाभ–भोगो–पभोग–वीर्य५भेदात् पञ्चविंशतिः २५ प्रकृतयो देशघातिन्यः सन्ति।

मतिज्ञानावरणीयादिचतुष्टयी प्रकृतिः केवलज्ञानावरणीयावृत दैशिकं ज्ञान हन्ति, तस्माद्देशघातिनीयमुच्यते।

देशघाती प्रकृतियाँ—

अब देशघाती प्रकृतियों का कथन किया जाता है—(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीय, ये चार ज्ञानावरणीय४। तथा (१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, ये तीन दर्शनावरणीय७। तथा सञ्ज्वलन—क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार कषाय ११। हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद के भेद से नौ नोकषाय २०। तथा दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय, ये पांच अन्तराय २५। सब मिलकर पच्चीस देशघाती प्रकृतियाँ हैं।

मतिज्ञानावरणीय आदि चार प्रकृतियाँ केवलज्ञानावरणीयद्वारा आवृत एक देश ज्ञानका घात करती हैं, अत एव उन्हें देशघाती प्रकृतियाँ कहते हैं,

દેશઘાતી પ્રકૃતિઓ—

હવે દેશઘાતી પ્રકૃતિઓનુ કથન–નિરૂપણ–કરવામા આવે છે–(૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મન પર્યયજ્ઞાનાવરણીય, આ ચાર જ્ઞાનાવરણીય છે ૪, તથા (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, આ ત્રણ દર્શનાવરણીય, ૭, તથા સજ્વલન–ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, એ ચાર કષાય, ૧૧, હાસ્ય, રતિ, અરતિ, ભય, શોક, જુગુપ્સા સ્રીવેદ, પુરુષવેદ, નપુસકવેદના ભેદથી નવ નોકષાય, ૨૦, તથા દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપભોગાન્તરાય, અને વીર્યાન્તરાય આ પાચ અન્તરાય ૨૫, બધી મળીને પચીસ દેશઘાતી પ્રકૃતિઓ છે

મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ ચાર પ્રકૃતિઓ કેવલજ્ઞાનાવરણીયદ્વારા આવૃત એક દેશ જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે, તેટલા માટે તેને દેશઘાતી પ્રકૃતિ કહે છે

मतिज्ञानादिविषयाणामर्थानामवबोधो यत्र भवति, तत्र मतिज्ञानावरणीयादिचतुष्टयप्रकृत्युदयादेव। यत्तु मतिज्ञानाद्यविषयाणामनन्तपदार्थानां ज्ञानं न भवति तत् केवलज्ञानावरणीयप्रकृत्युदयादेव।

चक्षुर्दर्शनावरणीयादित्रयी प्रकृतिः केवलदर्शनावरणीयानावृतं केवलदर्शनैकदेशं ज्ञानं हन्तीति देशघातित्वं सिद्धम्। चक्षुरादिदर्शनविषयभूतानामर्थानां दर्शनं यत्र भवति, तत् चक्षुरादिदर्शनावरणीयप्रकृत्युदयादेव; यत्र तद्विषयभूतामनन्तगुणान् न पश्यति, तत् केवलदर्शनावरणीयोदयादेव।

तथा-संज्वलनाश्चत्वारः कषायास्तथा नव नोकषायाश्च लब्धस्य

मतिज्ञान आदि के विषयभूत पदार्थों का जो ज्ञान नहीं होता सो मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों के उदय से ही समझना चाहिए। और जो पदार्थ मतिज्ञान आदि के विषय नहीं हैं, उनके ज्ञानका अभाव केवलज्ञानावरणीय प्रकृति के उदय से होता है।

चक्षुदर्शनावरणीय आदि तीन प्रकृतियाँ केवलदर्शनावरणीयद्वारा अनावृत केवलदर्शन के एकदेश ज्ञानका घात करती हैं, अतः वे देशघाती हैं। चक्षुदर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों का जो ज्ञान नहीं होता सो चक्षुदर्शनावरणीय आदि प्रकृतियों के उदय से समझना चाहिए और केवलदर्शन के विषयभूत अनन्त गुणों के ज्ञानका जो अभाव होता है सो केवलदर्शनावरणीय के उदय से ही समझना चाहिए।

चार संज्वलन कषाय और नौ नोकषाय प्राप्त हुए चारित्र के एक देश का

મતિજ્ઞાન આદિના વિષયભૂત પદાર્થોનું જે જ્ઞાન થતું નથી તે મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રકૃતિઓના ઉદયથીજ સમજી લેવું જોઇએ. અને જે પદાર્થ મતિજ્ઞાનાદિના વિષય નથી તેના જ્ઞાનનો અભાવ કેવલજ્ઞાનાવરણીય પ્રકૃતિના ઉદયથી હોય છે.

ચક્ષુદર્શનાવરણીય આદિ ત્રણ પ્રકૃતિઓ કેવલદર્શનાવરણીય દ્વારા અનાવૃત કેવલદર્શનના એકદેશ જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે એ કારણથી તે દેશઘાતી છે ચક્ષુદર્શન આદિના વિષયભૂત પદાર્થોનું જે જ્ઞાન થતું નથી તે ચક્ષુદર્શનાવરણીય આદિ પ્રકૃતિઓના ઉદયથી સમજવું જોઈએ અને કેવલદર્શનના વિષયભૂત અનન્ત ગુણોના જ્ઞાનનો જે અભાવ થાય છે તે કેવલદર્શનાવરણીયના ઉદયથીજ સમજવું જોઈએ.

ચાર સંજ્વલન કષાય અને નવ નોકષાય પ્રાપ્ત થયેલા ચારિત્રના એક દેશનોજ

[illegible]

[illegible] एव।
[illegible] स्यामि [illegible] [illegible] एव।

[illegible] न [illegible] इत्यधारण-

[illegible] है इस [illegible]

[illegible] हैं। [illegible] और [illegible] द्रव्य [illegible] इन प्रकृतियों के उदय से पुद्गलास्तिकाय [illegible] भोग या उपभोग न हो सके वे दानान्तराय आदि [illegible]

[illegible] द्रव्यों का दान, लाभ, भोग और उपभोग नहीं [illegible] प्रकृतियों के उदय से नहीं, परन्तु उन द्रव्यों को

[illegible] મૂલગુણો અને ઉત્તરગુણોમા અતિચાર ઉત્પન્ન કરે છે, આ [illegible] દેશઘાતી છે એ પ્રમાણે સમજવું જોઇએ.

[illegible] પ્રકૃતિઓ પણ દેશઘાતીજ છે દાન, લાભ, ભોગ અને ઉપભોગ, [illegible] અને ધારણ કરવા યોગ્ય દ્રવ્યજ છે, અને એવા [illegible] અનન્તમો ભાગ છે, તેથી જે પ્રકૃતિઓના ઉદયથી [illegible] દ્રવ્યોનો દાન, લાભ, ભોગ અને ઉપભોગ ન થઈ [illegible] આદિ પ્રકૃતિઓ પણ દેશઘાતી છે

[illegible] દ્રવ્યોનો દાન, લાભ, ભોગ અને ઉપભોગ થઇ શકતો [illegible] તે આ દાનાન્તરાય આદિ પ્રકૃતિઓના ઉદયથી નહિ, પરન્તુ તે દ્રવ્યોને ગ્રહણ અને

योग्यताया अभावादशक्यानुष्ठानत्वादिति मन्तव्यम् ।

वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि सर्वं वीर्यं न हन्तीति देशघातिन्येव । तथाहि सूक्ष्मनिगोदजीवात् प्रभृति क्षीणमोहनीयजीवं वीर्यान्तरायस्य क्षयोपशमविशेषाद् वीर्यं कस्यचिदल्पं, कस्यचिद् बहु, कस्यचिद् बहुतरं, कस्यचिद् बहुतमं भवति, वीर्यान्तरायकर्मणोऽभ्युदये सूक्ष्मनिगोदस्यापि आहारपरिणमनकर्मदलिकग्रहणगत्यन्तरगमनादिकं विद्यते । एतच्च वीर्यं विना न संभवति । तस्माद्देशत एव वीर्यं वीर्यान्तरायप्रकृत्या हन्यते, न तु सर्वतः । यदि पुनरियं सर्वघातिनी

ग्रहण और धारण करने की योग्यता न होने के कारण अशक्यानुष्ठान से समझना चाहिए।

वीर्यान्तराय प्रकृति भी समस्त वीर्य का घात नहीं करती अतः देशघाती है। सूक्ष्म निगोदिया जीव से लेकर क्षीणमोह–गुणस्थान पर्यन्त के जीवों में वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से किसी जीव में अल्प वीर्य (शक्ति) होता है, किसी में बहुत वीर्य होता है, किसी में बहुत अधिक वीर्य होता है और किसी में अत्यन्त अधिक वीर्य होता है। वीर्यान्तराय कर्मका उदय होने पर भी सूक्ष्म निगोद का जीव आहार का परिणमन करता है, कर्मदलिकों को ग्रहण करता है और दूसरी गति में जाता है। ये सब कार्य वीर्य के बिना नहीं हो सकते। इस से यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय कर्म वीर्य को एकदेश से ही घात करता है, सर्वदेश से नहीं। अगर यह प्रकृति सर्वघाती मानी जाय तो जैसे सर्वघाती मिथ्यात्व के उदय में सम्यग्दर्शन लेशमात्र नहीं होता, और

धारण करवानी योग्यता नहि होवाना कारणे अशक्यानुष्ठानथी समजवुं जोईए.

वीर्यान्तराय प्रकृति पण समस्त वीर्यनो घात करती नथी, तेथी ते देशघाती छे सूक्ष्मनिगोदना जीवथी लईने क्षीणमोहगुणस्थान सुधीना जीवोमां वीर्यान्तरायना क्षयोपशमथी कोई जीवमां अल्पवीर्य (थोडी शक्ति) होय छे कोई जीवमां बहु वीर्य होय छे; कोई जीवमां बहुज अधिक वीर्य होय छे, अने कोईमां अत्यन्त अधिक वीर्य होय छे वीर्यान्तराय कर्मनो उदय होय त्यारे पण सूक्ष्म निगोदना जीव आहारनुं परिणमन करे छे, कर्मदलिकोने ग्रहण करे छे अने बीजी गतिमां जाय छे आ तमाम कार्य वीर्य विना थई शके नहीं, तेथी ए सिद्ध थयुं के – वीर्यान्तराय कर्म वीर्यना एक देशनोज घात करे छे सर्वदेशनो नहीं. अथवा तो आ प्रकृतिने सर्वघाती मानवामां आवे तो जेवी रीते सर्वघाती मिथ्यात्वना उदयमां सम्यग्दर्शन लेशमात्र पण होय नहीं, अने जेम

उत्तरप्रकृतिसंख्या—

ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकशतं १४८ भवन्ति। तथाहि—

(१) ज्ञानावरणीयस्य–मति–श्रुता–ऽवधि–मनःपर्यय–केवलज्ञानावरणीय–भेदात् पञ्च।

(२) दर्शनावरणीयस्य–चक्षुर्दर्शना–ऽचक्षुर्दर्शना–ऽवधिदर्शन–केवलदर्शनावरणीयानि चत्वारि, तथा–निन्द्रा–निद्रानिद्रा–प्रचला–प्रचलाप्रचला–स्त्यानर्द्धिभेदात् पञ्च मिलित्वा नव भवन्ति।

(३) वेदनीयस्य शाताशातभेदेन द्वौ भेदौ स्तः।

उत्तरप्रकृतियोंकी संख्या—

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों की सख्याएँ (मध्यमविवक्षा से) १४८ हैं। वे इस प्रकार—

(१) ज्ञानावरणीय की पांच–(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मन पर्ययज्ञानावरणीय, (५) केवलज्ञानावरणीय।

(२) दर्शनावरणीय की नौ–(१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, (४) केवलदर्शनावरणीय, तथा (५) निद्रा, (६) निद्रानिद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचला-प्रचला, (९) स्त्यानर्द्धि, ये पांच निद्राएँ मिलकर कुल नौ प्रकृतियाँ हैं।

(३) वेदनीय की दो–सातावेदनीय और असातावेदनीय।

ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોની ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સખ્યા (મધ્યમ વિવક્ષાથી) એકસોને અડતાલીસ (૧૪૮) છે તે આ પ્રમાણે—

(૧) જ્ઞાનાવરણીયની પાચ – (૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મન પર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) કેવલજ્ઞાનાવરણીય

(૨) દર્શનાવરણીયની નવ છે (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રા–નિદ્રા (૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા–પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનર્દ્ધિ, આ પાચ નિદ્રાઓ મળીને કુલ નવ પ્રકૃતિઓ થાય છે

(૩) વેદનીયની બે (૧) સાતાવેદનીય અને અસાતાવેદનીય.

(४) मोहनीयस्य-अष्टाविंशतिर्भेदा भवन्ति। तथाहि-सम्यक्त्वमोहनीय-मिथ्यात्वमोहनीय-मिश्रमोहनीय-भेदेन त्रीणि दर्शनमोहनीयानि। पञ्चविंशति चारित्रमोहनीयानि मिलित्वाऽष्टाविंशतिः। चारित्रमोहनीयस्य पञ्चविंशति भेदाः, यथा -कषायमोहनीय१ -नोकषायमोहनीय२-भेदेन चारित्रमोहनीय द्विविधम्। तत्र कषायमोहनीयस्य षोडश भेदा भवन्ति, यथा-अनन्तानुबन्धी क्रोधो मानो, माया, लोभः ४, अनन्तः=संसारो नारक-तिर्यङ्-मनुष्य-देव जन्म-जरा-मरण परम्परास्वरूपः, तदनुबन्धन-शीलाऽनुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभा-श्चत्वारः कषायाः४। तत्र क्रोधः-कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकाऽक्षमारूप आत्म परिणामः। मानो-गर्वः, माया-शाठ्यम्, लोभो-गृध्नुता। अनन्तानुबन्धि-

---

(४) मोहनीय की अट्ठाईस-सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्वमोहनीय, ये तीन दर्शनमोहनीय की, तथा पच्चीस चारित्रमोहनीय की कुल अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं। चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं-कषायचारित्र मोहनीय, और नोकषायचारित्रमोहनीय। कषायचारित्रमोहनीय के सोलह भेद हैं, जैसे-अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया, लोभ। जो कषाय, नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में जन्म जरा-मरण-रूप अनन्त संसार का अनुबंध करे, वह अनन्तानुबन्धी है। उस के चार भेद हैं-क्रोध, मान, माया और लोभ। कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट कर देने वाला अक्षमारूप आत्मा का परिणाम क्रोध कहलाता है। गर्व को मान कहते हैं। माया का अर्थ कपट है। गृद्धिभाव (लालच) लोभ कहलाता है। अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क में क्रोध को पर्वत की राजि

---

(४) મોહનીયકર્મની અઠાવીસ છે (૧) સમ્યક્ત્વમોહનીય, મિશ્રમોહનીય, અને મિથ્યાત્વમોહનીય, આ ત્રણ દર્શનમોહનીયની, તથા પચીસ ચારિત્રમોહનીયની, એ પ્રમાણે કુલ અઠાવીસ પ્રકૃતિઓ છે. ચારિત્રમોહનીયની પચીસ પ્રકૃતિઓ આ પ્રમાણે છે-ચારિત્રમોહનીયના બે ભેદ છે (૧) કષાયચારિત્રમોહનીય અને (૨) નોકષાયચારિત્રમોહનીય, કષાયચારિત્રમોહનીયના સોળ ભેદ છે જેમકે-અનન્તાનુબન્ધી ક્રોધ, માન, માયા, લોભ. જે કષાય નારક તિર્યંચ, મનુષ્ય, અને દેવગતિમાં જન્મ, જરા, મરણરૂપ અનન્ત સંસારનો અનુબંધ કરે તે અનન્તાનુબન્ધી છે તેના ચાર ભેદ છે, ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ, કર્તવ્ય-અકર્તવ્યનાં વિવેકનો નાશ કરવાવાળા અક્ષમારૂપ આત્માનો પરિણામ તે ક્રોધ કહેવાય છે ગર્વને માન કહે છે. માયાનો અર્થ કપટ છે. લાલચ તે લોભ કહેવાય છે અનન્તાનુબન્ધી કષાયચતુષ્કમાં ક્રોધને પર્વતની રાજિનું (એવત કષાયથી

स्यात् तदा सर्वघातिनो मिथ्यात्वस्य कषायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसंयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुणं नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम् ।

अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति । तथाहि–प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१–च्छ्वासा२–ऽऽतपो३–द्योता४–ऽगुरुलघु५–तीर्थकर६–निर्माणो७–पघात८-रूपा अष्टौ सन्ति । (१) औदारिकं, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कार्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३ । षट् संस्थानानि६ । षट् संहन-

---

जैसे बारह कषायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर लेशमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अत यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है ।

अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ है, वे इस प्रकार–(१) पराघात, (२) उच्छ्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थंकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियां अघाती हैं८ । औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कार्मण शरीर, ये पाच शरीर अघाती प्रकृतियाँ है १३ । तीन उपाङ्ग१६, छह संस्थान२२,

---

બાર કષાયોનો ઉદય થવા સમયે દેવવિરતિ અને સર્વવિરતિ એકદેશથી પણ હોય નહી, તે પ્રમાણે વીર્યાન્તરાય કર્મનો ઉદય થતા લેશમાત્ર પણ વીર્યગુણ પ્રગટ થવો નહી જોઈએ, પરન્તુ એ પ્રમાણે થતુ નથી, એ કારણથી સિદ્ધ થયુ કે–વીર્યાન્તરાય પ્રકૃતિ પણ દેશઘાતીજ છે

અઘાતી પ્રકૃતિઓ—

અઘાતી પ્રકૃતિઓ પચોતેર (૭૫) છે તે આ પ્રમાણે છે –(૧) પરાઘાત, (૨) ઉચ્છ્વાસ, (૩) આતપ, (૪) ઉદ્યોત, (૫) અગુરૂલઘુ, (૬) તીર્થંકર, (૭) નિર્માણ, (૮) ઉપઘાત, આ આઠ પ્રત્યેક પ્રકૃતિઓ અઘાતી છે (૧) ઔદારિક, (૨) વૈક્રિય, (૩) આહારક, (૪) તૈજસ અને (૫) કાર્મણ શરીર, આ પાચ શરીર અઘાતી પ્રકૃતિઓ છે, (૧૩) ત્રણ ઉપાગ, (૧૬) છહ સ સ્થાન, (૨૨) છહ સ હનન, (૨૮) પાચ જાતિઓ, (૩૩) ચાર ગતિ, ૩૭ બે વિહાયો

नानि६। पञ्च जातयः५। चतस्रो गतयः४। द्वे खगती२। चतस्रः आनुपूर्व्यः४। आयूंषि चत्वारि४। त्रसदशकम्१०। स्थावरदशकम्१०। उच्चैर्गोत्रम्१। नीचैर्गोत्रम्१। सातवेदनीयम्१। असातवेदनीयम्१। वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शाख्याश्चतस्रः प्रकृतयः४। ७५॥

एताः प्रकृतयः कमपि ज्ञानादिगुणं न घ्नन्तीत्यघातिन्य उच्यन्ते। इमा सर्वघातिप्रकृतिभिः सह वेद्यमाना स्वयमघातिन्योऽपि सर्वघातिफलमदर्शयन्ति। देशघातिप्रकृतिभिः सह पुनर्वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि देशघातिरसं दर्शयन्ति। यथा-स्वयमचौरश्चौरैः सह वर्तमानश्चौर इवावभासते तद्वत्।

छह संहनन२८ पांच जातियाँ३३, चार गतियाँ३७ दो विहायोगतियाँ३९, चार आनुपूर्वी४३, चार आयु४७, त्रसदशक५७ स्थावरदशक६७ उच्चगोत्र६८ नीचगोत्र६९ सातावेदनीय७०, असातावेदनीय७१ तथा वर्ण रस, गन्ध, और स्पर्शनामक चार प्रकृतियाँ७५।

ये प्रकृतियाँ ज्ञान आदि किसी गुणका घात नहीं करती हैं। इसी लिये ये अघाती कहलाती हैं। जब इनका सर्वघाती प्रकृतियों के साथ वेदन होता है तब ये स्वयं अघाती होते हुए भी सर्वघाती रसका प्रकट करती हैं, और देशघाती प्रकृतियों के साथ इनका वेदन हो तो स्वयं अघाती होने पर भी देशघाती रस को प्रकट करती हैं। जैसे कोई पुरुष चोर न हो किन्तु चोरों के साथ हो तो वह भी चोर जैसा ही प्रतीत होता है। यही हाल इन अघाती प्रकृतियों का है।

गति, (३९) चार अनुपूर्वी, (४३) चार आयु, (४७) त्रसदशक, (५७) स्थावरदशक, (६७) उच्चगोत्र, (६८) नीचगोत्र, (६९) शातावेदनीय, (७) असातावेदनीय, (७१) तथा वर्ण रस, गंध, अने स्पर्श नामनी चार प्रकृतिओ (७५).

आ प्रकृतिओ ज्ञान आदि कोई गुणनो घात करती नथी. एटला माटे तेने अघाती प्रकृति कहे छे परन्तु सर्वघाती प्रकृतिओनी साथे ज्यारे तेनुं वेदन थाय छे तो पोते अघाती होवा छतांय पण ए सर्वघातीनुं फळ प्रदर्शित करे छे अथवा देशघाती प्रकृतिओनी साथे तेनुं वेदन होय तो पोते अघाती होवा छताय पण देशघाती रसने प्रगट करे छे. एवी रीते कोई पुरुष चोर न होय परन्तु चोरोनी साथे होय तो ते पण चोर जेवो ज देखाय छे. ए प्रमाणेज आ अघाती प्रकृतिओ विषे समजवुं

स्यात् तदा सर्वघातिनो मिथ्यात्वस्य कषायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुण नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम्।

अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति। तथाहि–प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१-च्छ्वासा२-ऽऽतपो३–द्योता४–ऽगुरुलघु५–तीर्थकर६–निर्माणो७–पघात८-रूपा अष्टौ सन्ति। (१) औदारिक, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कार्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३। षट् सस्थानानि६। षट् संहन-

जैसे बारह कषायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर लेशमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अत यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है।

अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ है, वे इस प्रकार–(१) पराघात, (२) उच्छ्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थंकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियां अघाती हैं८। औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कार्मण शरीर, ये पाच शरीर अघाती प्रकृतियाँ हैं १३। तीन उपाङ्ग१६, छह संस्थान२२,

બાર કષાયોનો ઉદય થવા સમયે દેવવિરતિ અને સર્વવિરતિ એકદેશથી પણ હોય નહી, તે પ્રમાણે વીર્યાન્તરાય કર્મનો ઉદય થતા લેશમાત્ર પણ વીર્યગુણ પ્રગટ થવો નહી જોઈએ, પરન્તુ એ પ્રમાણે થતુ નથી, એ કારણથી સિદ્ધ થયુ કે–વીર્યાન્તરાય પ્રકૃતિ પણ દેશઘાતીજ છે

અઘાતી પ્રકૃતિઓ—

અઘાતી પ્રકૃતિઓ પચોતેર (૭૫) છે તે આ પ્રમાણે છે –(૧) પરાઘાત, (૨) ઉચ્છ્વાસ, (૩) આતપ, (૪) ઉદ્યોત, (૫) અગુરૂલઘુ, (૬) તીર્થંકર, (૭) નિર્માણ, (૮) ઉપઘાત, આ આઠ પ્રત્યેક પ્રકૃતિઓ અઘાતી છે (૧) ઔદારિક, (૨) વૈક્રિય, (૩) આહારક, (૪) તૈજસ અને (૫) કાર્મણ શરીર, આ પાચ શરીર અઘાતી પ્રકૃતિઓ છે, (૧૩) ત્રણ ઉપાગ, (૧૬) છહ સસ્થાન, (૨૨) છહ સહનન, (૨૮) પાચ જાતિઓ, (૩૩) ચાર ગતિ, ૩૭ બે વિહાયો

नानि६। पञ्च जातयः५। चतस्रो गतयः४। द्वे खगती२। चतस्रः आनुपूर्व्यः४। आयूंषि चत्वारि४। त्रसदशकम्१०। स्थावरदशकम्१०। उच्चैर्गोत्रम्१। नीचैर्गोत्रम्१। सातवेदनीयम्१। असातवेदनीयम्१। वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शाख्याश्चतस्रः प्रकृतयः४। ७५॥

एताः प्रकृतयः कमपि ज्ञानादिगुणं न घ्नन्तीत्यघातिन्य उच्यन्ते। इमाः सर्वघातिप्रकृतिभिः सह वेद्यमाना स्वयमघातिन्योऽपि सर्वघातिफलं प्रदर्शयन्ति। देशघातिप्रकृतिभिः सह पुनर्वेद्यमाना स्वयमघातिन्योऽपि देशघातिरसं दर्शयन्ति। यथा-स्वयमचौरश्चौरैः सह वर्तमानश्चौर इवाभासते तद्वत्।

छह संहनन२८ पांच जातियाँ३३, चार गतियाँ३७ दो विहायोगतियाँ३९ चार आनुपूर्वी४३, चार आयु४७, त्रसदशक५७ स्थावरदशक६७ उच्चगोत्र६८ नीचगोत्र६९ सातावेदनीय७०, असातावेदनीय७१, तथा वर्ण, रस, गन्ध, और स्पर्शनामक चार प्रकृतियाँ७५।

ये प्रकृतियाँ ज्ञान आदि किसी गुणका घात नहीं करती हैं। इसी लिये ये अघाती कहलाती हैं। जब इनका सर्वघाती प्रकृतियों के साथ वेदन होता है तब ये स्वयं अघाती होते हुए भी सर्वघाती रसको प्रकट करती हैं, और देशघाती प्रकृतियों के साथ इनका वेदन हो तो स्वयं अघाती होने पर भी देशघाती रस को प्रकट करती हैं। जैसे कोई पुरुष चोर न हो किन्तु चोरों के साथ हो तो वह भी चोर जैसा ही प्रतीत होता है। यही हाल इन अघाती प्रकृतियों का है।

ગતિ, (૩૯) ચાર અનુપૂર્વી, (૪૩) ચાર આયુ, (૪૭) ત્રસદશક, (૫૭) સ્થાવરદશક, (૬૭) ઉચ્ચગોત્ર, (૬૮) નીચગોત્ર, (૬૯) શાતાવેદનીય, (૭) અશાતાવેદનીય, (૭૧) તથા વર્ણ રસ, ગંધ અને સ્પર્શ નામની ચાર પ્રકૃતિઓ (૭૫)

આ પ્રકૃતિઓ જ્ઞાન આદિ કોઈ ગુણનો ઘાત કરતી નથી. એટલા માટે તેને અઘાતી પ્રકૃતિ કહે છે, પરન્તુ સર્વઘાતી પ્રકૃતિઓની સાથે જ્યારે તેનું વેદન થાય છે તો પોતે અઘાતી હોવા છતાંય પણ એ સર્વઘાતીનું ફળ પ્રદર્શિત કરે છે અથવા દેશઘાતી પ્રકૃતિઓની સાથે તેનું વેદન હોય તો પોતે અઘાતી હોવા છતાંય પણ દેશઘાતી રસને પ્રગટ કરે છે. એવી રીતે કોઈ પુરુષ ચોર ન હોય પરન્તુ ચોરોની સાથે હોય તો તે પણ ચોર જેવો જ દેખાય છે. એ પ્રમાણેજ આ અઘાતી પ્રકૃતિઓ વિષે સમજવું

स्यात् तदा सर्वघातिनो मिथ्यात्वस्य कषायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसंयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुणं नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम् ।

अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति । तथाहि–प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१-च्छ्वासा२-ऽऽतपो३–द्योता४–ऽगुरुलघु५–तीर्थकर६–निर्माणो७–पघात८-रूपा अष्टौ सन्ति । (१) औदारिकं, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कार्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३ । षट् संस्थानानि६ । षट् संहन-

---

जैसे बारह कषायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर लेशमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अत यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है ।

अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ हैं, वे इस प्रकार–(१) पराघात, (२) उच्छ्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थंकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियां अघाती है८ । औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कार्मण शरीर, ये पांच शरीर अघाती प्रकृतियाँ हैं १३ । तीन उपाङ्ग१६, छह संस्थान२२,

---

બાર કષાયોનો ઉદય થવા સમયે દેવવિરતિ અને સર્વવિરતિ એકદેશથી પણ હોય નહી, તે પ્રમાણે વીર્યાન્તરાય કર્મનો ઉદય થતા લેશમાત્ર પણ વીર્યગુણ પ્રગટ થવો નહી જોઈએ, પરન્તુ એ પ્રમાણે થતુ નથી, એ કારણથી સિદ્ધ થયુ કે–વીર્યાન્તરાય પ્રકૃતિ પણ દેશઘાતીજ છે

અઘાતી પ્રકૃતિઓ—

અઘાતી પ્રકૃતિઓ પચોતેર (૭૫) છે તે આ પ્રમાણે છે –(૧) પરાઘાત, (૨) ઉચ્છ્વાસ, (૩) આતપ, (૪) ઉદ્યોત, (૫) અગુરૂલઘુ, (૬) તીર્થંકર, (૭) નિર્માણ, (૮) ઉપઘાત, આ આઠ પ્રત્યેક પ્રકૃતિઓ અઘાતી છે (૧) ઔદારિક, (૨) વૈક્રિય, (૩) આહારક, (૪) તૈજસ અને (૫) કાર્મણ શરીર, આ પાચ શરીર અઘાતી પ્રકૃતિઓ છે, (૧૩) ત્રણ ઉપાગ, (૧૬) છહ સ સ્થાન, (૨૨) છહ સ હનન, (૨૮) પાચ જાતિઓ, (૩૩) ચાર ગતિ, ૩૭ બે વિહાયો

(४) मोहनीयस्य-अष्टाविंशतिर्भेदा भवन्ति। तथाहि-सम्यक्त्वमोहनीय-मिथ्यात्वमोहनीय-मिश्रमोहनीय-भेदेन त्रीणि दर्शनमोहनीयानि। पञ्चविंशति चारित्रमोहनीयानि मिलित्वाऽष्टाविंशतिः। चारित्रमोहनीयस्य पञ्चविंशति भेदाः, यथा — कषायमोहनीय १ — नोकषायमोहनीय २ — भेदेन चारित्रमोहनीय द्विविधम्। तत्र कषायमोहनीयस्य षोडश भेदा भवन्ति, यथा-अनन्तानुबन्धी क्रोधो मानो, माया, लोभः ४, अनन्तोऽनन्तः संसारो नारक तिर्यग्-मनुष्य-देव जन्म-जरा-मरण परम्परालक्षणः, तदनुबन्धादनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभा-श्चत्वारः कषायाः४। तत्र क्रोधः-कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकाऽक्षमारूप आत्म-परिणामः। मानो-गर्वः, माया-शाठ्यम्, लोभो-लुब्धता। अनन्तानुबन्धि-

---

(४) मोहनीय की अट्ठाईस-सम्यक्त्वमोहनीय मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्वमोहनीय, ये तीन दर्शनमोहनीय की, तथा पच्चीस चारित्रमोहनीय की कुल अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं। चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं—कषायचारित्र मोहनीय, और नोकषायचारित्रमोहनीय। कषायचारित्रमोहनीय के सोलह भेद हैं, जैसे-अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया, लोभ। जो कषाय, नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में जन्म-जरा-मरण रूप अनन्त संसार का अनुबंध करे, वह अनन्तानुबन्धी है। उस के चार भेद हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट कर देने वाला अक्षमारूप आत्मा का परिणाम क्रोध कहलाता है। गर्व को मान कहते हैं। माया का अर्थ कपट है। गृद्धिभाव (लालच) लोभ कहलाता है। अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क में क्रोध को पर्वत की राजि

---

(४) મોહનીયકર્મની અઠ્ઠાવીસ છે. (૧) સમ્યક્ત્વમોહનીય, મિશ્રમોહનીય, અને મિથ્યાત્વમોહનીય, આ ત્રણ દર્શનમોહનીયની, તથા પચીસ ચારિત્રમોહનીયની, એ પ્રમાણે કુલ અઠ્ઠાવીસ પ્રકૃતિઓ છે. ચારિત્રમોહનીયની પચીસ પ્રકૃતિઓ આ પ્રમાણે છેઃ– ચારિત્રમોહનીયના બે ભેદ છે (૧) કષાયચારિત્રમોહનીય અને (૨) નોકષાયચારિત્રમોહનીય, કષાયચારિત્રમોહનીયના સોળ ભેદ છે જેમકે—અનન્તાનુબંધી ક્રોધ, માન, માયા લોભ. જે કષાય નારક તિર્યંચ, મનુષ્ય, અને દેવગતિમાં જન્મ, જરા, મરણરૂપ અનન્ત સંસારનો અનુબંધ કરે તે અનન્તાનુબંધી છે તેના ચાર ભેદ છે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ, કર્તવ્ય-અકર્તવ્યના વિવેકનો નાશ કરવાવાળા અક્ષમારૂપ આત્માનો પરિણામ તે ક્રોધ કહેવાય છે ગર્વને માન કહે છે. માયાનો અર્થ કપટ છે લાલચ તે લોભ કહેવાય છે અનન્તાનુબંધી કષાયચતુષ્કમાં ક્રોધને પર્વતની રાજિનું (પત્થર કપાયેલી

उत्तरप्रकृतिसंख्या—

ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकशतं १४८ भवन्ति । तथाहि—

(१) ज्ञानावरणीयस्य-मति-श्रुता-ऽवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानावरणीय-भेदात् पञ्च।

(२) दर्शनावरणीयस्य-चक्षुर्दर्शना-ऽचक्षुर्दर्शना-ऽवधिदर्शन-केवलदर्शनावरणीयानि चत्वारि, तथा-निन्द्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानर्द्धिभेदात् पञ्च मिलित्वा नव भवन्ति।

(३) वेदनीयस्य शाताशातभेदेन द्वौ भेदौ स्तः।

उत्तरप्रकृतियोंकी संख्या—

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों की सख्याएँ (मध्यमविवक्षा से) १४८ हैं। वे इस प्रकार—

(१) ज्ञानावरणीय की पांच-(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मन पर्ययज्ञानावरणीय, (५) केवलज्ञानावरणीय।

(२) दर्शनावरणीय की नौ-(१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, (४) केवलदर्शनावरणीय, तथा (५) निद्रा, (६) निद्रानिद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचला-प्रचला, (९) स्त्यानर्द्धि, ये पांच निद्राएँ मिलकर कुल नौ प्रकृतियाँ हैं।

(३) वेदनीय की दो-सातावेदनीय और असातावेदनीय।

ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોની ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સખ્યા (મધ્યમ વિવક્ષાથી) એકસોને અડતાલીસ (૧૪૮) છે તે આ પ્રમાણે—

(૧) જ્ઞાનાવરણીયની પાચ - (૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મન પર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) કેવલજ્ઞાનાવરણીય

(૨) દર્શનાવરણીયની નવ છે (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રા-નિદ્રા (૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા-પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનર્દ્ધિ, આ પાચ નિદ્રાઓ મળીને કુલ નવ પ્રકૃતિઓ થાય છે.

(૩) વેદનીયની બે (૧) સાતાવેદનીય અને અસાતાવેદનીય.

प्रत्याख्यानावरणीयत्वात् = अप्रत्याख्यानावरणीयम्। यद्वा-अल्पार्थो नञ्, अल्पं प्रत्याख्यानम्=अप्रत्याख्यानम्, तस्यावरणीयमिति। अल्पं=देशविरतिरूपं प्रत्याख्यानं समावृणोति कषायचतुष्टयम्, तस्मादप्रत्याख्यानावरणीयमित्युच्यते। यः कषायः स्वल्पं देशविरतिरूपमावृणोति स सर्वविरतिरूपं प्रत्याख्यानमावृणोत्येवेति नात्र चित्रम्। यत्कर्मोदयादाविर्भूताः कषायाः केवलं विरतिमात्रमावृण्वन्ति ते त्वप्रत्याख्यानावरणीयाः कषायाः।

एवं प्रत्याख्यानावरणीयकषायाः क्रोधादयश्चत्वारः। अत्र प्रत्याख्यानशब्देन सर्वविरतिपरिग्रहः। ये पुनः कषायाः सर्वविरतिमेव प्रतिबध्नन्ति, न तु देशविरतिं ते प्रत्याख्यानावरणीया इति।

कहलाता है। अथवा 'नञ्' अल्प-अर्थ में है, अर्थात् अल्प प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कहलाता है, उसका आवरणीय अप्रत्याख्यानावरणीय है। यह कषायचतुष्टय अल्प अर्थात् देशविरतिरूप प्रत्याख्यान को आवृत करता है, इस कारण यह अप्रत्याख्यानावरणीय कहलाता है। जो कषाय स्वल्प देशविरति को भी नहीं होने देता वह सर्वविरति को न होने दे, इस में आश्चर्य ही क्या है ?। जिस कर्म के उदय से आविर्भूत कषाय केवल विरतिमात्र को रोकते हैं, वे अप्रत्याख्यानावरणीय कहलाते हैं।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार प्रत्याख्यानावरणीय हैं। यहां प्रत्याख्यान शब्द से सर्वविरति का ग्रहण किया गया है। जो कषाय सिर्फ सर्वविरति का ही घात करते हैं, देशविरति का नहीं वे प्रत्याख्यानावरणीय कहलाते हैं।

અલ્પ પ્રત્યાખ્યાન અપ્રત્યાખ્યાન કહેવાય છે તેનું આવરણીય અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય છે આ કષાયચતુષ્ટય અલ્પ અર્થાત્ દેશવિરતિરૂપ પ્રત્યાખ્યાનને આવૃત કરે છે (રોકી રહે છે) એ કારણથી એ અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે જે કષાય સ્વલ્પ દેશવિરતિને પણ થવા દેતા નથી. તે સર્વવિરતિને નહિ થવા દે. એમાં આશ્ચર્ય જ શું છે? જે કર્મના ઉદયથી આવિર્ભૂત (ઉત્પન્ન થયેલા) કષાય કેવલ વિરતિમાત્રને રોકે છે, તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે

આ પ્રમાણે ક્રોધ આદિ ચાર પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય છે, અહિં પ્રત્યાખ્યાન શબ્દથી સર્વવિરતિનું ગ્રહણ કર્યું છે જે કષાય, માત્ર સર્વવિરતિનો ઘાત કરે છે, દેશવિરતિનો નહી, તે પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે

कषायचतुष्टये क्रोधस्य पर्वतराजिः, मानस्य शैलस्तम्भः, मायायाः–वंशमूल, लोभस्य–कृमिजरागः, उदाहरणम् ।

एवमप्रत्याख्यानावरणीयकषायाः क्रोधादयश्चत्वारः४ । तत्र प्रत्याख्यानं द्विविधम् – देशविति–सर्वविरति–भेदात् । प्रत्याख्यानमित्यत्र प्रतिशब्दः । प्रतिषेधवाची, प्रतिषेधस्याख्यानं=प्रकाशनम्–प्रत्याख्यानम् । 'सर्वान् प्राणिनो न हन्मि यावज्जीवम्' इत्यादि भावतः स्वाचार्यादि समीपे प्रकाशनमित्यर्थः । प्रत्याख्यानस्यावरणीयम् प्रत्याख्यानावरणीयम्, न प्रत्याख्यानावरणीयम् = अप्रत्याख्यानावरणीयम् । अत्रोपमार्थो 'नञ्'–शब्दः ।

(पर्वत फटने से उत्पन्न हुई दरार,) का, मान को शैलस्तभका, मायाको वांसकी जडका और लोभको किरमिची रगका उदाहरण दिया गया है ।

इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण के क्रोध आदि चार भेद हैं । प्रत्याख्यान दो प्रकारका है–देशविरति और सर्वविरति । 'प्रत्याख्यान' शब्द में 'प्रति' उपसर्ग निषेध-वाचक है, अर्थात् प्रतिषेध का प्रकाश करना प्रत्याख्यान है, अर्थात् "मै जीवनपर्यन्त किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करूँगा" इत्यादि प्रकार से भावपूर्वक अपने आचार्य आदि के समक्ष प्रकाशित करना प्रत्याख्यान है । प्रत्याख्यान का आवरणीय प्रत्याख्यानावरणीय कहलाता है । जो प्रत्याख्यानावरणीय न हो वह अप्रत्याख्यानावरणीय है । यहाँ 'नञ्' शब्द उपमा के अर्थ में है, अर्थात् जो कषाय प्रत्याख्यानावरणीय के समान हो वह अप्रत्याख्यानावरणीय

ઉત્પન્ન થયેલી ફાટ–ચીર) માનને શૈલસ્તભનુ, માયાને વાસની જડનુ અને લોભને કિરમીચ રંગનુ ઉદાહરણ આપ્યુ છે

આ પ્રમાણે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણના ક્રોધ આદી ચાર ભેદ છે પ્રત્યાખ્યાન બે પ્રકારના છે–દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિ 'प्रत्याख्यान' શબ્દમા 'प्रति' ઉપસર્ગ નિષેધ-વાચક છે અર્થાત્ પ્રતિષેધનો પ્રકાશ કરવો તે પ્રત્યાખ્યાન છે અર્થાત્ "હુ જીવન સુધી કોઈ પણ પ્રાણીની હિંસા કરીશ નહી" ઇત્યાદિ પ્રકારે ભાવપૂર્વક પોતાના આચાર્ય આદિના સમક્ષ પ્રકાશિત કરવું તે પ્રત્યાખ્યાન છે પ્રત્યાખ્યાન નો આવરણીય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે જે પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય ન હોય તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય છે અહિં 'नञ्' શબ્દ ઉપમાના અર્થમા છે અર્થાત્—જે કષાય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયની સમાન હોય તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે અથવા 'नञ्' અલ્પ–થોડુ–એવા અર્થમા છે અર્થાત્

प्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्टये क्रोधस्य-वालुकाराजिः, मानस्य-काष्ठस्तम्भः, मायाया-गच्छद्बलीवर्दमूत्रिका, लोभस्य-खञ्जनरागः।

संज्वलनकषायचतुष्टये क्रोधस्य-सलिलराजिः, मानस्य-तृणस्तम्भः, मायाया-रथकारतक्षितकाष्ठसंभविवल्कः, लोभस्य-हरिद्रारागः इति।

नोकषायमोहनीयस्य नव भेदाः सन्ति-हास्यं, रतिः, अरतिः, शोकः, भयं, जुगुप्सा, पुरुषवेदः, स्त्रीवेदः, नपुंसकवेद इति २५।

(५) आयुष्यकर्म चतुर्विधम्-नारक-तैर्यग्-मानुष-दैवायुर्भेदात्। यस्योदयात् प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुयायीभूत आत्मा नारकादिभावेन जीवति, यस्य च

प्रत्याख्यानावरणीय कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण बालू में खींची हुई लकीर है। मान का उदाहरण काठका खम्भा है। माया का उदाहरण चलते हुए बैल के मूत्र की टेढ़ी-मेढ़ी लकीर है और लोभ का उदाहरण खञ्जन-राग है।

संज्वलन कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण जल में बनाई हुई लकीर है। मानका उदाहरण तिनके का स्तम्भ है। माया का उदाहरण बढ़ई द्वारा छीले हुए काठका छिल्का है, और लोभ का उदाहरण हल्दी का रंग है।

नोकषाय मोहनीय के नौ भेद हैं-हास्य रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद २५।

(५) आयुष्य कर्म के चार भेद हैं-नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु। जिस कर्म के उदय से प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुयायी अर्थात् जिस कर्म के उदय से उस-उस गतियोग्य प्रकृतिविशेष में स्थित आत्मा नारक आदि के रूप में जीता है

પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કષાયની ચોકડીનું ઉદાહરણ-ક્રોધનું ઉદાહરણ-રેતીમાં કરેલી લીટી છે માનનું ઉદાહરણ-કાષ્ઠનો થાંભલો છે માયાનું ઉદાહરણ-ચાલતા બળદીઆના મૂત્રની વાંકી-ચૂકી લીટી છે અને લોભનું ઉદાહરણ-ખંજન-રાગ છે

સંજ્વલન કષાયની ચોકડીના ઉદાહરણ-ક્રોધનું ઉદાહરણ-પાણીમાં કરેલી લીટી છે. માનનું ઉદાહરણ તણખલાનો થાંભલો છે માયાનું ઉદાહરણ બર્ઢ દ્વારા (સુતાર દ્વારા) છોલેલા લાકડાની છાલ છે અને લોભનું ઉદાહરણ-હળદરનો રંગ છે

નોકષાયમોહનીયના નવ ભેદ છે-હાસ્ય, રતિ અરતિ, શોક, ભય, જુગુપ્સા, પુરુષવેદ, સ્ત્રીવેદ, અને નપુંસકવેદ. ૨૫.

(૫) આયુષ્ય-કર્મના ચાર ભેદ છે-નરકાયુ, તિર્યંચાયુ, મનુષ્યાયુ અને દેવાયુ જે કર્મના પ્રાયોગ્યપ્રકૃતિવિશેષાનુયાયી, અર્થાત્ જે કર્મના ઉદયથી તે-તે ગતિયોગ્ય પ્રકૃતિવિશેષમાં સ્થિત આત્મા નારકી આદિના રૂપમાં જીવે છે, અને જેના ક્ષયથી મરણ

प्रत्याख्यानस्य देशविरतिसर्वविरतिरूपस्य परिणामद्वयस्योत्पत्तेर्विघातकत्वात् प्रत्याख्यानावरणीया उच्यन्ते, न तु विद्यमानस्य प्रत्याख्यानस्य विघातकतयेति तत्त्वम् ।

एवं संज्वलनकपायाः क्रोधादयश्चत्वारः ४ । समस्तसावद्ययोगविरतं संयमरतमपि यतिं दुःसहपरिषहसपाते सज्वलयन्ति=मालिन्यमापादयन्ति – इति संज्वलनाः । (१६) ।

अप्रत्याख्यानावरणीयकपायचतुष्टये दृष्टान्ता उच्यन्ते–क्रोधस्य–तडागभूमिराजिः, मानस्यास्थिस्तम्भः, मायायाः मेपशृङ्गः, लोभस्य कर्दमरागः ।

देशविरति और सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान की उत्पत्ति का घातक होने से इसे प्रत्याख्यानावरणीय कहते हैं, पहले से विद्यमान प्रत्याख्यान का घातक होने से नहीं ।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार सज्वलन कपाय है । सब प्रकार के सावद्य योग से निवृत्त सयम में लीन मुनि को दु सह परीषह उपस्थित होने पर जलाने वाला अर्थात् मलिनता उत्पन्न करने वाला कषाय सज्वलन कहलाता है ।

अप्रत्याख्यानावरणीयकषायचौकडी के दृष्टान्त वतलाते हैं–क्रोध का दृष्टान्त तडागभूमिराजि है, अर्थात् तालाव की भूमि फटने से उत्पन्न होनेवाली दरार के समान यह क्रोध होता है । मान का उदाहरण हड्डीका स्तभ है । मायाका उदाहरण मेढाका सींग है और लोभ का दृष्टान्त गाडी का ओंगन (गाडी के पैये में दिये हुए तेल का कीटा) है ।

દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિરૂપ પ્રત્યાખ્યાનની ઉત્પત્તિનુ ઘાતક હોવાથી તેને પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહે છે, પહેલાથી વિદ્યમાન પ્રત્યાખ્યાનનુ ઘાતક હોવાથી નહિ.

એ પ્રમાણે ક્રોધ આદિ ચાર સજ્વલન કષાય છે, સર્વ પ્રકારના સાવદ્ય યોગથી નિવૃત્ત, સયમમા લીન મુનિને દુસ્સહ પરીષહ આવી આસ થતા જલાવવાવાળા અર્થાત્ મલિનતા ઉત્પન્ન કરવાવાળા કષાય સજ્વલન કહેવાય છે

અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય–કષાય–ચોકડીનું દૃષ્ટાન્ત બતાવે છે–ક્રોધનુ દૃષ્ટાન્ત તલાવની ભૂમિરાજિ છે. અર્થાત્ તલાવની ભૂમિ ફાટવાથી ઉત્પન્ન થયેલી ફાટ–ચીરના સમાન એ ક્રોધ હોય છે. માનનુ ઉદાહરણ હાડકાનો સ્તભ છે. માયાનુ ઉદાહરણ ઘેટાના સીગ છે, અને લોભનું દૃષ્ટાન્ત ગાડીની મળી (ગાડીનાં પૈડાંમા અપાયેલા તેલનું કીટુ) છે

प्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्टये क्रोधस्य-वालुकाराजिः, मानस्य-काष्ठस्तम्भः, मायाया-गच्छद्बलीवर्दमूत्रिका, लोभस्य-खञ्जनरागः।

संज्वलनकषायचतुष्टये क्रोधस्य-सलिलराजिः, मानस्य-तृणस्तम्भः, मायाया-रथकारतक्षितकाष्ठसंवलितत्वक्, लोभस्य-हरिद्राराग इति।

नोकषायमोहनीयस्य नव भेदाः सन्ति-हास्य, रतिः, अरति, शोकः, भयं, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेदः, नपुंसकवेद इति २५।

(५) आयुष्यकर्म चतुर्विधम्-नारक-तैर्यग्-मानुष-दैवायुर्भेदात्। यस्योदयात् प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुयायीभूत आत्मा नारकादिभावेन जीवति, यस्य च

प्रत्याख्यानावरणीय कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण बालू में खींची हुई लकीर है। मान का उदाहरण काठका खंभा है। माया का उदाहरण चलते हुए बैल के मूत्र की टेढी-मेढी लकीर है और लोभ का उदाहरण खंजन-राग है।

संज्वलन कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण जल में बनाई हुई लकीर है। मानका उदाहरण तिनके का स्तम्भ है। माया का उदाहरण बढ़ई द्वारा छीले हुए काठका छिलका है, और लोभ का उदाहरण हल्दी का रंग है।

नोकषाय मोहनीय के नौ भेद हैं-हास्य, रति अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद २५।

(५) आयुष्य कर्म के चार भेद हैं-नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु। जिस कर्म के उदय से प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुयायी अर्थात् जिस कर्म के उदय से उस-उस गतियोग्य प्रकृतिविशेष में स्थित आत्मा नारक आदि के रूप में जीता है

પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કષાયની ચોકડીનું ઉદાહરણ-ક્રોધનું ઉદાહરણ-રેતીમાં કરેલી લીટી છે. માનનું ઉદાહરણ-કાષ્ઠનો થાંભલો છે માયાનું ઉદાહરણ-ચાલતા બળદીઆના મૂત્રની વાંકી-ચૂકી લીટી છે અને લોભનું ઉદાહરણ-ખંજન-રાગ છે

સંજ્વલન કષાયની ચોકડીના ઉદાહરણ-ક્રોધનું ઉદાહરણ-પાણીમાં કરેલી લીટી છે માનનું ઉદાહરણ તણખલાનો થાંભલો છે. માયાનું ઉદાહરણ બઢઈ દ્વારા (સુતાર દ્વારા) છોલેલા લાકડાની છાલ છે અને લોભનું ઉદાહરણ-હળદરનો રંગ છે

નોકષાયમોહનીયના નવ ભેદ છે-હાસ્ય, રતિ અરતિ શોક, ભય, જુગુપ્સા, પુરુષવેદ, સ્ત્રીવેદ, અને નપુંસકવેદ. ૨૫.

(૫) આયુષ્ય-કર્મના ચાર ભેદ છે-નરકાયુ, તિર્યચાયુ, મનુષ્યાયુ અને દેવાયુ જે કર્મના પ્રાયોગ્યપ્રકૃતિવિશેષાનુયાયી, અર્થાત્ જે કર્મના ઉદયથી તે-તે ગતિયોગ્ય પ્રકૃતિવિશેષમાં સ્થિત આત્મા નારકી આદિના રૂપમાં જીવે છે, અને જેના ક્ષયથી મરણ

क्षयान्मृत उच्यते, तदायुः। यद्वा-आनीयन्ते शेषप्रकृतयः उपभोगाय जीवेन यस्मिन्, तदायुः। यथा-कांस्यादिपात्रे शाल्योदनव्यञ्जनादयो भोक्त्रा भोक्तुमानीयन्ते, तद्वत्।

(६) नमयति=प्रापयति नारकादिसंज्ञां जीवमिति नाम। नामकर्मणस्त्रिनवतिर्भेदाः भवन्ति।

तत्र मूलभेदाः द्विचत्वारिंशत्। तथाहि—

(१) गतिनाम, (२) जातिनाम, (३) शरीरनाम, (४) अङ्गोपाङ्गनाम, (५) निर्माणनाम, (६) वन्धननाम, (७) संघातनाम, (८) संस्थाननाम, (९) संहनननाम, (१०) वर्णनाम, (११) गन्धनाम, (१२) रसनाम, (१३) स्पर्श-

---

और जिस के क्षय से मर जाता है, उसे आयुकर्म कहते हैं। अथवा जिस में जीव भोगने के लिए अन्य प्रकृतियों को लाता है वह आयु है, जैसे कासे आदि के भाजन में चावल, ओदन, व्यजन आदि वस्तुएँ भोगने वाला पुरुष लाता है, उसी प्रकार शेष प्रकृतियाँ आयु में भोगी जाती हैं।

(६) नाम—कर्म के तेरानवे (९३) भेद—जो कर्म जीव को नारक आदि सज्ञाओं का पात्र बनाता है, वह नामकर्म कहलाता है। उसके तेरानवे भेद हैं। उन में भी मूल भेद बयालीस हैं, वे इस प्रकार—(१) गतिनाम, (२) जातिनाम, (३) शरीरनाम, (४) अङ्गोपाङ्गनाम, (५) निर्माणनाम, (६) वन्धननाम, (७) सघातनाम, (८) सस्थाननाम, (९) सहनननाम (१०) वर्णनाम, (११) गन्धनाम, (१२) रसनाम, (१३) स्पर्शनाम, (१४) आनुपूर्वीनाम,

---

પામે છે, તેને આયુકર્મ કહે છે અથવા જેમા જીવ અન્ય પ્રકૃતિઓને ભોગવવા માટે લાવે છે તે આયુ છે જેમ કે કાસા આદિના વાસણુમા ચોખા, ભાત, વ્યજન (શાક) આદિ વસ્તુઓ ભોગવવાવાળા પુરૂષ લાવે છે તે પ્રમાણે શેષ-પ્રકૃતિઓ આયુમા ભોગવાય છે.

(૬) નામકર્મના ત્રાણુ (૯૩) ભેદ છે જે કર્મ જીવને નારકી આદિ સ જ્ઞાઓનુ પાત્ર બનાવે છે, તે નામકર્મ કહેવાય છે, તેના ત્રાણુ (૯૩) ભેદ છે તેમા પણુ મૂલ ભેદ બેતાલીસ છે તે આ પ્રમાણે—(૧) ગતિનામ,(૨) જાતિનામ,(૩) શરીરનામ,(૪) અ ગોપાગનામ,(૫) નિર્માણુનામ,(૬) બ ધનનામ,(૭) સ ઘાતનામ,(૮) સ સ્થાનનામ,(૯) સ હનનનામ, (૧૦) વર્ણુમાન,(૧૧)ગ ધનામ,(૧૨)રસનામ, (૧૩) સ્પર્શનામ, (૧૪) આનુપૂર્વીનામ,(૧૫)

नाम, (१४) आनुपूर्वीनाम, (१५) अगुरुलघुनाम, (१६) उपघातनाम, (१७) पराघातनाम, (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विहायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम, (२४) त्रसनाम, (२५) स्थावरनाम, (२६) सुभगनाम, (२७) दुर्भगनाम, (२८) सुस्वरनाम, (२९) दुःस्वरनाम, (३०) शुभनाम, (३१) अशुभनाम, (३२) सूक्ष्मनाम, (३३) बादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिर नाम, (३७) अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४) यशोनाम, (४१) अयशोनाम, (४२) तीर्थङ्करनाम।

एते मूलभेदाः पिण्डप्रकृतिनाम्नापि कथ्यन्ते। अत्र गत्यादिचतुर्दशपिण्ड प्रकृतीनामुत्तरप्रकृतयः- पञ्चषष्टिः (६५)।

---

(१५) अगुरुलघुनाम, (१६) उपघातनाम, (१७) पराघातनाम, (१८) आतपनाम (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विहायोगतिनाम (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम, (२४) त्रसनाम, (२५) स्थावरनाम (२६) सुभगनाम (२७) दुर्भगनाम, (२८) सुस्वरनाम (२९) दुस्वरनाम, (३०) शुभनाम, (३१) अशुभनाम, (३२) सूक्ष्मनाम, (३३) बादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७) अस्थिर-नाम, (३८) आदेयनाम (३९) अनादेयनाम, (४०) यशःकीर्तिनाम, (४१) अयशःकीर्ति नाम, और (४२) तीर्थंकरनाम-कर्म।

इन बयालीस प्रकृतियों में जिन प्रकृतियों के अवान्तर भेद हैं, उन्हें पिण्ड प्रकृति कहते हैं। गति आदि चौदह पिण्डप्रकृतियाँ हैं और उनके पैंसठ (६५) भेद होते हैं।

અગુરુલઘુનામ, (૧૬) ઉપઘાતનામ,(૧૭)પરાઘાતનામ, (૧૮)આતપનામ, (૧૯)ઉદ્યોતનામ, (૨૦) ઉચ્છ્વાસનામ, (૨૧) વિહાયોગતિનામ, (૨૨) પ્રત્યેકશરીરનામ, (૨૩) સાધારણ શરીરનામ, (૨૪) ત્રસનામ, (૨૫) સ્થાવરનામ, (૨૬) સુભગનામ,(૨૭) દુર્ભગનામ, (૨૮) સુસ્વરનામ, (૨૯) દુસ્વરનામ (૩૦) શુભનામ, (૩૧) અશુભનામ, (૩૨) સૂક્ષ્મનામ, (૩૩) બાદરનામ, (૩૪) પર્યાપ્તિનામ, (૩૫) અપર્યાપ્તનામ, (૩૬) સ્થિરનામ, (૩૭) અસ્થિરનામ, (૩૮) આદેયનામ, (૩૯) અનાદેયનામ, (૪) યશઃકીર્તિનામ, (૪૧) અયશઃકીર્તિનામ, (૪૨) તીર્થંકરનામ-કર્મ

આ બેતાલીસ પ્રકૃતિઓમાં જે પ્રકૃતિઓના અવાન્તર ભેદ છે તેને પિંડપ્રકૃતિ કહે છે. ગતિ આદિ ચૌદ પિંડપ્રકૃતિઓ છે અને પાંસઠ (૬૫) તેના ભેદ છે

[१] गतिनाम्नः पिण्डप्रकृतेश्चत्वारो भेदाः— नरकगतिनाम, तिर्यग्गतिनाम, मनुष्यगतिनाम, देवगतिनाम च ।

[२] जातिनाम्नो भेदाः पञ्च – एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम, पञ्चेन्द्रियजातिनाम ।

[३] शरीरनाम पञ्चविधम्–औदारिकशरीरनाम, वैक्रियशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम ।

[४] अङ्गान्युपाङ्गनि च यस्य कर्मण उदयाद्भवन्ति, तदङ्गोपाङ्गनामकर्म । तत् त्रिविधम्–औदारिक–वैक्रियका–ऽऽहारक–भेदात् । तत्राङ्गान्यष्टौ–उरः, शिरः,

---

[१] गतिनामकर्म के चार भेद—नरकगतिनामकर्म, तिर्यंचगतिनामकर्म, मनुष्यगति-नामकर्म और देवगतिनामकर्म ।

[२] जातिनामकर्म के पाच भेद हैं—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रिय-जातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम और पञ्चेन्द्रियजातिनाम—कर्म ।

[३] शरीरनामकर्म के पाच भेद हे—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियशरीरनाम, आहारक-शरीरनाम, तैजसशरीरनाम और कार्मणशरीरनाम—कर्म ।

[४] जिस कर्म के उदय से अङ्ग और उपाङ्ग होते है वह अङ्गोपाङ्गशरीरनामकर्म, कहलाता है । उसके तीन भेद हैं औदारिक—अङ्गोपाङ्ग, वैक्रिय—अङ्गोपाङ्ग और आहारक अङ्गोपाङ्ग । इन में अङ्ग आठ होते है—छाती, सिर, पीठ, पेट, दो हाथ और दो पैर । वन्दना करने में पाच अङ्ग प्रशस्त माने जाते हैं—दो पैर, दो हाथ, और सिर । यहाँ

---

(१) ગતિનામકર્મના ચાર ભેદ—નરકગતિનામકર્મ, તિર્યંચગતિનામકર્મ, મનુષ્યગતિનામકર્મ અને દેવગતિનામ-કર્મ.

(૨) જાતિનામકર્મના પાચ ભેદ છે—એકેન્દ્રિયજાતિનામ, દ્વીન્દ્રિયજાતિનામ, ત્રીન્દ્રિયજાતિનામ, ચતુરિન્દ્રિયજાતિનામ, અને પચેન્દ્રિયજાતિનામ-કર્મ.

(૩) શરીરનામકર્મના પાચ ભેદ છે—ઔદારિકશરીરનામ, વૈક્રિયશરીરનામ, આહારકશરીરનામ, તૈજસશરીરનામ, અને કાર્મણશરીરનામ-કર્મ

જે કર્મના ઉદયથી અગ અને ઉપાગ થાય છે તે અગોપાગશરીરનામકર્મ કહેવાય છે તેના ત્રણ ભેદ છે ઔદારિકઅગોપાગ, વૈક્રિયઅગોપાગ અને આહારક -અગોપાગ તેમા અગ આઠ હોય છે- છાતી, શિર, પીઠ, પેટ બે હાથ અને બે પગ વંદના કરવામા પાચ અગ પ્રશસ્ત માન્યા છે. બે પગ બે હાથ અને શિર-માથુ. અહિં

पृष्ठम्, उदरं, करौ, पादौ च। वन्दने तु पञ्चाङ्गान्येव प्रशस्तानि— द्वौ चरणौ, द्वौ करौ, शिरश्चेति। तत्र चरणावित्यनेन जानुनी गृह्येते। एतानि पञ्चाङ्गानि भूमावारोप्य वन्दनं पञ्चाङ्गवन्दनम्। अष्टानामङ्गानामेकैकस्योपाङ्गमनेकप्रकारम्, तत्र शिरोऽङ्गस्योपाङ्गनामानि—यथा—मस्तिष्क—कपाल—कृकाटिका—शङ्ख—ललाट—तालु—कपोल—हनु—चिबुक—दशनौ—ओष्ठ—भ्रू—नयन—कर्ण—नासादीनि। तत्र मस्तिष्कं शिरोऽङ्गस्यारम्भकोऽवयवः।

ननु मस्तिष्कं धातुविशेषो न त्वङ्गं नाप्युपाङ्गम्? इति चेत्, उच्यते—कपालादिवत् शिरोऽङ्गस्यारम्भकत्वान्मस्तिष्कमप्युपाङ्गं शिरसोऽवगन्तव्यम्।

स्थावरपञ्चके उरःप्रभृतीन्यङ्गानि न सन्ति।

पैरों का अभिप्राय घुटना समझना चाहिए। इन पांचों अङ्गों को भूमि पर टिका कर वन्दना करना पञ्चाङ्गवन्दना है। इन आठों अङ्गों में से प्रत्येक अङ्ग के अनेक उपाङ्ग हैं। उन में से शिरअङ्ग के उपाङ्ग इस प्रकार हैं—मस्तिष्क, कपाल, कृकाटिका, शंख ललाट, तालु, कपोल, हनु, दाढी, चिबुक (ठोडी) दांत ओठ भौंह, नेत्र कान, नाक, आदि। मस्तिष्क, शिररूप अङ्ग का आरम्भक अवयव है।

'मस्तिष्क एक प्रकार की धातु है, अङ्ग नहीं है और न उपाङ्ग ही है' इसका समाधान यह है कि—कपाल आदि के समान शिररूप अङ्ग का आरम्भक होने के कारण मस्तिष्क शिर का उपाङ्ग ही है।

पांच स्थावरों में छाती आदि अङ्ग नहीं होते।

પગનો અભિપ્રાય ઘુંટણ સમજવું જોઈએ. આ પાંચ અંગોને ભૂમિપર અડાડીને વંદના કરવી તે પંચાંગ વંદના છે. આ આઠે અંગોમાંથી પ્રત્યેક અંગના અનેક ઉપાંગ છે તેમાંથી શિર-અંગના ઉપાંગ આ પ્રમાણે છે—મસ્તિષ્ક કપાલ, કૃકાટિકા (ગ્રીવાનો ઉન્નત દેશ) શંખ (કર્ણસમીપનું અસ્થિ) લલાટ તાળુ, ગાલ, દાઢી, ચિબુક (હડપચી વચ્ચેનો છાછર ભાગ) દાંત, હોઠ, ભૌંહ, નેત્ર, કાન, નાક આદિ. મસ્તિષ્ક શિરરૂપ અંગનું આરંભક અવયવ છે.

મસ્તિષ્ક એક પ્રકારની ધાતુ છે, અંગ નથી અને ઉપાંગ પણ નથી તેનું સમાધાન એ છે કે—કપાલ આદિ પ્રમાણે શિરરૂપ અંગનું આરંભક હોવાના કારણે મસ્તિષ્ક શિરનું ઉપાંગજ છે.

પાંચ સ્થાવરોમાં છાતી આદિ અંગ નથી.

(५) शरीरनामकर्मोदयाद् गृहीतेषु गृह्यमाणेषु वा तद्योग्यपुद्गलेष्वात्मप्रदेशस्थितेषु शरीराकारेण परिणामितेष्वपि जतुकाष्ठवत् परस्परमवियोगलक्षणं वन्धननाम। यदीदं न स्यात् ततो वालुकापुरुषवद् विघटितानि शरीराणि स्युः। वन्धननाम पञ्चधा-औदारिकादिभेदात्।

(६) काष्ठपिण्डमृत्पिण्डायःपिण्डवत् वद्धानामपि पुद्गलानां संघातविशेषजनकं संघातनाम। यदि संघातनामरूपः कर्मभेदो न स्यात्तर्हि पुरुषयोषिद्गवादिरूपनानाशरीरभेदो न स्यात्। संघातविशेषजनकाऽन्यकर्मविशेषाभावात्।

---

[५] शरीरनामकर्म के उदय से ग्रहण किये हुए या ग्रहण किये जाते हुए आत्मप्रदेशों में स्थित और शरीर के आकार परिणत किये हुए शरीर के योग्य पुद्गलों में लाख और लकडी के समान परस्पर अवियोग होना वन्धननामकर्म है, अगर वन्धननामकर्म न होता तो वालू से वनाये हुए पुरुष के समान विखर जाता। औदारिक आदि के भेद से वन्धन के भी पांच भेद हैं।

[६] काष्ठपिंड, मृत्तिकापिंड या लोह के पिंड के समान बद्ध पुद्गलों में भी एक विशेष प्रकार का सघात (घनिष्ठता) उत्पन्न करने वाला कर्म सघातनामकर्म कहलाता है, और सघातनामकर्म न होता तो पुरुष स्त्री गो आदिरूप भेद शरीर में न होता, क्यों कि सघातविशेष उत्पन्न करने वाला अन्य कर्म ही नहीं है। कार्य, कारण जैसा

---

(૫) શરીરનામકર્મના ઉદયથી ગ્રહણ કરેલા અથવા ગ્રહણ કરવામા આવતા આત્મપ્રદેશોમા સ્થિત અને શરીરના આકારે પરિણત કરેલા શરીરના યોગ્ય પુદ્ગલોમા લાખ અને લાકડીના સમાન અવિયોગ હોવું તે બ ધનનામકર્મ છે અથવા બ ધનનામ કર્મ ન હોત તો રેતીથી બનાવેલા પુરૂષની સમાન વિખેરાઈ જાત. ઔદારિક આદિના ભેદથી બ ધનના પણ પાચ ભેદ છે

(૬) કાષ્ઠપિંડ, મૃતિકાપિંક, અથવા લોઢાના પિંડ સમાન બદ્ધ પુદ્ગલોમા પણ એક વિશેષ પ્રકારના સ ઘાત (ઘનિષ્ઠતા) ઉત્પન્ન કરવાવાળા કર્મ તે સ ઘાત–નામકર્મ કહેવાય છે અથવા સ ઘાતનામકર્મ ન હોય તો પુરૂષ, સ્રી, ગાય આદિ રૂપભેદ શરીરમા હોય નહિ કારણકે સ ઘાત–વિશષ ઉત્પન્ન કરવાવાળા અન્ય કર્મ જ નથી

कारणानुरूपं हि कार्यं दृष्टम्। संघातविशेषादेव हि विभागेन पुरुषादिशरीरव्यपदेशो भवति। संघातनाम पञ्चधा-औदारिकादिभेदात्।

[७] बध्यमानेषु शरीरयोग्यपुद्गलेषु यस्य कर्मण उदयात् आकारविशेषो भवति तत् संस्थाननाम। एतच्च षड्विधम्-(१) समचतुरस्रनाम-(२) न्यग्रोधपरिमण्डलनाम-(३) सादिनाम-(४) कुब्जनाम-(५) वामननाम-(६) हुण्डनामभेदात्।

[८] संहनननाम-अस्थ्नां बन्धविशेषः। तच्च षड्विधम्-(१) वज्रर्षभनाराचनाम, (२) अर्धवज्रर्षभनाराचनाम, (३) नाराचनाम, (४) अर्धनाराचनाम, (५) कीलिकानाम, (६) सेवार्तनाम च।

ही होता है। संघात की भिन्नता के कारण ही शरीरों में भी, पुरुष आदिका भेद-व्यवहार होता है। औदारिक आदि के भेद से संघात भी पाँच प्रकार का है।

[७] बाँधे जाते हुए शरीरयोग्य पुद्गलों में जिस कर्म के उदय से आकृति-विशेष बनता है उसे संस्थाननामकर्म कहते हैं। संस्थान छह प्रकारका है—

(१) समचतुरस्र-संस्थान, (२) न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान, (३) सादि-संस्थान, (४) कुब्जक-संस्थान (५) वामन-संस्थान, (६) हुण्डक-संस्थान।

[८] अस्थियों के बन्धविशेष को संहनननामकर्म कहते हैं। उसके छह भेद हैं—(१) वज्रर्षभनाराच-संहनन (२) अर्धवज्रर्षभनाराच-संहनन (३) नाराच-संहनन (४) अर्धनाराच-संहनन, (५) कीलिका-संहनन और (६) सेवार्त-संहनन।

કાર્ય કારણ જેવાંજ હોય છે સંઘાતની ભિન્નતાના કારણેજ શરીરોમાં પણ, પુરુષ આદિનો ભેદ-વ્યવહાર હોય છે ઔદારિક આદિના ભેદથી સંઘાત પણ પાંચ પ્રકારના છે

(૭) બંધાતા શરીરયોગ્ય પુદ્ગલોમાં જે કર્મના ઉદયથી આકૃતિવિશેષ બને છે. તેને સંસ્થાનનામકર્મ કહે છે સંસ્થાન છ પ્રકારના છે—(૧) સમચતુરસ્ર-સંસ્થાન, (૨) ન્યગ્રોધપરિમંડલ-સંસ્થાન, (૩) સાદિ-સંસ્થાન, (૪) કુબ્જક-સંસ્થાન, (૫) વામન-સંસ્થાન (૬) હુંડક-સંસ્થાન.

(૮) અસ્થિઓના બંધવિશેષને સંહનનનામકર્મ કહે છે. તેના છ ભેદ છે—(૧) વજ્રઋષભનારાચસંહનન, (૨) અર્ધવજ્રઋષભનારાચસંહનન, (૩) નારાચસંહનન, (૪) અર્ધનારાચસંહનન, (૫) કીલિકાસંહનન અને (૬) સેવાર્તસંહનન.

(९) औदारिकादिषु शरीरेषु यस्य कर्मण उदयात् कर्कशादिः स्पर्शविशेषो जायते, तत् स्पर्शनाम। स्पर्शनामाष्टधा–कर्कश–मृदु–गुरु–लघु–स्निग्ध–रूक्ष–शीतो–ष्णनामभेदात्।

(१०) रसनाम पञ्चविधम्–तिक्त–कटु–कषाया–ऽम्ल–मधुरभेदात्। लवणो मधुरान्तर्गत इति केचित्।

(११) शरीरविषय सौरभं दुर्गन्धित्वं च यस्य कर्मणो विपाकान्निर्वर्तते, तद् गन्धनाम। गन्धनाम द्विविधम्–सुगन्ध–दुर्गन्धभेदात्।

(१२) यस्योदयाच्छरीरेषु कृष्णादिपञ्चविधवर्णनिष्पत्तिर्भवति तद् वर्णनाम, तत् पञ्चविधम्–कृष्ण–नील–लोहित–पीत–शुक्लभेदात्। सर्वाणि चैतानि स्पर्शनामादीनि वर्णनामान्तानि शरीरवर्तिषु पुद्गलेषु परिणतानि भवन्ति।

---

(९) औदारिक आदि शरीरों में जिस कर्म के उदय से कठोर आदि स्पर्श उत्पन्न होता है उसे स्पर्शनामकर्म कहते हैं। स्पर्शनामकर्म आठ प्रकार का है–कठोर, कोमल, भारी, हल्का, चिकना, रूखा, शीत, और उष्ण।

(१०) रसनामकर्म पांच प्रकार का है–तीखा, कडुवा, कसैला, खट्टा और मीठा। किसी के मत से लवण मधुर रस के अन्तर्गत है।

(११) जिस कर्म के उदय से शरीर में सुगन्ध या दुर्गन्ध उत्पन्न होती है उसे गन्धनामकर्म कहते हैं। उसके दो भेद हैं–सुगन्धनाम और दुर्गन्धनाम।

(१२) जिस कर्म के उदय से शरीरों में कृष्ण आदि पांच वर्णों की उत्पत्ति होती है, वह वर्णनामकर्म है। इस के पांच भेद हैं–कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल, स्पर्श से लेकर वर्ण तक ये सब, शरीरवर्त्ती पुद्गलों में ही परिणत होते हैं।

---

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરોમા જે કર્મના ઉદયથી કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન થાય છે તેને સ્પર્શનામકર્મ કહે છે સ્પર્શનામકર્મના આઠ પ્રકારના છે–કઠોર, કોમલ, ભારી, હલકો, ચિકણો રૂખો, શીત અને ઉષ્ણ.

(૧૦) રસનામકર્મ પાચ પ્રકારે છે—તીખો, કડવો, કસાએલો, ખાટો અને મીઠો કેટલાકના મતથી લવણ મધુર રસની અન્તર્ગત છે

(૧૧) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા સુગધ અથવા દુર્ગધ ઉત્પન્ન થાય છે. તેને ગધનામકર્મ કહે છે તેના બે ભેદ છે–સુગધનામ અને દુર્ગધનામ

(૧૨) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા કૃષ્ણ આદિ પાચ વર્ણોની ઉત્પત્તિ થાય છે તે વર્ણનામકર્મ કહેવાય છે તેના પાચ ભેદ છે—કાળો, નીલો, રાતો, પીળો અને ધોળો સ્પર્શથી લઇને વર્ણ સુધી એ બધાય શરીરવર્તી પુદ્ગલોમાજ પરિણત થાય છે

(१३) नारकादिगतिं गन्तुरन्तर्गतौ वर्तमानस्य तदभिमुखमानुपूर्व्या [यथोक्तक्रमेण] तत्प्रापणसमर्थमानुपूर्वीनाम। गत्यन्तरं गच्छतो जीवस्य यत्कर्मोदयाद् विशेषेण तद्गमनानुपूर्व्यं स्यात्, तदपि-आनुपूर्वीशब्दवाच्यं भवति। यथा-वारिवेगो बलीवर्दादेः, यथा वा नस्योतस्य बलीवर्दस्य नासारज्ज्वां प्रतिबद्धा रज्जुः, तथाऽऽनुपूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकत्वयोपग्रहस्वरूपम्।

अन्तर्गतिश्च यावन्मनुष्यो नरकादिप्राप्त्युत्पत्तिस्थानं न प्राप्नोति तावत्कालिकी गतिः। सा द्विविधा-ऋज्वी, वक्रा च। तत्र यदा ऋज्व्या समय

(१३) नरक आदि गति में जाने वाला जीव-जो कि अन्तर्गति (विग्रहगति) में वर्तमान है, उसको उन नरक आदि गतियों की ओर अभिमुख करके आनुपूर्वी से अर्थात् उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुंचाने में जो कर्म समर्थ होता है, उस कर्म को आनुपूर्वीकर्म कहते हैं। यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि-गत्यन्तर में जाते हुए जीव को जिस कर्म के उदय होने पर उस गति में उस उस स्थान के क्रम से जाना होता है, इस लिये उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं। जैसे जलका प्रवाह बैलको अपनी ओर खींच लेता है। अथवा जैसे गाड़ीवान बैलको नाथ पकड़ कर अपनी ओर मोड़ लेता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म-जीवने जिस गतिका कर्म बांधा है उस गति में उसको पहुँचा देता है, इस लिये वह गति में पहुँचाने के लिये सहायक है।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोड़कर नरक आदि किसी गति में नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् बीचकी गतिको अन्तर्गति-विग्रहगति-कहते हैं। यह दो प्रकार की है-सरल और वक्र। जीव जब एकसमयप्रमाणवाली सरल (सीधी)

(૧૩) નરક આદિ ગતિમાં જવાવાળા જીવ જે કે-અન્તર્ગતિ (વિગ્રહગતિ)માં વર્તમાન છે તેને તે નરક આદિ ગતિઓની તરફ અભિમુખ કરીને આનુપૂર્વીથી અર્થાત્ તે તે સ્થાનના ક્રમથી તે તે ગતિઓમાં પહોંચાડવામાં જે કર્મ સમર્થ હોય છે તે કર્મને આનુપૂર્વી કર્મ કહે છે એ કે આનુપૂર્વી શબ્દનો અર્થ તે તે સ્થાનનો ક્રમ, એવો છે તો પણ ગત્યન્તરમાં જતે જીવને જે કર્મનો ઉદય થવાથી તે ગતિમાં તે તે સ્થાનના ક્રમથી જવું હોય છે આટલા માટે તે કર્મને આનુપૂર્વી કહે છે જેમ પાણીનો પ્રવાહ બળદીઆને પોતાની તરફ ખેંચી લે છે, અથવા જેમ ગાડીવાળો બળદીઆને તેની નાથ પકડીને પોતાની બાજુ મોડી લે છે તેજ પ્રમાણે આનુપૂર્વી કર્મ-જીવ જે ગતિનું કર્મ બાંધ્યું છે તે ગતિમાં તેને પહોંચાડી દે છે માટે તે ગતિમાં પહોંચાડવાને માટે સહાયક છે

જ્યાં સુધી મનુષ્ય પોતાની મનુષ્યગતિને મૂકીને નરક આદિ બીજી ગતિમાં નથી પહોંચ્યો ત્યાં સુધીની અર્થાત્ વચલી ગતિને અન્તર્ગતિ-વિગ્રહગતિ કહે છે. તે બે પ્રકારની હોય છે:-સરલ અને વક્ર. જીવ જ્યારે એકસમયપ્રમાણવાળી સરલ (સીધી) ગતિથી

(९) औदारिकादिषु शरीरेषु यस्य कर्मण उदयात् कर्कशादिः स्पर्शविशेषो जायते, तत् स्पर्शनाम। स्पर्शनामाष्टधा-कर्कश-मृदु-गुरु-लघु-स्निग्ध-रूक्ष-शीतो-ष्णनामभेदात्।

(१०) रसनाम पञ्चविधम्-तिक्त-कटु-कषाया-ऽम्ल-मधुरभेदात्। लवणो मधुरान्तर्गत इति केचित्।

(११) शरीरविषयं सौरभं दुर्गन्धित्वं च यस्य कर्मणो विपाकान्निर्वर्तते, तद् गन्धनाम। गन्धनाम द्विविधम्-सुगन्ध-दुर्गन्धभेदात्।

(१२) यस्योदयाच्छरीरेषु कृष्णादिपञ्चविधवर्णनिष्पत्तिर्भवति तद् वर्णनाम, तत् पञ्चविधम्-कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्लभेदात्। सर्वाणि चैतानि स्पर्शनामादीनि वर्णनामान्तानि शरीरवर्तिषु पुद्गलेषु परिणतानि भवन्ति।

---

(९) औदारिक आदि शरीरों में जिस कर्म के उदय से कठोर आदि स्पर्श उत्पन्न होता है उसे स्पर्शनामकर्म कहते हैं। स्पर्शनामकर्म आठ प्रकार का है—कठोर, कोमल, भारी, हल्का, चिकना, रूखा, शीत, और उष्ण।

(१०) रसनामकर्म पाच प्रकार का है—तीखा, कडुवा, कसैला, खट्टा और मीठा। किसी के मत से लवण मधुर रस के अन्तर्गत है।

(११) जिस कर्म के उदय से शरीर में सुगन्ध या दुर्गन्ध उत्पन्न होती है उसे गन्धनामकर्म कहते हैं। उसके दो भेद हैं—सुगन्धनाम और दुर्गन्धनाम।

(१२) जिस कर्म के उदय से शरीरों में कृष्ण आदि पांच वर्णों की उत्पत्ति होती है, वह वर्णनामकर्म है। इस के पांच भेद हैं—कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल, स्पर्श से लेकर वर्ण तक ये सव, शरीरवर्त्ती पुद्गलों में ही परिणत होते हैं।

---

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરોમા જે કર્મના ઉદયથી કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન થાય છે તેને સ્પર્શનામકર્મ કહે છે સ્પર્શનામકર્મના આઠ પ્રકારના છે—કઠોર, કોમલ, ભારી, હલકો, ચિકણો રૂખો, શીત અને ઉષ્ણ.

(૧૦) રસનામકર્મ પાચ પ્રકારે છે—તીખો, કડવો, કસાએલો, ખાટો અને મીઠો કેટલાકના મતથી લવણ મધુર રસની અન્તર્ગત છે

(૧૧) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા સુગધ અથવા દુર્ગધ ઉત્પન્ન થાય છે. તેને ગધનામકર્મ કહે છે તેના બે ભેદ છે—સુગધનામ અને દુર્ગધનામ

(૧૨) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા કૃષ્ણ આદિ પાચ વર્ણોની ઉત્પત્તિ થાય છે તે વર્ણનામકર્મ કહેવાય છે તેના પાચ ભેદ છે—કાળો, નીલો, રાતો, પીળો અને ધોળો. સ્પર્શથી લઇને વર્ણ સુધી એ બધાય શરીરવર્તી પુદ્ગલોમાજ પરિણત થાય છે.

(१३) नारकादिगतिं गन्तुरन्तर्गतौ वर्तमानस्य तदभिमुखमानुपूर्व्या [यथोत्तरक्रमेण] तत्प्रापणसमर्थमानुपूर्वीनाम। गत्यन्तरे गच्छतो जीवस्य यत्कर्मोदयात् विशेषेण तद्गमनानुगुण्यं स्यात्, तदपि-आनुपूर्वीशब्दवाच्यं भवति। यथा-वारिवेगो वलीवर्दादेः, यथा वा नस्योतस्य वलीवर्दस्य नासारज्ज्वां भवबद्धा रज्जुः, तथाऽऽनुपूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकतयोपग्रहस्वरूपम्।

अन्तर्गतिश्च यावन्मनुष्यो नरकादिप्राप्यमुत्पत्तिस्थानं न प्राप्नोति तावत्कालिकी गतिः। सा द्विविधा-ऋज्वी, वक्रा च। तत्र यदा ऋज्व्या समय-

---

(१३) नरक आदि गति में जाने वाला जीव-जो कि अन्तर्गति (विग्रहगति) में वर्तमान है, उसको उस नरक आदि गतियों की ओर अभिमुख करके आनुपूर्वी से अर्थात् उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुंचाने में जो कर्म समर्थ होता है, उस कर्म को आनुपूर्वीकर्म कहते हैं। यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि-गत्यन्तर में जाते हुए जीव को जिस कर्म के उदय होने पर उस गति में उस उस स्थान के क्रम से जाना होता है, इस लिये उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं। जैसे जलका प्रवाह बैलको अपनी ओर खींच लेता है। अथवा जैसे गाड़ीवान बैलको नाथ पकड़ कर अपनी ओर मोड़ लेता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म-जीवने जिस गतिका कर्म बाँधा है उस गति में उसको पहुँचा देता है, इस लिये वह गति में पहुँचाने के लिये सहायक है।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोड़कर नरक आदि किसी गति में नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् बीचकी गतिको अन्तर्गति-विग्रहगति-कहते हैं। यह दो प्रकार की है-सरल और वक्र। जीव जब एकसमयप्रमाणवाली सरल (सीधी)

---

(१३) नरक आदि गतिमां જ્વાવાળા જીવ જે કે-અન્તર્ગતિ (વિગ્રહગતિ)માં વર્તમાન છે તેને તે નરક આદિ ગતિઓની તરફ અભિમુખ કરીને આનુપૂર્વીથી અર્થાત્ તે તે સ્થાનના ક્રમથી તે તે ગતિઓમાં પહોંચાડવામાં જે કર્મ સમર્થ હોય છે તે કર્મને આનુપૂર્વી કર્મ કહે છે જો કે આનુપૂર્વી શબ્દનો અર્થ તે તે સ્થાનનો ક્રમ, એવો છે તો પણ ગત્યન્તરમાં જતે જીવને જે કર્મનો ઉદય થવાથી તે ગતિમાં તે તે સ્થાનના ક્રમથી જવું હોય છે, આટલા માટે તે કર્મને આનુપૂર્વી કહે છે જેમ પાણીનો પ્રવાહ બળદીયાને પોતાની તરફ ખેંચી લે છે, અથવા જેમ ગાડીવાળો બળદીયાને તેની નાથ પકડીને પોતાની બાજુ મોડી લે છે તેજ પ્રમાણે આનુપૂર્વીકર્મ-જીવ જે ગતિનું કર્મ બાંધ્યું છે તે ગતિમાં તેને પહોંચાડી દે છે માટે તે ગતિમાં પહોંચાડવાને માટે સહાયક છે

જ્યાં સુધી મનુષ્ય પોતાની મનુષ્યગતિને મૂકીને નરક આદિ બીજી ગતિમાં નથી પહોંચ્યો ત્યાં સુધીની અર્થાત્ વચલી ગતિને અન્તર્ગતિ-વિગ્રહગતિ કહે છે. તે બે પ્રકારની હોય છે-સરલ અને વક્ર. જીવ જ્યારે એકસમયપ્રમાણવાળી સરલ (સીધી) ગતિથી

(९) औदारिकादिषु शरीरेषु यस्य कर्मण उदयात् कर्कशादिः स्पर्श-विशेषो जायते, तत् स्पर्शनाम। स्पर्शनामाष्टधा-कर्कश-मृदु-गुरु-लघु-स्निग्ध-रूक्ष-शीतो-ष्णनामभेदात्।

(१०) रसनाम पञ्चविधम्-तिक्त-कटु-कषाया-ऽम्ल-मधुरभेदात्। लवणो मधुरान्तर्गत इति केचित्।

(११) शरीरविषयं सौरभं दुर्गन्धित्वं च यस्य कर्मणो विपाकान्निर्वर्तते, तद् गन्धनाम। गन्धनाम द्विविधम्-सुगन्ध-दुर्गन्धभेदात्।

(१२) यस्योदयाच्छरीरेषु कृष्णादिपञ्चविधवर्णनिष्पत्तिर्भवति तद् वर्णनाम, तत् पञ्चविधम्-कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्लभेदात्। सर्वाणि चैतानि स्पर्शना-मादीनि वर्णनामान्तानि शरीरवर्तिषु पुद्गलेषु परिणतानि भवन्ति।

---

(९) औदारिक आदि शरीरों में जिस कर्म के उदय से कठोर आदि स्पर्श उत्पन्न होता है उसे स्पर्शनामकर्म कहते हैं। स्पर्शनामकर्म आठ प्रकार का है-कठोर, कोमल, भारी, हल्का, चिकना, रूखा, शीत, और उष्ण।

(१०) रसनामकर्म पांच प्रकार का है-तीखा, कड़ुवा, कसैला, खट्टा और मीठा। किसी के मत से लवण मधुर रस के अन्तर्गत है।

(११) जिस कर्म के उदय से शरीर में सुगन्ध या दुर्गन्ध उत्पन्न होती है उसे गन्ध-नामकर्म कहते हैं। उसके दो भेद हैं-सुगन्धनाम और दुर्गन्धनाम।

(१२) जिस कर्म के उदय से शरीरों में कृष्ण आदि पांच वर्णों की उत्पत्ति होती है, वह वर्णनामकर्म है। इस के पांच भेद हैं-कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल, स्पर्श से लेकर वर्ण तक ये सब, शरीरवर्त्ती पुद्गलों में ही परिणत होते हैं।

---

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરોમા જે કર્મના ઉદયથી કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન થાય છે તેને સ્પર્શનામકર્મ કહે છે સ્પર્શનામકર્મના આઠ પ્રકારના છે-કઠોર, કોમલ, ભારી, હલકો, ચિકણો રૂખો, શીત અને ઉષ્ણ.

(૧૦) રસનામકર્મ પાચ પ્રકારે છે—તીખો, કડવો, કસાએલો, ખાટો અને મીઠો કેટલાકના મતથી લવણ મધુર રસની અન્તર્ગત છે

(૧૧) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા સુગધ અથવા દુર્ગધ ઉત્પન્ન થાય છે. તેને ગધનામકર્મ કહે છે તેના બે ભેદ છે-સુગધનામ અને દુર્ગધનામ

(૧૨) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા કૃષ્ણ આદિ પાચ વર્ણોની ઉત્પત્તિ થાય છે તે વર્ણનામકર્મ કહેવાય છે તેના પાચ ભેદ છે—કાળો, નીલો, રાતો, પીળો અને ધોળો. સ્પર્શથી લઈને વર્ણ સુધી એ બધાય શરીરવર્તી પુદ્ગલોમાજ પરિણત થાય છે.

(१३) नारकादिगतिं गन्तुरन्तर्गतौ वर्तमानस्य तदभिमुखमानुपूर्व्या [तत्तत्स्थानक्रमेण] तत्तत्प्रापणसमर्थमानुपूर्वीनाम। गत्यन्तरं गच्छतो जीवस्य यत्कर्मोदयात् विषयेन तद्गमनानुगुण्यं स्यात्, तदपि-आनुपूर्वीशब्दवाच्यं भवति। यथा-वारिवेगो बलीवर्दादेः, यथा वा नस्योतस्य बलीवर्दस्य नासारज्ज्वां प्रतिबद्धा रज्जुः, तथाऽऽनुपूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकतयोपग्रहस्वरूपम्।

अन्तर्गतिश्च यावन्मनुष्यो नरकादिषाप्यनुत्पत्तिस्थानं न प्राप्नोति तावत्पर्यन्तिकी गतिः। सा द्विविधा-ऋज्वी, वक्रा च। तत्र यदा ऋज्व्या समय

(१३) नरक आदि गति में जाने वाला जीव-जो कि अन्तर्गति (विग्रहगति) में वर्तमान है, उसको उन नरक आदि गतियों की ओर अभिमुख करके आनुपूर्वी से अर्थात् उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुँचाने में जो कर्म समर्थ होता है, उस कर्म को आनुपूर्वीकर्म कहते हैं। यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि-गत्यन्तर में जाते हुए जीव को जिस कर्म के उदय होने पर उस गति में उस उस स्थान के क्रम से जाना होता है, इस लिये उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं। जैसे जलका प्रवाह बैलको अपनी ओर खींच लेता है। अथवा जैसे गाडीवान बैलको नाथ पकड कर अपनी ओर मोड लेता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म-जीवने जिस गतिका कर्म बाँधा है उस गति में उसको पहुँचा देता है, इस लिये वह गति में पहुँचाने के लिये सहायक है।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोडकर नरक आदि किसी गति में नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् बीचकी गतिको अन्तर्गति-विग्रहगति-कहते हैं। वह दो प्रकार की है-सरल और वक्र। जीव जब एकसमयप्रमाणवाली सरल (सीधी)

(૧૩) નરક આદિ ગતિમાં જવાવાળા જીવ જો કે-અન્તર્ગતિ (વિગ્રહગતિ)માં વર્તમાન છે તેને તે નરક આદિ ગતિઓની તરફ અભિમુખ કરીને આનુપૂર્વીથી અર્થાત્ તે તે સ્થાનના ક્રમથી તે તે ગતિઓમાં પહોંચાડવામાં જે કર્મ સમર્થ હોય છે તે કર્મને આનુપૂર્વી કર્મ કહે છે. જો કે આનુપૂર્વી શબ્દનો અર્થ તે તે સ્થાનનો ક્રમ, એવો છે તો પણ ગત્યન્તરમાં જતે જીવને જે કર્મનો ઉદય થવાથી તે ગતિમાં તે તે સ્થાનના ક્રમથી જવું હોય છે આ કારણ માટે તે કર્મને આનુપૂર્વી કહે છે જેમ પાણીનો પ્રવાહ બળદીયાને પોતાની તરફ ખેંચી લે છે, અથવા જેમ ગાડીવાળો બળદીયાને તેની નાથ પકડીને પોતાની બાજુ મોડી લે છે તેજ પ્રમાણે આનુપૂર્વીકર્મ-જીવ જે ગતિનું કર્મ બાંધ્યું છે તે ગતિમાં તેને પહોંચાડી દે છે માટે તે ગતિમાં પહોંચાડવાને માટે સહાયક છે

જ્યાં સુધી મનુષ્ય પોતાની મનુષ્યગતિને મૂકીને નરક આદિ બીજી ગતિમાં નથી પહોંચ્યો ત્યાં સુધીની અર્થાત્ વચલી ગતિને અન્તર્ગતિ-વિગ્રહગતિ કહે છે. તે બે પ્રકારની હોય છે-સરલ અને વક્ર. જીવ જ્યારે એકસમયપ્રમાણવાળી સરલ (સીધી) ગતિથી

प्रमाणया गच्छति, तदाऽऽयुष्यकर्मणैवोत्पत्तिस्थानं प्राप्नोति । तत्रानुपुर्वीनाम्नः कश्चिदुपयोगो न भवति। वक्रगत्या पुनः प्रवृत्तः कूर्पर-(वक्राकाररथावयव)-लाङ्गल-गोमूत्रिकालक्षणया द्वित्रिचतुःसमयमानया वक्रारम्भकाले पुरस्कृत-मायुरादत्ते, तदैव चानुपूर्वीनामाप्युदेति ।

ननु च यथैव ऋज्व्यां गतौ विनाऽऽनुपूर्वीनामकर्मणा गतिं प्राप्नोति, तद्वद् वक्रगत्यामपि कस्मान्न ? इति चेत्, उच्यते-ऋज्व्यां-पूर्वायुष्कर्मव्यापारेणैव गच्छति, यत्र तत् पूर्वायुष्कर्म क्षीणं, तत्र तस्याध्वयष्टिस्थानीयस्यानुपूर्वीनामकर्मण उदयो भवति ।

गति से जाता है तब आयु कर्म के द्वारा ही उत्पत्तिस्थान को प्राप्त कर लेता है, वहा आनुपूर्वीनामकर्म का कोई उपयोग नहीं होता । जब जीव कूर्पर (रथ का टेढा अवयव) हल या गोमूत्रिका सरीखी और दो तीन या चार समयवाली वक्र गति से जाता है तब मोडके आरम्भ-समय में आगे की आयु ग्रहण करता है, उसी समय आनुपूर्वी कर्मका उदय होता है ।

शङ्का-जैसे सरलगति में आनुपूर्वीकर्म के विना ही गति प्राप्त करता है, उसी प्रकार वक्र गति में भी क्यों नहीं गति करता ?।

समाधान-सरल गति में पहले के आयुकर्म के व्यापार से ही जीव गति करता है । जहाँ वह आयु क्षीण हो जाती है वहाँ मार्गयष्टि के समान आनुपूर्वीनामकर्म का उदय होता है ।

જાય છે, ત્યારે આયુકર્મદ્વારાજ ઉત્પતિ સ્થાનને પ્રાપ્ત કરી લે છે ત્યા આનુપૂર્વી નામકર્મનો કાંઈ ઉપયોગ થતો નથી જ્યારે જીવ કૂર્પર (રથનો વાંકો એક ભાગ) હલ અથવા ગોમૂત્રિકા સરખી અને બે, ત્રણ અથવા ચાર સમયવાળી વક્રગતિથી જાય છે ત્યારે વળવાના આરભ સમયમા આગળની આયુ ગ્રહણ કરે છે તે સમય આનુપૂર્વી કર્મનો ઉદય થાય છે

શંકા—જેમ સરલગતિમા આનુપૂર્વીકર્મ વિનાજ ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે તે પ્રમાણે વક્રગતિમા ગતિ શા માટે કરતા નથી ?

સમાધાન—સરલગતિમા પ્રથમના આયુકર્મના વ્યાપારથીજ જીવ ગતિ કરે છે જ્યા તે આયુ ક્ષીણ થઈ જાય છે ત્યા માર્ગયષ્ટિ-માર્ગની લાકડી-ના સમાન આનુપૂર્વી નામકર્મનો ઉદય થાય છે.

आनुपूर्वीनाम चतुर्विधम्-नरकगत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, देवगत्यानुपूर्वीनाम च।

(१४) लब्धि-शिक्षर्द्धि-प्रत्ययस्याकाशगमनस्य जनकं नाम विहायोगतिः सामान्य गमनरूपा गतिरपि विहायोगति रित्युच्यते न तु केवलमाकाशगमनरूपेति। सा द्विधा-शुभा-ऽशुभभेदात्। तत्र-हंस गज-वृषादीनां शुभा। उष्ट्रशृगालादीनाम् अशुभा। तत्र-लब्धिर्देवादीनां देवत्वोत्पत्त्यविनाभाविनी। शिक्षया ऋद्धिः, शिक्षर्द्धिः, लब्ध्या शिक्षर्द्ध्या च तपस्विनां, शिक्षर्द्ध्या प्रवचनमधीयानानां विद्यावर्त्तनप्रभावाद् वा आकाशगमनस्य जनकं विहायोगतिनामकर्म।

आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकार का है-नरकगत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, और देवगत्यानुपूर्वीनाम।

(१४) लब्धि एवं शिक्षाऋद्धिकारणक आकाशगमन उत्पन्न करने वाला कर्म विहायोगतिनामकर्म कहलाता है। वह सामान्य गमनरूप गति भी विहायोगति कहलाती है, नहीं कि मात्र आकाशगमनरूप। इस के दो भेद हैं-शुभ और अशुभ। हंस, गज, वृषभ आदि की गति के समान शुभविहायोगति है और ऊंट सियार आदि की गति के अनुसार अशुभविहायोगति है। देव के रूप में उत्पन्न होने के साथ ही उत्पन्न होने वाली लब्धि देवों को प्राप्त होती है। शिक्षा से प्राप्त होने वाली ऋद्धि शिक्षा-ऋद्धि कहलाती है। लब्धि एवं शिक्षा-ऋद्धि से तपस्वियों का आकाशगमन होता है। प्रवचन का अध्ययन करने वालों का विद्या आदि के आवर्तन के प्रभाव से या शिक्षाऋद्धि से जो आकाशगमन होता है वह विहायोगति है।

આનુપૂર્વીનામકર્મ ચાર પ્રકારના છે-નરકગત્યાનુપૂર્વીનામ, તિર્યગ્ગત્યાનુપૂર્વીનામ, મનુષ્યગત્યાનુપૂર્વીનામ, અને દેવગત્યાનુપૂર્વીનામ.

(૧૪) લબ્ધિ એવં શિક્ષા-ઋદ્ધિકારણક આકાશગમન ઉત્પન્ન કરવાવાળું કર્મ વિહાયોગતિનામકર્મ કહેવાય છે સામાન્ય ગમનરૂપ ગતિ પણ વિહાયોગતિ કહેવાય છે ફક્ત આકાશગમનરૂપ ગતિ નહીં તેના બે ભેદ છે-શુભ અને અશુભ. હંસ, હાથી, બળદ વીગેરેની ગતિ સમાન શુભવિહાયોગતિ છે અને ઊંટ શિયાળ વગેરેની ગતિ અનુસાર અશુભવિહાયોગતિ છે દેવના રૂપમાં ઉત્પન્ન હોવાના સાથેજ ઉત્પન્ન થવાવાળી લબ્ધિ દેવોને પ્રાપ્ત થાય છે શિક્ષાથી પ્રાપ્ત થવાવાળી ઋદ્ધિ શિક્ષાઋદ્ધિ કહેવાય છે. લબ્ધિ એવં શિક્ષાઋદ્ધિથી તપસ્વિઓ આકાશગમન કરે છે. પ્રવચનનું અધ્યયન કરવાવાળાના વિદ્યા આદિના આવર્ત્તનના પ્રભાવથી અથવા શિક્ષાઋદ્ધિથી જે આકાશગમન થાય છે તે વિહાયોગતિ છે

(७) गोत्रकर्म द्विविधम्-उच्चनीचभेदात् । तत्रउच्चगोत्रं-देश-जाति-कुल-स्थान-मान-सत्कारै-श्वर्याद्युत्कर्षजनकम् । तद्विपरीतं नीचगोत्रम्—अनार्यदेश-चाण्डालादिजातिदास्य-निर्वर्तकम् ।

(८) अन्तरायकर्म-पञ्चविधम्-दान-लाभ-भोगो-पभोग-वीर्यान्तरायभेदात् ।

एवं च सर्वसंकलनेनाष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकैकशत (१४८) भवन्ति ।

कर्मक्षयविचारः—

ज्ञानक्रियाभ्यां कर्मक्षयो भवति । उक्तषड्जीवनिकायानां यथार्थ-

---

(७) गोत्रकर्म दो प्रकार का है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र से देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न होता है । नीचगोत्र इस से विपरीत है । इस से अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासता उत्पन्न होती है ।

(८) अन्तराय कर्म के पाच भेद है—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय ।

इस प्रकार सबका योग करने पर आठों कर्मों की उत्तरप्रकृतियाँ एक सौ अडतालीस (१४८) होती हैं ।

कर्मक्षय का विचार

ज्ञान और क्रिया से कर्मों का क्षय होता है । पूर्वोक्त षड्जीवनिकाय के वास्तविक

---

(७) ગોત્રકર્મ બે પ્રકારનુ છે—ઉચ્ચગોત્ર અને નીચગોત્ર. ઉચ્ચગોત્રથી દેશ, જાતિ, કુલ, સ્થાન, માન, સત્કાર, ઐશ્વર્ય આદિનો ઉત્કર્ષ ઉત્પન્ન થાય છે નીચ ગોત્ર તેનાથી વિપરીત છે તેનાથી અનાર્ય દેશ, ચાડાલ આદિ જાતિ અને દાસપણું વગેરે ઉત્પન્ન થાય છે

અ તરાયકર્મના પાચ ભેદ છે—દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપભોગાન્તરાય અને વીર્યાન્તરાય.

આ પ્રમાણે સર્વનો યોગ કરતા આઠ કર્મોની ઉત્તરપ્રકૃતિઓ એકસો અડતાલીસ (૧૪૮) થાય છે

કર્મક્ષયનો વિચાર—

જ્ઞાન અને ક્રિયાથી કર્મોનો ક્ષય થાય છે. પૂર્વોકત ષડ્જીવકાયના વાસ્તવિક

स्वरूपस्य विस्तरेण संक्षेपेण वा अवबोधो ज्ञानम्। गुप्तिसमितिसमाराधनपूर्वकं शास्त्रविधिना तपःसंयमाचरणं क्रिया।

अष्टकर्मणां भस्मसात्कारकं तपः। तस्यानशनादयो द्वादश भेदाः। सावद्यक्रियाः सम्यक् परित्यज्य निरवद्यक्रियासु प्रवृत्तिः संयमः। तस्य पृथिवीकायसंयमादयः सप्तदश भेदाः।

उक्तषड्जीवनिकायस्वरूपं सम्यग् विज्ञाय संयमपूर्वकतपश्चरणेनाभिनवकर्मप्रवेशाभावः, पूर्वोपचितकर्मपरिक्षयश्च भवति। तत्रैवं क्रमः—

अष्टमगुणस्थानादात्मा क्षपकश्रेणिं समारोहति। असौ क्षपको नवमं दशमं गुणस्थानं समारुह्य द्वादशं गुणस्थानमारोहति। तत्र शुक्लध्यानस्य द्वितीय

स्वरूप का विस्तारपूर्वक या संक्षिप्त बोध-ज्ञान कहलाता है। गुप्ति समिति का आराधन करते हुए शास्त्रोक्त विधि के साथ तप और संयम का आराधन करना क्रिया है।

आठ कर्मों का भस्म करना तप है। तप के अनशन आदि बारह भेद हैं। सावद्य क्रियाओं का सम्यक् प्रकार से परित्याग करके निरवद्य क्रियाओं में प्रवृत्ति करना संयम है। पृथ्वीकायसंयम आदि के भेद से वह सत्तरह (१७) प्रकार का है।

उक्त षड्जीवनिकाय का स्वरूप समीचीन प्रकार से जानकर संयमपूर्वक तप का आचरण करने से नवीन कर्मों का आना रुक जाता है और पहले के संचित कर्मों का क्षय होता है। कर्मक्षय का क्रम यह है—

आत्मा आठवें गुणस्थान से क्षपकश्रेणी पर आरूढ होता है। वह क्षपक आत्मा नौवें दसवें गुणस्थानों पर आरूढ हो कर बारहवें गुणस्थान पर पहुंचता है।

સ્વરૂપનો વિસ્તારપૂર્વક અથવા સંક્ષિપ્ત બોધ તે જ્ઞાન કહેવાય છે ગુપ્તિ, સમિતિની આરાધના કરતાં શાસ્ત્રોક્ત વિધિ પ્રમાણે તપ અને સંયમનું આરાધન કરવું તે ક્રિયા છે આઠ કર્મોને બાળી નાંખવા તે તપ છે તપના અનશન આદિ બાર ભેદ છે સાવદ્ય ક્રિયાઓનો સમ્યક્ પ્રકારે પરિત્યાગ કરીને નિરવદ્ય ક્રિયાઓમાં પ્રવૃત્તિ કરવી તે સંયમ છે પૃથ્વીકાયસંયમ આદિના ભેદથી તે સત્તર (૧૭)પ્રકારનો છે આગળ કહેલા ષડ્જીવનિકાયના સ્વરૂપને સારી રીતે જાણીને સંયમપૂર્વક તપનું આચરણ કરવાથી નવીન કર્મોનું આવવું રોકાઈ જાય છે અને પહેલાના સંચિત કર્મોનો ક્ષય થાય છે કર્મક્ષયનો ક્રમ એ છે— આત્મા આઠમાં ગુણસ્થાનથી ક્ષપકશ્રેણીપર આરૂઢ થાય છે આ ક્ષપક આત્મા નવમાં, દસમા ગુણસ્થાનો પર આરૂઢ થઈને બારમા ગુણસ્થાન પર જઈ પહોંચે છે.

(७) गोत्रकर्म द्विविधम्–उच्चनीचभेदात् । तत्रउच्चगोत्रं–देश–जाति–कुल–स्थान–मान–सत्कारै–श्वर्याद्युत्कर्षजनकम् । तद्विपरीतं नीचगोत्रम्—अनार्यदेश–चाण्डालादिजातिदास्य–निर्वर्तकम् ।

(८) अन्तरायकर्म-पञ्चविधम्-दान-लाभ-भोगो-पभोग-वीर्यान्तरायभेदात् ।

एवं च सर्वसंकलनेनाष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकैकशतं (१४८) भवन्ति ।

कर्मक्षयविचारः—

ज्ञानक्रियाभ्यां कर्मक्षयो भवति । उक्तषड्जीवनिकायानां यथार्थ-

---

(७) गोत्रकर्म दो प्रकार का है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र से देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न होता है । नीचगोत्र इस से विपरीत है । इस से अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासता उत्पन्न होती है ।

(८) अन्तराय कर्म के पाच भेद है—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय ।

इस प्रकार सबका योग करने पर आठों कर्मों की उत्तरप्रकृतियाँ एक सौ अडतालीस (१४८) होती हैं ।

कर्मक्षय का विचार

ज्ञान और क्रिया से कर्मों का क्षय होता है । पूर्वोक्त षड्जीवनिकाय के वास्तविक

---

(૭) ગોત્રકર્મ બે પ્રકારનુ છે—ઉચ્ચગોત્ર અને નીચગોત્ર. ઉચ્ચગોત્રથી દેશ, જાતિ, કુલ, સ્થાન, માન, સત્કાર, ઐશ્વર્ય આદિનો ઉત્કર્ષ ઉત્પન્ન થાય છે નીચ ગોત્ર તેનાથી વિપરીત છે તેનાથી અનાર્ય દેશ, ચાડાલ આદિ જાતિ અને દાસપણું વગેરે ઉત્પન્ન થાય છે

અ તરાયકર્મના પાચ ભેદ છે—દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપભોગાન્તરાય અને વીર્યાન્તરાય.

આ પ્રમાણે સર્વનો યોગ કરતા આઠ કર્મોની ઉત્તરપ્રકૃતિઓ એકસો અડતાલીસ (૧૪૮) થાય છે

કર્મક્ષયનો વિચાર—

જ્ઞાન અને ક્રિયાથી કર્મોનો ક્ષય થાય છે. પૂર્વોક્ત ષડ્જીવકાયના વાસ્તવિક

एवमात्मप्रदेशेभ्यः सकलकर्मणामपगमे सत्यूर्ध्वगमनस्वभावतयाऽऽत्मा साद्यनन्तमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेयं स्थानं प्राप्नोति । ज्ञानक्रियाभ्यामेवं सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षो भवतीति सिद्धम् ।

केचित्तु-सम्यग्ज्ञानं यथार्थविषयकतया बलवत्तरत्वेन मिथ्याज्ञानं निवर्तयति । मिथ्याज्ञाने निवृत्ते सति मिथ्याज्ञानमूला रागादयो न समुत्पद्यन्ते । कारणाभावे कार्यस्यानुत्पादात् । रागाद्यभावे च तत्फलभूता मनोवाक्कायप्रवृत्तिर्न भवति । प्रवृत्त्यभावे च पुण्यपापयोरनुत्पत्तिः । आरब्धकार्ययोश्च

आत्मप्रदेशों से समस्त कर्मों के हट जाने पर ऊर्ध्वगमनशील होने के कारण आत्मा सादि-अनन्त पुनरागमनरहित सिद्धिगतिनामक स्थान को प्राप्त करता है । अत एव सिद्ध हुआ कि ज्ञान और क्रिया से सकल कर्मोंका क्षयरूप मोक्ष प्राप्त होता है ।

कुछ लोगों का कथन यह है कि-सम्यग्ज्ञान यथार्थ पदार्थ को विषय करता है, अतः वह बलवान् है, और बलवान् होने के कारण मिथ्याज्ञान को दूर करता है । मिथ्याज्ञान जब हट जाता है तो उसके कारण उत्पन्न होने वाले रागादि की उत्पत्ति नहीं होती क्यों कि कारण के अभाव में कार्य उत्पन्न नहीं होता । इस प्रकार रागादि का अभाव होने पर उस से होने वाली मन वचन और काय की प्रवृत्ति रुक जाती है । प्रवृत्ति के रुक जाने से पुण्यकर्म और पापकर्म की उत्पत्ति नहीं होती । जिन का कार्य

આત્મપ્રદેશોથી સમસ્ત કર્મો દૂર થયા પછી ઉર્ધ્વગતિશીલ હોવાના કારણે આત્મા સાદિ-અનન્ત, પુનરાગમનરહિત સિદ્ધિગતિ નામના સ્થાનને પ્રાપ્ત કરે છે એટલે એ સિદ્ધ થયું કે જ્ઞાન અને ક્રિયાથી સકલ કર્મોના ક્ષયરૂપ મોક્ષને પ્રાપ્ત થાય છે

કેટલાક માણસોનું કહેવું એ છે કે-સમ્યગ્જ્ઞાન યથાર્થ પદાર્થનો વિષય કરે છે એ કારણથી તે બળવાન છે. અને બળવાન હોવાના કારણે મિથ્યાજ્ઞાનને દૂર કરે છે મિથ્યાજ્ઞાન જ્યારે દૂર થઈ જાય છે તો તેના કારણે ઉત્પન્ન થવાવાળા રાગ-આદિની ઉત્પત્તિ થતી નથી; કેમકે કારણના અભાવમાં કાર્ય ઉત્પન્ન થતું નથી. આ પ્રકારે-રાગાદિનો અભાવ થવાથી તેનાથી થવા વાળી મન, વચન અને કાયાની પ્રવૃત્તિ અટકી જાય છે પ્રવૃત્તિના અટકાવથી પુણ્યકર્મ અને પાપ કર્મની ઉત્પત્તિ થતી નથી. જેનું કાર્ય આરંભ

पादे प्रथमं मोहनीयं कर्म क्षपयति। तदनु ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीया-ऽन्तराय-कर्माणि युगपदेव क्षपयित्वा द्वादशगुणस्थानान्ते त्रयोदशगुणस्थानादौ सर्वद्रव्य-पर्यायविषयं पारमैश्वर्यमनन्तं केवलं ज्ञानदर्शनं प्राप्य शुद्धो बुद्धः सर्वज्ञः सर्वदर्शी जिनः केवली भवति। ततः सयोगिकेवली प्रतनु-शुभ-चतुष्कर्मावशेषः, आयुः-कर्मसंस्कारवशाद् भव्यजनबोधनाय भूमण्डले विहरति, विविधं कर्मरजो भव्यानां हरति च।

असौ तत्पश्चाद् अयोगिकेवली भूत्वा चतुर्दशगुणस्थाने–आयुष्यकर्मपरिसमाप्तौ सत्यां, वेदनीय–नाम–गोत्रकर्माणि क्षपयति। एवं मूलप्रकृतिवाच्यमष्टविधं ज्ञाना-वरणीयादिसकलकर्म क्षीयते।

वहाँ शुक्ल ध्यान के द्वितीय पाये में सर्व प्रथम मोहनीय कर्म का क्षय करता है। तत्पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों को एक ही साथ क्षय करके बारहवें गुणस्थान के अन्त में और तेरहवें गुणस्थान की आदि में समस्त द्रव्य पर्याय को विषय करने वाला परम ऐश्वर्य को प्राप्त होने योग्य अनन्त केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करके शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जिन और केवली हो जाता है। फिर वह सयोगी केवली चार हल्के अघातिया कर्म शेष रहने पर आयुकर्म के संस्कार वश हो कर भव्य जीवों को बोध देने के लिए भूमण्डल में विहार करते हैं।

तत्पश्चात् अयोगी केवली हो कर चौदहवें गुणस्थान में आयुकर्म की समाप्ति होने पर वेदनीय नाम आयु गोत्र कर्मों का क्षय करते हैं। इस प्रकार मूलप्रकृति कहलाने वाले आठों ही कर्मों का क्षय हो जाता है।

त्या शुक्ल ध्यानना बीजा पायामा सर्वप्रथम मोहनीय कर्मनो क्षय करे छे ते पछी ज्ञानावरण, दर्शनावरण अने अतराय कर्मोनो एकी साथे क्षय करीने, बारमा गुण-स्थानना अतमा अने तेरमा गुणस्थाननी आदिमा समस्त द्रव्य–पर्यायने विषय करवावाळा परम ऐश्वर्यने प्राप्त थवा योग्य अनन्त केवलज्ञान अने केवलदर्शन प्राप्त करीने शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जिन अने केवली थई जाय छे पछी ते सयोगी केवली चार हलका अघातिया कर्म बाकी रहेवा पर आयुकर्मना सस्कारवश थईने भव्यजीवोने बोध आपवा माटे पृथ्वीमा विहार करे छे

ते पछी अयोगी केवली थईने चौदमा गुणस्थानमा आयुकर्मनी समाप्ति थया पछी वेदनीय, नाम अने गोत्रकर्मनो क्षय करे छे आ प्रमाणे मूळप्रकृति कहेवाता आठ कर्मोनो क्षय थई जाय छे.

एवमात्मप्रदेशेभ्यः सकलकर्मणामपगमे सत्यूर्ध्वगमनस्वभावतयाऽऽत्मा साद्यनन्तमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेयं स्थानं प्राप्नोति। ज्ञानक्रियाभ्यामेवं सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षो भवतीति सिद्धम्।

केचित्तु-सम्यग्ज्ञानं यथार्थविषयकतया बलवत्त्वेन मिथ्याज्ञानं निवर्तयति। मिथ्याज्ञाने निवृत्ते सति मिथ्याज्ञानमूला रागादयो न समुत्पद्यन्ते। कारणाभावे कार्यस्यानुत्पादात्। रागाद्यभावे च तत्फलभूता मनोवाक्कायप्रवृत्तिर्न भवति। प्रवृत्त्यभावे च पुण्यपापयोरनुत्पत्तिः। आरब्धकार्ययोश्च

आत्मप्रदेशों से समस्त कर्मों के हटजाने पर ऊर्ध्वगतिशील होने के कारण आत्मा सादि-अनन्त पुनरागमनरहित सिद्धिगतिनामक स्थान को प्राप्त करता है। अत एव सिद्ध हुआ कि ज्ञान और क्रिया से सकल कर्मोंका क्षयरूप मोक्ष प्राप्त होता है।

कुछ लोगों का कथन यह है कि-सम्यग्ज्ञान यथार्थ पदार्थ को विषय करता है, अत वह बलवान् है, और बलवान् होने के कारण मिथ्याज्ञान को दूर करता है। मिथ्याज्ञान जब हट जाता है तो उसके कारण उत्पन्न होने वाले रागादि की उत्पत्ति नहीं होती, क्यों कि कारण के अभाव में कार्य उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार रागादि का अभाव होने पर उस से होने वाली मन वचन और काय की प्रवृत्ति रुक जाती है। प्रवृत्ति के रुक जाने से पुण्यकर्म और पापकर्म की उत्पत्ति नहीं होती। जिन का कार्य

આત્મપ્રદેશોથી સમસ્ત કર્મો દૂર થયા પછી ઉર્ધ્વગતિશીલ હોવાના કારણે આત્મા સાદિ-અનન્ત, પુનરાગમનરહિત સિદ્ધિગતિ નામના સ્થાનને પ્રાપ્ત કરે છે. એટલે એ સિદ્ધ થયું કે જ્ઞાન અને ક્રિયાથી સકલ કર્મોના ક્ષયરૂપ મોક્ષને પ્રાપ્ત થાય છે.

કેટલાક માણસોનું કહેવું એ છે કે-સમ્યગ્જ્ઞાન યથાર્થ પદાર્થનો વિષય કરે છે એ કારણથી તે બળવાન છે. અને બળવાન હોવાના કારણે મિથ્યાજ્ઞાનને દૂર કરે છે મિથ્યાજ્ઞાન જ્યારે દૂર થઈ જાય છે તો તેના કારણે ઉત્પન્ન થવાવાળા રાગ-આદિની ઉત્પત્તિ થતી નથી; કેમકે કારણના અભાવમાં કાર્ય ઉત્પન્ન થતું નથી. આ પ્રકારે-રાગાદિનો અભાવ થવાથી તેનાથી થવા વાળી મન, વચન અને કાયાની પ્રવૃત્તિ અટકી જાય છે પ્રવૃત્તિના અટકાવથી પુણ્યકર્મ અને પાપ કર્મની ઉત્પત્તિ થતી નથી. જેનું કાર્ય આરંભ

पुण्यपापकर्मणोरुपभोगादेव प्रक्षयो भवति; सञ्चितरूपयोस्तु पुण्यपापकर्मणोस्तत्त्वज्ञानादेव प्रक्षयः। एवं कर्मक्षयो भवति। उक्तञ्च—

"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि, भस्मसात् कुरुते तथा"। इति। तथा "नाभुक्तं क्षीयते कर्म, कल्पकोटिशतैरपि" इति च।

केचित्तु—संचितकर्मणामपि प्रक्षयो भोगादेव भवतीत्युक्तं तत्रानुमानं प्रमाणं च प्रदर्शितम्। तथाहि–पूर्वकर्माण्युपभोगादेव क्षीयन्ते, कर्मत्वात्। यत् यत् कर्म तत् तत् उपभोगादेव क्षीयते, यथा–आरब्धशरीरं कर्म, तथा चैतत् कर्म, तस्मादुपभोगादेव क्षीयते।

न चोपभोगात् कर्मप्रक्षयस्वीकारे कर्मान्तरस्यावश्यम्भावात् संसारानुच्छेदः इति वाच्यम्,

---

आरम्भ हो चुका है, ऐसे पाप–पुण्य का, उपभोग से क्षय होता है और सञ्चित पुण्य–पाप का, तत्त्वज्ञान से। इस प्रकार समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है। कहा भी है—

"ज्ञानरूपी अग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर डालती है"। तथा–" करोडों सैकडों कल्पों में भी कर्म का भोगे विना क्षय नहीं होता"।

किसी का कहना है कि–सचित कर्मों का क्षय भी भोग से ही हो जाता है। इस विषय में अनुमान प्रमाण भी दिया गया है। वह इस प्रकार है–पूर्वसचित कर्म उपभोग से ही क्षीण होता है, क्यों कि वह कर्म है। जो जो कर्म होता है वह वह उपभोग से ही क्षीण होता है, जैसे आरब्ध शरीरकर्म। सचितकर्म भी कर्म हैं अत वे भी उपभोग से ही क्षीण होते हैं।

उपभोग से कर्मों का क्षय स्वीकार किया जाय तो नवीन कर्मों की उत्पत्ति अवश्य होगी और फलत' जन्म–मरण का कभी नाश नहीं होगा। ऐसी आशङ्का करना उचित नहीं है।

થઈ ચૂકયુ છે, એવા પાપ–પુણ્યનો ઉપભોગથી ક્ષય છે, અને સચિત પુણ્ય–પાપનો તત્ત્વજ્ઞાનથી ક્ષય થાય છે આ પ્રકારે સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય થઈ જાય છે કહ્યું પણ છે કે–"જ્ઞાનરૂપી અગ્નિ સમસ્ત કર્મોને બાળી નાખે છે" તથા "કરોડો સેકડો કલ્પોમા પણ કર્મ ભોગવ્યા વિના ક્ષય થતા નથી"

કેટલાક કહે છે કે–સચિત કર્મોનો ક્ષય પણ ભોગથીજ થઈ જાય છે આ વિષયમા અનુમાન પ્રમાણ પણ આપવામા આવ્યુ છે તે આ પ્રમાણે છે–પૂર્વસંચિતકર્મ ઉપભોગથીજ ક્ષીણ થાય છે, કારણ કે તે કર્મ છે, જે જે કર્મ હોય છે તે તે ઉપભોગથીજ ક્ષીણ થાય છે, જેવી રીતે આરબ્ધ શરીરકર્મ સચિત કર્મ પણ કર્મ છે, એ કારણથી તે પણ ઉપભોગથી જ ક્ષીણ થાય છે

ઉપભોગથી કર્મોનો ક્ષય સ્વીકાર કરવામા આવે તો, નવીન કર્મોની ઉત્પત્તિ અવશ્ય થશે અને ફલત. જન્મ મરણનો કયારેય નાશ નહિ થાય, આવી શંકા કરવી તે ઉચિત નથી.

समाधिबलेनोत्पन्नतत्त्वज्ञानस्य जनस्य कर्मज्ञानसामर्थ्यात्तदुपभोगार्थमशेष शरीराण्युत्पाद्याशेषभोगादेव पूर्वकर्मक्षयः, पुनस्तस्य तत्त्वज्ञानिनो मिथ्याज्ञानाभावा-त्तज्जनितसंस्कारस्याप्यभावेन कर्मान्तरानुत्पत्तिश्च । तथा चोपभोगादेव सकलकर्मक्षयस्वीकारेऽपि नास्ति कोऽपि दोषलेश इति ।

न च पुण्यपापकर्मणोर्जन्मान्तरशरीरोत्पादने सहकारि कारणं मिथ्याज्ञानजनितसंस्कारोऽस्ति; तस्याभावादेव तत्त्वज्ञानिनां विद्यमाने अपि कर्मणी न जन्मान्तरशरीराण्युत्पादयतः, अतस्तेषां कर्मसत्त्वेऽपि न काऽपि हानिरिति वाच्यम् ।

समाधि के बल से उत्पन्न तत्त्वज्ञान वाले पुरुष के कर्मज्ञान के सामर्थ्य से कर्म का उपभोग करने के लिए अशेष शरीर उत्पन्न करके अशेष भोग से ही पूर्वकर्म का क्षय हो जाता है। उस तत्त्वज्ञानी पुरुष में मिथ्याज्ञान नहीं होता और मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने वाला संस्कार भी नहीं होता। इस कारण नवीन कर्म की उत्पत्ति भी नहीं होती। ऐसी स्थिति में उपभोग से ही समस्त कर्मों का क्षय मान लेने में लेशमात्र भी दोष नहीं है।

मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने वाला संस्कार जन्मान्तर के शरीर की उत्पत्ति में सहकारी कारण होता है। वह संस्कार तत्त्वज्ञानी में नहीं रहता। उस का अभाव हो जाने पर पुण्य–पाप कर्म भले ही विद्यमान रहें मगर वे शरीर उत्पन्न नहीं कर सकते। अत एव उन में कर्म का सद्भाव होने पर भी कोई हानि नहीं होती। यह सब कथन सत्य नहीं है।

સમાધિના બળથી ઉત્પન્ન તત્ત્વજ્ઞાન વાળા પુરુષના કર્મજ્ઞાનના સામર્થ્યથી કર્મનો ઉપભોગ કરવા માટે અશેષ શરીર ઉત્પન્ન કરીને અશેષ ભોગથીજ પૂર્વકર્મનો ક્ષય થઈ જાય છે તે તત્ત્વજ્ઞાની પુરુષમાં મિથ્યાજ્ઞાન નથી અને મિથ્યાજ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થવાવાળા સંસ્કાર પણ નથી. આ કારણથી નવીન કર્મની ઉત્પત્તિ પણ થતી નથી એવી સ્થિતિમાં ઉપભોગથીજ સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય માની લેવામાં લેશ માત્ર પણ દોષ નથી

મિથ્યાજ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થવાવાળા સંસ્કાર જન્માન્તરના શરીરની ઉત્પત્તિમાં સહકારી કારણ થાય છે તે સંસ્કાર તત્ત્વજ્ઞાનીમાં રહેતા નથી. તેનો અભાવ થઈ જવાથી, પુણ્ય–પાપકર્મ ભલેને વિદ્યમાન રહે. પરન્તુ તે શરીર ઉત્પન્ન કરી શકતાં નથી, એટલા માટે તેમાં કર્મનો સદ્ભાવ હોવા છતાંય પણ કોઈ પ્રકારે હાનિ થતી નથી આ સર્વ કથન સાચાં નથી.

जन्यपदार्थस्य नित्यत्वापत्तिः स्यादित्येव महान् दोषः समापद्येत। तथाहि—पुण्यपापरूपकर्मणोः स्वफलानुत्पादनेन तत्सत्तास्वीकारे कार्यरूपयोरपि तयोर्नित्यत्वप्रसङ्ग। किञ्च—भविष्यत्काले पुण्यपापकर्मणोरनुत्पत्तिस्वीकारे तत्त्वज्ञानिनां प्रत्यवायपरिहारार्थं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं कथमुपपद्येत? इति वदन्ति। अत्रोच्यते—

यत्तु—उक्तम्—आरब्धकार्ययोः पुण्यापुण्यकर्मणोरुपभोगात् प्रक्षयः संचितयोश्च तयोः प्रक्षयस्तत्त्वज्ञानादित्यादि, तदपि न संगतम्। तथाहि—उपभोगात् कर्मप्रक्षये तदुपभोगकालेऽभिलाषपूर्वकमनोवाक्कायव्यापारस्यापरकर्मकारणस्य

सब से पहले महान् हानि तो यही है कि जन्य पदार्थ (काय) भी नित्य हो जायगा। वह इस प्रकार—पुण्य–पाप रूप कर्मों के फल को उत्पन्न न कर के सत्ता स्वीकार की गई है, सो कार्यरूप होने पर भी उन में नित्यता का प्रसङ्ग आता है। दूसरी बात यह है कि—आगामी काल में पुण्य–पाप की उत्पत्ति न स्वीकार करने पर तत्त्वज्ञानियों के लिए, प्रत्यवाय (दोष) का परिहार करने के लिए नित्य–नैमित्तिक अनुष्ठान करना किस प्रकार सगत होगा। ऐसा इन का कथन है,

इस पर विचार किया जाता है—

कार्यरूप में परिणत पुण्य और पाप कर्मो का उपभोग से क्षय होता है और सचित कर्मों का तत्त्वज्ञान से, इत्यादि कथन भी संगत नहीं है। उपभोग से कर्मों का क्षय मानने पर कर्मों का उपभोग करते समय इच्छापूर्वक मन वचन और कायाका व्यापार

સૌથી પ્રથમ મહાન્ હાનિ તો એજ છે કે જન્ય પદાર્થ (કાર્ય) પણ નિત્ય થઈ જશે તે આ પ્રમાણે-પુણ્યપાપરૂપ કર્મોના ફળને ઉત્પન્ન ન કરતા નિત્યતાનો સ્વીકાર કરવામા આવ્યો છે તે કાર્યરૂપ હોવા છતાય પણ તેમા નિત્યતાનો પ્રસગ આવે છે બીજી વાત એ છે કે-આગામી કાળમા પુણ્યપાપની ઉત્પત્તિ નહિ સ્વીકારવાથી તત્ત્વજ્ઞાનીઓ માટે પ્રત્યવાય (દોષ) નો પરિહાર કરવા માટે નિત્ય-નૈમિત્તિક અનુષ્ઠાન કરવું તે કેવી રીતે સગત થશે આ પ્રમાણે તેમનુ કથન છે.

તેના પર વિચાર કરવામા આવે છે —

કાર્યરૂપમા પરિણત પુણ્ય અને પાપ કર્મોનો ઉપભોગથી ક્ષય થાય છે. અને સચિત કર્મોનો તત્ત્વજ્ઞાનથી ઈત્યાદિ કથન પણ સગત નથી ઉપભોગથી કર્મોનો ક્ષય માનવાથી, કર્મોનો ઉપભોગ કરવા સમયે ઇચ્છાપૂર્વક મન, વચન અને કાયાનો વ્યાપાર

संभवात् पुनः मधुरतरपुण्यपापकर्मसद्भावे कथमात्यन्तिकः कर्मक्षयः स्यात् ।

नहि केवलस्य सम्यग्ज्ञानस्य आगामिकर्मानुत्पत्तिसामर्थ्यं विधत्ते, किन्तु चारित्रसहितस्यैव सम्यग्ज्ञानस्य संचितकर्मक्षये आगामिकर्मानुत्पत्तौ च सामर्थ्यं समाख्यते । सम्यग्ज्ञानेन हि मिथ्याज्ञानस्य निवृत्तिः । ततश्च रागद्वेषाद्यभावेन हिंसादिपापक्रियानिवृत्तिरूपचारित्रसहयोगात् नवीनकर्मानुत्पत्तिर्भवति । तद्वत् संचितकर्मक्षयोऽपि चारित्रसहकृतसम्यग्ज्ञानादेव भवति । यथौषधं ज्ञानमात्रेण नाममात्रेण वा न व्याधिं निवर्तयति, किन्तु तत्सेवनादिक्रियापरिणतस्यैव, तद्वत् चारित्रसहितसम्यग्ज्ञानेनैव कर्मक्षयः ।

होगा, और यह व्यापार नवीन कर्मबन्ध का कारण है, इस लिए फिर बहुत से पुण्यकर्म और पापकर्म सञ्चित हो जाएँगे । ऐसी दशा में आत्यन्तिक कर्मक्षय किस प्रकार होगा ?

अकेला सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ नहीं है । हाँ चारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संचित कर्मों के क्षय में और आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ हो सकता है । सम्यग्ज्ञान से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होती है । फिर राग-द्वेष आदि का अभाव हो जाने से हिंसादि पाप क्रिया की निवृत्तिरूप चारित्र की सहायता से नवीन कर्मों की उत्पत्ति रुकती है । इसी प्रकार संचित कर्मों का क्षय भी चारित्र से युक्त सम्यग्ज्ञान से ही होता है । जैसे-औषधि ज्ञानमात्र से या नाम लेने मात्रसे व्याधि को दूर नहीं करती किन्तु सेवन करने से ही दूर करती है, उसी प्रकार चारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञान से ही कर्मों का क्षय होता है ।

थशे, अने ते व्यापार नवीन कर्मबंधनुं कारण छे ओ माटे इरी घणांज पुण्य-पाप कर्म संचित थई जशे. ओवी दशामां आत्यन्तिक कर्मक्षय केवी रीते थशे ?

ओकलुं सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मोनी उत्पत्तिने रोकवामां समर्थ नथी. हा. चारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संचित कर्मोना क्षयमां अने आगामी कर्मोनी उत्पत्ति रोकवामां समर्थ थई शके छे सम्यग्ज्ञानथी मिथ्याज्ञाननी निवृत्ति थाय छे. पछी राग-द्वेष वगेरेनो अभाव थई जवाथी हिंसादि पापक्रियानी निवृत्तिरूप चारित्रनी सहायताथी नवीन कर्मोनी उत्पत्ति अटके छे ओ प्रमाणे संचित कर्मोनो क्षय पण चारित्रथी युक्त सम्यग्ज्ञानथीज थाय छे. जेवी रीते ओषधना ज्ञानमात्रथी अथवा ओषधनुं नाम लेवाथी व्याधि दूर थती नथी, परन्तु सेवन करवाथी ज दूर थाय छे. ते प्रमाणे चारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञानथीज कर्मोनो क्षय थाय छे

यथा–उष्णस्पर्शस्यागामिशीतस्पर्शानुत्पादनसामर्थ्यं पूर्वकालिकशीतस्पर्शध्वंसेऽपि च सामर्थ्यं लोके दृष्टम्, तद्वच्चारित्रसहितसम्यग्ज्ञानस्यापि सकलकर्मक्षयसामर्थ्यं भवति।

इदमत्रावधेयम्–सम्यग्ज्ञानं तदेवास्ति, यत् खलु परिणामिजीवाजीवादिविषयकम्, न त्वेकान्ततोऽपरिणामिकूटस्थनित्यात्मादिविषयकम्, तस्य विपरीतार्थविषयकतया मिथ्यात्वरूपत्वात्। यदि पुनः सवररूपचारित्रसहितसम्यग्ज्ञानस्याग्निरूपत्वं स्वीकृत्य निःशेषकर्मक्षयसामर्थ्यमङ्गीक्रियते, "यथैधांसि समिद्धोऽग्निः" इत्यादिवचनेन तर्हि मन्मतसिद्ध एवार्थस्तेन साधित इति।

जैसे उष्ण स्पर्श, आगामी शीतस्पर्श की उत्पत्ति को रोकता है और पूर्व कालीन शीतस्पर्श का नाश करने में भी समर्थ होता है, यह वात लोक में देखी जाती है। उसी प्रकार चारित्रसहित सम्यग्ज्ञान भी समस्त कर्मों के क्षय में समर्थ होता है।

साराश यह है कि–सम्यग्ज्ञान वही है जो जीव–अजीव आदि को परिणामी जानता है। आत्मा आदि को एकान्तअपरिणामी, कूटस्थ नित्य समझने वाला ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं है। यह ज्ञान विपरीत वस्तु का बोधक होने से मिथ्या है। हाँ, अगर सवररूप चारित्र से युक्त सम्यग्ज्ञान को अग्नि के समान मान कर उसको सब कर्मों के क्षय का कारण मानते हो, जैसा कि कहा है– "बढी हुई अग्नि इन्धन को भस्म करती है" यह तो हमारे ही मत का समर्थन किया गया है, अर्थात् यह कथन हमें भी इष्ट ही है।

જેવી રીતે ઉષ્ણુસ્પર્શ, આગામી શીતસ્પર્શની ઉત્પત્તિને રોકે છે, અને પૂર્વ કાલીન શીતસ્પર્શનો નાશ કરવામા પણુ સમર્થ થાય છે. આ વાત લોકમા જોવામા આવે છે, તે પ્રમાણે ચારિત્રસહિત સમ્યગ્જ્ઞાન પણુ સમસ્ત કર્મોના ક્ષય માટે સમર્થ થાય છે

સારાશ એ છે કે–સમ્યગ્જ્ઞાન તેજ છે કે જે–જીવ–અજીવ આદિને પરિણુામી જાણે છે આત્મા આદિને એકાન્ત અપરિણુામી, કૂટસ્થ, નિત્ય સમજવાવાળુ જ્ઞાન તે સમ્યગ્જ્ઞાન નથી. તે જ્ઞાન વિપરીત વસ્તુનું બોધક હોવાથી મિથ્યા છે હા. અગર સવરરૂપ ચારિત્રથી યુક્ત સમ્યગ્જ્ઞાનને અગ્નિસમાન માનીને તેને સર્વ કર્મોના ક્ષયનુ કારણુ માનો છો, જેવી રીતે કહ્યુ છે કે–"જેમ વધેલી અગ્નિ લાકડાને બાળી નાખે છે." એ તો અમારાજ મતનુ સમર્થન કર્યું છે, અર્થાત્ તે કથન તો અમારે પણુ ઇષ્ટ છે.

इति संक्षेपतः कर्मवादिप्रकरणं वर्णितम् । विस्तरतस्तु यथाशास्त्र मवगन्तव्यम् ।

॥ अथ क्रियावादिप्रकरणम् ॥

यः पुनरेवं कर्मबन्धवेदी भव्यः कर्मस्वरूपनिरूपणपरः स एव कर्मवादी वस्तुतः क्रियावादीत्याह—'क्रियावादी' इति । करणं क्रिया । क्रियते जीवेन इति वा क्रिया । कर्मबन्धनिबन्धना चेष्टा । यथा मनोवाक्कायसम्बन्धिनी यथासंभवं योग उच्यते । अथवा–युनक्ति जीवो यं वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं पर्यायं स योगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं मनोयुक्तात्मप्रदेशगतवीर्यपरिणमनं मनोयोगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं वाक्संयुक्तात्मप्रदेशगतवीर्यपरिणमनं

इस प्रकार संक्षेप में कर्मवादी के प्रकरण का वर्णन किया गया है। अधिक विवरण शास्त्रों से समझ लेना चाहिए।

क्रियावादी का प्रकरण।

जो भव्य जीव इस प्रकार कर्मबन्ध का ज्ञाता है, और कर्म के स्वरूप का निरूपण करने वाला है वही कर्मवादी सच्चा क्रियावादी है।

करना क्रिया है। अथवा जीव के द्वारा जो की जाय वह क्रिया है। कर्मबन्ध का कारण चेष्टा क्रिया है। मन, वचन काय सम्बन्धी यह क्रिया यथासम्भव योग कहलाती है। अथवा जिस के द्वारा जीव वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से जनित पर्याय से युक्त बनता है, उसको योग कहते हैं। वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से जनित मन-युक्त आत्मप्रदेशों में रहे हुए वीर्य का परिणमन मनोयोग कहलाता है। वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से जनित वचनयुक्त आत्मप्रदेशों में रहे हुए वीर्य का परिणमन वचनयोग

આ પ્રમાણે સંક્ષેપમાં કર્મવાદીના પ્રકરણનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, અધિક વિવરણ શાસ્ત્રોથી સમજી લેવું જોઈએ.

ક્રિયાવાદીનું પ્રકરણ.

જે ભવ્ય જીવ આ પ્રમાણે કર્મબંધના જ્ઞાતા છે અને કર્મના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવાવાળા છે; તેજ કર્મવાદી સાચા ક્રિયાવાદી છે

કરવું તે ક્રિયા છે અથવા જીવ દ્વારા જે કરવામાં આવે તે ક્રિયા છે કર્મબંધનું કારણ ચેષ્ટા, ક્રિયા છે મન, વચન, કાયા સંબંધી જે ક્રિયા યથાસંભવ યોગ કહેવાય છે અથવા જેના દ્વારા જીવ વીર્યાન્તરાય-કર્મના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન પર્યાયયુક્ત બને છે, તેને યોગ કહે છે વીર્યાન્તરાયના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન, મનયુક્ત આત્મ-પ્રદેશોમાં રહેલા વીર્યના પરિણમન તે મનોયોગ કહેવાય છે વીર્યાન્તરાયના ક્ષયોપશમથી

वाग्योगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं काययुक्तात्मप्रदेशगतवीर्यपरिणमनं काययोगः। सा च क्रिया सकलकर्मबन्धस्य कारणम्, अतः कर्मवादी भव्यः क्रियां सकलकर्मकारणस्वरूपतयाऽऽत्मपरिणतिरूपत्वेन च विजानाति, तस्मात् सकलकर्मबन्धकारणमात्मपरिणतिरूपा च क्रियेति वेदिता, क्रियावादी-क्रियास्वरूपकथनस्वभावो वेदितव्य इत्यर्थः ।

क्रिया कर्मणः कारणमिति भगवता भगवतीसूत्रे निगदितम्, तथाहि—

"मंडिअपुत्ता ! जावं च णं से जीवे सया समियं एयइ, वेयइ, चलइ, फंदइ, घट्टइ, खुब्भइ, उदीरइ, त तं भावं परिणमइ, तावं च णं से जीवे आरंभइ सारंभइ समारंभइ, आरंभे वट्टइ सारभे वट्टइ, समारंभे वट्टइ, आरंभमाणे सारंभमाणे समारंभमाणे आरंभे वट्टमाणे सारंभे वट्टमाणे समारंभे वट्टमाणे वहूणं पाणाण भूयाणं जीवाणं सत्ताणं दुक्खावणयाए, सोयावणयाए, झूरावणयाए, तिप्पावणयाए, परियावणयाए वट्टइ, से तेणट्ठेण मंडिअपुत्ता ! एवं वुच्चइ—जाव च णं से जीवे सया समिय एयइ जाव परिणमइ, तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया न भवइ" (भगवती ३. शत ३उ.)

कहलाता है । वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से जनित, काययुक्त आत्मप्रदेशों में रहे हुए वीर्य का परिणमन काययोग कहलाता है । यह क्रिया सकल कर्मबन्ध का कारण है, इस लिए भव्य पुरुष क्रिया को सब कर्मों का कारण और आत्मा की परिणतिरूप समझता है, अत "क्रिया, समस्त कर्मों का कारण और आत्मा की परिणतिरूप है" इस प्रकार जानने वालेको क्रियावादिक्रिया के स्वरूप का कथन करने वाला समझना चाहिए ।

क्रिया, कर्म का कारण है, यह बात भगवान् ने भगवतीसूत्र में कही है, वह इस प्रकार —

ઉત્પન્ન, વચન-યુક્ત આત્મપ્રદેશોમા રહેલા વીર્યના પરિણુમન કાયયોગ કહેવાય છે આ ક્રિયા સકલ કર્મબધનુ કારણુ છે એટલા માટે ભવ્ય પુરૂષ ક્રિયાને સર્વ કર્મોનું કારણુ અને આત્માની પરિણુતિરૂપ સમજે છે તે કારણથી "ક્રિયા સમસ્ત કર્મોનુ કારણુ અને આત્માની પરિણુતિરૂપ છે" આ પ્રમાણે જાણુવાવાળાને ક્રિયાવાદી-ક્રિયાના સ્વરૂપનુ કથન કરવા વાળા સમજવા જોઈએ

ક્રિયા એ કર્મનુ કારણુ છે, એ વાત ભગવાને ભગવતીસૂત્રમા કહી છે, તે આ પ્રમાણે છે—

छाया-मण्डितपुत्र ! यावत् खलु स जीवः सदा समितं एजते व्येजते चलति स्पन्दते घट्टते क्षुभ्यति उदीरयते तं तं भावं परिणमति, तावत् खलु स जीव आरभते संरभते समारभते, आरम्भे वर्तते संरम्भे वर्तते समारम्भे वर्तते, आरभमाणः, संरभमाणः समारभमाणः। आरम्भे वर्तमानः, संरम्भे वर्तमानः समारम्भे वर्तमानो बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्त्वानां, दुःखापनतया शोचापनतया झूरापनतया तेपापनतया पिट्टापनतया परितापनतया वर्तते तत् तेनार्थेन मण्डितपुत्र ! एवम् उच्यते-यावच्च खलु स जीवः सदा समितं एजते यावत् परिणमति, तावच्च खलु तस्य जीवस्य अन्ते अन्तक्रिया न भवति।

भावार्थः—

मनोवाक्काययोगसहितस्य जीवस्य सर्वदा क्रियापरिणत्या कम्पन-स्थानान्तरगमन-किञ्चिच्चलन-सर्वदिग्गमन-पृथिव्यादिक्षोभण-बलात्कारपूर्वकप्रेरणो-त्क्षेपणा-पक्षेपणा-ऽऽकुञ्चन-प्रसारणादिपरिणामं प्राप्तस्य पृथिव्यादिजीवानामुप-द्रवकरणेन वा, विनाशसंकल्पनेन वा, परितापनेन वा, मरणरूपदुःख-प्रापणया वा, प्रियवियोगादिदुःखप्रापणया वा, शोकप्रापणया वा, शोकाधिक्यजन्य-

मन वचन और काययोग से सहित जीव सदा क्रियारूप परिणति से कम्पन विविध कम्पन, एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन, किंचित् चलना सब दिशाओं में गमन करना, पृथ्वी आदि को क्षुब्ध करना बलात्कार से प्रेरित करना ऊपर उठाना, नीचे करना, सिकोड़ना, फैलाना इत्यादि परिणामों को प्राप्त होता है। इस परिणाम के कारण जीव को पृथिवीकाय आदि के जीवों को उपद्रव करने से, घातका संकल्प करने से, परिताप पहुँचाने से मरणरूप दु:ख पहुँचाने से इष्टवियोग आदि का कष्ट पहुँचाने से शोक

મન, વચન અને કાયયોગથી સહિત જીવ સદાય ક્રિયારૂપ પરિણતિથી કંપન, વિવિધ કંપન, એક સ્થાનથી બીજા સ્થાનપર ગમન, કિંચિત્ ચાલવું, સબ દિશાઓમાં ગમન કરવું, પૃથ્વી આદિને ક્ષુબ્ધ કરવું, બલાત્કારથી પ્રેરિત કરવું, ઉપર ઉઠાવવું, નીચે કરવું, સંકોચાવવું, ફેલાવું, ઇત્યાદિ પરિણામોને પ્રાપ્ત થાય છે આ પરિણામના કારણે જીવને પૃથ્વીકાય આદિના જીવોને ઉપદ્રવ કરવાથી ઘાતનો સંકલ્પ કરવાથી, પરિતાપ પહોંચાડવાથી, મૃત્યુરૂપ દુઃખ પહોંચાડવાથી, શોકની અધિકતાથી અવાવાળી શરીરની

...त्पादनया वा, अश्रुपातादिप्रापणया वा, शरीरपीडोत्पादनया वा, ...क्षयात्मिका मुक्तिर्न भवतीत्यर्थः। एवम्भूतस्य जीवस्य ...संसारकान्तारपरिभ्रमणाद् विरामो न संभवतीति भावः।

...पञ्चविंशतिभेदा इति स्थानाङ्गसूत्रे (स्था २ उ. १। स्था. ३ उ. ३)

कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातः—

प्राणातिपातं कुर्वन् जीवः सप्ताष्टौ वा ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि बध्नाति। ...आयुर्बन्धाभावे सप्त कर्माणि बध्नाति।

स जीवः कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातं निष्पादयति? उच्यते— कदाचित् तिसृभिः क्रियाभिः, कदाचिच्चतसृभिः क्रियाभिः, कदाचित्, पञ्चभिः क्रियाभिः।

...से होने वाली शरीर की जीर्णता पहुँचाने से, अश्रुपात आदि ...शरीर में पीड़ा उत्पन्न करने से, ग्लानि उत्पन्न करने से समस्त कर्मों का क्षयरूप मोक्ष प्राप्त नहीं होता। तात्पर्य यह है कि—इस प्रकार के जीव के चार गति के दुःखों से परिपूर्ण संसाररूपी विकट अटवी में भ्रमण करने का अन्त नहीं आता।"

क्रिया के पच्चीस भेद स्थानाङ्गसूत्र में कहे है। (स्था २ उ १, स्था ३ उ ३)

प्राणातिपात कितनी क्रियाओं से होता हैं?।

प्राणातिपात करता हुआ जीव ज्ञानावरणीय आदि सात या आठ कर्मों का बन्ध करता है। आयु का बन्ध हो तो आठ कर्मों का अन्यथा सात कर्मों का बन्ध करता है।

जीव कितनी क्रियाओं से प्राणातिपात करता है। इस का उत्तर यह है—कदाचित तीन क्रियाओं से, कदाचित् चार क्रियाओं से, कदाचित् पांच क्रियाओं से।

જીર્ણતા પહોંચાડવાથી, આંસુ પડાવવાથી, શરીરમા પીડા ઉત્પન્ન કરવાથી, ગ્લાનિ ઉત્પન્ન કરવાથી સમસ્તકર્મોના ક્ષયરૂપ મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી તાત્પર્ય એ છે કે— આ પ્રમાણે જીવનો ચારગતિના દુઃખોથી પરિપૂર્ણ સંસારરૂપી વિકટ અટવી (વન)મા ભ્રમણ કરવાનો અંત આવતો નથી

ક્રિયાના પચીસ ભેદ સ્થાનાગ સૂત્રમા કહ્યા છે (સ્થા ૨-ઉ-૧ સ્થા ૩-૩)

પ્રાણાતિપાત કેટલી ક્રિયાઓથી થાય છે?

પ્રાણાતિપાત કરનાર જીવ જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત અથવા આઠ કર્મોનો બંધ કરે છે. આયુનો બંધ હોય તો આઠ કર્મોનો—અન્યથા સાત કર્મોનો બંધ કરે છે

જીવ કેટલી ક્રિયાઓથી પ્રાણાતિપાત કરી શકે છે? તેનો ઉત્તર એ છે કે—કદાચિત્ ત્રણ ક્રિયાઓથી, કદાચિત્ ચાર ક્રિયાઓથી, કદાચિત્ પાંચ ક્રિયાઓથી.

तत्र-कायिक्याधिकरणिकीप्राद्वेषिकीभिः क्रियाभिस्तिसृभिर्युक्तो जीवः कर्माणि बध्नाति। कायिकीनाम-हस्तपादादिव्यापारणम्। अधिकरणिकी-खड्गतीक्ष्णीकरणादिकम्। प्राद्वेषिकी-'एनं मारयामी'-त्यशुभमनःसंप्रधारणमिति।

प्राणातिपातं कर्तुर्जीवस्य चतुष्क्रियता-कायिक्याधिकरणिकीप्राद्वेषिकीपारितापनिकीभिश्चतसृभिः क्रियाभिर्भवति। तत्र-पारितापनिकीनाम-खड्गादिघातेन पीडाकरणम्। पञ्चक्रियता तदा भवति यदा प्राणातिपातक्रियाऽपि पञ्चमी भवति। प्राणातिपातक्रियानाम-जीविताद् व्यपरोपणम्। उक्तरीत्या ज्ञानावरणी

कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी, इन तीन क्रियाओं वाला होकर जीव कर्मबन्ध करता है। हाथ-पैर आदि का हिलाना डुलाना वगैरह 'कायिकी' क्रिया है। तलवार को तीक्ष्ण करना वगैरह 'आधिकरणिकी' क्रिया है। 'इसे मारूंगा' इस प्रकार मन में अशुभ विचार करना 'प्राद्वेषिकी' क्रिया है।

प्राणातिपात करने वाला जीव चार क्रिया वाला होता है-कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी और पारितापनिकी, ये चार क्रियाएँ उसे लगती हैं। तलवार आदि का आघात कर के पीडा पहुँचाना 'पारितापनिकी' क्रिया है। जब प्राणातिपात क्रिया भी जीव कर डालता है तब उसे पांचों क्रियाएँ लगती हैं। किसी प्राणी को जीवन से वियुक्त कर देना 'प्राणातिपातिकी' क्रिया है। इस प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों के कारणभूत

કાયિકી આધિકરણિકી અને પ્રાદ્વેષિકી, આ ત્રણ ક્રિયાઓવાળા થઈને જીવ કર્મબંધ કરે છે હાથ-પગ આદિને હલાવવું-ડોલવું વગેરે કાયિકી ક્રિયા છે. તલવાર વગેરેને તીક્ષ્ણ કરવી વિગેરે આધિકરણિકી ક્રિયા છે અને આને મારીશ આ પ્રકારનો મનમાં અશુભ વિચાર કરવો તે પ્રાદ્વેષિકી ક્રિયા છે

પ્રાણાતિપાત કરવાવાળા જીવ ચાર ક્રિયાવાળા હોય છે-કાયિકી, આધિકરણિકી પ્રાદ્વેષિકી અને પારિતાપનિકી, આ ચાર ક્રિયાઓ તેને લાગે છે તલવાર આદિનો આઘાત કરીને પીડા પહોંચાડવી તે પારિતાપનિકી ક્રિયા છે જ્યારે પ્રાણાતિપાત ક્રિયા પણ જીવ કરી નાખે છે ત્યારે તેને પાંચ ક્રિયાઓ લાગે છે કોઈ પ્રાણીને જીવનથી વિયુક્ત (અલગ) કરી દેવું તે પ્રાણાતિપાતિકી ક્રિયા છે આ પ્રમાણે જ્ઞાનાવરણીય આદિ

शरीरजीर्णताप्रापणया वा, अश्रुपातादिप्रापणया वा, शरीरपीडोत्पादनया वा, ग्लानिजननेन वा सकलकर्मक्षयात्मिका मुक्तिर्न भवतीत्यर्थः। एवम्भूतस्य जीवस्य चतुर्गतिकदुःखमयसंसारदुस्तरमहारण्यपरिभ्रमणाद् विरामो न संभवतीति भावः।

क्रियायाः पञ्चविंशतिर्भेदा इति स्थानाङ्गसूत्रे (स्था २ उ. १। स्था. ३ उ. ३)

कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातः—

प्राणातिपातं कुर्वन् जीवः सप्ताष्टौ वा ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि बध्नाति। तत्रायुर्बन्धे सत्यष्टौ कर्माणि, आयुर्बन्धाभावे सप्त कर्माणि बध्नाति।

तत्र जीवः कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातं निष्पादयति ? उच्यते– कदाचित् तिसृभिः क्रियाभिः, कदाचिच्चतसृभिः क्रियाभिः, कदाचित्, पञ्चभिः क्रियाभिः।

पहुँचाने से शोक की अधिकता से, होने वाली शरीर की जीर्णता पहुँचाने से, अश्रुपात आदि करवाने से, शरीर में पीडा उत्पन्न करने से, ग्लानि उत्पन्न करने से समस्त कर्मों का क्षयरूप मोक्ष प्राप्त नहीं होता। तात्पर्य यह है कि–इस प्रकार के जीव के चार गति के दुःखों से परिपूर्ण ससाररूपी विकट अटवी में भ्रमण करने का अन्त नहीं आता।"

किया के पच्चीस भेद स्थानाङ्गसूत्र में कहे हैं। (स्था २ उ १, स्था ३ उ. ३)

प्राणातिपात कितनी क्रियाओं से होता हैं ?।

प्राणातिपात करता हुआ जीव ज्ञानावरणीय आदि सात या आठ कर्मों का बन्ध करता हैं। आयु का बन्ध हो तो आठ कर्मों का अन्यथा सात कर्मों का बन्ध करता है।

जीव कितनी क्रियाओं से प्राणातिपात करता है। इस का उत्तर यह है–कदाचित् तीन क्रियाओं से, कदाचित् चार क्रियाओं से, कदाचित् पांच क्रियाओं से।

જીર્ણતા પહોચાડવાથી, આંસુ પડાવવાથી, શરીરમા પીડા ઉત્પન્ન કરવાથી, ગ્લાનિ ઉત્પન્ન કરવાથી સમસ્તકર્મોના ક્ષયરૂપ મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી તાત્પર્ય એ છે કે— આ પ્રમાણે જીવનો ચારગતિના દુ ખોથી પરિપૂર્ણ સ સારરૂપી વિકટ અટવી (વન)મા ભ્રમણ કરવાનો અ ત આવતો નથી

ક્રિયાના પચીસ ભેદ સ્થાનાગ સૂત્રમા કહ્યા છે (સ્થા ૨–ઉ–૧ સ્થા. ૩–૩)

પ્રાણાતિપાત કેટલી ક્રિયાઓથી થાય છે ?

પ્રાણાતિપાત કરનાર જીવ જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત અથવા આઠ કર્મોનો બ ધ કરે છે આયુનો બ ધ હોય તો આઠ કર્મોનો–અન્યથા સાત કર્મોનો બ ધ કરે છે

જીવ કેટલી ક્રિયાઓથી પ્રાણાતિપાત કરી શકે છે ? તેનો ઉત્તર એ છે:—કદાચિત્ ત્રણ ક્રિયાઓથી, કદાચિત્ ચાર ક્રિયાઓથી, કદાચિત્ પાંચ ક્રિયાઓથી.

बद्धे सति तु मृगे तस्य लुब्धकस्य पारितापनिकी, परितापनप्रयोजना क्रिया भवति। पातिते च सति मारणरूपा प्राणातिपातक्रिया।

पूर्वं क्रियया ज्ञानावरणीयादिकं कर्म जन्यते। तज्जन्यकर्मफलानुभवनरूपा वेदना च तत्पश्चादेव भवति। उक्तञ्च—

"पुव्विं भंते! किरिया पच्छा वेयणा? पुव्विं वेयणा पच्छा किरिया? मंडियपुत्ता! पुव्विं किरिया पच्छा वेयणा, णो पुव्विं वेयणा, पच्छा किरिया"। (भग ३ श ३ उ)

छाया—पूर्वं भदन्त! क्रिया पश्चाद् वेदना? पूर्वं वेदना पश्चात् क्रिया? मण्डितपुत्र! पूर्वं क्रिया पश्चाद् वेदना, नो पूर्वं वेदना पश्चात् क्रिया॥

कुसूलादौ लोहप्रक्षेपतः क्रिया—

कोऽपि लोहमतापनार्थं कुसूले लोहमयेन संदंशकेनोत्क्षिपन् प्रक्षिपन् वा

प्राद्वेषिकी क्रिया लगती है। मृग के बँध जाने पर शिकारी को पारितापनिकी क्रिया लगती है। मृग का घात करने पर हिंसारूप प्राणातिपातिकी क्रिया होती है।

पहले क्रिया से ज्ञानावरण आदि कर्मों का [redacted] होता है और उस का फल भोगनारूप वेदना बाद में [redacted] होती है। कहा भी है—

"हे भगवन्! पहले क्रिया और फिर वेदना होती है? अथवा पहले वेदना और पश्चात् क्रिया होती है? हे मण्डितपुत्र! पहले क्रिया पश्चात् वेदना होती है। पहले वेदना और पश्चात् क्रिया नहीं होती" (भगवती. श ३ उ ३)

कुसूल आदि में लोहा डालने वाले को क्रिया—

तपाने के लिए कुसूल (भूस) में लोहे को संडासी से लोहा डालने वाले को

ક્રિયા થાય છે મૃગ ઉપર બંધાવાથી દ્વેષથી પ્રાદ્વેષિકી ક્રિયા લાગે છે મૃગના બંધાઈ જવાથી શિકારીને પારિતાપનિકી ક્રિયા લાગે છે મૃગનો ઘાત કરવાથી હિંસારૂપ પ્રાણાતિપાતિકી ક્રિયા થાય છે

પ્રથમ ક્રિયાથી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોનો બંધ થાય છે અને તેનું ફળ ભોગવવા રૂપ વેદના પછીથીજ થાય છે કહ્યું છે કે—

'હે ભગવન્! પહેલાં ક્રિયા અને પછી વેદના થાય છે? કે પહેલાં વેદના અને પછીથી ક્રિયા થાય છે? હે મંડિતપુત્ર! પહેલી ક્રિયા, અને પછીથી વેદના થાય છે પહેલી વેદના અને પછીથી ક્રિયા થતી નથી.' (ભગ. શ. ૩ ઉ ૩)

ભૂસ આદિમાં લોઢું નાખનારને ક્રિયા—

તપાવવા માટે ભૂસમાં, લોઢાની સાણસીથી લોઢું નાંખવાવાળાને કાઢિકોથી વાઈને

यादिकर्मणां कारणीभूतस्य प्राणातिपातस्य निष्पत्तिस्त्रिक्रियतया, चतुष्क्रियतया पञ्चक्रियतया वा त्रिधा भवति । एवं चतुर्विंशतिदण्डकेषु विज्ञेयम् ।

मृगवधोद्यतस्य क्रिया—

मृगवधोद्यतो लुब्धकः खलु वनपर्वतजलाशयादिषु मृगवधार्थं गत्वा मृगग्रहणाय गर्तादिकं तद्बन्धनार्थं च पाशं रचयति, तदा मृगवधार्थं गमनगर्तपाशादिकरणात् तस्य कायिक्यादिकाः क्रिया भवन्ति । तत्र गमनधावनग्रहणादिना गमनादिकायचेष्टारूपा कायिकी, गर्तपाशादिरूपेणाधिकरणेन निर्वृत्ता क्रिया आधिकरणिकी, यश्च मृगेषु प्रद्वेषस्तेन निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी क्रिया भवति ।

प्राणातिपात की निष्पत्ति कहीं तीन, चार तथा कहीं पांच क्रियाओं से, ऐसे तीन प्रकार से होती है । चौवीसों दण्डकों में इसी प्रकार समझना चाहिए ।

मृगवध में उद्यतको क्रिया—

मृग मारने के लिए उद्यत हुआ शिकारी वन पर्वत और जलाशय आदि में मृगका वध करने के लिए जाकर मृग पकडने के लिए खड्डा बनाता है और उसे बांधने के लिए जाल रचता है । उस समय मृगवध के लिए गमन करने से, तथा खड्डा एव पाश तैयार करने से, उसे कायिकी आदि क्रियाएँ लगती हैं । जाना दौडना, पकडना आदि से कायिकचेष्टारूप **कायिकी** क्रिया लगती है । खड्डा और जालरूप अधिकरणों के कारण **आधिकरणिकी** क्रिया होती है, मृग पर होने वाले द्वेष के कारण

કર્મોના કારણભૂત પ્રાણાતિપાતની ઉત્પત્તિ કોઈ સ્થળે ત્રણ, કોઈ ઠેકાણે ચાર તથા કોઈ ઠેકાણે પાચ ક્રિયાઓથી એવા ત્રણ પ્રકારથી હોય છે ચોવીશેય દડકોમાં આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ

મૃગવધમાં તૈયાર થનારને ક્રિયા—

મૃગને મારવા માટે તૈયાર થયેલો શિકારી વન, પર્વત અને જલાશય આદિમા મૃગનો વધ કરવા માટે જઈને મૃગ પકડવા માટે ખાડો બનાવે છે, અને તેને બાધવા માટે જાલ રચે છે તે સમયે મૃગના વધ માટે ગમન કરવાથી, તથા ખાડો અને પાશ તૈયાર કરવાથી તેને કાયિકી આદિ ક્રિયાઓ લાગે છે. જવુ, દોડવું, પકડવુ આદિથી કાયિક ચેષ્ટારૂપ कायिकी ક્રિયા લાગે છે ખાડો અને જાલરૂપ અધિકરણોના કારણે आधिकरणिकी

पयति, स्थानतः स्थानान्तरं नयति, जीविताद् व्यपरोपयति। तत्र कायिक्यादि प्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति।

वृष्टिज्ञानाय हस्तादिक प्रसारयतः क्रिया—

रात्रौ निबिडान्धकारे चक्षुर्दर्शनाभावे सति वृष्टिं विज्ञातुमाकाशे यः खलु हस्तं पादं वा बाहुं वा ऊरुं वा यावत्कालं प्रसारयेत् संकोचयेत् तावत्कालश्च एवासौ कायिक्यादिप्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति।

करता है, पूरी तरह परितापना करता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर लेजाता है, जीवन से च्युत करता है, ऐसा करने में वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। अर्थात् पांचों ही क्रियाएँ उसे लगती हैं।

वृष्टिज्ञान के लिए हाथ आदि फैलाने वाले को क्रियाएँ—

रात्रि के समय घोर अन्धकार में-चक्षुर्दर्शन का अभाव होने पर, वर्षा जानने के लिए आकाश में जो हाथ पैर, बाहु, या उरू जब तक पसारता है, सिकोड़ता है, तब तक ही वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचक्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

પૂરી રીતે પરિતાપના કરે છે, એક સ્થાનથી બીજા સ્થાનમાં લઈ જાય છે જીવનથી ચ્યુત (વિમુક્ત) કરે છે એવી રીતે કરવામાં તે કાયિકી આદિ પ્રાણાતિપાતિકી સુધીની પાંચેય ક્રિયાઓથી સ્પૃષ્ટ થાય છે અર્થાત્ તેને પાંચેય ક્રિયાઓ લાગે છે

વૃષ્ટિજ્ઞાન માટે હાથ આદિ ફેલાવવા વાળાને ક્રિયાઓ—

રાત્રિના ઘોર અંધકારમાં, ચક્ષુદર્શનનો અભાવ હોવાથી વરસાદ આવે છે કે નહિ? એ જાણવા માટે, આકાશમાં જે હાથ, પગ બાહુ અથવા ઊરૂ જ્યાં સુધી પ્રસારે છે, સંકોચે છે, ત્યાં સુધી તે કાયિકી આદિ પ્રાણાતિપાતિકીસુધીની પાંચ ક્રિયાઓ તેને સ્પર્શે છે.

कायिक्यादि–प्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति। एवं लोहेन फालपरशुकुठारकुद्दालदात्रादिनिर्माणे लोहकारादीना पञ्चक्रियत्वं भवति, अविरतिसद्भावात्। एवं घनोपरि स्थापनेन कुट्टनेन भस्त्रया ध्मापनेन विध्यापनेन प्रज्वालितेन शैत्यकरणार्थं जले तप्तलोहप्रक्षेपेण प्रत्येकतत्तद्व्यापारे पञ्चभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति।

धनुषा विध्यतः क्रिया–

धनुर्धरः शरैर्व्यापादयन् यावत् धनुर्गृह्णाति, धनुः प्रसारयति, कर्णपर्यन्तमाकर्षति, वर्तुलीकरोति, बाणं संयोजयति, ऊर्ध्वं प्रक्षिपति, स्वाभिमुखमागच्छतो हन्ति, अन्योन्यगात्रं संहतीकरोति, मनाक् स्पृशति, समन्ततः परिता-

---

कायिकी से प्राणातिपातिकी पर्यन्त पाच क्रियाओं का स्पर्श होता है। इसी प्रकार लोहे से फाल, फरसा, कुल्हाडा, कुदाल, दातला आदि के बनाने में लुहार वगैरह को पांच क्रियाएँ लगती हैं, क्यों कि उस में अविरति मौजूद है। इसी प्रकार घन के ऊपर रखने में, कूटने में, धौकने में, आग बुझाने में, प्रज्वलित करने में, ठडा करनेके लिए जल में लोहा डालने में, इस प्रत्येक में पाच २ क्रियाएँ लगती हैं।

धनुष से वेधने में क्रिया–

धनुर्धारी पुरुष बाण से मारता हुआ जब तक धनुष ग्रहण करता है, धनुष फैलाता है, कानपर्यन्त खींचता है, गोल करता है, उस मे बाण जोडता है, ऊपर फैंकता है, अपने सामने आते को मारता है, शरीर को सिकोडता है, जरा–सा स्पर्श

પ્રાણાતિપાત સુધીની પાચ ક્રિયાઓનો સ્પર્શ થાય છે એ પ્રમાણે લોઢાના ફાલ–હળની કોસ, ફરસી, કુવાડા, કોદાલી, દાતલા આદિ બનાવવામા લુહાર વગેરેને પાચ ક્રિયાઓ લાગે છે, કારણ કે તેમા અવિરતિ હાજર છે આ પ્રકારે ઘણને ઉપર રાખવામા, કૂટવામાં ધોકનીથી ધોકવામા, અગ્નિ બુઝાવામા, પ્રજ્વલિત કરવામા અને લોઢું ઠડું કરવા માટે પાણીમા નાખવામા. આ પ્રત્યેક કાર્યમા પાચ ક્રિયાઓ લાગે છે

ધનુષથી વિધવામા ક્રિયા—

ધનુષ ધારણ કરનાર પુરૂષ બાણથી મારતો જ્યાસુધી ધનુષ ગ્રહણ કરે છે, ધનુષ ફેલાવે છે, કાન સુધી ખેચે છે, ગોળ કરે છે, તેમા બાણ જોડે છે, ઉપર ફેંકે છે, પોતાના સામે આવનારને મારે છે, શરીરને સકોચે છે, થોડો એવો સ્પર્શ કરે છે,

पयति, स्थानतः स्थानान्तरं नयति, जीविताद् व्यपरोपयति। तत्र कायिक्यादि प्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति।

वृष्टिज्ञानाय हस्तादिकं प्रसारयतः क्रिया—

रात्रौ निबिडान्धकारे चक्षुर्दर्शनाभावे सति वृष्टिं विज्ञातुमाकाशे यः खलु हस्तं पादं वा बाहुं वा ऊरुं वा यावत्कालं प्रसारयेत् संकोचयेत् तावत्कालञ्च एवासौ कायिक्यादिप्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति।

करता है, पूरी तरह परितापना करता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलाता है, जीवन से च्युत करता है, ऐसा करने में वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। अर्थात् पांचों ही क्रियाएँ उसे लगती हैं।

वृष्टिज्ञान के लिए हाथ आदि फैलाने वाले को क्रियाएँ—

रात्रि के समय घोर अन्धकार में-चक्षुर्दर्शन का अभाव होने पर, वर्षा जानने के लिए आकाश में जो हाथ पैर, बाहु, या उरू जब तक पसारता है, सिकोड़ता है, तब तक ही वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचक्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

પૂરી રીતે પરિતાપના કરે છે એક સ્થાનથી બીજા સ્થાનમાં લઈ જાય છે જીવનથી ચ્યુત (વિમુક્ત) કરે છે એવી રીતે કરવામાં તે કાયિકી આદિ પ્રાણાતિપાતિકી સુધીની પાંચેય ક્રિયાઓથી સ્પૃષ્ટ થાય છે અર્થાત્ તેને પાંચેય ક્રિયાઓ લાગે છે

વૃષ્ટિજ્ઞાન માટે હાથ આદિ ફેલાવવા વાળાને ક્રિયાઓ—

રાત્રિના ઘોર અંધકારમાં ચક્ષુદર્શનનો અભાવ હોવાથી વરસાદ આવે છે કે નહિ ? એ જાણવા માટે, આકાશમાં જે હાથ પગ, બાહુ અથવા ઉરૂ જ્યાં સુધી પ્રસારે છે, સંકોચે છે ત્યાં સુધી તે કાયિકી આદિ પ્રાણાતિપાતિકીસુધીની પાંચ ક્રિયાઓ તેને સ્પર્શે છે

॥ तालमारुह्य तत्फलं पातयतः क्रिया ॥

तालवृक्षमारुह्य तत्फलं पातयन्नपि तावत्कालत एव पञ्चभिः कायिक्यादिक्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

अष्टादश पापस्थानानि—

(१) प्राणातिपातः—

जीवानां प्राणातिपाताध्यवसायेन प्राणातिपातक्रिया भवति । हिंसापरिणामकाल एव प्राणातिपातक्रिया भवति । प्राणातिपातादीनामध्यवसायमात्रादपि ज्ञानावरणीयादि कर्म जन्यते । उक्तञ्च—

" परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंवमाणाणं " इति ।

तालवृक्ष पर चढ कर फल गिरानेवाले को क्रियाएँ—

ताल वृक्ष पर चड कर उस के फल गिराता हुआ तब तक कायिकी आदि पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है ।

अठारह पापस्थान—

(१) प्राणातिपात—

जीवों का प्राणातिपात करने के अध्यवसाय से प्राणातिपातक्रिया होती है । हिंसारूप परिणाम के समय ही प्राणातिपातक्रिया होती है । प्राणातिपात का अध्यवसाय होने मात्र से भी ज्ञानावरण आदि कर्म उत्पन्न होते हैं । कहा भी है—

" परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंवमाणाणं "

अर्थात् प्राणातिपात करने का निश्चय करने वाले का परिणाम ही कर्मवन्ध का कारण है

તાલવૃક્ષપર ચઢીને ફલ પાડનારની ક્રિયાઓ—

તાલવૃક્ષ પર ચઢીને તેના ફળ પાડે છે ત્યા સુધી કાયિકી આદિ પાચ ક્રિયાઓનો સ્પર્શ કરે છે

અઢાર પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોના પ્રાણાતિપાત કરવાના અધ્યવસાયથી પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે હિંસારૂપ પરિણામના સમયેજ પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે પ્રાણાતિપાતનો અધ્યવસાય થવા માત્રથી પણ જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે કહ્યું છે કે—

" परिणामिय पमाण णिच्छयमवलवमाणाण "

અર્થાત્—પ્રાણાતિપાત કરવાનો નિશ્ચય કરવાવાળાના પરિણામજ કર્મબંધનુ કારણ છે.

इय च प्राणातिपातक्रिया षड्जीवनिकायविषये भवति। यथा–रज्ज्वादौ सर्पादिबुद्ध्या मारणाध्यवसायोऽपि जीवविषयक एव। तत्र हि–'सर्पोऽय' मितिबुद्ध्या मारणाध्यवसायो जायते, तस्मात् रज्जुं प्रति सर्पवधभावयुक्तः सर्पवधजन्यया प्राणातिपातक्रियया स्पृष्टो भवति। अजीवविषयको मारणाध्यवसायस्तु नैव संभवति, यथा रज्जुं रज्जुत्वेन विज्ञाय न कश्चिद्रज्जुविषये मारणाध्यवसायं करोति तस्मात् षट्सु जीवनिकायेष्वेव प्राणातिपातक्रिया प्रवर्तते, न त्वजीवविषय इति। उक्तञ्च—

"कम्हि णं भंते! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ?। गोयमा छसु जीवनिकाएसु" इति

यह प्राणातिपात क्रिया षड्जीवनिकाय के विषय में होती है। रस्सी आदि में सांप आदि की भावना से मारने का अध्यवसाय होना भी जीवविषयक ही अध्यवसाय है। वहाँ 'यह सर्प है' इस प्रकार की भावना से मारने का अध्यवसाय होता है, अत एव वहाँ रस्सी में सर्प के वध के भाव से युक्त पुरुष सर्पवधजन्य प्राणातिपात क्रिया से स्पृष्ट होता है। अजीवविषयक मारने का अध्यवसाय तो हो ही नहीं सकता है–रस्सी को रस्सी समझ कर कोई रस्सी में मारने की भावना नहीं करता अत षड्जीवनिकायों में ही प्राणातिपातिकी क्रिया प्रवृत्त होती है, अजीव में नहीं। कहा भी है—

"भगवन्! किन में जीवों को प्राणातिपातिकी क्रिया होती है? गौतम! छह जीवनिकायों में"।

આ પ્રાણાતિપાત ક્રિયા ષડ્જીવનિકાયના વિષયમાં થાય છે દોરડાં આદિમાં સર્પઆદિની ભાવનાથી મારવાનો અધ્યવસાય થવો તે પણ જીવવિષયક અધ્યવસાય છે ત્યાં આ સર્પ છે' આ પ્રકારની ભાવનાથી મારવાનો અધ્યવસાય થાય છે એટલા કારણથી ત્યાં રસ્સી–દોરડાંમાં–સર્પના વધની ભાવનાયુક્ત પુરુષ સર્પવધજન્ય પ્રાણાતિપાત ક્રિયાને સ્પર્શે છે. અજીવવિષયક મારવાના અધ્યવસાય તો થઈ શકતા નથી–રસ્સીને રસ્સી (દોરડી) સમજીને કોઈ રસ્સી–દોરડામાં મારવાની ભાવના કરતા નથી તે માટે ષડ્જીવની કાયોમાંજ પ્રાણાતિપાતની ક્રિયા પ્રવૃત્ત હોય છે અજીવમાં નહિ. કહ્યું પણ છે—

"ભગવન્! કોમાં જીવોને પ્રાણાતિપાતિકી ક્રિયા થાય છે? ગૌતમ! છ જીવનિકાયોમાં.

॥ तालमारुह्य तत्फल पातयतः क्रिया ॥

तालवृक्षमारुह्य तत्फलं पातयन्नपि तावत्कालत एव पञ्चभिः कायिक्यादि-क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

अष्टादश पापस्थानानि--

(१) प्राणातिपातः--

जीवानां प्राणातिपाताध्यवसायेन प्राणातिपातक्रिया भवति । हिंसापरिणाम-काल एव प्राणातिपातक्रिया भवति । प्राणातिपातादीनामध्यवसायमात्रादपि ज्ञाना-वरणीयादि कर्म जन्यते । उक्तञ्च—

" परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंबमाणाणं " इति ।

तालवृक्ष पर चढ कर फल गिरानेवाले को क्रियाएँ—

ताल वृक्ष पर चड कर उस के फल गिराता हुआ तब तक कायिकी आदि पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है ।

अठारह पापस्थान—

(१) प्राणातिपात—

जीवों का प्राणातिपात करने के अध्यवसाय से प्राणातिपातक्रिया होती है । हिंसा-रूप परिणाम के समय ही प्राणातिपातक्रिया होती है । प्राणातिपात का अध्यवसाय होने मात्र से भी ज्ञानावरण आदि कर्म उत्पन्न होते हैं । कहा भी है—

" परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंबमाणाणं "

अर्थात् प्राणातिपात करने का निश्चय करने वाले का परिणाम ही कर्मबन्ध का कारण है

તાલવૃક્ષપર ચઢીને ફલ પાડનારની ક્રિયાઓ—

તાલવૃક્ષ પર ચઢીને તેના ફળ પાડે છે ત્યા સુધી કાયિકી આદિ પાચ ક્રિયાઓનો સ્પર્શ કરે છે

અઢાર પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોના પ્રાણાતિપાત કરવાના અધ્યવસાયથી પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે હિંસા-રૂપ પરિણામના સમયેજ પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે પ્રાણાતિપાતનો અધ્યવસાય થવા માત્રથી પણ જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે કહ્યુ છે કે —

" परिणामिय पमाण णिच्छयमवलबमाणाण "

અર્થાત્–પ્રાણાતિપાત કરવાનો નિશ્ચય કરવાવાળાના પરિણામજ કર્મબ ધનુ કારણ છે

गतरूपेषु रूपसहगतेषु स्त्र्यादिषु विषयेषु भवति, न तु सकलवस्तुविषये। तदुक्तम्—

"कम्हि णं भंते ! जीवाणं मेहुणेणं किरिया कज्जइ ? । गोयमा ! रूवेसु वा रूवसहगएसु वा दव्वेसु" इति (भग १ श ६ उ)

(५) परिग्रहः—

परिग्रहः=स्वस्वामिभावेन मूर्च्छा । स च प्राणिनामधिकलोभात् समस्तवस्तुविषये प्रादुर्भवति।

कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकोऽक्षमारूप आत्मपरिणामः क्रोधः ६ । मानो=गर्वः ७ । माया=शाठ्यम् ८ । लोभो=गृध्नुता ९ । राग=प्रीतिरासक्तिर्वा १० ।

भी सब वस्तुओं में नहीं होता । चित्र, काष्ठ, या काष्ठ आदि में अङ्कित किये जाने वाले रूपों में या स्त्री आदि में ही मैथुन का अध्यवसाय होता है । कहा भी है—

"भगवन् ! किस विषय में जीव मैथुन क्रिया करते हैं ? गौतम ! रूपों में और रूप-युक्त विषयों (स्त्रियों आदि) में । (भग श. १, उ. ६)

(५) परिग्रह—

"यह वस्तु मेरी है मैं इसका स्वामी हूँ" इस प्रकार की मूर्च्छा को परिग्रह कहते हैं । प्राणियों में लोभ की अधिकता होने के कारण सभी वस्तुओं में मूर्च्छा हो सकती है।

कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट करने वाला अक्षमारूप आत्मा का परिणाम (६) क्रोध कहलाता है। गर्व को (७) मान और कपट को (८) माया कहते हैं।

પણ સર્વ વસ્તુઓમાં નથી. ચિત્ર લેપ્ય અથવા કાષ્ઠ આદિમાં ચિતરવામાં આવેલા રૂપોમાં અથવા સ્ત્રી આદિમાંજ મૈથુનનો અધ્યવસાય થાય છે કહ્યું પણ છે :—

"ભગવન્ ! કયા વિષયમાં જીવ મૈથુન ક્રિયા કરે છે ?

ગૌતમ ! રૂપોમાં અને રૂપયુક્ત વિષયો (સ્ત્રિયો આદિ)માં. (ભગ૦ શ૦-૧-ઉ)

(૫) પરિગ્રહ—

"આ વસ્તુ મારી છે—હું તેનો માલિક છું" આ પ્રકારની મૂર્છાને પરિગ્રહ કહે છે પ્રાણીઓમાં લોભની અધિકતા હોવાના કારણે સર્વ વસ્તુઓમાં મૂર્છા હોય છે

કર્તવ્ય-અકર્તવ્યના વિવેકને નાશ કરવાવાળા, અક્ષમારૂપ આત્માનું પરિણામ તે ક્રોધ કહેવાય છે (૬) ગર્વ ને માન (૭) અને કપટને માયા કહે છે (૮). યદિ તે

(२) मृषावादः—

सतोऽपलापोऽसतश्च प्ररूपणं मृषावादः। स सर्वद्रव्यपर्यायविशेषये भवति।

(३) अदत्तादानम्—

अदत्तस्य=देवगुर्वादिभिरननुज्ञातस्यादानं=ग्रहणम्=अदत्तादानम्, यद् वस्तु ग्रहीतुं धारयितुं वा शक्यते, तद्वस्तुमात्रविषयकमादानं भवति, न तु तदन्यवस्तु-विषयकम्, उक्तञ्च—

"कम्हि णं भंते! जीवाणं अदिन्नादाणेणं किरिया कज्जइ ?। गोयमा गहणधारणिज्जेसु दव्वेसु"। इति (भग० १ श. ६ उ.)

(४) मैथुनम्—

स्त्रीपुंसयोः कर्म—मैथुनम्। मैथुनाध्यवसायोऽपि चित्रलेप्यकाष्ठादिकर्म-

---

(२) मृषावाद—

सत् का अपलाप करना और असत् का प्ररूपण करना मृषावाद है। मृषावाद समस्त द्रव्यों और पर्यायों के विषय में होता है।

(३) अदत्तादान—

अदत्त अर्थात् देव एव गुरु आदि द्वारा जिस की आज्ञा प्राप्त न हुई हो उसको ग्रहण करना अदत्तादान है। जो वस्तु ग्रहण की जा सकती है या धारण की जा सकती है उसी वस्तु का आदान हो सकता है, अन्य वस्तु का नहीं। कहा भी है.—

"भगवन्! किस वस्तु में अदत्तादान के द्वारा क्रिया की जाती है ? गौतम! ग्रहण करने और धारण करने योग्य द्रव्यों में (भग., श १, उ ६)

(४) मैथुन—

मिथुन अर्थात् स्त्री और पुरुष का कार्य मैथुन कहलाता है। मैथुन का अध्यवसाय

મૃષાવાદ-

સત્-ને ખોટુ કહેવું અને અસતને સાચુ કહી તેનું પ્રરૂપણ કરવું તે મૃષાવાદ-સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોના વિષયોમા થાય છે.

(૩) અદત્તાદાન-

અદત્ત અર્થાત્ દેવ-ગુરૂ આદિદ્વારા જેની આજ્ઞા મળી ન હોય, તેવી વસ્તુને ગ્રહણ કરવી તે અદત્તાદાન છે જે વસ્તુ ગ્રહણ કરી શકાય છે, અથવા ધારણ કરી શકાય છે તે વસ્તુનુ આદાન થઈ શકે છે બીજી વસ્તુનુ નહિ કહ્યુ પણ છે —

ભગવન્! કઈ વસ્તુમા અદત્તાદાન દ્વારા ક્રિયા થઈ શકે છે? ગૌતમ! ગ્રહણ કરવા અને ધારણકરવા યોગ્ય દ્રવ્યોમા." (ભાગ શ ૧ ઉ. ૬)

(૪) મૈથુન—

મૈથુન અર્થાત્ સ્ત્રી અને પુરૂષનુ કાર્ય મૈથુન કહેવાય છે, મૈથુનના અધ્યવસાય

भवत्स्येषु रूपसहगतेषु रूपादिषु विषयेषु भवति, न तु सकलवस्तुविषये। उक्तञ्च—

"कम्हि णं भंते! जीवाणं मेहुणेणं किरिया कज्जइ?। गोयमा! रूवेसु वा रूवसहगएसु वा दव्वेसु" इति (भग १ श ६ उ)

(५) परिग्रहः—

परिग्रहः=स्वस्वामिभावेन मूर्च्छा। स च प्राणिनामधिकलोभात् समस्तवस्तुविषये प्रादुर्भवति।

कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकोऽक्षमारूप आत्मपरिणामः क्रोधः ६। मानो=गर्वः ७। माया=शठत्वम् ८। लोभो=गृध्नुता ९॥ राग=प्रीतिरासक्तिर्वा १ ।

भी सब वस्तुओं में नहीं होता। चित्र, लेप्य, या काष्ठ आदि में अंकित किये जाने वाले रूपों में या स्त्री आदि में ही मैथुन का अध्यवसाय होता है। कहा भी है—

"भगवन्! किस विषय में जीव मैथुन क्रिया करते हैं? गौतम! रूपों में और रूप-युक्त विषयों (स्त्रियों आदि) में। (भग श १, उ ६)

(५) परिग्रह—

'यह वस्तु मेरी है मैं इसका स्वामी हूँ" इस प्रकार की मूर्च्छा को परिग्रह कहते हैं। प्राणियों में लोभ की अधिकता होने के कारण सभी वस्तुओं में मूर्च्छा हो सकती है।

कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट करने वाला अक्षमारूप आत्मा का परिणाम (६) क्रोध कहलाता है। गर्व को (७) मान और कपट को (८) माया कहते हैं।

પણ સર્વ વસ્તુઓમાં નથી. ચિત્ર લેપ્ય અથવા કાષ્ઠ આદિમાં ચિતરવામાં આવેલા રૂપોમાં અથવા સ્ત્રી આદિમાંજ મૈથુનનો અધ્યવસાય થાય છે કહ્યું પણ છે :—

"ભગવન્! કયા વિષયમાં જીવ મૈથુન ક્રિયા કરે છે?

ગૌતમ! રૂપોમાં અને રૂપયુક્ત વિષયો (સ્ત્રિયો આદિ)માં (ભગ૦૧ શ-૧-ઉ)

(૫) પરિગ્રહ—

"આ વસ્તુ મારી છે-હું તેનો માલિક છું આ પ્રકારની મૂર્છાને પરિગ્રહ કહે છે પ્રાણીઓમાં લોભની અધિકતા હોવાના કારણે સર્વ વસ્તુઓમાં મૂર્છા હોય છે

કર્તવ્ય-અકર્તવ્યના વિવેકને નાશ કરવાવાળા, અક્ષમારૂપ આત્માનું પરિણામ તે ક્રોધ કહેવાય છે (૬), ગર્વ ને માન (૭), અને કપટને માયા કહે છે (૮), મૂર્છિત

द्वेष=अप्रीतिः ११। कलहो=विरोधः १२। अभ्याख्यानम्=असद्दोषारोपणम् १३। पैशुन्यं=कर्णान्तिकादौ परोक्षे विद्यमानस्याविद्यमानस्य वा दोषस्योद्घाटनम् १४। परपरिवादः=प्रभूतजनसमक्षं परदोषप्रकाशनम् १५। रत्यरतिः=विषयेष्वनुरागो रतिः, धर्मेऽनभिरुचिररतिः, रतिसहिता-अरतिः रत्यरतिः, इदमेक पापस्थानम् १६। मायामृषा=मायासहितो मृषावादः, इदमप्येकं पापस्थानम् १७। मिथ्यादर्शन-शल्यम्=मिथ्यादर्शनं मिथ्यात्वं तदेव शल्यमिव विविधव्यथाजनकत्वात् मिथ्या-

---

गृद्धि-(९) लोभ है, प्रीति या आसक्ति (१०) राग हैं, और अप्रीति को (११) द्वेष कहते हैं, (१२) कलह अर्थात् विरोध। (१३) अभ्याख्यान अर्थात् किसी को झूठा दोष लगाना। चुगली वगैरह को (१४) पैशुन्य कहते है, अर्थात् विद्यमान या अविद्य-मान दोष को पीठ पीछे प्रकाशित करना। बहुत से लोगों के समक्ष दूसरे के दोष प्रकाशित करना (१५) परपरिवाद है। विषयों में अनुराग होना रति और धर्म में अनुराग न होना अरति है, रतिसहित अरति को (१६) रत्यरति कहते हैं। यह एक पापस्थानक है। माया से युक्त मृषावाद (१७) मायामृषा कहलाता है, यह भी एक पापस्थानक है। शल्य के समान विविध प्रकार की व्यथाएँ उत्पन्न करने वाला मिथ्यात्व (१८) मिथ्यादर्शनशल्य कहलाता है, अर्थात् कुदेव कुगुरु और कुधर्म को

લોભ છે (૯). પ્રીતિ અથવા આસક્તિ તે રાગ છે (૧૦) અને અપ્રીતિને દ્વેષ કહે છે (૧૧). કલહ અર્થાત્ વિરોધ (૧૨) અભ્યાખ્યાન અર્થાત્ કોઈના પર જુઠો આરોપ મૂકવો તે (૧૩) ચુગલી વગેરેને પૈશુન્ય કહે છે, અર્થાત્ વિદ્યમાન અથવા અવિદ્યમાન દોષોને પાછળથી પ્રકાશિત કરવા (૧૪). ઘણા લોકોના સમક્ષ બીજાના દોષો પ્રકાશિત કરવા તે પરપરિવાદ છે (૧૫) વિષયોમા અનુરાગ થવો તે રતિ છે, અને ધર્મમા અનુરાગ નહિ થવો તે અરતિ છે, રતિસહિત અરતિને રત્યરતિ કહે છે આ પણ એક પાપ સ્થાનક છે (૧૬) માયાથી યુકત મૃષાવાદ તે માયામૃષા કહેવાય છે તે પણ એક પાપસ્થાનક છે (૧૭) શલ્યની પ્રમાણે વિવિધ પ્રકારની પીડાઓ ઉત્પન્ન કરવાવાળા મિથ્યાત્વ મિથ્યાદર્શનશલ્ય કહેવાય છે, અર્થાત્ કુદેવ કુગુરૂ અને કુધર્મને સુદેવ

दर्शनशल्यम्=कुदेव-कुगुरु-कुधर्मेषु सुदेवादिबुद्धिः १८। एतान्यष्टादश पापस्थानानि। एताभिः क्रियाभिर्जीवः कर्म बध्नाति ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियावादिप्रकरणम् ॥

क्रिया किलात्मनः परिणामः। तेन क्रियावत्त्वं कर्तृत्वं चात्मनः सिध्यति। तत्तत्कालिकक्रियासम्बन्धादात्मनस्त्रिकालवर्तित्वं च सिध्यतीत्याशयेनाह "अकरिस्सं" इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

अकरिस्सं चऽहं, कारवेसुं चऽहं, करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि। एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति ॥ सू. ६ ॥

कुदेव कुगुरु और कुधर्म समझना मिथ्यादर्शनशल्य है। ये अठारह पापस्थानक हैं। इन अठारह प्राणातिपात आदि क्रियाओं से जीव को कर्मों का बन्ध होता है। ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियावादिप्रकरण ॥

क्रिया आत्मा का एक परिणाम है। उस से आत्मा का क्रियावत्त्व या कर्तृत्व सिद्ध होता है, और अमुक-अमुक-कालीन क्रियाओं के सम्बन्ध से यह भी सिद्ध होता है कि-" आत्मा त्रिकालवर्ती है " यह बात अब बतलाई जाती है-'अकरिस्सं चऽहं' इत्यादि।

मूलार्थ—मैंने किया था मैं कराता हूँ और करने वाले को मैं अनुमोदना करूंगा। यह सब लोक में कर्मसमारम्भ जानने चाहिए। सू. ६ ॥

કુગુરૂ અને કુધર્મ સમજવા તે મિથ્યાદર્શનશલ્ય છે (૧૮). આ પ્રકાર પાપ સ્થાનક છે આ પ્રકાર પ્રાણાતિપાત આદિ ક્રિયાઓથી જીવને કર્મોનો બન્ધ થાય છે (સૂ. ૫)

ઇતિ ક્રિયાવાદિપ્રકરણ

ક્રિયા આત્માનું એક પરિણામ છે તેનાથી આત્માનું ક્રિયાવત્ત્વ અથવા કર્તૃત્વ સિદ્ધ થાય છે, અને અમુક-અમુક-કાલીન ક્રિયાઓના સમ્બન્ધથી એ પણ સિદ્ધ થાય છે કે -આત્મા ત્રિકાલવર્તી છે. તે વાત હવે બતાવવામાં આવે છે- અકરિસ્સં ચઽહં ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—મેં કર્યું મેં કરાવ્યું અને કરવાવાળાને મેં અનુમોદન આપ્યું આ સર્વ લોકમાં કર્મ-સમારંભ જાણવા જોઇએ. (સૂ. ૬)

॥ छाया ॥

अकार्षं चाहं, कारयामि चाहं, कुर्वतश्चापि समनुज्ञो भविष्यामि । एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारंभाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥सू. ६॥

॥ टीका ॥

'अकार्षं चाहम्' इति । अत्र 'च'–शब्दोपादानेन भूतकालिककारितानुमोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, तेन–(१) अहमकार्षम् (२) अहमचीकरम् (३) अहं कुर्वन्तमन्यमन्वमूमुदम्, इति भेदत्रयं भवति । 'कारयामि चाहम्' इति, अत्र 'च'–शब्देन वर्तमानकालिककृतानुमोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम् , । तेन–(१) अहं कारयामि, (२) अहं करोमि, (२) अहमनुमोदयामि, इति भेदत्रयं भवति ।

टीकार्थ–'अकरिस्स चऽहं' यहाँ जो 'च' का प्रयोग किया है, उस से यह अर्थ समझना चाहिए कि–"मैंने अनुमोदन किया था।" इस प्रकार मैंने किया, करवाया और अनुमोदन किया, तीन भेदों का कथन हुआ है ।

'कारवेसुं चऽहं' यहाँ भी 'च' पद से दो क्रियाओं का ग्रहण होता है, अतः मैं कराता हूँ, मैं करता हूँ, और मैं अनुमोदन करता हूँ, इन तीन भेदों का कथन समझना चाहिए ।

"करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि" यहाँ भी 'च' पद से भविष्यकालीन करने और कराने का अर्थ लेना चाहिए, अत करने वाले का मैं अनुमोदन करूगा, मैं स्वय करूगा और मैं कराऊगा । ये क्रिया के तीन भेद समझ लेने चाहिए ।

ટીકાર્થ—'अकरिस्सं चऽहं' અહિં જે 'च' નો પ્રયોગ કર્યો છે, તેથી એ અર્થ સમજવો જોઈએ કે—'મે કરાવ્યુ હતું' આ પ્રમાણે 'મે' કર્યું, કરાવ્યું, અને મે અનુમોદન આપ્યુ, આ ત્રણ ભેદોનું કથન સમજવું જોઈએ

'कारवेसु चऽहं' અહિં પણ 'च' પદથી બે ક્રિયાઓનુ ગ્રહણ થાય છે. તેથી 'મેં કર્યું', મે કરાવ્યુ, અને મે અનુમોદન આપ્યુ' આ ત્રણ ભેદોનું કથન સમજવુ જોઈએ.

'करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि' અહિં પણ 'च' પદથી ભવિષ્યકાલીન કરીશ અને કરાવીશ. તે અર્થ લેવો જોઈએ. એ કારણથી 'કરવાવાળાને હુ અનુમોદન કરીશ, હુ સ્વયં કરીશ અને હુ કરાવીશ' એ ક્રિયાના ત્રણ ભેદ સમજી લેવા જોઈએ.

कुर्वन्तमपि समनुज्ञो भविष्यामि, इति। अत्रापि 'च'-शब्दोपादानेन भविष्य-त्कालिककृतकारितक्रियात्रयस्यापि ग्रहणम्। 'समनुज्ञः' इत्यस्य समनुज्ञाता अनुमो-दयितेत्यर्थः। तथा च-(१) अहमन्यस्य कुर्वतोऽनुमोदयिता भविष्यामि, (२) स्वयमहं करिष्यामि, (३) अहं कारयिष्यामि, इति भेदत्रयं क्रियायाः भवति। कुर्वन्तमपीत्यत्र 'अपि'-शब्दोपादानेन तासां नवानां क्रियाणां मनोवाक्कायभेदेन सप्तविंशतिर्भेदा भवन्ति।

आत्मवाचकमहमिति पदं पुरस्कृत्य 'अकार्षम्' इत्यादिक्रियापदोपादानात् "सर्वाः क्रिया आत्मपरिणामरूपाः" इति बोधितम्। एतेन "आत्मा निष्क्रियः" इति सांख्याद्यभिमतं निराकृतम्।

'यावि' शब्द में जो 'अपि' पद है, उस से यह समझना चाहिए कि-इन नौ क्रियाओं के मन वचन और कायके भेद से सत्ताईस भेद हो जाते हैं। अर्थात् पूर्वोक्त नौ क्रियाएं मन से की जाती हैं वचन से की जाती हैं, और काय से भी की जाती हैं, अतः उनके सत्ताईस भेद हो जाते हैं।

आत्मा के वाचक अहम् (मैं) पदको प्रधान करके 'अकार्षम्' इत्यादि क्रियापदों का ग्रहण करने से यह सूचित किया गया है कि-ये सब क्रियाएँ आत्मा का ही परिणाम हैं। इस सूचना से आत्माको निष्क्रिय मानने वाले सांख्य आदि मतों का निराकरण हो गया है।

'यावि' शब्दमां जे 'अपि' पद छे तेथी ओ समजवुं जोईओ के ओ नव क्रियाओना मन, वचन अने कायाना भेदथी सत्तावीश भाग थाय छे. अर्थात् पूर्वोक्त नव क्रियाओ मनथी करी शकाय छे वचनथी अने कायाथी पण करी शकाय छे. तेथी तेना सत्तावीश भेद थई जाय छे

आत्मानो वाचक अहम् हुं-पदने प्रधान करीने अकार्षम्' आदि क्रिया-पदोना ग्रहण करवाथी ओ सूचन करवामां आव्युं छे के-ओ सब क्रियाओ आत्मानुं परिणाम छे आ सूचनथी आत्माने निष्क्रिय माननाराओ सांख्य आदिना मतनुं निराकरण थई गयुं छे

॥ छाया ॥

अकार्षं चाहं, कारयामि चाहं, कुर्वतश्चापि समनुज्ञो भविष्यामि । एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारंभाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥सू० ६॥

॥ टीका ॥

'अकार्षं चाहम्' इति । अत्र 'च'-शब्दोपादानेन भूतकालिककारितानुमोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, तेन-(१) अहमकार्षम् (२) अहमचीकरम् (३) अहं कुर्वन्तमन्यमन्वमूमुदम्, इति भेदत्रयं भवति । 'कारयामि चाहम्' इति, अत्र 'च'-शब्देन वर्तमानकालिककृतानुमोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम् , । तेन-(१) अहं कारयामि, (२) अहं करोमि, (२) अहमनुमोदयामि, इति भेदत्रयं भवति ।

टीकार्थ-'अकरिस्स चऽहं' यहाँ जो 'च' का प्रयोग किया है, उस से यह अर्थ समझना चाहिए कि-"मैंने अनुमोदन किया था।" इस प्रकार मैंने किया, करवाया और अनुमोदन किया, तीन भेदों का कथन हुआ है ।

'कारवेसुं चऽहं' यहाँ भी 'च' पद से दो क्रियाओं का ग्रहण होता है, अतः मैं कराता हूँ, मैं करता हूँ, और मैं अनुमोदन करता हूँ, इन तीन भेदों का कथन समझना चाहिए ।

"करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि" यहाँ भी 'च' पद से भविष्यकालीन करने और कराने का अर्थ लेना चाहिए, अत करने वाले का मैं अनुमोदन करूगा, मैं स्वय करूगा और मैं कराऊगा । ये क्रिया के तीन भेद समझ लेने चाहिए ।

ટીકાર્થ—'अकरिस्सं चऽहं' અહિં જે 'च' નો પ્રયોગ કર્યો છે, તેથી એ અર્થ સમજવો જોઈએ કે—'મે કરાવ્યુ હતું' આ પ્રમાણે 'મે' કર્યું, કરાવ્યું, અને મે અનુમોદન આપ્યુ, આ ત્રણ ભેદોનું કથન સમજવું જોઈએ

'कारवेसु चऽहं' અહિં પણ 'च' પદથી બે ક્રિયાઓનું ગ્રહણ થાય છે તેથી 'મેં કર્યું', મે કરાવ્યુ, અને મે અનુમોદન આપ્યુ' આ ત્રણ ભેદોનું કથન સમજવું જોઈએ.

'करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि' અહિં પણ 'च' પદથી ભવિષ્યકાલીન કરીશ અને કરાવીશ. તે અર્થ લેવો જોઈએ એ કારણથી 'કરવાવાળાને હું અનુમોદન કરીશ, હું સ્વયં કરીશ અને હુ કરાવીશ' એ ક્રિયાના ત્રણ ભેદ સમજી લેવા જોઈએ.

भविष्यामीति चिन्तानलेन कोटरस्थवह्निना जरद्वृक्ष इव सन्तप्तोऽस्मीति भावः ।

लोके=जिनशासने, सर्वे कर्मसमारंभाः=कर्माणि ज्ञानावरणीयादीनि समारम्भन्ते=जनयन्ति ये क्रियाविशेषास्ते कर्मसमारंभाः । एतावन्त एव, नातोऽधिका इत्यर्थः, परिज्ञातव्या भवन्ति-परिज्ञाविषयीकृत्य ज्ञेया हेयाश्च भवन्तीत्यर्थः । परिज्ञा द्विविधा-ज्ञपरिज्ञा, प्रत्याख्यानपरिज्ञा च । तत्र ज्ञपरिज्ञया सप्तविंशतिभङ्गरूपाः कर्मसमारंभाः क्रियाविशेषाः विज्ञेयाः । प्रत्याख्यानपरिज्ञया च सर्वे कर्मसमारम्भाः क्रियाविशेषाः कर्मबन्धहेतवः प्रत्याख्यातव्या इति भावः ॥ सू० ९ ॥

पापों से संतप्त हो जाता है । अब मैं इस समस्त संसार से किस प्रकार छुटकारा पाऊँगा? इस तरह की चिन्तारूपी अग्नि से मैं ऐसा संतप्त हूँ जैसे कोटरस्थ अग्नि से जीर्ण वृक्ष भीतर ही भीतर भस्म हो जाता है ।

"लोक में अर्थात् जिनशासन में इतने ही ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को उत्पन्न करने वाले कर्मसमारम्भ हैं, इन से न्यून या अधिक नहीं"। यह परिज्ञा विषय करने योग्य है, अर्थात् परिज्ञा से ही ये सब ज्ञेय और हेय होते हैं। परिज्ञा दो प्रकारकी है- ज्ञ-परिज्ञा और प्रत्याख्यान-परिज्ञा। इन में से सत्ताईस भंग रूप कर्मसमारम्भ (क्रियाविशेष) ज्ञपरिज्ञा से जानने चाहिए, और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से कर्म के कारण समस्त कर्मसमारम्भों का त्याग करना चाहिए ॥ सू. ९ ॥

પાપાચરણોથી સંતપ્ત થઈ જાય છે. હવે હું દુઃખમય સંસારથી છુટકારો કેવી રીતે પામીશ?-આ-પ્રમાણે ચિન્તારૂપી-અગ્નિથી-હું-એવો-સંતપ્ત છું-કે-જેમ-કોટરસ્થ (ઝાડની બખોલમાં રહેલ) અગ્નિથી જીર્ણ વૃક્ષ અંદરને અંદરજ ભસ્મ થઈ જાય છે.

લોકમાં અર્થાત્ જિનશાસનમાં જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોને ઉત્પન્ન કરવાવાળા આટલાજ કર્મસમારંભ છે, તેનાથી ઓછા કે વધારે નથી. આ પરિજ્ઞા વિષય કરવા યોગ્ય છે અર્થાત્ પરિજ્ઞાથીજ આ બધા જ્ઞેય અને હેય થાય છે પરિજ્ઞા બે પ્રકારની છે (૧) જ્ઞ-પરિજ્ઞા અને (૨) પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા, તેમાંથી સત્તાવીસ ભંગરૂપ કર્મ સમારંભ (ક્રિયા-વિશેષ) જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણવું જોઈએ, અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી કર્મોનું કારણ સમસ્ત કર્મસમારંભોનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. (સૂ૦ ૯)

एकस्य चात्मनस्त्रिकालवर्तितत्तत्क्रियासम्बन्धेन क्षणिकवादोऽपि निरस्तः। किञ्च-आत्मपरिणतिरूपा क्रियां कुर्वन्नात्मा स्वस्य त्रिकालस्थायित्वं मतिज्ञानमात्रेण जानातीति भगवता बोधितम्। तेनात्मनि विषये प्रत्यभिज्ञाऽप्येवं प्रादुर्भवति-

येन मया मृगतृष्णाम्भसा मृगवद् विविधविषयैराकृष्टेन गर्ते मुग्धमृगवन्मोहगर्ते निपतितेन सुखलिप्सयाऽऽरम्भपरिग्रहरूपसावद्यक्रियापरायणतया वृथायुः क्षपितम्,

स एवाहं सम्प्रति वातैर्गिरिशिखरद्रुम इव जन्मजरामरणाधिव्याधिविविधदुःखसंपृक्ततुच्छसुखभोगैर्जर्जरीकृतः कथमस्माद् दुःखजालससारान्मुक्तो

एक ही आत्माका त्रिकालवर्ती अमुक–अमुक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध दिखलानेसे क्षणिकवाद का भी खण्डन किया गया है। भगवान्ने यह भी प्रकट कर दिया है कि–अपनी परिणतिरूप क्रियाएँ करता हुआ आत्मा मतिज्ञान से ही यह जान लेता है कि–यह (आत्मा) त्रिकालवर्ती है। इससे आत्मा के विषयमें इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान उत्पन्न होता है—

"जैसे मृगतृष्णा में फँसकर मूढ मृग कष्ट पाता है उसी प्रकार भाँति–भाँति के विषयों से आकृष्ट हो कर मोहरूपी गडहे में गिर कर सुख की लालसा से जिसने आरम्भ–परिग्रह–रूप सावद्य क्रियामें उद्यत हो कर वृथा आयु गँवाई थी वही मैं आज जन्म, जरा, मरण, आधि, व्याधि वगैरह विविध प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण और तुच्छ इन्द्रिय–भोगोंद्वार ऐसा जर्जरित कर दिया गया हूँ, जैसे पर्वत के उपर का पेड

એકજ આત્માનુ ત્રિકાલવર્તી અમુક–અમુક ક્રિયાઓની સાથે સબધ દેખાડવાથી ક્ષણિકવાદનું પણ ખંડન કરવામા આવ્યુ છે ભગવાને એ પણ પ્રગટ કરી દીધુ છે કે–પોતાની પરિણતિરૂપ ક્રિયાઓ કરતો આત્મા મતિજ્ઞાનથીજ એ જાણી લે છે કે–તે ત્રિકાલવર્તી છે એ કારણથી આત્માના વિષયમા આ પ્રકારનુ પ્રત્યભિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે

જેમ મૃગતૃષ્ણામા ફસાઈને મૂઢ મૃગ કષ્ટ પામે છે તે પ્રમાણે જાત–જાતના વિષયોથી આકૃષ્ટ થઈને–ખેચાઈને મોહરૂપી ખાડામા પડી જઈને સુખની લાલસાથી જે આરભ પરિગ્રહરૂપ સાવદ્ય ક્રિયામા ઉદ્યમી થઈને વૃથા આયુ ગુમાવ્યુ હતું, તે હું આજે જન્મ–જરા–મરણ–આધિ–વ્યાધિ વગેરે વિવિધ પ્રકારના દુખોથી પરિપૂર્ણ અને તુચ્છ ઈન્દ્રિયભોગો દ્વારા એવો જર્જરિત કરવામા આવ્યો છુ કે જેમ–પર્વત ઉપરનું ઝાડ

र्त्तं कर्म=कर्मकारणीभूतक्रियास्वरूपं येन, सोऽपरिज्ञातकर्मा। अज्ञातापरित्यक्त ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धकारणभूतक्रियास्वरूप इत्यर्थः। यावदयं जीवः क्रियास्वरूपं न जानाति, नापि यावत् कर्मबन्धनिबन्धनक्रियाः परित्यजति, तावद् द्रव्यभावोभयविधां दिशं परिभ्रमतीति भावः ॥ सू० ७ ॥

उक्तार्थमेव स्पष्टयति-'अणेगरूवाओ' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

अणेगरूवाओ जोणीओ संधेइ, विरूवरूवे फासे पडिसंवेएइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—

अनेकरूपा योनीः संधयति, विरूपरूपान् स्पर्शान् प्रतिसंवेदयति ॥ सू० ८॥

॥ टीका ॥

अपरिज्ञातकर्मा जीवः अनेकरूपाः=विविधाः योनीः=प्राणिनामुत्पत्तिस्थानानि, संधयति=प्राप्नोति। अयमात्मा पूर्वभव भावान्तरं शरीरान्तरग्रहणाय

अपरिज्ञातकर्मा कहते हैं। आशय यह है कि-संसारी जीव जबतक कर्मबन्ध की कारणभूत क्रियाओं को जान नहीं लेता और त्याग नहीं देता, तबतक वह द्रव्यभावरूप दोनों प्रकार की दिशाओं में परिभ्रमण करता रहता है। ॥ सू. ७ ॥

इसी अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हैं— 'अणेगरूवाओ' इत्यादि।

मूलार्थ–(अपरिज्ञातकर्मा जीव) अनेकरूप योनियों को प्राप्त होता है और नाना प्रकार की यातनाओं को भोगता है ॥ ८ ॥

टीकार्थ–अपरिज्ञातकर्मा जीव विविध प्रकार की योनियों को अर्थात् जीवों के उत्पत्तिस्थानों को प्राप्त करता है। पूर्वभव का अन्त होने के अनन्तर जीव नवीन शरीर

એ છે કે-સંસારી જીવ જ્યાં સુધી કર્મબંધની કારણભૂત ક્રિયાઓને જાણી લેતો નથી અને ત્યાગ કરતો નથી ત્યાં સુધી તે દ્રવ્ય-ભાવરૂપ બન્ને પ્રકારની દિશાઓમાં પરિભ્રમણ કરતો રહે છે (સૂ० ७).

એ અર્થને ફરી અધિક સ્પષ્ટ કરે છે—' અણેગરૂવાઓ ' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—(અપરિજ્ઞાતકર્મા જીવ) અનેકરૂપ યોનિઓને પ્રાપ્ત થાય છે અને નાના પ્રકારની યાતનાઓને ભોગવે છે. (८)

ટીકાર્થ—અપરિજ્ઞાતકર્મા જીવ વિવિધ પ્રકારની યોનિઓને અર્થાત્-જીવોના ઉત્પત્તિસ્થાનોને પ્રાપ્ત કરે છે. પૂર્વભવનો અંત થવા અનન્તર જીવ નવીન શરીર ગ્રહણ

॥ मूलम् ॥

अपरिण्णायकम्मा खलु अयं पुरिसे जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ अणुसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ साहेइ ॥ सू० ७ ॥

छाया—

अपरिज्ञातकर्मा खलु अयं पुरुषः यः इमा दिशा अनुदिशा वा अनुसंचरति, सर्वा दिशाः सर्वा अनुदिशाः सहैति ॥ सू० ७ ॥

टीका—

'अपरिण्णायकम्मा' इत्यादि। यः इमा दिशा अनुदिशा अनुसंचरति-कर्मपरतन्त्रः संश्चतुर्गतिकसंसारं प्राप्य दिक्षु विदिक्षु च परिभ्रमति। तथा-सर्वा दिशा अनुदिशाः सहैति। इह सर्वशब्देन द्रव्यभावोभयविधदिशो ग्रहणम्। द्रव्यभावदिशः सह=ज्ञानावरणीयादिकर्मभिः साकम् एति=गच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः। यत्तच्छब्दयोर्नित्यसाकाङ्क्षतयाऽत्र यच्छब्देन स इति परामृश्यते। सः अयं पुरुषः=जीवः खलु=निश्चयेन अपरिज्ञातकर्मा अस्तीति शेषः। न परिज्ञातं=परिज्ञाविषयी-

---

मूलार्थ—अपरिज्ञातकर्मा यह पुरुष इन दिशाओं और विदिशाओं में परिभ्रमण करता है और सब दिशाओं एव अनुदिशाओं को प्राप्त होता है ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—कर्म से परतन्त्र जीव चार गतिरूप ससार को प्राप्त होकर दिशाओं में और विदिशाओं में परिभ्रमण करता है। तथा समस्त दिशाओं और अनुदिशाओं को प्राप्त होता है, अर्थात द्रव्य–दिशाओं एव भाव–दिशाओं (ज्ञानावरण आदि कर्मों) के साथ प्राप्त होता है। वह जीव निश्चयपूर्वक अपरिज्ञातकर्मा है। कर्म की कारणभूत क्रियाओं का स्वरूप जिसने न जाना हो वह अपरिज्ञातकर्मा कहलाता है। अथवा जिसने ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की कारणभूत क्रियाओं का त्याग न किया हो उसे भी

મૂલાર્થ—અપરિજ્ઞાત કર્મા આ પુરૂષ આ દિશાઓ અને વિદિશાઓમાં પરિભ્રમણ કરે છે, અને સર્વ દિશાઓ એવ અનુદિશાઓને પ્રાપ્ત થાય છે. (૭)

ટીકાર્થ—કર્મથી પરતત્ર જીવ ચાર ગતિરૂપ સસારને પ્રાપ્ત થઈને દિશાઓમા અને વિદિશાઓમા પરિભ્રમણ કરે છે, તથા સમસ્ત દિશાઓ અને અનુદિશાઓને પ્રાપ્ત થાય છે અર્થાત્ દ્રવ્યદિશાઓ અને ભાવદિશાઓની સાથે પ્રાપ્ત થાય છે તે જીવ નિશ્ચયપૂર્વક અપરિજ્ઞાતકર્મા છે; કર્મની કારણભૂત ક્રિયાઓના સ્વરૂપને જે જાણતા નથી તે અપરિજ્ઞાતકર્મા કહેવાય છે. અથવા જેને જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોની કારણભૂત ક્રિયાઓનો ત્યાગ ન કર્યો હોય તેને પણ અપરિજ્ઞાતકર્મા કહે છે. આશય

ज्ञातं कर्म=कर्मकारणीभूतक्रियास्वरूपं येन, सोऽपरिज्ञातकर्मा। अज्ञातापरित्यक्त ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धकारणभूतक्रियास्वरूप इत्यर्थः। यावदयं जीवः क्रियास्वरूपं न जानाति, नापि यावत् कर्मबन्धनिबन्धनक्रियाः परित्यजति, तावद् द्रव्य भावोभयविधां दिशं परिभ्रमतीति भावः ॥ सू० ७ ॥

उक्तार्थमेव स्पष्टयति-'अणेगरूवाओ.' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

अणेगरूवाओ जोणीओ संधेइ, विरूवरूवे फासे पडिसंवेएइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—

अनेकरूपा योनीः संधयति, विरूपरूपान् स्पर्शान् प्रतिसंवेदयति ॥ सू० ८॥

॥ टीका ॥

अपरिज्ञातकर्मा जीवः अनेकरूपाः=विविधाः योनीः=प्राणिनामुत्पत्तिस्थानानि, संधयति=प्राप्नोति। अयमात्मा पूर्वभव नाशानन्तरं शरीरान्तरग्रहणाय

अपरिज्ञातकर्मा कहते हैं। आशय यह है कि-संसारी जीव जबतक कर्मबन्ध की कारणभूत क्रियाओं को ज्ञान नहीं लेता और त्याग नहीं देता, तबतक वह द्रव्यभावरूप दोनों प्रकार की दिशाओं में परिभ्रमण करता रहता है। ॥ सू. ७ ॥

इसी अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हैं— अणेगरूवाओ इत्यादि।

मूलार्थ-(अपरिज्ञातकर्मा जीव) अनेकरूप योनियों को प्राप्त होता है और नाना प्रकार की यातनाओं को भोगता है ॥ ८ ॥

टीकार्थ—अपरिज्ञातकर्मा जीव विविध प्रकार की योनियों को अर्थात् जीवों के उत्पत्तिस्थानों को प्राप्त करता है। पूर्वभव का अन्त होने के अनन्तर जीव नवीन शरीर

એટલે કે-સંસારી જીવ જ્યાં સુધી કર્મબંધની કારણભૂત ક્રિયાઓને જાણી લેતો નથી અને ત્યજી દેતો નથી ત્યાં સુધી તે દ્રવ્ય-ભાવરૂપ બન્ને પ્રકારની દિશાઓમાં પરિભ્રમણ કરતો રહે છે. (સૂ૦ ૭).

એ અર્થને ફરી અધિક સ્પષ્ટ કરે છે—" અણેગરૂવાઓ " ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—(અપરિજ્ઞાતકર્મા જીવ) અનેકરૂપ યોનિઓને પ્રાપ્ત થાય છે અને નાના પ્રકારની યાતનાઓને ભોગવે છે. (૮)

ટીકાર્થ—અપરિજ્ઞાતકર્મા જીવ વિવિધ પ્રકારની યોનિઓને અર્થાત્-જીવોના ઉત્પત્તિસ્થાનોને પ્રાપ્ત કરે છે. પૂર્વભવનો અંત થવા અનન્તર જીવ નવીન શરીર ગ્રહણ

शरीरान्तरप्राप्तिस्थाने यान् पुद्गलान् गृह्णाति तान् बाह्यपुद्गलान् कार्मणेन सह तप्तायःपिण्डजलग्रहणवत् मिश्रयति यस्मिन् स्थाने, तत् स्थानं योनिः। प्रादुर्भावमात्रं शरीरिणां जन्म, इति योनि-जन्मनोर्भेदः। सा नवविधा। (१) सचित्ता, (२) अचित्ता, (३) सचित्ताचित्ता, (४) शीता, (५) उष्णा, (६) शीतोष्णा, (७) संवृता, (८) विवृता, (९) संवृतविवृता। उक्तञ्च—

"कइविहाणं भंते! जोणी पण्णत्ता? गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता, तंजहा-सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी। तिविहा जोणी पण्णत्ता, तंजहा-सच्चित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसिया जोणी।

ग्रहण करने के लिए नवीन शरीर की प्राप्ति के स्थान पर जिन बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, उन्हें जिस जगह पर कार्मणशरीर के साथ तपे लोहे के गोले और जलके समान एकमेक करता है, वह स्थान योनि कहलाता है। जीवों का प्रादुर्भाव होना जन्म है। यह योनि और जन्म में अन्तर है। जन्म का आधार योनि है, अत योनि और जन्म में आधाराधेयभाव-सम्बन्ध है। योनि के नौ भेद है-(१) सचित्त, (२) अचित्त, (३) सचित्ताचित्त, (४) शीत, (५) उष्ण, (६) शीतोष्ण, (७) संवृत, (८) विवृत और (९) संवृत-विवृत। कहा भी है—

"भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई है? गौतम! तीन प्रकार की योनि कही गई है। वह इस प्रकार-शीतयोनि, उष्णयोनि और शीतोष्णयोनि। तथा तीन प्रकार की योनि कही है। वह इस प्रकार-सचित्तयोनि, अचित्तयोनी और मिश्रयोनि।

કરવા માટે નવીન શરીરની પ્રાપ્તિના સ્થાન પર જે બાહ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે. તેને જે જગ્યા પર કાર્મણશરીરની સાથે તપેલા લોઢાનો ગોળો અને જલની સમાન એકમેક કરે છે તે સ્થાન યોનિ કહેવાય છે જીવોનો પ્રાદુર્ભાવ થવો તે જન્મ છે યોનિ અને જન્મમા એજ અન્તર છે, જન્મનો આધાર યોનિ છે, તેથી યોનિ અને જન્મમા આધાર-આધેય ભાવ સંબંધ છે યોનિના નવ ભેદ છે-(૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત (૩) સચિત્તાચિત્ત (૪) શીત (૫) ઉષ્ણ (૬) શીતોષ્ણ (૭) સંવૃત (૮) વિવૃત અને (૯) સંવૃત-વિવૃત કહ્યુ પણ છે—

"ભગવન્! યોનિ કેટલા પ્રકારની કહી છે? ગૌતમ! ત્રણ પ્રકારની યોનિ કહી છે તે આ પ્રમાણે છે—શીતયોનિ, ઉષ્ણયોનિ, અને શીતોષ્ણયોનિ. તથા ત્રણ પ્રકારની યોનિ કહી છે તે આ પ્રમાણે છે-સચિત્તયોનિ, અચિત્તયોનિ અને મિશ્રયોનિ ફરી પણ ત્રણ

तिविहा जोणी पण्णत्ता, तंजहा-संवुडा जोणी, वियडा जोणी, संवुडवियडा जोणी" । (प्रज्ञा. योनिपद ९)

जीवप्रदेशैरधिष्ठिता योनिः सचित्ता, जीवप्रदेशैरनधिष्ठिता योनिरचित्ता । कश्चिदंशे जीवप्रदेशैरधिष्ठिता, कश्चिदनधिष्ठिता सा सचित्ताऽचित्ता । यत्र शीतस्पर्शः सा शीता । यत्रोष्णस्पर्शः सा योनिरुष्णा । यत्र कश्चिदंशे शीतस्पर्शः, कश्चिदुष्णस्पर्शः सा शीतोष्णा । अप्रकटिता संवृता । प्रकटिता विवृता । यत्र कश्चिदंशे प्रकटिता, कश्चिदप्रकटिता: सा संवृतविवृता योनिः ।

कस्य जीवस्य का योनिर्भवती ?-उच्यते-देवनारकाणामचित्ता योनिः । देवानां प्रच्छदपटदेवदूष्यान्तरालं योनिः, तत्र जीवप्रदेशावर्जितम् । नारकाणां तु

फिर भी तीन तरह की योनि कही है । वह इस प्रकार-संवृतयोनि विवृतयोनि और संवृत-विवृतयोनि" । (प्रज्ञा योनिपद ९)

जीवप्रदेशों से अधिष्ठित योनि सचित्त कहलाती है और जो जीवप्रदेशों से अधिष्ठित न हो वह अचित्त कहलाती है । जो योनि कहीं जीवप्रदेशों से अधिष्ठित हो और कहीं अधिष्ठित न हो वह मिश्र योनि है । जहाँ शीत स्पर्श हो वह शीतयोनि, जहाँ उष्ण स्पर्श हो वह उष्णयोनि और जिस में कहीं शीत और कहीं उष्ण स्पर्श हो वह शीतोष्णयोनि है । अप्रकट योनि संवृत कहलाती है । प्रकट को विवृत कहते हैं और जो कहीं अप्रकट और कहीं प्रकट हो वह संवृतविवृतयोनि है ।

किस जीव की कौन-सी योनि होती है ? वह बताते हैं-देव और नारकी जीवों की अचित्त योनि होती है । देवों की योनि प्रच्छदपट और देवदूष्य के बीच में होती है,

પ્રકારની યોનિ કહી છે તે આ પ્રમાણે છે:—સંવૃતયોનિ, વિવૃતયોનિ અને સંવૃત-વિવૃતયોનિ" (પ્રજ્ઞા. યોનિપદ ૯)

જીવપ્રદેશોથી અધિષ્ઠિત યોનિ સચિત્ત કહેવાય છે અને જે જીવપ્રદેશોથી અધિષ્ઠિત ન હોય તે અચિત્ત કહેવાય છે જે યોનિ કોઈ સ્થળે જીવપ્રદેશોથી અધિષ્ઠિત હોય અને કોઈ સ્થળે અધિષ્ઠિત ન હોય તે મિશ્રયોનિ કહેવાય છે જ્યાં શીત સ્પર્શ હોય તે શીતયોનિ, જ્યાં ઉષ્ણસ્પર્શ હોય તે ઉષ્ણયોનિ, અને જેમાં ક્યાંક શીત અને ક્યાંક ઉષ્ણ સ્પર્શ હોય તે શીતોષ્ણ યોનિ છે. અપ્રગટ યોનિ સંવૃત કહેવાય છે અને પ્રગટ યોનિને વિવૃત કહે છે, અને જે ક્યાંક પ્રગટ અને ક્યાંક અપ્રગટ હોય તે સંવૃત-વિવૃત યોનિ છે

ક્યા જીવની કઈ યોનિ છે? તે બતાવે છે—દેવ-નારકી જીવોની અચિત્તયોનિ હોય છે દેવોની યોનિ પ્રચ્છદપટ અને દેવદૂષ્યના મધ્યમાં હોય છે અને તે જીવ

वज्रमयवातायनकल्पाः कुम्भयो योनयः, ता अपि जीवप्रदेशरहिताः। ये गर्भजास्तिर्यञ्चो मनुष्यास्तेषां मिश्रासचित्ताचित्तरूपा योनिः। स्थावरपञ्चकस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संमूर्छिममनुष्याणां च त्रिविधा सचित्ता अचित्ता, सचित्ताचित्ता च।

गर्भजमनुष्यतिरश्चां देवानां च शीतोष्णा योनिः। तेजस्कायस्य उष्णा। स्थावरचतुष्टयस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संमूर्छिममनुष्याणां नारकाणां च त्रिविधा शीता, उष्णा, शीतोष्णा च योनिः।

नारकाणां देवानामेकेन्द्रियाणां च संवृता योनिः। गर्भजानां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मनुष्याणां च संवृतविवृता योनिः। विकलेन्द्रियत्रयस्य

और वह जीवप्रदेशों से रहित है। नारकों की योनि वज्रमय वातायन के समान कुम्भियाँ हैं। वे भी जीवप्रदेशों से रहित हैं। गर्भज तिर्यंचों और मनुष्यों की मिश्र (सचित्ताचित) योनि होती है। पांच स्थवरों की, तीन विकलेन्द्रियों की, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों की तथा सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की योनि तीनों प्रकार की (सचित्त, अचित्त और मिश्र) होती है।

गर्भज–मनुष्यों, तिर्यंचों और देवों की शीतोष्ण योनि होती है। तेजस्काय की उष्ण योनि है। चार स्थावरों की, तीन विकलेन्द्रियों की, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों की सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की और नारकों की तीनों प्रकार की (शीत उष्ण और मिश्र) योनि होती है।

नारकों देवों और एकेन्द्रियों की सवृत योनि है। गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों की सवृतविवृत योनि होती है। तीन विकलेन्द्रियों की, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय

પ્રદેશોથી રહિત છે. નારકીઓની યોનિ વજ્રમય વાતાયન (બારી)ની સમાન કુંભીઓ છે તે પણ જીવપ્રદેશોથી રહિત છે

ગર્ભજ તિર્યંચો અને મનુષ્યોની મિશ્ર (સચિત્તાચિત્ત) યોનિ હોય છે. પાંચ સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની, અગર્ભજ પંચેન્દ્રિય તિર્યંચોની તથા સંમૂર્છિમ મનુષ્યોની યોનિ ત્રણેય પ્રકારની (સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર) હોય છે

ગર્ભજ મનુષ્યો, તિર્યંચો અને દેવોની શીતોષ્ણ યોનિ હોય છે. તેજસ્કાયની ઉષ્ણયોનિ છે ચાર સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની, અગર્ભજ પંચેન્દ્રિય તિર્યંચોની સંમૂર્છિમ મનુષ્યોની અને નારકોની ત્રણેય પ્રકારની (શીત, ઉષ્ણ અને મિશ્ર) યોનિ હોય છે

નારકી, દેવો, અને એકેન્દ્રિયોની સંવૃત યોનિ છે ગર્ભજ પંચેન્દ્રિય તિર્યંચો અને મનુષ્યોની સંવૃત–વિવૃત યોનિ હોય છે. ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની અગર્ભજ પંચેન્દ્રિય

अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संमूर्छिममनुष्याणां च विवृता योनिः ।

यद्वा—चतुरशीतिलक्षभेदेनानेकरूपा योनयः सन्ति, तथा हि—पृथिव्यप्तेजोवायूनां प्रत्येकं सप्त सप्त लक्षाणि २८, प्रत्येकवनस्पतीनां दश लक्षाणि ३८, साधारणवनस्पतीनां चतुर्दश लक्षाणि, ५२, विकलेन्द्रियत्रयस्य प्रत्येकं द्वे द्वे लक्षे, इति तेषां षड् लक्षाणि ५८, देव-नारक-पञ्चेन्द्रियतिरश्चां प्रत्येकं चत्वारि लक्षाणीति तेषां द्वादश लक्षाणि ७०, मनुष्याणां चतुर्दश लक्षाणि ८४। एवं सर्वसंकलने चतुरशीतिलक्षाणि जीवानां योनयो भवन्ति ।

अनेकविधयोनिप्राप्तौ सत्यामपरिज्ञातकर्मा जीवः कर्मफलं यथाऽनुभवति तद् प्रदर्शयति—'विरूपरूपान् प्रतिसंवेदयति' इति, विरूपं=दुःख-

---

तिर्यंचों की और संमूर्छिम मनुष्यों की विवृतयोनि होती है ।

अथवा—योनियों के चौरासी लाख भेद भी हैं। वे इस प्रकार हैं—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, और वायुकाय, की सात-सात लाख योनियाँ हैं२८, प्रत्येक वनस्पति की दश लाख ३८, साधारण वनस्पति की चौदह लाख ५२, तीन विकलेन्द्रि की प्रत्येक की दो-दो लाख अर्थात् विकलेन्द्रिय की कुल छह लाख५८, देवों नारकों और पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों में प्रत्येक की चार-चार लाख, कुल बारह लाख७०, मनुष्यों की चौदह लाख८४, इस प्रकार कुल चौरासी लाख जीवयोनियाँ हैं।

अनेक प्रकार की योनियाँ प्राप्त होने पर अपरिज्ञातकर्मा जीव किस प्रकार कर्मफल भोगता है, सो बतलाते हैं—दुःखजनक होने के कारण इन्द्रियों के अनिष्ट विषयों

તિર્યંચોની અને સંમૂર્છિમ મનુષ્યોની વિવૃત યોનિ હોય છે

અથવા-યોનિઓના ચોરાસી લાખ ભેદ પણ છે, તે આ પ્રમાણે છે—પૃથ્વીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, અને વાયુકાયની સાત-સાત લાખ યોનિઓ છે (૨૮), પ્રત્યેક વનસ્પતિની દસલાખ (૩૮) સાધારણ વનસ્પતિની ચૌદલાખ (૫૨) ત્રણ વિકલેન્દ્રિયની પ્રત્યેકની બબ્બે લાખ, અર્થાત્ વિકલેન્દ્રિયની કુલ છ લાખ (૫૮), દેવો નારકીઓ, અને પંચેન્દ્રિય તિર્યંચોમાં પ્રત્યેકની ચાર-ચાર લાખ, તમામ મળી બાર લાખ (૭૦) મનુષ્યોની ચૌદ લાખ (૮૪) આ પ્રમાણે કુલ ચોરાસી લાખ જીવયોનિ છે.

અનેક પ્રકારની યોનિઓ પ્રાપ્ત થવા છતાંય અપરિજ્ઞાતકર્મા જીવ કેવી રીતે કર્મફલ ભોગવે છે? તે બતાવે છે—દુઃખ ઉત્પન્ન કરનાર હોવાના કારણે ઇન્દ્રિયોના અનિષ્ટ-

वज्रमयवातायनकल्पाः कुम्भयो योनयः, ता अपि जीवप्रदेशरहित जास्तिर्यञ्चो मनुष्यास्तेषां मिश्रासचित्ताचित्तरूपा योनिः । कस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संमूर्छिममनुष्याण सचित्ता अचित्ता, सचित्ताचित्ता च ।

गर्भजमनुष्यतिरश्चां देवानां च शीतोष्णा योनिः । तेजस्का स्थावरचतुष्टयस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां सं नारकाणां च त्रिविधा शीता, उष्णा, शीतोष्णा च योनिः ।

नारकाणां देवानामेकेन्द्रियाणां च संवृता योनिः पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मनुष्याणां च संवृतविवृता योनिः ।

और वह जीवप्रदेशों से रहित है। नारकों की योनि वज्रमय वातायन के वे भी जीवप्रदेशों से रहित हैं। गर्भज तिर्यंचों और मनुष्यों की मिश्र (होती है। पांच स्थावरों की, तीन विकलेन्द्रियों की, अगर्भज पञ्चेन्द्रि सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की योनि तीनों प्रकार की (सचित्त, अचित्त और मि

गर्भज—मनुष्यों, तिर्यंचों और देवों की शीतोष्ण योनि ह उष्ण योनि है। चार स्थावरों की, तीन विकलेन्द्रियों की, आगर्भज सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की और नारकों की तीनों प्रकार की (शीत उ होती है।

नारकों देवों और एकेन्द्रियों की सवृत योनि है। ग और मनुष्यों की सवृतविवृत योनि होती है। तीन विकलेन्द्रियों

પ્રદેશોથી રહિત છે નારકીઓની યોનિ વજ્રમય વાતાયન (
) તે પણ જીવપ્રદેશોથી રહિત છે

ગર્ભજ તિર્યંચો અને મનુષ્યોની મિશ્ર (સચિત્તાચિ- સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની, અગર્ભજ પંચેન્દ્રિય મનુષ્યોની યોનિ ત્રણેય પ્રકારની (સચિત્ત, અચિત્ત અને

ગર્ભજ મનુષ્યો, તિર્યંચો અને દેવોની શીતોષ્ણ ઉષ્ણયોનિ છે. ચાર સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની, અ સંમૂર્છિમ મનુષ્યોની અને નારકોની ત્રણેય પ્રકારની (શીત,

નારકી, દેવો, અને એકેન્દ્રિયોની સંવૃત યોનિ અને મનુષ્યોની સંવૃત-વિવૃત યોનિ હોય છે. ત્રણ વિ

यातनामनुभवति । एवं ज्ञपरिज्ञया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया सावद्यक्रिया परित्याज्येति भगवता बोधितमिति । इदं च ज्ञानं सहसम्मत्या (अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानैर्जातिस्मृत्या वा) मतिज्ञानेन वा भवति, तस्मान्निरवद्यव्यवहाररूपसंयममार्गे प्रवृत्तिरेव जीवस्य हितकारिणी, अनयैव हि परमपदं मोक्षो लभ्यते ॥ सू० ९ ॥

ननु तर्हि दुःखफलेषु तेषु क्रियाविशेषेषु किमर्थं प्रवर्तते जीवः ? इत्याशङ्कायामाह-'इमस्स चेव' इत्यादि ।

मूलम्—इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं ॥ सू० १० ॥

छाया—अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुम् ॥ सू० १० ॥

अनेक प्रकार की दुस्सह यातनाएं भोगता है, इस प्रकार ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से सावद्य क्रिया त्यागने योग्य है । इस प्रकार भगवान्ने उपदेश दिया है । यह बोध-अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान और जातिस्मरण से होता है, या मतिज्ञान से होता है । इस लिये निरवद्यव्यवहाररूप संयममार्ग में प्रवृत्ति करना ही जीव के लिए हितकर है और इसी से परमपद-मोक्ष प्राप्त होता है ॥ सू० ९ ॥

अगर सावद्य क्रियाएँ दुःख का कारण है तो उन में जीव प्रवृत्ति क्यों करता है ? इस आशंका का समाधान करते है—'इमस्स चेव' इत्यादि ।

मूलार्थ—इस जीवन के लिए, परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, दुःख दूर करने के लिए, (जीव पापक्रिया में प्रवृत्त होता है) ॥ सू० १० ॥

સાવદ્ય વ્યાપાર કરતો જીવ સંસારમાં પરિભ્રમણ કરે છે અને નરક નિગોદ આદિની અનેક પ્રકારની કઠિન યાતનાઓ ભોગવે છે. આ પ્રમાણે જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી સાવદ્ય ક્રિયા ત્યાગવા યોગ્ય છે, આ પ્રમાણે ભગવાને ઉપદેશ આપ્યો છે.

આ બોધ-અવધિ, મનઃપર્યય, કેવલજ્ઞાન અથવા જાતિસ્મરણથી થાય છે અથવા તો મતિજ્ઞાનથી થાય છે એ માટે નિરવદ્ય-વ્યવહારરૂપ સંયમમાર્ગમાં પ્રવૃત્તિ કરવી એજ જીવને માટે હિતકર છે અને એનાથી પરમપદ મોક્ષ થાય છે (સૂ૦ ૯)

જો કે સાવદ્ય ક્રિયાઓ દુઃખનું કારણ છે તો તેમાં જીવ પ્રવૃત્તિ શા માટે કરે છે ? એ શંકાનું સમાધાન કરે છે— इमस्स चेव इत्यादि.

મૂલાર્થ—આ જીવનને માટે, પરિવંદન, માનન, અને પૂજન માટે, જન્મ મરણથી છૂટા થવા માટે, દુઃખ દૂર કરવા માટે (જીવ પાપક્રિયામાં પ્રવૃત્ત થાય છે) (૧૦)

हेतुत्वादशोभनं रूप=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः=अनिष्टाः, तान्, स्पर्शान्=इन्द्रियाणां विषयैः सह सम्बन्धाः स्पर्शाः, तान् प्रतिसंवेदयति=पुनः पुनरनुभवति। अनिष्टविषयसंयोगैः पुनः पुनर्दुःखमेव प्राप्नोतीत्यर्थः।

यद्वा—विरूपं=विभिन्नरूपं विभिन्नात्मकं रूपं=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः=नानाविधस्वरूपाः, तान् स्पर्शान्=दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयति। लक्षणया कार्यकारणयोरभेदाद्वा स्पर्शजन्या अपि दुःखसंपाताः स्पर्शा इति व्यपदिश्यन्ते। अत्र स्पर्शानित्युपलक्षणं, तेन मानसानामपीष्टवियोगादिजन्यदुःखसंपातानां संग्रहः।

यद्वा—स्पर्शान्=स्पर्शनेन्द्रियवेद्यान् दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयतीत्यर्थः।

को भोगता है। इस प्रकार अनिष्ट विषयों का सयोग होने के कारण वह जीव पुनः-पुनः दुःख ही अनुभव करता है।

अथवा–विरूप अर्थात् भिन्न-भिन्न स्वरूपवाले–नानाप्रकार के दुःखजनक स्पर्शों का सवेदन करता है। लक्षणावृत्ति से, अथवा कार्य-कारण के अभेद की विवक्षा से स्पर्शजन्य दुःख भी स्पर्श ही कहलाते हैं। यहाँ स्पर्श उपलक्षण मात्र है, उस से इष्टवियोग आदि मानसिक दुःखों का भी ग्रहण समझना चाहिए।

अथवा–स्पर्श का अर्थ है–स्पर्शनेन्द्रियविषयभूत दुःख। जीव उन्हें भोगता है। तात्पर्य यह है कि–जीव अपरिज्ञातपापकर्मा होकर–निगोद आदि नाना

દુઃખકારક વિષયોને ભોગવે છે, એ પ્રમાણે અનિષ્ટ વિષયોનો સંયોગ હોવાના કારણે તે જીવ ફરી-ફરી દુઃખનો જ અનુભવ કરે છે

અથવા–વિરૂપ અર્થાત્ ભિન્ન–ભિન્ન સ્વરૂપવાળા નાના પ્રકારના દુઃખજનક, સ્પર્શોનું સંવેદન કરે છે લક્ષણાવૃત્તિથી, અથવા કાર્યકારણના અભેદની વિવક્ષાથી સ્પર્શજન્ય દુઃખ પણ સ્પર્શ જ કહેવાય છે અહિં સ્પર્શ ઉપલક્ષણ માત્ર છે, તેમાં ઇષ્ટવિયોગ આદિ માનસિક દુઃખોનું ગ્રહણ પણ સમજી લેવું જોઈએ

અથવા–સ્પર્શનો અર્થ છે–સ્પર્શનેન્દ્રિયવિષયભૂત દુઃખ, જીવ તેને ભોગવે છે તાત્પર્ય એ છે કે–જીવ અપરિજ્ઞાત–પાપકર્મા થઈને નરક–નિગોદ આદિ અનેક યોનિઓમાં

अपरिज्ञातकर्मतया नरकनिगोदाद्यनेकविधयोनीः संभाप्य सर्वे जीवाः विविधकर्मो दयात् स्वकर्मफलं नानाविधं दुःखमेवानुभवन्तीति भावः ॥ ८ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्रत्याह—'तत्थ'—इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ॥ सू० ९ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता ॥ सू० ९ ॥

टीका—

हे जम्बू ! अपरिज्ञातकर्मा जीवो विभावपरिणामं कुर्वन् नानाविध योनिषु पुनः पुनर्दुःखमेव लभते । तत्र—अपरिज्ञातकर्मणो जीवस्य कृतकारि तानुमोदितादिभेदेनोक्तसप्तविंशतिभेदरूपसावद्यक्रियानुष्ठानान्नरकनिगोदादिनानावि धयोनिषु पुनः पुनर्दुःखानुभवविषये भगवता श्रीमहावीरस्वामिना परिज्ञा

योनियों में उत्पन्न होकर विविध कर्मों के उदय से अपने-अपने कर्मों का नानाविध दुःख-रूप फल अनुभव करते हैं ॥ सू० ८ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—'तत्थ खलु' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने परिज्ञा का उपदेश दिया है ॥ सू० ९ ॥

टीकार्थ—हे जम्बू ! अपरिज्ञातपापकर्मा जीव विभाव परिणाम धारण करता हुआ नाना प्रकार की योनियों में बारंबार दुःख पाता है । अपरिज्ञातपापकर्मा जीव के कृत कारित अनुमोदना आदि के भेद से सत्ताईस भेदरूप सावद्यक्रिया के अनुष्ठान से नरक निगोद आदि नाना प्रकार की योनियों में पुनः पुनः दुःखानुभव करने के विषयमें

ઉત્પન્ન થઈને વિવિધકર્મોના ઉદયથી પોત-પોતાના કર્મોના અનેક પ્રકારના દુઃખરૂપ ફલનો અનુભવ કરે છે (સૂ૦ ૮)

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે— तत्थ खलु ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાનો ઉપદેશ આપ્યો છે. (૯)

ટીકાર્થ—હે જમ્બૂ ! અપરિજ્ઞાતપાપકર્મા જીવ વિભાવ પરિણામ ધારણ કરતો થકો નાના પ્રકારની યોનિઓમાં વારંવાર દુઃખ પામે છે અપરિજ્ઞાત-પાપકર્મા જીવના કૃત કારિત અને અનુમોદના આદિના ભેદથી સત્તાવીશ ભેદરૂપ સાવદ્ય ક્રિયાના અનુષ્ઠાનથી નરક-નિગોદ આદિ નાના પ્રકારના યોનિઓમાં પુનઃ પુનઃ દુઃખ અનુભવ કરવાના વિષયમાં

खलु प्रवेदिता। तत्त दुःखकारणकर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रबोधितमिति भावः परिज्ञा=सम्यगवबोधः। परिज्ञा द्विविधा ज्ञ–प्रत्याख्यान–भेदात्। 'सावद्यव्यापारेण कर्मबन्धो भवती'ति ज्ञानं ज्ञ–परिज्ञा। कर्मबन्धकारणस्य सावद्यव्यापारस्य परित्यागः प्रत्याख्यान–परिज्ञा। अत्रेदमवगन्तव्यम्–अतीतकाले मनसा वाचा कायेन च मया सावद्यक्रिया कृता, कारिता, अनुमोदिता च, तथा वर्त्तमानकाले सावद्यक्रियां करोमि, कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यमनुमोदयामि। एवं यदि भविष्यत्कालेऽपि सावद्यक्रियां करिष्यामि, कारयिष्यामि करिष्यमाणमन्यमनुमोदयिष्यामि। इत्थमनेकविधसावद्यव्यापारं कुर्वन् जीवः संसारे परिभ्रमति, नरकनिगोदाद्यनेकविधदुस्सहयातनां

भगवान् महावीर स्वामीने परिज्ञा की प्ररूपणा की है। दुःखों के कारणभूत कर्मों के बन्ध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञा का शरण अवश्य ग्रहण करना चाहिए, ऐसा भगवान् ने कहा है। परिज्ञा का अर्थ है–सम्यग्ज्ञान। परिज्ञा दो प्रकार की है– ज्ञ–परिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा। सावद्य व्यापार से कर्मबन्ध होता है' ऐसा जानना ज्ञ–परिज्ञा है। और कर्म बन्ध के कारण सावद्य व्यापारों का परित्याग कर देना प्रत्याख्यान परिज्ञा है। यहाँ यह समझना चाहिए कि–भूतकाल में मैंने मन, वचन, काय से सावद्य क्रिया की, कराई और उस की अनुमोदना की, तथा वर्तमान काल में सावद्य क्रिया करता हूँ, कराता हूँ और दूसरे करने वाले का अनुमोदन करता हूँ,। इसी प्रकार भविष्यकाल में भी सावद्य क्रिया करूंगा, कराऊंगा, और दूसरे का अनुमोदन करूंगा। इस प्रकार भाँति–भाँति का सावद्य व्यापार करता हुआ जीव ससार में परिभ्रमण करता है और नरक निगोद आदि की

ભગવાન મહાવીર સ્વામીએ પરિજ્ઞાની પ્રરૂપણા કરી છે. દુઃખોના કારણભૂત કર્મોના બંધનો નાશ કરવા માટે જીવને પરિજ્ઞાનું શરણ અવશ્ય ગ્રહણ કરવું જોઈએ, એ પ્રમાણે ભગવાને કહ્યુ છે પરિજ્ઞાનો અર્થ છે સમ્યગ્જ્ઞાન પરિજ્ઞા બે પ્રકારની છે– (૧) જ્ઞ–પરિજ્ઞા અને (૨) પ્રત્યાખ્યાન–પરિજ્ઞા 'સાવદ્ય વ્યાપારથી કર્મબંધ થાય છે.' આ પ્રકારે સમજવું તે જ્ઞ–પરિજ્ઞા છે, અને કર્મબંધના કારણથી સાવદ્ય વ્યાપારોનો ત્યાગ કરી દેવો તે પ્રત્યાખ્યાન–પરિજ્ઞા છે અહિં આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ કે — ભૂતકાળમા મે મન, વચન, કાયાથી સાવદ્ય ક્રિયા કરી છે, કરાવી છે અને તેને અનુમોદન આપ્યુ છે તથા વર્તમાન કાલમા સાવદ્ય ક્રિયા કરૂ છુ, કરાવુ છુ, અને બીજા કરવાવાળાને અનુમોદન આપું છુ આ પ્રમાણે ભવિષ્યકાલમા પણ સાવદ્ય ક્રિયા કરીશ. કરાવીશ અને બીજાને અનુમોદન આપીશ આ પ્રમાણે અનેક તરેહના જૂદા–જૂદા

चानुभवति । एवं ज्ञपरिज्ञया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया सावद्यक्रिया परित्याज्येति भगवता बोधितमिति । इदं च ज्ञानं सद्सम्मत्या (अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानैर्जाति स्मृत्या वा) मतिज्ञानेन वा भवति, तस्मान्निश्चयव्यवहाररूपसंयममार्गे प्रवृत्तिरेव जीवस्य हितकारिणी, अनयैव हि परम्परया मोक्षो लभ्यते ॥ सू० ९ ॥

ननु यर्हि दुःखफलेषु तेषु क्रियाविशेषेषु किमर्थं प्रवर्तते जीव ? इत्याशङ्कायामाह-'इमस्स चेव' इत्यादि ।

मूलम्—इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं ॥ सू० १० ॥

छाया—अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय-जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुम् ॥ सू० १० ॥

अनेक प्रकार की दुस्सह यातनाएं भोगता है, इस प्रकार ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से सावद्य क्रिया त्यागने योग्य है । इस प्रकार भगवान्ने उपदेश दिया है । यह बोध-अवधि, मन-पर्यय केवलज्ञान और जातिस्मरण से होता है, या मतिज्ञान से होता है । इस लिये निश्चयव्यवहाररूप संयममार्ग में प्रवृत्ति करना ही जीव के लिए हितकर है और इसी से परम्परा-मोक्ष प्राप्त होता है ॥ सू० ९ ॥

अगर सावद्य क्रियाएँ दुःख का कारण है तो उन में जीव प्रवृत्ति क्यों करता है ? इस आशंका का समाधान करते है-'इमस्स चेव' इत्यादि ।

मूलार्थ—इस जीवन के लिए, परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, दुःख दूर करने के लिए, (जीव पापक्रिया में प्रवृत्त होता है) ॥ सू. १ ॥

સાવદ્ય વ્યાપાર કરતો જીવ સંસારમાં પરિભ્રમણ કરે છે અને નરક નિગોદ આદિની અનેક પ્રકારની કઠિન યાતનાઓ ભોગવે છે. આ પ્રમાણે જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી સાવદ્ય ક્રિયા ત્યાગવા યોગ્ય છે આ પ્રમાણે ભગવાને ઉપદેશ આપ્યો છે

આ બોધ--અવધિ, મન-પર્યય, કેવલજ્ઞાન અથવા જાતિસ્મરણથી થાય છે અથવા તો મતિજ્ઞાનથી થાય છે એ માટે નિશ્ચય-વ્યવહારરૂપ સંયમમાર્ગમાં પ્રવૃત્તિ કરવી એજ જીવને માટે હિતકર છે અને એનાથી પરંપરા મોક્ષ થાય છે (સૂ૦ ૯)

જો કે સાવદ્ય ક્રિયાઓ દુઃખનું કારણ છે તો તેમાં જીવ પ્રવૃત્તિ શા માટે કરે છે ? એ શંકાનું સમાધાન કરે છે— इमस्स चेव इत्यादि

મૂલાર્થ—આ જીવનને માટે, પરિવંદન, માનન, અને પૂજન માટે, જન્મ મરણથી મુક્ત થવા માટે, દુઃખ દૂર કરવા માટે (જીવ પાપક્રિયામાં પ્રવૃત્ત થાય છે) (૧૦)

टीका—'अस्य' इति-अस्य=प्रत्यक्षमनुभूयमानस्य वारितरङ्गवच्चञ्चलतरस्य, सन्ध्यारागवत्त्वरितभङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य चिरसुखार्थमपरिज्ञातकर्मा जीवः कर्मबन्धहेतुभूतेषु क्रियाविशेषेषु प्रवर्त्तते। यथा-जीवनार्थं लावकतित्तिरादिपक्षिणाम्, अजमेषमृगमृगराजादिपशूनां वधरूपघोरकर्मसमाचरणम्। तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय, तत्र-परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा-स्वख्यातिप्राप्त्यर्थं सापराध-निरपराध-प्राणिनां हिंसनम्। माननम्=अभ्युत्थानासनदानादिरूपः सत्कारः, स्वाज्ञा-स्वीकारो वा, तदर्थम्, यथा-माननार्थं परेषां हिंसनादिकरणम्। पूजनम्-रत्नवस्त्रादि-पुरस्कारः, प्रतिमादीनां पूजाप्रतिष्ठादि च, तदर्थं, प्राण्युपमर्दनरूपहिंसादिसावद्य-

---

टीकार्थ—प्रत्यक्ष अनुभव किये जाने वाले, जलकी तरङ्ग के समान अतिशय चंचल, सन्ध्या की लालिमा के समान भङ्गुर—जीवन के चिरकालीन सुख के लिए अपरिज्ञातकर्मा जीव कर्मबन्ध की कारणभूत क्रियाओं में प्रवृत्त होता है। जैसे—जीवित रहने के लिए, लावा, तीतर आदि पक्षियों का और बकरा, मेढ़ा, हिरन एवं सिंह आदि पशुओं का वधरूप घोर पापकर्म का आचरण करना।

तथा परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए जीव पापकर्म करता है। 'परिवन्दन' का अर्थ है प्रशंसा। प्रशंसा के लिए सापराध और निरपराध प्राणियों का घात किया जाता है। उठकर खड़ा होना, आसन देना आदि सत्कार, अथवा अपनी आज्ञा स्वीकार कराना 'मानन' कहलाता है, इस के लिए भी दूसरों की हिंसा की जाती है। रत्नों और वस्त्रों आदि का पुरस्कार 'पूजन' कहलाता है, और प्रतिमा आदि की पूजा-

---

ટીકાર્થ—પ્રત્યક્ષ અનુભવ કરવામા આવેલા જલના તરંગોની સમાન અતિશય ચચલ, સધ્યાની લાલાશ (રતાપણા)ની સમાન ભગુર જીવનના લાબા સમયના સુખ માટે અપરિજ્ઞાતકર્મા જીવ કર્મબધની કારણભૂત ક્રિયાઓમા પ્રવૃત્ત થાય છે જેવી રીતે જીવિત રહેવા માટે લાવા તેતર, આદિ પક્ષીઓના અને બકરા, ઘેટા, હરણ એ પ્રમાણે સિંહ આદિ પશુઓના વધરૂપ ઘોર પાપકર્મનુ આચરણ કરવુ

તથા પરિવન્દન, માનન અને પૂજન માટે પણ જીવ પાપ કર્મ કરે છે 'પરિવદન'નો અર્થ છે -પ્રશસા, પ્રશસા માટે અપરાધવાળા અને અપરાધ વિનાના પ્રાણીઓનો ઘાત કરવામા આવે છે ઉઠીને ઉભા થઈ જવુ આસન આપવુ આદિ સત્કાર અથવા પોતાની આજ્ઞા સ્વીકાર કરાવવી તે 'માનન' કહેવાય છે, તે માટે પણ બીજાની હિંસા કરવામા આવે છે રત્ન અને વસ્ત્રો આદિનો પુરસ્કાર તે પૂજન કહેવાય છે, અને પ્રતિમા-

क्रियां करोति । जातिमरणमोचनाय=जातिर्जन्म, तदर्थं भवान्तरसुखमाप्त्यर्थं झम्पापातादिकं समाचरति । मरणार्थम्=मरणं यथा पित्रादीनां संजातं, तदर्थं पिण्डदानादिक्रियासु प्रवर्तते । यद्वा मरणं=वधस्तदर्थं, वधं निमित्तीकृत्य वैरनि र्यातनार्थम् । यद्वा–मरणार्थं=मृत्युनिवारणार्थं मिथ्यात्वबुद्धया देवीपूजादौ बलिदानादिकरणम् । मोचनम्=आत्मन कर्मबन्धापगमस्तदर्थं विपरीतमत्या पञ्चाग्नितापादौ प्राण्युपमर्दनकर्मणि प्रवर्तते । तथा दुःखप्रतिघातहेतु=दुःखानां प्रतिघातो=विध्वंसस्तस्य हेतुं क्रियाविशेषं हिंसादिकं करोति, यथा–व्याधि

प्रतिष्ठा वगैरह भी 'पूजन' है उसके लिए भी मनुष्य प्राणियों का उपमर्दनरूप हिंसा वगैरह सावद्य क्रियाएँ करता है।

जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए सावद्य क्रियाएँ की जाती हैं। जाति–जन्म के लिए जैसे आगामी भव में सुख प्राप्त करने के उद्देश से भीम झपापात–(अग्नि तथा पाणीमें पडकर अथवा ऊपरसे गिरकर मरना) आदि का आचरण करता है। मरण'–पिता आदि का मरण होने पर उनके लिए पिंडदान आदि क्रियाओं में प्रवृत्त होता है। अथवा–मृत्यु को निमित्त बनाकर वैर का प्रतिशोध (बदला) लेने के लिए पाप करता है। अथवा मृत्यु टालने की मिथ्याबुद्धि से देवी वगैरह के लिए बलिदान आदि करता है। तथा 'मोचन' के लिए अर्थात् अपना कर्मबन्ध हटाने के लिए विपरीतमति हो कर पंचाग्नितप आदिरूप प्राणि हिंसा में प्रवृत्त होता है। तथा 'दुःखप्रतिघातहेतु' दुःखों को निवारण करने के लिए हिंसा आदि पाप करता है। जैसे रोग मिटाने की बुद्धि से मांस

(मूर्ति) आदिनी पूजा-प्रतिष्ठा वगेरे पण 'पूजन' छे तेना माटे पण जीव प्राणिओनुं उपमर्दनरूप हिंसा वगेरे सावद्य क्रियाओ करे छे

जन्म अने मरणथी छूटवा माटे पण सावद्य क्रियाओ करवामां आवे छे जाति–जन्म माटे, जेम आगामी भवमां सुख प्राप्त करवाना उद्देशथी जीव झपापात (अग्नि के पाणीमां पडीने मरवुं ऊंचेथी पडतुं मूकवुं) आदिनुं आचरण करे छे 'मरण' पिता आदिना मरण प्रसंगे तेना माटे पिंडदान आदि क्रियाओमां प्रवृत्त थाय छे अथवा मृत्यु निवारण माटे मिथ्याबुद्धिथी देवी वगेरेने बलिदान आदि आपवां, तथा मोचन माटे अर्थात् पोताना कर्मबन्धने दूर करवा माटे विपरीत मतिथी पंचाग्नितप आदिरूप हिंसामां प्रवृत्त थाय छे तथा 'दुःखप्रतिघातहेतु' –दुःखोनुं निवारण करवा माटे हिंसाआदि पाप करे छे जेम रोग

विध्वंसनबुद्ध्या मांसं भक्षयति, मदिरादिकं पिबति, वनस्पतिमूलत्वक्पत्रनिर्यासादि-शतपाकसहस्रपाकादितैलार्थं वह्निवनस्पत्याद्यारम्भं करोति । अत्र कारितानुमोदित-भूतभविष्यत्कालादिभेदेन कर्मसमारम्भरूपाः क्रियाविशेषा अन्येऽप्यवगन्तव्याः ।

एवमपरिज्ञातकर्मतया संसारिणो जीवाः कर्मसमारम्भरूपैः क्रियाविशेषैः संसारे सर्वदिक्षु परिभ्रमन्तो विविधयोनिषु दुःखमेव प्राप्नुवन्तीति विज्ञाय भव्यैः कर्मसमारम्भरूपा सकलसावद्यक्रियाविशेषास्त्याज्या इति भावः ॥ सू. १० ॥

कर्मसमारम्भरूपान् क्रियाविशेषान् अनुस्मारयितुं प्रागुक्तमपि पुनः कथयति-'एयावंति' इत्यादि ।

खाता है, मदिरा आदि का पान करता है, वनस्पति की जड, छाल, पत्ता, रस वगैरह निकालता है, शतपाक एव सहस्रपाक आदि तैलों के लिए अग्नि और वनस्पति आदि का आरम्भ करता है । यहाँ कराना और अनुमोदन करना तथा भूत, भविष्य काल आदि के भेद से कर्मसमारम्भरूप अन्य क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिए ।

इस प्रकार अपरिज्ञातपापकर्मा होने के कारण ससारी जीव कर्मसमारम्भरूप क्रियाओं द्वारा संसार में समस्त दिशाओं में भ्रमण करते हुए नाना योनियों में दुःख का ही अनुभव करते हैं । ऐसा समझकर भव्य जीवों को पापकर्मजनक सावद्य क्रियाओं का त्याग करना चाहिए ॥ सू० १० ॥

कर्मसमारम्भरूप क्रियाविशेषों का स्मरण कराने के लिए पूर्वोक्त अर्थ को फिर कहते हैं-"एयावंति." इत्यादि ।

મટાડવાની બુદ્ધિથી માસ ખાય છે, મદિરા વગેરેનું પાન કરે છે, વનસ્પતિના મૂળ, છાલ, પાદડા રસ વગેરે કાઢે છે શતપાક, સહસ્રપાક આદિ તેલો માટે અગ્નિ અને વનસ્પતિ આદિનો આરભ કરે છે અહિં કરાવવું અને અનુમોદન આપવુ, તથા ભૂત ભવિષ્ય કાલ આદિ ના ભેદથી કર્મસમારભરૂપ અન્ય ક્રિયાઓ પણ સમજી લેવી જોઈએ.

આ પ્રમાણે અપરિજ્ઞાતપાપકર્મો હોવાના કારણે, સસારી જીવ કર્મસમારભરૂપ ક્રિયાઓદ્વારા સસારમા, સમસ્ત દિશાઓમા ભ્રમણ કરતો અનેક યોનિઓમા દુઃખ નોજ અનુભવ કરે છે આ પ્રમાણે સમજીને ભવ્ય જીવોએ પાપકર્મજનક સાવદ્ય ક્રિયાઓનો ત્યાગ કરવો જોઈએ (સૂ૦ ૧૦)

કર્મસમારંભરૂપ ક્રિયાવિશેષોનુ સ્મરણ કરાવવા માટે પૂર્વોક્ત અર્થને ફરી કહે છે —'एयावंति' ઇત્યાદિ.

मूलम्—एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति ॥ सू० ११ ॥

छाया—एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारम्भाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥ सू० ११ ॥

टीका—'एतावन्त' इति—लोके=जिनशासने कर्मसमारम्भाः=कर्मबन्धहेतवः क्रियाविशेषाः सर्वे एतावन्तः। कृतकारितानुमोदितभेदेन त्रिविधानां कर्मसमारम्भाणां प्रत्येकमतीतवर्तमानानागतत्रयभेदेन नवविधानां पुनर्मनोवाक्कायभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सति सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्तीति रीत्या पूर्वकथितसप्तविंशति भङ्गरूपाः, न तु तेभ्योऽधिका इत्यर्थः। एते च कर्मसमारम्भाः परिज्ञातव्या भवन्ति, एतत्परिज्ञानार्थं यत्नो विधेय इत्यर्थः। ज्ञाते सति पुनः पुनरस्यानुस्मरणं करणीयं, न त्वत्र प्रमादः कार्य इति भावः ॥ सू० ११ ॥

कर्मसमारम्भपरिज्ञानस्य फलमाह—'जस्सेते' इत्यादि।

मूलार्थ—जिनशासन में इतने कर्मसमारम्भ जानने योग्य हैं ॥ सू० ११ ॥

टीकार्थ—जिनशासन में कर्मबन्ध के कारण इतने ही हैं। कृत, कारित, और अनुमोदित के भेद से तीन प्रकार के कर्मसमारम्भोंका अतीत वर्तमान और भविष्य काल के साथ गुणाकार करने पर नौ भेद होते हैं। ये नौ भेद मन, वचन, काय के भेदसे सत्ताईस भङ्गरूप हो जाते हैं। इस प्रकार सत्ताईस तरह के कर्मसमारम्भ जानने चाहिए, इनसे न कम है और न अधिक है। उन्हें जानने के लिए यत्न करना चाहिए। जान लेने के पश्चात् उनका बार-बार स्मरण करना चाहिए। इस विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिए ॥ ११ ॥

कर्मसमारम्भ के ज्ञानका फल बतलाते हैं—'जस्सेते' इत्यादि।

મૂલાર્થ—જિનશાસનમાં આટલા કર્મસમારંભ જાણવા યોગ્ય છે (૧૧)

ટીકાર્થ—જિનશાસનમાં કર્મબંધના કારણ આટલાજ છે કરવું કરાવવું અને અનુમોદન આપવું આ ભેદથી ત્રણ પ્રકારના કર્મસમારંભોને ભૂતકાલ, વર્તમાન અને ભવિષ્ય કાલની સાથે ગુણાકાર કરવાથી નવ ભેદ થાય છે આ નવ ભેદ મન વચન, કાયાના ભેદથી સત્તાવીસ ભંગરૂપ થઈ જાય છે એ પ્રમાણે સત્તાવીસ તરેહના કર્મસમારંભોને જાણવા જોઈએ. એનાથી ઓછા નથી અને અધિક પણ નથી. તેને જાણવા માટે યત્ન કરવો જોઈએ. જાણ્યા પછી તેનું વાર વાર સ્મરણ કરવું જોઈએ. આ વિષયમાં પ્રમાદ નહિ કરવો જોઈએ. (૧૧)

કર્મસમારંભના જ્ઞાનનું ફળ બતાવે છે—'જસ્સેતે' ઇત્યાદિ

विध्वंसनबुद्ध्या मांसं भक्षयति, मदिरादिकं पिबति, वनस्पतिमूलत्वक्पत्रनिर्यासादि-शतपाकसहस्रपाकादितैलार्थं वह्निवनस्पत्याद्यारम्भं करोति। अत्र कारितानुमोदित-भूतभविष्यत्कालादिभेदेन कर्मसमारम्भरूपाः क्रियाविशेषा अन्येऽप्यवगन्तव्याः।

एवमपरिज्ञातकर्मतया संसारिणो जीवाः कर्मसमारम्भरूपैः क्रियाविशेषैः संसारे सर्वदिक्षु परिभ्रमन्तो विविधयोनिषु दुःखमेव प्राप्नुवन्तीति विज्ञाय भव्यैः कर्मसमारम्भरूपा सकलसावद्यक्रियाविशेषास्त्याज्या इति भावः ॥ सू. १० ॥

कर्मसमारम्भरूपान् क्रियाविशेषान् अनुस्मारयितुं प्रागुक्तमपि पुनः कथयति- 'एयावंति' इत्यादि।

खाता है, मदिरा आदि का पान करता है, वनस्पति की जड, छाल, पत्ता, रस वगैरह निकालता है, शतपाक एवं सहस्रपाक आदि तैलों के लिए अग्नि और वनस्पति आदि का आरम्भ करता है। यहाँ कराना और अनुमोदन करना तथा भूत, भविष्य काल आदि के भेद से कर्मसमारम्भरूप अन्य क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिए।

इस प्रकार अपरिज्ञातपापकर्मा होने के कारण संसारी जीव कर्मसमारम्भरूप क्रियाओं द्वारा संसार में समस्त दिशाओं में भ्रमण करते हुए नाना योनियों में दुःख का ही अनुभव करते हैं। ऐसा समझकर भव्य जीवों को पापकर्मजनक सावद्य क्रियाओं का त्याग करना चाहिए ॥ सू० १० ॥

कर्मसमारम्भरूप क्रियाविशेषों का स्मरण कराने के लिए पूर्वोक्त अर्थ को फिर कहते हैं–"एयावति." इत्यादि।

મટાડવાની બુદ્ધિથી માસ ખાય છે, મદિરા વગેરેનું પાન કરે છે, વનસ્પતિના મૂળ, છાલ, પાદડા રસ વગેરે કાઢે છે શતપાક, સહસ્રપાક આદિ તેલો માટે અગ્નિ અને વનસ્પતિ આદિનો આરભ કરે છે અહિં કરાવવુ અને અનુમોદન આપવું, તથા ભૂત ભવિષ્ય કાલ આદિ ના ભેદથી કર્મસમારભરૂપ અન્ય ક્રિયાઓ પણ સમજી લેવી જોઈએ.

આ પ્રમાણે અપરિજ્ઞાતપાપકર્મા હોવાના કારણે, સસારી જીવ કર્મસમારભરૂપ ક્રિયાઓદ્વારા સસારમા, સમસ્ત દિશાઓમા ભ્રમણ કરતો અનેક યોનિઓમા દુઃખનોજ અનુભવ કરે છે આ પ્રમાણે સમજીને ભવ્ય જીવોએ પાપકર્મજનક સાવદ્ય ક્રિયાઓનો ત્યાગ કરવો જોઈએ (સૂ૦ ૧૦)

કર્મસમારભરૂપ ક્રિયાવિશેષોનું સ્મરણ કરાવવા માટે પૂર્વોક્ત અર્થને ફરી કહે છે —'एयावति' ઇત્યાદિ

सकाशान्मया साक्षात् श्रुतं तद् ब्रवीमि=कथयामि न तु स्वबुद्धिपरिकल्पितम्। यतः स्वबुद्ध्या कथने श्रुतज्ञानस्याविनयो भवति, किञ्च-छद्मस्थानां दृष्टयोऽप्यपूर्णा भवन्ति तस्माद् यथाभगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः। अत्र सङ्ग्रहगाथा-

" सुयणाणस्स अविणओ, परिहरणिज्जो सुहाहिलासीहिं।

छउमत्थाणं दिट्ठी, पुण्णा णत्थि-त्ति सूयए इणमो ॥ १ ॥ " इति।

सावद्यक्रियायाः षड्जीवनिकायं प्रति शस्त्रवदुपघातकत्वात् सावद्यक्रिया-स्वरूपबोधकस्य प्रथमाध्ययनस्य शस्त्रपरिज्ञा व्यपदेशः। ॥ सू० १२ ॥

प्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः सम्पूर्णः ॥१-१॥

मुक्ति का विस्तार करनेवाले तीर्थंकर भगवान् महावीर के समीप मैंने साक्षात् सुना है वही 'ब्रवीमि'=मैं कहता हूँ, अपनी बुद्धिसे कल्पित नहीं कहता। अपनी बुद्धिसे-तीर्थंकरकी वाणी की अपेक्षा न रखते हुए कथन करने से श्रुतज्ञान का अविनय होता है। दूसरी बात यह है कि छद्मस्थ की दृष्टि भी अपूर्ण होती है, अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ही मैं तुम से कहता हूँ। यहाँ यह सङ्ग्रहगाथा है—

'सुख के अभिलाषी भव्यों को श्रुतज्ञान के अविनय का त्याग करना चाहिए छद्मस्थों की दृष्टि पूर्ण नहीं होती, ऐसा यहाँ 'इति' शब्द से सूचित किया गया है" ॥ १ ॥

सावद्य क्रिया षड्जीवनिकाय के लिए शस्त्र के समान घातक है, अतः सावद्य क्रियाके स्वरूपके बोधक इस प्रथम अध्ययन का शस्त्रपरिज्ञा नाम हुआ है॥ सू. १२ ॥

प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

વિસ્તર્યું જે તીર્થંકર ભગવાન મહાવીર પાસે મેં સાક્ષાત્ સાંભળ્યું છે તેજ 'બ્રવીમિ'=હું કહું છું. પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પિત કહેતો નથી. પોતાની બુદ્ધિથી—તીર્થંકરની વાણીની અપેક્ષા નહીં રાખીને કહીએ તો શ્રુતજ્ઞાનનો અવિનય થાય છે બીજી વાત એ છે કે—છદ્મસ્થની દૃષ્ટિ પણ અપૂર્ણ હોય છે તે કારણથી ભગવાન દ્વારા પ્રતિપાદન કરાએલું તત્ત્વજ હું તમને કહું છું. અહિં આ સંગ્રહગાથા છે—

સુખના અભિલાષી ભવ્યોએ શ્રુતજ્ઞાનના અવિનયનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. છદ્મસ્થોની દૃષ્ટિ પૂર્ણ હોય નહીં. એ પ્રમાણે 'ઇતિ' શબ્દથી સૂચના કરવામાં આવી છે."(૭)

સાવદ્ય ક્રિયા ષડ્જીવનિકાય માટે શસ્ત્ર (હથીઆર) સમાન ઘાતક છે એ કારણથી સાવદ્ય ક્રિયાના સ્વરૂપનો બોધ કરાવનાર આ પ્રથમ–અધ્યયન છે, તેનું શસ્ત્રપરિજ્ઞાનામ પડ્યું છે.

નામક પ્રથમ અધ્યયનનો પ્રથમ ઉદ્દેશ
સંપૂર્ણ (૧–૧)

मूलम्—जस्सेते लोगंसि कम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे–त्तिबेमि ॥ सू० १२ ॥

छाया—यस्य एते लोके कर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १२ ॥

टीका–'यस्य' इति–लोके यस्य=भव्यजीवस्य एते=प्रागुक्ताः कर्मसमारम्भाः= ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मणः समुत्पादकाः, सावद्यक्रियाविशेषा इत्यर्थः परिज्ञाता भवन्ति=' एते हिंसादयः सप्तविंशतिभङ्गवन्तः सावद्यक्रियाविशेषा आत्मनः कर्मबन्धे हेतवो भवन्ति ' इत्येवं ज्ञपरिज्ञया ज्ञाता भवन्ति स परिज्ञातकर्मा=ज्ञपरिज्ञया कर्मबन्धनिबन्धनत्वेन विज्ञाय, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्तसकलसावद्यक्रियाविशेषो निश्चयेन मुनिः=सर्वसावद्यक्रियोपरतिप्रतिज्ञावान् भवतीत्यर्थः।

इति=आत्मतत्त्वस्वरूपनिरूपणं, कर्मबन्धहेतुभूतसकलसावद्यक्रियास्वरूपप्रदर्शनं, सावद्यक्रियानिवृत्तिपुरस्सर मुनेर्विहरण चेति यत् तीर्थङ्करस्य भगवतो महावीरस्य

मूलार्थ–लोक में जो कर्मसमारम्भ जान लेता है, वह मुनि निश्चय से परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू. १२ ॥

टीकार्थ–लोक मे जिस भव्य को पूर्वोक्त कर्मसमारम्भ अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के उत्पादक सावद्यव्यापार ज्ञात हो जाते हैं, अर्थात् जो पूर्वोक्त सत्ताईस भगों वाले हिंसादिक क्रियाविशेषों को अपने कर्मबन्धों का कारण समझ लेता है, वह परिज्ञात–कर्मा है। जो ज्ञ-परिज्ञा से कर्मबन्ध का कारण समझ कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से सम्पूर्ण सावद्य क्रिया-ओंका त्याग करता है वह निश्चय से परिज्ञातकर्मा मुनि है।

' त्ति वेमि ' इति=इस प्रकार का आत्मा के स्वरूप का निरूपण, कर्मबन्ध के कारणभूत समस्त सावद्य व्यापारों के स्वरूप का प्रदर्शन, और सावद्य क्रिया की निवृत्तिपूर्वक

મૂલાર્થ—લોકમા જે કર્મસમારંભને જાણી લે છે, તે મુનિ નિશ્ચયથી પરિજ્ઞાત-કર્મા છે એ પ્રમાણે હુ કહું છુ. (સૂ૦ ૧૨)

ટીકાર્થ—લોકમા જે ભવ્ય જીવને પૂર્વોક્ત કર્મસમારંભ અર્થાત્ જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોના ઉત્પાદક સાવદ્ય વ્યાપાર જાણવામા આવી જાય છે અર્થાત્ જે પૂર્વે કહેલા સતાવીસ ભગેવાળા હિંસાદિક્રિયાવિશેષોને પોતાના કર્મબંધનું કારણ સમજી લે છે તે પરિજ્ઞાતકર્મા છે જે જ્ઞ–પરિજ્ઞાથી કર્મબંધનુ કારણ સમજીને પ્રત્યાખ્યાન–પરિજ્ઞાથી સમ્પૂર્ણ સાવદ્ય ક્રિયાઓનો ત્યાગ કરે છે તે નિશ્ચયથી પરિજ્ઞાતકર્મા મુનિ છે

ત્તિ વેમિ'–ઇતિ=આ પ્રમાણે આત્માના સ્વરૂપનું નિરૂપણ, કર્મબંધના કારણભૂત સમસ્ત સાવદ્ય વ્યાપારોના સ્વરૂપનુ-પ્રદર્શન, અને સાવદ્ય ક્રિયાની નિવૃત્તિપૂર્વક મુનિનું

सकाशान्मया साक्षात् श्रुतं तद् ब्रवीमि=कथयामि न तु स्वबुद्धिपरिकल्पितम्। यतः स्वबुद्ध्या कथने श्रुतज्ञानस्याविनयो भवति, किञ्च—छद्मस्थानां दृष्टयोऽप्यपूर्णा भवन्ति तस्माद् यथाभगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः। अत्र संग्रहगाथा-

" सुयनाणस्स अविणओ, परिहरणिज्जो सुहाहिलासीहिं।
छउमत्थाणं दिट्ठी, पुण्णा नत्थि त्ति सूइय इइणा ॥ १ ॥ " इति।

सावद्यक्रियायाः षड्जीवनिकायं प्रति शस्त्रवदुपघातकतया सावद्यक्रिया-स्वरूपबोधकस्य प्रथमाध्ययनस्य शस्त्रपरिज्ञेति व्यपदेशः। ॥ सू० १२ ॥

प्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १-१ ॥

मुक्तिके विकसता जो तीर्थंकर भगवान् महावीर के सन्निकट मैंने साक्षात् सुना है वही 'ब्रवीमि'=मैं कहता हूँ अपनी बुद्धिसे कल्पित नहीं कहता। अपनी बुद्धिसे-तीर्थंकरकी वाणी की अपेक्षा न रखते हुए कथन करने से श्रुतज्ञान का अविनय होता है। दूसरी बात यह है कि छद्मस्थ की दृष्टि भी अपूर्ण होती है, अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ही मैं तुम से कहता हूँ। यहाँ यह संग्रहगाथा है—

सुख के अभिलाषी भव्यों को श्रुतज्ञान के अविनय का त्याग करना चाहिए छद्मस्थों की दृष्टि पूर्ण नहीं होती, ऐसा यहाँ 'इति' शब्द से सूचित किया गया है " ॥ १ ॥

सावद्य क्रिया षड्जीवनिकाय के लिए शस्त्र के समान घातक है, अतः सावद्य क्रियाके स्वरूपके बोधक इस प्रथम अध्ययन का शस्त्रपरिज्ञा नाम हुआ है ॥ सू० १२ ॥

प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

વિચરતું એ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીર પાસે મેં સાક્ષાત્ સાંભળ્યું છે તેજ 'બ્રવીમિ'=હું કહું છું પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પિત કહેતો નથી. પોતાની બુદ્ધિથી—તીર્થંકરની વાણીની અપેક્ષા નહી રાખીને કહીએ તો શ્રુતજ્ઞાનનો અવિનય થાય છે. બીજી વાત એ છે કે—છદ્મસ્થની દૃષ્ટિ પણ અપૂર્ણ હોય છે, તે કારણથી ભગવાન દ્વારા પ્રતિપાદન કરવામાં આવેલું તત્ત્વજ હું તમને કહું છું અહિં આ સંગ્રહગાથા છે—

"સુખના અભિલાષી ભવ્યોએ શ્રુતજ્ઞાનના અવિનયનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. છદ્મસ્થોની દૃષ્ટિ પૂર્ણ હોય નહી. એ પ્રમાણે 'इति' શબ્દથી સૂચના કરવામાં આવી છે."(૭)

સાવદ્ય ક્રિયા ષડ્જીવનિકાય માટે શસ્ત્ર (હથીઆર) સમાન ઘાતક છે એ કારણથી સાવદ્ય ક્રિયાના સ્વરૂપનો બોધ કરાવનાર આ પ્રથમ—અધ્યયન છે તેનું શસ્ત્રપરિજ્ઞાનામ પડ્યું છે

નામક પ્રથમ અધ્યયનનો પ્રથમ ઉદ્દેશ
સંપૂર્ણ (૧-૧)

अथ प्रथमाध्ययनस्य

द्वितीयोद्देशः ।

प्रथमोद्देशे सामान्यरूपेणात्मनः स्वरूपं निरूपितम्, तस्यैव विशेषरूपेण बोधनाय द्वितीयोद्देशः प्रारभ्यते, तस्येदमादिमसूत्रम्-'अट्टे' इत्यादि ।

तथा-इह 'पूर्वभवस्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं न भवति केषांञ्चि'-दिति प्रथमोद्देशे निगदितम्, अथ तत् कथं न भवतीति जिज्ञासायामुच्यते-'अट्टे' इत्यादि ।

प्रथम अध्ययनका

द्वितीय उद्देश ॥

पहले उद्देश में सामान्यरूपसे आत्मा के स्वरूप का निरूपण किया गया है। अब विशेषरूप से आत्मा का स्वरूप समझाने के उद्देश्य से दूसरा उद्देश आरम्भ किया जाता है, उसका यह आदिसूत्र है-'अट्टे' इत्यादि ।

तथा-पहले उद्देशमें बतलाया गया था कि-किन्हीं-किन्हीं जीवों को पूर्व भव का स्मरणरूप विशिष्ट ज्ञान नहीं होता। वह ज्ञान क्यों नहीं होता? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं-'अट्टे' इत्यादि ।

પહેલા અધ્યયનનો – બીજો ઉદ્દેશ

પહેલા ઉદ્દેશમા સામાન્યરૂપથી આત્માના સ્વરૂપનુ નિરૂપણુ કરવામા આવ્યુ છે હવે વિશેષરૂપથી આત્માનુ સ્વરૂપ સમજાવવાના ઉદ્દેશથી બીજા ઉદ્દેશનો આરભ કરવામા આવે છે, તેનું આ આદિસૂત્ર છે-'અટ્ટે' ઇત્યાદિ

તથા—પહેલા ઉદ્દેશમા બતાવવામા આવ્યુ છે કે-કોઈ-કોઈ જીવોને પૂર્વ-ભવના સ્મરણુરૂપ વિશિષ્ટ-ઉત્તમ અસાધારણુ જ્ઞાન થતુ નથી તે જ્ઞાન કેમ થતું નથી? એવી જીજ્ઞાસા થવાથી કહે છે.-'અટ્ટે' ઇત્યાદિ.

तथा-अयमात्मा परिज्ञातकर्मतया सकलसावद्यक्रियानिवृत्तः सन् मुनिर्भवतीत्युपदिष्टम्, अथ यः पुनरपरिज्ञातकर्मा स खलु कीदृशो भवतीत्याकाङ्क्षायामाह-'अट्टे' इत्यादि ।

अट्टे लोए परिजुण्णे दुस्संबोहे अविजाणए, अस्सिं लोए पव्वहिए तत्थ तत्थ पुढो पास, आतुरा परितावेंति ॥सू० १॥

छाया—

आर्तः लोकः परिद्यूनः (परिजीर्णः) दुःसंबोधः अविज्ञायकः अस्मिन् लोके प्रव्यथिते तत्र तत्र पृथक् पश्य, आतुरा अस्मिन् परितापयन्ति ॥ सू० १ ॥

तथा—यह कहा जा चुका है कि आत्मा कर्मों का स्वरूप समझ कर, और समस्त सावद्य व्यापारों से विरत हो कर मुनि हो जाता है, मगर जिसने कर्मों का स्वरूप नहीं समझा है, उस आत्मा की कैसी स्थिति होती है ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—'अट्टे' इत्यादि ।

मूलार्थ—(कर्मबन्ध का स्वरूप न समझने वाला) आर्त लोक परिजीर्ण है—असमर्थ है, बोध पाने में अशक्त है, अज्ञान है, इस लोक में व्यथित है, पृथक्—पृथक् जीवों को देखो । वे आतुर—अज्ञानी—होकर जीवोंको परिताप पहुँचाते हैं ॥ १ ॥

તથા—એ પ્રમાણે કહી ગયા છીએ કે આત્મા કર્મોના સ્વરૂપને સમજીને અને સમસ્ત સાવદ્ય વ્યાપારોથી વિરત (દૂર) થઈને મુનિ થઈ જાય છે પણ જેઓ કર્મોના સ્વરૂપને સમજ્યા નથી તે આત્માની સ્થિતિ કેવી થાય છે? એવી જીજ્ઞાસા થવાથી કહે છેઃ—'અટ્ટ' ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—(કર્મબંધના સ્વરૂપને નહીં સમજવાવાળા) આર્તલોક પરિજીર્ણ છે અસમર્થ છે બોધ પામવામાં અશક્ત છે અજ્ઞાન છે. આ લોકમાં દુઃખી છે જુદા-જુદા જીવોને જુઓ તે આતુર-અજ્ઞાની થઈને જીવોને પરિતાપ પહોંચાડે છે (૧)

टीका-

लोकः=पृथिव्यादिषड्जीवनिकायः खलु ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्ध-हेतुभूतसावद्यक्रियाविशेषस्वरूपानवबोधेन आर्तः=विषयसुखतृष्णाव्याकुलो भवति। अत एव परिद्यूनः=शारीरमानसादिदुःखानलसंतप्तः। यद्वा-परिजीर्णः=क्षायोपशमिक-भावाभावेन मोक्षमार्गप्रवृत्तावक्षमः, अत एव-दुःसंबोधः=ब्रह्मदत्तवच्चरणकरण-शिक्षां ग्रहीतुमसमर्थः, अत एव अविज्ञानकः=सम्यग्ज्ञानरहितो भवति, अत एव पूर्वभवस्मृतिरूपमपि विशिष्टं ज्ञानं न भवतीति भावः। 'पश्य' इति पदेन शिष्येति संबोधनपदस्याध्याहारः—हे शिष्य! प्रव्यथिते=पूर्वोपार्जितकर्मोदयेन क्षुधा-

टीकार्थ—लोक अर्थात् पृथिवीकाय आदि छह प्रकार के जीव, ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्मों के बन्धके कारणभूत सावद्य व्यापारों का स्वरूप न समझकर आर्त होते हैं—विषयसुख की तृष्णा से व्याकुल होते हैं। अतएव वे शारीरिक और मानसिक दुःखों की आग से सतप्त हैं। अथवा क्षायोपशमिक भावों के अभाव के कारण मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं कर सकते। इसी कारण वे ब्रह्मदत्त की तरह चरण और कारण की शिक्षा लेने में भी असमर्थ हैं। ऐसे जीव **अविज्ञानक** अर्थात् सम्यग्ज्ञान से रहित होते हैं, इसी कारण उन्हे पूर्व भव की स्मृतिरूप विशिष्ट (जातिस्मरण) ज्ञान भी नहीं होता।

'**पश्य**' (देखो) इस पद के द्वारा शिष्य के सबोधन का अध्याहार किया गया है। हे शिष्य! पूर्वोपार्जित कर्मों के उदय से भूख, प्यास, त्रास, इष्टवियोग,

ટીકાર્થ—લોક અર્થાત્ પૃથ્વીકાય આદિ છ પ્રકારના જીવસમૂહ જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોના બંધના કારણે સાવદ્ય વ્યાપારોના સ્વરૂપને નહિ સમજીને આર્ત થાય છે વિષય સુખની તૃષ્ણાથી વ્યાકુલ થાય છે. તે કારણથી તે શારીરિક અને માનસિક દુઃખોની આગથી સતપ્ત-ખૂબ તપેલા છે અથવા ક્ષાયોપશમિક ભાવોના અભાવના કારણે મોક્ષમાર્ગમા પ્રવૃતિ કરી શકતા નથી એ કારણથી તે બ્રહ્મદત્તની પેઠે ચરણ અને કરણની શિક્ષા લેવામા પણ અસમર્થ છે, એવા જીવ અવિજ્ઞાનક અર્થાત્ સમ્યગ્જ્ઞાનથી રહિત હોય છે આ કારણથી તેને પૂર્વભવની સ્મૃતિરૂપ વિશિષ્ટ (જાતિસ્મરણ) જ્ઞાન પણ થતુ નથી

'પશ્ય' (દેખો-જુવો) આ પદથી 'શિષ્યના સ[illegible] અધ્યાહાર આવ્યું છે, હે શિષ્ય! પૂર્વોપાર્જિત કર્મોના ઉદયથી [illegible] ત્રાસ, [illegible]

पिपासा-त्रास-प्रियवियोगा-ऽऽधि-व्याधि-परिपीडित, अस्मिन् लोके तत्र-तत्र=सर्व प्राणिषु पृथक्=प्रत्येकं पश्य। आतुराः=विषयसुखतृष्णाव्याकुला अज्ञानिनः अस्मिन् लोके परितापयन्ति=पृथिव्यादिजीवान् परिपीडयन्ति, इति पश्येत्यर्थः।

यद्वा-लोकः-षड्जीवनिकायः, आर्तः=परिपीडितः अस्तीति शेषः। कुतः कारणाद् आर्तः? इत्यत्र आह-'परिजुण्णे' इति। यतः परिजीर्णः=मोक्ष मार्गप्रवृत्त्यक्षमः। कथं परिजीर्णः? इत्यत्र आह-'दुस्संबोहे' इति, यतो दुःसंबोधः प्रव्रजितवद्वरणकरणशिक्षां ग्रहीतुमसमर्थः। दुःसंबोधः कुतोऽस्ती?-त्यत्र आह-यतः-अविज्ञानकः=विज्ञानरहितः, पूर्वभवार्जितघोरतरहिंसादिदुरितकर्म

मानसिक पीड़ा, शारीरिक पीड़ा आदि से पीड़ित इस लोक में जहाँ पृथक्-पृथक् प्राणियों को देखो। वे विषयसुख के लिए व्याकुल एवं ज्ञानहीन हो कर संसार में संताप भोग रहे हैं। वे पृथिवीकाय आदि जीवों को पीड़ा पहुंचाते हैं (यह देखो)।

अथवा-षड्जीवनिकायरूप यह लोक आर्त है-पीड़ा भुगत रहा है। यह किस कारण से आर्त है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि-यह परिजीर्ण अर्थात् मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने में असमर्थ है। यह परिजीर्ण क्यों है? इस का समाधान यह है कि-यह दुःसंबोध है अर्थात् प्रव्रजित की भाँति चरण-करण की शिक्षा ग्रहण करने में अशक्त है। यह दुःसंबोध क्यों है? इस का कारण यह है कि-यह ज्ञानहीन है अर्थात् पूर्वभव में उपार्जन किये हुए घोरतर हिंसा आदि पापकर्मों के वश हो कर एवं अनन्त

માનસિક પીડા શારીરિક પીડા, આદિથી પીડિત આ લોકમાં જ્યાં-ત્યાં જુદા-જુદા પ્રાણીઓને જુઓ, તે વિષયસુખ માટે વ્યાકુલ એવં જ્ઞાનહીન થઈને સંસારમાં સંતાપ ભોગવી રહ્યા છે તે પૃથિવીકાય આદિ જીવોને પીડા પહોંચાડે છે તે જુઓ.

અથવા ષડ્જીવનિકાયરૂપ આ લોક આર્ત્ત છે-પીડા ભોગવી રહ્યા છે તે શું કારણથી આર્ત્ત છે? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કે-તે પરિજીર્ણ અર્થાત્ મોક્ષ માર્ગમાં પ્રવૃત્તિ કરવાને અસમર્થ છે તે પરિજીર્ણ શા માટે છે? તેનું સમાધાન એ છે કે-તે દુઃસંબોધ છે અર્થાત્ પ્રવ્રજિતની પ્રમાણે ચરણ-કરણની શિક્ષા ગ્રહણ કરવામાં અશક્ત છે તે દુઃસંબોધ શા માટે છે? તેનું કારણ એ છે કે-તે જ્ઞાનહીન છે અર્થાત્ પૂર્વ ભવમાં ઉપાર્જન કરેલા ઘોરતર હિંસા આદિ પાપકર્મોને વશ થઈને એમ-એ પ્રમાણે

वशतः प्रगाढमिथ्यात्वमोहनीयोदयात् प्रगाढमोहाक्रान्त इत्यर्थः। एवं स्वकर्मवशतः परिपीडितमपि नितान्तदयनीयमपि रागद्वेषमोहान्धाः परितापयन्तीत्याह–अस्मिन् लोके' इत्यादि। अस्य व्याख्या पूर्ववत् बोध्या।

'पश्य' इति पदेन भागवता मां संबोध्य यथोपदिष्टं तथा कथयामीति जम्बूस्वामिनं श्रीसुधर्मा स्वामी प्रतिबोधयति।

'प्रव्यथिते' इति विशेषणपदं च स्वस्वकर्मणैव नानाविधवेदना-समन्वितानामपि पृथिव्यादिषड्जीवनिकायानां परिपीडने विषयसुखतृष्णाक्रान्ताना-

---

गाढे मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से मोहयुक्त है। इस प्रकार अपने कर्मों से पीडित और अत्यन्त दयनीय पृथ्वीकाय आदि जीवों को राग–द्वेष और मोह से अन्धे पुरुष पीडा पहुचाते हैं। 'अस्मिन् लोके'–(इस लोक में) इत्यादि की व्याख्या पहले के समान समझ लेना चाहिए

'पश्य' (देखो) इस पद से श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते है कि–मुझे सबोधन करके भगवान् ने जैसा उपदेश दिया है वैसा ही मैं कहता हूँ।

'प्रव्यथिते' पद से यह सूचित किया गया है कि–वेचारे षट्काय के जीव अपने–अपने कर्मों के कारण नाना प्रकार की वेदनाएँ भोग ही रहे हैं, इस पर भी विषय–सुख के लोलुप लोग उन्हें और सताते हैं। उन्हें दु खी देख कर भी इनके

અત્યન્ત ગાઢા મિથ્યાત્વમોહનીયના ઉદયથી મોહયુક્ત છે એ પ્રકારે પોતાના કર્મોથી પીડિત અને અત્યન્ત દયાપાત્ર પૃથ્વીકાય આદિ જીવોને રાગ–દ્વેષ અને મોહથી અ ધ થયેલ પુરૂષ પીડા પહોચાડે છે 'अस्मिन् लोके' (આ લોકમા) ઈત્યાદિની વ્યાખ્યા પ્રથમ પ્રમાણે સમજી લેવી જોઈએ

'पश्य' (જુઓ) આ પદથી શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે કે–મને સ બોધન કરીને ભગવાને જેવો ઉપદેશ આપ્યો છે તેવોજ હુ કહુ છુ

'प्रव्यथिते' પદથી એ સૂચિત કરવામા આવે છે કે–બિચારા ષટ્કાયના જીવ પોત–પોતાના કર્મોના કારણે નાના પ્રકારની વેદનાઓ ભોગવીજ રહ્યા છે તે ઉપરાત પણ વિષય–સુખના લોલુપ માણસો તેને વધારે સતાવે છે. તેને દુ ખી જોઈને પણ

मातुराणां हृदयं मनागपि न प्रवर्तते प्रत्युत भगवान् क्षुधितव्याघ्र इव ते पृथिव्यादिप्राणिगणं प्रतिघ्नन्ति, इति सस्पष्टयति ॥ सू १ ॥

अथ षड्जीवनिकायरूपे लोके प्राधान्यात् पृथिवीकायस्याधिकारमाह-' संति पाणा ' इत्यादि ।

मूलम्—

संति पाणा पुढो सिया लज्जमाणा पुढो पास । अणगारामो-त्ति एगे पवयमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू २ ॥

छाया—

सन्ति प्राणाः पृथक् श्रिताः लज्जमानाः पृथक् पश्य । अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिदं विरूपरूपैः शस्त्रैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीशस्त्रं समारम्भमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ २ ॥

मन में दया नहीं आती, प्रत्युत भूखा बाघ जैसे मृगों को मारता है उसी प्रकार विषय-लोलुप लोग इन जीवों की हिंसा करते हैं ॥ सू. १ ॥

षड्जीवनिकायरूप लोक में पृथ्वीकाय प्रधान है, अतः पृथ्वीकाय का अधिकार कहते हैं— ' संति पाणा ' इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथ्वी में अलग-अलग प्राणी हैं । पृथ्वीकाय के आरंभ की निवृत्ति करने वालों (मुनियों) को पृथक् समझो । ' हम अनगार हैं ' इस प्रकार कहनेवाले द्रव्यलिंगी नाना प्रकार के पृथ्वीशस्त्रों से पृथ्वीकर्म का समारम्भ करके पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हुए अनेक प्रकार के अन्य प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ॥ सू २ ॥

તેના મનમાં દયા આવતી નથી, પરન્તુ ભૂખ્યો વાઘ જેમ મૃગોને મારે છે, તે પ્રમાણે વિષય-લાલુપ લોક તે જીવોની હિંસા કરે છે (૧)

ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકમાં પૃથ્વીકાય પ્રથમ છે, તે કારણથી પૃથ્વીકાયનો અધિકાર કહે છે—' संति पाणा ' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—પૃથ્વીમાં અલગ-અલગ પ્રાણી છે. પૃથ્વીકાયના આરંભની નિવૃત્તિ કરવાવાળા (મુનિયો)ને જુદા જાણો. પરન્તુ ' અમે અનગાર-સાધુ મુનિ છીએ. ' આ પ્રકારનું કહેવાવાળા દ્રવ્યલિંગી (વેષ ધારણ કરનારા) નાના-પ્રકારના શસ્ત્રોથી પૃથ્વી કર્મનો સમારંભ કરીને પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરતા થકા અનેક પ્રકારના અન્ય પ્રાણીઓની પણ હિંસા કરે છે (૨)

टीका—

प्राणाः=प्राणाः सन्ति येषामित्यर्थेऽच्प्रत्ययः, प्राणिन इत्यर्थः । पृथक्=भिन्नभिन्नतया श्रिताः=स्वस्वशरीराधिष्ठिताः सन्ति । यद्वा–श्रिताः-पृथिव्याश्रिताः=अङ्गुलासंख्यातभागप्रमाणस्वशरीरावगाहिनः पृथिव्यामवस्थिताः पृथिवीकायिकाः, प्राणाः=जीवाः, पृथक्=पृथग्भावेन सन्ति, इति पश्य । इदमुक्तं भवति–पृथिव्या एकदेवतारूपत्वं मन्यमाना भ्रान्ताः, वस्तुतस्तु प्रत्येकशरीररूपाणामसंख्यात-पृथिवीकायिकजीवानां समुदायः पृथिवी । एवं च पृथिवी सचित्ताऽनेकजीवाधि-ष्ठिता चेति ।

अथ द्वारप्रदर्शनेन वस्तुस्वरूपं सम्यग् निर्णीयते तस्माद् द्वाराणि

टीकार्थ—प्राण का अर्थ है प्राणी । प्राणी पृथक्–पृथक् आश्रित हैं अर्थात् अलग–अलग प्राणी अपने–अपने शरीर में रहते हैं । अथवा 'श्रित' का अर्थ है–पृथ्वी में आश्रित । अगुल के असख्यातवे भाग अवगाहना वाले जीव पृथ्वी–आश्रित हैं, ऐसे पृथ्वीकाय के जीव पृथक्–पृथक् है । यह देखो । तात्पर्य यह है कि पृथ्वी को एक ही देवता मानने वाले लोग भ्रम में हैं । वास्तव में पृथ्वी प्रत्येक शरीर वाले असख्यात पृथ्वीकायिक जीवों का पिंड है । इसी प्रकार पृथ्वी सचित्त है और अनेक जीवों से अधिष्ठित है ।

द्वारों के प्रदर्शन से वस्तु का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, अत यहाँ द्वार

ટીકાર્થ—પ્રાણનો અર્થ પ્રાણી છે પ્રાણી પૃથક્–પૃથક્ આશ્રિત છે, અર્થાત્ અલગ–અલગ પ્રાણી પોત–પોતાના શરીરમાં રહે છે અથવા 'શ્રિત'નો અર્થ છે 'પૃથ્વીમા આશ્રિત' આગલના અસખ્યાતમા ભાગની અવગાહનાવાળા એ જીવ પૃથ્વી–આશ્રિત છે એવા પૃથ્વીકાયના જીવ જૂદા–જૂદા છે તે જુઓ.

તાત્પર્ય એ છે કે —પૃથ્વીને એકજ દેવતા માનવાવાળા લોક ભ્રમમા છે વાસ્ત વિક રીતે તો પૃથ્વી પ્રત્યેક શરીરવાળા અસખ્યાત પૃથ્વીકાયિક જીવોનો પિંડ છે આ પ્રમાણે પૃથ્વી સચિત્ત છે, અને અનેક જીવોથી અધિષ્ઠિત છે

દ્વારોના પ્રદર્શનથી વસ્તુનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ થઈ જાય છે, એટલે અહિં દ્વાર બતા

मदर्श्यन्ते-(१) लक्षणं, (२) प्ररूपणा, (३) परिमाणं, (४) वधः, (५) शस्त्रम्, (६) उपभोगः, (७) वेदना, (८) निवृत्तिश्चेत्यष्टौ। उक्तञ्च—

"लक्खण १ परूवणा २ खलु, परिमाण ३ वह ४ तहेव सत्थं ५ च। उवभोग ६ वेयणावि ७ य, निव्वत्ती ८ अट्ठ दाराई ॥ १ ॥"

(१) लक्षणद्वारम्—

ननु पृथिवी सचेतनाऽस्तीत्यत्र किं प्रमाणम् ? उच्यते—अनुमानमेव तावत्प्रथमं गृहाण। पृथिवी सचेतना तदधिष्ठितशरीरोपलम्भे, गवाश्वादिवत्।

बतलाये जाते हैं—(१) लक्षण (२) प्ररूपणा (३) परिमाण (४) वध (५) शस्त्र, (६) उपभोग (७) वेदना और (८) निवृत्ति। ये आठ द्वार हैं। कहा भी है—

"लक्खण १ परूवणा २ खलु परिमाणं ३ वह ४ तहेव सत्थं च ५। उपभोग ६ वेयणावि ७ य, निव्विची ८ अट्ठ दाराइ ॥ १ ॥" इति।

लक्षण, प्ररूपणा परिणाम, वध, शास्त्र उपभोग वेदना और निवृत्ति, ये आठ द्वार कहे गये हैं। ॥ १ ॥

शङ्का—पृथ्वी सजीव है इस विषयमें क्या प्रमाण है ?

समाधान—पहले अनुमान प्रमाण ही लीजिए—पृथ्वी सचेतन है, क्यों कि उसमें चेतना से अधिष्ठित शरीर की उपलब्धि होती है गाय और अश्व के समान।

બતાવામાં આવે છે કેઃ-(૧) લક્ષણ, (૨) પ્રરૂપણા (૩) પરિમાણ, (૪) વધ (૫) શસ્ત્ર, (૬) ઉપભોગ (૭) વેદના અને (૮) નિવૃત્તિ, આ આઠ દ્વાર છે. કહ્યું પણ છે કે—

"લક્ખણ ૧ પરૂવણા ૨ ખલુ પરિમાણ ૩ વહ ૪ તહેવ સત્થ ચ ૫। ઉવભોગ ૬ વેયણાવિ ૭ ય નિવ્વિત્તી ૮ અટ્ઠ દારાઈ ॥ ૧ ॥" ઇતિ।

"લક્ષણ, પ્રરૂપણા પરિમાણ, વધ શસ્ત્ર, ઉપભોગ વેદના અને નિવૃત્તિ. આ આઠ દ્વાર કહ્યા છે. (૧)

(૧) લક્ષણદ્વાર—

શંકા—પૃથ્વી સજીવ છે એ વિષયમાં શું પ્રમાણ છે?

સમાધાનઃ—પ્રથમ અનુમાન પ્રમાણને લઈએ-પૃથ્વી સચેતન છે કારણ કે તેમાં ચેતનાથી અધિષ્ઠિત શરીરની ઉપલબ્ધિ થાય છે ગાય અને અશ્વની સમાન.

टीका—

प्राणाः=प्राणाः सन्ति येषामित्यर्थेऽच्प्रत्ययः, प्राणिन इत्यर्थः । पृथक्=भिन्नभिन्नतया श्रिताः=स्वस्वशरीराधिष्ठिताः सन्ति । यद्वा–श्रिताः-पृथिव्याश्रिताः=अङ्गुलासंख्यातभागप्रमाणस्वशरीरावगाहिनः पृथिव्यामवस्थिताः पृथिवीकायिकाः, प्राणाः=जीवाः, पृथक्=पृथग्भावेन सन्ति, इति पश्य । इदमुक्तं भवति–पृथिव्या एकदेवतारूपत्वं मन्यमाना भ्रान्ताः, वस्तुतस्तु प्रत्येकशरीररूपाणामसंख्यात-पृथिवीकायिकजीवानां समुदायः पृथिवी । एवं च पृथिवी सचित्ताऽनेकजीवाधिष्ठिता चेति ।

अथ द्वारप्रदर्शनेन वस्तुस्वरूपं सम्यग् निर्णीयते तस्माद् द्वाराणि

टीकार्थ—प्राण का अर्थ है प्राणी । प्राणी पृथक्–पृथक् आश्रित हैं अर्थात् अलग–अलग प्राणी अपने–अपने शरीर में रहते हैं । अथवा 'श्रित' का अर्थ है–पृथ्वी में आश्रित । अगुल के असख्यातवे भाग अवगाहना वाले जीव पृथ्वी–आश्रित हैं, ऐसे पृथ्वीकाय के जीव पृथक्–पृथक हैं । यह देखो । तात्पर्य यह है कि पृथ्वी को एक ही देवता मानने वाले लोग भ्रम में हैं । वास्तव में पृथ्वी प्रत्येक शरीर वाले असख्यात पृथ्वीकायिक जीवों का पिंड है । इसी प्रकार पृथ्वी सचित्त है और अनेक जीवों से अधिष्ठित है ।

द्वारों के प्रदर्शन से वस्तु का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, अत यहाँ द्वार

ટીકાર્થ—પ્રાણનો અર્થ પ્રાણી છે પ્રાણી પૃથક્–પૃથક્ આશ્રિત છે, અર્થાત અલગ–અલગ પ્રાણી પોત–પોતાના શરીરમાં રહે છે અથવા 'શ્રિત'નો અર્થ છે 'પૃથ્વીમા આશ્રિત' આગલના અસખ્યાતમા ભાગની અવગાહનાવાળા એ જીવ પૃથ્વી–આશ્રિત છે એવા પૃથ્વીકાયના જીવ જૂદા–જૂદા છે તે જુઓ

તાત્પર્ય એ છે કે —પૃથ્વીને એકજ દેવતા માનવાવાળા લોક ભ્રમમા છે વાસ્તવિક રીતે તો પૃથ્વી પ્રત્યેક શરીરવાળા અસખ્યાત પૃથ્વીકાયિક જીવોનો પિંડ છે આ પ્રમાણે પૃથ્વી સચિત્ત છે, અને અનેક જીવોથી અધિષ્ઠિત છે

દ્વારોના પ્રદર્શનથી વસ્તુનુ સ્વરૂપ સ્પષ્ટ થઈ જાય છે, એટલે અહિં દ્વાર બતા

कापोततैजसलेश्याचतुष्टयं, सूक्ष्मपृथिवीकायस्याद्यलेश्यात्रयम् । तथा-आहारादिसंज्ञा अपि । तथा-वेदनाकषायमारणान्तिकसमुद्घाताऽसंज्ञित्वं, नपुंसकवेदः। पर्याप्तिचतुष्टयम् । तथा पृथिवीकायजीवा निरन्तरं सततमुच्छ्वसन्ति निःश्वसन्ति च । एवमुपयोगादिश्वासोच्छ्वासान्तजीवलक्षण समन्वितत्वान्मनुष्यवत्पृथिवीसचित्ताऽस्तीति सिद्धम् ।

ननु-उपयोगादीनि जीवलक्षणानि पृथिवीकायजीवेषु कथमिोपलभ्यन्ते, तथा सति-असिद्धेनैव उपयोगादिजीवलक्षणेन कथं पृथिव्याः सचित्तत्वं साध्यते ? ।

उच्यते-पृथिवीकायजीवेषुमासन्नुमुव्यक्तान्युपयोगलक्षणानि, अव्यक्तानि

सूक्ष्म पृथ्वीकाय में आदि की तीन लेश्याएँ हैं। आहार आदि संज्ञाएँ भी उसमें हैं।

पृथ्वी में वेदना कषाय और मारणान्तिक समुद्घात हैं असंज्ञीपन है, नपुंसक वेद है और चार पर्याप्तियाँ भी हैं पृथ्वीकाय के जीव निरन्तर श्वासोच्छ्वास करते रहते हैं। इस प्रकार उपयोग से लगाकर श्वासोच्छ्वास पर्यन्त जीव के लक्षणों से युक्त होने के कारण पृथ्वी मनुष्य के समान सचित्त है, यह बात सिद्ध हुई।

शङ्का-जीव के लक्षण उपयोग वगैरह पृथ्वीकाय के जीवों में कहीं भी उपलब्ध नहीं होते। ऐसी स्थिति में वहाँ उपयोग आदि जीव के लक्षणों का होना असिद्ध है। असिद्ध कथन से पृथ्वी की सचित्तता किस प्रकार सिद्ध हो सकती है ?

समाधान-पृथ्वीकाय के जीवों में भलीभाँति व्यक्त उपयोग आदि लक्षण भले

સૂક્ષ્મપૃથ્વીકાયમાં આદિની ત્રણ લેશ્યાઓ છે. આહાર આદિ સંજ્ઞાઓ પણ તેમાં છે

પૃથ્વીમાં વેદના કષાય અને મારણાન્તિકસમુદ્ઘાત છે અસંજ્ઞીપણું છે નપુંસક વેદ છે અને ચાર પર્યાપ્તિઓ પણ છે પૃથ્વીકાયના જીવ નિરંતર શ્વાસોચ્છ્વાસ લેતા રહે છે આ પ્રમાણે ઉપયોગથી લઈને શ્વાસોચ્છ્વાસ પર્યંત જીવના લક્ષણોથી યુક્ત હોવાથી પૃથ્વી મનુષ્ય પ્રમાણે સચિત્ત છે તે વાત સિદ્ધ થઈ.

શંકા—જીવનું લક્ષણ ઉપયોગ વગેરે પૃથિવીકાયના જીવોમાં કોઈ સ્થળે ઉપલબ્ધ થતાં નથી. એવી સ્થિતિમાં જ્યાં ઉપયોગ આદિ જીવના લક્ષણોનું હોવું તે નક્કી નથી. એ અસિદ્ધ કથનથી પૃથ્વીની સચિત્તતા કેવી રીતે સિદ્ધ થઈ શકે છે ?

સમાધાન—પૃથિવીકાયના જીવોમાં સારી રીતે (સ્પષ્ટ) વ્યક્ત ઉપયોગ આદિ

किञ्च–जीवस्य यानि लक्षणानि तानि पृथिवीकायस्य सन्ति, केवलमत्रस्त्यानर्द्धिनामदर्शनावरणकर्मोदयादुपयोगशक्तिर्ज्ञानदर्शनरूपा नास्ति व्यक्ता इत्यव्यक्तरूपेणोपयोगो वर्त्तते।तथौदारिक–तन्मिश्र–कार्मणशरीरात्मकः काययोगो वृद्धयष्टिवत् तस्यालम्बनाय वर्त्तते। तथा मानसिकचिन्ताविशेषवत्सूक्ष्मा आत्मपरिणामविशेषरूपा अध्यवसायास्तत्र सन्ति। तथा साकारोपयोगान्तर्गतमतिश्रुतरूपमज्ञानद्वयं च तत्रास्ति। तथा स्पर्शनेन्द्रियमात्रस्य सद्भावादचक्षुर्दर्शनं च। तथा सेवार्त्तसंहननं, चन्द्रमसूरसंस्थानं चास्ति। तथा–मिथ्यात्वादिसद्भावादष्टविधकर्मबन्धोऽपि। कृष्णनील-

---

दूसरी बात यह है कि–जीव के जो लक्षण हैं वे सब पृथ्वी में पाये जाते हैं। हां, पृथ्वीकाय में स्त्यानर्द्धिनामक दर्शनावरण कर्म के उदय से ज्ञान–दर्शनरूप उपयोगशक्ति प्रकटरूप में नहीं है। पृथ्वी में अव्यक्तरूप से उपयोग रहता है।

तथा औदारिक औदारिकमिश्र और कार्मण शरीररूप काययोग वृद्धपुरुष की लकडीके समान उस के आलम्बन के लिए विद्यमान है। पृथ्वी में आत्मा के परिणाम मानसिकचिन्तारूप अध्यवसाय भी मौजूद है।

पृथ्वी में साकार–उपयोग के अन्तर्गत मति और श्रत–अज्ञान भी पाये जाते हैं। अकेली स्पर्शनेन्द्रिय होने से अचक्षुदर्शन भी है। और सेवार्त सहनन, एव चन्द्रमसूर सस्थान भी है। मिथ्यात्व आदि कारण विद्यमान होने से आठ प्रकारका कर्मबन्ध होता है। कृष्ण, नील, कापोत और तेजस ये चार लेश्याएँ भी पृथ्वीकाय में हैं।

બીજી વાત આ છે કે–જીવના જે લક્ષણ છે તે સર્વ પૃથ્વીમા જોવામા આવે છે. હા પૃથ્વીકાયમા સ્ત્યાનર્ધિનામક દર્શનાવરણીય કર્મના ઉદયથી જ્ઞાન–દર્શનરૂપ ઉપયોગશક્તિ પ્રકટ રૂપમા નથી પૃથ્વીમા અવ્યકત રૂપમાં ઉપયોગ રહે છે

તથા–ઔદારિક ઔદારિકમિશ્ર અને કાર્મણ શરીરરૂપ કાયયોગ વૃદ્ધપુરૂષની લાકડી સમાન તેના આલબન માટે વિદ્યમાન છે. પૃથ્વીમા આત્માના પરિણામ, માનસિકચિન્તારૂપ અધ્યવસાય પણ મોજુદ છે

પૃથ્વીમા સાકાર ઉપયોગના અન્તર્ગત મતિ અને શ્રુત અજ્ઞાન પણ જોવામા આવે છે એકલી સ્પર્શેન્દ્રિય હોવાથી અચક્ષુદર્શન પણ છે અને સેવાર્ત સહનન, એ પ્રમાણે ચન્દ્ર–મસૂર સસ્થાન પણ છે

મિથ્યાત્વ આદિ કારણ વિદ્યમાન હોવાથી આઠ પ્રકારના કર્મબધ પણ થાય છે કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત, અને તૈજસ આ ચાર લેશ્યાઓ પણ પૃથ્વીકાયમાં છે.

एवं च मनुष्यवद् प्रमस्थानमरणस्यस्य चेतनालक्षणस्य पृथिवीकायेऽपि सत्त्वात्।

यद्वा-पृथिवी सजीवा, दैनिकघर्षणोपचयसंदर्शनात्, चरणतलवत्, तद्यथा-चरणतलं घृष्यते पुष्यति च, तद्वत् पृथिव्यपि प्रत्यहं घृष्यते, उपचीयते च; तस्मात्तस्याः सजीवत्वम्।

अथवा-विद्रुमपाषाणरूपा पृथिवी सचेतना, काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादि दर्शनात्, शरीरस्थितास्थ्यादिवत्। तद्यथा-शरीरस्थितमस्थ्यादिकं कमठपृष्ठकठिन सदपि चित्तवदनुभूयमानमुपचयं च गच्छत् संदृश्यते। एवं विद्रुमशिलापाषाणकायाः

इस प्रकार मनुष्य के समान भाव का मरना भी चेतना का एक लक्षण है, और वह पृथ्वी कायमें विद्यमान है।

अथवा-पृथ्वी सजीव है, क्यों कि उस में प्रतिदिन घिसना और उपचय होना देखा जाता है, पैर के तल की तरह। तात्पर्य यह है कि-जैसे पैर का तलभाग घिसता है और फिर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पृथिवी भी प्रतिदिन घिसती है और भरजाती है। अतः पृथिवी भी सजीव है।

अथवा-मूंगा, पाषाण आदि रूप पृथ्वी सजीव है, क्यों कि उसमें कठिनता होने पर भी वृद्धि आदि देखी जाती है, जैसे शरीर की हड्डी आदि। तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर की हड्डी आदि कछुवे की पीठ की भाँति कठोर होने पर भी सचित्त मालूम होती है और उपचय को प्राप्त होती हुई दिखाई देती है, इसी प्रकार मूंगा-शिला

તે પ્રમાણે મનુષ્યના સમાન ભાવનું મરાઈ જવું તે પણ એક ચેતનાનું લક્ષણ છે અને તે પૃથ્વીકાયમાં વિદ્યમાન છે

અથવા—પૃથિવી સજીવ છે, કારણ કે તેમાં પ્રતિદિન ઘસાવું અને વધવું તે જોવામાં આવે છે પગના તળીઆની પ્રમાણે. તાત્પર્ય એ છે કે-જેમ પગના તળી આનો ભાગ ઘસાય છે અને ફરી પાછા પુષ્ટ થઈ જાય છે તે પ્રમાણે પૃથિવી પણ પ્રતિદિન ઘસાય છે અને ફરી પાછી ભરાઈ જાય છે તેથી પૃથિવી પણ સજીવ છે

અથવા—મુંગા (પરવાળા) પાષાણ આદિરૂપ પૃથ્વી સજીવ છે કેમકે-તેમાં કઠિનતા હોવા છતાંય પણ વૃદ્ધિ વગેરે જોવામાં આવે છે જેવી રીતે શરીરના હાડકાં આદિ. તાત્પર્ય એ છે કે-જેવી રીતે શરીરના હાડકાં આદિ કાચબાની પીઠ જેવા કઠોર હોવા છતાંય પણ સચિત્ત માલૂમ પડે છે, અને વૃદ્ધિને પ્રાપ્ત થતા હોય તેમ દેખાય છે, તે

तु तत्र सन्त्येव, यथा-कस्यचिन्मनुष्यस्य अत्युत्कटमदिरातिपानजनित-पित्तोदयमूर्छितस्य चेतनाया अव्यक्तत्वेऽपि न तस्याचित्तरूपता विज्ञायते, एवं पृथिवीकायजीवेष्वव्यक्तचेतना संभवति ।

न चाव्यक्तचेतनाऽभिव्यञ्जकमुच्छ्वासादिकं मद्यमूर्छितमनुष्यस्य सचित्त-त्वमावेदयति, इह तु न किञ्चिच्चेतनालक्षणं लक्ष्यत इति वाच्यम् ।

यथा मनुष्यशरीरे क्षतस्थान मांसादिरिक्तमपि पश्चात्क्षतादिनिवृत्तौ स्वय भ्रियते, तथैव खनितं खनिभूम्यादिक सजातीयावयवैर्भ्रियमाण दृश्यते।

ही न हों, मगर अव्यक्तरूप में तो विद्यमान है ही । जैसे कोई मनुष्य खूब नसैली मदिराका डँटकर पान कर ले और पित्त के प्रकोप से मूर्च्छित हो जाय तो उसकी भी चेतना अव्यक्त हो जाती है, फिर भी उसे अचित्त (अचेतन) नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार पृथ्वीकाय के जीवों में अव्यक्त चेतना है ।

शङ्का—अव्यक्त चेतना के बोधक उच्छ्वास वगैरह मद्यमूर्च्छित मनुष्य की सचित्तता को प्रकट करते हैं, मगर यहाँ (पृथ्वीमें) तो चेतना का कोई भी लक्षण नहीं दिखाई देता । ऐसी स्थिति में पृथ्वी की सचेतनता किस प्रकार मानी जाय ?

समाधान—जैसे—मनुष्य के शरीर में घाव हो जाता है तो उस स्थान में मास आदि नहीं रहता । पश्चात् घाव मिट जाने पर वह भर जाता है । इसी प्रकार खोदी हुई खान आदि की भूमि अपने सजातीय अवयवों से भरजाती दिखाई देती है ।

લક્ષણ ભલે ન હોય, પરન્તુ અવ્યક્ત રૂપમા તો વિદ્યમાન છેજ જેમ કોઇ મનુષ્ય ખૂબ પેટભરીને ઘણા નીસાવાળી મદિરાનુ પાન કરી લે અને પિત્તના પ્રકોપથી મૂછિત થઈ જાય તો તેની પણ ચેતના અવ્યક્ત થઈ જાય છે, એટલે તેને અચિત્ત કહી શકતા નથી એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયના જીવોમા અવ્યક્ત ચેતના છે

શકા—અવ્યક્ત ચેતનાના બોધક તરીકે ઉચ્છ્વાસ વગેરે મનુષ્યની સચિત્તતાને પ્રગટ કરે છે પરન્તુ અહિં (પૃથ્વીમા) તો ચેતનાનુ કોઈ પણ લક્ષણ જોવામા આવતું નથી એવી સ્થિતિમા પૃથ્વીની સચેતનતા કેવી રીતે માની શકાય ?

સમાધાન—જેવી રીતે મનુષ્યના શરીરમા ઘાવ-ઉડો જખમ થઇ જાય છે તો તે સ્થાનમા માસ આદિ રહેતુ નથી પાછળથી ઘાવ રૂઝાઈ જતા તે માસથી ભરાઈ જાય છે. એ પ્રમાણે ખોદેલી ખાણની ભૂમિ પોતાના સજાતીય અવયવોથી ભરાઈ જાય છે.

एवं च मनुष्यवत् म्लानमरणरूपस्य चेतनालक्षणस्य पृथिवीकायेऽपि सत्त्वात्।

यद्वा-पृथिवी सजीवा, दैनिकघर्षणोपचयसंदर्शनात्, चरणतलवत्, तथाहि-चरणतलं घृष्यते पुष्यति च, तद्वत् पृथिव्यपि प्रत्यहं घृष्यते, उपचीयते च; तस्मात्तस्याः सजीवत्वम्।

अथवा-विद्रुमपाषाणादिरूपा पृथिवी सचेतना, काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादि दर्शनात्, शरीरस्थितास्थ्यादिवत्। तथाहि-शरीरस्थितमस्थ्यादिकं कमठपृष्ठकठिनं सदपि चित्तवदनुभूयमानमुपचयं च गच्छत् संदृश्यते। एवं विद्रुमशिलापाषाणादिकाया

इस प्रकार मनुष्य के समान घाव का मरना भी चेतना का एक लक्षण है, और वह पृथ्वी कायमें विद्यमान है।

अथवा-पृथ्वी सजीव है क्यों कि उस में प्रतिदिन घिसना और उपचय होना देखा जाता है, पैर के तल की तरह। तात्पर्य यह है कि-जैसे पैर का तलभाग घिसता है और फिर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पृथ्वी भी प्रतिदिन घिसती है और भरजाती है। अतः पृथ्वी भी सजीव है।

अथवा-मूंगा पाषाण आदि रूप पृथ्वी सजीव है, क्यों कि उसमें कठिनता होने पर भी वृद्धि आदि देखी जाती है, जैसे शरीर की हड्डी आदि। तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर की हड्डी आदि कछुए की पीठ की भाँति कठोर होने पर भी सचित्त मालूम होती है और उपचय को प्राप्त होती हुई दिखाई देती है, इसी प्रकार मूंगा-शिला

તે પ્રમાણે મનુષ્યના સમાન ઘાવનું ભરાઈ જવું તે પણ એક ચેતનાનું લક્ષણ છે અને તે પૃથ્વીકાયમાં વિદ્યમાન છે

અથવા—પૃથિવી સજીવ છે કારણ કે તેમાં પ્રતિદિન ઘસાવું અને વધવું તે જોવામાં આવે છે પગના તળીઆની પ્રમાણે તાત્પર્ય એ છે કે-જેમ પગના તળી આનો ભાગ ઘસાય છે અને ફરી પાછા પુષ્ટ થઈ જાય છે તે પ્રમાણે પૃથિવી પણ પ્રતિદિન ઘસાય છે અને ફરી પાછી ભરાઈ જાય છે તેથી પૃથિવી પણ સજીવ છે.

અથવા—મુંગા (પરવાળા) પાષાણ આદિરૂપ પૃથ્વી સજીવ છે કેમકે-તેમાં કઠિનતા હોવા છતાંય પણ વૃદ્ધિ વગેરે જોવામાં આવે છે, જેવી રીતે શરીરના હાડકાં આદિ તાત્પર્ય એ છે કે-જેવી રીતે શરીરના હાડકા આદિ કાચબાની પીઠ જેવા કઠોર હોવા છતાંય પણ સચિત્ત માલૂમ પડે છે, અને વૃદ્ધિને પ્રાપ્ત થતા હોય તેમ દેખાય છે તે

पृथिव्याः काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिकं प्रत्यक्षं दृश्यते तस्मात्तस्याः सचेतनत्वम् ।

अथ च-विद्रुमाद्यात्मिका पृथिवी सचित्ता, छेदादौ तत्सजातीयधातूत्पत्ति-दर्शनात्, अर्शोऽङ्कुरवत् । तद्यथा-अर्शसोऽङ्कुरे छिन्नेऽपि पुनस्तत्समान एवाङ्कुरः प्रादुर्भवति, एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः खन्यादौ छेदेऽपि तत्सजातीय-धातुभिस्तद्रिक्तभागः परिपूर्यते, तस्मात् सिद्धं पृथिव्याः सचित्तत्वम् ।

किञ्च - यथा सास्नाविषाणाद्यवयवसंघातानां गोमहिष्यादिशरीराणां छिन्न-भिन्नो-त्क्षिप्त-स्पृष्ट-दृष्ट-द्रव्यत्वेन जीवशरीरत्वं, तथैव पृथिव्यादीनां प्रत्यक्षदृष्टं

आदिरूप पृथ्वी में, कठिनता होने पर वृद्धि आदि प्रत्यक्ष दिखाई देता है। इस कारण पृथिवी सचित्त है।

अथवा-मूँगा आदि पृथ्वी सचित्त है, क्यों कि उसका छेदन होने पर वहा उसी की सजातीय धातु उत्पन्न होती है, अर्श (मस्सा) के अकुर के समान, जैसे अर्श के अकुर एकवार काट देने पर भी फिर वहाँ उसी जाति के अकुर उत्पन्न हो जाते है, उसी प्रकार मूगा-शिला आदि रूप पृथिवी का खान आदि मे छेदन कर देने पर भी उसी की सजातीय धातुओं से यह खाली स्थान भर जाता है, अत पृथिवी की सचित्तता सिद्ध हुई।

और भी लीजिए-जैसे सास्ना (गायके गले में लटकने वाली चमडी) सीग आदि अवयवों का समुदायरूप गाय, भैस आदि के शरीर छिन्न, भिन्न, उत्क्षिप्त, स्पृष्ट, दृष्ट और द्रव्यत्व के कारण जीव के शरीर हैं, इसी प्रकार पृथिवी आदि में प्रत्यक्ष से

પ્રમાણે મૂગા (પરવાળા) શિલા આદિ રૂપ પૃથ્વીમા કઠિનતા હોવા છતાય પણ વૃદ્ધિ આદિ પ્રત્યક્ષ જોવામા આવે છે, આ કારણથી પૃથ્વી સચિત્ત છે

અથવા—મૂગા (પરવાળા) આદિ પૃથ્વી સચિત્ત છે કેમકે—તેનુ છેદન થવાથી ત્યાં તેની સજાતીય ધાતુ, ઉત્પન્ન થાય છે, અર્શ (મસ્સા)ના અકુર પ્રમાણે, જેમ અર્શના અકુર એકવાર કાપી નાખવા છતાય પણ ફરીથી ત્યા તે જાતિના અકુર ઉત્પન્ન થાય છે, તે પ્રમાણે મૂગા—શિલા આદિરૂપ પૃથિવનુ ખાણ આદિમા છેદન કરી દેવા છતાય પણ તેની સજાતીય ધાતુઓથી તે ખાલી સ્થાન ભરાઈ જાય છે, તે કારણથી પૃથ્વીની સચિત્તતા સિદ્ધ થઈ

બીજુ પણ પ્રમાણ લઈએ, જેમ સાસ્ના (ગાયના ગળામા લટકવાવાળી ચામડી) સીગ આદિ અવયવોના સમુદાયરૂપ—ગાય, ભેસ આદિના શરીર છિન્ન, ભિન્ન, ઉત્ક્ષિપ્ત, સ્પૃષ્ટ, દૃષ્ટ, અને દ્રવ્યત્વના કારણથી જીવનુ શરીર છે, તે પ્રમાણે પૃથ્વી આદિમા પ્રત્યક્ષ

छिन्नत्वादिकमपलपितुं न शक्यते, तस्मात्पृथिव्यादीनामपि जीवशरीरत्वं सिद्ध्यति। जीवशरीरत्वेन निरूपितत्वाच्च पृथिव्यादीनामपि करचरणसंघातानामिव कदाचिच्चैतन्यं सिद्ध्यति, न तु सर्वथा शाश्वतिकनिर्जीवत्वं तेषां संभवति, कदाचिद्विचेतस्त्वमपि शस्त्रोपहतत्वादेव भवति करचरणादिवदिति।

पृथिव्याः सचित्ततोऽनेकजीवाधिष्ठितत्वे आगमोऽपि प्रमाणम्। तथाहि—
"पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणएणं" (दश० ४ अ०)

पृथिवी चित्तवती=सजीवा-आख्याता=भगवता कथिता अनेकजीवा=

दिखाई देने वाली छिन्नता आदि का अपलाप नहीं किया जा सकता अतः पृथिवी आदि जीव के शरीर हैं, इस प्रकारका निरूपण करने से हाथ पैर की तरह उन में भी किसी समय चैतन्य का अस्तित्व सिद्ध होता है, उनकी सदैव और सर्वथा निर्जीवता सिद्ध नहीं हो सकती। पृथिवी आदि कदाचित् निर्जीव होती है सो उसका कारण शस्त्र का उपघात है। शस्त्र के प्रयोग से जैसे हाथ-पैर आदि अवयव निर्जीव हो जाते हैं उसी प्रकार पृथ्वी भी निर्जीव हो जाती है।

पृथ्वी सचित्त है और अनेक जीवों से अधिष्ठित है, इस विषय में आगमप्रमाण भी है वह इस प्रकार— पृथ्वी सचित्त कही गई है उसमें अनेक जीव हैं और उन सब की सत्ता पृथक्-पृथक् है,-शस्त्रपरिणत पृथ्वी को छोड़कर" (दश० ४ अ०)

अर्थात्-पृथ्वी सजीव है, ऐसा भगवानने कहा है। उस में अनेक एकेन्द्रिय जीव हैं।

દેખાઈ આવે તેવી છિન્નતા આદિનો અપલાપ (છતી વસ્તુ દેખાય તે ના કહેવી કે નથી દેખાતી) કરી શકાશે નહિ, એ માટે પૃથ્વી આદિ પણ જીવનું શરીર સિદ્ધ થાય છે. પૃથ્વી આદિ જીવનાં શરીર છે. એ પ્રકારનું નિરૂપણ કરવાથી હાથ-પગની પ્રમાણે તેમાં પણ કોઈ સમય ચૈતન્યનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે. તેની હમેશાં અને સર્વથા નિર્જીવતા સિદ્ધ થઈ શકતી નથી. પૃથ્વી આદિ કદાચિત્ નિર્જીવ હોય છે તો તેનું કારણ શસ્ત્રનો ઉપઘાત છે (હથિયારથી કપાવું-ખોદાવું તે છે) શસ્ત્રના પ્રયોગથી જેમ હાથ-પગ અવયવ નિર્જીવ થઈ જાય છે તે પ્રમાણે પૃથ્વી પણ નિર્જીવ થઈ જાય છે.

પૃથ્વી સચિત્ત છે અને અનેક જીવોથી અધિષ્ઠિત છે આ વિષયમાં આગમ પ્રમાણ પણ છે તે આ પ્રમાણે—

પૃથ્વી સચિત્ત કહેવામાં આવી છે તેમાં અનેક જીવ છે અને તે સવની સત્તા પૃથક્-પૃથક્ છે, શસ્ત્રપરિણત પૃથ્વીને છોડીને. (દશવૈકાલિક ૪-અ)

અર્થાત્—પૃથ્વી સજીવ છે, એવું ભગવાને કહ્યું છે. તેમાં અનેક એકેન્દ્રિય જીવ છે

पृथिव्याः काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिकं प्रत्यक्षं दृश्यते तस्मात्तस्याः सचेतनत्वम् ।

अथ च-विद्रुमाद्यात्मिका पृथिवी सचित्ता, छेदादौ तत्सजातीयधातूत्पत्तिदर्शनात्, अर्शोऽङ्कुरवत् । तद्यथा-अर्शसोऽङ्कुरे छिन्नेऽपि पुनस्तत्समान एवाङ्कुरः प्रादुर्भवति, एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः खन्यादौ छेदेऽपि तत्सजातीयधातुभिस्तद्रिक्तभागः परिपूर्यते, तस्मात् सिद्धं पृथिव्याः सचित्तत्वम् ।

किञ्च - यथा सास्नाविषाणाद्यवयवसंघातानां गोमहिष्यादिशरीराणां छिन्न-भिन्नो-त्क्षिप्त-स्पृष्ट-दृष्ट-द्रव्यत्वेन जीवशरीरत्वं, तथैव पृथिव्यादीनां प्रत्यक्षदृष्टं

आदिरूप पृथ्वी में, कठिनता होने पर वृद्धि आदि प्रत्यक्ष दिखाई देता है । इस कारण पृथिवी सचित्त है ।

अथवा-मूँगा आदि पृथ्वी सचित्त है, क्यों कि उसका छेदन होने पर वहां उसी की सजातीय धातु उत्पन्न होती है, अर्श (मस्सा) के अकुर के समान, जैसे अर्श के अकुर एकवार काट देने पर भी फिर वहाँ उसी जाति के अकुर उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार मूगा-शिला आदि रूप पृथिवी का खान आदि में छेदन कर देने पर भी उसी की सजातीय धातुओं से यह खाली स्थान भर जाता है, अत पृथिवी की सचित्तता सिद्ध हुई ।

और भी लीजिए-जैसे सास्ना (गायके गले में लटकने वाली चमडी) सींग आदि अवयवों का समुदायरूप गाय, भैंस आदि के शरीर छिन्न, भिन्न, उत्क्षिप्त, स्पृष्ट, दृष्ट और द्रव्यत्व के कारण जीव के शरीर हैं, इसी प्रकार पृथिवी आदि में प्रत्यक्ष से

પ્રમાણે મૂગા (પરવાળા) શિલા આદિ રૂપ પૃથ્વીમા કઠિનતા હોવા છતાંય પણ વૃદ્ધિ આદિ પ્રત્યક્ષ જોવામા આવે છે, આ કારણથી પૃથ્વી સચિત્ત છે

અથવા—મૂગા (પરવાળા) આદિ પૃથ્વી સચિત્ત છે કેમકે—તેનુ છેદન થવાથી ત્યાં તેની સજાતીય ધાતુ, ઉત્પન્ન થાય છે, અર્શ (મસ્સા)ના અકુર પ્રમાણે, જેમ અર્શના અકુર એકવાર કાપી નાંખવા છતાય પણ ફરીથી ત્યા તે જાતિનો અકુર ઉત્પન્ન થાય છે, તે પ્રમાણે મૂગા-શિલા આદિરૂપ પૃથ્વિનુ ખાણ આદિમા છેદન કરી દેવા છતાય પણ તેની સજાતીય ધાતુઓથી તે ખાલી સ્થાન ભરાઈ જાય છે, તે કારણથી પૃથ્વીની સચિત્તતા સિદ્ધ થઈ

બીજુ પણ પ્રમાણ લઈએ, જેમ સાસ્ના (ગાયના ગળામા લટકવાવાળી ચામડી) સીગ આદિ અવયવોના સમુદાયરૂપ-ગાય, ભેસ આદિના શરીર છિન્ન, ભિન્ન, ઉત્ક્ષિપ્ત, સ્પૃષ્ટ, દૃષ્ટ, અને દ્રવ્યત્વના કારણથી જીવનુ શરીર છે, તે પ્રમાણે પૃથ્વી આદિમા પ્રત્યક્ષ

भेदात्। तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकायपरकायतदुभयलक्षणम्। तत्र स्वकायशस्त्रं पृथिव्याः पृथिव्येव यथा—कृष्णमृत्तिकायाः शुक्लमृत्तिकेत्यादि। परकायशस्त्रं जलाग्निगोमयचरणशकटचक्रादि। उभयकायशस्त्रं जलादिमिश्रमृत्तिका। एवं च शस्त्रपरिणतायाः पृथिव्या अचित्ततया न तत्रोच्चारप्रस्रवणादिक्रियया मुनीनामहिंसाव्रतक्षतिः।

(२) प्ररूपणाद्वारम्—

पृथिवीजीवा द्विविधाः सूक्ष्मबादरभेदात्। सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्माः, बादरनामकर्मोदयाद् बादराः, न तु बदरामलकवदापेक्षिकं सूक्ष्मत्वं बादरत्वं च।

के लिए शस्त्र है। शस्त्र के दो भेद हैं—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र। स्वकाय परकाय और उभयकायरूप द्रव्य—शस्त्र है। पृथ्वी का शस्त्र पृथ्वी-स्वकायशस्त्र है जैसे काली मिट्टी का शस्त्र सफेद मिट्टी है। परकायशस्त्र जैसे—जल, अग्नि गोबर चरण (पग) शकट (गाड़ी) का पैया आदि। जल आदि से मिली हुई मृत्तिका उभयकायशस्त्र है। इस प्रकार शस्त्र से परिणत पृथ्वी अचित्त हो जाती है, अतः एव उस पर मल-मूत्र आदि त्यागने वाले मुनियों के अहिंसाव्रत में कोई क्षति नहीं पहुँचती।

(२) प्ररूपणा-द्वार—

पृथ्वी के सूक्ष्म और बादर के भेदसे दो प्रकार हैं। सूक्ष्मनामकर्म के उदय से सूक्ष्म और बादरनामकर्म के उदय से बादर होते हैं। यहाँ सूक्ष्मता और बादरता बेर और आँवले की तरह सापेक्ष नहीं समझनी चाहिए।

શસ્ત્રના બે ભેદ છે દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્ર, સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાયરૂપ દ્રવ્યશસ્ત્ર છે પૃથ્વીનું શસ્ત્ર પૃથ્વી સ્વકાય-શસ્ત્ર છે જેમ કાળી માટીનું શસ્ત્ર સફેદ માટી છે પરકાય-શસ્ત્ર જેમકે જલ, અગ્નિ છાણ, પગ ગાડીનું પૈડું આદિ જલ-પાણી આદિથી મળેલી માટી ઉભયકાય-શસ્ત્ર છે. આ પ્રમાણે શસ્ત્રથી પરિણત પૃથ્વી અચિત્ત થઈ જાય છે. એટલા માટે તેના પર મળ-મૂત્રાદિ ત્યાગ કરવાવાળા મુનિઓના અહિંસાવ્રતમાં કોઈ હાનિ પહોંચતી નથી.

(૨) પ્રરૂપણાદ્વાર—

પૃથ્વીકાયના જીવ સૂક્ષ્મ અને બાદરના ભેદથી બે પ્રકારના છે સૂક્ષ્મનામકર્મના ઉદયથી સૂક્ષ્મ અને બાદરનામકર્મના ઉદયથી બાદર થાય છે અહિં સૂક્ષ્મતા અને બાદરતા. બોર અને આંબળાની પ્રમાણે સાપેક્ષ સમજવી નહિ જોઈએ.

अनेके=बहवो जीवा एकेन्द्रिया यस्यां सा तथोक्ता, पृथक्सत्त्वा=पृथक् पृथग्भूता अङ्गुलासंख्येयभागमात्रशरीरावगाहनामाश्रित्य विभिन्नरूपेण स्थिताः सत्त्वाः= स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा यस्या सा तथोक्ता 'आख्याता' इति पूर्वोक्तेन संबन्धः।

ननु तर्हि तथाभूतायां सचित्तायां पृथिव्या गमनागमनादिक्रियां कुर्वतां संयतानामहिंसाव्रतस्य संरक्षणं कथं भवति प्रत्युतावश्यकरणीयोच्चार-प्रस्रवणादिक्रियया हिंसैव भवति, तस्मादहिंसाव्रतपालनं वन्ध्यापुत्रपालनवद-संभवम् ?—इत्यत आह—'अन्नत्थ सत्थपरिणएण' इति, शस्त्रपरिणताया अन्यत्र, शस्त्रपरिणता पृथिवीं वर्जयित्वाऽन्या पृथिवी सजीवा। शस्यते=हिंस्यते प्राणिगणोऽनेनेति शस्त्रं। यद् यस्य विनाशकारणं तत्तस्य शस्त्रमित्यर्थः। तत् द्विविधं द्रव्यभाव-

---

वे सब जीव अंगुल के असंख्यातवें भागकी शरीर—अवगाहनावाले भिन्न-भिन्न रूप में स्थित हैं। यहाँ सत्त्व का अर्थ एकेन्द्रिय जीव समझना चाहिए।

शङ्का—पृथ्वी अगर सचित्त है तो सचित्त पृथ्वी पर गमन—आगमन आदि क्रिया करने वाले साधुओं का अहिंसाव्रत कैसे स्थिर रह सकता है? प्रत्युत मल—मूत्र आदि का त्याग अनिवार्य है और इस से हिंसा होना भी अनिवार्य है। एसी स्थिति में अहिंसा का पालन करना वंध्या—पुत्र का पालन करने के समान असंभव है।

समाधान—शास्त्र में कहा है—'अन्नत्थ सत्थपरिणएणं' अर्थात् शस्त्र-परिणत पृथ्वी को छोडकर दूसरी पृथ्वी सचित्त है। जिस के द्वारा प्राणिगण का हनन हो उसे शस्त्र कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जो जिस के विनाश का कारण है, वह उस

તે સર્વ જીવ અંગુલના અસંખ્યાતમા ભાગની શરીર—અવગાહનાવાળા ભિન્ન-ભિન્ન રૂપમાં સ્થિત છે અહિં સત્ત્વનો અર્થ એકેન્દ્રિય જીવ સમજવો જોઈએ.

શંકા—પૃથિવી અગર સચિત્ત છે તો સચિત્ત પૃથ્વી પર જવા આવવાની ક્રિયા કરવાવાળા સાધુઓનું અહિંસાવ્રત સ્થિર કેવી રીતે રહી સકે છે? ઉલટું મલ-મૂત્ર આદિનો ત્યાગ અનિવાર્ય છે, તેથી હિંસા થવી પણ અનિવાર્ય છે એવી સ્થિતિમાં અહિંસાનું પાલન કરવું તે વંધ્યાપુત્રના પાલન કરવા સમાન અસંભવ છે

સમાધાન—શાસ્ત્રમાં કહ્યું છે કે—'अन्नत्थ सत्थपरिणएण' અર્થાત્ શસ્ત્ર-પરિણત પૃથ્વીને ત્યજી બીજી પૃથ્વી સચિત્ત છે જેના દ્વારા પ્રાણિગણનું હનન (નાશ) થાય તેને શસ્ત્ર કહે છે. તાત્પર્ય એ છે કે—જે જેના વિનાશનું કારણ છે તે તેના માટે શસ્ત્ર છે

भेदात्। तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकायपरकायतदुभयलक्षणम्। तत्र स्वकायशस्त्रं पृथिव्याः पृथिव्येव यथा–कृष्णमृत्तिकायाः शुक्लमृत्तिकेत्यादि। परकायशस्त्रं जलाग्निगोमयचरणशकटचक्रादि। उभयकायशस्त्रं जलादिमिश्रमृत्तिका। एवं च शस्त्रपरिणतायाः पृथिव्या अचित्ततया न तत्रोच्चारमलक्षपणादिक्रियया मुनीनामहिंसाव्रतक्षतिः।

(२) प्ररूपणाद्वारम्–

पृथिवीजीवा द्विविधाः सूक्ष्मबादरभेदात्। सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्माः, बादरनामकर्मोदयाद् बादराः, न तु बदरामलकवदापेक्षिकं सूक्ष्मत्वं बादरत्वं च।

के लिए शस्त्र है। शस्त्र के दो भेद हैं–द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र। स्वकाय परकाय और उभयकायरूप द्रव्य-शस्त्र है। पृथ्वी का शस्त्र पृथ्वी-स्वकायशस्त्र है जैसे काली मिट्टी का शस्त्र सफेद मिट्टी है। परकायशस्त्र जैसे–जल, अग्नि, गोबर, चरण (पग) शकट (गाड़ी) का पैया आदि। जल आदि से मिली हुई मृत्तिका उभयकायशस्त्र है। इस प्रकार शस्त्र से परिणत पृथ्वी अचित्त हो जाती है, अत एव उस पर मल-मूत्र आदि त्यागने वाले मुनियों के अहिंसाव्रत में कोई क्षति नहीं पहुँचती।

(२) प्ररूपणा-द्वार–

पृथ्वी के सूक्ष्म और बादर के भेदसे दो प्रकार हैं। सूक्ष्मनामकर्म के उदय से सूक्ष्म और बादरनामकर्म के उदय से बादर होते हैं। यहाँ सूक्ष्मता और बादरता बेर और आमले की तरह सापेक्ष नहीं समझनी चाहिए।

શસ્ત્રના બે ભેદ છે દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્ર, સ્વકાય પરકાય અને ઉભયકાયરૂપ દ્રવ્યશસ્ત્ર છે. પૃથ્વીનું શસ્ત્ર પૃથ્વી સ્વકાય-શસ્ત્ર છે જેમ કાળી માટીનું શસ્ત્ર સફેદ માટી છે પરકાય-શસ્ત્ર જેમકે જળ, અગ્નિ છાણ, પગ ગાડીનું પૈડું આદિ જળ-પાણી આદિથી મળેલી માટી ઉભયકાય-શસ્ત્ર છે. આ પ્રમાણે શસ્ત્રથી પરિણત પૃથ્વી અચિત્ત થઈ જાય છે. એટલા માટે તેના પર મળ-મૂત્રાદિ ત્યાગ કરવાવાળા મુનિ-ઓના અહિંસાવ્રતમાં કોઈ હાનિ પહોંચતી નથી.

(૨) પ્રરૂપણાદ્વાર—

પૃથ્વીકાયના જીવ સૂક્ષ્મ અને બાદરના ભેદથી બે પ્રકારના છે. સૂક્ષ્મનામકર્મના ઉદયથી સૂક્ષ્મ અને બાદરનામકર્મના ઉદયથી બાદર થાય છે અહિં સૂક્ષ્મતા અને બાદરતા બોર અને આંબળાની પ્રમાણે સાપેક્ષ સમજવી નહિ જોઈએ.

तत्र सूक्ष्माः द्विविधाः-पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, ते कज्जलकूपिकावत् सर्वलोकव्यापिनः ।

बादरा अपि द्विधा-पर्याप्तापर्याप्तभेदात् । तत्र बादराः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च लोकस्यैकदेशे पृथिव्यष्टकाधोऽधःपाताल-भवन-नकरप्रस्तरादौ सन्ति । ते विद्विधाः श्लक्ष्ण-खरभेदात् । तत्र श्लक्ष्णा बादरपृथिवी सप्तधाकृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्ल-पण्डु-पनकभेदात् । खरबादरपृथिव्यास्तु चत्वारिंशद् (४०) भेदाः, तथाहि—

(१)शुद्धपृथिवी, (२)शर्करापृथिवी, (३)बालुकापृथिवी, (४)उपल, (५)शिला, (६)लवणः,(७)ऊषः (८)अयः, (९)ताम्रः, (१०)त्रपुः, (११)सीसकम्, (१२)रूप्यम्, (१३)सुवर्णम्, (१४)वज्रः, (१५)हरितालः (१६)हिङ्गुलकः, (१७)मनःशिला,

---

सूक्ष्म जीव भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । ये जीव काजल की कुप्पी के समान सम्पूर्ण लोक में भरे हुए हैं ।

बादर भी पर्याप्त और अपर्याप्त—दो प्रकार के है । ये जीव लोक के एक देश में हैं । इन के दो भेद हैं—श्लक्ष्ण और खर । श्लक्ष्णबादरपृथ्वी के सात भेद हैं—कृष्ण नील लोहित (लाल) पीत शुक्ल पाण्डु और पनक खरबादर पृथ्वी के चालीस भेद हैं, वे इस प्रकार—

(१) शुद्ध-पृथिवी, (२) शर्करा-पृथिवी, (३) बालुका-पृथिवी, (४) उपल, (५) शिला, (६) लवण-नमक, (७) ऊष-क्षार, (८) लोहा, (९) तांबा, (१०) रागा, (११) सीसा, (१२) चादी, (१३) सोना, (१४) वज्र, (१५) हरिताल, (१६) हींगळ,

---

સૂક્ષ્મ જીવ પણ બે પ્રકારના છે પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત-જીવ કાજળની કુપ્પીના સમાન સપૂર્ણ લોકમા ભરેલા છે

બાદર પણ પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત એમ બે પ્રકારના છે એ જીવ લોકના એક દેશમા છે તેના બે ભેદ છે શ્લક્ષ્ણ અને ખર, શ્લક્ષ્ણ બાદર પૃથ્વીના સાત ભેદ છે કૃષ્ણ, નીલ, લોહિત (લાલ) પીત, શુકલ, પાડુ અને પનક ખર-બાદર પૃથ્વીના ચાલીસ ભેદ છે-તે આ પ્રમાણે છે —

(૧) શુદ્ધ પૃથિવી, (૨) શર્કરા પૃથિવી, (૩) વાલુકા પૃથિવી, (૪) ઉપલ, (૫) શિલા, (૬) લવણ-નમક, (૭) ઉષ-ક્ષાર, (૮) લોહા, (૯) ત્રાબા, (૧૦) રાગા-કલાઈ, (૧૧) સીસા, (૧૨) ચાદી, (૧૩) સોના, (૧૪) વજ્ર, (૧૫) હરતાલ, (૧૬) હીગુલ,

(१८) सस्यका-पारद, स्वनामख्यातो रत्नविशेषश्च, (१९) अञ्जनं, (२०) प्रवालम्, (२१)अभ्रपटलम्, (२२)अभ्रवालुका (अभ्रकचूर्णम्,) (२३)गोमेदकः, (२४)रुचकः, (२५)अङ्कः, (२६)स्फटिकः, (२७)लोहिताक्षः, (२८)मरकतः, (२९)मसारगल्लः, (३०)भुजमोचकः, (३१)इन्द्रनीलः, (३२)चन्दनम्, (३३) गैरिकम्, (३४)हंसगर्भः, (३५)पुलकः, (३६)सौगन्धिकः, (३७)चन्द्रप्रभः, (३८)वैडूर्यम्, (३९)जलकान्तः, (४०)सूर्यकान्तः। एते च शुद्धपृथिव्यादयः पृथिवीकायिकाः स्वाकरादौ सचित्ता भवन्ति।

गोमय-कचवर-सवितृतापादिसंपर्कात्तु गतचेतना अपि भवन्ति। बादरपृथिव्या यत्रैको जीवस्तत्राऽसंख्यातैर्नियमतो भाव्यम्।

एवमप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिष्वपि विज्ञेयम्। निगोदे तु यत्रैको

---

(१७) मैनसिल (१८) सस्यक-पारा अथवा रत्नविशेष, (१९) अञ्जन,(२०) प्रवाल (२१) अभ्रपटल, (२२) अभ्रवालुका (अभ्रकचूर्ण), (२३) गोमेद,(२४) रुचक,(२५) अंकरत्न,(२६) स्फटिक, (२७) लोहिताक्ष, (२८)मरकत, (२९) मसारगल्ल,(३०) भुजमोचक,(३१) इन्द्रनील, (३२) चंदन (३३) गेरू, (३४) हंसगर्भ, (३५) पुलक, (३६)सौगंधिक, (३७) चन्द्रप्रभ-चन्द्रकान्त, (३८) वैडूर्य, (३९)जलकान्त, (४०) सूर्यकान्त। ये शुद्ध पृथिवी आदि चालीस जब अपने आकर (खान) में रहते हैं तो सचित्त होते हैं। गोबर कचरा सूरज की धूप आदि के संपर्क से अचेतन हो जाते हैं। जहां बादरपृथ्वीकाय का एक जीव होता है वहाँ असंख्यात जीव नियम से होते हैं।

इसी प्रकार अप्, तेज वायु, और प्रत्येकवनस्पति में भी समझना चाहिए।

---

(१७) मनशील, (१८) पारो, (१९) सुरमो, (२४) रुचक, (२५) अंक-रत्न, (२६) स्फटिक, (२७) लोहिताक्ष, (२८) मरकत, (२९) मसारगल्ल, (३) भुजमोचक (३१) इन्द्रनील, (३२) चन्दन, (३३) गेरू, (३४) हंसगर्भ (३५) पुलक (३६) सौगंधिक (३६) चन्द्रप्रभ-चन्द्रकान्त, (३८) वैडूर्य (३९) जलकान्त, (४) सूर्यकान्त. आ शुद्ध पृथ्वी आदि चालीस ज्यारे पोतानां आकर-खाणमां रहे छे तो सचित्त होय छे छाणु, कचरा, सूरजनो तडको वगेरेना संपर्कथी ते अचेतन थई जाय छे. ज्यां बादर पृथ्वीकायनो एक जीव होय छे त्यां असंख्यात जीव नियमथी होय छे

एवी प्रकारे अप्, तेज, वायु अने प्रत्येकवनस्पतिमां पण समजवुं जोईए.

निगोदजीवस्तत्र नियमतोऽनन्ताः ।

बादराणां सूक्ष्माणा च पृथिवीकायानामेते वक्ष्यमाणा भेदाः सन्ति, तत्रोभयोः पर्याप्तापर्याप्तभेदः प्रागुक्तः, अन्ये भेदा उच्यन्ते–शरीरत्रया–ऽङ्गुलासंख्येयभागशरीर—सेवार्त्तसंहनन–मसूरचन्द्रसंस्थान—कषायचतुष्क–सञ्ज्ञाचतुष्का–ऽऽद्यलेश्यात्रय–स्पर्शनेन्द्रिय–वेदनाकषायमारणान्तिकसमुद्धाता–ऽसञ्ज्ञित्व – नपुंसकवेद–पर्याप्तिचतुष्टय– मिथ्यादर्शना–ऽचक्षुदर्शना– ऽज्ञान–काययोग–साकारानाकारोपयोगाऽऽहारादिप्रभृतयः । तत्र विशेषस्तु बादरपृथिवीकायानां लेश्या आद्याश्चतस्रः, शेषं सर्वं समानम् । असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये ।

निगोद में जहाँ एक जीव होता है वहाँ नियम से अनन्त जीव होते है ।

बादर और सूक्ष्म पृथिवीकायों के भेद इस प्रकार हैं–दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद पहले कहे जा चुके हैं । अब अन्य भेद कहते हैं–तीन शरीर, अंगुलका असंख्यातवा भाग शरीर, सेवार्त सहनन, मसूरचन्द्रसस्थान, चार कषाय, चार सज्ञाएँ, प्रारभ की तीन लेश्याएँ, स्पर्शनेन्द्रिय, वेदना कषाय और मारणान्तिक समुद्धात, असज्ञीपन, नपुसकवेद, चार पर्याप्तियाँ, मिथ्यादर्शन, अचक्षुदर्शन तीन अज्ञान, काययोग, साकार तथा अनाकार उपयोग, आहार आदि । इन में विशेषता इतनी ही है कि बादरपृथिवीकाय में पहले की चार लेश्याएँ होती हैं । शेष सब बोल समान हैं । दोनों ही असख्यात–असख्यात हैं ।

નિગોદમા જ્યા એક જીવ હોય છે ત્યા નિયમથી અનન્ત જીવ હોય છે

બાદર અને સૂક્ષ્મ પૃથિવીકાયોના ભેદ આ પ્રમાણે છે—બન્નેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત બેઉ ભેદ પ્રથમ કહેવામા આવ્યા છે હવે બીજા ભેદ કહે છે–ત્રણ શરીર, અગુલના અસખ્યાતમા ભાગ શરીર, સેવાર્ત્ત સહનન, મસૂર–ચન્દ્ર સસ્થાન, ચાર કષાય, ચાર સજ્ઞાઓ, પ્રારભની ત્રણ લેશ્યાઓ, સ્પર્શ ઇન્દ્રિય, વેદના કષાય, અને મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત, અસજ્ઞીપણુ, નપુસકવેદ, ચાર પર્યાપ્તિઓ, મિથ્યાદર્શન, અચક્ષુદર્શન, ત્રણ અજ્ઞાન, કાયયોગ, સાકાર તથા અનાકાર ઉપયોગ, આહાર આદિ. તેમા વિશેષતા એટલી જ છે કે–બાદર પૃથિવીકાયમા પ્રથમની ચાર લેશ્યાઓ હોય છે, બાકી તમામ બોલ સમાન છે બન્ને જ અસખ્યાત–અસખ્યાત છે

(३) परिमाणद्वारम्—

बादरपर्याप्ताः पृथिवीकायजीवाः सर्वतः स्तोकाः। तदपेक्षया बादराऽपर्याप्ताः असंख्येयगुणाः। तदपेक्षया सूक्ष्माऽपर्याप्ता असंख्येयगुणाः। तदपेक्षया सूक्ष्मपर्याप्ता असंख्येयगुणाः। यदि बदरीधान्यकणप्रमाणपृथिव्यंशाश्रया जीवा एकैकं बहिर्निर्गत्य पृथक्-पृथक् कपोतमितं कायं कुर्युस्तर्हि तेषां लक्षयोजनममाणजम्बूद्वीपे समावेशोऽपि न संभवति।

ननु बदरीधान्यकणमात्रे पृथिव्यंशे कथमियन्तो जीवास्तिष्ठन्ति? इति चेत् उच्यते—यथा सहस्रौषधिसंमिश्रणनिष्पन्नसहस्रपाकतैलस्याल्पीयसि

(३) परिमाणद्वार–

पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय के जीव सब से थोड़े हैं। उन की अपेक्षा बादर अपर्याप्त असंख्यात गुना अधिक है। उन से सूक्ष्म अपर्याप्त असंख्येय गुणा है। उन से सूक्ष्म पर्याप्त असंख्यात गुणा है। अगर ज्वार नामक धान्य के कण के बराबर पृथ्वी के अंश में रहने वाले जीव एक-एक करके बाहर निकल जाएँ और वे सब अपना शरीर कबूतर के शरीर के बराबर बनालें तो एक लाख योजन विस्तार वाले जम्बूद्वीप में उनका समावेश नहीं हो सकता।

शङ्का—ज्वार के एक दाने के बराबर पृथिवी के अंश में इतने अधिक जीव किस प्रकार रह सकते हैं?

समाधान—जैसे हजार औषधों के सम्मिश्रण से बने हुए सहस्र-पाक तैल के

(૩) પરિમાણદ્વાર–

પર્યાપ્ત બાદર પૃથ્વીકાયના જીવ સૌથી થોડા છે તેની અપેક્ષા બાદર અપર્યાપ્ત અસંખ્યાત ગણા અધિક છે. તેનાથી સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત અસંખ્યાત ગણા છે તેનાથી સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત અસંખ્યાત ગણા છે. અગર જુવાર નામના ધાન્યના કણની બરાબર પૃથ્વીમાં રહેવાવાળા જીવ એક-એક થઈને બહાર નિકળે અને તે સર્વ પોતાનું શરીર કબૂતર-પારેવાનાં શરીર બરાબર બનાવી લીએ તો એક લાખ યોજનના વિસ્તારવાળા જમ્બૂ દ્વીપમાં તેનો સમાવેશ થઈ શકે નહિ.

શંકા—જુવારના એક દાણાની બરાબર પૃથિવીમાં એટલા અધિક જીવ કેવી રીતે રહી શકે છે?

સમાધાન—જેવી રીતે હજાર ઔષધીના સંમિશ્રણથી બનેલા સહસ્ર-પાક તેલના

निगोदजीवस्तत्र नियमतोऽनन्ताः ।

वादराणां सूक्ष्माणां च पृथिवीकायानामेते वक्ष्यमाणा भेदाः सन्ति, तत्रोभयोः पर्याप्तापर्याप्तभेदः प्रागुक्तः, अन्ये भेदा उच्यन्ते–शरीरत्रया–ऽङ्गुला-संख्येयभागशरीर—सेवार्त्तसंहनन–मसूरचन्द्रसंस्थान—कपायचतुष्क–सञ्ज्ञाचतुष्का-ऽऽद्यलेश्यात्रय–स्पर्शनेन्द्रिय–वेदनाकपायमारणान्तिकसमुद्घाता–ऽसञ्ज्ञित्व – नपुंसक-वेद–पर्याप्तिचतुष्टय– मिथ्यादर्शना–ऽचक्षुदर्शना– ऽज्ञान–काययोग–साकारानाकारो-पयोगाऽऽहारादिप्रभृतयः । तत्र विशेषस्तु वादरपृथिवीकायानां लेश्या आद्याश्चतस्रः, शेषं सर्वं समानम् । असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये ।

निगोद में जहाँ एक जीव होता है वहाँ नियम से अनन्त जीव होते है ।

बादर और सूक्ष्म पृथिवीकायों के भेद इस प्रकार हैं–दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद पहले कहे जा चुके हैं । अब अन्य भेद कहते हैं–तीन शरीर, अगुलका असंख्यातवा भाग शरीर, सेवार्त सहनन, मसूरचन्द्रसस्थान, चार कपाय, चार सज्ञाएँ, प्रारभ की तीन लेश्याएँ, स्पर्शनेन्द्रिय, वेदना कषाय और मारणान्तिक समुद्घात, असज्ञीपन, नपुसकवेद, चार पर्याप्तियाँ, मिथ्यादर्शन, अचक्षुदर्शन तीन अज्ञान, काययोग, साकार तथा अनाकार उपयोग, आहार आदि । इन में विशेषता इतनी ही है कि बादरपृथिवी-काय में पहले की चार लेश्याएँ होती हैं । शेष सब बोल समान हैं । दोनों ही असख्यात-असंख्यात हैं ।

નિગોદમા જ્યા એક જીવ હોય છે ત્યા નિયમથી અનન્ત જીવ હોય છે

બાદર અને સૂક્ષ્મ પૃથિવીકાયોના ભેદ આ પ્રમાણે છે—બન્નેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત બેઉ ભેદ પ્રથમ કહેવામા આવ્યા છે હવે બીજા ભેદ કહે છે-ત્રણ શરીર, અગુલના અસખ્યાતમા ભાગ શરીર, સેવાર્ત્ત સહનન, મસૂર–ચન્દ્ર સસ્થાન, ચાર કષાય, ચાર સજ્ઞાઓ, પ્રારભની ત્રણ લેશ્યાઓ, સ્પર્શ ઇન્દ્રિય, વેદના કષાય, અને મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત, અસજ્ઞીપણુ, નપુસકવેદ, ચાર પર્યાપ્તિઓ, મિથ્યાદર્શન, અચક્ષુદર્શન, ત્રણ અજ્ઞાન, કાયયોગ, સાકાર તથા અનાકાર ઉપયોગ, આહાર આદિ તેમા વિશેષતા એટલી જ છે કે–બાદર પૃથિવીકાયમા પ્રથમની ચાર લેશ્યાઓ હોય છે, બાકી તમામ બોલ સમાન છે બન્ને જ અસખ્યાત–અસખ્યાત છે

ये पृथिवीकायहिंसायां लज्जमानास्ते-अनगाराः, ये तु तत्र प्रवृत्तास्ते द्रव्यलिङ्गिनः, इति बोधयितुमाह-' लज्जमाणा ' इत्यादि।

एके=अन्ये, लज्जमानाः=पृथिवीकायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितहृदयतया सङ्कोचमापद्यमानाः पृथक्=केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधि-मनःपर्यय-केवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति, पृथक्-पश्य।

इमे सूक्ष्मबादरपृथिवीकायारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैः पृथिवीकायारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते इत्यवलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनः=अन्ये तु-'वयमनगाराः साधवः स्मः' इति ह्यभिमानं भजमानाः वयमेव पृथिवीकायजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति व्यर्थं

जो पुरुष पृथिवीकाय की हिंसा से विरत होते हैं, वेही अनगार हैं। जो उस हिंसा में प्रवृत्त हैं, वे द्रव्यलिंगी हैं। यह बतलाने के लिए कहते हैं-' लज्जमाणा ' इत्यादि।

कोई-कोई पुरुष पृथिवीकाय के आरम्भ में अत्यन्त करुणाशील होने के कारण, द्रवित हृदय वाले होने से संकोच-वृत्ति करते हैं, उन में से कोई-कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी मन पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी, तथा कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अनगार हैं, इस प्रकार पृथक्-पृथक्भाव से देखो। अर्थात् उन पुरुषों को देखो जो सूक्ष्म और बादर पृथ्वीकाय का आरम्भ करने में लज्जा करते हैं त्रस्त होते हैं और तीनकरण, तीनयोग से पृथिवीकाय के आरम्भ के त्यागी हैं।

और कोई-कोई हम साधु हैं। ऐसा अभिमान के साथ कहते हुए 'हम ही पृथिवीकाय की रक्षा में तत्पर हैं और महाव्रतधारी हैं'। इस प्रकार वृथा प्रलाप

જે પુરૂષ પૃથિવીકાયની હિંસાથી વિરત-નિવૃત્ત થાય છે તેજ અનગાર છે મુનિ છે જે હિંસામાં પ્રવૃત્ત છે તે દ્રવ્યલિંગી છે તે બતાવવા માટે કહે છે—'લજ્જમાણા' ઈત્યાદિ.

કોઈ-કોઈ પુરૂષ પૃથિવીકાયના આરંભમાં અત્યન્ત કરૂણાશીલ હોવાના કારણે દ્રવિત હૃદયવાળા હોવાથી સંકોચ-વૃત્તિ કરે છે તેમાંથી કોઈ-કોઈ પ્રત્યક્ષજ્ઞાની અર્થાત્ અવધિજ્ઞાની, મન:પર્યયજ્ઞાની અને કેવલજ્ઞાની અને કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની ભાવિતાત્મા અનગાર છે પૃથક્=પૃથક્ભાવથી જુઓ. અર્થાત્ તે પુરૂષોને જુઓ કે જે સૂક્ષ્મ અને બાદર પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવામાં લજ્જા કરે છે-ત્રાસ પામે છે અને ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી પૃથ્વીકાયના આરંભના ત્યાગી છે

અને કોઈ-કોઈ અમે સાધુ છીએ એવા અભિમાનની સાથે કહે છે કે- અમે જ પૃથ્વીકાયની રક્ષામાં તત્પર છીએ, અને મહાવ્રતધારી છીએ. આ પ્રમાણે વૃથા-

सूच्यग्रलग्नबिन्दुमात्रेऽपि सहस्रौषधिसमावेशस्तथैव पृथिवीकायजीवास्तावन्मात्रे पृथिव्यंशे तिष्ठन्तीति। यथा वा सहस्रौषधिसंमिश्रणे कृते चूर्णीकृत्य परिपिष्य खसखसकणप्रमाणगुटिका क्रियते, तत्र प्रत्येकगुटिकायां सहस्रौषधिसमावेशो दृश्यते, तद्वज्जवारीधान्यकणमात्रेऽल्पीयसि पृथिव्यंशे पृथिवीकायजीवास्तिष्ठन्तीति नैतच्चित्रम्।

यदि लोकाकाशस्य प्रत्येकप्रदेशे, एकैकः पृथिवीकायजीवः स्थाप्यते तदा असंख्याता लोका पूरिता भवेयुः। पृथिवीकायजीवानां परिमाणं तावदस्ति, यदि लोका असंख्याता भवेयुः, तेषामसंख्यातलोकाना यावन्तः प्रदेशाः भवेयुस्तावन्तः पृथिवीकायजीवाः सन्तीति बोध्यम्।

छोटे से, सूई की नोंक पर लगे हुए एक बूंद में भी हजार औषधों का समावेश हो जाता है, इसी प्रकार जवार के एक दाने के बराबर पृथ्वी के अश में इतने जीव रहते हैं। अथवा जैसे एक हजार औषधों को मिला दिया जाय और उनका चूर्ण बना लिया जाय, खूब पीसा जाय और उससे खसखस के दाने के बराबर गोली बना ली जाय तो उस प्रत्येक गोली में हजार औषधियों का समावेश जान पडता है। इस प्रकार जवार बराबर पृथ्वी के अश में अगर इतने जीव रहते हैं तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है?

अगर लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में, एक-एक जीव स्थापित किया जाय तो असख्यात लोक भरजाएँ। पृथिवीकाय के जीवों का परिमाण इतना है कि-यदि लोक असख्यात हों और उन असख्यात लोकों के जितने प्रदेश हों, उतने ही पृथिवीकाय जीव हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए।

નાના એવા સોઈની અણી પર લાગેલા એક ટીપામા પણ હજાર ઔષધોનો સમાવેશ થઈ જાય છે એ પ્રમાણે જુવારના એક દાણાની બરાબર પૃથ્વીમા એટલા જીવ રહે છે અથવા જેવી રીતે-એક હજાર ઔષધોને મેળવવામા આવે અને તેનુ ચૂર્ણ બનાવી લેવાય, અને તેને ખૂબ વાટવામા આવે અને તેમાથી ખસ-ખસના દાણા બરાબર ગોળી બનાવવામા આવે તો પ્રત્યેક ગોળીમા હજાર ઔષધીઓનો સમાવેશ થયેલો છે, એમ જાણી શકાય છે એ પ્રમાણે જુવાર બરાબર પૃથ્વીમા એટલા જીવ રહે છે તો તેમા આશ્ચર્યની વાત શુ હોઈ શકે?

અથવા લોકાકાશના એક એક પ્રદેશમા, એક-એક જીવ સ્થાપિત કરવામા આવે તો અસંખ્યાત લોક ભરાઈ જાય પૃથિવીકાયના જીવોનુ પરિણામ એટલુ છે- જો લોક અસખ્યાત હોય અને તે અસખ્યાત લોકના જેટલા પ્રદેશો હોય એટલા જ પૃથિવીકાય જીવ છે. એમ સમજી લેવુ જોઈએ

ये पृथिवीकायहिंसायां लज्जमानास्ते-अनगाराः, ये तु तत्र प्रवृत्तास्ते द्रव्यलिङ्गिनः, इति बोधयितुमाह-' लज्जमाणाः ' इत्यादि ।

एके=अन्ये, लज्जमानाः=पृथिवीकायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितहृदयतया सङ्कोचमापद्यमाना पृथक्=केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधि-मनःपर्यय-केवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति, पृथक्-पश्य ।

इमे सूक्ष्मबादरपृथिवीकायारम्भकरणे व्रीडावन्तस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैः पृथिवीकायारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनः=अन्ये तु-' वयमनगाराः साधवः स्मः ' इति साभिमानं प्रवदमानाः वयमेव पृथिवीकायजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः ' इति व्यर्थं

जो पुरुष पृथिवीकाय की हिंसा से विरत होते हैं, वेही अनगार हैं। जो उस हिंसा में प्रवृत्त हैं, वे द्रव्यलिंगी हैं। यह बतलाने के लिए कहते हैं-' लज्जमाणा ' इत्यादि।

कोई-कोई पुरुष पृथिवीकाय के आरम्भ में अत्यन्त करुणाशील होने के कारण, द्रवित हृदय वाले होने से, सकोच-वृत्ति करते हैं, उन में से कोई-कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी मन पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी, तथा कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अनगार हैं, इस प्रकार पृथक्-पृथक्भाव से देखो। अर्थात् उन पुरुषों को देखो जो सूक्ष्म और बादर पृथ्वीकाय का आरम्भ करने में लज्जा करते हैं, त्रस्त होते हैं और तीनकरण तीनयोग से पृथिवीकाय के आरम्भ के त्यागी हैं।

और कोई-कोई हम साधु हैं। ऐसा अभिमान के साथ कहते हुए ' हम ही पृथिवीकाय की रक्षा में तत्पर हैं और महाव्रतधारी हैं '। इस प्रकार वृथा प्रलाप

जे पुरुष पृथिवीकायनी हिंसाथी विरत-निवृत्त थाय छे तेज अणगार छे मुनि छे. जे हिंसामां प्रवृत्त छे ते द्रव्यलिंगी छे ते बतावबा माटे कहे छे—'लज्जमाणा' ईत्यादि.

कोई-कोई पुरुष पृथिवीकायना आरंभमां अत्यन्त करूणाशील होवाना कारणे द्रवित हृदयवाळा होवाथी संकोच-वृत्ति करे छे तेमांथी कोई-कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी अने केवलज्ञानी अने कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अणगार छे पृथक्=पृथक्‌भावथी जुओ. अर्थात् ते पुरुषोने जुओ के जे सूक्ष्म अने बादर पृथ्वीकायनो आरंभ करवामां लज्जा करे छे-त्रस्त छे-त्रास पामे छे अने त्रण करण त्रण योगथी पृथ्वीकायना आरंभना त्यागी छे

अने कोई-कोई ' अमे साधु छीए ' एवा अभिमाननी साथे कहे छे के- अमे ज पृथ्वीकायनी रक्षामां तत्पर छीए अने महाव्रतधारी छीए. आ प्रमाणे वृथा-

सर्वारम्भपरित्यागिनः षट्कायरक्षका अनगाराः (साधवः) स्मः' इति वदन्तो दण्डि-शाक्यादयः सन्ति। तत्र केचिद्देहशुद्ध्यर्थं मृत्तिकास्नायिनो भवन्ति। केचित्स्वनिवासार्थं गृहादिनिर्माणकरणं कुदालखनित्रादिभिः पृथिवीकायमुपमर्दयन्ति। केचित् स्वोदर-पूर्त्यर्थं कृष्यादिकर्म कुर्वन्ति। केचिच्च देवकुलाद्यर्थं सावद्यमुपदिशन्ति. पार्थिवी-देव-गुर्वादि-प्रतिमानिर्माणे जीर्णोद्धारकरणे च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्धारो भवतीति मन्यन्ते, वदन्ति च—

"जिणभवणकारणविही, सुद्धा भूमी दलं च कट्ठाई। भियगाणइसंधाणं, सासयवुड्ढी य जयणा य॥१॥ एयस्स फलं भणियं, इय आणाकारिणो उ सड्ढस्स।

और परिग्रह के त्यागी हैं, षट्काय के रक्षक साधु हैं'। इस प्रकार कहने वाले दण्डी शाक्य आदि हैं। इन में कोई-कोई तो शरीर की शुद्धि के लिए मिट्टी से स्नान करते हैं। कोई अपने रहने के लिए मकान आदि बनाने में कुदाल खनित्र (कुश) आदि खोदने के साधनों द्वारा पृथ्वीकाय का उपमर्दन करते हैं। कोई-कोई अपना पेट भरने के उद्देश्य से खेती आदि करते हैं। कोई देवकुल आदि के लिए सावद्य उपदेश देते है-देव गुरु आदि की पार्थिव प्रतिमा निर्माण कराने से और जीर्णोद्धार कराने से भवसागर से आत्मा का तरना होता है, ऐसा मानते हैं और कहते हैं कि-

"जिनभवन बनाने की विधि इस प्रकार है—"शुद्ध भूमि, शुद्ध ईंटें, पत्थर, काष्ठ आदि होना, कार्य करने वाले कारीगरों को प्रसन्न रखना, अपने परिणाम उत्तरोत्तर चढते हुए रखकर यतनापूर्वक कार्य कराना" इत्यादि। भगवान की आज्ञाके

છીએ સર્વ આરંભ અને પરિગ્રહના ત્યાગી છીએ, ષટ્કાયના રક્ષક સાધુ છીએ' આ પ્રમાણે કહેવાવાળા દંડી શાક્ય આદિ છે તેમા કોઈ-કોઈ તો શરીરની શુદ્ધિ માટે માટીથી સ્નાન કરે છે કોઈ પોતાને રહેવા માટે મકાન આદિ બનાવવામા કોદાળી, કોસ આદિ ખોદવાના સાધનો દ્વારા પૃથ્વીકાયનુ ઉપમર્દન કરે છે, કોઈ-કોઈ પોતાનુ પેટ ભરવાના ઉદ્દેશથી ખેતી કરે છે, કોઈ દેવકુળ આદિને માટે સાવદ્ય ઉપદેશ કરે છે-દેવ, ગુરૂ આદિની પાર્થિવ પ્રતિમા નિર્માણ કરાવવામા અને જીર્ણોદ્ધાર કરાવામા ભવસાગરથી આત્મા તરી શકે છે, એવુ માને છે અને કહે છે કે —

"જિનમંદિર બનાવવાની વિધિ આ પ્રમાણે છેઃ-શુદ્ધ ભૂમિ, શુદ્ધ ઇંટો, પથ્થર, કાષ્ઠ આદિ જોઈએ કામ કરવાવાળા કારીગરોને પ્રસન્ન રાખવા, પોતાનાં પરિણામ ઉત્તરોત્તર ચઢતા રાખીને યતનાપૂર્વક કાર્ય કરવું" ઈત્યાદિ ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક શ્રાવકને

चित्तं सुहाणुबंधं, निव्वाणं ॥ जिणिंदेहिं ॥ ४४ ॥ (पञ्चाशक टीका ७ वि)

" जिणभवणाइं जे उद्धरंति भत्तीइ सडियपडियाइं ।
ते उद्धरंति अप्पं भीमाओ भवसमुद्दाओ ॥ " (धर्मसंग्रहटीका २अधि)

छाया—" जिनभवनकारणविधि —शुध्वा भूमिर्दलं च काष्ठादि ।
भृत्कानतिसन्धाने स्वाशयवृद्धिश्च (स्वाशयवृद्धिः) यतना च ॥
एतस्य फलं भणितं, इत्याज्ञाकारिणस्तु श्राद्धस्य ।
चित्रं सुखानुबन्धं, निर्वाणान्तं जिनेन्द्रैः (भणितम्) ॥ ४४ ॥
जिनभवनानि ये उद्धरन्ति भक्त्या शटितपतितानि ।
ते उद्धरन्त्यात्मानं भीमाद् भवसमुद्रात् " इति च ॥

तथैव शास्त्रनिषिद्धे पूजाप्रतिष्ठादिसावद्यकार्ये प्रवृत्त्या द्रव्यलिङ्गिनोऽपि स्वात्मानं मुनिमेव मन्यन्ते । ये पथिवीशस्त्रं प्रयुञ्जानाः षड्जीवनिकाय

आराधक श्रावक को भगवान् ने इस का फल इस प्रकार बताया है– 'उसको अनेकानेक सुखों का अनुबन्ध होता है और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है "। (पञ्चाशकटीका ७ वि)

" जो पुरुष जीर्ण जिनभवनों का भक्तिसे उद्धार कराते हैं वे भीम भवसागर से अपनी आत्मा को तारते हैं " । (धर्मसंग्रहटीका २ अधि)

इसी प्रकार शास्त्रनिषिद्ध पूजा प्रतिष्ठा आदि सावद्य कार्यों में प्रवृत्ति करके द्रव्यलिंगी भी अपनने आप को मुनि मानते है । आशय है कि–जो लोक पृथिवी-शस्त्र का प्रयोग करके षड्जीवनिकायरूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, और भगवानका नाम लेकर स्वयं खोटी प्ररूपणा करते हैं अतः वे द्रव्य

ભગવાને તેનું ફલ આ પ્રમાણે બતાવ્યું છે–તેને અનેકાનેક સુખોનો અનુબંધ થાય છે, અને પરમ્પરાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. " (પંચાશકટીકા ૭ વિ)

"જે પુરૂષ જીર્ણ થયેલું જિનમંદિર તેનો ભક્તિથી ઉદ્ધાર કરાવે છે તે મહાન ભવસાગરથી પોતાના આત્માને તારે છે " (ધર્મસંગ્રહટીકા ૨ અધિ)

આજ પ્રમાણે શાસ્ત્રનિષિદ્ધ પૂજા, પ્રતિષ્ઠા આદિ સાવદ્ય કાર્યોમાં પ્રવૃત્તિ કરીને દ્રવ્યલિંગી પણ પોતે પોતાને મુનિ માને છે આશય એ છે કે–જે લોક પૃથ્વીશસ્ત્રનો પ્રયોગ કરીને ષડ્જીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે અને ભગવાનનું નામ લઈને પોતે ખોટી પ્રરૂપણા કરે છે માટે તે દ્રવ્યલિંગી છે, આવા

प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति तान् पृथक्=पृथग्भावेन पश्य ।

(४) वधद्वार, (५) शस्त्रद्वारं च ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति—

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः शस्त्रैः=लोष्टपाषाणादिभिः स्वकायरूपैः, अग्न्यादिभिः=परकायरूपैः हलकुद्दालखनित्रादिभिस्तदुभयरूपैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण=पृथिव्याः कर्मसमारम्भः-पृथिवीकर्मसमारम्भः पृथिवीमाश्रित्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धनिबन्धनसावद्यव्यापारः, तेन इमं= पृथिवीकायं विहिंसन्ति । पृथिवीकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकाय-

---

करते हुए द्रव्यलिंगी हैं उन्हें पृथक् देखो ।

(४) वध और (५) शस्त्रद्वार

अपने आप को अनगार समझने वाले ये द्रव्यलिङ्गी साधु के गुणों में तनिक भी प्रवृत्त नहीं होते, और न गृहस्थों के किसी कार्य का त्याग करते हैं, यह बात बतलाते हैं-

ये द्रव्यलिङ्गी लोग विभिन्न प्रकार के मिट्टी, पत्थर आदि स्वकाय-शस्त्रों से अग्नि आदि परकाय-शस्त्रों से, हल, कुदाल आदि खोदने के साधनरूप उभयकाय शस्त्रों से पृथिवीकर्मसमारम्भ करते हैं, अर्थात् पृथिवी के निमित्त से ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मबन्ध का कारण सावद्य व्यापार करते हैं, और उस से पृथिवीकाय की हिंसा करते हैं । पृथिवीकाय की हिंसा में प्रवृत्त होने वाला पुरुष छहों जीवनिकायों

મિથ્યા પ્રલાપ કરનારા દ્રવ્યલિંગી છે તેને જૂદા જૂદા ભાવથી જુઓ.

(૪) વધ અને (૫) શસ્ત્ર દ્વાર—

પોતેજ પોતાને અણગાર-સાધુ સમજવાવાળા એ દ્રવ્યલિંગી, સાધુના ગુણોમા જરા પણ પ્રવૃત્ત થતા નથી અને ગૃહસ્થોના કોઈ કાર્યનો ત્યાગ કરતા નથી. એ વાત બતાવે છે —

એ દ્રવ્યલિંગી લોક જૂદા-જૂદા પ્રકારની માટી, પથ્થર આદિ સ્વકાય શસ્ત્રોથી અગ્નિ આદિ પરકાય શસ્ત્રોથી હળ, કોદાળી આદિ ખોદવાના સાધનરૂપ ઉભયકાય શસ્ત્રોથી પૃથ્વીકર્મસમારભ કરે છે. અર્થાત્ પૃથ્વીના નિમિત્તથી જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારના કર્મબધના કારણ સાવદ્ય વ્યાપાર કરે છે, અને તેથી પૃથ્વીકાયની હિંસા કરે છે પૃથ્વીકાયની હિંસામા પ્રવૃત્ત થવાવાળા પુરૂષ છજીવનિકાયોની હિંસા કરે છે.

इमं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह—'पुढवीसत्थं'-इत्यादि।

पृथिवीशस्त्रम्=पृथिव्युपमर्दकं शस्त्रम्, शस्यते=हिंस्यते अनेनेति शस्त्रम्, तद् द्विविधं-द्रव्य-भाव-भेदात्। तत्र द्रव्यशस्त्रं=स्वकायपरकायतदुभयरूपम्। भावशस्त्रं=दुष्प्रयुक्तमनोवाक्कायलक्षणम्, समारभमाणाः=पृथिवीकायं प्रति व्यापारयन्तः, अन्यान् पृथिवीकायभिन्नान् अनेकरूपान् अप्कायादीन् स्थावरान्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च विहिंसन्ति।

(६) उपभोगद्वारम्—

जगति खलु बहवो द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा—'वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः

की हिंसा करता है, यह बतलाने के लिए कहते हैं—'पुढवीसत्थं' इत्यादि।

पृथिवीशस्त्रका अर्थ है—पृथिवीकाय की हिंसा करनेवाला शस्त्र। जिस से हिंसा हो वह शस्त्र कहलाता है। शस्त्र दो प्रकार का है—(१) द्रव्यशस्त्र और (२) भावशस्त्र। स्वकाय, परकाय और उभय—स्वपर—कायरूपसे द्रव्यशस्त्र तीन प्रकार का है। मन वचन और कायका दुष्प्रयोग करना भावशस्त्र है।

पृथ्वीकाय का आरंभ करनेवाले, पृथिवीकाय से भिन्न अनेक अप्काय आदि स्थावर जीवों को, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की भी हिंसा करते हैं।

(६) उपभोगद्वार—

संसार में बहुत से द्रव्यलिंगी हैं। जैसे—हम पंचमहाव्रतधारी हैं, हम आरंभ

એ બતાવવા માટે કહે છે :— પુઢવીસત્થં ઇત્યાદિ

પૃથ્વીશસ્ત્રનો અર્થ છે-પૃથ્વીકાયની હિંસા કરવાવાળાં શસ્ત્રો જેનાથી હિંસા થઈ શકે તે શસ્ત્ર કહેવાય છે શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે (૧) દ્રવ્ય શસ્ત્ર અને (૨) ભાવ-શસ્ત્ર-સ્વકાય, પરકાય, અને ઉભય-સ્વ-પરકાયરૂપ દ્રવ્યશસ્ત્ર ત્રણ પ્રકારના છે મન, વચન અને કાયના દુપ્રયોગ કરવા તે ભાવશસ્ત્ર છે

પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવાવાળા પૃથ્વીકાયથી ભિન્ન અનેક અપ્કાય આદિ સ્થાવર જીવોની તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોની પણ હિંસા કરે છે

(૬) ઉપભોગ-દ્વાર-

સંસારમાં ઘણાજ દ્રવ્યલિંગી સાધુ છે જેવી રીતે "અમે પંચમહાવ્રતધારી

सर्वारम्भपरित्यागिनः षट्कायरक्षका अनगाराः (साधवः) स्मः' इति वदन्तो दण्डि-शाक्यादयः सन्ति। तत्र केचिद्देहशुद्ध्यर्थं मृत्तिकास्नायिनो भवन्ति। केचित्स्वनिवासार्थं गृहादिनिर्माणकरणं कुदालखनित्रादिभिः पृथिवीकायमुपमर्दयन्ति। केचित् स्वोदर-पूर्त्यर्थं कृष्यादिकर्म कुर्वन्ति। केचिच्च देवकुलाद्यर्थं सावद्यमुपदिशन्ति. पार्थिवी-देव-गुर्वादि-प्रतिमानिर्माणे जीर्णोद्धारकरणे च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्धारो भवतीति मन्यन्ते, वदन्ति च—

"जिणभवणकारणविही, सुद्धा भूमी दलं च कट्ठाई। भियगाणइसंधाणं, सासयवुड्ढी य जयणा य ॥९॥ एयस्स फलं भणियं, इय आणाकारिणो उ सड्ढस्स।

और परिग्रह के त्यागी हैं, षट्काय के रक्षक साधु हैं'। इस प्रकार कहने वाले दण्डी शाक्य आदि हैं। इन में कोई-कोई तो शरीर की शुद्धि के लिए मिट्टी से स्नान करते हैं। कोई अपने रहने के लिए मकान आदि बनाने में कुदाल खनित्र (कुस) आदि खोदने के साधनों द्वारा पृथ्वीकाय का उपमर्दन करते हैं। कोई-कोई अपना पेट भरने के उद्देश्य से खेती आदि करते हैं। कोई देवकुल आदि के लिए सावद्य उपदेश देते हैं-देव गुरु आदि की पार्थिव प्रतिमा निर्माण कराने से और जीर्णोद्धार कराने से भवसागर से आत्मा का तरना होता है, ऐसा मानते हैं और कहते हैं कि-

"जिनभवन बनाने की विधि इस प्रकार है—"शुद्ध भूमि, शुद्ध ईंटें, पत्थर, काष्ठ आदि होना, कार्य करने वाले कारीगरों को प्रसन्न रखना, अपने परिणाम उत्तरोत्तर चढते हुए रखकर यतनापूर्वक कार्य कराना" इत्यादि। भगवान की आज्ञाके

છીએ સર્વ આરભ અને પરિગ્રહના ત્યાગી છીએ, ષટ્કાયના રક્ષક સાધુ છીએ' આ પ્રમાણે કહેવાવાળા દડી શાકય આદિ છે તેમા કોઈ-કોઈ તો શરીરની શુદ્ધિ માટે માટીથી સ્નાન કરે છે કોઈ પોતાને રહેવા માટે મકાન આદિ બનાવવામા કોદાળી, કોસ આદિ ખોદવાના સાધનો દ્વારા પૃથ્વીકાયનુ ઉપમર્દન કરે છે, કોઈ-કોઈ પોતાનું પેટ ભરવાના ઉદ્દેશથી ખેતી કરે છે, કોઈ દેવકુળ આદિને માટે સાવદ્ય ઉપદેશ કરે છે-દેવ, ગુરૂ આદિની પાર્થિવ પ્રતિમા નિર્માણ કરાવવામા અને જીર્ણોદ્ધાર કરાવામા ભવસાગરથી આત્મા તરી શકે છે, એવું માન છે અને કહે છે કે —

"જિનમદિર બનાવવાની વિધિ આ પ્રમાણે છે:-શુદ્ધ ભૂમિ, શુદ્ધ ઇંટો, પથ્થર, કાષ્ઠ આદિ જોઇએ કામ કરવાવાળા કારીગરોને પ્રસન્ન રાખવા, પોતાના પરિણામ ઉત્તરોત્તર ચઢતા રાખીને યતનાપૂર્વક કાર્ય કરવુ" ઈત્યાદિ ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક શ્રાવકને

चित्तं सुहाणुबंधं, निव्वाणं त जिणिंदेहिं ॥ ४४ ॥ (पञ्चाशक टीका ७ वि)

" जिणभवणाइं जे उद्धरंति भत्तीइ सडियपडियाइं ।
ते उद्धरंति अप्पं, भीमाओ भवसमुद्दाओ ॥ " (धर्मसंग्रहटीका २अधि)

छाया—" जिनभवनकारणविधि —शुध्वा भूमिर्दलं च काष्ठादि ।
भृतकानतिसन्धानं स्वाशयवृद्धिश्च (शोभनाशयवृद्धिः) यतना च ॥
एतस्य फल भणित, इत्याज्ञाकारिणस्तु श्राद्धस्य ।
चित्र सुखानुबन्धं, निर्वाणान्तं जिनेन्द्रैः (भणितम्) ॥ ४४ ॥
जिनभवनानि ये उद्धरन्ति भक्त्या शटितपतितानि ।
ते उद्धरन्त्यात्मानं भीमाद् भवसमुद्रात् " इति च ॥

तथैव शास्त्रनिषिद्धे पूजाप्रतिष्ठादिसावद्यकार्ये प्रवृत्त्या द्रव्यलिङ्गिनोऽपि स्वात्मानं मुनिमेव मन्यन्ते । ये पृथिवीशस्त्र प्रयुञ्जानाः षड्जीवनिकाय

आराधक श्रावक को भगवान् ने इस का फल इस प्रकार बताया है– 'उसको अनेकानेक सुखों का अनुबन्ध होता है और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है "। (पञ्चाशकटीका ७ वि)

जो पुरुष जीर्ण जिनभवनों का भक्तिसे उद्धार कराते हैं वे भीम भवसागर से अपनी आत्मा को तारते है " । (धर्मसंग्रहटीका २ अधि)

इसी प्रकार शास्त्रनिषिद्ध पूजा प्रतिष्ठा आदि सावद्य कार्यों में प्रवृत्ति करके द्रव्यलिंगी भी अपनने आप को मुनि मानते हैं। आशय है कि–जो लोक पृथिवी-शस्त्र का प्रयोग करके षड्जीवनिकायरूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, और भगवानका नाम लेकर स्वयं खोटी प्ररूपणा करते हैं अत वे द्रव्य

ભગવાને તેનું ફલ આ પ્રમાણે બતાવ્યું છે–તેને અનેકાનેક સુખોનો અનુબંધ થાય છે અને પરમ્પરાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે " (પંચાશકટીકા ૭ વિ)

" જે પુરૂષ જીર્ણ થયેલું જિનમંદિર તેનો ભક્તિથી ઉદ્ધાર કરાવે છે તે મહાન ભવસાગરથી પોતાના આત્માને તારે છે " (ધર્મસંગ્રહટીકા ૨ અધિ)

આજ પ્રમાણે શાસ્ત્રનિષિદ્ધ પૂજા, પ્રતિષ્ઠા આદિ સાવદ્ય કાર્યોમાં પ્રવૃત્તિ કરીને દ્રવ્યલિંગી પણ પોતે પોતાને મુનિ માને છે આશય એ છે કે–જે લોક પૃથ્વીશસ્ત્રનો પ્રયોગ કરીને ષડ્જીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે અને ભગવાનનું નામ લઈને પોતે ખોટી પ્રરૂપણા કરે છે માટે તે દ્રવ્યલિંગી છે સાચા

रूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ति ते द्रव्यलिङ्गिनो नानगारा इति भावः, उक्तञ्च—

"सावज्जा किरिया जेसिं, सावज्जा देसणा तहा ।
भमंति दीहसंसारे, ते सव्वे दव्वलिंगिणो ॥ १ इति ॥ सू. २ ॥

एवं शाक्यादीनां पृथिवीकायोपमर्दकत्वेन द्रव्यलिङ्गित्वं प्रतिबोधितं भगवतेति जम्बूस्वामिनं सुधर्मा स्वामी कथयति–'तत्थे'–त्यादि ।

॥ मूलम् ॥

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइआ, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण–माणण–पूयणाए जाइमरणमोयणाए, दुक्खपडिघायहेउं, से सयमेव पुढविसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा पुढविसत्थं

लिंगी हैं–सच्चे अनगार नहीं हैं । कहा भी है–

"जिन की क्रिया सावद्य है और जिनका उपदेश सावद्य है, वे दीर्घ ससारमें परिभ्रमण करते हैं । उन सबको द्रव्यलिंगी जानना चाहिए" ॥ सू २ ॥

इस प्रकार पृथिवीकाय का उपमर्दन करने वाले होने से शाक्य आदि को भगवान् ने द्रव्यलिंगी कहा है । यह वात सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं–'तत्थ खलु' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने परिज्ञा का उपदेश दिया है । इसी जीवन के लिए–वन्दना, मान और पूजन के लिए, जन्म और मरण से मुक्त होने के लिए, दुःख का नाश करने के लिए वह स्वय ही पृथिवीकाय का आरम करता है, दूसरों से पृथिवीकायका आरम्भ कराता है, और पृथिवीकायका आरम करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

અણગાર–સાધુ નથી કહ્યું છે કે —

"જેની ક્રિયા સાવદ્ય છે, અને જેનો ઉપદેશ સાવદ્ય છે, તે દીર્ઘ સસારમા પરિભ્રમણ કરે છે. તે સર્વને દ્રવ્યલિંગી જાણવા જોઇએ" (સૂ૦ ૨)

એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયનુ ઉપમર્દન–નાશ કરવાવાળા હોવાથી શાક્ય આદિને ભગવાને દ્રવ્યલિંગી કહ્યા છે આ વાત સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે–'तत्थ' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાનો ઉપદેશ આપ્યો છે, આ જીવનને માટે, વદના, માન અને પૂજન માટે, જન્મ અને મરણથી મુક્ત હોવાના માટે, દુ ખનો નાશ કરવા માટે તે પોતે જ પૃથ્વીકાયનો આરભ કરે છે, બીજાથી પૃથિવીકાયનો આરભ કરાવે છે, અને પૃથ્વીકાયનો આરભ કરનાર બીજાને અનુમોદન આપે છે. તે આરભ તેના

समारंभंते समणुजाणइ। तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता। अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय, जाति-मरण-मोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं, स स्वयमेव पृथिवीशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा पृथिवीशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति। तत् तस्य अहिताय, तत् तस्य अबोधये ॥ सू० ३ ॥

टीका—

तत्र=पृथिवीकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यगवबोधः खलु प्रवेदिता=प्रबोधिता। कर्मबन्धसमुच्छेदार्थी जीवेन परिज्ञाऽवश्यं स्वरणीकरणी येति भगवता प्रबोधितमिति भावः। परिज्ञा द्विविधा, ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदात्। 'सावद्यव्यापार एव कर्मबन्धस्य कारण-मिति ज्ञानं-ज्ञपरिज्ञा, तद्व्यापारपरित्याग' -प्रत्याख्यानपरिज्ञा।

यह आरंभ उसके अहित के लिए और उसको अबोधि के लिए है ॥ सू. ३ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय के समारंभ के विषय में भगवान् श्री महावीर स्वामीने सम्यग्बोधरूप परिज्ञा का सदुपदेश दिया है। तात्पर्य यह है कि-कर्मबन्ध को नष्ट करने के लिए जीव को यह परिज्ञा अवश्य ही स्वीकार करनी चाहिए, ऐसा भगवान्ने कहा है। परिज्ञा दो प्रकार की है—ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा। 'सावद्य व्यापार से ही कर्मबन्ध का कारण होता है' ऐसा जानना ज्ञ-परिज्ञा है, और सावद्यव्यापार का त्याग करना प्रत्याख्यान-परिज्ञा है।

અહિત માટે અને તે તેની અબોધિ માટે છે (૩)

ટીકાર્થ—પૃથ્વીકાયના સમારંભના વિષયમાં ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ સમ્યગ્બોધરૂપ પરિજ્ઞાનો સદુપદેશ આપ્યો છે તાત્પર્ય એ છે કે-કર્મબંધને નાશ કરવા માટે જીવે તે પરિજ્ઞા અવશ્ય સ્વીકાર કરવી જોઈએ, એ પ્રમાણે ભગવાને કહ્યું છે પરિજ્ઞા બે પ્રકારની છે જ્ઞપરિજ્ઞા, અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા. સાવદ્ય વ્યાપારથી કર્મબંધનું કારણ થાય છે એ પ્રમાણે જાણવું તે જ્ઞ-પરિજ્ઞા છે અને સાવદ્ય વ્યાપારનો ત્યાગ કરવો તે પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા છે

जीवः कस्मै प्रयोजनाय पृथिवीकायं प्रति सावद्यव्यापारं करोती ?-त्याह- 'इमस्स चेवे'-त्यादि । अस्यैव विद्युल्लताविलासवत्क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य जीवन-स्वार्थे चिरसुखार्थं, प्रासादसदनादिरचनार्थं, गमना-गमना-वस्थानो-पवेशन-पार्श्व-परिवर्त्तन-पुत्तलिकाप्रतिमादिकरणो-च्चारप्रस्रवणादिकरणो-पकरणादिग्रहणनिक्षेपणा-ऽऽलेपन-प्रहरण-भूषण-क्रय-विक्रय-कृषिकरण-भाण्डादिनिर्माणाद्यर्थमित्यर्थः। तथा परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं यथा *आश्चर्यगृहादि

जीव किस प्रयोजनके लिये पृथिवीकाय के विषय में सावद्य व्यापार करता है ? सो बतलाते है—

विजली की चमक के समान इस क्षणविनश्वर जीवन के चिरकालीन सुख के उद्देश से महल, मकान आदि का निर्माण कराने के लिए, अथवा गमन, आगमन, अवस्थान (स्थित रहना), उपवेशन (वैठना), पार्श्व-परिवर्तन (पसवाडा वदलना), पुतली वनाना, प्रतिमा वनाना, मल-मूत्र त्यागना, उपकरण आदि ग्रहण करना, रखना, लेपकरना, प्रहण करना, सजाना, खरीदना, वेचना, खेती करना, तथा वर्तन आदि वनाना, इत्यादि कार्यों के लिए सावद्य व्यापार किया जाता है।

इस के अतिरिक्त परिवन्दन मानन और पूजन के लिए भी सावद्य व्यापार किया जाता है। परिवन्दन अर्थात् प्रशंसा के लिए, जैसे आश्चर्यगृह (अजायव घर)

જીવ કયા પ્રયોજન માટે પૃથ્વીકાયના વિષયમા સાવદ્ય વ્યાપાર કરે છે ? તે બતાવે છે —

વિજલીના ચમકારાની સમાન આ ક્ષણભંગુર જીવનના ચિરકાલીન (લાંબા સમય સુધી) સુખના ઉદ્દેશથી, મહેલ મકાન આદિ બનાવવાને માટે, અથવા ગમન, આગમન, અવસ્થાન, (સ્થિત રહેવું) ઉપવેશન, (બેસવુ) પાર્શ્વ-પરિવર્ત્તન, (પડખા-બદલવા) પુતલી બનાવવી, પ્રતિમા બનાવવી, મલ-મૂત્ર ત્યાગ કરવો, ઉપકરણ આદિનું ગ્રહણ કરવું, રાખવું, લેપ કરવો, પ્રહરણ કરવું, સજાવવુ, ખરીદવું, વેચવું, ખેતી કરવી તથા વાસણ બનાવવા, ઇત્યાદિ કાર્યોને માટે સાવદ્ય વ્યાપાર કરવામાં આવે છે

તે સિવાય પરિવદન માન અને પૂજન માટે પણ સાવદ્ય વ્યાપાર કરવામા આવે છે પરિવન્દન અર્થાત્ પ્રશંસા માટે જેમ આશ્ચર્યગૃહ-(અજાયબ ઘર) આદિ બનાવવામા

* आश्चर्यगृहम्-'म्युझियम' 'अजायवघर' इति भाषाप्रसिद्धम् ।

करणे, माननं=जनसत्कारः, तदर्थं, यथा-कीर्तिस्तम्भादिकरणे पूजनं=वस्त्ररत्नादिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-शिल्पिनां राजदेवप्रतिमादिरचने । जातिमरणमोचनाय-जातिः=जन्म, तदर्थं भवान्तरसुखप्राप्त्यर्थं देवकुलादिकरणे, मरणं=मरणं येषां जातं तदर्थं मृतपित्रादिस्मरणार्थमित्यर्थः, यथा स्तूपचैत्यादिकरणे, मोचनं=मुक्तिस्तदर्थं, यथा-देवभवनप्रतिमादिकरणे । यद्वा जातिमरणमोचनाय=जन्ममरणविमुक्तये । तथा दुःखप्रतिघातहेतुं=दुःखविध्वंसार्थं, यथा

आदि बनवानेसे प्रशंसा होती है। मानन अर्थात् जनताद्वारा मिलने वाला सत्कार। उस सत्कार के लिए कीर्तिस्तम्भ (मेमोरियल) आदि बनवाकर समारम्भ करते हैं। पूजन का अर्थ है—वस्त्र या रत्न आदि का पुरस्कार पाना। जैसे शिल्पी लोग पुरस्कार पाने के उद्देश्य से राजा या देवता की प्रतिमा बनाते हैं।

जन्म, मरण और मुक्ति के लिए भी पृथिवीकायका समारम्भ किया जाता है। जन्म के लिए जैसे भवान्तर में सुख पाने के लिए देवकुल आदि का निर्माण कराने में और मृत्यु के लिए जैसे मृत पिता आदि का स्मारक (स्तूप–चैत्य) बनवाने में, और मोचन के अर्थात् मुक्ति के लिए देवभवन एवं उनकी प्रतिमा बनवाने में, अथवा जन्म–मरण–मोचन का अर्थ है—जन्म और मरणसे मुक्त होना, उस के लिए पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं।

तथा दुःखका नाश करने के लिए भी पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं, जैसे

આરંભ કરે છે. માનન અર્થાત્ જનતા દ્વારા મળવાવાળો સત્કાર, તે સત્કાર માટે-કીર્તિસ્તંભ (મેમોરિયલ) આદિ બનાવીને સમારંભ કરે છે. પૂજનનો અર્થ છે-વસ્ત્ર અથવા રત્ન આદિનો પુરસ્કાર પ્રાપ્ત કરવો. તે માટે શિલ્પીલોક રાજાની કે દેવતાની પ્રતિમા બનાવવામાં સમારંભ કરે છે.

જન્મ મરણ મોચન (મુકાવવા) માટે પણ પૃથ્વીકાયનો સમારંભ કરવામાં આવે છે. જન્મના માટે જેમ ભવાન્તરમાં સુખ પ્રાપ્ત કરવા માટે દેવકુલ આદિના નિર્માણ કરાવવામાં, અને મૃત્યુ માટે જેમ મૃત પિતા આદિનું સ્મારક સ્તૂપ-ચૈત્ય બનાવવામાં, મોચન અર્થાત્ મુક્તિને માટે દેવભવન એવં તેની પ્રતિમા બનાવવામાં, અથવા જન્મ-મરણ-મોચનનો અર્થ છે-જન્મ અને મરણથી મુક્ત થવું તે માટે પૃથ્વીકાયનો સમારંભ કરે છે

તથા દુઃખનો નાશ કરવા માટે પણ પૃથ્વીકાયનો સમારંભ કરે છે જેમ-ગ્રીષ્મના

ग्रीष्मतापादिनिवारणार्थं, स्वचक्रपरचक्रभयनिवृत्त्यै च भूमिगृहप्राकारादिरचने।

सः=जीवनपरिवन्दनमाननपूजनाद्यर्थं जनः स्वयमेव पृथिवीशस्त्रं समारभते=पृथिव्युपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं व्यापारयति। अन्यैर्वा पृथिवीशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् समनुजानाति=अनुमोदयति।

एवमतीतानागताभ्यां, तथा मनोवाक्कायैश्च पृथिवीशस्त्रसमारम्भ-भेदा अवगन्तव्याः।

(७) वेदनाद्वारम्—

पृथिवीशस्त्रं समारभमाणः किं फलं प्राप्नोतीत्याह–'तं से अहियाए' इत्यादि।

ग्रीष्म के ताप से बचने के लिए, अथवा स्वचक और परचक्र के भयकी निवृत्ति, के लिए, भोंहरा या चहारदीवारी (प्रकोटा) बनवाना। इस प्रकार जीवन परिवन्दन मानन और पूजन आदि के लिए मनुष्य स्वय ही पृथ्वीशस्त्रका समारम्भ करता है अर्थात् पृथिवी का घात करने वाले द्रव्य और भावशस्त्र का व्यापार करता है और पृथिवीशस्त्र का प्रयोग करने करानेवाले दूसरों का अनुमोदन करता है।

इस प्रकार अतीत और अनागत से तथा मन, वचन और कायसे पृथिवीशस्त्र के आरम्भ के भेद समझलेने चाहिए

(७) वेदनाद्वार–

पृथिवीशस्त्र का आरम्भ करनेवाला क्या फल पाता है? सो कहते हैं–'तं से अहियाए' इत्यादि।

તાપથી બચવા માટે અથવા સ્વચક્ર અને પરચક્રના ભયની નિવૃત્તિ માટે ભોયરા અથવા કોટ બનાવવા.

આ પ્રમાણે જીવન, પરિવંદન, માનન, અને પૂજન આદિ માટે મનુષ્ય પોતેજ પૃથ્વી–શસ્ત્રનો સમારંભ કરે છે અર્થાત્ પૃથ્વીનો ઘાત કરવાવાળા દ્રવ્ય અને ભાવ શસ્ત્રના વ્યાપાર કરે છે તથા બીજા પાસે પૃથ્વીશસ્ત્રનો વ્યાપાર કરાવે છે અને પૃથ્વીશસ્ત્રનો પ્રયોગ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે

આ પ્રમાણે અતીત અને અનાગત (ભૂત–ભવિષ્ય)થી તથા મન, વચન અને કાયાથી પૃથ્વીશસ્ત્રના આરંભના ભેદોને સમજી લેવા જોઈએ

(૭) વેદનાદ્વાર—

પૃથ્વીશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા શું ફળ પામે છે? તે કહે છે–'तं से अहियाए' ઈત્યાદિ.

तत्–पृथिवीकायसमारम्भणं तस्य=पृथिवीकाय समारभमाणस्य अहिताय=अकल्याणाय भवतीति शेषः। तत्–तदेव च पृथिवीकायसमारम्भणमेव च तस्य पृथिवीकाय समारभमाणस्य अबोधये=सम्यक्त्वाऽलाभाय, जिनधर्माप्राप्तयेऽभावाय च भवति। पृथिवीकायसमारम्भणं हि कृतकारितानुमोदितभेदेन त्रिविधं, तस्यातीतवर्तमानानागतभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सति नवविधं भवति नवविधस्यापि पृथिवीकायसमारम्भस्य मनोवाक्काययोगभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सप्तविंशति भेदा भवन्ति। एवंविधपृथिवीकायसमारम्भप्रवृत्तः खलु षट्कायारम्भसंपादनजन्य-घोरतरदुरितार्जनेन दुरन्तसंसारदावानलज्वालाक्रान्तः सन् प्राप्यानन्तनरकनिगोदादि दुःखमनुभवन् न कदाचित्कल्याणं शाश्वतसुखप्रदं मोक्षमार्गं प्राप्नोतीति भावः ॥३॥

वह पृथिवीकाय का आरंभ आरंभ करने वाले के अहित के लिए और अबोधि के लिए होता है। अर्थात् आरंभ करने से सम्यक्त्व और जिनधर्म की प्राप्ति नहीं होती है।

पृथिवीकाय का आरंभ–करना कराना, और अनुमोदन के भेद से तीन प्रकार का है। इन तीनों भेदों के अतीत वर्तमान और अनागत के भेद से तीन–तीन भेद करने पर आरम्भ नौ प्रकार होता है। इन नौ भेदों का मन, वचन और काय से गुणाकार कर देने पर सत्ताईस भेद हो जाते हैं।

इस प्रकार के पृथिवीकाय के समारम्भ में प्रवृत्त पुरुष छहों कायों का आरम्भ करता है और अत्यन्त घोर पाप उपार्जन करके दुरन्त संसाररूपी दावानलकी ज्वालाओं में पड़कर नरक निगोद आदि के दुःख भोगता हुआ न कभी कल्याण की प्राप्ति करता है और न शाश्वत सुख देनेवाले मोक्षमार्ग को पाता है ॥ ३ ॥

તે પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવાવાળાના અહિત માટે અને અબોધિને માટે હોય છે અર્થાત્–આરંભ કરવાથી સમ્યક્ત્વ અને જિનધર્મની પ્રાપ્તિ થતી નથી.

પૃથ્વીકાયનો આરંભ–કરવો, કરાવવો અને કરવાવાળાને અનુમોદન આપવો. વગેરેના ભેદથી ત્રણ પ્રકારનો છે એ ત્રણેય ભેદોના ભૂતકાળ, ભવિષ્યકાળ અને વર્તમાનકાળના ભેદથી ત્રણ ત્રણ ભેદ કરવાથી આરંભ નવ પ્રકારનો છે એ નવ ભેદોને મન, વચન અને કાયા, આ ત્રણથી ગુણવા વડે કરી સત્તાવીશ ભેદ થઈ જાય છે

આ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયના સમારંભમાં પ્રવૃત્ત પુરૂષ છ કાયોનો આરંભ કરે છે અને અત્યન્ત ઘોર પાપ ઉપાર્જન કરીને દુરન્તસંસારરૂપી દાવાનલની જ્વાલાઓમાં પડીને, નરક–નિગોદ આદિનાં દુઃખ ભોગવતાં કોઈ વખત પણ કલ્યાણની પ્રાપ્તિ કરી શકતા નથી અને શાશ્વત સુખ દેવાવાળા મોક્ષમાર્ગને પણ પ્રાપ્ત થતા નથી. (૩)

(८) निवृत्तिद्वारम्

येन तु तीर्थंकरादीनां समीपे पृथिवीकायजीवस्वरूप ज्ञातं स एवं विजानातीत्याह–'से त संबुज्झमाणे' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

से तं संबुज्झमाणे आयाणीय समुट्ठाय सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणं अंतिए । इहमेगे सिणायं भवइ–एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए, इच्चत्थं, गढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थ समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू. ४ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीय समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणामन्तिके इहैकेषां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसति ॥ सू. ४ ॥

---

(८) निवृत्तिद्वार–

जिसने तीर्थंकर आदिके समीप में पृथिवीकाय के जीवों का स्वरूप जान लिया है, वह इस प्रकार जानता है—'से तं' इत्यादि ।

मूलार्थ—जो पुरुष तीर्थंकर भगवान् के अथवा अनगारों के निकट उपदेश सुनकर समझता है और उपादेय (चारित्र) को अङ्गीकार करके विचरता है उसे ज्ञात हो जाता है कि पृथिवीकायका यह आरभ ग्रथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है । इस में आसक्त पृथ्वीशस्त्र का आरभ, करने वाला लोक तरह–तरह के शास्त्रों से पृथ्वीकायका आरभ करके अन्य अनेक प्रकार के प्राणीकी हिंसा करता है ॥ सू ४ ॥

---

(૯) નિવૃત્તિદ્વાર

જેણે તીર્થંકર આદિના સમીપમા પૃથ્વીકાયના જીવોનુ સ્વરૂપ જાણી લીધું છે, તે આ પ્રમાણે જાણે છે–'से तं' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ–જે પુરૂષ તીર્થંકર ભગવાનની અથવા અણુગારોની સમીપ ઉપદેશ સાભળીને સમજે છે, અને ઉપાદેય (ચારિત્ર)ને અગીકાર કરીને વિચરે છે, તેને માલૂમ પડે છે કે–પૃથ્વીકાયનો આરભ એ ગ્રથ છે, એ મોહ છે, એ માર છે, એ નરક છે, એમા આસક્ત પૃથ્વીશસ્ત્રનો આરભ કરવાવાળા જાત–જાતના શસ્ત્રથી પૃથ્વીકાયનો આરભ કરીને અન્ય અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે (૪)

॥ टीका ॥

यः खलु भगवतः=तीर्थंकरस्य, अनगाराणाम्=उदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम्, अन्तिके=समीपे, श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य, आदानीयम्, उपादेय सर्वसावद्ययोग-परित्यागरूपं चारित्रं समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=पृथिवीकायसमारम्भणम् संबुध्यमानः=अहितावोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवतीति ।

स हि एवं विचारयति-इह मनुष्यलोके एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसमात सम्यग्ज्ञानवैराग्याभ्यामात्मार्थिनामेव ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?-त्याकाङ्क्षायामाह—'एस खलु गंथे' इत्यादि ।

एषः पृथिवीकायसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=ग्रथ्यते=बध्यतेऽनेनेति ग्रन्थः=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारात् पृथिवीकायसमारम्भस्य

टीकार्थ—जो भगवान् तीर्थंकर के या उनके निर्ग्रन्थ श्रमणों के समीप उपदेश सुनकर उपादेय को अर्थात् सर्वसावद्ययोग के त्यागरूप चारित्र को अङ्गीकार करके विचरता है वह पृथ्वीकायके समारम्भ को अहितकर और अबोधिजनक समझता है ।

वह इस प्रकार विचार करता है—इस मनुष्य लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से जिन्हें सम्यग्ज्ञान और वैराग्य हो गया है उन आत्मार्थी पुरुषों को ही ज्ञात होता है। उन्हें क्या ज्ञात होता है ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं— एस खलु गंथे ' इत्यादि ।

यह पृथ्वीकाय का समारम्भ निश्चय ही ग्रंथ है अर्थात् आठ प्रकार के कर्मोंका बंध है। कारण में कार्यका उपचार करके पृथिवीकाय के समारम्भ को यहाँ ग्रन्थ कहा है।

ટીકાર્થ—જે ભગવાન તીર્થંકરની અથવા તેના નિર્ગ્રન્થ શ્રમણોની સમીપ ઉપદેશ સાંભળી ઉપાદેયને અર્થાત્ સર્વસાવદ્યયોગના ત્યાગરૂપ ચારિત્રને અંગીકાર કરીને વિચરે છે, તે પૃથ્વીકાયના સમારંભને અહિતકર અને અબોધિજનક સમજે છે

તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે કે—આ મનુષ્ય લોકમાં શ્રમણ નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી જેને સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય થઈ ગયો છે તે આત્માર્થી પુરૂષોને જ જાણવામાં હોય છે

તે શું જાણવામાં હોય છે ? એવી શંકા થતાં કહે છે— एस खलु गंथे ઇત્યાદિ આ પૃથ્વીકાયનો સમારંભ નિશ્ચયજ ગ્રંથ છે. અર્થાત્ આઠ પ્રકારના કર્મોનો બંધ છે કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને પૃથ્વીકાયના સમારંભને અહિં ગ્રંથ કહ્યો છે આશય એ છે કે—

ग्रन्थरूपत्वम्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा–एष एव पृथिवीसमारम्भः मोहः=विपर्यासः, विपरीतज्ञानरूपः । तथा–एष एव मारः=मरणम् निगोदादिमरणरूपः । तथा–एष खलु नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध–मोह–मरण–नरकरूपं घोरं दुःखफलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा गृद्धः=विषयभोगासक्तः लोकः=संसारी जीवः इत्यर्थं=एतदर्थमेव–कर्मबन्धमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तते ।

यद्यपि–विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमानन-पूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं च पृथिवीशस्त्रसमारम्भं करोति

आशय यह है कि आरभ–ग्रन्थ (बध) का कारण होने से ग्रन्थ कहा गया है । इसी प्रकार का उपचार आगे के कथन में भी समझ लेना चाहिए ।

यह पृथिवीकायसमारभ मोह अर्थात् विपर्यास है–विपरीत ज्ञानरूप है, तथा यही आरम्भ, निगोद आदि मरणरूप है । तथा यही आरभ नरक है अर्थात् नारकी जीवों के लिए दश प्रकार की क्षेत्र वेदनाओं का स्थान है । इस समारंभ के कारण कर्मबध, मोह, मरण एव नरकरूप घोर दु.खमय फल प्राप्तकर के भी अज्ञानी लोग वार–बार इसी की इच्छा करते हैं । अथवा ससारी जीव विषयभोगों में आसक्त होता है अर्थात् कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक के लिए ही अज्ञानी जीव प्रवृत्ति करते है ।

विषयभोगों में आसक्त जीव यद्यपि शरीर आदि को पुष्ट करने के लिए परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, दु ख का

આરભ–ગ્રથ (બધ)નુ કારણુ હોવાથી ગ્રન્થ કહ્યો છે, આ પ્રમાણેનો ઉપચાર આગળના કથનમા પણુ સમજી લેવો જોઇએ

આ પૃથ્વીકાય–સમારભ મોહ અર્થાત્ વિપર્યાસ છે, વિપરીતજ્ઞાનરૂપ છે, તથા એ આરંભ નિગોદ આદિ મરણુરૂપ છે તથા એ આરભ નરક છે અર્થાત્ નારકીના જીવો માટે દસ પ્રકારની ક્ષેત્ર વેદનાઓનુ સ્થાન છે આ સમારભના કારણે કર્મબધ, મોહ, મરણુ અને નરકરૂપ ઘોર દુ ખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણુ અજ્ઞાની લોક વારવાર તેની ઇચ્છા કરે છે અથવા સસારી જીવ વિષયભોગોમાં આસક્ત થાય છે, અર્થાત્ કર્મબધ, મોહ, મરણુ અને નરકના માટેજ અજ્ઞાની જીવ તેમા પ્રવૃત્તિ કરે છે

વિષયભોગોમા આસક્ત જીવ હજી પણુ શરીર આદિને પુષ્ટ કરવા માટે પરિવદન, માનન, અને પૂજનને માટે, જન્મ મરણુથી મુક્ત થવા માટે દુ ખનો નાશ કરવા માટે,

तथापि तत्फलं कर्मबन्धमोहमरणनरकरूपमेव समश्नुते, अतः पृथिवीकर्मसमारम्भस्य तदेव फलं भवतीति भावः। इत्यर्थमिति प्रयोगस्तु यथा—अयं संसारी लोको जायते मरणायैव, म्रियते च जननायैव, इति, तद्वत्।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव लिप्सुरस्ति, तदर्थमेव प्रवर्तते वा, इति प्रतिज्ञायां हेतुमाह—'जमिणं' इत्यादि।

यत्=यस्मात्=विरूपरूपैः = नानाविधैः शस्त्रैः=स्वकायपरकायतदुभयरूपैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण=पृथिव्युपमर्दकसावद्यव्यापारकरणेन, यद्वा—पृथिवीकायमुद्दिश्याष्टविधकर्मसमुत्पादकसावद्यव्यापारेण, इमं = पृथिवीकायं विहिनस्ति,

---

विनाश करने के लिए, पृथिवीरूप का आरंभ करता है तथापि इस आरंभ का फल उसे कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक के रूप में ही मिलता है। अत एव आशय यह है कि—कोई किसी भी अभिलाषा से पृथिवीकायका आरंभ करे मगर फल तो वही कर्म-बंध आदि ही होगा। (इत्थत्थं) इस का प्रयोग यह बतलाने के लिए किया गया है—यह संसारी जीव उत्पन्न होता है मरने के लिए और मरता है जन्मने के लिए, इसी प्रकार यह प्रयोग है।

लोक बारम्बार कर्मबंध आदि के लिए ही अभिलाषी है, अथवा—कर्मबंध के लिए ही प्रवृत्ति करता है। इस प्रतिज्ञा में हेतु कहते हैं—'जमिणं' इत्यादि।

जिस कारण से गृद्ध (आसक्त) लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से—स्वकाय परकाय और उभयकायरूप शस्त्रों से—पृथिवीकाय का समारंभ करके अर्थात् पृथिवीकाय की हिंसा करने वाला सावद्य व्यापार करके, अथवा पृथिवीकाय के निमित्त से आठों कर्म-जनक सावद्य

પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરે છે તો પણ તે આરંભનું ફળ તેને કર્મબંધ મોહ મરણ અને નરકના રૂપમાંજ મળે છે એ માટે આશય એ છે કે–કોઈ કોઈ પણ અભિલાષાથી પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરે પરન્તુ ફળ તો તે કર્મબંધ આદિજ થશે.

'ઇત્થત્થં' એનો પ્રયોગ એ બતાવવા માટે, કર્યો છે કે આ સંસારી જીવ ઉત્પન્ન થાય છે મરવાને માટે અને મરે છે તે જન્મ લેવા માટે, આ પ્રમાણે એ પ્રયોગ છે

લોક વારંવાર કર્મબંધ આદિ માટેજ અભિલાષી છે અથવા કર્મબંધ માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે. આ પ્રતિજ્ઞામાં હેતુ કહે છે– 'જમિણં' ઇત્યાદિ

જે કારણથી ગૃદ્ધ-આસક્ત લોકો નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી–સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય રૂપ શસ્ત્રોથી–પૃથ્વીકાયનો સમારંભ કરીને અર્થાત્ પૃથ્વીકાયની હિંસા કરવાવાળા સાવદ્ય વ્યાપાર કરીને અથવા પૃથ્વીકાયના નિમિત્તથી આઠ કર્મોને ઉત્પન્ન કરનાર સાવદ્ય વ્યાપારથી

छिनत्ति, भिनत्ति, प्राणरहितं करोति गृद्धो लोक इत्यादि । तथा पृथिवीशस्त्र=पृथिव्युपमर्दकं शस्त्र स्वकायपरकायतदुभयरूपं समारभमाण=व्यापारयन् अन्यान्=अप्कायादीन् अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावरांश्च, प्राणान्=प्राणिनो विहिनस्ति। पृथिवीकायहिंसया षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव प्रणिहन्तीति घोरतरं दुरितं कुर्वन् पुनः पुन. कर्मबन्धादिनरकान्तं प्राप्यापि तदर्थमेव प्रवर्त्तते न पुनर्मोक्षायेति भावः ॥ सू. ४ ॥

ननु पृथिवीकायजीवानां श्रोत्रनेत्रघ्राणरसनेन्द्रियाणि न सन्ति, नापि मनस्तेषा, कथं तर्हि दुःखवेदना संभवति ? ततश्च पृथिवीकायसमारम्भिणा

व्यापार से इस पृथिवीकाय का हनन करता है, छेदन करता है, भेदन करता है, उसे प्राणहीन बनाता है । तथा पृथिवीकाय के स्वकाय, परकाय, और उभयकायरूप शस्त्रों का उपयोग करता हुआ अप्काय आदि अनेक त्रस स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है ।

तात्पर्य यह है कि—पृथिवीकाय की हिंसा के द्वारा समस्त षड्जीवनिकायरूप लोक की हिंसा करता है । इस प्रकार अत्यन्त घोर पाप करता हुआ वारवार कर्मबंध करता है और यहाँ तक कि नरक को प्राप्त करके भी नरक के लिए ही प्रवृत्ति करता है, मोक्ष के लिए नहीं ॥ सू ४ ॥

पृथिवीकाय के जीवों में श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना—इन्द्रिय और मन नहीं है, फिर उन्हें दु ख का अनुभव कैसे हो सकता है ? और ऐसी अवस्था में पृथिवीकाय का आरभ करनेवालों को कर्मबध क्यों होता है ? इस शका का समाधान

આ પૃથ્વીકાયનો ઘાત કરે છે છેદન કરે છે ભેદન કરે છે, તેને પ્રાણહીન બનાવે છે. તથા પૃથ્વીકાયના સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાયરૂપ શસ્ત્રોનો ઉપયોગ કરતા થકા અપ્કાય આદિ અનેક ત્રસ–સ્થાવર પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે

તાત્પર્ય એ છે કે–પૃથ્વીકાયની હિંસા દ્વારા સમસ્ત ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકની હિંસા કરે છે આ પ્રમાણે અત્યન્ત ઘોર પાપ કરીને વારવાર કર્મબંધ કરે છે. અને ત્યા સુધી કે નરકને પ્રાપ્ત કરીને પણ નરક માટે જ પ્રવૃત્તિ કરે છે, મોક્ષ માટે કરતા નથી (૪)

પૃથ્વીકાયના જીવોમા શ્રોત્રેન્દ્રિય, ચક્ષુરિન્દ્રિય, ઘ્રાણેન્દ્રિય, રસના–ઇન્દ્રિય અને મન નથી, તો પછી તેને દુ ખનો અનુભવ કેવી રીતે થઈ શકશે ? અને એવી અવસ્થામા પૃથ્વીકાયનો આરભ કરવાવાળાને કર્મબંધ કેમ થઇ શકશે ? આ શકાનું

कथं कर्मबन्धः ? इति जिज्ञासायामाह—' से बेमि ' इत्यादि ।

(मूलम्)

से बेमि-अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे, अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे अप्पेगे गुप्फमब्भेर, अप्पेगे जंघमब्भेर, अप्पेगे जाणुमब्भेर, अप्पगे उरुमब्भेर, अप्पगे कडिमब्भेर, अप्पेगे णाभिमब्भेर, अप्पेगे उयरमब्भेर, अप्पेगे पासमब्भेर, अप्पेगे पिट्ठिमब्भेर, अप्पेगे उरमब्भेर, अप्पेगे हिययमब्भेर, अप्पेगे थणमब्भेर अप्पगे खंधमब्भेर, अप्पेगे बाहुमब्भेर, अप्पेगे हत्थमब्भेर, अप्पगे अंगुलिमब्भेर, अप्पेगे नहमब्भेर, अप्पेग गीवामब्भेर, अप्पेगे हणुयमब्भेर, अप्पेगे होट्ठमब्भेर, अप्पेगे दंतमब्भेर, अप्पेगे जीहमब्भेर, अप्पेगे तालुमब्भेर, अप्पगे गलमब्भेर, अप्पेगे, गंडमब्भेर, अप्पेगे कण्णमब्भेर, अप्पगे णासमब्भेर, अप्पेगे अच्छिमब्भेर, अप्पेगे भमुहमब्भेर, अप्पेगे णिडालमब्भेर, अप्पगे सीसमब्भे, अप्पगे संपमारए अप्पेगे उद्दवए ॥ सू ५ ॥

(छाया)

अथ ब्रवीमि-अप्येकः अन्धमाभिन्द्यात् अप्येकः अन्धमाच्छिन्द्यात् । अप्येकः पादमाभिन्द्यात्, अप्येकः पादमाच्छिन्द्यात् । अप्येकः गुल्फमाभिन्द्यात्२, अप्येकः जङ्घामाभिन्द्यात्२, अप्येकः जानु आभिन्द्यात्२, अप्येकः उरु आभिन्द्यात्२, अप्येकः कटिमाभिन्द्यात्२, अप्येकः नाभिमाभिन्द्यात्१, अप्येकः उदरमाभिन्द्यात्२, अप्येकः पार्श्वमाभिन्द्यात्२, अप्येकः पृष्ठिमाभिन्द्यात्२, अप्येकः उर आभिन्द्यात्२, अप्येकः

करने के लिए सूत्र कहते हैं— से बेमि इत्यादि ।

मूलार्थ—मैं कहता हूँ-कोई अन्धे को भेदे कोई अंधे को छेदे कोई पैर को भेदे कोई पैर को छेदे कोई गुल्फ को भेदे छेदे, कोई पिण्डी को भेदे छेदे कोई घुटने को भेदे छेदे कोई जांघ को भेदे छेदे कोई कमर को भेदे छेदे, कोई नाभि को भेदे छेदे, कोई पेट को भेदे छेदे कोई पसवाडे को भेदे छेदे कोई पीठ को भेदे छेदे कोई छाती

समाधान करवा माटे सूत्र कहे छे— से बेमि इत्यादि.

મૂલાર્થ—હું કહું છું કોઈ આંધળાને ભેદન કરે કોઈ આંધળાને છેદન કરે, કોઈ પગને કાપે કોઈ પગને છેદે કોઈ ગુલ્ફ-(ઘુંટી)ને ભેદે છેદે કોઈ પીંડીને ભેદે, છેદે કોઈ ઘુંટણને ભેદે છેદે કોઈ જાંઘને ભેદે છેદે કોઈ કમરને ભેદે છેદે કોઈ નાભિ(ડુંટી)ને ભેદે છેદે,કોઈ પેટને ભેદે છેદે કોઈ પાસળીઓને ભેદે-છેદે કોઈ પીઠને ભેદે-છેદે, કોઈ છાતીને ભેદે છેદે કોઈ

पृथिव्यादीनामव्यक्तैव घोरतरवेदना भवतीति भगवता केवलालोकेन साक्षात्कृत्य प्रवेदितम्।

अत्रैवान्यमपि दृष्टान्तमाह–"अप्पेगे संपमारए अप्पेगे उद्दवए" इति। एकः कश्चित् यथा सर्वावयवयुक्तं कश्चित्प्राणिनं संप्रमारयेत्=तीव्रद्वेषावेशेन शस्त्रादिप्रहारेण चेष्टारहितस्वरूपां मूर्च्छामापादयेत् तथा एकः कश्चित् मूर्च्छापन्नं उद्द्रावयेत्=प्राणेभ्यो व्यपरोपयेत्, तस्य मूर्च्छावशेन व्यक्त-वेदनाया अभावेऽपि अव्यक्ता घोरतरवेदना जायत एव, तथा पृथिवीजीवानामव्यक्ता घोरतरवेदना भवत्येव ॥ सू ५ ॥

इत्थं पृथिवीकायस्य जीवत्वं शस्त्राद्याघातेन वेदनां च प्रदर्श्य, अधुना

उसी प्रकार भगवान मोह अज्ञान वाले स्त्यानर्द्धि आदि कर्म के उदय से अप्रकट चेतना वाले पृथ्वीकाय आदि जीवों को अप्रकट किन्तु अत्यन्त दारुण वेदना होती है। यह बात भगवान् ने केवलज्ञान से साक्षात् जानकर प्रकट की है।

इसी विषय में एक दृष्टान्त और कहते हैं–'अप्पेगे' इत्यादि। जैसे–कोई पुरुष, सभी अवयवों से युक्त किसी प्राणी को तीव्र द्वेष के आवेश के वश हो कर शस्त्र आदि का प्रहार कर के चेष्टारहित–मूर्छित कर देता है, तथा कोई उस मूर्छित पुरुष को प्राणहीन करता है तो यद्यपि उस मूर्छित में व्यक्त वेदना नहीं है फिर भी अव्यक्त अत्यन्त घोर वेदना होती ही है, इसी प्रकार पृथिवीकाय में घोर अव्यक्त वेदना होती है ॥ सू. ५॥

इस प्रकार पृथिवीकाय की सचित्तता और शस्त्र आदि के आघात से होने वाली

---

(૬૬) મોહ અજ્ઞાનવાળા સ્ત્યાનર્દ્ધિ આદિ કર્મના ઉદયથી અપ્રકટ ચેતનાવાળા પૃથ્વી કાય આદિ જીવોને અપ્રકટ પરન્તુ અત્યન્ત દારુણ વેદના થાય છે, આ વાત ભગવાને કેવલ જ્ઞાનથી સાક્ષાત્ જાણીને પ્રકટ કરી છે

આ વિષયમાં એક બીજું દૃષ્ટાન્ત કહે છે–'અપ્પેગે' ઇત્યાદિ, જેમ કોઈ પુરુષ, સર્વ અવયવોથી યુક્ત કોઈ પ્રાણીને તીવ્ર દ્વેષથી આવેશને વશ થઈ શસ્ત્ર આદિનો પ્રહાર કરીને ચેષ્ટારહિત–મૂર્છિત કરી નાખે છે તથા કોઈ તે મૂર્છિત પુરુષને પ્રાણહીન કરે છે. તે મૂર્છિતમાં વ્યક્ત વેદના નથી. તો પણ અવ્યક્ત (જાણી–કોઈ શકાય નહિ તેવી રીતે) અત્યન્ત ઘોર વેદના થાય છે. એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયમાં પણ ઘોર વેદના થાય છે. ॥૫॥

આ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયની સચિત્તતા અને શસ્ત્ર આદિના આઘાતથી થવાવાળી

हृदयमाभिन्द्यात्२, अप्येकः स्तनमाभिन्द्यात्२, अप्येकः स्कन्धमाभिन्द्यात्२, अप्येकः बाहुमाभिन्द्यात्२, अप्येकः हस्तमाभिन्द्यात्२, अप्येकः अङ्गुलिमाभिन्द्यात्२, अप्येकः नखमाभिन्द्यात्२, अप्येकः ग्रीवामाभिन्द्यात्२, अप्येकः हनु आभिन्द्यात्२, अप्येकः ओष्ठमाभिन्द्यात्२, अप्येकः दन्तमाभिन्द्यात्२, अप्येकः जिह्वामाभिन्द्यात्२, अप्येकः तालु आभिन्द्यात्२, अप्येकः गलमाभिन्द्यात्२, अप्येकः गण्डमाभिन्द्यात्२, अप्येकः कर्णमाभिन्द्यात्२; अप्येकः नासामाभिन्द्यात्२, अप्येकः अक्षि आभिन्द्यात्२, अप्येकः भ्रुवमाभिन्द्यात्२, अप्येकः ललाटमाभिन्द्यात्२, अप्येकः शीर्षमाभिन्द्यात्२, अप्येकः संप्रमारयेत्, अप्येकः उपद्रावयेत् ॥ सू ५ ॥

को भेदे छेदे, कोई हृदय को भेदे छेदे, कोई स्तन को भेदे छेदे, कोई कन्धे को भेदे छेदे, कोई बाहु को भेदे छेदे, कोई हाथ को भेदे छेदे, कोई उगली को भेदे छेदे, कोई नख को भेदे छेदे, कोई गर्दन को भेदे छेदे, कोई हनु (डाढी—ठोडी) को भेदे छेदे, कोई होठ को भेदे छेदे, कोई दांत को भेदे छेदे, कोई जीभ को भेदे, छेदे, कोई तालु को भेदे छेदे, कोई गले को भेदे छेदे, कोई गडस्थल (कनपटी) को भेदे छेदे, कोई कान को भेदे छेदे, कोई नाकको भेदे छेदे, कोई आख को भेदे छेदे, कोई भौंह को भेदे छेदे, कोई ललाट को भेदे छेदे, कोई सिरको भेदे छेदे, कोई मारकर वेहोश कर दे, या कोई मार ही डाले, इस प्रकार इन्द्रियवलहीन होने पर भी उसे वेदना का अनुभव होता ही है ॥ सू ५ ॥

હૃદયને ભેદે છેદે, કોઈ સ્તનને ભેદે છેદે, કોઈ કાંધને ભેદે-છેદે, કોઈ બાહુને ભેદે છેદે, કોઈ હાથને ભેદે છેદે, કોઈ આંગળીને ભેદે-છેદે, કોઈ નખને ભેદે છેદે, કોઈ ગર્દનને ભેદે છેદે, કોઈ ડાઢીને ભેદે—છેદે, કોઈ હોઠને છેદે ભેદે, કોઈ દાંતને ભેદે છેદે, કોઈ જીભને ભેદે છેદે, કોઈ તાલુ-(તાળવા)ને ભેદે—છેદે, કોઈ ગળાને ભેદે—છેદે, કોઈ ગડસ્થલ (લમણા) કાનપટીને ભેદે—છેદે, કોઈ કાનને ભેદે—છેદે, કોઈ નાકને ભેદે—છેદે, કોઈ આંખને ભેદે—છેદે, કોઈ ભમરને ભેદે—છેદે, કોઈ લલાટને ભેદે—છેદે, કોઈ શિરને ભેદે—છેદે, કોઈ મારીને બેહોશ કરી દે, અથવા કોઈ મારીજ નાખે, આ પ્રમાણે ઇન્દ્રિયબલહીન હોવા છતા પણ તેને વેદનાનો અનુભવ થાય છે (૫)

॥ टीका ॥

'से बेमि' इत्यादि। अथेति प्रतिवाक्यमारम्भद्योतनाय। ब्रवीमि=पृथिवीकायस्य वेदनाविषये कथयामि। यथा—एकः=कश्चित् अन्ध—मन्धं च आभिन्द्यात्, तथा एकः=अपरः कश्चित् अन्धमपि आछिन्द्यात्।

अथ अन्धमित्युपलक्षणं बधिरमूकपङ्गुप्रभृतीनाम्। यः खलु जन्मान्धो जन्मबधिरो जन्ममूको जन्मपङ्गुर्मृगापुत्रवत्करचरणाद्यवयवविभागरहितः पूर्वभवार्जिताशुभकर्मोदयात् स्वहितप्राप्त्यहितपरिहारासमर्थोऽतिदयनीयदशामुपगतः।

एवंविधमन्धमान्धादिकं कश्चित् कठोरहृदयो निर्दयतयाऽतिनिशितभल्लादिना भिनत्त्येव, सुतीक्ष्णपरशुकुठारादिना छिनत्ति चेत्तदाऽसौ स्वाङ्ग भेदनच्छेदनसमयेऽव्यक्तं वेदकं न

टीकार्थ—'अथ' शब्द नया वाक्य आरंभ करने को प्रकट करता है—'कहता हूं' अर्थात् पृथिवीकाय की वेदना के विषय में कहता हूं। जैसे—कोई पुरुष अंधे अर्थात् जन्म से अंधे को भेदे छेदे। यहाँ 'अंध' पद उपलक्षण है, उस से बहिरा, गूंगा, लंगड़ा, आदि भी ग्रहण कर लेना चाहिए।

जो जीव मृगापुत्र की तरह जन्मान्ध है, जन्म से बहिरा है, जन्म से गूंगा है, जन्म से लंगड़ा है, हाथ—पैर आदि विभिन्न अवयवों का जिस के शरीर में भेद नहीं है, और जो पूर्वभव के अशुभ कर्मों के उदय से अपने हित की प्राप्ति तथा अहित के परिहार में असमर्थ है, अत्यन्त दयनीय दशा को प्राप्त है, इस प्रकार के जन्मान्ध वगैरह को कोई कठोर हृदयवाला पुरुष निर्दय हो कर आवेश के साथ बहुत तीखे भाले वगैरह से भेदता है, अत्यन्त तीखे फरसी कुठार आदि से छेदता है,

---

ટીકાર્થ—'અથ' શબ્દ નવું વાક્ય આરંભ કરવાનું પ્રગટ કરે છે 'કહું છું' અર્થાત્ પૃથ્વીકાયની વેદનાના વિષયમાં કહું છું—જેમ કોઈ મનુષ્ય અન્ધ અર્થાત્—જન્મથી અંધને (આંધળો છે તેને) ભેદે છેદે. અહિં 'અંધ'પદ તે ઉપલક્ષણ છે તેનાથી બહેરા મૂંગા, લંગડા આદિ પણ ગ્રહણ કરી લેવા જોઈએ.

જે જીવ મૃગાપુત્રની માફક જન્માંધ છે (જન્મથી આંધળો છે) જન્મથી, બહેરો છે જન્મથીજ મૂંગો છે જન્મથી લંગડો છે હાથ—પગ આદિ વિભિન્ન અવયવોના જેના શરીરમાં ભેદ નથી, અને તે પૂર્વભવના અશુભ કર્મોના ઉદયથી પોતાના હિતની પ્રાપ્તિ તથા અહિતના પરિહારમાં અસમર્થ છે અત્યન્ત દયાપાત્ર-દશાને પ્રાપ્ત છે આ પ્રકારના જ અંધ વગેરેને કોઈ કઠોર હૃદયવાળા પુરુષ નિર્દય થઈને આવેશની સાથે બહુજ તીક્ષ્ણ ભાલા વગેરેથી ભેદે છે (વિંધે છે) અત્યન્ત તીખી ધારવાળી ફરસી, કુઠાર આદિથી

पश्यति न, शृणोति, नाप्युच्चैः क्रन्दति, तावता तस्याऽजीवत्वं वेदनाया अभावो वा निश्चेतु वक्तुं वा न शक्यते, एवं पृथिवी सचेतना वेदनासहिता चेति निश्चीयते। जात्यन्धबधिरमूकपङ्ग्वादिगुणयुक्तपुरुषवत्, मृगापुत्रवत्, इत्यर्थः ।

यद्वा पञ्चेन्द्रियाणां सुव्यक्तचेतनानां पादगुल्फजङ्घाजानूरुकटिनाभ्युदरपार्श्वपृष्ठोरोहृदयस्तनस्कन्धबाहुहस्ताङ्गुलिनखग्रीवाहन्वोष्ठदन्तजिह्वाताल्वगलगण्डकर्णनासाक्षिभ्रूललाटमस्तकादिषु भिद्यमानेषु छिद्यमानेषु वा यथा घोरतरवेदना जायते तथा प्रगाढमोहाज्ञानवतां स्त्यानर्द्ध्यादिकर्मोदयाद् अव्यक्तचेतनानां

भेदन–छेदन के समय, अपने अग के भेदने–छेदने वाले को न देखता है, न सुनता है न उची आवाज से चिल्लाता हैं, इतने मात्र से उस में अजीवपना या वेदना का अभाव निश्चित नहीं किया जा सकता, और नहीं कहा जाता । इसी प्रकार पृथिवी सचेतन है और उसे वेदना भी होती है, यह बात निश्चित हो जाती है । अर्थात् जैसे मृगालोढक की तरह बहिरे, मूगे, लंगडे आदि पुरुष को वेदना होती है, उसी प्रकार पृथिवीकाय को भी वेदना होती है ।

अथवा स्पष्ट चेतना वाले पञ्चेन्द्रिय जीवों के पैर, गुल्क, जांघ, जानु, उरू, कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर–छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु, हाथ, अगुली, नख, ग्रीवा, दाढी, होठ, दात, जीभ, तालु, गला, कनपटी, कान नाक आंख, भौंह, ललाट, मस्तक आदि के भिदने–छिदने पर जैसे अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न होती है

છેદે છે, તો ભેદન–છેદનના સમયે પોતાના અંગનું ભેદન–છેદન કરનારને તે દેખતો નથી, સાભળતો નથી, ઉંચા અવાજથી શોર–બકોર કરી શકતો નથી એટલામાત્રથી તેમા અજીવપણુ અથવા વેદનાનો અભાવ નિશ્ચિત કરી શકાતો નથી, તેમ કહેવાતુ પણુ નથી એ પ્રમાણે પૃથ્વી સચેતન છે અને તેને વેદના પણુ થાય છે એ વાત નિશ્ચિત થઈ જાય છે. અર્થાત્ જેવી રીતે મૃગાલોઢીઆ પ્રમાણે–બહેરા, મૂગા, લગડા આદિ પુરૂષને વેદના થાય છે, તે પ્રમાણે પૃથ્વીકાયને પણુ વેદના થાય છે

અથવા–સ્પષ્ટ ચેતનાવાળા જન્માન્ધ આદિ પચેન્દ્રિય જીવોના પગ, ઘૂંટણુ, જાઘ, જાનૂ, ઉરૂ કમર, નાભિ, ઉદર, પાર્શ્વ, પૃષ્ઠ, ઉર–છાતી, હૃદય, સ્તન, સ્કધ, બાહુ હાથ, આગલી, નખ, ગ્રીવા દાઢી, હોઠ, દાત, જીભ, તાળુ, ગળુ, લમણા, કાન, નાક, આખ, ભમર, લલાટ, મસ્તક આદિના ભેદવા–છેદવાથી જેમ અત્યન્ત ઘોર વેદના ઉત્પન્ન થાય છે, તેમ પ્રગાઢ

पृथिव्यादीनामप्यव्यक्तैव घोरतरवेदना भवतीति भगवता केवलालोकेन साक्षात्कृत्य प्रवेदितम्।

अथैवान्यमपि दृष्टान्तमाह-"अप्पेगे संपमारए अप्पेगे उद्दवए" इति। एकः कश्चित् यथा सर्वावयवयुक्तं कञ्चित्प्राणिनं संप्रमारयेत्-तीव्रद्वेषावेशेन शस्त्रादिप्रहारेण चेष्टारहितमूर्च्छामापादयेत् तथा एकः कश्चित् मूर्च्छापन्नं उद्द्रावयेत्-प्राणेभ्यो व्यपरोपयेत्, तस्य मूर्च्छावशेन व्यक्त-वेदनाया अभावेऽपि अव्यक्ता घोरतरवेदना जायत एव, तथा पृथिवीजीवानामव्यक्ता घोरतरवेदना भवत्येव ॥ सू० ५ ॥

इत्थं पृथिवीकायस्य जीवत्वं शस्त्राद्याघातेन वेदनां च प्रदर्श्य, अधुना

उसी प्रकार प्रगाढ मोह अज्ञान वाले स्त्यानर्द्धि आदि कर्म के उदय से अप्रकट चेतना वाले पृथ्वीकाय आदि जीवों को अप्रकट किन्तु अत्यन्त दारुण वेदना होती है। यह बात भगवान् ने केवलज्ञान से साक्षात् जानकर प्रकट की है।

इसी विषय में एक दृष्टान्त और कहते हैं-'अप्पेगे' इत्यादि। जैसे-कोई पुरुष, सभी अवयवों से युक्त किसी प्राणी को तीव्र द्वेष के आवेश के वश हो कर शस्त्र आदि का प्रहार कर के चेष्टारहित-मूर्छित कर देता है, तथा कोई उस मूर्छित पुरुष को प्राणहीन करता है तो यद्यपि उस मूर्छित में व्यक्त वेदना नहीं है फिर भी अव्यक्त अत्यन्त घोर वदना होती ही है, इसी प्रकार पृथ्वीकाय में घोर अव्यक्त वेदना होती है ॥ सू० ५॥

इस प्रकार पृथिवीकाय की सचित्तता और शस्त्र आदि के आघात से होने वाली

---

(६६) મોહ અજ્ઞાનવાળા સ્ત્યાનર્દ્ધિ આદિ કર્મોના ઉદયથી અપ્રકટ ચેતનાવાળા પૃથ્વી કાય આદિ જીવોને અપ્રકટ પરન્તુ અત્યન્ત દારુણ વેદના થાય છે આ વાત ભગવાને કેવલ જ્ઞાનથી સાક્ષાત્ જાણીને પ્રકટ કરી છે.

આ વિષયમાં એક બીજું દૃષ્ટાન્ત કહે છે-'અપ્પેગે' ઇત્યાદિ જેમ કોઈ પુરૂષ, સર્વ અવયવોથી યુક્ત કોઈ પ્રાણીને તીવ્ર દ્વેષથી આવેશને વશ થઈ શસ્ત્ર આદિનો પ્રહાર કરીને ચેષ્ટારહિત-મૂર્છિત કરી નાખે છે, તથા કોઈ તે મૂર્છિત પુરૂષને પ્રાણહીન કરે છે તે મૂર્છિતમાં વ્યક્ત વેદના નથી. તો પણ અવ્યક્ત (જાણી-જોઈ શકાય નહિ તેવી રીતે) અત્યન્ત ઘોર વેદના થાય છે. એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયમાં પણ ઘોર વેદના થાય છે. ॥૫॥

આ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયની સચિત્તતા અને શસ્ત્ર આદિના આઘાતથી થવાવાળી

पश्यति न, शृणोति, नाप्युच्चैः क्रन्दति, तावता तस्याऽजीवत्वं वेदनाया अभावो वा निश्चेतु वक्तुं वा न शक्यते, एवं पृथिवी सचेतना वेदनासहिता चेति निश्चीयते। जात्यन्धबधिरमूकपङ्ग्वादिगुणयुक्तपुरुषवत्, मृगापुत्रवत्, इत्यर्थः।

यद्वा पञ्चेन्द्रियाणां सुव्यक्तचेतनानां पादगुल्फजङ्घाजानूरुकटि-नाभ्युदरपार्श्वपृष्ठोरोहृदयस्तनस्कन्धबाहुहस्ताङ्गुलिनखग्रीवाहन्वोष्ठदन्तजिह्वाताल्व-गलगण्डकर्णनासाक्षिभ्रूललाटमस्तकादिषु भिद्यमानेषु छिद्यमानेषु वा यथा घोरतर-वेदना जायते तथा प्रगाढमोहाज्ञानवतां स्त्यानद्धर्यादिकर्मोदयाद् अव्यक्तचेतनानां

भेदन—छेदन के समय, अपने अग के भेदने—छेदने वाले को न देखता है, न सुनता है, न उची आवाज से चिल्लाता हैं, इतने मात्र से उस में अजीवपना या वेदना का अभाव निश्चित नहीं किया जा सकता, और नहीं कहा जाता। इसी प्रकार पृथिवी सचेतन है और उसे वेदना भी होती है, यह बात निश्चित हो जाती है। अर्थात् जैसे मृगालोढक की तरह बहिरे, मूगे, लंगडे आदि पुरुष को वेदना होती है, उसी प्रकार पृथिवीकाय को भी वेदना होती है।

अथवा स्पष्ट चेतना वाले पञ्चेन्द्रिय जीवों के पैर, गुल्फ, जांघ, जानु, उरू, कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर—छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु, हाथ, अंगुली, नख, ग्रीवा, दाढी, होठ, दात, जीभ, तालु, गला, कनपटी, कान नाक आँख, भौंह, ललाट, मस्तक आदि के भिदने—छिदने पर जैसे अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न होती है

છેદે છે, તો ભેદન—છેદનના સમયે પોતાના અંગનું ભેદન—છેદન કરનારને તે દેખતો નથી, સાભળતો નથી, ઉચ્ચા અવાજથી શોર—બકોર કરી શકતો નથી એટલામાત્રથી તેમા અજીવપણુ અથવા વેદનાનો અભાવ નિશ્ચિત કરી શકાતો નથી, તેમ કહેવાતુ પણ નથી એ પ્રમાણે પૃથ્વી સચેતન છે અને તેને વેદના પણ થાય છે એ વાત નિશ્ચિત થઈ જાય છે. અર્થાત્ જેવી રીતે મૃગાલોઢીઆ પ્રમાણે—બહેરા, મૂગા, લગડા આદિ પુરૂષને વેદના થાય છે, તે પ્રમાણે પૃથ્વીકાયને પણ વેદના થાય છે

અથવા—સ્પષ્ટ ચેતનાવાળા જન્માન્ધ આદિ પ ચેન્દ્રિય જીવોના પગ, ઢીંચણ, જાંઘ, જાનૂ, ઉરૂ કમર, નાભિ, ઉદર, પાર્શ્વ, પૃષ્ઠ, ઉર—છાતી, હૃદય, સ્તન, સ્કંધ, બાહુ હાથ, આગલી, નખ, ગ્રીવા દાઢી, હોઠ, દાત, જીભ, તાળુ, ગળુ, લમણા, કાન, નાક, આખ, ભમર, લલાટ, મસ્તક આદિના ભેદવા—છેદવાથી જેમ અત્યન્ત ઘોર વેદના ઉત્પન્ન થાય છે, તેમ પ્રગાઢ

मोक्षमार्गतो दूरमपगतो भवतीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

(८) विशेषविचारम्-

पृथिवीकायसमारम्भपरिज्ञाने हि परिज्ञातकर्मा मुनिर्भवतीत्याह-'एत्थ' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति । तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं पुढविसत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं पुढविसत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा। जस्सेते पुढविकम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्तिबेमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इय सत्थपरिण्णाए बीओ उद्देसो समत्तो ॥ १-२ ॥

॥ छाया ॥

अत्र शस्त्रं असमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं पृथिवीशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैः पृथिवीशस्त्रं समारम्भयेत् नैवान्यान् पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानीयात्, यस्यैते पृथिवीकर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स एव मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इति शस्त्रपरिज्ञायां द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ १ । २ ॥

वह चारित्ररूप मोक्षमार्ग से दूर ही रहता है ॥ सू. ६ ॥

पृथिवीकाय के समारम्भ का परिज्ञान होने पर ही परिज्ञातकर्मा मुनि होता है, इस बात को कहते हैं- 'एत्थ' इत्यादि ।

मूलार्थ- पृथिवीकाय में शस्त्र का आरंभ न करने वाले को यह आरंभ ज्ञात होता है। उन्हें जान कर बुद्धिमान् पुरुष न स्वयं पृथिवीकाय के शस्त्र का आरंभ करे, न दूसरों से पृथ्वीकाय के शस्त्र का आरंभ कराये और न पृथ्वीकाय का आरंभ करने वाले दूसरों की अनुमोदना करे । इन पृथिवीकर्मसमारम्भों को जानने वाला ही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू. ७ ॥

એમનું કારણ છે આ આરંભ નહિ છોડવાથી તે ચારિત્રરૂપ મોક્ષમાર્ગથી દૂર રહે છે ॥૬॥

પૃથિવીકાયના સમારંભનું પરિજ્ઞાન હોવાથીજ પરિજ્ઞાતકર્મા મુનિ હોય છે, આ વાત બતાવે છે - 'एत्थ' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—પૃથ્વીકાયમાં શસ્ત્રનો આરંભ નહિ કરવાવાળાને આ આરંભની ખબર હોય છે. તેને જાણીને બુદ્ધિમાન પુરૂષ પોતે પૃથ્વીકાયના શસ્ત્રનો આરંભ કરતા નથી, બીજા પાસે પણ પૃથ્વીકાયના શસ્ત્રનો આરંભ કરાવતા નથી. અને પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપતા નથી. જે પૃથ્વીકર્મ-સમારંભોને જાણવાવાળાજ મુનિ છે, તે પરિજ્ઞાતકર્મા છે, એ પ્રમાણે હું કહું છું (૭)

तत्समारम्भे कर्मबन्धो भवतीत्याह–‘ एत्थ ’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति ॥ सू. ६ ॥

॥ छाया ॥

अत्र शस्त्र समारभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति ॥ सू. ६ ॥

॥ टीका ॥

अत्र=पृथिवीकाये शस्त्र=स्वकायपरकायतदुभयरूपं द्रव्यशस्त्र, दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपं भावशस्त्रं वा समारभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते=प्रागुक्ताः सप्तविंशतिभङ्गरूपाः, आरम्भाः=खननकृष्यादिरूपाः सावद्यव्यापाराः, अपरिज्ञाता भवन्ति=कर्मबन्धहेतुत्वेन परिज्ञाता न भवन्ति, पृथिवीशस्त्र समारभमाणः खननादिसावद्यव्यापारस्य कर्मबन्धकारणतामविज्ञाय चारित्ररूप-

---

वेदना प्रदर्शित कर के यह बताते हैं कि–पृथिवीकाय का आरभ करने में कर्म का बध होता है–‘एत्थ ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथिवीकाय का आरभ करने वाले को यह (पूर्वोक्त) आरभ ज्ञात नहीं होता है ॥ सू ६ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय में स्वकाय परकाय और उभयकायरूप द्रव्यशस्त्र का, तथा मन वचन कायका दुष्प्रणिधानरूप भावशस्त्र का व्यापार करने वाले को ज्ञात नहीं होता कि–पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकार का खनन एव कृषि आदिरूप सावद्य व्यापार कर्मबध के कारण हैं। तात्पर्य यह है कि–जो पुरुष पृथिवीकाय का आरभ करता है, उसे यह मालूम नहीं होता कि–यह सावद्य व्यापार कर्मबन्ध का कारण है, यह मालूम न होने के कारण

વેદના બતાવીને હવે એ બતાવે છે કે–પૃથ્વીકાયનો આરભ કરવામા કર્મનો બધ થાય છે–‘ एत्थ ’ ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—પૃથ્વીકાયનો આરભ કરવાવાળાને આ (પૂર્વોક્ત) આરભ જ્ઞાન હોતું નથી. (૬)

ટીકાર્થ—પૃથ્વીકાયમા સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાયરૂપ દ્રવ્યશસ્ત્રનો તથા મન, વચન, કાયાના દુષ્પ્રણિધાન (ખરાબ ભાવ)રૂપ ભાવશસ્ત્રનો વ્યાપાર કરવાવાળાને ખબર નથી હોતી કે–પૂર્વોક્ત (પૂર્વે કહેલા) સત્તાવીસ પ્રકારના ખનન (ખોદવું) એ પ્રમાણે કૃષિ–ખેતી આદિરૂપ સાવદ્ય–વ્યાપાર કર્મબધનુ કારણ છે તાત્પર્ય એ છે કે–જે પુરૂષ પૃથ્વીકાયનો આરભ કરે છે, તેને એ માલૂમ નથી કે–આ સાવદ્ય વ્યાપાર કર્મ

समारंभान् विज्ञाय सर्वान् परित्यजेत् ।

एवं यस्य एते पृथिवीकर्मसमारम्भाः पृथिवीविषया खननकृष्यादिरूपाः सावद्यक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया कर्मबन्धहेतुत्वेन विज्ञाताः, तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा=विदितपरित्यक्त सकलसावद्यक्रियाविशेषः मुनिर्भवति, न त्वपरो द्रव्यलिङ्गीत्यर्थः । इति ब्रवीमि= यथा भगवता कथितं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ७ ॥

॥ इति शस्त्रपरिज्ञाध्ययने द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ १-२ ॥

पृथ्वीकायसमारंभ को जानकर सबका त्याग करना चाहिए ।

इस प्रकार जो पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी खोदना जोतना आदि सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण समझता है, और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उन का त्याग कर देता है वही परिज्ञातकर्मा और सकल सावद्य क्रियाओं को जानने वाला पुरुष मुनि कहलाता है, सिर्फ द्रव्यलिंगी मुनि नहीं कहलाता । 'त्तिबेमि' भगवान्ने जैसा कहा है वैसा ही मैं कहता हूं ॥ ७ ॥

आचाराङ्ग-सूत्र की आचारचिन्तामणि-टीका के हिन्दी-अनुवादमें
शस्त्रपरिज्ञानामक प्रथम अध्ययनका द्वितीय उद्देश
समाप्त ॥ १-२ ॥

એટલી સત્યાવીસ પ્રકારના પૃથ્વીકાયના સમારંભ જાણી કરીને સર્વનો ત્યાગ કરવો જોઈએ.

આ પ્રમાણે જે પુરુષ પૃથ્વીકાયસમ્બન્ધી ખોદવું, ખેડવું આદિ સાવદ્ય વ્યાપારોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મબંધનું કારણ સમજે છે અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરી દે છે તે પરિજ્ઞાતકર્મા અને સકલસાવદ્યક્રિયાઓને જાણવાવાળા પુરુષ મુનિ કહેવાય છે, માત્ર દ્રવ્યલિંગી મુનિ કહેવાતા નથી. ભગવાને જેવું કહ્યું છે એવું જ હું કહું છું ॥૭॥

આચારાંગ સૂત્રની આચારચિંતામણિ ટીકાના ગુજરાતી અનુવાદમાં
શસ્ત્રપરિજ્ઞાનામક પ્રથમ અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ
સમાપ્ત થયો ॥૧-૨॥

टीका—

अत्र=पृथिवीकाये शस्त्रं=स्वकायपरकायादिकम् असमारभमाणस्य=अव्यापारयत इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावद्यक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति। ज्ञपरिज्ञया सर्वान् पृथिवीकायसमारम्भान् कर्मबन्धहेतुत्वेन अनन्तनरकनिगोदादिदुःखजनकत्वेन च परिज्ञाय चारित्ररूपमोक्षमार्गे प्रवर्तत इति भावः। उपसंहारमाह—

तत्=पृथिवीकायसमारम्भण परिज्ञाय=बन्धहेतुत्वेनाववुध्य मेधावी=सदसद्विवेकी पृथिवीशस्त्रं द्रव्यभावरूपं स्वयं नैव समारभते अपि च–अन्यैरपि पृथिवीशस्त्रं नैव समारम्भयति, पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् नैव समनुजानाति। एवं मनोवाक्कायभेदेनातीतानागतवर्त्तमानकालभेदेन च पृथिवीकाय-

---

टीकार्थ—पृथिवीकाय मे स्वकाय परकाय आदि शस्त्रों का आरभ न करने वाले को यह पूर्वोक्त सावद्यव्यापाररूप आरभ ज्ञात होता है। इन आरभों को जानने वाला अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से पृथिवीकायसबधी आरभों को कर्मबध का कारण तथा अनन्त नरक निगोद के दुखो का कारण जानकर चारित्ररूप मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होता है। उपसहार करते हैं—

पृथ्वीकाय के आरभ को बधका कारण जानकर बुद्धिमान् सत् असत् का भेद समझने वाला, द्रव्य–भावरूप पृथ्वीशस्त्रका स्वय व्यापार नहीं करता, दूसरे से व्यापार नहीं कराता और व्यापार करने वाले को अनुमोदना भी नहीं करता। इसी प्रकार मन, वचन, काय के भेद से और अतीत, अनागत, वर्तमान काल के भेद से सत्ताईस प्रकार के

ટીકાર્થ—પૃથ્વીકાયમા સ્વકાય પરકાય આદિ શસ્ત્રોનો આરભ નહિ કરવાવાળાને એ પૂર્વોક્ત સાવદ્ય વ્યાપારરૂપ આરભની ખબર હોય છે, તે આરભોને જાણવાવાળા અર્થાત્ જ્ઞપરિજ્ઞાથી પૃથ્વીકાયસમ્બન્ધી આરભોને કર્મબધનુ કારણ, તથા અનન્ત નરક નિગોદના દુખોનુ કારણ જાણીને ચારિત્રરૂપ મોક્ષમાર્ગમા પ્રવૃત્ત થાય છે. હવે ઉપસહાર કરે છે—

પૃથ્વીકાયના આરમ્ભને બધનુ કારણ જાણીને બુદ્ધિમાન સત્–અસત્ના ભેદને જાણવા–સમજવાવાળા, દ્રવ્યભાવરૂપ પૃથ્વીશસ્ત્રનો પોતે વ્યાપાર કરતા નથી, બીજા પાસે વ્યાપાર કરાવતા નથી, અને વ્યાપાર કરવાવાળાને અનુમોદન પણ કરતા નથી આ પ્રમાણે મન, વચન, કાયાના ભેદથી, અને ભૂતકાળ, ભવિષ્યકાળ, વર્ત્તમાનકાળના

सर्वविरतिरूपं पदं प्राप्तो मुनि पृथिवीकायादिसूक्ष्मजीवसमारम्भनिवृत्त्यादि कर्त्तव्यतायामल्पीयोऽपि प्रमादमात्रं स्खलनं समुपेक्षते चेत् तर्हि पुनस्तत्राधिकतरं स्खलनं कर्तुं न लज्जते, तथाविधनियमानुसारिणी हि मनोवृत्तिः, अतः स्वल्पमपि संयमतः स्खलनं यथा न भवेत् तथा प्रयतितव्यं मुनिभिः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

केनचिद् बाल्यावस्थायामन्यस्य कपर्दिकामात्रं स्तेयवृत्त्याऽपहृत्य स्वमातुरग्रे निहितम् । माता तदवलोक्य हृष्टा सती तस्मै मधुरं वस्तु ददौ । अथ पुनः पुनः स्तेयकर्मणि प्रवृत्तः स्वमातृहस्तात् पारितोषिकं प्राप्तः क्रमेण

मोक्षता दिखलाते हैं—सर्वविरतिरूप पदको प्राप्त मुनि पृथिवीकाय आदि छोटे–छोटे जीवों के आरंभ का त्याग करने में यदि प्रमाद के कारण थोडे से भी स्खलन की उपेक्षा करता है तो फिर और अधिक स्खलन करने में भी संकोच नहीं करता। मनोवृत्ति का ऐसा ही नियम है कि–गिरी सो गिरती ही जाती है अत एव मुनियों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि, जिस से संयम में तनिक भी स्खलन न हो।

इस विषय में दृष्टान्त कहते हैं—

किसी बालकने अपनी बाल्यावस्था में एक कौडी चुराकर अपनी माता के पास रख दी। माता उसे देखकर हर्षित हुई और उसने इनाम के तौर पर बालक को मीठी चीज दी। इस के बाद वह बारबार चोरी करने लगा और अपनी माता के हाथ से पारितोषिक प्राप्त करने लगा। धीरे–धीरे वह ताम्रपण (तांबे का सिक्का) कार्षापण

બતાવે છે–સર્વવિરતિરૂપ પદને પામેલા મુનિ પૃથ્વીકાય આદિ નાના–નાના જીવોના આરંભનો ત્યાગ કરવામાં જે પ્રમાદના કારણે થોડાં પણ સ્ખલન (ત્રુટી)ની ઉપેક્ષા કરે છે. તો ફરીને વધારે સ્ખલન કરવામાં પણ સંકોચ કરતા નથી. મનોવૃત્તિનો એવોજ નિયમ છે કે–નીચે પડવા પછી વધારે નીચે પડી જાય છે એ કારણથી મુનિઓએ એવો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ કે–જેનાથી સંયમમાં થોડું પણ સ્ખલન નહી હોય.

આ વિષયમાં દૃષ્ટાન્ત કહે છે —

કોઈ બાળકે પોતાની બાલ્યાવસ્થામાં એક કોડી ચોરીને પોતાની માતાની પાસે રાખી દીધી; માતા તેને જોઈને રાજી થઈ અને તેને ઈનામ આપવાના રૂપથી બાળકને મીઠી વસ્તુ આપી. ત્યાર પછી તે બાળક વારંવાર ચોરી કરવા લાગ્યો. અને પોતાની માતા પાસેથી (માતાના હાથથી) ઈનામ મેળવવા લાગ્યો. ધીરે ધીરે તે તામ્રપણ–ત્રાંબાના

अथ तृतीयोद्देशः ।

द्वितीयोद्देशे पृथिव्याः सचित्तत्वं तत्र पृथक्पृथगनेकपृथिवीकायजीवाश्रितत्वं च प्रसाधितम्, तस्य हिंसया कर्मबन्धो भवतीत्युक्तम्, अन्ततश्च पृथिवीकायजीवहिंसानिवृत्त्या मुनिर्भवतीति सिद्धान्तितम् । इदानीमपां सचित्तत्वमनेकाप्कायजीवाश्रितत्व बोधयता भगवताऽप्कायहिंसया षट्कायजीवहिंसासंपातात् कर्मबन्धो भवति, तथाऽप्कायहिंसानिवृत्त्या च मुनित्वं लभ्यत इति बोधयितु तृतीयोद्देशः प्रारभ्यते– 'से बेमि' इत्यादि ।

अप्कायजीवस्वरूपविचारणायां प्रथममनगारस्य योग्यता दर्शयति–

तीसरा उद्देश

द्वितीय उद्देशक में पृथिवी की सचित्तता सिद्ध की और पृथिवी में पृथक्–पृथक् अनेक पृथिवीकाय के जीवों का रहना सिद्ध किया । यह भी बतलाया जा चुका है कि–उन जीवों की हिंसा करने से कर्म का बध होता है । अन्त में यह भी प्रमाणित किया है कि–पृथ्वीकाय के जीवों की हिंसा का त्याग करने से मुनि होता है । अब यह बतलाते हैं कि–अप्काय सचित्त है, अनेक अप्काय के जीवों से आश्रित है और अप्काय की हिंसा से षट्काय के जीवों की हिंसा होती है और अप्काय की हिंसा का त्याग करने वाला मुनिपन पाता है । यह सब बतलाने के लिए तीसरा उद्देश आरम किया जाता है–'से बेमि' इत्यादि ।

अप्काय के जीवों के स्वरूप का विचार करते हुए सर्व प्रथम अनगार की

त्रीजो उद्देशक–

બીજા ઉદ્દેશકમાં પૃથ્વીની સચિત્તતા સિદ્ધ કરી છે અને પૃથ્વીમા જૂદા–જૂદા અનેક પૃથ્વીકાયના જીવો રહે છે તે સિદ્ધ કર્યું છે એ પણ બતાવવામા આવ્યુ છે કે તે જીવોની હિંસા કરવાથી કર્મને બધ થાય છે અન્તમા એ પણ પ્રમાણિત કર્યું કે પૃથ્વીકાયના જીવોની હિંસાનો ત્યાગ કરવાથી મુનિ થાય છે હવે તે બતાવે છે કે –અપ્કાય સચિત્ત છે, અનેક અપ્કાયના જીવોથી આશ્રિત છે, અને અપ્કાયની હિંસાથી ષટ્કાયના જીવોની હિંસા થાય છે, અને અપ્કાયની હિંસાનો ત્યાગ કરવાવાળા મુનિપણાને પામે છે. એ સર્વ બતાવવા માટે ત્રીજા ઉદ્દેશકનો આરભ કરવામા આવે છે –'સેબેમિ' ઈત્યાદિ

અપકાયના જીવોના સ્વરૂપનો વિચાર કરતા થકા સૌથી પ્રથમ અણુગારની યોગ્યતા

तत्पोरस्तु 'समदयशूलारोपणफलप्रदायी मागापकर्मी, न तु भवान् । इत्युक्त्वा सर्वं पूर्ववृत्तं राज्ञे विज्ञापयामास । ततः स्वकृतस्तेयकर्मणो विपाकं शूलारोपेण घोरतरवेदनां माप्नुवन्मृतः । तस्मात् स्वल्पोऽपि दोषो महाऽनर्थाय भवतीति विज्ञायात्मार्थिभिर्मुनिभिः संयमतः स्वल्पमपि स्खलनं यथा न भवेत् तथा वर्तितव्यम् ।

तप:संयमे कदाचिदाकस्मिकस्खलनसंपातस्त्वन्य एव, स्खलनोपेक्षणमप्यन्यदेव, यतः स्खलनोपेक्षया पुनरुत्तरोत्तरस्खलनवृद्ध्या साधुत्वमेव नश्यतीति विचिन्त्य जागरूकाः साधवो भवनवागन्तुकस्खलनपरंपराविरहिताः पूर्वजातस्खलन-

---

चोर—महाराज ! इसी के कारण मुझे घोर दुःख देने वाली शूली पर चढ़ना पड़ रहा है, यही मेरे प्राण लेने वाली है, आप नहीं । यह कह कर चोरने अपना सम्पूर्ण पूर्व-वृत्तांत राजा को सुना दिया ।

तत्पश्चात् अपने किये चौर्य कर्म का घोरवेदनारूप फल—शूली पर चढ़नेरूप—को भोगता हुआ वह चोर मर गया ।

अत एव थोड़ा—सा भी दोष महान् अनर्थ का कारण बन जाता है, ऐसा समझकर आत्मकल्याण के अभिलाषी मुनियों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिस से संयम में तनिक भी स्खलन न हो ।

तप और संयम में कदाचित् अकस्मात् स्खलना की बात दूसरी है किन्तु स्खलना की उपेक्षा करना और बात है, उस का कारण यह है कि स्खलना की उपेक्षा करने से उत्तरोत्तर स्खलना बढ़ती ही चली जाती है, ऐसा विचार करके सदैव सावधान

ચોર કહે—મહારાજ ! એ માતાના કારણે જ મારે ઘોર દુઃખ આપવાવાળી શૂળી ઉપર ચઢવાનું થાય છે એ મારા પ્રાણ લેવાવાળી છે આપ નહિ. આ પ્રમાણે કહીને ચોરે પોતાની આગળની સંપૂર્ણ હકીકત રાજાને સંભળાવી. તે પછી પોતાનું કરેલ ચોરીનું કર્મનું ઘોરવેદનારૂપ ફલ—શૂળી પર ચડવાનું તે ભોગવતો એવો તે ચોર મરણ પામ્યો.

એટલે કે—થોડો પણ દોષ મહાન્ અનર્થનું કારણ બની જાય છે. એ પ્રમાણે સમજીને આત્મકલ્યાણના અભિલાષી મુનિઓએ એવો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ કે જેનાથી સંયમમાં થોડુંક પણ સ્ખલન ન થાય.

તપ અને સંયમમાં કોઈ વખત અકસ્માત્ સ્ખલનની વાત જુદી છે. પણ સ્ખલનની ઉપેક્ષા કરવી તે બીજી વાત છે તેનું કારણ એ છે કે—સ્ખલનની ઉપેક્ષા કરવાથી ઉત્તરોત્તર સ્ખલન (ભૂલ) વધતું જ જાય છે એવો વિચાર કરીને સદૈવ—હંમેશા સાવધાન રહેવાવાળા

ताम्रपण–कार्षापण–रूप्यक – दीनार–रत्न – स्वर्ण–मणि– माणिक्यादिहरणप्रवीणः कस्यचिन्नृपस्य कोशागारं प्रविष्टः। ततः प्रचण्डभुजदण्डकैस्तद्रक्षकैः सघोषणं धृतो राजान्तिकं समानीतः। तदपराधं विज्ञाय क्रोधाविष्टेन राज्ञा समादिष्टम्–अयं चौरः शूले समारोप्यताम्, इति।

असौ पृष्टश्च राज्ञा–तव काचिदिच्छा वर्तते? चेद् ब्रूहि। चौरेणोक्तम्–राजन्! स्वमातुर्मिलनं प्रार्थये। अथ नृपाज्ञया तज्जननी तत्रागत्य मिलिता। स चौरस्तत्र राज्ञः समक्षमेव सवेगमुत्थाय सत्वरं मातुर्नासिकां दन्तैश्छिच्छेद। ततोऽसौ राज्ञा पृष्टः–त्वया कथमेवं दुश्चरितमाचरितम्?। चौरोऽवदत्–इयमेव ममै-

---

(चौअन्नी) रुपया, दीनार (सुवर्ण–मुहर), रत्न, सुवर्ण, मणि, माणिक आदि चुराने में भी प्रवीण हो गया। वह किसी राजा के खजाने में घुसा। खजाने के बलवान् पहरेदारों ने उसे पकड लिया और राजा के सामने पेश किया। राजा उसका अपराध सुनकर क्रोधित हुआ, उसने आज्ञा दी–'इस चोर को शूली पर चढा दो'।

राजाने उस से पूछा–अगर तुम्हारी कोई इच्छा हो तो कहो।

चोरने कहा–' महाराज! मैं अपनी माता से मिलने की प्रार्थना करता हूँ।

राजा की आज्ञा से चोर की माता वहाँ आकर मिली। चौरने राजा के सामने ही वेग के साथ उठ कर जल्दी से अपनी माता की नाक दांतों से काटली। यह देखकर राजाने पूछा–अरे! तूने यह दुष्कर्म क्यों किया?

સિક્કા, ચાર આની, રૂપિઆ, સોના મહોર, રત્ન, સોનું, મણિ, માણેક આદિ ચોરવામાં પણ પ્રવીણ થઈ ગયો. (કેટલોક સમય જતા) તે કોઈ રાજાના ખજાનામાં ઘુસી ગયો. ખજાનાના બલવાન્ પહરેદારો રક્ષકોએ તેને પકડી લીધો અને રાજાની સામે-હાજર કર્યો. રાજા તેનો અપરાધ સાંભળીને ક્રોધાયમાન થયા, અને આજ્ઞા આપી કે એ ચોરને શૂલી પર ચઢાવી દ્યો!

રાજાએ તેને પૂછયું કે તારી કાંઈ ઇચ્છા હોય તો કહો.

ચોરે કહ્યુ–' મહારાજ! હું મારી માતાને મળવાની પ્રાર્થના કરૂ છુ.'

રાજાની આજ્ઞાથી ચોરની માતા ત્યાં આગળ આવી અને ચોરને મળી, ચોરે રાજાના સામેજ વેગથી એકદમ ઉઠીને જલ્દીથી પોતાની માતાનું નાક પોતાના દાંતથી કાપી લીધુ તે જોઈને રાજાએ પૂછયુ–અરે! તેં આવું દુષ્કર્મ શા માટે કર્યું?

मुर्व तत् कथयामि । स पृथिवीकायसमारम्भमसमारममाणः परिज्ञातपृथिवीकर्मसमारम्भो यथा संपूर्णोऽनगारो भवति, अपिच—यथाऽनगारो न भवति, तद् द्वयमपि ब्रवीमि, वक्ष्यति च—'अणगारामोत्ति एगे पवयमाणा' इत्यादि। सावद्यक्रियाया गृहाश्रयत्वात् गृहपरित्याग एव मुनित्वे प्रधानकारणमिति बोधनाय साध्वादिशब्दं परित्यज्य 'अनगार'—शब्दोपादानम्। कथं सर्वथाऽनगारो भवति? इत्याकाङ्क्षायामाह—

'उज्जुकडे' इति, ऋजुकृत', अर्जयति क्षान्त्यादिगुणानिति ऋजुः। यद्वा—अर्जयति—सकलप्राणिगणहितं दयास्वभावमिति ऋजुः। यद्वा—अर्जयति=यथावस्थितात्मस्वरूपं प्रापयतीति ऋजुः। यद्वा—अर्जयति=प्रापयति प्राणवतिर्क

प्रकार पूर्ण अनगार होता है, और किस प्रकार पूर्ण अनगार नहीं होता, ये दोनों बातें मैं कहता हूँ—'अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा' इत्यादि सूत्र में आगे कहा जायगा।

गृह में सावद्यक्रिया अवश्य होती है, अत एव गृह का त्याग करना ही मुनिपन का प्रधान कारण है। यह बात प्रकट करने के लिए साधुवाचक अन्य शब्द छोड़कर यहाँ अनगार शब्द का प्रयोग किया है। पूरा अनगार किस प्रकार बनता है, ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं—'उज्जुकडे' इति।

उज्जुकडे का संस्कृत रूप है 'ऋजुकृतः'। क्षमा आदि गुणों को उपार्जन करने वाला ऋजु कहलाता है। अथवा समस्त प्राणियों के हितरूप दया को उपार्जन करने वाला ऋजु कहलाता है। अथवा आत्मा को अपने असली स्वरूप पर पहुँचाने

અણગારવાળા પુરૂષ, જે પ્રમાણે પૂર્ણ અણગાર થાય છે અને જે પ્રમાણે પૂર્ણ અણગાર નથી થતા, તે બન્ને વાતો હું કહું છું —અણગારા મોત્તિ એગે પવયમાણા ઈત્યાદિ સૂત્રમાં આગળ કહેવામાં આવશે.

ઘરમાં સાવદ્યક્રિયા અવશ્ય થાય છે એટલા માટે ઘરનો ત્યાગ કરવો તેજ મુનિપણાનું પ્રધાન કારણ છે એ વાત પ્રગટ કરવા માટે સાધુવાચક અન્ય શબ્દ છોડીને અહિં 'અનગાર શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે. પૂરા અણગાર કેવી રીતે બને છે, એવી ઈચ્છા થવાથી કહે છે— ઉજ્જુકડે ઇતિ.

'ઉજ્જુકડે'નું સંસ્કૃત રૂપ 'ઋજુકૃત' થાય છે ક્ષમા આદિ ગુણોનું ઉપાર્જન કરવાવાળા ઋજુ (સરલ-સિધા) કહેવાય છે અથવા સમસ્ત પ્રાણીઓના હિતરૂપ દયાને ઉપાર્જન કરવાવાળા ઋજુ કહેવાય છે. અથવા આત્માને અસલ સ્વરૂપ સુધી પહોંચાવા

दोषमपनेतुं शक्नुवन्ति । तदेव विशदयन् सुधर्मा स्वामी प्राह–'से वेमि' इत्यादि ।

द्वितीयोद्देशसमाप्तौ "जस्सेते पुढविकम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मा" इत्युक्तम् । अधुना तु–न च तावतैव सर्वथा मुनिर्भवितुमर्हति। यथा भवति तथा दर्शयितुं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह–'से वेमि' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

से वेमि–से जहावि अणगारे उज्जुकडे नियागपडिवण्णे अमाय कुव्वमाणे वियाहिए ॥ सू० १ ॥

॥ छाया ॥

तद् ब्रवीमि स यथापि अनगार ऋजुकृतः नियागप्रतिपन्नः अमायां कुर्वाणो व्याख्यातः ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

'से वेमि' इत्यादि । तद् ब्रवीमि यदन्यच्च भगवदन्तिके मया

रहने वाले साधु नयी–नयी होने वाली स्खलना के दोषों से बच सकते हैं । यही बात स्पष्ट करते हुए सुधर्मा स्वामी आगे कहते हैं–'से वेमि' इत्यादि ।

मूलार्थ (भगवान् के मुखारविन्द से जो सुना है,) सो कहता हूँ–ऋजुकृत मोक्षमार्ग मे प्राप्त और माया न करने वाला अनगार कहा गया है ॥ सू १ ॥

टीकार्थ—भगवान् के समीप और भी जो सुना है वह कहता हूँ । पृथ्वीकाय के विषय में शस्त्र का आरभ न करने वाला पृथ्वीकाय के आरम को जानने वाला पुरुष जिस

સાધુ–નવી નવી થવાવાળી સ્ખલના દોષોથી બચી શકે છે, એ વાત સ્પષ્ટ કરીને સુધર્મા સ્વામી આગળ કહે છે–'से वेमि' ઇત્યાદિ

બીજા ઉદ્દેશકની સમાપ્તિમા કહ્યું હતુ કે–જે પુરૂષ પૃથ્વીકાયના આરભને જાણીને તેનો ત્યાગ કરી આપે છે, તે મુનિ છે અહિં એ બતાવવામા આવે છે કે–આટલુ કરવા માત્રથી જ કોઈ પૂરી રીતે મુનિ થઇ શકતા નથી, મુનિ થવાને માટે બીજી–જે જે વાતોની (જાણવાની) આવશ્યકતા છે, તેને સુધર્મા સ્વામિ કહે છે–'से वेमि' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—(ભગવાનના મુખારવિંદથી જે સાભળ્યુ છે) તે કહુ છુ —ઋજુકૃત, મોક્ષમાર્ગમા પ્રાપ્ત અને માયા નહિ કરવાવાળા અણુગાર કહ્યા છે (૧)

ટીકાર્થ—ભગવાનની પાસેથી બીજુ પણ જે સાભળ્યુ છે, તે કહુ છુ —પૃથ્વીકાયના વિષયમા શસ્ત્રનો આરભ નહિ કરવાવાળા, પૃથ્વીકાયના આરંભને

तथा नियागप्रतिपन्नः, नि=निश्चयेन यजति=सम्यग्गमनं कुर्वन्ति यत्र स नियागः=मोक्षमार्गः ज्ञानक्रियालक्षणः । यद्वा—नि=निश्चयेन यजति=ददाति सिद्धिगतिमिति नियागः=क्षान्त्यादिदशविधो यतिधर्मः, तं प्रतिपन्नः=प्राप्तः ।

तथा 'अमायां कुर्वाणः' माया=वीर्याचारसंगोपनं परवञ्चनं वा, न माया अमाया, तां कुर्वाणः अनगारो व्याख्यातः=भगवता कथितः ।

अयं भावः—न केवलं पृथिवीकायसमारम्भमात्रनिवृत्त्याऽनगारो भवति किन्तु यः खलु पृथिवीकायसमारम्भनिवृत्तः परिहारसकलसावद्यकर्मा निरव-

अब 'नियागप्रतिपन्न' शब्दका अर्थ करते हैं। 'नि' अर्थात् निश्चय से 'याग' अर्थात् सम्यक् गमन जहाँ किया जाता है उसे 'नियाग' या मोक्षमार्ग कहते है। ज्ञान और क्रिया मोक्ष का मार्ग है।

अथवा 'नि' अर्थात् निश्चय से 'याग' अर्थात् सिद्धिगति देने वाला क्षमा आदि दस प्रकार का यतिधर्म 'नियाग' कहलाता है, ऐसे नियाग को जो प्राप्त हो चुका हो वह नियागप्रतिपन्न है।

तथा माया अर्थात् वीर्याचार का गोपन करना या दूसरे को गोरख देना माया है। इस माया का सेवन न करने वाला जो वही अनगार है, ऐसा भगवान् ने कहा है।

तात्पर्य यह है कि—केवल पृथ्वीकाय के आरंभ का त्याग कर देने मात्र से ही कोई अनगार नहीं हो जाता बल्कि जो पृथ्वीकाय के आरंभ का त्याग कर के सकल

હવે 'નિયાગપ્રતિપન્ન' શબ્દનો અર્થ કરે છે. 'નિ' અર્થાત્ નિશ્ચયથી 'યાગ' અર્થાત્ સમ્યક્ગમન જ્યાં કરવામાં આવે છે તેને નિયાગ અથવા મોક્ષમાર્ગ કહે છે જ્ઞાન અને ક્રિયા મોક્ષનો માર્ગ છે અથવા 'નિ' અર્થાત્ નિશ્ચયથી 'યાગ' અર્થાત્ સિદ્ધગતિ આપવાવાળો ક્ષમા આદિ દસ પ્રકારનો યતિધર્મ 'નિયાગ' કહેવાય છે. એવા નિયાગને જે પ્રાપ્ત થઇ ચૂક્યા છે તે નિયાગપ્રતિપન્ન છે. તથા માયા અર્થાત્ વીર્યાચારનું ગોપન કરવું અથવા બીજાને પીડો દેવો તે માયા છે. તે માયાનું સેવન નહિ કરવાવાળા જે હોય તે અણગાર છે એ પ્રમાણે ભગવાને કહ્યું છે.

તાત્પર્ય એ છે કે—કેવલ પૃથ્વીકાયના આરંભનો ત્યાગ કરી દેવા માત્રથીજ કોઇ અણગાર થતા નથી. પરન્તુ જે પૃથ્વીકાયના આરંભનો ત્યાગ કરીને, સકલ સાવદ્ય કર્મોનો

शिवस्थानमिति – ऋजुः = विषमभावरहितत्वाद् दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायनिरोधरूपः संयमः, स कृतः=अनुष्ठितो येन स ऋजुकृतः–मनोवाक्कायजन्यसकलसावद्यक्रियानिवृत्त इत्यर्थः।

यद्वा–संपूर्णसंवरस्वरूपसंयमेन संयमिना मोक्षस्थानगमनार्थं ऋजुगतिः प्राप्यते, तत्र ऋजुगतेः कारणं संयम इति कारणे कार्योपचारात्सप्तदशविधसंयमोऽपि ऋजुरित्युच्यते, स कृतः=समाचरितो येनासौ ऋजुकृतः कृतसंपूर्णसंयमानुष्ठान इत्यर्थः।

वाला ऋजु कहलता है। अथवा आत्मा को शाश्वत मोक्षस्थान पर पहुँचाने वाला ऋजु कहलाता है। अथवा ऋजु का अर्थ है–सयम। मन, वचन, काय के खोटे व्यापार को रोकनारूप सयम है। जिस ने एसा व्यापार रोक दिया है वह **ऋजुकृत** कहलाता है। अर्थात् जो मन, वचन और काय से होने वाली समस्त सावद्य क्रियाओं से निवृत्त हो गया हो वह '**ऋजुकृत**' है।

अथवा—सम्पूर्णसवररूप सयम के द्वारा सयमी मोक्ष में गमन करने के लिए ऋजुगति प्राप्ति करता है। इस ऋजुगति का कारण सयम है। अतः कारण में कार्य का उपचार करने से सत्रह प्रकार का सयम भी 'ऋजु' कहलाता है। उस 'ऋजु' अर्थात् सयम का जिसने आचरण किया हो वह 'ऋजुकृत' कहलाता हैं। तात्पर्य यह है कि पूर्ण सयम का अनुष्ठान करने वाला **ऋजुकृत** है।

વાળા ઋજુ કહેવાય છે. અથવા આત્માને શાશ્વત મોક્ષસ્થાન પર પહોચાડવાવાળા ઋજુ કહેવાય છે. અથવા ઋજુનો અર્થ છે સયમ–મન, વચન અને કાયના ખોટા વ્યાપારને રોકવા રૂપ સયમ છે. જેણે એવો વ્યાપાર રોકી આપ્યો છે તે 'ઋજુકૃત' કહેવાય છે. અર્થાત્ જે મન, વચન અને કાયાથી થવાવાળી સમસ્ત સાવદ્ય ક્રિયાઓથી નિવૃત્ત થઈ ગયા હોય તે ઋજુકૃત છે

અથવા—સપૂર્ણસવરરૂપ સયમદ્વારા સયમી મોક્ષમા ગમન કરવા માટે ઋજુગતિ પ્રાપ્ત કરે છે તે ઋજુગતિનું કારણ સયમ છે તેથી કારણમા કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી સત્તર (૧૭) પ્રકારનો સયમ પણ ' ઋજુ ' કહેવાય છે તે ઋજુ અર્થાત્ સયમનું જેણે આચરણ કર્યું છે તે 'ઋજુકૃત' કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે પૂર્ણ–સયમનુ અનુષ્ઠાન કરવાવાળા ઋજુકૃત છે.

"किमार्हतो मार्गोऽस्ति न वा" इति सर्वागमविषयका शङ्का सर्वशङ्का, तथा-"किमप्कायादयो जीवाः सन्ति न वा" इति देशशङ्का।

केवलालोकेन विलोक्य भगवता विशिष्य प्रवचने कथितत्वात् अप्कायादयः सन्ति जीवाः, इति पूर्वा कोटिः, चेतनाख्यात्मलक्षणस्य सुस्पष्टमनुपलब्धेर्न सन्ति अप्कायादयो जीवाः, इत्युत्तरा कोटिः प्रादुर्भवति। पूर्वसंयोगः=मातापित्रादिसम्बन्धं, धनधान्यस्वजनादिसम्बन्धं वा।

तदुपलक्षणम्-तेन पश्चात्संयोगमपि श्वशुरादिकृतं विहाय=परित्यज्य निष्क्रान्तः=अनगारो जातः, तां श्रद्धाम् अनुपालयेदेव निरतिचारं रक्षेदित्यर्थः।

और (२) देशशङ्का। अर्हन्त भगवान द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तव में मोक्षमार्ग है या नहीं? ऐसी शंका सर्वशङ्का है। 'अप्काय आदि के जीव हैं या नहीं?' यह देश शङ्का है।

भगवान्‌ने केवल ज्ञान से देखकर प्रवचन में अप्काय आदि के जीवों का अस्तित्व प्रगट किया है, यह शङ्का की पूर्वकोटि है। आत्मा का चेतनालक्षण स्पष्ट रूप से नहीं पाया जाता, अत एव अप्काय आदि अजीव हैं, यह शङ्का की दूसरी कोटि है।

माता, पिता आदि का संबंध तथा धन, धान्य, स्वजन आदि का संबंध पूर्वसंयोग। कहलाता है। उपलक्षण से सास-ससुर आदि का संबंध पश्चात्संयोग कहलाता है। इन दोनों संयोगों को त्याग कर के जिस श्रद्धा के साथ अनगार हुआ है उसी श्रद्धा का पालन करे अर्थात् उस को निरतिचार रखा करे।

અને (૨) દેશશંકા. અર્હન્ત ભગવાન દ્વારા પ્રરૂપિત માર્ગ વાસ્તવિક રીતે મોક્ષ માર્ગ છે કે નહી? આ પ્રકારની શંકા તે સર્વશંકા છે અપ્કાય આદિના જીવ છે કે નહી? આ દેશશંકા છે

ભગવાને કેવલજ્ઞાન વડે જોઈને પ્રવચનમાં અપ્કાય આદિના જીવોનું અસ્તિત્વ પ્રગટ કર્યું છે. આ શંકાની પૂર્વકોટિ છે. આત્માનું ચેતનાલક્ષણ સ્પષ્ટરૂપથી જોવામાં આવતું નથી તેથી અપ્કાય આદિ અજીવ છે આ શંકાની બીજી કોટિ છે

માતા-પિતા આદિનો સંબંધ તથા ધન, ધાન્ય સ્વજન આદિનો સંબંધ પૂર્વ સંયોગ કહેવાય છે, ઉપલક્ષણથી સાસુ, સસરા આદિનો સંબંધ પશ્ચાત્સંયોગ કહેવાય છે આ બન્ને સંયોગનો ત્યાગ કરીને જે શ્રદ્ધાથી અણગાર થયા છે તે શ્રદ્ધાનું પાલન કરે અર્થાત્ તેની નિરતિચાર (વિના અતિચાર) રક્ષા કરે.

शेषसंयमानुष्ठानप्रवृत्तः समाश्रितमोक्षमार्गः कर्पूरखण्डवदन्तर्बहिरेकरूपतया स्ववीर्यसंगोपन-परवञ्चनलक्षणमायाचाररहितो भवति स एव वस्तुतोऽनगारो बोद्धव्य इति ॥ सू० १ ॥

उक्तरूपस्यानगारस्य कर्त्तव्यमाह—'जाए' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

जाए सद्धाए निक्खंतो तमेव अणुपालिज्जा विजहित्ता विसोत्तियं पुव्वसंजोगं ॥ सू० २ ॥

॥ छाया ॥

यया श्रद्धया निष्क्रान्तस्तामेवानुपालयेत् विस्रोतसिकां पूर्वसंयोगम् ॥ २ ॥

॥ टीका ॥

यया श्रद्धया विस्रोतसिकां=शङ्कां, सर्वशङ्कां देशशङ्कां चेत्यर्थः।

सावद्य कार्यों का ज्ञाता होता है और पूर्ण सयम के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो तथा मोक्षमार्ग का आश्रय लेता है। कपूर के टुकडे की भाँति भीतर-बाहर एकसा उज्ज्वल होने के कारण अपनी शक्ति का गोपन नहीं करता और दूसरों को धोखा नहीं देता अर्थात् मायाचार से रहित होता है, उसी को वास्तव में अनगार समझना चाहिए ॥ सू १ ॥

उक्त प्रकार के अनगार का कर्तव्य बतलाते हैं-'जाए' इत्यादि।

मूलार्थ—शङ्का काङ्क्षा आदि का त्याग कर के और पूर्वकालीक सयोगों का त्याग कर के जिस श्रद्धा के साथ निकला है, उसी श्रद्धा का निरन्तर पालन करे ॥ सू २ ॥

टीकार्थ—'विस्रोतसिका' का अर्थ है शङ्का, शङ्का दो प्रकार की हैं (१) सर्वशङ्का

જ્ઞાતા—જાણનાર થાય છે અને પૂર્ણ સયમના અનુષ્ઠાનમા પ્રવૃત્ત થાય છે, તથા મોક્ષ માર્ગનો આશ્રય લે છે કપૂરના ટુકડાની માફક અદર અને બહાર એકજ પ્રકારે ઉજ્જ્વલ હોવાના કારણે પોતાની શક્તિનુ ગોપન કરતો નથી અને બીજાને દગો દેતો નથી અર્થાત્ માયાચારથી રહિત હોય છે, તેને વાસ્તવિક રીતે અણગાર સમજવો જોઈએ (સૂ ૧)

ઉપર કહ્યા તેવા અણુગારનુ કર્તવ્ય બતાવે છે—'जाए' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—શકા, કાંક્ષા વગેરેનો ત્યાગ કરીને અને પૂર્વ કાલના સયોગોનો ત્યાગ કરીને જે શ્રદ્ધાથી નિકળ્યા છે, તે શ્રદ્ધાનુ નિરતર પાલન કરવું (સૂ ૨)

ટીકાર્થ—'विस्रोतसिका'નો અર્થ છે શકા, શકા બે પ્રકારની છે-(૧) સર્વશંકા

अस्या लक्षणं तु शमसंवेगनिर्वेदानुकम्पाऽऽस्तिक्यानां प्रादुर्भावः। तत्र वीतरागप्रणीतप्रवचनतत्त्वाभिनिवेशवशेनाऽनन्तानुबन्धिकषायाणामनुदयः शम इत्युच्यते। यद्वा विषयासक्तिनिवृत्तिः शमः।

तथा संवेगः-जिनप्रवचनानुसारेण नरकादिगतिषु नानाविधदुःखावलोकनाज्जातभयम्, यथा स्वकृतकर्मोदयान्नरकेषु-क्षेत्रजन्यशीतोष्णादिदशविधवेदनासहन, परमाधार्मिकदेवकृतं परस्परोदीरितं चेति त्रिविधं दुःखं, तथा तिर्यक्षु-ताडन-तर्जन-क्षुत्पिपासा-पारवश्य-भारारोपणाद्यनेकविधं दुःखं, मनुष्येषु-दारिद्र्य-

---

शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य का प्रकट हो जाना श्रद्धा का चिह्न है।

वीतरागद्वारा प्ररूपित प्रवचन के तत्त्व में गाढी प्रीति होने से अनन्तानुबंधी कषायों का (क्रोध, मान, माया, लोभ का) उदय न होना शम कहलाता है। अथवा विषयों के प्रति आसक्ति हट जाना 'शम' है।

जिन भगवान् के वचन के अनुसार नरक आदि गतियों में नाना प्रकार के दुःखों को जानकर उन से भयभीत होना 'संवेग' है। जैसे-"अपने किये कर्मों के उदय से नरकों में क्षेत्रजन्य शीत-उष्ण (सर्दी-गर्मी) आदि दश प्रकार की वेदना, परमाधर्मी देवों द्वारा दीजाने वाली वेदना और परस्पर नारकी जीवों द्वारा होने वाली वेदना नरक में यह तीन तरह की वेदना है। तिर्यंचों में ताडना, तर्जना, भूख, प्यास, पराधीनता बोझा ढोना आदि अनेक प्रकार की वेदना है। मनुष्यों में दरिद्रता,

---

શમ, સંવેગ, નિર્વેદ, અનુકમ્પા અને આસ્તિક્ય વગેરે પ્રગટ થઈ જાય તે શ્રદ્ધાનું ચિહ્ન છે

વીતરાગદ્વારા પ્રરૂપિત પ્રવચનનાં તત્ત્વોમાં ગાઢ પ્રીતિ થવાથી અનન્તાનુબંધી કષાયોનો (ક્રોધ માન, માયા લોભનો) ઉદય થાય નહિ તે શમ કહેવાય છે. અથવા વિષયો પ્રતિ આસક્તિ હટી જાય તે શમ છે

જિન ભગવાનના વચન-અનુસાર નરક આદિ ગતિઓમાં નાના પ્રકારના દુઃખોને જાણી ને તેનાથી ભયભીત થવું તે 'સંવેગ' છે જેમકે- પોતાના કરેલાં કર્મોના ઉદયથી નરકોમાં ક્ષેત્રજન્ય શીત-ઉષ્ણ (ઠંડી-ગરમી) આદિ દસ પ્રકારની વેદના પરમાધામી દેવો દ્વારા જે થાય છે તે વેદના, અને પરસ્પર નારકી જીવો દ્વારા થનારી વેદના નરકમાં આ પ્રમાણે ત્રણ પ્રકારની વેદના છે તિર્યંચોમાં તાડના, તર્જના (મારવું-વઢવું) ભૂખ તરસ, પરાધીનતા, ભાર ઉપાડવા આદિ અનેક પ્રકારની વેદના છે. મનુષ્યોમાં દરિદ્રતા, દૌર્ભાગ્ય,

ननु का नाम श्रद्धा, यया विनाऽनगारत्वं नोपलभ्यते ? उच्यते–जीवादितत्त्वेषु श्रद्धानं, रुचिः, अभिप्रीतिः, सम्यग्दर्शनं श्रद्धा, 'एतत्तत्त्वमेवमेवे'–त्यवधारणम्, "तमेव सच्चं नीसकं जं जिणेहिं पवेइय" इति वचनानुस्मरणेन जगदेकबन्धुना वीतरागेण भगवता यथा कथितं तथैवेदं जीवादितत्त्वं सत्यमिति निश्चय इति यावत्।

यद्वा मिथ्यात्वमोहनीयकर्मण उपशमात् क्षयोपशमात् क्षयाद्वा आत्मनोऽपूर्वा ज्ञानावस्था जायते, आविलसलिलस्य कतकफलचूर्णसंयोगात्स्वच्छतावत् सैव श्रद्धा।

शङ्का—यह श्रद्धा कौन–सी है जिस के विना साधुपन नही रह सकता ?

समाधान—जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा करना, रुचि होना, अभिप्रीति होना, यह सम्य-दर्शन–श्रद्धा है। 'यह **तत्त्व ऐसा ही है**' इस प्रकार पक्का निश्चय करना श्रद्धा है। **'जिन भगवान्ने जो कहा है वही सत्य और संदेह–रहित है'** इस वचन के अनुसार यह निश्चय करना कि जगत के अद्वितीय बन्धु वीतराग भगवान् ने जैसा निरूपण किया है, उसी प्रकार जीवादितत्त्व सत्य है। यह श्रद्धा का स्वरूप है।

अथवा—मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के उपशम से, क्षयोपशम से अथवा क्षय से आत्मा की एक अपूर्व ज्ञानावस्था उत्पन्न होती है। जैसे–मलिन जल में कतकफल का चूर्ण डालने से जल स्वच्छ हो जाता है। ऐसी स्वच्छ-निर्मल आत्मदशा श्रद्धा कहलाती है।

શંકા—તે શ્રદ્ધા કેવી છે, કે જેના વિના સાધુપણુ રહી શકે નહિ ?

સમાધાન—જીવાદિ તત્ત્વો પર શ્રદ્ધા કરવી, રૂચિ થવી, અભિપ્રીતિ થવી, તે સમ્યગ્દર્શન શ્રદ્ધા છે, "**આ તત્ત્વ આવુંજ** છે" એ પ્રમાણે પાકો નિશ્ચય કરવો તે શ્રદ્ધા છે **"જિન ભગવાને જે કહ્યુ છે તે સત્ય અને સંદેહરહિત છે"** એ વચન પ્રમાણે એ નિશ્ચય કરવો કે જગતના અજોડ બન્ધુ વીતરાગ ભગવાને જેવુ નિરૂપણુ કર્યું છે, તે પ્રમાણે જીવાદિ તત્ત્વ સત્ય છે આ શ્રદ્ધાનુ સ્વરૂપ છે

અથવા—મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના ઉપશમથી, ક્ષયોપશમથી, અથવા ક્ષયથી આત્માની એક અપૂર્વ જ્ઞાનાવસ્થા ઉત્પન્ન થાય છે જેમ મલીન પાણીમા કતકફળ–નિર્મળીફળનુ ચૂર્ણ નાખવાથી જલ સ્વચ્છ થઈ જાય છે એવી સ્વચ્છ–નિર્મલ આત્મદશા શ્રદ્ધા કહેવાય છે.

कामभोगाध्यवसायः खलु दुरन्तोऽनन्तदुःखफलदश्च, परलोकेऽप्यतिकटुकं नरकादि जन्मफलप्रदः, इत्यतो न किञ्चित्प्रयोजनमनेन कामभोगाध्यवसायेन, परित्याज्य एवायमतिप्रयत्नेन' इत्येवंरूप आत्मकपरिणामो निर्वेदः ।

उक्तं च निर्वेदस्वरूपं तत्फलं च, तथाहि—

"निव्वेएणं भंते! जीवे किं जणयइ? निव्वेएणं दिव्वमाणुसतेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ। सव्वविसएसु विरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरंभपरिच्चायं करेइ। आरम्भपरिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिंदइ, सिद्धिमग्गं पडिवन्ने य हवइ।" (उत्तरा० अ २९)

आसक्ति न होना 'निर्वेद' है। कामभोगसम्बन्धी अध्यवसाय इस लोक में अत्यन्त दुःखदायक है, और परलोक में भी अत्यन्त कटुक नरक आदिरूप फल देने वाला है, अतः यह कामभोगसंबंधी अध्यवसाय से मुझे क्या लेन-देन है। इसे खूब परिश्रम कर के त्याग ही देना चाहिए'। इस प्रकार का आत्मिक परिणाम 'निर्वेद' कहलाता है। निर्वेद का स्वरूप और फल इस प्रकार कहा गया है—

"भगवन्! निर्वेद से जीव को क्या लाभ होता है? निर्वेद से जीव को देवता मनुष्य और तिर्यंच संबंधी काम भोगों में शीघ्र ही विरक्ति उत्पन्न होती है। सब विषयों से जीव विरक्त होकर आरम्भ का परित्याग करता है। आरम्भ का परित्याग करता हुआ संसारमार्ग को त्यागता है और मोक्षमार्ग को अंगीकार करता है" ।—(उत्तरा अ २९)

વિષયોમાં આસક્તિ થાય નહિ તે નિર્વેદ છે. કામભોગસમ્બન્ધી અધ્યવસાય આ લોકમાં અત્યન્ત દુઃખદાયક છે અને પરલોકમાં પણ અત્યન્ત કટુક નરકગતિ આદિ રૂપ ફલ દેવાવાળા છે એટલા માટે કામભોગસમ્બન્ધી અધ્યવસાયથી મારે શું લેવા દેવા છે તેને ખૂબ પરિશ્રમ કરીને ત્યાગ દેવા જોઈએ. આ પ્રકારનું આત્મિક પરિણામ તે નિર્વેદ કહેવાય છે. નિર્વેદનું સ્વરૂપ અને ફલ આ પ્રકારે કહ્યું છે—

"ભગવન્! નિર્વેદથી જીવને શું લાભ થાય છે?

નિર્વેદથી જીવને દેવતા, મનુષ્ય અને તિર્યંચસમ્બન્ધી કામભોગોમાં શીઘ્ર વિરક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે. સર્વ વિષયોથી જીવ વિરક્ત થઈ જાય છે. સર્વ વિષયોથી વિરક્ત થઈને આરંભનો પરિત્યાગ કરતો થકો સંસારમાર્ગને ત્યાગ કરે છે અને મોક્ષમાર્ગનો અંગીકાર કરે છે" (ઉત્તરા૦ અ ૨૯)

जीवो जनयति । तया च नरकादिभवेषु घोरतरबहुतराशातवेदनामवलोक्य तद्भयान्मोक्षमार्गं शरणीकृत्य मोक्षाभिलापरूपं संवेगं शीघ्रं प्राप्नोति । अनन्तानुबन्धिकषायान् क्षपयति, नवीनं कर्म न बध्नाति, तेन मिथ्यात्वं क्षपयित्वा क्षायिकशुद्धसम्यक्त्वं निरतिचारेण पालयति । एवमतिनिर्मलया सम्यक्त्वविशुद्ध्या कश्चिद्भव्यजीवस्तेनैव भवग्रहणेन सिद्धिं प्राप्नोति । एकः पुनः सम्यक्त्वस्य निर्मलया विशुद्ध्या तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति । मिथ्यात्व-मोहनीयकर्मणो निरवशेषक्षयात् शुद्धक्षायिकसम्यक्त्ववान् भवत्रयमध्ये मोक्षं प्राप्नोत्येवेत्यर्थः ।

तथा निर्वेदः-आर्हतवचनाभिनिवेशात्सर्वविषयेषु-अनासक्तिः, 'इह -अलोके

श्रद्धा उत्पन्न होती है । उस श्रद्धा से नरक आदि गतियों में घोर और बहु असाता की वेदना देखकर तथा उस वेदना के भय से मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर मोक्षाभिलाषा-रूपी संवेग को शीघ्र ही स्वीकार कर लेता है । वह अनन्तानुबंधी कषायों का क्षय करता है और नवीन कर्म के बंध को रोक देता है । मिथ्यात्व का क्षय कर के शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करता है । इस प्रकार अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धि के कारण कोई-कोई भव्य जीव उसी भव में मुक्त हो जाता है, और कोई-कोई तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करता अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से शुद्धक्षायिकसम्यक्त्वी जीव तीन भवों में अवश्य मोक्ष पाता है ।

अर्हन्त भगवान् के प्रवचन में प्रगाढ प्रीति होने के कारण सब इन्द्रिय-विषयों में

શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે, એ શ્રદ્ધાથી નરક આદિ ગતિઓમા ઘોર અને બહુજ અસાતાની વેદના જોઈને તથા એ વેદનાના ભયથી મોક્ષમાર્ગનો આશ્રય લઈને મોક્ષાભિલાષારૂપી સવેગને શીઘ્રજ સ્વીકાર કરી લે છે તે અનન્તાનુબધી કષાયોનો ક્ષય કરે છે અને નવીન કર્મના બધને રોકી દે છે મિથ્યાત્વનો ક્ષય કરીને શુદ્ધ ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વનુ નિરતિચાર પાલન કરે છે આ પ્રમાણે અત્યન્ત નિર્મલ દર્શનવિશુદ્ધિના કારણે કોઈ-કોઈ ભવ્ય જીવ એજ ભવમા મુક્ત થઈ જાય છે, અને કોઈ-કોઈ ત્રીજા ભવનુ ઉલ્લઘન કરતા નથી અર્થાત્ મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના સપૂર્ણ ક્ષયથી શુદ્ધક્ષાયિક-સમ્યક્ત્વી જીવ ત્રણ ભવોમા અવશ્ય મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે

ા પ્રવચનમા પ્રગાઢ-સજ્જડ પ્રીતિ હોવાના કારણે સર્વ ઇન્દ્રિયોના

"संवेगेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ । अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ । अणंताणुबंधिकोहमाणमायालोभे खवेइ । नवं च कम्मं न बंधइ । तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ । दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ । विसोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ ॥" (उत्तरा० अ० २९)

छाया—"संवेगेन भदन्त ! जीवः किं जनयति ? संवेगेन अनुत्तरां धर्मश्रद्धां जनयति । अनुत्तरया धर्मश्रद्धया संवेगो हव्यमागच्छति, अनन्तानुबन्धि-क्रोधमानमायालोभान् क्षपयति, नवं च कर्म न बध्नाति, तत्प्रत्ययिकां च खलु मिथ्यात्वविशोधिं कृत्वा दर्शनाराधको भवति, दर्शनविशोध्या च खलु विशुद्धया अस्त्येककस्तेनैव भवग्रहणेन सिध्यति । विशोध्या च खलु विशुद्धया तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति ॥"

सुदेव-सुगुरु-सुधर्मेषु निश्चलानुरागरूपेण संवेगेन उत्कृष्टतमां धर्मश्रद्धां

"भगवान् ! संवेग से जीव को क्या लाभ होता है ?

संवेग से सर्वश्रेष्ठ धर्मश्रद्धा उत्पन्न होती है, और धर्मश्रद्धा से संवेग शीघ्र उत्पन्न हो जाता है । अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया और लोभ का यह क्षय करता है । नवीन कर्मों का बंध नहीं करता और इन कारणों से मिथ्यात्व की विशुद्धि कर के जीव दर्शन का आराधक होता है । दर्शनविशुद्धता बढ़ जाने से कोई-कोई जीव उसी भव में सिद्ध हो जाता है, अगर कोई उसी भव में मोक्ष न जावे तो तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करता, अर्थात् तीसरे भव में वह अवश्य मोक्ष जाता है" । -(उत्तराध्ययन अ. २९)

" सुदेव सुगुरु और सुधर्म में निश्चल अनुरागरूप संवेग से जीव को सर्वोत्कृष्ट

"ભગવન્ સંવેગથી જીવને શું લાભ થાય છે ?" સંવેગથી સર્વશ્રેષ્ઠ ધર્મશ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે અને ધર્મશ્રદ્ધાથી સંવેગ શીઘ્ર ઉત્પન્ન થાય છે અનન્તાનુબંધી ક્રોધ માન, માયા અને લોભનો તે ક્ષય કરે છે નવીન કર્મોનો બંધ કરતો નથી, અને એ કારણોથી મિથ્યાત્વની વિશુદ્ધિ કરીને જીવ દર્શનનો આરાધક થાય છે. દર્શનવિશુદ્ધતા વધી જવાથી કોઈ-કોઈ એ ભવમાં સિદ્ધ થઈ જાય છે, કોઈ એ ભવમાં મોક્ષે ન જાય તો ત્રીજા ભવનું ઉલ્લંઘન કરતા નથી, અર્થાત્ ત્રીજા ભવમાં તે અવશ્ય મોક્ષે જાય છે" (ઉત્તરા૦ અ.૨૯)

સુદેવ, સુગુરૂ અને સુધર્મમાં નિશ્ચલ અનુરાગરૂપ સંવેગથી જીવને સર્વોત્કૃષ્ટ

दौर्भाग्य–जन्म–जरा–मरण–रोग–शोक–सन्तापादि, देवेषु–ईर्ष्या–विषाद–परप्रेष्यत्वादिदुःखं जीवा अनुभवन्ति, तस्माद्–'यथा ममेदृशं दुःखं न स्यात् तथा यत्नं करोमि' इत्याकारक आत्मिकपरिणामः संवेगः ।

यद्वा–सुदेव–सुगुरु–सुधर्मेषु निश्चलोऽनुरागः संवेगः । उक्तञ्च—

"तथ्ये धर्मे ध्वस्तहिंसाप्रबन्धे, देवे रागद्वेषमोहादिमुक्ते ।
साधौ सर्वग्रन्थसन्दर्भहीने, संवेगोऽसौ निश्चलो योऽनुरागः ॥ १ ॥" इति ।

आगमोऽप्यत्रार्थे प्रमाणम्—

जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, संताप आदि की वेदना है । देवों में ईर्ष्या, विषाद, आज्ञापालन आदि के दुःख हैं । जीव इन दुःखों का अनुभव करते हैं, अत एव मैं ऐसा प्रयत्न करूँ कि–जिस से मुझे इस प्रकार के दुःख न भुगतने पडे " । इस प्रकार का आत्मा का परिणाम 'संवेग' कहलाता है ।

अथवा सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में अचल अनुराग होना 'संवेग' कहलाता है । कहा भी है—

" हिंसा आदि की परम्परा से रहित सच्चे धर्म में, राग द्वेष और मोह आदि से रहित देव में, तथा सब प्रकार के परिग्रह से रहित गुरु–साधु में निश्चल अनुराग होना संवेग है" ॥ १ ॥

इस विषय में आगम प्रमाण भी है—

જન્મ, જરા, મરણ, રોગ, શોક, સન્તાપ આદિની વેદના છે દેવોમાં ઈર્ષ્યા, વિષાદ, (શોક) આજ્ઞાપાલન આદિના દુ ખો છે જીવ આ દુ ખોનો અનુભવ કરે છે. તે કારણથી હુ એવો પ્રયત્ન કરૂ કે–જેથી મને આ પ્રકારનુ દુઃખ ભોગવવું પડે નહિ." આ પ્રકારનું આત્માનુ પરિણામ તે સવેગ કહેવાય છે

અથવા સુદેવ, સુગુરૂ અને સુધર્મમા અચલ અનુરાગ–પ્રીતિ થવો તે સવેગ કહેવાય છે કહ્યું પણ છે કે –

" હિંસા આદિની પરમ્પરાથી રહિત સાચા ધર્મમા, રાગ દ્વેષ અને મોહ આદિથી રહિત દેવમા, તથા સર્વ પ્રકારના પરિગ્રહથી રહિત ગુરૂ–સાધુમા નિશ્ચલ અનુરાગ થવો તે સવેગ છે " ॥ ૧ ॥

આ વિષયમા આગમ પ્રમાણ પણ છે.–

काममोगाध्यवसायः खलु दुरन्तोऽनन्तदुःखफलदश्च, परलोकेऽप्यतिकटुकं नरकादि जन्मफलमदं, इत्यतो न किञ्चित्प्रयोजनमनेन काममोगाध्यवसायेन, परित्याज्य एवायमतिप्रयत्नेन' इत्येवंरूप आत्मकपरिणामो निर्वेदः ।

उक्तं च निर्वेदस्वरूपं तत्फलं च, तथाहि—

"निव्वेएण भंते! जीवे किं जणयइ? निव्वेएणं दिव्वमाणुसतेरिच्छिएसु काममोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ। सव्वविसएसु विरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरंभपरिच्चायं करेइ। आरंभपरिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिंदइ, सिद्धिमग्गं पडिवन्ने य हवइ।" (उत्तरा० अ० २९)

आसक्ति न होना 'निर्वेद' है। 'काममोगसम्बन्धी अध्यवसाय इस लोक में अत्यन्त दुःख दायक है, और परलोक में भी अत्यन्त कटुक नरक आदिरूप फल देने वाला है, अत एव काममोगसंबंधी अध्यवसाय से मुझे क्या लेन-देन है। इसे खूब परिश्रम कर के त्याग ही देना चाहिए'। इस प्रकार का आत्मिक परिणाम 'निर्वेद' कहलाता है। निर्वेद का स्वरूप और फल इस प्रकार कहा गया है:—

"भगवन्! निर्वेद से जीव को क्या लाभ होता है? निर्वेद से जीव को देवता मनुष्य और तिर्यच संबंधी काम भोगों में शीघ्र ही विरक्ति उत्पन्न होती है। सब विषयों से जीव विरक्त होकर आरम्भ का परित्याग करता है। आरम्भ का परित्याग करता हुआ संसारमार्ग को त्यागता है और मोक्षमार्ग को अंगीकार करता है" ।—(उत्तरा० अ० २९)

વિષયોમાં આસક્તિ થાય નહિ તે નિર્વેદ છે. કામભોગસમ્બન્ધી અધ્યવસાય આ લોકમાં અત્યન્ત દુઃખદાયક છે અને પરલોકમાં પણ અત્યન્ત કટુક નરકગતિ આદિ રૂપ ફળ દેવાવાળા છે એટલા માટે કામભોગસમ્બન્ધી અધ્યવસાયથી મારે શું લેવા દેવા છે તેને ખૂબ પરિશ્રમ કરીને ત્યાગ દેવા જોઈએ આ પ્રકારનું આત્મિક પરિણામ તે નિર્વેદ કહેવાય છે. નિર્વેદનું સ્વરૂપ અને ફલ આ પ્રકારે કહ્યું છે—

"ભગવન્! નિર્વેદથી જીવને શું લાભ થાય છે?

નિર્વેદથી જીવને દેવતા, મનુષ્ય અને તિર્યંચસમ્બન્ધી કામભોગોમાં શીઘ્ર વિરક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે સર્વવિષયોથી જીવ વિરક્ત થઈ જાય છે અને વિષયોથી વિરક્ત થઈને આરંભનો પરિત્યાગ કરતો થકો સંસારમાર્ગને ત્યાગે છે અને મોક્ષમાર્ગનો અંગીકાર કરે છે" (ઉત્તરા૦ અ૦ ૨૯)

जीवो जनयति । तया च नरकादिभवेषु घोरतरबहुतराशातवेदनामवलोक्य तद्भयान्मोक्षमार्गं शरणीकृत्य मोक्षाभिलाषरूपं संवेगं शीघ्रं प्राप्नोति । अनन्तानुबन्धिकषायान् क्षपयति, नवीनं कर्म न बध्नाति, तेन मिथ्यात्वं क्षपयित्वा क्षायिकशुद्धसम्यक्त्वं निरतिचारेण पालयति । एवमतिनिर्मलया सम्यक्त्वविशुद्ध्या कश्चिद्भव्यजीवस्तेनैव भवग्रहणेन सिद्धिं प्राप्नोति । एकः पुनः सम्यक्त्वस्य निर्मलया विशुद्ध्या तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति । मिथ्यात्वमोहनीयकर्मणो निरवशेषक्षयात् शुद्धक्षायिकसम्यक्त्ववान् भवत्रयमध्ये मोक्षं प्राप्नोत्येवेत्यर्थः ।

तथा निर्वेदः—आर्हतवचनाभिनिवेशात्सर्वविषयेषु—अनासक्तिः, 'इह—अलोके

श्रद्धा उत्पन्न होती है । उस श्रद्धा से नरक आदि गतियों में घोर और बहु असाता की वेदना देखकर तथा उस वेदना के भय से मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर मोक्षाभिलाषा—रूपी संवेग को शीघ्र ही स्वीकार कर लेता है । वह अनन्तानुबंधी कषायों का क्षय करता है और नवीन कर्म के बंध को रोक देता है । मिथ्यात्व का क्षय कर के शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करता है । इस प्रकार अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धि के कारण कोई—कोई भव्य जीव उसी भव में मुक्त हो जाता है, और कोई—कोई तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करता अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से शुद्धक्षायिकसम्यक्त्वी जीव तीन भवों में अवश्य मोक्ष पाता है ।

अर्हन्त भगवान् के प्रवचन में प्रगाढ प्रीति होने के कारण सब इन्द्रिय-विषयों में

શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે, એ શ્રદ્ધાથી નરક આદિ ગતિઓમા ઘોર અને બહુજ અસાતાની વેદના જોઈને તથા એ વેદનાના ભયથી મોક્ષમાર્ગનો આશ્રય લઈને મોક્ષાભિલાષારૂપી સવેગને શીઘ્રજ સ્વીકાર કરી લે છે તે અનન્તાનુબધી કષાયોનો ક્ષય કરે છે અને નવીન કર્મના બધને રોકી દે છે મિથ્યાત્વનો ક્ષય કરીને શુદ્ધ ક્ષાયિક સમ્યકૃત્વનુ નિરતિચાર પાલન કરે છે આ પ્રમાણે અત્યન્ત નિર્મલ દર્શનવિશુદ્ધિના કારણે કોઈ–કોઈ ભવ્ય જીવ એજ ભવમા મુક્ત થઈ જાય છે, અને કોઈ–કોઈ ત્રીજા ભવનુ ઉલ્લઘન કરતા નથી અર્થાત્ મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના સપૂર્ણક્ષયથી શુદ્ધક્ષાયિક-સમ્યકૃત્વી જીવ ત્રણ ભવોમા અવશ્ય મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે

અર્હંત ભગવાનના પ્રવચનમા પ્રગાઢ–સજ્જડ પ્રીતિ હોવાના કારણે સર્વ ઇન્દ્રિયોના

मार्त्तमात्रप्राणिनां मरणसंकटान्मोचनं च ।

आस्तिक्यम्–जिनप्रणीतागमानुसारेण 'अस्ति जीवादिपदार्थसार्थ' इति मतिर्यस्य स आस्तिकः, तस्य भावः आस्तिक्यम् । 'जिनेन्द्रप्रवचनोपदिष्टा जीवपरलोकादयः सर्वेऽतीन्द्रियाः पदार्थाः सन्ति' इत्येवंरूप आत्मपरिणामः ।

एभिः शमसंवेगादिभिर्भव्यानां श्रद्धाऽनुमीयते ।

। मिथ्यादृष्टेरपि श्रद्धाप्राप्ति –

श्रद्धा निसर्गादधिगमाद्वा जायते । उक्तञ्च—

"सम्मद्दसणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा–निसग्गसम्मद्दंसणे चेव अधिगम

संकट से छुड़ाना–अनुकम्पा है ।

'आस्तिक्य'— जिनप्रणीत आगम के अनुसार जीवादि पदार्थों का अस्तित्व है" । ऐसी 'जिस की मति हो वह 'आस्तिक' है । आस्तिकपन को 'आस्तिक्य' कहते हैं । जिनप्रवचन में उपदिष्ट जीव परलोक आदि सभी अतीन्द्रिय पदार्थ हैं" इस प्रकार का आत्म–परिणाम 'आस्तिक्य' है ।

इन शम संवेग आदि से भव्यों के सम्यक्त्व का पता लगता है ।

मिथ्यादृष्टि को श्रद्धाप्राप्ति

निसर्ग (स्वभाव) से अथवा अधिगम (किसी के द्वारा सुनने आदि) से श्रद्धा उत्पन्न होती है । कहा भी है —

"सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है–निसर्ग–सम्यग्दर्शन और अधिगम

સંકટથી છોડાવવા તે અનુકમ્પા છે

આસ્તિક્ય— 'જિનપ્રણીત આગમ અનુસાર જીવાદિ પદાર્થોનું અસ્તિત્વ છે" એવી જેની મતિ છે તે આસ્તિક છે. આસ્તિકપણાને આસ્તિક્ય' કહે છે જિન પ્રવચનમાં ઉપદિષ્ટ જીવ પરલોક આદિ સર્વ અતીન્દ્રિય પદાર્થ છે આ પ્રકારનાં આત્મપરિણામ તે આસ્તિક્ય છે

આ શમ, સંવેગ, આદિથી ભવ્યોના સમ્યક્ત્વનો પતો લાગે છે.

મિથ્યાદષ્ટિને શ્રદ્ધાની પ્રાપ્તિ

નિસર્ગ (સ્વભાવ)થી અથવા અધિગમ (કોઈના દ્વારા સાંભળવું આદિ)થી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે કહ્યું પણ છે કે–

'સમ્યગ્દર્શન બે પ્રકારનું કહ્યું છે–નિસર્ગ–સમ્યગ્દર્શન અને (૨) અધિગમ

'कदाऽहं संसारं परित्यजेयम् ?' इत्येवंरूपेण निर्वेदेन दिव्यमानुषतरश्चेषु कामभोगेषु निर्वेदम्=अनासक्तिं जीवः शीघ्रं प्राप्नोति। इममेवार्थं स्पष्टयति-सर्वविषयेषु विरज्यते-'अलमेतैरनर्थहेतुभूतैर्विषयैः' इत्येवंरूपं वैराग्यं प्राप्नोति। वैराग्यं प्राप्तश्च सावद्यव्यापारं परित्यजति। तत्परित्यागं कुर्वन् संसारमार्गं=मिथ्यात्वाविरतिप्रभृतिरूपं व्यवच्छिनत्ति, संसारमार्गव्यवच्छेदे च जीवः सिद्धिमार्गं=सम्यग्दर्शनादिरूपं प्राप्नोतीत्यर्थः।

अनुकम्पा-अनु=अनुकूलं कम्पनं=रक्षणचेष्टाकरणमनुकम्पा=जिनप्रवचनानुसारेणजीवानामुपरि कारुण्यं, प्राणातिपाताकरणं, परदुःखनिवारणं, म्रियमाण-

---

'कब मैं ससार का त्याग करूँ?' इस प्रकार के निर्वेद से जीव को देव मनुष्य और तिर्यंच सवधी काम भोगों में अनासक्ति प्राप्त होती है। इसी विषय को स्पष्ट करते हैं कि-जीव सब विषयों से विरक्त हो जाता है, अर्थात् 'इन अनर्थ के कारणभूत विषयों से बस करो!' इस प्रकार का वैराग्य पाता है। वैराग्य पाकर जीव सावद्य व्यापार का त्याग कर देता है। सावद्य व्यापारका त्याग करता हुआ मिथ्यात्व अविरति आदि ससारमार्ग को छोडता है और ससारमार्ग का त्याग कर के सम्यग्दर्शन आदिरूप मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लेता है।

'अनु' अर्थात् अनुकूल 'कम्पन' अर्थात् रक्षा करने की चेष्टा करना-अनुकम्पा है। अर्थात् जिन भगवान् के उपदेश के अनुसार जीवों पर करुणाभाव होना, किसी के प्राणों का वियोग न करना, दूसरों का दु ख दूर करना, मरते हुए और मारे जाते हुए प्राणियों को प्राण

'હુ ક્યારે સ સારનો ત્યાગ કરૂ?' આ પ્રકારના નિર્વેદથી જીવને દેવ, મનુષ્ય અને તિર્યંચ સમ્બન્ધી કામભોગોમા અનાસક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે, તે વિષયને સ્પષ્ટ કરે છે કે-જીવ સર્વ વિષયોથી વિરક્ત થઈ જાય છે અર્થાત્ આ અનર્થના કારણભૂત વિષયોથી બસ કરો!' આ પ્રકારનો વૈરાગ્ય પામે છે વૈરાગ્ય પામીને જીવ સાવદ્ય વ્યાપારનો ત્યાગ કરી દે છે સાવદ્ય વ્યાપારનો ત્યાગ કરતો થકો મિથ્યાત્વ, અવિરતિ આદિ સ સારમાર્ગને છોડે છે, અને સ સારમાર્ગનો ત્યાગ કરીને સમ્યગ્દર્શન આદિરૂપ મોક્ષમાર્ગને પ્રાપ્ત કરી લે છે.

અનુ અર્થાત્ અનુકૂલ, કમ્પન અર્થાત્ રક્ષા કરવાની ચેષ્ટા કરવી તે અનુકમ્પા છે અર્થાત્-જિન ભગવાનના ઉપદેશ પ્રમાણે જીવો પર કરૂણાભાવ થવો, કોઈના પ્રાણોનો વિયોગ કરવો નહિ, બીજાના દુ ખ દૂર કરવા, મરતા અને મરાતા પ્રાણીઓને પ્રાણ-

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तम्, स उत्कर्षतो देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्तं स्थित्वा पुनः सम्यक्त्वं प्राप्स्यति, स सादिमिथ्यादृष्टिर्भवति।

यथाप्रवृत्तिकरणम्-

एवमुभयविधस्य मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य परिणामरूपाध्यवसायः पूर्वं जघन्य शुभपरिणाममङ्गीकृत्य परः परः शुभपरिणामः परिणामविशेष इत्युच्यते। स एव परिणामविशेषो 'यथाप्रवृत्तिकरण'-मित्युच्यते।

यथाप्रवृत्तिकरण-मित्यस्य शब्दार्थस्त्वेवम्-यथा=येन अनादिसंसिद्ध प्रकारेण प्रवृत्तिर्यस्य तत् यथाप्रवृत्ति, क्रियते कर्मक्षपणमनेनेति करणं=जीवस्य शुभपरिणामः, यथाप्रवृत्ति च तत्करणं च यथाप्रवृत्तिकरणं कर्मक्षपणकारणस्या

बाद में अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से फिर मिथ्यात्व आ गया किन्तु वह मिथ्यात्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन तक रहता है वह जीव सादिमिथ्यादृष्टि है।

यथाप्रवृत्तिकरण-

इस प्रकार दोनों प्रकार के मिथ्यादृष्टि जीवों का अध्यवसाय पहले के जघन्य शुभ परिणाम से लेकर उत्तरोत्तर बढते हुए शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहलाता है। उसी परिणामविशेष को 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहते हैं।

'यथाप्रवृत्तिकरण' का शब्दार्थ इस प्रकार है-'यथा' अर्थात् अनादि कालीनरूप से जिस की प्रवृत्ति हो वह यथाप्रवृत्ति कहलाता है। जिस से कर्मों का क्षय किया जाता है, जीव के उस शुभ परिणाम को 'करण' कहते हैं। यथाप्रवृत्ति-

અનન્તાનુબંધી કષાયના ઉદયથી ફરીથી મિથ્યાત્વ આવી ગયું પણ તે મિથ્યાત્વ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત સુધી અને ઉત્કૃષ્ટ દેશોન અર્દ્ધ પુદ્ગલપરાવર્તન સુધી રહે છે તે જીવ સાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ છે.

યથાપ્રવૃત્તિકરણ—

આ પ્રકારના બન્ને મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવોના અધ્યવસાય પહેલાના જઘન્ય શુભ પરિણામથી લઈને ઉત્તરોત્તર વધતા શુભ પરિણામ, પરિણામવિશેષ કહેવાય છે તે પરિણામ વિશેષને યથાપ્રવૃત્તિકરણ કહે છે "યથાપ્રવૃત્તિકરણ"નો શબ્દાર્થ આ પ્રકારે છે— યથા અર્થાત્ અનાદિ કાલીનરૂપથી જેની 'પ્રવૃત્તિ' હોય તે 'યથાપ્રવૃત્તિ' કહેવાય છે જેનાથી કર્મોનો ક્ષય કરવામાં આવે છે જીવના તે શુભ પરિણામને 'કરણ' કહે છે.

परिपाकवशेन शुभपरिणामरूपाऽध्यवसाया भवन्ति, तेषां स्थानानि मन्द-मध्य-तीव्राणि भवन्ति। तत्र जघन्यशुभपरिणामस्य स्थानं विशुद्धं, तस्मादुत्कृष्टस्य विशुद्धतरं, ततोऽप्युत्कृष्टशुभपरिणामस्य विशुद्धतमं स्थानं प्राप्नुवतो जीवस्य वर्धमानशुभपरिणत्या तादृक्परिणामविशेषो जायते, येन तीर्थङ्कराद्युपदेश-मन्तरेण स्वत एव जीवस्य कर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धोत्पद्यते। तत्रायं क्रमः—

श्रद्धाप्राप्तयेऽधिकारी द्विविधो भवति, अनादिमिथ्यादृष्टिः, सादि-मिथ्यादृष्टिश्च। यः पूर्वं कदापि सम्यक्त्वं न लब्धवान् सोऽनादिमिथ्यादृष्टिः। यश्च भव्यः पूर्वं सम्यक्त्वं प्राप्य पश्चादनन्तानुबन्धिकषायोदयादुपजातमिथ्यात्वः

अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि होने पर भी अमुक प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से उसके शुभपरिणामरूप अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं। उन अध्यवसायों के स्थान मन्द, मध्यम और तीव्र होते हैं। इन में जघन्य शुभ परिणाम का स्थान विशुद्ध है, उस से उत्कृष्ट विशुद्धतर है। और उससे भी उत्कृष्ट शुभपरिणाम विशुद्धतम है। इन स्थानों को प्राप्त जीव के बढते हुए शुभ परिणामों से एक ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है, जिस के द्वारा तीर्थंकर आदि के उपदेश के विना ही स्वयमेव जीव को कर्मों का उपशम आदि होने से श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।

क्रम इस प्रकार है—

दो प्रकार के जीव श्रद्धा पाने के अधिकारी है-(१) **अनादिमिथ्यादृष्टि** और (२) **सादिमिथ्यादृष्टि**। जिस जीवने पहले कभी सम्यक्त्व नहीं पाया वह **अनादिमिथ्यादृष्टि** कहलाता है। जिस भव्य जीवने पहले सम्यक्त्व पाया किन्तु

થકો ભવ્ય જીવ જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપયોગસ્વભાવવાળા હોવાના કારણે અનાદિ કાલથી મિથ્યાદષ્ટિ હોવા છતાંય પણ અમુક પ્રકારની ભવસ્થિતિનો પરિપાક હોવાથી તેને શુભ પરિણામરૂપ અધ્યવસાય ઉત્પન્ન થાય છે તે અધ્યવસાયોના સ્થાન મંદ, મધ્યમ અને તીવ્ર હોય છે તેમા જઘન્ય શુભ પરિણામનુ સ્થાન વિશુદ્ધ છે, તેનાથી ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધતર છે,અને એનાથી પણ ઉત્કૃષ્ટ શુભ પરિણામ વિશુદ્ધતમ છે આ સ્થાનોને પ્રાપ્ત જીવના વધતા ગયેલા શુભ પરિણામોમાથી એક એવું પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે કે જેના દ્વારા તીર્થંકર આદિના ઉપદેશ વિનાજ સ્વયમેવ, જીવને કર્મોનો ઉપશમ આદિ થવાથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે

ક્રમ આ પ્રકારે છે-

બે પ્રકારના જીવ શ્રદ્ધા પ્રાપ્ત કરવાની અધિકારી છે (૧) અનાદિમિથ્યાદષ્ટિ અને (૨) સાદિમિથ્યાદષ્ટિ જે જીવે પહેલા ક્યારેય સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યું નથી તે અનાદિ મિથ્યાદષ્ટિ કહેવાય છે. જે ભવ્ય જીવે પહેલા સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યું હતું પરન્તુ પછીથી

तथाऽत्रापि अनिवृत्तिकरणरूपः परिणामो निसर्गः सम्यक्त्वाकारेण भवति पूर्वावस्थापगमपूर्वकावस्थान्तरप्राप्तिः परिणामः, परिणामि जीवद्रव्यं तु ध्रुवमेव। परिणामोऽप्ययं वैस्रसिक एव, अभ्रेन्द्रधनुरादिवदिति परिणामः स्वभाव इति वाच्यम्।

ननु श्रद्धा निसर्गतः कथमुत्पद्यते? उच्यते—कर्मणोऽनादित्वात्पूर्वकर्मोदयेन यद्यदन्यत्कर्म ज्ञानावरणीयादिकं स्वेनैव कृतं तदपि कार्मणशरीरेण सहैव बध्यते कर्मत्वादिदानींतनकर्मवत्। एवंविधपूर्वगृहीतकर्मणः फलमुपभुञ्जानस्य भव्यजीवस्य ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावतयाऽनादिमिथ्यादृष्टेरपि तारतम्यतस्त्विति

भेद नहीं देखा जाता। जैसे परिणमन, अनेक प्रकार का होने पर भी परिणामी—अन्वयि द्रव्य एक होने से उस में सर्वथा भेद नहीं होता। उसी प्रकार यहाँ अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम निसर्गसम्यक्त्व के रूप में परिणत हो जाता है—उसकी पूर्व—अवस्था मिटकर नवीन अवस्था उत्पन्न हो जाती है, फिर भी परिणामी—जीवद्रव्य—ज्यों का त्यों ध्रुव बना रहता है। परिणाम भी यहाँ वैस्रसिक (स्वाभाविक) लेना चाहिए, मेघ तथा इन्द्रधनुष की तरह, अत एव परिणाम का अर्थ—स्वभाव है।

शङ्का—श्रद्धा स्वभाव (निसर्ग) से किस प्रकार उत्पन्न होती है??

समाधान—अनादि काल से लगे हुए पूर्वकर्मों के उदय से ज्ञानावरणीय आदि जो-जो कर्म जीवने किये हैं, वे सब कार्मण शरीर के साथ ही बँधते हैं, क्योंकि वे कर्म हैं, वर्तमानकालीन कर्मों के समान। इस प्रकार के पहले ग्रहण किये हुए कर्मों का फल भोगते हुए भव्य जीव ज्ञानदर्शनरूप उपयोगस्वभाववाला होने के कारण

પાવામાં કોઈ સર્વથા ભેદ જોવામાં આવતો નથી જેમ-પરિણમન અનેક પ્રકારનાં હોવા છતાંય પણ પરિણામી-અન્વયિદ્રવ્ય એક હોવાથી તેમાં સર્વથા ભેદ થતો નથી તે પ્રમાણે અહિં અનિવૃત્તિકરણરૂપ પરિણામ નિસર્ગસમ્યક્ત્વના રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે-તેની પૂર્વ અવસ્થા મટીને નવીન અવસ્થા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે પણ પરિણામી-જીવદ્રવ્ય-જેમ છે તેમ ધ્રુવ બની રહે છે પરિણામ પણ અહિં વૈસ્રસિક (સ્વાભાવિક) લેવું જોઈએ, મેઘ તથા ઇન્દ્રધનુષની માફક એ પ્રમાણે પરિણામનો અર્થ સ્વભાવ છે

શંકા—શ્રદ્ધા સ્વભાવ (નિસર્ગ)થી કયા પ્રકારે ઉત્પન્ન થાય છે?

સમાધાન—અનાદિ કાળથી લાગેલાં પૂર્વ કર્મોના ઉદયથી જ્ઞાનાવરણીય આદિ જે-જે કર્મ જીવે કર્યાં છે તે સવ કાર્મણ શરીરની સાથેજ બંધાય છે- કેમકે તે કર્મ છે, વર્તમાનકાલીન કર્મોની સમાન. આ પ્રકારનાં પહેલાં ગ્રહણ કરેલા કર્મોનું ફલ ભોગવતો

सम्मद्दंसणे चेय" (स्थानाङ्ग० स्था. २ उ. १)

तत्र निसर्गः, परिणामः, स्वभावः, इत्येकार्थकाः।

अपूर्वकरणानन्तरं यद् भवत्यनिवृत्तिकरणं तन्निसर्ग इति कथ्यते। निसृज्यते कार्योत्पत्तौ सत्यामिति निसर्गः, कार्ये समुत्पन्ने सति कारणस्य न किञ्चित् प्रयोजनं भवति, उत्पन्ने सम्यक्त्वे प्रयोजनाभावादनिवृत्तिकरण परित्यज्यते। न चात्यन्तं परित्यागस्तस्येष्यते यतस्तदेव कारणं तेनाकारेण परिणतम्, यथा–उत्थितोऽपि पुरुषः पुरुष एव, आसीनो शयितो वा पुरुषः पुरुष एव, अवस्थामात्रभेदादवस्थावतो भेदः क्वापि न दृश्यते। तत्र–परिणामस्यानेकरूपत्वेऽपि परिणामिनोऽन्वयिद्रव्यस्य न तत्त्वात् सर्वथा भेदः,

---

सम्यग्दर्शन"। (स्थानांग स्था २ उ १)

निसर्ग, परिणाम, या स्वभाव, ये सब पर्यायवाचक हैं।

अपूर्वकरण के पश्चात् होने वाला अनिवृत्तिकरण 'निसर्ग' कहलाता है। कार्य की उत्पत्ति हो जाने पर जो त्याग दिया जाता है वह 'निसर्ग' है। कार्य की उत्पत्ति हो जाने के बाद कारण का कोई प्रयोजन नहीं रहता, क्यों कि सम्यक्त्व उत्पन्न होने पर प्रयोजन नहीं रहने से अनिवृत्तिकरण त्याग दिया जाता है, मगर उस का अत्यन्त परित्याग नहीं किया जाता, क्यों कि वही कारण उस आकार में–कार्यरूप में–परिणत हो जाता है। जैसे–खडा हुआ पुरुष–पुरुष ही है। वैठा हुआ या सोया हुआ पुरुष भी पुरुष ही है। अवस्थाओं में भेद होनेमात्र से अवस्थावाले में कहीं सर्वथा

સમ્યગ્દર્શન" (સ્થાનાંગ० સ્થા ૨ ઉ. ૧)

નિસર્ગ, પરિણામ અથવા તો સ્વભાવ, આ સર્વ પર્યાયવાચક શબ્દો છે અપૂર્વ કરણની પછી થવાવાળા અનિવૃત્તિકરણ નિસર્ગ કહેવાય છે કાર્યની ઉત્પત્તિ થઈ જવા પછી જે ત્યજી દેવામા આવે છે તે નિસર્ગ છે કાર્યની ઉત્પત્તિ થઈ ગયા પછી કારણનું કોઈ પ્રયોજન રહેતું નથી કેમકે–સમ્યક્ત્વ ઉત્પન્ન હોવા છતાય પણ પ્રયોજન નહિ રહેવાથી અનિવૃત્તિકરણ ત્યાગી દેવામા આવે છે અર્થાત્ પ્રયોજન નહિ રહેવાથી અનિવૃત્તિકરણનો ત્યાગ કરવામા આવે છે પરન્તુ તેનો અત્યન્ત પરિત્યાગ કરવામા આવતો નથી, કારણ કે તે કારણ તેવા આકારમા–કાર્યરૂપમા–પરિણત થઈ જાય છે જેમ ઉભો રહેલો પુરૂષ, પુરૂષજ છે, બેઠેલો અથવા સુતેલો પુરૂષ પણ પુરૂષજ છે, અવસ્થાઓમા ભેદ થવા માત્રથી અવસ્થા-

तथाऽपि अनिवृत्तिकरणरूपः परिणामो निसर्गः सम्यक्त्वाकारेण वर्तते पूर्वावस्थापह्नुपावस्थान्तरप्राप्तिः परिणामः, परिणामि जीवद्रव्यं तु ध्रुवमेव। परिणामोऽप्यत्र वैस्रसिक एव, अभ्रेन्द्रधनुरादिवदिति परिणामः स्वभाव इति वाच्यम्।

ननु श्रद्धा निसर्गतः कथमुत्पद्यते? उच्यते—कर्मणोऽनादित्वात्पूर्वकर्मोदयेन यद्यदन्यत्कर्म ज्ञानावरणीयादिकं स्वेनैव कृतं तदपि कार्मणशरीरेण सहैव बध्यते कर्मत्वादिदानींतनकर्मवत्। एवंविधपूर्वगृहीतकर्मणः फलमुपभुञ्जानस्य भव्यजीवस्य ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावतयाऽनादिमिथ्यादृष्टेरपि ज्ञातृत्वमवस्थिति

भेद नहीं देखा जाता। जैसे परिणमन, अनेक प्रकार का होने पर भी परिणामी—अन्वयि द्रव्य एक होने से उस में सर्वथा भेद नहीं होता। उसी प्रकार यहाँ अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम निसर्गसम्यक्त्व के रूप में परिणत हो जाता है—उसकी पूर्व—अवस्था मिटकर नवीन अवस्था उत्पन्न हो जाती है, फिर भी परिणामी—जीवद्रव्य—ज्यों का त्यों ध्रुव बना रहता है। परिणाम भी यहाँ वैस्रसिक (स्वाभाविक) लेना चाहिए, मेघ तथा इन्द्रधनुष की तरह, अत एव परिणाम का अर्थ—स्वभाव है।

शङ्का—श्रद्धा, स्वभाव (निसर्ग) से किस प्रकार उत्पन्न होती है?।

समाधान—अनादि काल से लगे हुए पूर्वकर्मों के उदय से ज्ञानावरणीय आदि जो-जो कर्म जीवने किये हैं, वे सब कार्मण शरीर के साथ ही बंधते हैं क्योंकि वे कर्म हैं, वर्तमानकालीन कर्मों के समान। इस प्रकार के पहले ग्रहण किये हुए कर्मों का फल भोगते हुए भव्य जीव ज्ञानदर्शनरूप उपयोगस्वभाववाला होने के कारण

પણામાં કોઈ સર્વથા ભેદ જોવામાં આવતો નથી જેમ—પરિણમન અનેક પ્રકારનાં હોવા છતાંય પણ પરિણામી—અન્વયિદ્રવ્ય એક હોવાથી તેમાં સર્વથા ભેદ થતો નથી તે પ્રમાણે અહિં અનિવૃત્તિકરણરૂપ પરિણામ નિસર્ગસમ્યકૃત્વના રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે—તેની પૂર્વ અવસ્થા મટીને નવીન અવસ્થા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે પણ પરિણામી—જીવદ્રવ્ય—જેમ છે તેમ ધ્રુવ બની રહે છે. પરિણામ પણ અહિં વૈસ્રસિક (સ્વાભાવિક) લેવું જોઈએ, મેઘ તથા ઈન્દ્રધનુષની માફક એ પ્રમાણે પરિણામનો અર્થ સ્વભાવ છે.

શંકા—શ્રદ્ધા સ્વભાવ (નિસર્ગ)થી કયા પ્રકારે ઉત્પન્ન થાય છે?

સમાધાન—અનાદિ કાળથી લાગેલાં પૂર્વ કર્મોના ઉદયથી જ્ઞાનાવરણીય આદિ જે-જે કર્મ જીવે કર્યાં છે તે સર્વ કાર્મણ શરીરની સાથેજ બંધાય છે કેમકે તે કર્મ છે વર્તમાનકાલીન કર્મોની સમાન. આ પ્રકારનાં પહેલાં ગ્રહણ કરેલા કર્મોનું ફળ ભોગવતો

परिपाकवशेन शुभपरिणामरूपाऽध्यवसाया भवन्ति, तेपा स्थानानि मन्द-मध्य-तीव्राणि भवन्ति। तत्र जघन्यशुभपरिणामस्य स्थान विशुद्ध, तस्मादुत्कृष्टस्य विशुद्धतर, ततोऽप्युत्कृष्टशुभपरिणामस्य विशुद्धतमं स्थानं प्राप्नुवतो जीवस्य वर्धमानशुभपरिणत्या तादृक्रूपरिणामविशेपो जायते, येन तीर्थङ्कराद्युपदेश-मन्तरेण स्वत एव जीवस्य कर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धोत्पद्यते। तत्रायं क्रमः—

श्रद्धाप्राप्तयेऽधिकारी द्विविधो भवति, अनादिमिथ्यादृष्टिः, सादि-मिथ्यादृष्टिश्च। यः पूर्वं कदापि सम्यक्त्वं न लब्धवान् सोऽनादिमिथ्यादृष्टिः। यश्च भव्यः पूर्वं सम्यक्त्वं प्राप्य पश्चादनन्तानुबन्धिकपायोदयादुपजातमिथ्यात्वः

अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि होने पर भी अमुक प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से उसके शुभपरिणामरूप अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं। उन अध्यवसायों के स्थान मन्द, मध्यम और तीव्र होते हैं। इन में जघन्य शुभ परिणाम का स्थान विशुद्ध है, उस से उत्कृष्ट विशुद्धतर है। और उससे भी उत्कृष्ट शुभपरिणाम विशुद्धतम है। इन स्थानों को प्राप्त जीव के बढते हुए शुभ परिणामों से एक ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है, जिस के द्वारा तीर्थंकर आदि के उपदेश के विना ही स्वयमेव जीव को कर्मों का उपशम आदि होने से श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।

क्रम इस प्रकार है—

दो प्रकार के जीव श्रद्धा पाने के अधिकारी हैं–(१) **अनादिमिथ्यादृष्टि** और (२) **सादिमिथ्यादृष्टि**। जिस जीवने पहले कभी सम्यक्त्व नहीं पाया वह **अनादिमिथ्यादृष्टि** कहलाता है। जिस भव्य जीवने पहले सम्यक्त्व पाया किन्तु

થઈ ભવ્ય જીવ જ્ઞાન–દર્શનરૂપ ઉપયોગસ્વભાવવાળા હોવાના કારણે અનાદિ કાલથી મિથ્યાદૃષ્ટિ હોવા છતાય પણ અમુક પ્રકારની ભવસ્થિતિનો પરિપાક હોવાથી તેને શુભ પરિણામરૂપ અધ્યવસાય ઉત્પન્ન થાય છે તે અધ્યવસાયોના સ્થાન મંદ, મધ્યમ અને તીવ્ર હોય છે તેમા જઘન્ય શુભ પરિણામનુ સ્થાન વિશુદ્ધ છે, તેનાથી ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધતર છે,અને એનાથી પણ ઉત્કૃષ્ટ શુભ પરિણામ વિશુદ્ધતમ છે આ સ્થાનોને પ્રાપ્ત જીવના વધતા ગયેલા શુભ પરિણામોમાથી એક એવું પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે કે જેના દ્વારા તીર્થંકર આદિના ઉપદેશ વિનાજ સ્વયમેવ, જીવને કર્મોનો ઉપશમ આદિ થવાથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે.

ક્રમ આ પ્રકારે છે-

બે પ્રકારના જીવ શ્રદ્ધા પ્રાપ્ત કરવાની અધિકારી છે (૧) અનાદિ મિથ્યાદૃષ્ટિ અને (૨) સાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ જે જીવે પહેલા ક્યારેય સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યું નથી તે અનાદિ મિથ્યાદૃષ્ટિ કહેવાય છે. જે ભવ્ય જીવે પહેલા સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યું હતું પરન્ત પછીથી

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, स उत्कर्षतो देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्त्तं स्थित्वा पुनः सम्यक्त्वं प्राप्स्यति, स सादिमिथ्यादृष्टिर्भवति।

यथाप्रवृत्तिकरणम्—

एवमुभयविधस्य मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य परिणामरूपाध्यवसायाः पूर्वं जघन्यशुभपरिणामप्रकृष्टस्य परा परा शुभपरिणामः परिणामविशेष इत्युच्यते। स एव परिणामविशेषो 'यथाप्रवृत्तिकरण'-मित्युच्यते।

यथाप्रवृत्तिकरण-मित्यस्य शब्दार्थस्त्वेवम्—यथा=येन अनादिसंसिद्धप्रकारेण प्रवृत्तिर्यस्य तत् यथाप्रवृत्ति, क्रियते कर्मक्षपणमनेनेति करणम्=जीवस्य शुभपरिणामः, यथाप्रवृत्ति च तत्करणं च यथाप्रवृत्तिकरणं कर्मक्षपणकारणस्या

बाद में अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से फिर मिथ्यात्व आ गया किन्तु वह मिथ्यात्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गलपरावर्तन तक रहता है वह जीव सादिमिथ्यादृष्टि है।

यथाप्रवृत्तिकरण—

इस प्रकार दोनों प्रकार के मिथ्यादृष्टि जीवों का अध्यवसाय पहले के जघन्य शुभ परिणाम से लेकर उत्तरोत्तर बढते हुए शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहलाता है। उसी परिणामविशेष को 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहते हैं।

'यथाप्रवृत्तिकरण' का शब्दार्थ इस प्रकार है—'यथा' अर्थात् अनादिकालीनरूप से जिस की प्रवृत्ति हो वह यथाप्रवृत्ति कहलाता है। जिस से कर्मों का क्षय किया जाता है, जीव के उस शुभ परिणाम को 'करण' कहते हैं। यथाप्रवृत्ति

અનન્તાનુબન્ધી કષાયના ઉદયથી ફરીથી મિથ્યાત્વ આવી જાય પણ તે મિથ્યાત્વ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત સુધી અને ઉત્કૃષ્ટ દેશોન અર્ધ પુદ્ગલપરાવર્તન સુધી રહે છે તે જીવ સાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ છે

યથાપ્રવૃત્તિકરણ—

આ પ્રકારના બન્ને મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવોના અધ્યવસાય પહેલાના જઘન્ય શુભ પરિણામથી લઈને ઉત્તરોત્તર વધતા શુભ પરિણામ, પરિણામવિશેષ કહેવાય છે તે પરિણામવિશેષને યથાપ્રવૃત્તિકરણ કહે છે. "યથાપ્રવૃત્તિકરણ" નો શબ્દાર્થ આ પ્રકારે છે— યથા અર્થાત્ અનાદિ કાલીનરૂપથી જેની 'પ્રવૃત્તિ' હોય તે 'યથાપ્રવૃત્તિ' કહેવાય છે જેનાથી કર્મોનો ક્ષય કરવામાં આવે છે જીવના તે શુભ પરિણામને 'કરણ' કહે છે.

परिपाकवशेन शुभपरिणामरूपाऽध्यवसाया भवन्ति, तेषां स्थानानि मन्द-मध्य-तीव्राणि भवन्ति। तत्र जघन्यशुभपरिणामस्य स्थानं विशुद्धं, तस्मादुत्कृष्टस्य विशुद्धतरं, ततोऽप्युत्कृष्टशुभपरिणामस्य विशुद्धतमं स्थानं प्राप्नुवतो जीवस्य वर्धमानशुभपरिणत्या तादृक्परिणामविशेषो जायते, येन तीर्थङ्कराद्युपदेश-मन्तरेण स्वत एव जीवस्य कर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धोत्पद्यते। तत्रायं क्रमः—

श्रद्धाप्राप्तयेऽधिकारी द्विविधो भवति, अनादिमिथ्यादृष्टिः, सादि-मिथ्यादृष्टिश्च। यः पूर्वं कदापि सम्यक्त्वं न लब्धवान् सोऽनादिमिथ्यादृष्टिः। यश्च भव्यः पूर्वं सम्यक्त्वं प्राप्य पश्चादनन्तानुबन्धिकषायोदयादुपजातमिथ्यात्वः

अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि होने पर भी अमुक प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से उसके शुभपरिणामरूप अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं। उन अध्यवसायों के स्थान मन्द, मध्यम और तीव्र होते हैं। इन में जघन्य शुभ परिणाम का स्थान विशुद्ध है, उस से उत्कृष्ट विशुद्धतर है। और उससे भी उत्कृष्ट शुभपरिणाम विशुद्धतम है। इन स्थानों को प्राप्त जीव के वढते हुए शुभ परिणामों से एक ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है, जिस के द्वारा तीर्थंकर आदि के उपदेश के विना ही स्वयमेव जीव को कर्मों का उपशम आदि होने से श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।

क्रम इस प्रकार है—

दो प्रकार के जीव श्रद्धा पाने के अधिकारी है-(१) **अनादिमिथ्यादृष्टि** और (२) **सादिमिथ्यादृष्टि**। जिस जीवने पहले कभी सम्यक्त्व नहीं पाया वह **अनादिमिथ्यादृष्टि** कहलाता है। जिस भव्य जीवने पहले सम्यक्त्व पाया किन्तु

થકો ભવ્ય જીવ જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપયોગસ્વભાવવાળા હોવાના કારણે અનાદિ કાલથી મિથ્યાદષ્ટિ હોવા છતાય પણ અમુક પ્રકારની ભવસ્થિતિનો પરિપાક હોવાથી તેને શુભ પરિ-ણામરૂપ અધ્યવસાય ઉત્પન્ન થાય છે તે અધ્યવસાયોના સ્થાન મન્દ, મધ્યમ અને તીવ્ર હોય છે તેમા જઘન્ય શુભ પરિણામનુ સ્થાન વિશુદ્ધ છે, તેનાથી ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધતર છે,અને એનાથી પણ ઉત્કૃષ્ટ શુભ પરિણામ વિશુદ્ધતમ છે આ સ્થાનોને પ્રાપ્ત જીવના વધતા ગયેલા શુભ પરિણામોમાથી એક એવુ પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે કે જેના દ્વારા તીર્થંકર આદિના ઉપદેશ વિનાજ સ્વયમેવ, જીવને કર્મોનો ઉપશમ આદિ થવાથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે

ક્રમ આ પ્રકારે છે-

બે પ્રકારના જીવ શ્રદ્ધા પ્રાપ્ત કરવાની અધિકારી છે (૧) અનાદિ મિથ્યાદષ્ટિ અને (૨) સાદિમિથ્યાદષ્ટિ જે જીવે પહેલા ક્યારેય સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યુ નથી તે અનાદિ મિથ્યાદષ્ટિ કહેવાય છે. જે ભવ્ય જીવે પહેલા સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યું હતું પરન્તુ પછીથી

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तम्, स उत्कर्षतो देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्त्तं स्थित्वा पुनः सम्यक्त्वं प्राप्स्यति, स सादिमिथ्यादृष्टिर्भवति।

यथाप्रवृत्तिकरणम्—

एवमुभयविधस्य मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य परिणामरूपाध्यवसायाः पूर्वं जघन्य शुभपरिणाममङ्गीकृत्य परं परः शुभपरिणामः परिणामविशेष इत्युच्यते। स एव परिणामविशेषो 'यथाप्रवृत्तिकरण'—मित्युच्यते।

यथाप्रवृत्तिकरण—मित्यस्य शब्दार्थस्त्वेवम्—यथा=येन अनादिसंसिद्ध प्रकारेण प्रवृत्तिर्यस्य तत् यथाप्रवृत्ति, क्रियते कर्मक्षपणमनेनेति करणं=जीवस्य शुभपरिणामः, यथाप्रवृत्ति च तत्करणं च यथाप्रवृत्तिकरणं कर्मक्षपणकारणस्या

बाद में अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से फिर मिथ्यात्व आ गया किन्तु वह मिथ्यात्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गलपरावर्तन तक रहता है वह जीव सादिमिथ्यादृष्टि है।

यथाप्रवृत्तिकरण—

इस प्रकार दोनों प्रकार के मिथ्यादृष्टि जीवों का अध्यवसाय पहले के जघन्य शुभ परिणाम से लेकर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहलाता है। इसी परिणामविशेष को 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहते हैं।

'यथाप्रवृत्तिकरण' का शब्दार्थ इस प्रकार है—'यथा' अर्थात् अनादि कालीनरूप से जिस की प्रवृत्ति हो वह यथाप्रवृत्ति कहलाता है। जिस से कर्मों का क्षय किया जाता है, जीव के उस शुभ परिणाम को 'करण' कहते हैं। यथाप्रवृत्ति

અનન્તાનુબંધી કષાયના ઉદયથી ફરીથી મિથ્યાત્વ આવી જાય પણ તે મિથ્યાત્વ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત સુધી અને ઉત્કૃષ્ટ દેશોન અર્ધ પુદ્ગલપરાવર્તન સુધી રહે છે તે જીવ સાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ છે.

યથાપ્રવૃત્તિકરણ—

આ પ્રકારના બન્ને મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવોના અધ્યવસાય પહેલાના જઘન્ય શુભ પરિણામથી લઈને ઉત્તરોત્તર વધતા શુભ પરિણામ, પરિણામવિશેષ કહેવાય છે તે પરિણામવિશેષને યથાપ્રવૃત્તિકરણ કહે છે. 'યથાપ્રવૃત્તિકરણ' નો શબ્દાર્થ આ પ્રકારે છે—'યથા' અર્થાત્ અનાદિ કાલીનરૂપથી જેની 'પ્રવૃત્તિ' હોય તે 'યથાપ્રવૃત્તિ' કહેવાય છે જેનાથી કર્મોનો ક્ષય કરવામાં આવે છે જીવના તે શુભ પરિણામને 'કરણ' કહે છે.

ध्यवसायमात्रस्य सर्वदैव भावादुदयावलिकामविष्टानां कर्मणां सर्वदैव क्षपणात्।

यथाप्रवृत्तिकरणं भव्यस्याभव्यस्य च भवति। वक्ष्यमाणमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणं च भव्यस्यैव भवति, न त्वभव्यस्य।

मिथ्यात्ववशादनन्तान् पुद्गलपरावर्त्तान् अनन्तदुःखान्यनुभूय कथमपि तादृशभवस्थितिपरिपाकवशाद् गिरिणदीप्रवहदुद्वर्त्तितापवर्त्तितपाषाणवर्तुलावस्थावदनाभोगनिर्वर्त्तितेन यथाप्रवृत्तिकरणेन विशुद्धपरिणामविशेषरूपेणायुष्य-कर्म वर्जयित्वा ज्ञानावरणीयादिकर्माणि सर्वाण्यपि पल्योपमासंख्येयभागन्यूनैक-

---

रूप करण यथाप्रवृत्तिकरण कहलाता है। कर्मक्षय का कारणभूत अध्यवसाय सदैव बना रहता है, क्यों कि उदयावलिका में आए हुए कर्मों का सदा क्षय होता रहता है।

यथाप्रवृत्तिकरण भव्य जीव को भी होता है और अभव्य जीव को भी होता है, किन्तु आगे कहे जाने वाले अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण भव्य जीव को ही होते हैं, अभव्य जीव को नहीं।

मिथ्यात्व के वश होकर अनन्त पुद्गलपरावर्तनों तक अनन्त दुःखों को भोगने के पश्चात् किसी भी तरह उस प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से पहाडी नदी के प्रवाह में बहने वाला, लुढक (गुडक)ने वाला, घिसने वाला पाषाण जैसे गोलमटोल बन जाता है, उसी प्रकार अनजान में ही यथाप्रवृत्तिकरणरूप विशुद्ध परिणाम के कारण आयुकर्म को छोडकर ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म पल्योपम के असख्यातवे भाग कम

યથાપ્રવૃત્તિરૂપ કરણ તે 'યથાપ્રવૃત્તિકરણ' કહેવાય છે કર્મક્ષયના કારણભૂત અધ્યવસાય હમેશા બની રહે છે, કેમકે—ઉદયાવલિકામા આવેલા કર્મોનો હમેશા ક્ષય થયા કરે છે

યથાપ્રવૃત્તિકરણ ભવ્ય જીવને પણ થાય છે, અને અભવ્ય જીવને પણ થાય છે, પરન્તુ આગળ કહેવામા આવશે તે અપૂર્વકરણ અને અનિવૃત્તિકરણ ભવ્ય જીવોને જ થાય છે, અભવ્ય જીવોને થતા નથી

મિથ્યાત્વને વશ થઈને અનન્ત પુદ્ગલપરાવર્ત્તનો સુધી અનન્ત દુખોને ભોગવ્યા પછી કોઈ પણ પ્રકારે આ પ્રકારની ભવસ્થિતિનો પરિપાક થવાથી પહાડી નદીના પ્રવાહમાં વહેવાવાળો—ગબડવાવાળો, ઘસાતો જતો પથ્થર જેવી રીતે ગોળ-મટોળ બની જાય છે, એ પ્રમાણે અજાણતા પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણરૂપ વિશુદ્ધ પરિણામના કારણે આયુકર્મને ત્યજીને બીજા જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત કર્મ પલ્યોપમના અસખ્યાતમા ભાગ—ઓછાં

सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानि करोति । उक्तञ्च—

"अंतिमकोडाकोडीए होइ सव्वासिं कम्मपगडीणं ।
पलियासंखसमागे खीणे सेसे हवइ गंठी ॥ १ ॥"

तत्रायं क्रमो विज्ञेयः—ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-वेदनीया-ऽन्तरायकर्म-चतुष्टयस्य त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटय उत्कृष्टा स्थितिः। नामगोत्रयोर्विंशति सागरोपमकोटीकोटयः, मोहनीयस्य सप्ततिसागरोपमकोटीकोटय उत्कृष्टा स्थितिः। तत्र यथाप्रवृत्तिकरणेन जीव उत्कृष्टां स्थितिं ह्रासयन् तावतीं स्थितिं प्रापयति, येन समानरूपेण सप्तानां कर्मणां पल्योपमासंख्येयभागन्यूनैकसागरोपमकोटीकोटीस्थिति

एक कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति में लाये जाते हैं। कहा भी है—

"समस्त कर्म प्रकृतियाँ जब पल्य के असंख्यातवें भाग कम कोडाकोडी की स्थितिवाली होती हैं, तब ग्रन्थि होती है" ॥ १ ॥

क्रम इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय वेदनीय और अन्तराय, इन चार कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस-तीस कोडा-कोडी सागरोपम की है। नाम और गोत्रकी बीस-बीस कोडाकोडी सागरोपम की है, और मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सित्तर (७०) कोडाकोडी सागरोपम की है। यथाप्रवृत्तिकरण के द्वारा जीव इस सारी उत्कृष्ट स्थिति को घटाकर इतनी कम कर डालता है कि सातों कर्मों की स्थिति समानरूप से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम कोडाकोडी

એક કોડા-કોડી સાગરોપમની સ્થિતિમાં લાવવામાં આવે છે કહ્યું પણ છે

"સમસ્ત કર્મપ્રકૃતિઓ જ્યારે પલ્યના અસંખ્યાતમાં-ભાગ ઓછા-એક કોડા-કોડીની સ્થિતિવાળી હોય છે ત્યારે ગ્રંથિ થાય છે" ॥૧॥

ક્રમ આ પ્રમાણે છે-જ્ઞાનાવરણીય દર્શનાવરણીય, વેદનીય અને અન્તરાય આ ચાર કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ ત્રીસ-ત્રીસ કોડા-કોડી સાગરોપમની છે નામ અને ગોત્રની વીસ વીસ કોડા-કોડી સાગરોપમની છે અને મોહનીય કર્મની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ સીત્તેર (૭૦) કોડા-કોડી સાગરોપમની છે યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા જીવ તમામ ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિને ઓછી કરીને-એટલી ઓછી કરી નાંખે છે કે-સાતે કર્મોની સ્થિતિ સમાનરૂપથી પલ્યોપમના અસંખ્યાતમાં ભાગ ઓછા એક સાગરોપમ કોડા-કોડીની બાકી રહી જાય છે એના

स्त्वशिष्टा भवति। अत्रान्तरे च यथाप्रवृत्तिकरणेन कर्मनिर्जरां कुर्वतो जीवस्य यावत् पूर्वकर्मणो निर्जरा न भवति तावत् स्थीयमानं तीव्ररागद्वेषपरिणामरूपं कर्म, ग्रन्थि-सादृश्याद् ग्रन्थिरित्युच्यते ॥

यथा काष्ठविशेषस्य अतिकठोरनिबिडातिशुष्कघनगूढग्रन्थिर्दुर्भेद्यस्तथा तीव्ररागद्वेषपरिणामरूपः कर्मविशेषोऽपि दुर्भेद्यो भवति तस्माद् ग्रन्थिशब्देन व्यवह्रियते।

अभव्या अपि यथाप्रवृत्तिकरणबलेन कर्म क्षपयित्वाऽनन्तवारमेतद्ग्रन्थि-पर्यन्तमागच्छन्ति। कश्चिद् ग्रन्थिस्थानं प्राप्य तस्मादधः पतति। कश्चित्तत्रैव ग्रन्थिस्थाने स्थितस्तिष्ठति, न तस्मादग्रे प्रवर्तते।

की बाकी रह जाती है। इसी बीच–यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा कर्मों की निर्जरा करते हुए जीव के जितने कर्मों की निर्जरा नहीं होती अर्थात् जो कर्म शेष रह जाते हैं, वे तीव्र राग द्वेषपरिणामरूप कर्म, ग्रन्थि के समान होने के कारण **ग्रन्थि** (गांठ) कहलाती हैं।

जैसे–काठविशेष की अत्यन्त कठिन घनी और एकदम सूखी भीतरी गांठ दुर्भेद्य होती है, उसी प्रकार राग–द्वेषपरिणामरूप कर्मविशेष भी दुर्भेद्य होता है, अत एव वह कर्म, **ग्रन्थि** कहलाती है।

अभव्य जीव भी यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा कर्म का क्षय कर के अनन्त वार ग्रन्थि पर्यन्त आ पहुँचते हैं, कोई-कोई ग्रन्थिस्थान को प्राप्त कर के फिर नीचे गिर जाता है। कोई–कोई ग्रन्थिस्थान पर ही ठहर जाता है, आगे नहीं बढता है।

વચમાં–યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મોની નિર્જરા કરતા થકા જીવના જેટલા કર્મોની નિર્જરા નથી થતી અર્થાત્ જે કર્મ શેષ રહી જાય છે તે તીવ્ર રાગ–દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મ, ગ્રથિના સમાન હોવાના કારણે ગ્રથિ (ગાઠ) કહેવાય છે

જેવી રીતે કાષ્ઠ (લાકડા) વિશેષની અત્યન્ત કઠિન, મજબુત અને એકદમ સૂકી અદરની ગાઠ દુર્ભેદ્ય હોય છે, એ પ્રમાણે રાગ–દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મવિશેષ પણ દુર્ભેદ્ય હોય છે. એટલા માટે તે કર્મ, ગ્રથિ કહેવાય છે

અભવ્ય જીવ પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મનો ક્ષય કરીને અનતવાર ગ્રથિ સુધી પહોચે છે કોઈ કોઈ ગ્રથિ સ્થાનને પ્રાપ્ત થઈને પાછા નીચે પડી જાય છે કોઈ–કોઈ ગ્રથિ સ્થાન ઉપરજ રહી જાય છે આગળ વધી શકતા નથી

अभव्योऽपि कश्चित् यथाप्रवृत्तिकरणेन ग्रन्थिपर्यन्तं समागत्य तीर्थङ्करातिशय दर्शनेन लब्धिधारिभावितात्ममहात्मनो महिमावलोकनेन, प्रयोजनान्तरेण वा प्रवर्तमानः सूत्रार्थतदुभयश्रवणपठनरूप श्रुतसामायिकं लभते, न त्वन्यदपूर्वं करणादिकम्।

॥ अपूर्वकरणम्—

तदनन्तरं कश्चिदेव भव्यजीव आसन्नसिद्धिसुखत्वादुदितप्रचुरदुर्निवारवीर्य-प्रसरोऽतिनिशितकुठारेणेव यथाप्रवृत्तिकरणापेक्षया विशुद्धतरेणापूर्वापूर्वशुभा-ध्यवसायविशेषरूपेणापूर्वकरणेन प्रागुक्त दुर्भेद्य कर्मग्रन्थिं भिनत्ति।

कोई अभव्य भी यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा ग्रन्थि तक आकर तीर्थंकर भगवान् का अतिशय देखकर, लब्धिधारी भावितात्मा महात्मा की महिमा देखकर, अथवा किसी अन्य प्रयोजन से प्रवृत्ति करता हुआ सूत्र, अर्थ और तदुभय आगम का श्रवण या पठनरूप श्रुतसामायिक को प्राप्त कर लेता है, मगर वह अपूर्वकरण आदि को नहीं पा सकता।

अपूर्वकरण—

तदनन्तर मोक्षसुख समीप होने के कारण जिस में प्रचुर और दुर्निवार शक्ति उत्पन्न हो गई है ऐसा कोई भव्य जीव ही बहुत तीखे कुल्हाड़े के समान यथाप्रवृत्ति-करण की अपेक्षा अधिक विशुद्ध और पहले कभी भी प्राप्त न होने वाले शुभअध्यवसायरूप अपूर्वकरण के द्वारा उस दुर्भेद्य कर्मग्रन्थि को भेदता है।

કોઈ અભવ્ય પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા ગ્રંથી સુધી આવીને તીર્થંકર ભગવાનના અતિશયને જોઈને, લબ્ધિધારી ભાવિતાત્મા મહાત્માનો મહિમા જોઈને, અથવા કોઈ અન્ય પ્રયોજનથી પ્રવૃત્તિ કરતો થકો સૂત્ર અર્થ અને તદુભય આગમના શ્રવણ અથવા પઠનરૂપ શ્રુત-સામાયિકને પ્રાપ્ત કરી લે છે પરન્તુ તે અપૂર્વકરણ આદિને પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી.

અપૂર્વકરણ—

ત્યાર પછી મોક્ષસુખ સમીપ હોવાના કારણે જેનામાં મહાન અને કોઈથી નિવારી શકાય નહિ તેવી શક્તિ ઉત્પન્ન થઈ ગઈ છે એવો કોઈ ભવ્ય જીવજ બહુજ તીખા કુહાડા સમાન યથાપ્રવૃત્તિકરણની અપેક્ષા અધિક વિશુદ્ધ અને પહેલાં કોઈ વખત પણ પ્રાપ્ત નહિ થયેલા શુભ-અધ્યવસાયરૂપ અપૂર્વકરણ દ્વારા એ દુર્ભેદ્ય કર્મગ્રંથિને ભેદે છે

अस्मिन् ग्रन्थिभेदे मनःक्षोभपरिश्रमादिविघ्नाः भवन्ति । यथा विद्यासाधकस्य विद्याधिष्ठातृदेवताकृतोपसर्गैर्मनःक्षोभो भवति, यथा घोरमहासमरगतसुभटस्य दुर्धर्ष-बहुतरशत्रुगणपराजयकरणात्परिश्रमो भवति, यथा च महासमुद्रादिभ्यो नौकादितारणे नाविकस्य परिश्रमो भवति तथा प्रचुरदुर्जयकर्मशत्रुसंघातपराजये परिश्रमोऽतिशयेन जायते । वज्राश्मवद्दुर्भेद्योऽयं कर्मग्रन्थिः । अपूर्वकरणवज्रसूच्याश्रयमन्तरेणास्य भेदो दुष्करः ।

अपूर्वकरणवज्रसूच्या सकृद् ग्रन्थिभेदे कृते सति लब्धविशुद्धतमश्रद्धा-

---

ग्रन्थिभेदन करने में मानसिक क्षोभ तथा परिश्रम आदि अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं । जैसे विद्या की साधना करने वाले को विद्या की अधिष्ठात्री देवता के द्वारा किये जाने वाले विघ्नों से मन में क्षोभ होता है, और घनघोर महायुद्ध में गये हुए योद्धा को बहु-सख्यक और दुर्जय शत्रुओं के दल पर विजय प्राप्त करने में परिश्रम करना पडता है, अथवा जैसे किसी महासमुद्र से जहाज वगैरह को पार लगाने में नाविक को परिश्रम करना पडता है, उसी प्रकार बहुत–से दुर्जय कर्मशत्रुओं के दल को पराजित करने में अत्यन्त परिश्रम करना पडता है । यह कर्मग्रन्थि वज्र की तरह बडी कठिनाई से भेदी जाती है । अपूर्वकरणरूपी वज्र की सुई का सहारा लिये विना उस का भेदन होना अशक्य है ।

अपूर्वकरण की वज्रमय सुई से एक वार कर्मग्रन्थि का भेदन हो जाने पर

ग्रंथिभेदन करवामा मानसिक क्षोभ तथा परिश्रम आदि अनेक विघ्न उपस्थित थाय छे जेम विद्यानी साधना करवावाळाने विद्यानी अधिष्ठात्री देवताद्वारा थवावाळा विघ्नोथी मनमा क्षोभ थाय छे, अने घनघोर महायुद्धमा गयेला योधाने घणीज संख्यावाळा अने दुर्जय शत्रुओना दळ उपर विजय मेळववामा जेम परिश्रम करवो पडे छे अथवा—जेवी रीते कोई महासमुद्रमाथी वहाणु वगेरेने पार लई जवामा नाविकोने परिश्रम करवो पडे छे, ए प्रमाणे बहुज दुर्जय कर्मशत्रुओना दळनो पराजय करवामा अत्यन्त परिश्रम करवो पडे छे

आ कर्मग्रंथि वज्रना जेवी महाकठिनताथी भेदी शकाय छे अपूर्वकरण रूपी वज्रनी सोयनी सहाय लीधा विना तेनु भेदन थवु अशक्य छे

अपूर्वकरणनी वज्रमय सोयथी एकवार कर्मग्रंथिनु भेदन थई जवा पछी

सामर्थ्यान्न पुनर्ग्रन्थिबन्धनं भवति, यथा आतवेधो मणिः कथञ्चिद्रजसा परिपूरितेऽपि रन्ध्रे न पूर्वावस्थां प्राप्नोति, तथैव सम्प्राप्तसम्यक्त्वो जीवः कथञ्चित्सम्यक्त्वापगमे पश्चात्तीव्ररागद्वेषपरिणामप्राप्तावपि न पुनर्ग्रन्थिरूपेण कर्म बध्नाति।

यथा जन्मान्धस्य कथञ्चिच्चक्षुःप्राप्तौ सत्यां यथावस्थितपदार्थसार्थावलोकनेन, यथा च महाव्याधिविनिवदुरन्तघोरवेदनासमाक्रान्तस्य तद्व्याध्यपगमे महान् प्रमोदो जायते तथा भव्यस्यानिवृत्तिकरणबलेन वीतरागोपदिष्ट

जीव को श्रद्धा की अत्यन्त विशुद्ध शक्ति प्राप्त हो जाती है, अत एव फिर कभी ग्रंथिबंध नहीं होता। किसी मणि में एक बार छेद कर दिया जाय और कालान्तर में उस में धूल भर जाय तो भी वह छेद पहले की भाँति नहीं होता। इसी प्रकार एकबार सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने वाला जीव सम्यक्त्व के नष्ट हो जाने पर भी बाद में तीव्र राग-द्वेषरूप परिणामों की प्राप्ति होने पर भी ग्रंथि के रूप में कर्मों का बंध नहीं करता।

जैसे जन्म से अंधे को किसी उपाय से आंखें मिलने पर पदार्थों का असली स्वरूप देखकर अत्यन्त हर्ष होता है, अथवा जैसे किसी महान् रोग से होने वाली घोर वेदना से पीड़ित पुरुष के रोग हट जाने पर महान् हर्ष होता है, उसी प्रकार भव्य-जीव को अनिवृत्तिकरण-के बल से भगवान् वीतराग द्वारा कथित यथार्थ

જીવને શ્રદ્ધાની અત્યન્ત વિશુદ્ધ શક્તિ પ્રાપ્ત થઈ જાય છે એટલા માટે ફરી કોઈ વખત ગ્રંથિબંધ થતો નથી. કોઈ મણિમાં એક વખત છિદ્ર-કાણું પાડયાં પછી કાલાન્તરમાં તે છિદ્રમાં ધ્રાય ધૂળ ભરાઈ જાય તો પણ તે છેદ પ્રથમ પ્રમાણે થતો નથી. આ પ્રકારે એકવાર સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરી લેવાવાળા જીવ, સમ્યક્ત્વનો નાશ થવા છતાં પણ પછીથી તીવ્ર રાગ-દ્વેષ રૂપ પરિણામોની પ્રાપ્તિ થવા છતાંય પણ ગ્રંથિના રૂપમાં કર્મોના બંધ કરતા નથી.

એવી રીતે જન્માથી આંધળાને કોઈપણ ઉપાયથી નેત્ર મળી જતાં પદાર્થોના અસલી સ્વરૂપને જોઈને અત્યંત હર્ષ થાય છે અથવા જેમ કોઈ મહાન્ રોગથી થવા વાળી મહાઘોર વેદનાથી પીડિત પુરૂષનો રોગ નિવારણ થઈ જતાં તેને મહાન્ હર્ષ થાય છે. એ પ્રમાણે ભવ્ય જીવને અનિવૃત્તિકરણના બળથી, ભગવાન વીતરાગદ્વારા કથિત

यथावस्थितवस्तुतत्त्वाऽभिरुच्या श्रद्धयाऽभूतपूर्वो विषयवैरस्यपुरस्कृत' प्रमोदः प्रादुर्भवति ।

॥ अनिवृत्तिकरणम्—

ततश्च ग्रन्थिभेदोत्तरकालमेव ततो विशुद्धतमं शुभाध्यवसायविशेषमनिवृत्तिकरणं प्राप्नोति, येन तावन्न निवर्त्तते जीवः सम्यक्त्वं न लभते यावदित्यनिवृत्तिकरणमुच्यते । अनिवृत्तिकरणबलेन जीवः सम्यग्दर्शनं लभते । तदेव नैसर्गिकी श्रद्धोच्यते ।

ननु प्रागुक्तं 'मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धा जायते' पुनरुच्यते 'निसर्गादधिगमाद्वा श्रद्धा जायते' तदसंगतम् ।

वस्तुस्वरूप के प्रति रूचिरूप श्रद्धा से विषयवैराग्यपूर्वक एक ऐसा आनन्द उत्पन्न होता है, जिस का पहेले कभी अनुभव नहीं हुआ था ।

अनिवृत्तिकरण—

ग्रंथिभेद के अनन्तर काल में अत्यन्त विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है । वही **अनिवृत्तिकरण** कहलाता है । यह परिणाम प्राप्त होने पर जीव सम्यक्त्व प्राप्त किये विना नहीं लौटता, इसी कारण इसे 'अनिवृत्तिकरण' कहते हैं । **अनिवृत्तिकरण** के द्वारा जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है । उसी को नैसर्गिक श्रद्धा कहते है ।

शङ्का—पहले कहा था कि—'मिथ्यात्वमोहनीयकर्म के उपशम आदि से श्रद्धा उत्पन्न होती है' और बाद में कहते हैं कि—'निसर्ग से, अथवा अधिगम से श्रद्धा उत्पन्न होती है'। यह कथन परस्पर असगत है ?

યથાર્થવસ્તુસ્વરૂપની રૂચિરૂપ શ્રદ્ધાથી વિષયવૈરાગ્યપૂર્વક એક એવો આનંદ ઉત્પન્ન થાય છે કે—જેનો પહેલા કોઈ વખત અનુભવ થયો નથી

અનિવૃત્તિકરણ—

ગ્રંથિભેદના અનન્તર (તરતના) કાળમા અત્યન્ત વિશુદ્ધ પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે તે 'अनिवृत्तिकरण' કહેવાય છે આ પરિણામ પ્રાપ્ત થયા પછી જીવ સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યા વિના પાછો નથી ફરતો તેથીજ એને अनिवृत्तिकरण કહે છે. अनिवृत्तिकरण જીવ દ્વારા સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરે છે તેનેજ નૈસર્ગિક (સ્વાભાવિક) શ્રદ્ધા કહે છે

શંકા—પહેલા કહ્યુ હતુ કે—'મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના ઉપશમ આદિથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે' અને પછી કહો છો કે—'નિસર્ગ અથવા અધિગમથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે, એ કથન પરસ્પર અસગત છે.

अत्रोच्यते—स एव क्षयोपशमादिर्निसर्गाधिगमाद्वा जायते, तथा च श्रद्धाया अपि तदुद्वयं कारणं सिद्ध्यतीति न दोषः ।

ननु सम्यक्त्वगुणरहितेनैव जीवेन प्राचीयसी कर्मस्थितिर्ग्रन्थिभेदात् पूर्वं यथाप्रवृत्तिकरणेन यथा क्षपिता तथा तदवशिष्टमपि कर्मग्रन्थिं यथाप्रवृत्तिकरणेनैव भिनत्तु, ततो मोक्षमप्यनयैव प्राप्नोतु किं पुनरपूर्वकरणाश्रयणेन ? अत्रोच्यते-महाविद्यासाधनवदेतद् बोध्यम् । यथा महाविद्यायाः साधने पूर्वं स्वल्प एव परिश्रमो भवति, तत्सिद्धिप्राप्तिसमये तु सा विद्या तदधिष्ठातृदेवताकृत

समाधान—मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का क्षयोपशम आदि, निसर्ग से अथवा अधिगम से होता है ऐसी स्थिति में यह दोनों कारण श्रद्धा के ही हैं अतः कोई दोष नहीं है।

शङ्का—जीव ने सम्यक्त्व न होने पर भी जैसे उतनी बड़ी भारी कर्मस्थितिको ग्रन्थिभेद से पहले ही यथाप्रवृत्तिकरण के द्वारा खपा डाला इसी प्रकार शेष स्थिति भी यथाप्रवृत्तिकरण के द्वारा ही खपा दे और मोक्ष भी इसी प्रकार प्राप्त करले फिर अपूर्वकरण का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता है ?

समाधान— महाविद्या की साधना की तरह ही यहाँ समझना चाहिए। जैसे महाविद्या की साधना में पहले थोड़ा-सा श्रम होता है किन्तु जब उस की सिद्धि का समय नजदीक आता है तो वह विद्याधिष्ठात्री देवताद्वारा किये जानेवाले नाना प्रकार के उपसर्गों द्वारा विघ्नयुक्त हो जाता है और प्रायः अत्यन्त कष्टसाध्य बन जाती है,

---

સમાધાન—મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના ક્ષયોપશમ આદિ, નિસર્ગથી અથવા અધિગમથી થાય છે, એવી સ્થિતિમાં આ બન્ને કારણો શ્રદ્ધાનાજ છે તેથી કોઈ દોષ નથી.

શંકા—જીવને સમ્યક્ત્વ ન હોય તો પણ જેવી રીતે એવડી મહાભારી કર્મસ્થિતિને ગ્રંથિભેદના પહેલાંજ યથાપ્રવૃત્તિકરણના દ્વારા ખપાવી નાખે છે તે પ્રમાણે શેષ સ્થિતિ પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારાજ ખપાવી નાખે અને મોક્ષ પણ આ પ્રમાણે પ્રાપ્ત કરી લીએ તો પછી અપૂર્વકરણનો આશ્રય લેવાની શું આવશ્યકતા છે ?

સમાધાન—મહાવિદ્યાની સાધના પ્રમાણેજ અહિં સમજી લેવું જોઈએ. જેમ મહાવિદ્યાની સાધનામાં પહેલાં થોડો એવો શ્રમ થાય છે, પરન્તુ જ્યારે તેની સિદ્ધિનો સમય નજીક આવે છે ત્યારે તે વિદ્યાની અધિષ્ઠાત્રીદેવતાદ્વારા કરવામાં આવતા નાના પ્રકારના ઉપસર્ગો દ્વારા વિઘ્નયુક્ત થઈ જાય છે અને ઘણું કરીને અત્યન્ત કષ્ટસાધ્ય

विविधोपसर्गैः सविघ्ना कष्टतरसाध्या च प्रायशो भवति, तद्वद् ग्रन्थिभेदो मनः-क्षोभादिविविधोपसर्गैः, परमवीर्याविष्कारपूर्वककष्टतरसाध्यत्वेन च सविघ्नोऽतिदुष्करश्च, तस्मात् केवलं यथाप्रवृत्तिकरणेन ग्रन्थिभेदो न भवितुमर्हति, अत एवा पूर्वकरणमावश्यकमिति। इत्थं चापूर्वकरणेन ग्रन्थिभेद विधायाऽनिवृत्ति-करणेन श्रद्धा लभ्यते।

॥ अधिगमश्रद्धा—

येन प्रकारेण निसर्गतः श्रद्धा जायते स कथितः, अधुना-अधिगमश्रद्धा व्याख्यायते-अधि=अधिकृत्य तीर्थङ्कराद्युपदेश निमित्तीकृत्य गमः=ज्ञानं यद्भवति सोऽधिगमः, वीतरागोपदेशश्रवणाद् वीतरागप्रणीतागमार्थपर्यालोचनाद्वा यथाव-

---

इसी प्रकार ग्रन्थिभेद भी मन क्षोभ आदि अनेक उपसर्गों के कारण विघ्नयुक्त हो जाता है और ग्रथिभेद के करने में वडी शक्ति की आवश्यकता होती है, अत एव अकेले **यथाप्रवृत्तिकरण** से ग्रथिभेद नहीं हो सकता, उस के लिए **अपूर्वकरण** की आवश्यकता होती है। इस प्रकार **अपूर्वकरण**-द्वारा ग्रन्थिभेद करने पर **अनिवृत्तिकरण**-द्वारा श्रद्धा प्राप्त की जाती है।

अधिगमश्रद्धा—

जिस प्रकार निसर्ग से श्रद्धा उत्पन्न होती है वह प्रकार कहा जा चुका। अब **अधिगमश्रद्धा** की व्याख्या की जाती है-तीर्थङ्कर आदि के उपदेश के निमित्त से होने वाला ज्ञान **अधिगम** कहलाता है। वीतराग भगवान् का उपदेश सुनने से

બની જાય છે, એ પ્રમાણે ગ્રથિભેદ પણ મન ક્ષોભ આદિ અનેક ઉપસર્ગોના કારણે વિઘ્નયુક્ત થઈ જાય છે, અને તે ગ્રન્થિભેદના કરવામા ભારે શક્તિની આવશ્યકતા હોય છે, એટલા માટે એકલા यथाप्रवृत्तिकरणथी ગ્રથિભેદ થતો નથી, તેને માટે अपूर्वकरणनी આવશ્યકતા રહે છે, એ પ્રમાણે अपूर्वकरण-દ્વારા ગ્રથિભેદ કરવાથી अनिवृत्तिकरण-દ્વારા શ્રદ્ધા પ્રાપ્ત કરવામા આવે છે

અધિગમશ્રદ્ધા—

જે પ્રમાણે નિસર્ગથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે તે પ્રકાર કહેવામા આવી ગયો છે હવે अधिगमश्रद्धानी વ્યાખ્યા કરવામા આવે છે-તીર્થંકર આદિના ઉપદેશના નિમિત્તથી થવાવાળુ જ્ઞાન તે अधिगम કહેવાય છે વીતરાગ ભગવાનનો ઉપદેશ સાભળવાથી, અથવા

स्वितपदार्थनिर्णयो जायते सोऽधिगमः, तस्मादुपशमादिद्वारेण तत्त्वार्थाभिरुचिर्जायते सा-अधिगमश्रद्धा ।

श्रद्धया शमसंवेगादय प्रादुर्भवन्ति, ततश्च राज्यादिविभवं पुत्रदारादिकं स्वजनं सर्वं परिणामदुःखमयं विषवत्परित्यज्य सर्वसुखसारभूतं नित्यं ध्रुवं शाश्वतिकं मोक्षसुखं प्राप्तुकामः प्रव्रजितो भवति ।

संयमश्रेणिप्राप्तिकाले या प्रवृद्धपरिणामधारा वर्तते तां सर्वथा रक्षेन्न तु ह्रासयेदिति भावः । श्रद्धायाः परमदुर्लभत्वात्, ज्ञानचारित्रकारणतया मोक्षस्यादि

अथवा वीतराग द्वारा निरूपित आगम के अर्थ का विचार करने से पदार्थों का यथार्थ निर्णय होता है । उस निर्णय को अधिगम कहते हैं । उस अधिगम से मिथ्यात्व मोहनीय का क्षय, उपशम आदि होने पर तत्त्वार्थ की जो रुचि होती है, वह अधिगम श्रद्धा है ।

श्रद्धा से शम संवेग आदि उत्पन्न होते हैं, अत एव "राज्य आदि वैभव तथा पुत्र, पत्नी आदि समस्त आत्मीयजन अन्त में दुःखदायक हैं" ऐसा जान कर, और विष के समान उन का परित्याग कर के सब सुखों में उत्तम, नित्य, ध्रुव, शाश्वतिक मोक्ष-सुख की इच्छावाला वह सम्यग्दृष्टि पुरुष दीक्षित हो जाता है ।

तात्पर्य यह है कि-संयमप्राप्ति के समय परिणामों की जो बढ़ी हुई धारा थी उस की सब प्रकार से रक्षा करना चाहिए, उसे घटने नहीं देना चाहिए । श्रद्धा परम दुर्लभ है, और ज्ञान एवं चारित्र का कारण होने से मोक्ष का आद्य कारण है, अत एव

વીતરાગદ્વારા નિરૂપિત આગમના અર્થનો વિચાર કરવાથી પદાર્થોનો યથાર્થ નિર્ણય થાય છે તે નિર્ણયને અધિગમ કહે છે તે અધિગમથી મિથ્યાત્વમોહનીયનો ક્ષય-ઉપશમ આદિ થયા પછી તત્ત્વાર્થની જે રૂચિ થાય છે તે અધિગમશ્રદ્ધા છે

શ્રદ્ધાથી શમ, સંવેગ આદિ ઉત્પન્ન થાય છે. એટલા માટે 'રાજ્ય આદિ વૈભવ તથા પુત્ર, પત્ની વગેરે સમસ્ત આત્મીયજન અંતમાં દુઃખદાયક છે." એ પ્રમાણે જાણીને વિષની સમાન તેનો ત્યાગ કરીને સર્વસુખોમાં ઉત્તમ, નિત્ય, ધ્રુવ શાશ્વતિક મોક્ષ સુખની ઇચ્છાવાળા સમ્યગ્દૃષ્ટિ પુરૂષ દીક્ષિત થઈ જાય છે

તાત્પર્ય એ છે કે-સંયમની પ્રાપ્તિના સમયે પરિણામોની જે વધતી જતી ધારા હતી તેનું સર્વ પ્રકારથી રક્ષણ કરવું જોઈએ. તેને ઘટવા દેવી જોઈએ નહિ. શ્રદ્ધા પરમ દુર્લભ છે અને જ્ઞાન, એવી રીતે ચારિત્રનું કારણ હોવાથી મોક્ષનું મુખ્ય કારણ છે એટલા માટે

कारणत्वाच्च श्रद्धां न परित्यजेत् । यथा-कथञ्चित्प्राप्तस्यापि संयमस्य श्रद्धापूर्वकरक्षणे यावज्जीवं सावधानो भवेदिति सूत्राशयः ॥ सू० २ ॥

शिष्यश्रद्धादृढीकरणाय 'परिशीलितमार्गोऽनुगम्यते' इति लोकरीत्या 'पूर्व-महापुरुषाचरितोऽयं मार्गः' इत्याशयेन कथयति—

यद्वा 'पूर्वमहापुरुषतीर्थङ्कर-गणधरादिभिरप्याचरितोऽय मार्गः' इति प्रदर्शनाय शिष्यचेतसि श्रद्धातिरेको यथा स्यात्तथा सूत्रकारः स्वयमाह-'पणया' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

पणया वीरा महावीहिं ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

प्रणता वीरा महावीथिम् ॥ सू० ३ ॥

श्रद्धा का त्याग नहीं करना चाहिए, आशय यह है कि—बडी कठिनाई से प्राप्त होने वाले संयम की श्रद्धापूर्वक रक्षा करने में जीवनभर सावधान रहना चाहिए ॥सू २॥

'चले मार्ग पर चला जाता है' इस लोकव्यवहार के अनुसार शिष्य की श्रद्धा मजबूत करनेके लिए 'यह मार्ग पूर्वकालीन महापुरुषों द्वारा आचरित है' इस आशयसे कहते हैं—

अथवा-'पूर्वकाल के तिर्थङ्कर गणधर आदिने भी इसी मार्ग का अवलम्बन किया है' यह बतलाते हुए शिष्य के चित्त की श्रद्धा बढाने के लिए कहते हैं— 'पणया' इत्यादि ।

मूलार्थ—वीर पुरुष महामार्ग को प्राप्त हुए ॥ सू ३ ॥

શ્રદ્ધાનો ત્યાગ કરવો જોઈએ નહિ, આશય એ છે કે—મહાન કઠિનાઈથી પ્રાપ્ત થવાવાળા સયમની શ્રદ્ધાપૂર્વક રક્ષા કરવામા જીવનના છેલ્લા રક્ષણ સુધી સાવધાન રહેવું જોઈએ (સૂ ૨)

"ચાલતા માર્ગ પર ચલાવાય છે" આ લોકવ્યવહાર પ્રમાણે શિષ્યની શ્રદ્ધા મજબૂત કરવા માટે-'આ માર્ગ પૂર્વકાલીન મહાપુરૂષોએ આચરણ કરેલ છે' આ આશયથી કહે છે—

અથવા પૂર્વ કાલના તીર્થંકર ગણધર આદિ સૌએ આ માર્ગનું અવલમ્બન (આશ્રય) કર્યું એ બતાવવા માટે શિષ્યના ચિત્તની શ્રદ્ધાને વધારવા માટે કહે છે— 'પણયા' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—વીર પુરૂષ મહામાર્ગને પ્રાપ્ત થયા—(વીર પુરૂષે મહામાર્ગને પ્રાપ્ત કર્યો) (સૂ ૩)

॥ टीका ॥

वीराः=परीषहोपसर्गकषायादिरूपशत्रुविजयिनो भाववीराः संयमानुष्ठाने वीर्य-वन्तः सर्वोत्कृष्टा इति यावत्

महती चासौ वीथिः महावीथिः=सम्यग्ज्ञानादिलक्षणो महामार्गः, महा-पुरुषसेवितत्वात्, तां महावीथिम् प्रणताः=प्राप्ताः कठिनतरतपःसंयमाराधनेन प्राप्नुवन्त इत्यर्थः, अयमेव मार्गो मोक्षप्रापकोऽशेषमुनिसेवितत्वात्। तीर्थङ्करादिमहापुरुषा अपि मार्गमिममनुशीलितवन्त इति विश्वसनीयतया शिष्याणां श्रद्धापूर्वकमनुचिर्यया स्यादिति भावः।

यथा राजानो विपक्षपक्षदलनात् वीरत्वेन प्रसिद्धा भवन्ति, एवमेव

टीकार्थ—परीषह, उपसर्ग, कषाय आदिरूप शत्रुओं को जीतनेवाले संयम के आचरण में पराक्रम करनेवाले सर्वोत्कृष्ट भाववीर यहाँ 'वीर' शब्द से ग्रहण किये गये हैं।

सम्यग्ज्ञान आदि मोक्ष का महामार्ग 'महावीथि' कहलाता है, क्यों कि महापुरुषोंने उस का सेवन किया है। भाववीर इस महामार्ग को प्राप्त हुए हैं। अत्यन्त कठोर तप और संयम का आराधन करना ही इस मार्ग को प्राप्त करना है। यही मार्ग मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है, क्यों कि समस्त मुनियोंने इसी का सेवन किया है। तीर्थंकर आदि महापुरुषोंने भी इसी मार्ग का आश्रय लिया है, अत एव विश्वसनीय समझ कर शिष्यगण की भी इसी में प्रवृत्ति होनी चाहिए।

'वीर' पद से यह प्रकट किया गया है कि—जैसे राजा लोग अपने शत्रुओं का

ટીકાર્થ—પરીષહ ઉપસર્ગ કષાય વગેરે શત્રુઓને જીતવાવાળા, સંયમના આચરણમાં પરાક્રમ કરવાવાળા સર્વોત્કૃષ્ટ ભાવવીર અહિં 'વીર' શબ્દ વડે ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે

સમ્યગ્જ્ઞાન આદિ મોક્ષનો માર્ગ તે 'મહાવીથિ' કહેવાય છે કારણ કે મહા-પુરૂષોએ તેનું સેવન કર્યું છે ભાવવીર આ મહામાર્ગને પ્રાપ્ત થયા છે અત્યન્ત કઠોર તપ અને સંયમનું આરાધન કરવું એ જ આ માર્ગને પ્રાપ્ત કરવો તે છે આ માર્ગજ મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરાવવાવાળો છે, કારણ કે સમસ્ત મુનિઓએ એ માર્ગનું સેવન કર્યું છે. તીર્થંકર આદિ મહાપુરૂષોએ પણ આ માર્ગનો આશ્રય લીધો છે એટલા માટે આ માર્ગને વિશ્વાસપાત્ર સમજીને શિષ્યગણની પણ આ માર્ગમાં પ્રવૃત્તિ થવી જોઈએ.

'વીર' પદથી એ પ્રગટ કરવામાં આવ્યું છે કે—જેમ રાજા લોક પોતાના શત્રુઓનો

परिषहादिरूपशत्रुविजयेन संयमिनोऽपि मोक्षमार्गं लब्ध्वा लोकोत्तरवीरा भवन्ति, इति वीरपदेन व्यज्यते, इति सूत्राशयः ॥ सू० ३ ॥

कश्चिन्मन्दधीः शिष्योऽनेकदृष्टान्तैर्बोध्यमानोऽपि अप्कायादिजीवेषु न श्रद्धातीति तमुद्दिश्य कथयति-हे शिष्य! तव मतिर्यद्यप्यप्कायजीवविषये न परिस्फुरति, तद्विषये विशेषज्ञानाभावात्, तथापि भगवदाज्ञया श्रद्धा नितरां विधेयेत्याशयेनाह—'लोगं च' इत्यादि।

मूलम्—

लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ॥ सू० ४ ॥

छाया—

लोकं चाज्ञयाऽभिसमेत्य अकुतोभयम् ॥ सू० ४ ॥

दलन करके वीर पदवी पाते हैं, उसी प्रकार परीषह आदि शत्रुओं को जीतने से सयमी मोक्षमार्ग प्राप्त कर के लोकोत्तर वीर कहलाते हैं ॥सू ३ ॥

कोई मन्दबुद्धिवाला शिष्य अनेक दृष्टान्तों से समझाने पर भी अप्काय आदि के जीवों पर श्रद्धा नहीं करता तो उसे लक्ष्य कर के कहते हैं-हे शिष्य! यद्यपि तुम्हारी बुद्धि अप्काय के जीवों के विषय में नहीं दौडती, क्यों कि तुम्हें उस विषय का विशेष ज्ञान नहीं है, फिर भी भगवान् की आज्ञा से अवश्य ही श्रद्धा रखनी चाहिए। इस आशय से कहते हैं-' लोग च' इत्यादि।

मूलार्थ—भगवान् की आज्ञा से (अप्कायरूप) लोक को सम्यक् प्रकार से जानकर सयम का पालन करना चाहिए ॥ सू ४ ॥

નાશ કરીને વીર પદવી પ્રાપ્ત કરે છે, તે પ્રમાણે પરીષહ આદિ શત્રુઓને જીતવાથી સયમી પણ મોક્ષમાર્ગ પ્રાપ્ત કરીને લોકોત્તર વીર કહેવાય છે (સૂ ૩)

કોઈ મદબુદ્ધિવાળા શિષ્ય અનેક દૃષ્ટાન્તોથી સમજાવ્યા છતા પણ અપ્કાય આદિના જીવો પર શ્રદ્ધા નથી કરતા તો તેને લક્ષ્યરૂપ રાખીને કહે છે કે -હે શિષ્ય! હજી સુધી તમારી બુદ્ધિ અપ્કાયના જીવો વિષયમા દોડતી નથી (કામ કરતી નથી) કારણ કે તમને આ વિષયનુ વિશેષ જ્ઞાન નથી તો પછી ભગવાનની આજ્ઞાથી અવશ્યજ શ્રદ્ધા રાખવી જોઈએ એ આશયથી કહે છે-' લોગ ચ ' ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—ભગવાનની આજ્ઞાથી (અપ્કાયરૂપ) લોકને સમ્યક્ પ્રકારથી જાણીને સયમનુ પાલન કરવું જોઈએ (સૂ ૪)

टीका—

अत्र लोकशब्देन प्रकरणवशादप्कायलोक एव गृह्यते, तमप्काय-लोकं, 'च'-शब्देनान्यांश्चाप्कायाश्रितान्, आज्ञया=तीर्थङ्करवचनेन, अभिसमेत्य=आभिमुख्येन सम्यक् ज्ञात्वा 'अप्कायादयो जीवाः सन्ती-'त्येवमवबुध्येत्यर्थः, अकुतोभयम्=नास्ति कुतश्चित्केनापि प्रकारेण प्राणिनां भयं यस्मात्सोऽकुतोभयस्तं संयमस्तम् अनुपालयेत् इत्यन्वयः। सर्वथा जीवाभिरक्षणरूपसंयमानुपालने सावधानतया यत्नः कार्य इत्यर्थः।

यद्वाऽकुतोभयोऽप्कायलोको, यतोऽसौ न कुतश्चिदन्यस्माद्भयमिच्छति, स्वकीयमरणादिभयात् सर्वः प्राणिगणः खिन्नो भवति। 'सव्वे जीवा वि

टीकार्थ—मूल सूत्र में दिये हुए 'लोक' शब्द से, प्रकरण के कारण यहां अप्काय-लोक ही समझना चाहिए। 'च' शब्द से अप्काय के आश्रय रहे हुए अन्य जीवों का ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार अप्काय और अप्काय के आश्रित रहनेवाले अन्य जीवों को तीर्थङ्कर भगवान् की आज्ञा से सम्यक् प्रकार जानकर अर्थात् 'अप्काय आदि जीव हैं' ऐसा समझ कर संयम का पालन करना चाहिए। 'अकुतोभय' अर्थात् जिस से किसी भी प्राणि को किसी प्रकार का भय न हो ऐसा संयम। सर्वथा जीवरक्षारूप संयम के पालने में सावधान होकर यत्न करना चाहिए।

अथवा—'अकुतोभय' का अर्थ है-अप्कायलोक, क्यों कि वह दूसरे से भय की इच्छा नहीं करता। सभी प्राणी अपनी मृत्यु आदि के भय से खिन्न होते हैं।

ટીકાર્થ—મૂલસૂત્રમાં આપેલા લોક શબ્દથી પ્રકરણના કારણે અપ્કાય-લોકજ સમજવું જોઈએ 'च' શબ્દથી અપ્કાયના આશ્રયે રહેલા અન્ય જીવોનું ગ્રહણ કરવું જોઈએ. એ પ્રમાણે અપ્કાય અને અપ્કાયના આશ્રિત રહેવાવાળા અન્ય જીવોને તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાથી, સમ્યક્ પ્રકારે જાણી કરીને અર્થાત્ અપ્કાય આદિ જીવ છે એ પ્રમાણે સમજીને સંયમનું પાલન કરવું જોઈએ. અકુતોભય' અર્થાત્ જેના વડે કોઈપણ પ્રાણીને કોઈ પ્રકારનો ભય ન હોય એવો સંયમ, સર્વથા જીવ રક્ષારૂપ સંયમના પાલનમાં સાવધાન થઈને યત્ન કરવો જોઈએ.

અથવા 'અકુતોભય'નો અર્થ છે-અપ્કાયલોક કારણ કે તે બીજાના તરફથી ભયની ઇચ્છા કરતા નથી; સર્વ પ્રાણી પોતાના મૃત્યુ આદિના ભયથી ખિન્ન-દુઃખી થાય છે

इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं' इति वचनात्। तमप्कायलोकं समनुपालयेदिति सम्बन्धः। संयमी सर्वप्राणिगणपरिपालक एव सन् नान्यस्मै भयमुत्पादयति, 'मित्ती मे सव्वभूएसु' इति वचनेन तस्य सर्वैः सह मैत्रीसद्भावात्, अतोऽसौ संयमी न तेभ्यो भयं जनयति, कस्मैचिदपि भयं केनापि नोत्पादयति, प्रत्युत सर्वप्राणिगणं परिरक्षतीति भावः।

यद्यपि छद्मस्थैः प्राणिभिः सर्वद्रव्यपर्यायज्ञानाभावाद्बुद्धिसंस्कारराहित्येनाप्कायजीवस्याव्यक्तचेतनया च 'आपो जीवाः सन्ती'-त्यपरोक्षत्वेन कदाचिदपि ज्ञातुं न शक्यते, तथापि सकलतीर्थोद्धारधुरीण-तीर्थङ्कर-वचनप्रामाण्यादवश्य

आगम में कहा है-'सभी जीव जीवित रहना चाहते हैं मरना नहीं चाहते।" उस अप्कायलोक का पालन करे अर्थात् रक्षण करे। सयमी पुरुष समस्त प्राणियों का रक्षक होता है। वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न नहीं करता। " मेरा सब प्राणियों पर मैत्रीभाव है" इस वचन के अनुसार उस की प्राणीमात्र पर मित्रता की भावना होती है। इस कारण सयमी उन्हे भय उत्पन्न नहीं करता, किसी को भी किसी द्वारा भय उत्पन्न नहीं कराता, बल्कि वह सब प्राणियों की रक्षा करता है।

यद्यपि छद्मस्थ जीवों को समस्त द्रव्यों का ज्ञान नहीं होता इस कारण, तथा बुद्धि, सस्कार से रहित होने के कारण अप्काय के जीवों में अव्यक्त चेतना होने से, तथा 'जल जीव है' यह बात प्रत्यक्ष न होने से कभी इन्द्रियों द्वारा जानी नहीं जा सकती, फिर भी सम्पूर्ण तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ तीर्थङ्कर के वचनों को प्रमाण

આગમમા પણ કહ્યુ છે કે-"સર્વ જીવ જીવતા રહેવાની ઇચ્છા કરે છે, મરવાની ઇચ્છા કરતા નથી" તે અપ્કાયલોકનુ પાલન કરે અર્થાત્ રક્ષા કરે સયમી પુરૂષ સમસ્ત પ્રાણીઓના રક્ષક થાય છે તે કોઈ પણ પ્રાણીને ભય ઉત્પન્ન કરતા નથી 'સર્વ પ્રાણીઓ પર મારો મૈત્રીભાવ છે' આ વચન પ્રમાણે તેની સર્વ પ્રાણીમાત્ર પર મિત્રતાની ભાવના હોય છે, તે કારણથી સયમી તે જીવોને ભય ઉત્પન્ન કરતા નથી, કોઈને પણ કોઇથી ભય ઉત્પન્ન કરાવતા નથી, પરતુ તે સર્વ પ્રાણીઓની રક્ષા કરે છે

જો કે છદ્મસ્થ જીવોને સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોનુ જ્ઞાન નથી, તે કારણથી તથા બુદ્ધિ, સસ્કારથી રહિત હોવાથી અપ્કાયના જીવોમા અવ્યક્ત ચેતના હોવાથી, તથા 'જલ જીવ છે' એ વાત પ્રત્યક્ષ નહિ હોવાથી ઇન્દ્રિયોદ્વારા કોઈ વખત જાણવામા આવતી નથી તો પણ સપૂર્ણ તીર્થનો ઉદ્ધાર કરવામા સમર્થ તીર્થકરના વચનોને પ્રમાણ

विश्वासो विधेयः । अवध्यादिप्रत्यक्षज्ञानिनोऽपि पूर्वं भगवदाज्ञायां श्रद्धावन्त सन्त एवाऽप्कायजीवान् विज्ञाय प्रत्यक्षज्ञानिनः संजाताः, अतः संयमिभिरवश्यमप्कायादि जीवरक्षायां सावधानैर्भवितव्यमिति परमार्थः ॥ सू० ४ ॥

अप्कायलोकं भगवदाज्ञया विज्ञाय संयमिना यत् कर्तव्यं, तत् कथयति–' से बेमि ' इत्यादि ।

मूलम्—

से बेमि–णेव सयं लोगं अब्भाइक्खिज्जा, णेव अत्ताणं अब्भाइक्खिज्जा, जे लोयं अब्भाइक्खइ से अत्ताणं अब्भाइक्खइ, जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोयं अब्भाइक्खइ ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स ब्रवीमि नैव स्वयं लोकमभ्याख्यात्, नैवात्मानमभ्याख्यात्, यो लोक मभ्याख्याति, स आत्मानमभ्याख्याति, य आत्मानमभ्याख्याति, स लोकमभ्या ख्याति ॥ सू० ५ ॥

मानकर अवश्य विश्वास करना चाहिए । अवधिज्ञानी आदि प्रत्यक्षज्ञानी भी पहले भगवान् की आज्ञा पर श्रद्धा रखते हुए अप्काय के जीवों को जान कर प्रत्यक्षज्ञानी हुए, अतः संयमी जनों को अप्काय आदि के जीवों की रक्षा में सावधान होना चाहिए ॥ सू. ४ ॥

भगवान् की आज्ञा से अप्कायलोक को जान कर संयमी को जो करना चाहिये वह प्रगट करते हैं— ' से बेमि ' इत्यादि ।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ–स्वयं अप्कायलोक का अपलाप न कर आत्मा का अपलाप न करे, जो लोक का अपलाप करता है वह आत्मा का अपलाप करता है, और जो आत्मा का अपलाप करता है वह लोक का अपलाप करता है ॥ सू. ५ ॥

માનીને અવશ્ય વિશ્વાસ કરવો જોઇએ. અવધિ આદિ પ્રત્યક્ષ જ્ઞાની પણ પ્રથમ ભગવાનની આજ્ઞા પર શ્રદ્ધા રાખીને અપ્કાયના જીવોને જાણી કરીને પ્રત્યક્ષજ્ઞાની થયા, એ માટે સંયમી પુરૂષોએ અપ્કાય આદિના જીવોની રક્ષામાં સાવધાન રહેવું જોઇએ. (સૂ. ૪)

ભગવાનની આજ્ઞાથી અપ્કાયલોકને જાણીને સંયમીનું જે કર્તવ્ય છે તે પ્રગટ કરે છે— से बेमि ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—તે હું કહું છું–પોતે અપ્કાય લોકનો અપલાપ-(હોવા છતાં નથી કહેવું તે) ન કરે. આત્માનો અપલાપ કરે નહિ. જે લોકનો અપલાપ કરે છે તે આત્માનો અપલાપ કરે છે. અને જે આત્માનો અપલાપ કરે છે તે લોકનો અપલાપ કરે છે (સૂ. ૫)

टीका—

सोऽहं=भगवद्वचनेन ज्ञाताप्कायस्वरूपः, ब्रवीमि=यथा भगवतः सकाशान्मया श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः। लोकम्=अप्कायलोकं, नैव स्वयम् अभ्याख्यात्='आपो जीवा न सन्ती'-त्येव नापलपेदित्यर्थः। अभ्याख्यानं नामासदभियोगः, यथा कश्चिदचौरमुद्दिश्य वदति—चोरोऽयमिति। अत्र तु—'घृततैलादिवज्जीवानामुपकरणमात्रं जलं, न तु तद् जीवो भवितुमर्हति, जीवोपकरणत्वात्' एतत्कथनमेवासदभियोगः, यतो हि तुरगादीनां जीवानामपि जीवोपकरणत्वेन दृष्टत्वादुक्तरीत्या जलस्य जीवत्वं नापलपितुं शक्यते।

नन्वजीवानामपां जीवत्वारोपणमेवाभ्याख्यानं कुतो न भवति? मैवम्,

टीकार्थ—भगवान् के वचनों के अनुसार अप्काय का स्वरूप जानने वाला मैं कहता हूँ, अर्थात् मैंने भगवान् के समीप जैसा जाना है वैसा ही कहता हूँ—स्वय अप्कायरूप लोक का अपलाप न करे अर्थात् ऐसा न कहे कि—'जल जीव नहीं है'।

असत् आरोप को अभ्याख्यान कहते हैं, जैसे अचौर को चौर कहना। यहाँ "घी तेल आदि के समान जल, जीवों का उपकरणमात्र ही हो सकता है, वह स्वय जीव नहीं है, क्योंकि जीव का उपकरण है"। इस प्रकार का कथन ही असत्—अभियोग है। क्यों कि घोडा वगैरह जीव भी जीवोपकरण के रूप में देखे जाते हैं, अत जल के जीवपन का अपलाव नहीं किया जा सकता।

शंका—अजीव जल में जीवत्व का आरोप करना ही अभ्याख्यान क्यों न समझा जाय?

ટીકાર્થ—ભગવાનના વચનો પ્રમાણે અપ્કાયનુ સ્વરૂપ જાણવાવાળો હું કહુ છુ, અર્થાત મે ભગવાનની પાસેથી જેવું સાભળ્યુ છે તેવુ જ કહું છુ—પોતે અપકાય રૂપ લોકનો અપલાપ કરે નહિ, અર્થાત એવુ કહે નહિ કે—'જલ જીવ નથી' અસત આરોપને અભ્યાખ્યાન કહે છે, જેમકે અચૌરને ચૌર કહેવો અહિં "ઘી તેલ આદિ પ્રમાણે જલ એ જીવોનું ઉપકરણમાત્રજ હોઈ શકે છે, તે સ્વય જીવ નથી, કારણ કે" તે જીવનુ ઉપકરણ છે, આ પ્રકારનુ કહેવુંજ—અસત્ (મિથ્યા) અભિયોગ છે, કારણકે ઘોડા વગેરે જીવ પણ જીવોપકરણના રૂપમા જોવામા આવે છે તેથી જલનું જીવપણું અપલાપ કરી શકાય નહિ

શંકા—અજીવ પાણીમા જીવપણાનો આરોપ કરવો તેજ અભ્યાખ્યાન શા માટે નહિ સમજવું?

अनुमानागमाभ्यां जीवलक्षणकलापसम्बन्धाभ्यां जीवत्वनिरूपणात्।

यद्यप्कायलोकस्याभ्याख्यानं कुर्यात्, तर्ह्यात्मनोऽपि शरीराधिष्ठातुरभ्याख्यानं तेन कर्तव्यं स्यात्, न च तत् सम्भवतीत्यत आह-नैवमात्मानमभ्याख्यायादिति। आत्मा हि शरीराधिष्ठाता प्रत्यक्षभूतचेतनावानिति नापह्नोतुं शक्यः, तस्मादात्मा नास्तीत्येवमात्मानं नापलपेदित्यर्थः।

यः खलु मन्दधीः लोकम्=अप्कायलोकम् अभ्याख्याति=अपलपति, स प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्निरूपितमात्मानमभ्याख्याति। यश्चात्मानमभ्याख्याति-'आत्मा नास्ती'ति यद्वा-'अहं नास्मी'ति, स महामूढः लोकम्=अप्कायलोक

समाधान-ऐसा मत कहो। अनुमान और आगमप्रमाण से तथा जीव के लक्षणों के संबंध से जल को जीव निरूपण किया गया है।

यदि अप्काय लोक का अभ्याख्यान किया जाय तो शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का भी अभ्याख्यान करना होगा मगर वह संभव नहीं है यही बात कहते हैं-आत्मा का अभ्याख्यान न करे। आत्मा शरीर का अधिष्ठाता है और प्रत्यक्ष चेतना वाला है, अतः उस का अपलाप नहीं किया जा सकता। अतः एव 'आत्मा नहीं है' इस प्रकार आत्मा का अपलाप न करे।

जो मन्दबुद्धि अप्कायलोक का निषेध करता है वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध आत्मा का अपलाप करता है। और जो 'आत्मा नहीं है' अथवा 'मैं नहीं हूँ' इस तरह आत्मा का अपलाप करता है वह महामूढ मनुष्य अपने अज्ञान के वश से

સમાધાન—આ પ્રમાણે કહો નહિ. અનુમાન અને આગમ પ્રમાણથી તથા જીવના લક્ષણોના સંબંધથી જલનું જીવપણું નિરૂપણ કર્યું છે. જો અપ્કાય-લોકનું અભ્યાખ્યાન કરવામાં આવે તો શરીરના અધિષ્ઠાતા આત્માનું પણ અભ્યાખ્યાન કરવું પડશે. પરન્તુ તે સંભવ નથી. એ વાત કહે છે—

આત્માનું અભ્યાખ્યાન કરશો નહિ. આત્મા શરીરનો અધિષ્ઠાતા છે અને પ્રત્યક્ષ ચેતનાવાળા છે તેથી તેનો અપલાપ કરી શકાશે નહિ. એટલા માટે આત્મા નથી એ પ્રમાણે અપલાપ કરશો નહિ.

જે મંદ બુદ્ધિવાળા અપ્કાયલોકનો નિષેધ કરે છે તે પ્રત્યક્ષ આદિ-પ્રમાણોથી સિદ્ધ-આત્માનો અપલાપ કરે છે અને જે "આત્મા નથી" અથવા "હું નથી" એ પ્રમાણે આત્માનો અપલાપ કરે છે તે મહામૂઢ મનુષ્ય પોતાના અજ્ઞાનના વશથી

टीका—

सोऽहं=भगवद्वचनेन ज्ञातापूकायस्वरूपः, ब्रवीमि=यथा भगवतः सकाशान्मया श्रुत तथा कथयामीत्यर्थः। लोकम्=अपूकायलोकं, नैव स्वयम् अभ्याख्यात्='आपो जीवा न सन्ती'-त्येव नापलपेदित्यर्थः। अभ्याख्यानं नामासदभियोगः, यथा कश्चिदचौरमुद्दिश्य वदति-चोरोऽयमिति। अत्र तु-'घृततैलादिवज्जीवानामुपकरणमात्रं जल, न तु तद् जीवो भवितुमर्हति, जीवोपकरणत्वात्' एतत्कथनमेवासदभियोगः, यतो हि तुरगादीनां जीवानामपि जीवोपकरणत्वेन दृष्टत्वादुक्तरीत्या जलस्य जीवत्वं नापलपितुं शक्यते।

नन्वजीवानामपां जीवत्वारोपणमेवाभ्याख्यानं कुतो न भवति? नैवम्,

टीकार्थ—भगवान् के वचनों के अनुसार अप्काय का स्वरूप जानने वाला मैं कहता हूँ, अर्थात् मैंने भगवान् के समीप जैसा जाना है वैसा ही कहता हूँ—स्वय अप्कायरूप लोक का अपलाप न करे अर्थात् ऐसा न कहे कि-'जल जीव नहीं है'।

असत् आरोप को अभ्याख्यान कहते हैं, जैसे अचौर को चौर कहना। यहाँ "घी तेल आदि के समान जल, जीवों का उपकरणमात्र ही हो सकता है, वह स्वय जीव नहीं है, क्योंकि जीव का उपकरण है"। इस प्रकार का कथन ही असत्-अभियोग है। क्यों कि घोडा वगैरह जीव भी जीवोपकरण के रूप में देखे जाते हैं, अत जल के जीवपन का अपलाव नहीं किया जा सकता।

शंका—अजीव जल में जीवत्व का आरोप करना ही अभ्याख्यान क्यों न समझा जाय?

ટીકાર્થ—ભગવાનના વચનો પ્રમાણે અપ્કાયનુ સ્વરૂપ જાણવાવાળો હુ કહું છુ, અર્થાત્ મે ભગવાનની પાસેથી જેવુ સાભળ્યુ છે તેવુજ કહું છુ—પોતે અપકાયરૂપ લોકનો અપલાપ કરે નહિ, અર્થાત્ એવુ કહે નહિ કે-'જલ જીવ નથી' અસત્ આરોપને અભ્યાખ્યાન કહે છે, જેમકે અચૌરને ચૌર કહેવો અહિં "ઘી તેલ આદિ પ્રમાણે જલ એ જીવોનુ ઉપકરણમાત્રજ હોઈ શકે છે, તે સ્વય જીવ નથી, કારણ કે-" તે જીવનુ ઉપકરણ છે, આ પ્રકારનુ કહેવુંજ-અસત્ (મિથ્યા) અભિયોગ છે, કારણકે ઘોડા વગેરે જીવ પણ જીવોપકરણના રૂપમા જોવામા આવે છે તેથી જલનુ જીવપણું અપલાપ કરી શકાય નહિ

શંકા—અજીવ પાણીમા જીવપણાનો આરોપ કરવો તેજ અભ્યાખ્યાન શા માટે નહિ સમજવું?

अनुमानागमाभ्यां जीवलक्षणकलापसम्बन्धाच्चापां जीवत्वनिरूपणात् ।

यद्यप्कायलोकस्याभ्याख्यानं कुर्यात्, तर्ह्यात्मनोऽपि शरीराधिष्ठातुरभ्याख्यानं तेन कर्तव्यं स्यात्, न च तत् सम्भवतीत्यत आह-'नेवमात्मानमभ्याख्याति'इति। आत्मा हि शरीराधिष्ठाता प्रत्यक्षभूतचेतनावानिति नापह्नोतु शक्यः, तस्मादात्मा नास्तीत्येवमात्मानं नापलपेदित्यर्थः ।

यः खलु मन्दधीः लोकम्=अप्कायलोकम् अभ्याख्याति=अपलपति, स प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्निरूपितमात्मानमभ्याख्याति। यश्चात्मानमभ्याख्याति-'आत्मा नास्ती'ति यद्वा-'अहं नास्मी'ति, स महामूढः लोकम्=अप्कायलोकं

समाधान-ऐसा मत कहो। अनुमान और आगमप्रमाण से तथा जीव के लक्षणों के संबंध से जल को जीव निरूपण किया गया है।

यदि अप्काय लोक का अभ्याख्यान किया जाय तो शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का भी अभ्याख्यान करना होगा मगर वह संभव नहीं है यही बात कहते हैं- आत्मा का अभ्याख्यान न करे। आत्मा शरीर का अधिष्ठाता है और प्रत्यक्ष चेतनावान है अत उस का अपलाप नहीं किया जा सकता। अत एव 'आत्मा नहीं है' इस प्रकार आत्मा का अपलाप न करे ।

जो मन्दबुद्धि अप्कायलोक का निषेध करता है वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध आत्मा का अपलाप करता है। और जो 'आत्मा नहीं है अथवा मैं नहीं हूँ' इस तरह आत्मा का अपलाप करता है वह महामूढ मनुष्य अपने अज्ञान के वश से

સમાધાન—આ પ્રમાણે કહો નહિ, અનુમાન અને આગમ પ્રમાણથી તથા જીવના લક્ષણોના સબંધથી જલનું જીવપણુ નિરૂપણ કર્યું છે. જો અપ્કાય-લોકનું અભ્યાખ્યાન કરવામાં આવે તો શરીરના અધિષ્ઠાતા આત્માનું પણ અભ્યાખ્યાન કરવું પડશે. પરન્તુ તે સંભવ નથી. એ વાત કહે છે—

આત્માનું અભ્યાખ્યાન કરશો નહિ. આત્મા શરીરનો અધિષ્ઠાતા છે અને પ્રત્યક્ષ ચેતનાવાળા છે તેથી તેનો અપલાપ કરી શકાશે નહિ. એટલા માટે આત્મા નથી એ પ્રમાણે અપલાપ કરશો નહિ.

જે મંદ બુદ્ધિવાળા અપ્કાયલોકનો નિષેધ કરે છે તે પ્રત્યક્ષ આદિ-પ્રમાણોથી સિદ્ધ-આત્માનો અપલાપ કરે છે અને જે "આત્મા નથી" અથવા "હું નથી" એ પ્રમાણે આત્માનો અપલાપ કરે છે તે મહામૂઢ મનુષ્ય પોતાના અજ્ઞાનના કારણથી

स्याज्ञानवलादभ्याख्याति। करचरणमुखाद्यवयवसहितशरीराधिष्ठाता सुव्यक्तोपयोगादिलक्षणः स्वात्माऽपि येनाभ्याख्यातस्तस्याव्यक्तोपयोगादिलक्षणस्याप्कायस्याभ्याख्यानं किं नु नाम दुष्करम् ? ॥ सू० ५ ॥

अप्कायलोकस्याभ्याख्याने बहुदोषापातो भवतीति पर्यालोच्यानगारा अप्कायं नोपमर्दयन्ति। दण्डिशाक्यादयस्तु नानगारा भवितुमर्हन्ति, तेषामप्कायोपमर्दकत्वादित्याह—'लज्जमाणा' इत्यादि।

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मो—त्ति एगे पवयमाणा जमिणं

अप्काय का अपलाप करता है। जिस ने हाथ, पैर, मुख आदि अवयवों से युक्त शरीर के अधिष्ठाता, तथा अत्यन्त स्पष्ट उपयोग आदि लक्षणों वाले आत्मा का ही अपलाप कर दिया तो उस के लिए अस्पष्ट उपयोग आदि लक्षणों वाले अप्काय का अपलाप करना कुच्छ भी कठिन नहीं है ॥ सू ५ ॥

अप्काय का अपलाप करने से बहुत से दोष आते है, ऐसा विचार कर अनगार अप्काय की विराधना नहीं करते। दण्डी और शाक्य आदि, अनगार नहीं हो सकते, क्यों कि वे अप्काय की विराधना करते हैं। यह बात इस सूत्र में बतलाते है—'लज्जमाणा' इत्यादि।

मूलार्थ—अप्काय की हिंसासे सकोच करने वालों को अलग समझो, और 'हम अनगार हैं' ऐसा कहने वालों को अलग समझो। जो नाना प्रकार के शस्त्रों से

અપ્કાયનો અપલાપ કરે છે જેણે હાથ, પગ, મુખ આદિ અવયવોથી યુક્ત, શરીરના અધિષ્ઠાતા, તથા અત્યન્ત સ્પષ્ટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોવાળા આત્માનોજ અપલાપ કરી દીધો, તેને માટે અસ્પષ્ટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોવાળા અપ્કાયનો અપલાપ કરવો તે કાંઈ કઠિન નથી (સૂ. ૫)

અપ્કાયનો અપલાપ કરવાથી ઘણાજ દોષ આવે છે, એવો વિચાર કરીને અણુગાર અપ્કાયની વિરાધના કરતા નથી, દંડી અને શાકય આદિ, અણુગારો થઈ શકતા નથી કારણ કે તેઓ અપ્કાયની વિરાધના કરે છે તે વાત આગળના સૂત્રમા બતાવે છે—'लज्जमाणा' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—અપ્કાયની હિંસાનો સંકોચ કરવાવાળાને જૂદા જાણો અને "અમે અણુગાર છીએ" એ પ્રમાણે કહેવાવાળાને પણ જૂદા જાણો જે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી

विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारंभेणं उदयसत्थं समारंभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति ॥ सू० ६ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः यदिदं विरूपरूपैः शस्त्रैः उदककर्मसमारम्भेण, उदकशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

एके=अन्ये लज्जमाना=अप्कायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितहृदयतया संकोचमापद्यमाना, पृथक्=विभिन्नाः, केचित्तु प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति पश्य। इमे सूक्ष्मबादराप्कायारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैरप्कायारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते सामान्यलोकस्यार्थः ।

अप्काय का आरम्भ करते हैं वे अप्काय के शस्त्रों का आरंभ करने वाले अनेक प्राणियों के प्राणों का हनन करते हैं ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ— तीव्रकरुणा से द्रवित हृदयवाले कोई-कोई (अनगार) अप्काय के आरंभ में संकोच करते हैं—अप्काय का आरंभ नहीं करते वे विभिन्न हैं—कोई अवधिज्ञानी कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अनगार हैं, उन्हें देखो। ये सूक्ष्म बादर अप्काय का आरंभ करने में भीत हैं त्रस्त हैं उद्विग्न हैं, और तीन करण तीन योग से अप्काय के आरंभ के त्यागी हैं, उन्हें देखो।

અપ્કાયનો આરંભ કરે છે; તે અપ્કાયના શસ્ત્રોનો આરંભ કરવાવાળા અનેક પ્રાણીઓના પ્રાણોનો નાશ કરે છે (સૂ. ૫)

ટીકાર્થ—તીવ્ર કરુણાથી દ્રવિત હૃદયવાળા કોઈ-કોઈ અણગાર આરંભમાં સંકોચ કરે છે—અપ્કાયનો આરંભ કરતા નથી તે જુદા છે કોઈ અવધિજ્ઞાની, કોઈ મનઃપર્યવજ્ઞાની અને કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની ભાવિતાત્મા અણગાર છે તેને જુઓ —તે સૂક્ષ્મ અને બાદર અપ્કાયનો આરંભ કરવામાં ભય પામેલા છે ત્રસિત ઉદ્વિગ્ન છે અને ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી અપ્કાયના આરંભના ત્યાગી છે તેને જુઓ.

एके=पुनरन्ये तु वयमनगाराः=साधवः स्मः, इति साभिमान प्रवदमानाः 'वयमेव अप्कायजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति व्यर्थं प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति तान् पृथक्=पृथग्भावेन पश्य।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्त्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति–'यदिमम्' इत्यादि।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः, द्रव्यभावरूपैः शस्त्रैः। तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकाय–परकाय–तदुभयरूपम्। स्वकायशस्त्रं–तडागाद्युदकस्य कूपाद्युदकम्। कूपाद्युदकस्य तडागाद्युदक च। परकायशस्त्रं द्राक्षा–शाक–तण्डुल–पिष्ट–

और कोई–कोई लोग 'हम साधु हैं' इस प्रकार अभिमान के साथ कहते हुए–अर्थात् 'हम ही अप्काय के रक्षक और महाव्रतधारी हैं' इस प्रकार वृथा प्रलाप करते हुए द्रव्यलिंगी हैं, उन्हें अलग समझो।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिंगी, अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते, और न गृहस्थ के किसी कार्य का त्याग करते हैं। यही बात आगे बतलाते हैं–'जमिणं.' इत्यादि।

वे नाना प्रकार के शस्त्रों से जलका आरभ करते हैं। शस्त्र अनेक प्रकार के हैं, उन में से द्रव्यशस्त्र–स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप है। तालाव का जल, कूप का जल परस्पर स्वकायशस्त्र है। इसी प्रकार कूप आदि के जल का शस्त्र–तालाव आदिका जल है यह स्वकायशस्त्र है। दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, चना, वाल आदि परकाय

અને કોઈ–કોઈ લોક "અમે સાધુ છીએ" આ પ્રમાણે અભિમાન સાથે કહેતા અર્થાત્ 'અમેજ અપકાયના રક્ષક અને મહાવ્રત ધારણ કરવાવાળા છીએ' આ પ્રમાણે વૃથા પ્રલાપ કરતા થકા દ્રવ્યલિંગી છે તેને જૂદા જાણો.

અણગાર હોવાનું અભિમાન કરવાવાળા એ દ્રવ્યલિંગી સાચા અણગારના ગુણોમાં જરાપણ પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, અને ગૃહસ્થના કોઈપણ કાર્યોનો ત્યાગ કરતા નથી, તે વાત આગળ બતાવે છે–'जमिणं' ઈત્યાદિ

તે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી જલનો આરંભ કરે છે શસ્ત્રો અનેક પ્રકારના છે, તેમાંથી દ્રવ્યશસ્ત્ર–સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય–રૂપ છે તલાવનું પાણી, કુવાનું પાણી, પરસ્પર સ્વકાયશસ્ત્ર છે એ પ્રમાણે કુવા વગેરેના જલનું શસ્ત્ર તલાવ આદિનું જલ છે, તે પણ સ્વકાયશસ્ત્ર છે. દ્રાક્ષ, ચાવલ, લોટ,

स्वादी-क्षपक-क्षारादिकम्। तदुभयशस्त्रं-मृत्तिकादिमिश्रं जलम्। भावशस्त्रम्=अपः प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिहितत्वम्। एतैः शस्त्रैः उदककर्मसमारम्भेण=उदकस्य कर्मसमारम्भः उदककर्मसमारम्भः=उदकमाश्रित्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धनिबन्धनसावद्यव्यापारस्तेन, इमम्=अप्कायं विहिंसन्ति।

अप्कायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह-'उदकशस्त्र'-मित्यादि, उदकशस्त्रम्=उदकोपमर्दकं शस्त्रं, शस्यते=हिंस्यतेऽनेनेति शस्त्रं, तत् पूर्वोक्तप्रकारं द्रव्यभावभेदभिन्नं समारभमाणाः=उदककायं प्रति व्यापारयन्तो, अन्यान्=अप्कायभिन्नान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन्—स्थावरान्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च विहिंसन्ति।

शस्त्र है। मिट्टी आदि से मिला हुआ जल उभयकायशस्त्र है। जल के विषय में मन, वचन और कायका दूषित प्रयोग करना भावशस्त्र है। इन शस्त्रों से जलकर्म का समारंभ कर के अर्थात् जल के आरंभद्वारा ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों के बंध कारणभूत सावद्य व्यापार कर के जलकाय की हिंसा करते हैं।

जो जलकाय की हिंसा में प्रवृत्त होते हैं वे षट्कायरूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, यह बतलाते हैं—'उदयसत्थं' इत्यादि।

जिस के द्वारा हिंसा की जाय उसे शस्त्र कहते हैं। शस्त्र दो प्रकार के हैं—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र। जिस से अप्काय की हिंसा हो वह अप्कायशस्त्र है। अप्काय शस्त्र का अप्काय के विषय में प्रयोग करने वाले अप्काय से भिन्न अनेक पृथ्वीकाय आदि स्थावरों की, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की हिंसा करते हैं।

ક્ષાર, ચામડું, ખાર આદિ પરકાયશસ્ત્ર છે માટી આદિથી મળેલું જલ ઉભયકાયશસ્ત્ર છે જલના વિષયમાં મન વચન અને કાયાનો દૂષિત પ્રયોગ કરવો તે ભાવશસ્ત્ર છે એ શસ્ત્રોથી જલકર્મનો સમારંભ કરીને, અર્થાત્ જલના આરંભદ્વારા જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોના બંધના કારણભૂત સાવદ્ય વ્યાપાર કરીને જલકાયની હિંસા કરે છે

જલકાયની હિંસામાં જે પ્રવૃત્ત થાય છે તે ષટ્કાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે એ બતાવે છે—'उदयसत्थं' ઇત્યાદિ જેના દ્વારા હિંસા કરી શકાય તેને શસ્ત્ર કહે છે શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે—(૧) દ્રવ્યશસ્ત્ર અને (૨) ભાવશસ્ત્ર જેનાથી અપ્કાયની હિંસા થાય તે અપ્કાયશસ્ત્ર છે અપ્કાયશસ્ત્રનો અપ્કાયના વિષયમાં પ્રયોગ કરવાવાળા અપ્કાયથી ભિન્ન અનેક પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોની દ્વીન્દ્રિય વિગેરે ત્રસ જીવોની હિંસા કરે છે

जगति खलु बहवो द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा—'वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः सर्वारम्भपरित्यागिनः षट्कायरक्षका अनगाराः स्मः' इति वदन्तो दण्डिशाक्यादयः सन्ति। तत्र केचिद्देहशुद्धयर्थं बहूदकस्नायिनो भवन्ति। केचित्स्वनिवासार्थं गृहादिनिर्माणकरणे मृत्तिकापाषाणचूर्णादिषु निक्षेपणेनाप्कायमुपमर्दयन्ति। केचित् स्वोदरपूर्त्यर्थं कृष्यादिषु जलसेचनं कुर्वन्ति। केचिच्च देवकुलाद्यर्थं सावद्यमुपदिशन्ति, पार्थिवीं देवगुर्वादिप्रतिमामनेकघटजलैः स्नपयन्ति। ते हि सविधिजिनपूजायां, प्रतिमाप्रतिष्ठापने बहुविधसचित्तजलैः प्रतिमास्नपने च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्धारो भवतीति मन्यन्ते, उपदिशन्ति च—

ससार में बहुतसे द्रव्यलिंगी है। जैसे—'हम पचमहाव्रतधारी, सब आरम्भ के त्यागी, और षट्काय के रक्षक अनगार हैं' ऐसा कहने वाले दण्डी तथा शाक्य आदि हैं। इन में कोई–कोई देह की शुद्धि के लिए बहुत–से जल से स्नान करने वाले हैं। कोई अपने रहने के वास्ते मकान आदि बनाने के लिए मिट्टी ककर और चूने वगैरह में मिलाकर जलकाय की हिंसा करते है। कोई अपना पेट भरने लिए कृषि (खेती) में जल सींचते हैं। कोई देकुलादिके लिये सावद्य उपदेश करते है। कोई देव एव गुरु की पार्थिव प्रतिमा को बहुत से–घडे पानी से स्नान कराते हैं। वे विधिपूर्वक जिनपूजा में और प्रतिमा की प्रतिष्ठा में बहुत प्रकार के सचित्त जल से प्रतिमा के स्नान में, महाभयकर भवसागर से आत्मा का उद्धार होना मानते हैं और उपदेश देते है—

संसारमा बहु सख्यामा द्रव्यलिंगी छे जेम के–'अमे पचमहाव्रतधारी, सर्व प्रकारना आरभना त्यागी अने षट्कायना रक्षक अणगार छीए' आ प्रमाणे कहेवावाळा दडी तथा शाक्य आदि छे, तेमाथी केटलाक तो देहनी शुद्धि माटे घणा ज जलथी स्नान करवावाळा होय छे केटलाक तो पोताने रहेवा माटे मकान आदि बनाववा माटे माटी काकरा अने चुना वगेरेमा मेळवीने जलकायनी हिंसा करे छे. कोई–कोई पोतानु पेट भरवा माटे खेतीमा जल सींचे छे कोई देवकुल वगेरे माटे सावद्यनो उपदेश आपे छे, अने कोई देव अने गुरुनी पार्थिव प्रतिमाने घणा ज–घडा पाणीथी स्नान करावे छे ते विधिपूर्वक जिनपूजामा अने प्रतिष्ठामा घणां ज प्रकारना सचित्त जलथी प्रतिमाने स्नान करावामा महाभयकर भवसागरथी आत्मानो उद्धार थाय छे, एवुं माने छे. अने उपदेश आपे छे.—

"सम्यक् स्नात्वोचिते काले, संस्नाप्य च जिनान् क्रमात् ।
पुष्पाहारस्तुतिभिश्च, पूजयेदिति तद्विधिः" ॥ १ ॥ (धर्मसंग्रहः)
"कुसुमक्खयधूवेहिं, दीवयवासेहिं सुंदरफलेहिं ।
पूया घयसलिलेहिं, अट्ठविहा तस्स कायव्वा" ॥ १ ॥
(दर्शनशुद्धिः सटीका १ तत्त्व)
छाया—"कुसुमाक्षतधूपै–र्दीपकवासैः सुन्दरफलैः ।
पूजा घृतसलिलै,–रष्टविधा तस्य कर्तव्या ॥ १ ॥" इति ।
"विहिणा उ कीरमाणा, सव्वा चिय फलवई भवे चेट्ठा ।
इहलोइया वि किं पुण, जिणपूया उभयलोगहिया" ॥ १ ॥
(पञ्चाशक ४ विव)
छाया—विधिना तु क्रियमाणा, सर्वा चैव फलवती भवेच्चेष्टा ।
इहलौकिकाऽपि किं पुन,–र्जिनपूजा–उभयलोकहिता ॥ १ ॥ इति ॥
तथैव पूजाप्रतिष्ठादिषु अप्कायोपमर्दनरूपे शास्त्रनिषिद्धे सावद्यकार्ये प्रवृत्त्याऽपि द्रव्यलिङ्गिनो दण्डिनः शाक्यादयश्च स्वात्मानमनगारमेव मन्यन्ते ।

"उचित काल में सम्यक् प्रकार से स्नान कर के और क्रम से जिनप्रतिमा को स्नान करा के पुष्प, आहार और स्तुतिसे पूजा करे । यह पूजा की विधि है" । (धर्मसंग्रह)

"विधिपूर्वक की हुई समस्त इस लोकसंबंधी चेष्टायें भी सफल होती है तो जिनेन्द्र भगवान् की पूजा का तो कहना ही क्या है, अर्थात् यह दोनों लोकों में हितकारी है" । (पञ्चाशक ४ विव)

इसी प्रकार पूजा प्रतिष्ठा आदि अप्काय की हिंसारूप शास्त्रनिषिद्ध सावद्य कार्य में प्रवृत्ति करके भी द्रव्यलिंगी दंडी शाक्य आदि अपने आप को अनगार ही मानते हैं ।

ઉચિત કાલમાં સમ્યક્પ્રકારથી સ્નાન કરીને અને ક્રમથી જિનપ્રતિમાને સ્નાન કરાવી, પુષ્પ આહાર અને સ્તુતિથી પૂજા કરે. આ પ્રમાણે પૂજાની વિધિ છે (ધર્મસંગ્રહ)

"વિધિપૂર્વક કરવામાં આવેલી લોકસંબંધી સમસ્ત ચેષ્ટાઓ (ક્રિયાઓ) પણ સફલ થાય છે તો જિનેન્દ્ર ભગવાનની પૂજાનું તો કહેવું જ શું? આ તો બન્ને લોકમાં હિતકારી છે ॥ ૧ ॥ (પંચાશક-૪-વિવ)

એ પ્રમાણે પૂજા પ્રતિષ્ઠા આદિ અપ્કાયની હિંસારૂપ શાસ્ત્રનિષિદ્ધ સાવદ્ય કાર્યમાં પ્રવૃત્તિ કરીને પણ દ્રવ્યલિંગી દંડી, શાક્ય આદિ પોત-પોતાને અણગાર માને છે

ये उदकशस्त्रं प्रयुञ्जानाः षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ति, ते द्रव्यलिङ्गिनो नरकनिगोदादिनानाविधदुःखज्वालमालाकुले दीर्घसंसारे परिभ्रमन्ति, उक्तञ्च–

"सावज्जपूयकारी, सावज्जं उवदिसति जे अण्णू।
आउकायवहाओ, भमंति ते दीहसंसारे ॥ १ ॥" ॥ सू० ६ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह 'तत्थ' इत्यादि।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया। इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण–माणण–पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से

जो लोग जलशस्त्र का प्रयोग करते हुए षट्काय के समस्त जीवों की विराधना करते हैं वे द्रव्यलिंगी नरक आदि के नाना प्रकारके दु खों की ज्वालाओं के समूह से व्याप्त लम्बे ससार में चारों ओर चक्कर लगाते हैं। कहा भी है—

"जो पुरुष ज्ञानरहित होकर सावद्य का उपदेश देते हैं वे, और सावद्य पूजा करने वाले हैं वे अप्काय की हिंसा से दीर्घ संसार में भ्रमण करते है" ॥ सू ६ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं–'तत्थ' इत्यादि।

मूलार्थ—भगवान् ने परिज्ञा का प्रतिबोध दिया है। जो इस जीवन के सुख के लिए अपनी वन्दना, मानना, पूजा, जन्म–मरण से छुटकारा, तथा दु खों का नाश

જે લોક જલશસ્ત્રનો પ્રયોગ કરીને ષટ્કાયના તમામ જીવોની વિરાધના કરે છે તે દ્રવ્યલિંગી, નરક નિગોદ આદિના નાના પ્રકારના દુ ખોની જ્વાલાઓના સમૂહથી વ્યાપ્ત લાંબા સ સારમા ચારેય તરફ ચક્કર લગાવે છે. કહ્યુ છે કે.–

"જે પુરુષ જ્ઞાનરહિત થઇને સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે તે, અને સાવદ્ય પૂજા કરવાવાળા દીર્ઘ–લાંબા સ સારમા ભ્રમણ કરે છે." ॥ ૧ ॥ (સૂ ૬)

સૂધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે–'तत्थ' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાનો બોધ આપ્યો છે જે આ જીવનના સુખ માટે પોતાની વ દના, માન્યતા, પૂજા, જન્મ–મરણથી મુક્તિ તથા દુ ખોના નિવારણ માટે; તે

सयमेव उदयसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं उदयसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा उदयसत्थं समारंभंते समणुजाणइ, तं से अहियाए तं से अबोहीए ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं स स्वयमेवोदकशस्त्रं समारभते, अन्यै-रुदकशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा उदकशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत्तस्याहिताय तत्तस्याबोधये ॥ सू० ७ ॥

टीका—

तत्र=अप्कायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यगवबोधः खलु प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं स्वीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः । ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदात् परिज्ञाया द्वैविध्यं, द्विविधा यास्तस्या लक्षणं च प्रागभिहितम् ।

करने के निमित्त वह स्वयं ही उदकशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से उदकशस्त्र का आरंभ कराता है, और उदकशस्त्र का आरंभ करने वालों की अनुमोदना करता है। वह उस के अहित के लिए है, वह उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—अप्काय के समारंभ के विषय में भगवान् श्री महावीरने सम्यग् बोध का उपदेश दिया है । भगवान्ने कहा है कि-कर्मबंध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञा का आश्रय अवश्य लेना चाहिए । ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा इस प्रकार परिज्ञा के दो भेद हैं । दोनों के लक्षण पहले ही कह चुके हैं ।

पोतेज जलशस्त्रनो आरंभ करे छे, बीजा पासे जलशस्त्रनो आरंभ करावे छे अने जलशस्त्रनो आरंभ करवावाळानी अनुमोदना करे छे ते पोताना अहित माटे छे ते तेनी अबोधिने माटे छे. (सू. ७)

टीकार्थ—अप्कायना समारंभना विषयमां भगवान श्री महावीरे सम्यग् बोधनो उपदेश आप्यो छे भगवाने कह्यु छे के-कर्मबंधनो नाश करवा माटे जीवोने परिज्ञानो आश्रय जरूर लेवो जोइए. ज्ञपरिज्ञा अने प्रत्याख्यानपरिज्ञा, आ प्रमाणे परिज्ञाना बे भेद छे बन्नेना लक्षणो प्रथमज कहेवामां आव्या छे

उपभोगद्वारम्—

जीवः कस्मै प्रयोजनायाप्कायजीवं प्रति सावद्यव्यापारं करोती ?–त्याह– 'अस्य चैवे'–त्यादि। अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य जीवनस्यार्थे–सुखार्थं स्नान-पान –धावन–सेक–यानपात्रो–डुप–गमनागमनाद्यर्थम्, तथा परिवन्दन–मानन–पूजनाय– परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा–जलयन्त्रेण शीकरवृष्ट्यादौ, 'फुहारा' इति भाषायाम्। माननं=जनसत्कारः, तदर्थं, यथा–मलापकर्षस्नानवस्त्रमलापकर्षणादौ। पूजनं=वस्त्ररत्ना-दिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा–देवप्रतिमादिस्नपनपूजनादौ। जातिमरणमोचनाय तीर्थ-स्नानादौः। दुःखप्रतिघातहेतु=रोगादिशमनार्थं स्नानपानादौ, स स्वयमेवोदकशस्त्रं समारभते=व्यापारयति। अन्यैर्वा उदकशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति। अन्यान्

उपभोगद्वार—

जीव किस प्रयोजन से अप्काय के जीवों के प्रति सावद्य व्यापार करता है ? इस का उत्तर कहते हैं–इसी क्षणभङ्गुर जीवन के सुख के लिए, अर्थात् स्नान, पान, धोना, सींचना, जहाज, नौका का गमनागमन, इत्यादि के लिए। प्रशंसाके लिए, जैसे–जल से फौहारा चलाने आदि में, लोगों से सत्कार पाने के लिए, जैसे–स्नान और वस्त्र आदि का मैल दूर करने आदि में, पूजा अर्थात् वस्त्र, रत्न आदि का पुरस्कार पाने के लिए, जैसे देवप्रतिमा आदि के स्नपन और पूजन आदि में, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए तीर्थस्नान आदि में। दुःखों का निरोध करने के हेतु, अर्थात् रोग आदि को शान्त करने लिए स्नान–पान आदि में वह स्वयं अप्काय के विराधक द्रव्य और भावशस्त्र का आरभ करता

ઉપભોગદ્વાર—

જીવ કયા પ્રયોજનથી અપ્કાયના જીવો પ્રતિ સાવદ્ય વ્યાપાર કરે છે ? તેનો ઉત્તર કહે છે કે–આ ક્ષણભંગુર જીવનના સુખ માટે, અર્થાત્, સ્નાન, પાન ધોવું, પાણી સીંચવું, વહાણ આગબોટમાં જવું આવવું,ઇત્યાદિ માટે પ્રશંસાને માટે,જેમકે–નળમાંથી ફુવારા ચલાવવા આદિમાં, લોકોથી સત્કાર પામવા માટે જેમકે–સ્નાન કરવામાં અને વસ્ત્ર વગેરેનો મેલ દૂર કરવામાં, પૂજા અર્થાત્ વસ્ત્ર, રત્ન, આદિનો પુરસ્કાર મેળવવા માટે, જેમ-દેવપ્રતિમા આદિના સ્નાન અને પૂજન વગેરેમાં, જન્મ–મરણથી મુક્ત થવા માટે, જેમ–તીર્થસ્નાન આદિમાં, દુઃખોનો નિરોધ કરવાના હેતુથી, અર્થાત્–રોગ વગેરેની શાન્તિ માટે સ્નાન–પાન વગેરેમાં તે પોતે અપ્કાયના વિરાધક દ્રવ્ય અને ભાવ શસ્ત્રનો આરંભ કરે છે, બીજા પાસે અપ્કાયશસ્ત્રનો

वा उदकशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति । तत्=अप्कायसमारम्भणं तस्य=अप्कायसमारम्भणं कुर्वतः कारयितुरनुमोदयितुश्च अहिताय भवति, तथा तत् तस्य अबोधये=जिनधर्माप्राप्त्यभावाय भवति ॥ सू० ७ ॥

येन तु तीर्थङ्करादीनां समीपेऽप्कायजीवस्वरूपं ज्ञातं स एवं विजानातीत्याह–'से तं संबुज्झमाणे' इत्यादि ।

मूलम्—

से त संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए, इहमेगेसिं णायं भवइ–एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए, इच्चत्थं गढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारम्भेणं उदयसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ८ ॥

है, दूसरों से अप्कायशस्त्रों का समारंभ करवाता है और अप्कायशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है । यह अप्काय का आरंभ आरंभ करने वाले, कराने वाले और अनुमोदन करने वाले के अहित के लिए होता है और अबोधि–जिनधर्म की अप्राप्ति के लिए होता है ।सू. ७।।

जिसने तीर्थंकर आदि के सन्निकट अप्काय के जीवों का स्वरूप जान लिया है, वह इस प्रकार जानता है–'से तं' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान और अनगारों से सुनकर अप्काय का स्वरूप जानता हुआ और चारित्र अङ्गीकार करके कोई–कोई इस प्रकार जानता है–यह ग्रंथ है यह मोह है, यह मार (मृत्यु) है, यह नरक है । गृद्ध पुरुष नाना प्रकार के शस्त्रों से जल का आरंभ करके जलकाय का समारंभ करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ।सू. ८।।

સમારંભ કરાવે છે અને અપ્કાયશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે તે અપ્કાયનો આરંભ કરનારને કરાવનારને અને કરવાવાળાને અનુમોદન આપવાવાળાને એ સૌને માટે અહિત કરનાર છે અને અબોધિ–જિનધર્મની અપ્રાપ્તિ માટે હોય છે (સૂ ૭)

જેણે તીર્થંકર આદિના સમીપમાં અપ્કાયના જીવોનું સ્વરૂપ જાણી લીધું છે તે આ પ્રમાણે જાણે છે– સે ત ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાન અથવા અણગારો પાસેથી સાંભળીને અપ્કાયના સ્વરૂપને જાણનાર જીવો ચારિત્ર અંગીકાર કરીને કોઈ–કોઈ આ પ્રમાણે જાણે છે–આ ગ્રંથ છે, આ મોહ છે આ મૃત્યુ છે આ નરક છે ગૃદ્ધ પુરુષ નાના પ્રકારનાં (અનેક પ્રકારનાં) શસ્ત્રોથી જલનો આરંભ કરીને, જલકાયનો આરંભ કરતા થકા બીજા અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે (સૂ. ૮)

उपभोगद्वारम्—

जीवः कस्मै प्रयोजनायाप्कायजीवं प्रति सावद्यव्यापारं करोती ?—त्याह—'अस्य चैवे'—त्यादि। अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य जीवनस्यार्थे—सुखार्थं स्नान-पान—धावन—सेक—यानपात्रो—डुप—गमनागमनाद्यर्थम्, तथा परिवन्दन—मानन—पूजनाय—परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा—जलयन्त्रेण शीकरवृष्ट्यादौ, 'फुहारा' इति भाषायाम्। माननं=जनसत्कारः, तदर्थं, यथा—मलापकर्षस्नानवस्त्रमलापकर्षणादौ। पूजन=वस्त्ररत्नादिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा—देवप्रतिमादिस्नपनपूजनादौ। जातिमरणमोचनाय तीर्थस्नानादौः। दुःखप्रतिघातहेतु=रोगादिशमनार्थं स्नानपानादौ, स स्वयमेवोदकशस्त्रं समारभते=व्यापारयति। अन्यैर्वा उदकशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति। अन्यान्

उपभोगद्वार—

जीव किस प्रयोजन से अप्काय के जीवों के प्रति सावद्य व्यापार करता है ? इस का उत्तर कहते हैं—इसी क्षणभङ्गुर जीवन के सुख के लिए, अर्थात् स्नान, पान, धोना, सींचना, जहाज, नौका का गमनागमन, इत्यादि के लिए। प्रशंसाके लिए, जैसे—जल से फौहारा चलाने आदि में, लोगों से सत्कार पाने के लिए, जैसे—स्नान और वस्त्र आदि का मैल दूर करने आदि में, पूजा अर्थात् वस्त्र, रत्न आदि का पुरस्कार पाने के लिए, जैसे देवप्रतिमा आदि के स्नपन और पूजन आदि में, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए तीर्थस्नान आदि में। दुःखों का निरोध करने के हेतु, अर्थात् रोग आदि को शान्त करने लिए स्नान—पान आदि में वह स्वयं अप्काय के विराधक द्रव्य और भावशस्त्र का आरंभ करता

ઉપભોગદ્વાર—

જીવ કયા પ્રયોજનથી અપ્કાયના જીવો પ્રતિ સાવદ્ય વ્યાપાર કરે છે ? તેનો ઉત્તર કહે છે કે—આ ક્ષણભંગુર જીવનના સુખ માટે, અર્થાત્, સ્નાન, પાન ધોવું, પાણી સીંચવું, વહાણ આગબોટમાં જવું આવવું,ઇત્યાદિ માટે પ્રશંસાને માટે,જેમકે—નળમાંથી ફુવારા ચલાવવા આદિમાં, લોકોથી સત્કાર પામવા માટે જેમકે—સ્નાન કરવામાં અને વસ્ત્ર વગેરેનો મેલ દૂર કરવામાં, પૂજા અર્થાત્ વસ્ત્ર, રત્ન, આદિનો પુરસ્કાર મેળવવા માટે, જેમ-દેવપ્રતિમા આદિના સ્નાન અને પૂજન વગેરેમાં, જન્મ—મરણથી મુક્ત થવા માટે, જેમ—તીર્થસ્નાન આદિમાં, દુઃખોનો નિરોધ કરવાના હેતુથી, અર્થાત્—રોગ વગેરેની શાન્તિ માટે સ્નાન—પાન વગેરેમાં તે પોતે અપ્કાયના વિરાધક દ્રવ્ય અને ભાવ શસ્ત્રનો આરંભ કરે છે, બીજા પાસે અપ્કાયશસ્ત્રનો

एषः=उदकशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=ग्रथ्यते=बध्यतेऽनेनेति ग्रन्थः अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारादुदकशस्त्रसमारम्भस्य ग्रन्थरूपत्वम्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा एषः उदकशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः विपरीतज्ञानरूपः । तथा एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा एष खलु नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोर दुःखफलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमत्र लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=विषयभोगासक्तः, लोकः संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमत्र=कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकार्थमेव, प्रवर्तते ।

जिस के द्वारा गूँथा जाय-बांधा जाय वह ग्रंथ कहलाता है । यह उदकशस्त्र का समारंभ ग्रंथ है, अर्थात् आठ कर्मों का बंध है । यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके उदकशस्त्र के समारंभ को ग्रंथ कहा है । वास्तव में वह ग्रंथ (कर्मबंध) का कारण है । आगे भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

यह उदकशस्त्र का समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान है । तथा यह मार-निगोद आदि के मरणरूप है । यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को होनेवाली दस प्रकार की वेदनाओं का स्थान है । कर्मबंध मोह, मरण, और नरकरूप घोर दुःखरूप फल को प्राप्त कर के भी अज्ञानी लोग फिर इसी के लिए गृद्ध होते हैं । अथवा गृद्ध अर्थात् भोगों में आसक्त, संसारी जीव इसी के लिए अर्थात् कर्मबंध मोह, मरण तथा नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

જેના દ્વારા ગૂંથી શકાય-બાંધી શકાય તે ગ્રંથ કહેવાય છે એ ઉદક-શસ્ત્રનો સમારંભ ગ્રંથ છે અર્થાત્ આઠ કર્મોનો બંધ છે અહિં કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને ઉદકશસ્ત્રના સમારંભને ગ્રંથ કહ્યો છે વાસ્તવિક રીતે તે ગ્રંથ (કર્મબંધ)નું કારણ છે આગળ પણ આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ.

આ જળશસ્ત્રનો સમારંભ મોહ-વિપરીત જ્ઞાન છે, તથા આ માર-નિગોદ વગેરેના મરણરૂપ છે આ નરક છે-અર્થાત્ નારકી જીવોને થવાવાળી દસ પ્રકારની વેદનાઓનું સ્થાન છે કર્મબંધ મોહ મરણ અને નરક રૂપ ઘોર દુઃખરૂપ ફળને પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની લોક ફરીને તેના માટે ગૃદ્ધ-આસક્ત થાય છે અથવા ગૃદ્ધ અર્થાત્ ભોગોમાં આસક્ત સંસારી જીવ એ માટે અર્થાત્ કર્મબંધ, મોહ મરણ તથા નરક માટે જ પ્રવૃત્તિ કરે છે

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीय समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वाऽन्तिके, इहैकेषां, ज्ञातं भवति–एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैरुदककर्मसमारम्भेण, उदकशस्त्र समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम्, अन्तिके=समीपे, श्रुत्वा=उपदेश निशम्य, आदानीयम्=उपादेयं, सर्वसावद्ययोगपरित्यागरूपं चारित्रं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्–अप्कायसमारम्भणं, सम्बुध्यमानः=अहितावोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवति ॥

स हि–एवं विचारयति इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजातसम्यगववोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति। किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु ग्रन्थः' इत्यादि।

टीकार्थ—जो पुरुष तीर्थंकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थों के समीप उपदेश सुनकर सर्वसावद्य व्यापार का त्यागरूप चारित्र अंगीकार करके विचरता है, वह अप्काय के आरभ को समझता है–उसे अहितकर और अवोधिजनक जानता है। वह इस प्रकार विचार करता है–इस मनुष्य लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करनेवाले किन्हींर आत्मार्थियों को ही विदित होता है कि–' यह ग्रंथ है ' इत्यादि।

ટીકાર્થ—જે પુરુષ તીર્થંકર ભગવાન તથા તેના અનુયાયી શ્રમણનિર્ગ્રંથોના સમીપ ઉપદેશ સાભળીને સર્વ સાવદ્યવ્યાપારના ત્યાગરૂપ ચારિત્ર અંગીકાર કરીને વિચરે છે, તે અપ્કાયના આરભને સમજે છે–તેને અહિતકર અને અબોધિજનક જાણે છે, તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે કે –આ મનુષ્ય લોકમા શ્રમણ–નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરવાવાળા કોઈ પણ આત્માર્થિઓના જાણવામા હોય છે કે–'આ ગ્રંથ છે ઈત્યાદિ

एषः=उदकशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=ग्रथ्यते=बध्यतेऽनेनेति ग्रन्थः अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारादुदकशस्त्रसमारम्भस्य ग्रन्थरूपत्वम्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा एषः उदकशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः विपरीतज्ञानरूपः । तथा एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा एष खलु नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोर दुःखफलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=विषयभोगासक्तः, लोकः संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकार्थमेव, प्रवर्तते ।

जिस के द्वारा गूंथा जाय-बांधा जाय वह ग्रंथ कहलाता है । यह उदकशस्त्र का समारंभ ग्रंथ है, अर्थात् आठ कर्मों का बंध है । यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके उदकशस्त्र के समारंभ को ग्रंथ कहा है । वास्तव में वह ग्रंथ (कर्मबंध) का कारण है । आगे भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

यह उदकशस्त्र का समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान है । तथा यह मार-निगोद आदि के मरणरूप है । यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को होनेवाली दस प्रकार की वेदनाओं का स्थान है । कर्मबंध मोह, मरण, और नरकरूप घोर दुःखरूप फल को प्राप्त कर के भी अज्ञानी लोग फिर इसी के लिए गृद्ध होते हैं । अथवा गृद्ध अर्थात् भोगों में आसक्त संसारी जीव इसी के लिए, अर्थात् कर्मबंध, मोह, मरण तथा नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

જેના દ્વારા ગૂંથી શકાય-બાંધી શકાય તે ગ્રંથ કહેવાય છે. એ ઉદક-જળ શસ્ત્રનો સમારંભ ગ્રંથ છે અર્થાત્ આઠ કર્મોનો બંધ છે અહિં કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને ઉદકશસ્ત્રના સમારંભને ગ્રંથ કહ્યો છે વાસ્તવિક રીતે તે ગ્રંથ (કર્મબંધ)નું કારણ છે આગળ પણ આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ.

આ જળશસ્ત્રનો સમારંભ મોહ-વિપરીત જ્ઞાન છે તથા આ માર-નિગોદ વગેરેના મરણરૂપ છે આ નરક છે-અર્થાત્ નારકી જીવોને થવાવાળી દસ પ્રકારની વેદનાઓનું સ્થાન છે કર્મબંધ, મોહ મરણ અને નરક રૂપ ઘોરદુઃખરૂપ ફળને પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની લોક ફરીને તેના માટે ગૃદ્ધ-આસક્ત થાય છે અથવા ગૃદ્ધ અર્થાત્ ભોગોમાં આસક્ત સંસારી જીવ એ માટે અર્થાત્ કર્મબંધ, મોહ, મરણ તથા નરક માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે

यद्यपि विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं चाप्कायशस्त्रसमारम्भं करोति, तथापि तत्फलं ग्रन्थ–मोह–मरण–नरकरूपमेव लभते, अत उदककर्मसमारभस्य तदेव फलं भवतीति भावः ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव लिप्सुरस्ति, तदर्थमेव च प्रवर्तते, इति यदुक्तं तत्र हेतुमाह—' यदिमम्. ' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, गृद्धो लोकः, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=स्वकाय–परकायतदुभयरूपैः, उदककर्मसमारम्भेण=अप्कायमुद्दिश्याष्टविधकर्मसमुत्पादक-सावद्यव्यापारेण, इमम्=अप्काय, विहिनस्ति=प्राणरहित करोति। तथा–उदक-

---

तात्पर्य यह है कि विषयभोगों में आसक्त जीव, शरीर आदि का पोषण करने के लिए, वन्दन–मान–पूजन के लिए, जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए तथा दु'खों का नाश करने के लिए, अपूकाय के शस्त्र का आरभ करता है मगर उस का फल–ग्रन्थ, मोह, मरण और नरक–रूप ही पाता है। अत एव जलकर्मसमारभ का वही फल होता है ।

लोक वार–वार कर्मबध आदि के लिए ही इच्छुक होता है, और उसी के लिए प्रवृत्ति करता है, यह बात पहले कही है। यहाँ उस का कारण बतलाते है––

क्यों कि गृद्धजन नाना प्रकार के स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप शस्त्रों से, उदककर्म के आरभद्वारा, अपूकायसबधी अष्टकर्म–जनक सावद्यव्यापारद्वारा अपूकाय की हिंसा करता है। तथा जलकाय के विराधक स्वकाय, परकाय और

તાત્પર્ય એ છે કે–વિષયભોગોમા આસકત જીવ શરીર–આદિના પોષણ કરવા માટે વન્દન, માન, પૂજા માટે, જન્મ મરણથી મુક્ત થવા માટે તથા દુ ખોનો નાશ કરવા માટે અપ્કાયના શસ્ત્રનો આરભ કરે છે, પરન્તુ તેનુ ફળ ગ્રથ, મોહ, મરણ અને નરક રૂપજ પામે છે, એ માટે જલકર્મસમારભનુ ફલ તેજ હોય છે

લોક વારવાર કર્મબધ વગેરે માટે ઇચ્છા કરતા હોય છે, અને તે માટે પ્રવૃત્તિ કરે છે એ વાત પ્રથમ કહી છે અહિં તેનુ કારણ બતાવે છે કેમકે–ગૃદ્ધ માણસ નાના પ્રકારના સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય રૂપ શસ્ત્રોથી ઉદકકર્મના આરભદ્વારા અપ્કાયના સબધી આઠ કર્મજનક સાવદ્યવ્યાપારદ્વારા અપ્કાયની હિંસા કરે છે તથા

श्रम्‌-अप्कायमर्दकं सर्व स्वकायपरकायतदुभयरूपम्‌, समारभमाणः=व्यापारयन्‌ अन्यान्‌=पृथिवीकायादीन्‌, अनेकरूपान्‌=त्रसान्‌ स्थावरांश्च प्राणान्‌=प्राणिनो विहिनस्ति।

अप्कायहिंसया षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव प्रविहन्स्तीति घोरतरं दुरितं कुर्वन्‌ पुनः पुनः ग्रन्थ्यादिनरकान्तं प्राप्यापि तदर्थमेव प्रवर्तते न पुनर्मोक्षायेति भाव ॥ सू० ८ ॥

पुनरपि सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह—'से बेमि' इत्यादि।

॥ मूलम्‌ ॥

से बेमि संति पाणा उदयनिस्सिया जीवा अणेगे ॥ सू० ९ ॥

॥ छाया ॥

स ब्रवीमि सन्ति प्राणा उदकनिश्रिता जीवा अनेके ॥ सू० ९ ॥

उभयकाय रूप शस्त्रों का आरंभ करता हुआ अन्यकाय—स्थावर और त्रस जीवों को भी हिंसा करता है, वह अप्कायकी हिंसाद्वारा षड्जीवनिकायरूप समस्त लोक की हिंसा करता है, वह अत्यन्त घोर पाप करता हुआ पुन पुन ग्रंथ से लेकर नरक तक के दुःखको पाकरके भी उसी के लिए प्रवृत्ति करता है—मोक्ष के लिए नहीं ॥सू. ८॥

सुधर्मा स्वामी फिर जम्बू स्वामी से कहते हैं—'से बेमि' इत्यादि।

मूलार्थ—मैं कहता हूं अपकाय के आश्रित प्राणी हैं और अन्य अनेक (द्वीन्द्रिय आदि) जीव भी हैं ॥सू. ९॥

જલકાયના વિરાધક સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય રૂપ શસ્ત્રોનો આરંભ કરીને અન્યકાય-સ્થાવર અને ત્રસ જીવોની પણ હિંસા કરે છે તે જલકાયની હિંસાદ્વારા ષડ્જીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે તેથી અત્યન્ત ઘોર પાપ કરતા થકા ફરી ફરી ગ્રંથ (કર્મબંધ)થી લઈને નરક સુધીના આઠ-દુઃખકારક કર્મને પામીને પણ તે માટે પ્રવૃત્તિ કરે છે મોક્ષ માટે કરતા નથી. (સૂ. ૮)

સુધર્મા સ્વામી ફરીથી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે—'સે બેમિ' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—હું કહું છું—અપ્કાયના આશ્રિત પ્રાણી છે અને અન્ય અનેક (દ્વીન્દ્રિય આદિ) જીવ પણ છે. (સૂ. ૯)

टीका—

सः=विज्ञाताप्कायस्वरूपोऽहं ब्रवीमि=यथा साक्षाद् भगवतः सकाशान्मया श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः। उदकनिश्रिताः जलरूप कायमाश्रित्य वर्त्तमानाः अप्कायिका इत्यर्थः प्राणाः=प्राणिनः सन्ति। तथाऽनेके=द्वीन्द्रियादयः नानाविधाः जीवा नीलङ्गु-पूतरक-मत्स्यादयः उदकनिश्रिता'=उदकावस्थिताः सन्ति। देहली-दीपन्यायेनोदकनिश्रिता इत्यस्योभयत्रान्वय, अनेनोदकं सचित्तमनेकजीवाधिष्ठितं चेति प्रतिवोधितम्।

टीकार्थ—अप्काय के स्वरूप का ज्ञाता मैं कहता हूँ। जैसा कि भगवान् से मैंने सुना है कि—अप्काय को आश्रित करके रहे हुए अप्कायिक प्राणी हैं, तथा अनेक द्वीन्द्रिय आदि नाना प्रकार के जीव नीलंगु, पूरतक, मत्स्य आदि भी जल में रहे हुए हैं। **उदकनिश्रिताः**—'जलकाय के आश्रित' यह पद देहली—दीपकन्याय से दोनों ओर जोड लेना चाहिए। यहाँ इतना समझ लेना आवश्यक है कि—जलकाय के जीवों का शरीर जल ही है, जब कि जल में रहने वाले त्रस आदि जीवों का शरीर भिन्न होता है, फिरभी वे जल ही में रहते हैं और जल की विराधना करनेसे उन त्रस आदि जीवों की भी विराधना होती है। जहाँ जलकाय है वहाँ सभी काय के जीव होते हैं।

ટીકાર્થ—અપ્કાયના સ્વરૂપને જાણુનાર હુ કહુ છુ જેવી રીતે કે મે ભગવાન પાસેથી સાભળ્યુ છે કે—અપ્કાયને આશ્રિત—આશ્રય કરીને રહેલા અપ્કાયના જીવો છે તથા અનેક દ્વીન્દ્રિય આદિ નાના પ્રકારના જીવ નીલગુ પૂરતક, મત્સ્ય આદિ પણ જલમા રહેલા છે 'उदकनिश्रिता' 'જલકાયને આશ્રિત' આ પદ દેહલી—દીપક—ન્યાયથી બન્ને બાજુ જોડી લેવુ જોઈએ

અહિં એટલુ સમજી લેવુ આવશ્યક છે કે—જલકાયના—જીવોના શરીર જલજ છે જ્યારે કે જલમા રહેવાવાળા ત્રસ આદિ જીવોના શરીર ભિન્ન—જૂદા હોય છે તો પણ તે જલમાજ રહે છે, અને જલની વિરાધના કરવાથી તે ત્રસ આદિ જીવોની પણ વિરાધના થાય છે જ્યા જલકાય છે ત્યા તમામ કાયના જીવ હોય છે

अप्कायस्य लक्षणद्वारम्—

ननूदकं सचित्तमस्तीत्यत्र किं प्रमाणम्? उच्यते—आपः सचित्ताः, शस्त्रानुपहतत्वे सति द्रवत्वात्, हस्तिशरीरोपादानभूतकललवत्। यत्र मूत्रादौ दोषवारणाय शस्त्रानुपहतत्वविशेषणोपादानम्। कललशब्दग्रहणेन सप्तदिवसमात्रवर्तिनो ग्रहणम्, तत्परमष्टमदिवसादौ तदेवार्बुदावस्थामापद्यते।

किञ्च—आपः सजीवाः, अनुपहतद्रवत्वात्, अण्डकमध्यस्थितकललवत्।

किञ्च—आपो जीवशरीराणि, छेद्यत्वात्, भेद्यत्वात्, रूप्यत्वात्, करचरणादिसमुदायवत्।

अप्काय का लक्षणद्वार

शंका—जल सचित्त है इस विषय में क्या प्रमाण है?

समाधान—जल सचित्त है, क्यों कि शस्त्र के उपघात के बिना ही वह द्रव (तरल) है, जैसे—हाथी के शरीर का उपादान कलल। यहाँ मूत्र आदि से व्यभिचार हटाने के लिए 'शस्त्र के उपघात के बिना' यह विशेषण लगाया गया है। 'कलल' शब्द के ग्रहण करने से सिर्फ सात दिन का गर्भाशयस्थित शुक्रशोणितमिश्रित द्रवपदार्थ लेना चाहिए। आठवें दिन से उसकी अर्बुद आदि अवस्थाएं हो जाती हैं—अर्थात् वह गाढा होने लगता है।

और भी—जल सजीव है, क्यों कि वह अनुपहत द्रव है, जैसे अंडे का रस।

और भी—जल, जीव का शरीर है, क्यों कि उसका छेदन—भेदन किया जाता है और रूप है, हाथ पाँव आदि के समूह की तरह।

અપ્કાયનું લક્ષણદ્વાર—

શંકા—જલ-પાણી સચિત્ત છે એ વિષયમાં શું પ્રમાણ છે?

સમાધાન—જલ સચિત્ત છે કેમકે શસ્ત્રના ઉપઘાત વિનાજ તે તરલ છે જેવી રીતે હાથીના શરીરનું ઉપાદાન "કલલ" અહિં મૂત્ર આદિથી વ્યભિચાર હટાવવા માટે 'શસ્ત્રના ઉપઘાત વિના' એ વિશેષણ લગાડ્યું છે "કલલ" શબ્દના ગ્રહણ કરવાથી માત્ર સાત દિવસનો ગર્ભાશયમાં રહેલો શુક્રશોણિત-મિશ્રિત દ્રવપદાર્થ સમજવો જોઈએ. આઠમા દિવસથી તેની અર્બુદ આદિ અવસ્થાઓ થઈ જાય છે અર્થાત્ તે ગાઢુ થવા લાગે છે

બીજું પણ—જલ સજીવ છે કેમકે તે અનુપહત દ્રવ છે જેમકે ઇંડાનો રસ.

બીજું પણ જલ-જીવ-શરીર છે. કેમકે-તેનું છેદન-ભેદન કરી શકાય છે અને રૂપ છે, હાથ-પગ આદિના સમૂહ પ્રમાણે

मस्तीति भगवता केवलालोकेन विज्ञायानगारेभ्यः संयमरक्षणार्थमुदकं जीवत्वेन प्रतिबोधितमित्यर्थः। 'च'-शब्दात् तदाश्रिता अन्ये द्वीन्द्रियादयोऽपि जीवा व्याख्याता इति बोधितम्। यो बिन्दुमात्रोदकविराधकः, स षड्जीवनिकाय-विराधको भवतीति वर्त्तुलार्थः ॥ सू० १० ॥

शस्त्रद्वारम्—

ननु यदि जीवपिण्डभूतमुदकं भगवता प्रोक्तं तर्हि उदकसेविनां मुनीनामवश्यं प्राणातिपातदोषसम्पातः, तेन कथं संयमः संयमिना संपद्यते? उच्यते—

सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रिविधमुदकम्। तत्र सचित्त-नदीकूपतडागादि-

---

पिण्ड है, इस प्रकार भगवान् ने केवलज्ञान से जानकर साधुओं के संयम की रक्षा के लिए जल को जीव बतलाया है। सूत्र में दिये हुए 'च' शब्द से यह प्रकट किया गया है कि जल के आश्रित दूसरे द्वीन्द्रिय आदि जीव भी हैं। संक्षेप में तात्पर्य यह है कि—जो पुरुष एक बिन्दु जल की विराधना करता है वह षट्काय के जीवों का विराधक है ॥ सू. १० ॥

शस्त्रद्वार—

शंका—यदि जल जीवों का पिण्ड है, ऐसा भगवान्ने कहा है तो जलका सेवन करने वाले मुनियों को हिंसा का दोष लगता है। ऐसी स्थिति में साधुओं का संयम किस प्रकार कायम रह सकता है?

समाधान—जल तीन प्रकार का है-(१) सचित्त (२) अचित्त और (३) मिश्र

ભગવાને કેવલજ્ઞાનથી જાણી કરીને સાધુઓના સંયમની રક્ષા માટે જલને જીવ તરીકે બતાવ્યું છે સૂત્રમાં આપેલા 'च' શબ્દથી એ પ્રગટ કરવામાં આવ્યું છે કે-જલના આશ્રિત બીજા દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવ પણ છે સંક્ષેપમાં તાત્પર્ય એ છે કે-જે પુરૂષ એક ટીપા જલની વિરાધના કરે છે તે ષટ્કાયના જીવોનો વિરાધક છે (સૂ. ૧૦)

શસ્ત્રદ્વાર—

શંકા—જો જલ જીવોનો પિંડ છે એ પ્રમાણે ભગવાને કહ્યું છે તો જલનું સેવન કરવાવાળા મુનિઓને હિંસાદોષ લાગે છે એવી સ્થિતિમાં સાધુઓનો સંયમ કાયમ કેવી રીતે રહી શકે છે?

સમાધાન—જલ ત્રણ પ્રકારનું છે (૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્ર

जलम्। मिश्रं सचित्ताचित्तसंमिश्रितम्। एतद् द्वयं चाग्राह्यम्। अचित्तं द्विविधं स्वभावतः, शस्त्रसंपर्कतश्च। स्वभावतोऽचित्तं जलं केवलि-मनःपर्यया-अवधि-श्रुत ज्ञानिनस्तज्जानाना अपि न सेवन्ते, अनवस्थादोषप्रसङ्गात्, व्यवहाराशुद्धेश्च। प्रसिद्धं च यत् कदाचित्स्वभावतोऽचित्तमलपरिपूर्णं ह्रद, स्वभावतोऽचित्तीभूत तिलादिकं च दृष्ट्वा व्यवहाराशुद्धत्वात्पिपासाक्षुधापरिपीडितानामपि साधूनां पानार्थं भक्षणार्थं च तदनुज्ञा न कृता भगवतेति। यत्तु शस्त्रसंपर्कादचित्तं जलं तत् साधूनामुपभोगाय ग्राह्य, तेन सयमनिर्वाहो भवति। किं तच्छस्त्रम्? इत्याह-'सत्थं' इत्यादि।

नदी, कूप तालाब आदि का जल सचित्त, और अचित्त मिश्र जल मिश्र कहलाता है। यह दोनों प्रकार का जल साधु के लिये अग्राह्य है। अचित्त जल दो प्रकार का है-स्वभाव से अचित्त और शस्त्र के संयोग से अचित्त। स्वभाव से अचित्त जल को केवली, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी, तथा श्रुतज्ञानी, जानते हैं मगर उस का सेवन नहीं करते। सेवन करने से अनवस्था दोष आता है और व्यवहार अशुद्ध हो जाता है। यह बात प्रसिद्ध है कि-कदाचित् स्वभाव से अचित्त जल से भरा हुआ तालाब तथा स्वभाव से अचित्त तिल आदि को देखकर व्यवहार में अशुद्ध होने के कारण प्यास और भूख से पीडित साधुओं को भी पीने-खाने की आज्ञा भगवान्ने नहीं दी है। जो जल शस्त्र के संयोग से अचित्त हो गया हो वही साधुओं के लिए, ग्राह्य होता है। ऐसा करने से ही संयम का पालन होता है। वह शस्त्र क्या है, यह बतलाने के लिए कहते है-'सत्थं' इत्यादि।

નદી, કુવા તળાવ આદિનું જળ સચિત્ત છે સચિત્ત અચિત્ત બન્ને પ્રકારનું ભેળું થયેલું જળ મિશ્ર કહેવાય છે. આ બન્ને પ્રકારના જળ સાધુઓ માટે અગ્રાહ્ય છે અચિત્ત જળ બે પ્રકારનું છે.(૧) સ્વભાવથી અચિત્ત અને (૨) શસ્ત્રના સંયોગથી અચિત્ત. સ્વભાવથી અચિત્ત જળને કેવલી, મનઃપર્યયજ્ઞાની, અવધિજ્ઞાની તથા શ્રુતજ્ઞાની જાણે છે પરંતુ તેનું સેવન કરતા નથી-સેવન કરવાથી અનવસ્થા દોષ આવે છે અને વ્યવહાર અશુદ્ધ થઈ જાય છે એ વાત પ્રસિદ્ધ છે કે-કદાચિત્ સ્વભાવથી અચિત્ત જળથી ભરેલું તળાવ તથા સ્વભાવથી અચિત્ત તલ આદિને જોઈને વ્યવહારમાં અશુદ્ધ હોવાના કારણે તરસ અને ભૂખથી પીડિત સાધુઓને પણ પીવા-ખાવાની આજ્ઞા ભગવાને આપી નથી જે જળ શસ્ત્રના સંયોગથી અચિત્ત થઈ ગયું હોય તે જળ સાધુઓ માટે ગ્રાહ્ય હોય છે એ પ્રમાણે કરવાથીજ સંયમનું પાલન થાય છે તે શસ્ત્ર શું છે? એ બતાવવા માટે કહે છે- સત્થં' ઇત્યાદિ.

पृथिवीकायवद् असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये। केवल शरीरसंस्थान स्तिबुकबिन्दुकसंस्थितमेव।

परिमाणद्वारम्—

ये वादरपर्याप्ता अप्कायाः, ते संवर्तितलोकप्रतराऽसंख्येयभाग प्रदेशराशिपरिमाणाः, ये तु बादरा अपर्याप्ताः, तथा सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च राशयस्ते पृथक्-पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति। अयमत्र विशेषः-वादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरपर्याप्ता अप्काया असंख्येयगुणाः, वादरेभ्योऽपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो बादरा अपर्याप्ता अप्काया असंख्येय-गुणाः। सूक्ष्मापर्याप्तपृथिवीकायेभ्य सूक्ष्मा अपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः,

---

पृथ्वीकाय के समान प्रत्येक प्रकार के जीव असख्यात हैं। अलबत्ता इन के शरीर का आकार स्तिबुकबिन्दु (बुद-बुद) के समान है।

परिमाणद्वार-

वादर पर्याप्त अप्काय के जीव सवर्तित लोकप्रतर के असख्येयभाग प्रदेशों के बराबर हैं, बादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म प्रर्याप्त और अपर्याप्त राशियाँ अलग अलग असख्यात लोकाकाश के प्रदेश के बराबर हैं। यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए कि-बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा बादर पर्याप्त अप्काय असख्यातगुणा हैं, और बादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय की उपेक्षा बादर अपर्याप्त अप्काय के जीव असख्यातगुणा हैं। सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं

પૃથ્વીકાયની પ્રમાણે પ્રત્યેક પ્રકારના જીવ અસખ્યાત છે અલબત્ત તેના શરીરના આકાર સ્તિબુકબિન્દુ-બુદ-બુદના પ્રમાણે છે

પરિમાણદ્વાર—

બાદર પર્યાપ્ત અપ્કાયના જીવ સવર્તિત લોકપ્રતરના અસખ્યેય ભાગ પ્રદેશોના બરાબર છે બાદર અપર્યાપ્ત તથા સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત રાશિઓ અલગ-અલગ અસખ્યાત લોકાકાશના પ્રદેશોની બરાબર છે અહિં એટલી વિશેષતા સમજવી જોઈએ કે-બાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયની અપેક્ષા બાદર પર્યાપ્ત અપ્કાય અસખ્યાત ગુણા છે, અને બાદર અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયની અપેક્ષા બાદર અપર્યાપ્ત અપ્કાયના જીવ અસખ્યાત ગુણા છે સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત અપ્કાયિક જીવ વિશેષ અધિક છે

सूक्ष्म-पर्याप्त-पृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः ॥ सू० ९ ॥

श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनमामन्त्र्य कथयति-'इहं चे '-त्यादि ।

मूलम्—

इहं च खलु भो ! अणगाराणं उदयं जीवा वियाहिया सू० ॥ १० ॥

छाया—

इह च खलु भोः ! अनगाराणामुदकं जीवा व्याख्याताः ॥ सू० १० ॥

टीका—

'भो' इति परस्परालापविषयकामन्त्रणे, तेन भोः=हेजम्बू ! इह=जिनशासने खलु=निश्चयेन अनगाराणां=द्रव्यभावगृहरहितानां मुनीनां मति बोधनायेति शेषः, उदकं जीवा व्याख्याताः' इति, उदकं जीवपिण्डभूत-

---

तथा सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा सूक्ष्म पर्याप्त अप्काय के जीव विशेष अधिक हैं ॥ सू. ९ ॥

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को संबोधन करके कहते हैं –'इहं च' इत्यादि ।

मूलार्थ—हे शिष्य ! जिन शासन में अनगारों के लिए यह व्याख्या की गई है कि–जल जीव है ॥ सू. १० ॥

टीकार्थ—भो शब्द संबोधन के लिए है। इस का तात्पर्य यह हुआ कि–हे जम्बू ! इस जिन शासन में निश्चय से अनगारों अर्थात् द्रव्य और भाव गृह से रहित मुनियों के बोध के लिए जल जीव है यह व्याख्यान किया गया है। जल जीवों का

તથા સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયની અપેક્ષા સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત અપ્કાયના જીવ વિશેષ અધિક છે. (સૂ. ૯)

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને સંબોધન કરીને કહે છે– इहं च ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—હે શિષ્ય! જિનશાસનમાં અણગારોને માટે આ વ્યાખ્યા કરવામાં આવી છે કે જલ જીવ છે (સૂ. ૧૦)

ટીકાર્થ— ભો' શબ્દ સંબોધન માટે છે તેનું તાત્પર્ય એ થયું કે–હે જમ્બૂ! આ જિનશાસનમાં નિશ્ચયથી અણગારોના અર્થાત્ દ્રવ્ય અને ભાવ ગૃહથી રહિત મુનિઓના બોધ માટે 'જલ જીવ છે' આ વ્યાખ્યાન કરવામાં આવ્યું છે જલ, જીવોનો પિંડ છે, એ પ્રમાણે

पृथिवीकायवद् असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये। केवलं शरीरसंस्थानं स्तिबुकबिन्दुसंस्थितमेव।

परिमाणद्वारम्—

ये बादरपर्याप्ता अप्कायाः, ते संवर्तितलोकप्रतराऽसंख्येयभागप्रदेशराशिपरिमाणाः, ये तु बादरा अपर्याप्ताः, तथा सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च राशयस्ते पृथक्-पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति। अयमत्र विशेषः—बादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो बादरपर्याप्ता अप्काया असंख्येयगुणाः, बादरेभ्योऽपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो बादरा अपर्याप्ता अप्काया असंख्येयगुणाः। सूक्ष्मापर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः,

---

पृथ्वीकाय के समान प्रत्येक प्रकार के जीव असंख्यात हैं। अलबत्ता इन के शरीर का आकार स्तिवुकबिन्दु (वुद-वुद) के समान है।

परिमाणद्वार-

बादर पर्याप्त अप्काय के जीव संवर्तित लोकप्रतर के असंख्येयभाग प्रदेशों के बराबर हैं, बादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त राशियाँ अलग अलग असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश के बराबर है। यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए कि-बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा बादर पर्याप्त अप्काय असंख्यातगुणा हैं, और बादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा बादर अपर्याप्त अप्काय के जीव असंख्यातगुणा हैं। सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं

પૃથ્વીકાયની પ્રમાણે પ્રત્યેક પ્રકારના જીવ અસંખ્યાત છે અલબત્ત તેના શરીરના આકાર સ્તિબુકબિન્દુ-બુદ-બુદના પ્રમાણે છે

પરિમાણદ્વાર—

બાદર પર્યાપ્ત અપ્કાયના જીવ સંવર્તિત લોકપ્રતરના અસંખ્યેય ભાગ પ્રદેશોના બરાબર છે બાદર અપર્યાપ્ત તથા સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત રાશિએ અલગ-અલગ અસંખ્યાત લોકાકાશના પ્રદેશોની બરાબર છે અહિં એટલી વિશેષતા સમજવી જોઈએ કે-બાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયની અપેક્ષા બાદર પર્યાપ્ત અપ્કાય અસંખ્યાત ગુણા છે, અને બાદર અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયની અપેક્ષા બાદર અપર્યાપ્ત અપ્કાયના જીવ અસંખ્યાત ગુણા છે સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત અપ્કાયિક જીવ વિશેષ અધિક છે

सूक्ष्म-पर्याप्त-पृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः ॥ सू० ९ ॥

श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनमामन्त्र्य कथयति-'इहं चे '-त्यादि।

मूलम्—

इहं च खलु भो ! अणगाराणं उदयं जीवा वियाहिया सू० ॥ १० ॥

छाया—

इह च खलु भो ! अनगाराणामुदकं जीवा व्याख्याता ॥ सू० १० ॥

टीका—

'भोः' इति परस्परालापविषयकामन्त्रणे, तेन भोः=हेजम्बूः ! इह=जिनशासने खलु=निश्चयेन अनगाराणां=द्रव्यभावगृहरहितानां मुनीनां प्रतिबोधनायेति शेषः, उदकं जीवा व्याख्याता ' इति, उदकं जीवपिण्डभूत

तथा सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा सूक्ष्म पर्याप्त अप्काय के जीव विशेष अधिक हैं ॥ सू. ९ ॥

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को संबोधन करके कहते हैं-'इहं च' इत्यादि।

मूलार्थ—हे शिष्य ! जिन शासन में अनगारों के लिए यह व्याख्या की गई है कि-जल जीव है ॥ सू १० ॥

टीकार्थ — भो' शब्द संबोधन के लिए है। इस का तात्पर्य यह हुआ कि-हे जम्बू ! इस जिन शासन में निश्चय से अनगारों अर्थात् द्रव्य और भाव गृह से रहित मुनियों के बोध के लिए 'जल जीव है' यह व्याख्यान किया गया है। जल, जीवों का

તથા સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયની અપેક્ષા સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત અપ્કાયના જીવ વિશેષ અધિક છે (સૂ. ૯)

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને સંબોધન કરીને કહે છે- इहं च' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—હે શિષ્ય ! જિનશાસનમાં અણગારોને માટે આ વ્યાખ્યા કરવામાં આવી છે કે જલ જીવ છે (સૂ. ૧૦)

ટીકાર્થ—ભો શબ્દ સંબોધન માટે છે તેનું તાત્પર્ય એ થયું કે-હે જમ્બૂ ! આ જિનશાસનમાં નિશ્ચયથી અણગારોના અર્થાત્ દ્રવ્ય અને ભાવ ગૃહથી રહિત મુનિઓના બોધ માટે 'જલ જીવ છે' આ વ્યાખ્યાન કરવામાં આવ્યું છે જલ, જીવોનો પિંડ છે, એ પ્રમાણે

(१) उत्स्वेद्यम्=पिष्टसंमृष्टपिठरादिप्रक्षाल्नजलम् । (२) संस्वेद्यम्=ससेकिम वा=उत्कालिततिलधावनजलं, उत्काल्तिपत्रशाकादिधावनजल वा। (३) तन्दुलोदकम्=तन्दुलधावनजलम् । (४) तिलोदकम्=तिलधावनजलम् । (५) तुषोदकम्=व्रीहिधावनजलम् । (६) यवोदकम्=यवधान्यक्षालनजलम् । (७) आचामकम्=अवश्रामणजल 'ओसामण' इति भाषामसिद्धम् । (८) सौवीरम्=आरनाल, तक्रपात्रधावनजल, तक्रोपरिष्टान्निस्तारितजलं वा 'आछ' इति भाषायाम् । (९) आम्रफलादिधावनजलम् । (१०) आम्रातकपानकम्=आम्रातकधावनजलम् । आम्रातकमिति 'अम्बाडी' इति भाषामसिद्धम् । (११) कपित्थपानकम्=कपित्थं='कविठ' इति भषायां, तस्य धावनजलम् । (१२) मातुलिङ्गम् 'बिजोरा'

इस प्रकार का अचित्त जल इसी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में 'पानैषणा' प्रकरण में इक्कीस प्रकार का भगवान् ने साधुओं के लिए ग्राह्य कहा है । वह इस प्रकार —

(१) उत्सेद्य—आटेका मिला हुवा पीठर (कथोटी) आदिका धोवन ।

(२) सस्वेद्य (ससेकिम) उकाले हुए तिलोंका धोवन या उकाले हुए पत्तों के शाक का धोवन ।

(३) चावलों का धोवन, (४) तिलों का धोवन, (५) धान्यका धोवन, (६) जौ का धोवन (७) ओसामण, (८) आरनाल, छाछ के वर्तनों का धोवन, अथवा छाछ के उपर का नितारा पानी जिसे 'आछ' भी कहते हैं ।

(९) आम आदि फलों का धोवन (१०) अम्बाडी का धोवन (११) कविठ (कैथ) का धोवन (१२) बिजौरे का धोवन (१३) दाख का धोवन (१४) दाडिम (अनार)

આવા પ્રકારનુ અચિત્ત જલ આ સૂત્રના બીજા શ્રુતસ્કધના પાનૈષણા—પ્રકરણમા એકવીશ પ્રકારનું ભગવાને સાધુઓ માટે ગ્રાહ્ય કહ્યુ છે, તે આ પ્રમાણે છે—

(૧) ઉત્સ્વેદ્ય—લોટ ભળેલુ, કથરોટ આદિનુ ધોવણ

(૨) સસ્વેદ્ય—ઉકાળેલા તલનુ ધોવણ, અથવા ઉકાળેલા પત્તાવાળા શાકનું ધોવણ

(૩) ચોખાનુ ધોવણ (૪) તલનું ધોવણ (૫) ધાન્યનું ધોવણ (૬) જવનુ ધોવણ (૭) ઓસામણ (૮) આરનાલ—છાસના વાસણોનુ ધોવણ, અથવા છાસની ઉપર નીતરેલ પાણી જેને 'આછ' પણ કહે છે

(૯) આબા—આમ્ર આદિ ફળોનુ ધોવણ (૧૦) અમ્બાડીનુ ધોવણ (૧૧) કોઠાનું ધોવણ (૧૨) બિજોરાનુ ધોવણ (૧૩) દ્રાક્ષનુ ધોવણ (૧૪) દાડમનુ ધોવણ (૧૫)

इति भाषायां, तस्य पानकम्=धावनजलम्। (१३) द्राक्षापानकम्=द्राक्षाधावनजलम्। (१४) दाडिमपानकम्=दाडिमधावनजलम्। (१५) खर्जूरपानकम्=खर्जूरधावनजलम्। (१६) नालिकेरपानकम्=नालिकेरधावनजलम्। (१७) करीरपानकम्=करीरधावनजलम्। (१८) कोलपानकम्=बदरधावनजलम्। (१९) आमलकपानकम्=आमलकधावनजलम्। (२०) चिञ्चापानकम्=चिञ्चा-अम्लिका 'इमली' इति भाषायां, तस्याः पानकं=धावनजलम्। (२१) शुद्धविकृतम्=अग्न्युत्कालितमुष्णं जलं च।

इह शेषद्वाराणि पृथिवीकायवद् विज्ञेयानि।

ये तु शाक्यादयः सचित्ताप्कायोपभोगिनः सन्ति तेषु शाक्यादयः स्वोपभोगार्थम् 'आपो जीवा न सन्ति' इति प्रतिपादयन्ति, दण्डिनस्तु जलं सचित्तं मन्यमाना अपि मोहप्रमादवशतः स्वार्थमुत्कालयन्ति, परमुपदिशन्ति च, यथा त्रिदण्डमुत्कालनीयं जलम्, इत्युपदिश्याप्कायसमारम्भं कारयन्तो न केवलमप्कायं विहिंसन्ति, किन्तु तदाश्रितानन्यानपि द्वीन्द्रियान् विराधयन्ति।

का धोवन (१५) खजूर का धोवन (१६) नारियल का धोवन (१७) कैर का धोवन (१८) बेर का धोवन (१९) आँवले का धोवन (२०) इमली का धोवन (२१) अग्नि से उकाला हुआ गर्म जल।

जो शाक्य आदि सचित्त अप्काय का सेवन करते हैं, उन में से शाक्य आदि अपने उपभोग के लिए 'जल सचित्त नहीं है' इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं। दण्डी लोक जल को सचित्त मान कर के भी मोह और प्रमाद के वश हो कर अपने लिए पानी गरम करवाते हैं और दूसरों को उकालने का उपदेश देते हैं कि-जल तीन दण्ड, उकालना चाहिए। अर्थात् तीन उफानवाला पानी होना चाहिए इस प्रकार उपदेश देकर अप्काय का समारम्भ करते हुए न केवल अप्काय की हिंसा करते हैं अपि तु जल में रहने वाले द्वीन्द्रिय आदि की भी विराधना करते हैं।

ધોવણ. (૧૬) નાળીયેરનું ધોવણ (૧૭) કેરનું ધોવણ. (૧૮) બોરનું ધોવણ (૧૯) આંબળાનું ધોવણ. (૨૦) આંબલીનું ધોવણ. (૨૧) અગ્નિથી ઉકાળેલું ગરમ જલ.

જે શાક્ય આદિ સચિત્તઅપ્કાયનું સેવન કરે છે તેમાંથી શાક્ય આદિ પોતાના ઉપભોગ માટે જલ સચિત્ત નથી એ પ્રકારની પ્રરૂપણા કરે છે. દંડી જલને સચિત્ત માનીને પણ મોહ અને પ્રમાદ વશ થઈ પોતાના માટે પાણી ગરમ કરાવે છે અને બીજાને પાણી ગરમ કરવાનો ઉપદેશ આપે છે કે-જલ ત્રણ દંડ-ઉકાળા આપીને ઉકાળવું જોઈએ. આ પ્રમાણે ઉપદેશ આપીને અપ્કાયનો સમારંભ કરવાવાળા કેવળ અપ્કાયની જ હિંસા કરે છે એટલું જ નહી પરન્તુ જલમાં રહેવાવાળા દ્વીન્દ્રિય આદિની પણ વિરાધના કરે છે.

मूलम्—

सत्थं चेत्थ अणुवीइ पास, पुढो सत्थं पवेइयं ॥ सू० ११ ॥

छाया—

शस्त्रं चात्र अनुविचिन्त्य पश्य, पृथक् शस्त्रं प्रवेदितम् ॥ ११ ॥

टीका—

अस्मिन् प्रस्तुतेऽप्काये शस्त्रं—शस्यते=हिंस्यते प्राणी येन तच्छस्त्रम् अनुविचिन्त्य ='इदमप्कायस्य शस्त्रम्' इति विचार्य, पश्य=हे शिष्य! ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य। शस्त्रम्=उपमर्दकं प्रस्तुतत्वादप्कायस्य पृथक्=विभिन्नरूपं स्वकायपरकायोभयकाय-भेदात् त्रिविधमित्यर्थः प्रवेदितं=प्रतिबोधितं भगवतेतिशेषः। तत्र स्वकायशस्त्रं नद्याद्युदकानां कूपाद्युदकम्। कूपाद्युदकाना नद्याद्युदक च। स्वकायशस्त्रपरिणतं जलं साधूनामग्राह्यं व्यवहाराशुद्धेः। उभयकायशस्त्रं कूपादिजलस्योष्णजलं मृत्तिकादि-

---

मूलार्थ—अप्काय के विषय में, हे शिष्य! शस्त्र का विचार करो। अप्काय के शस्त्र पृथक्-पृथक् समझाये गये हैं ॥ सू ११ ॥

टीकार्थ—जिस के द्वारा हिंसा हो वह शस्त्र कहलाता है, हे शिष्य! अप्काय के विषय में 'यह अप्काय का शस्त्र है' इस प्रकार विचार करो अप्काय के शस्त्र स्वकाय, परकाय और उभयकाय के भेद से नाना प्रकार के भगवानन् ने बतलाये है। कुएका जल नदी के जल के लिए स्वकायशस्त्र है, इसी प्रकार नदी आदि का जल कुँए के जल के लिए स्वकायशस्त्र है। स्वकायशस्त्र से परिणत जल साधुओं के लिए ग्राह्य नहीं होता, क्यों कि वह व्यवहार में अशुद्ध है। उभयकायशस्त्र है—कुँए आदि के

મૂલાર્થ—અપ્કાયના વિષયમા હે શિષ્ય! શસ્ત્રનો વિચાર કરો. અપ્કાયના શસ્ત્ર જુદા જુદા સમજાવ્યા છે (સૂ ૧૧)

ટીકાર્થ—જેના દ્વારા હિંસા થઈ શકે તે શસ્ત્ર કહેવાય છે, હે શિષ્ય! અપ્કાયના વિષયમા 'આ અપ્કાયનુ શસ્ત્ર છે' એ પ્રમાણે વિચાર કરો અપ્કાયના શસ્ત્ર સ્વકાય, પરકાય, અને ઉભયકાયના ભેદથી નાના પ્રકારના ભગવાને બતાવ્યા છે કુવાનુ જલ, નદી આદિના જલ માટે સ્વકાયશસ્ત્ર છે એ પ્રમાણે નદી આદિનુ જલ કુવાના જલ માટે સ્વકાયશસ્ત્ર છે. સ્વકાયશસ્ત્રથી પરિણત જલ સાધુઓ માટે ગ્રાહ્ય રહેતું નથી, કારણ કે તે વ્યવહારમા અશુદ્ધ છે. ઉભયકાયશસ્ત્ર છે કુવા આદિના જલ માટે ગરમ જલ, અથવા માટી વગેરેથી

मिश्रजलं च। उभयकायशस्त्रपरिणतमपि न ग्राह्यम्, तत्र मिश्रशङ्कासद्भावात्। परकायशस्त्रपरिणतमेव जलं मुनीनां ग्राह्यम्, परकायशस्त्रं चाप्कायस्य अग्नि-मृत्तिका-द्राक्षा-शाक-तण्डुल-पिष्ट-दाली-चणकादिकम्। परकायशस्त्रपरिणतत्वं-वर्णादीनां पूर्वावस्थापेक्षयाऽन्यथात्वम्। तत्र वर्णतो धूसरत्वादिरूपम्, गन्धतस्तत्तद्वस्तुसम्बन्धिगन्धवत्त्वम्, रसतस्तत्तद्वस्तुसम्बन्धितिक्तकटुकषायादिरसवत्त्वम्। स्पर्शतः स्निग्धरूक्षत्वादिरूपम्। तदेवम्भूतमचित्तं जलमस्यैवाऽस्य द्वितीयश्रुतस्कन्धे पानैषणायामेकविंशतिविधं मुनीनां ग्राह्यत्वेन वक्ष्यते भगवता। तथाहि—

जल के लिए गर्म जल अथवा मिट्टी आदि से मिला हुआ जल। उभयकायशस्त्र से परिणत जल भी साधुओं के लिए ग्राह्य नहीं है, क्यों कि उस में मिश्र (सचित्ताचित्त) की शङ्का रहती है। मुनियों के लिए परकायशस्त्रपरिणत जल ही ग्रहण करने योग्य है। अप्काय का परकायशस्त्र—अग्नि, मिट्टी दाख शाक, चावल, आटा, दाल, और चना आदि हैं।

पहले की अपेक्षा वर्ण, रस गंध आदि बदल जाना परकायशस्त्र से जल के परिणत (अचित्त) हो जाने की पहचान है। वर्ण से जल का धूसर आदि हो जाना, गंध से उस में मिली हुई वस्तुओं की गंध आने लगना इसी प्रकार जल में मिली हुई वस्तुओं का तीखा अथवा कसैला आदि रस का स्वाद आ जाना और स्पर्श से जल का रूखा चिकना आदि हो जाना जल के अचित्त होने के लक्षण हैं।

મળેલું જલ. ઉભયકાય શસ્ત્રથી પરિણત જલ પણ સાધુઓ માટે ગ્રાહ્ય નથી કેમકે-તેમાં મિશ્ર (સચિત્તાચિત્ત) ની શંકા રહે છે. મુનિઓ માટે પરકાયશસ્ત્રપરિણત જલજ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે. અપ્કાયનું પરકાયશસ્ત્ર, અગ્નિ માટી દ્રાક્ષ શાક ચાવલ લોટ દાલ અને ચણા આદિ છે.

પહેલાં કરતાં જેનાં વર્ણ રસ ગંધ આદિ બદલાઇ જાય તે પરકાયશસ્ત્રથી જલ પરિણત (અચિત્ત) થઇ જવાની એ નિશાની અર્થાત્ ઓળખાણ છે.

વર્ણથી જલનું ધૂસર આદિ થઇ જવું, ગંધથી તેમાં મળેલી વસ્તુઓની ગંધ આવવી, એ પ્રમાણે જલમાં મળેલી વસ્તુઓના તીખા, કડવા કસેલા આદિ રસનો સ્વાદ આવી જવો અને સ્પર્શથી જલનું રૂક્ષ ચિકણું આદિ થઇ જવું એ જલ અચિત્ત હોવાના લક્ષણ છે.

(१) उत्स्वेद्यम्=पिष्टसंसृष्टपिठरादिप्रक्षालनजलम् । (२) संस्वेद्यम्=ससेकिमं वा=उत्कालिततिलधावनजलं, उत्कालितपत्रशाकादिधावनजल वा। (३) तन्दुलोदकम्=तन्दुलधावनजलम् । (४) तिलोदकम्=तिलधावनजलम् । (५) तुषोदकम्=व्रीहिधावनजलम् । (६) यवोदकम्=यवधान्यक्षालनजलम् । (७) आचामकम्=अवश्रामणजलं 'औसामण' इति भाषाप्रसिद्धम् । (८) सौवीरम्=आरनाल, तक्रपात्रधावनजलं, तक्रोपरिष्ठान्निस्तारितजल वा 'आँछ' इति भाषायाम् । (९) आम्रफलादिधावनजलम् । (१०) आम्रातकपानकम्=आम्रातकधावनजलम् । आम्रातकमिति 'अम्वाडी' इति भाषाप्रसिद्धम् । (११) कपित्थपानकम्=कपित्थं='कविठ' इति भषायां, तस्य धावनजलम् । (१२) मातुलिङ्गम् 'विजोरा'

इस प्रकार का अचित्त जल इसी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में 'पानैषणा' प्रकरण में इक्कीस प्रकार का भगवान् ने साधुओं के लिए ग्राह्य कहा है। वह इस प्रकार –

(१) उत्सेध–आटेका मिला हुवा पीठर (कथोटी) आदिका धोवन ।

(२) सस्वेद (ससेकिम) उकाले हुए तिलोंका धोवन या उकाले हुए पत्तों के शाक का धोवन ।

(३) चावलों का धोवन, (४) तिलों का धोवन, (५) धान्यका धोवन, (६) जौ का धोवन (७) ओसामण, (८) आरनाल, छाछ के वर्तनों का धोवन, अथवा छाछ के उपर का नितारा पानी जिसे 'आंछ' भी कहते हैं।

(९) आम आदि फलों का धोवन (१०) अम्बाडी का धोवन (११) कविठ (कैथ) का धोवन (१२) विजौरे का धोवन (१३) दाख का धोवन (१४) दाडिम (अनार)

આવા પ્રકારનુ અચિત્ત જલ આ સૂત્રના બીજા શ્રુતસ્કધના પાનૈષણા–પ્રકરણમા એકવીશ પ્રકારનું ભગવાને સાધુઓ માટે ગ્રાહ્ય કહ્યુ છે, તે આ પ્રમાણે છે —

(૧) ઉત્સ્વેદ્ય–લોટ મળેલું, કથરોટ આદિનુ ધોવણ

(૨) સસ્વેદ્ય–ઉકાળેલા તલનું ધોવણ, અથવા ઉકાળેલા પત્તાવાળાં શાકનુ ધોવણ

(૩) ચોખાનું ધોવણ (૪) તલનું ધોવણ (૫) ધાન્યનું ધોવણ (૬) જવનું ધોવણ (૭) ઓસામણ (૮) આરનાલ–છાસના વાસણોનું ધોવણ, અથવા છાસની ઉપર નીતરેલ પાણી જેને 'આછ' પણ કહે છે

(૯) આબા–આમ્ર આદિ ફળોનુ ધોવણ (૧૦) અમ્બાડીનુ ધોવણ (૧૧) કોઠાનુ ધોવણ (૧૨) બિજોરાનુ ધોવણ. (૧૩) દ્રાક્ષનુ ધોવણ (૧૪) દાડમનુ ધોવણ (૧૫)

इति भाषायां, तस्य पानकं=धावनजलम् । (१३) द्राक्षापानकम्=द्राक्षाधावनजलम् । (१४) दाडिमपानकम्=दाडिमधावनजलम् । (१५) खर्जूरपानकम्=खर्जूरधावनजलम् । (१६) नालिकेलपानकम्=नालिकेलधावनजलम् । (१७) करीरपानकम्=करीरधावनजलम् । (१८) कोलपानकम्=बदरधावनजलम् । (१९) आमलकपानकम्=आमलकधावनजलम् । (२०) चिञ्चापानकम्=चिञ्चा-अम्लिका'इमली' इति भाषायां, तस्याः पानकं=धावनजलम् । (२१) शुद्धविकटम्=अग्न्युत्कालितमुष्णं जलं च ।

इह शेषद्वाराणि पृथिवीकायवद् विज्ञेयानि ।

ये तु शाक्यादयः सचित्ताप्कायोपभोगिनः सन्ति तेषु शाक्यादयः स्वोपभोगार्थम् 'आपो जीवा न सन्ति' इति प्रतिपादयन्ति, दण्डिनस्तु जलं सचित्तं मन्यमाना अपि मोहप्रमादवशतः स्वार्थमुत्कालयन्ति, परमुपदिशन्ति च, यथा त्रिदण्डमुत्कालनीयं जलम्, इत्युपदिश्याप्कायसमारम्भं कारयन्तो न केवलमप्कायं विहिंसन्ति, किन्तु तदाश्रितानन्यानपि द्वीन्द्रियान् विराधयन्ति ।

का धोवन (१५) खजूर का धोवन (१६) नारियल का धोवन (१७) कैर का धोवन (१८) बेर का धोवन (१९) आंवले का धोवन (२०) इमली का धोवन (२१) अग्नि से उकाला हुआ गर्म जल ।

जो शाक्य आदि सचित्त अप्काय का सेवन करते हैं, उन में से शाक्य आदि अपने उपभोग के लिए 'जल सचित्त नहीं है' इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं। दण्डी लोक जल को सचित्त मान कर के भी मोह और प्रमाद के वश हो कर अपने लिए पानी गरम करवाते हैं और दूसरों को उकालने का उपदेश देते हैं कि-जल तीन दण्ड, उकालना चाहिए। अर्थात् तीन उकालेका पानी होना चाहिए इस प्रकार उपदेश देकर अप्काय का समारम्भ करते हुए न केवल अप्काय की हिंसा करते हैं अपि तु जल में रहने वाले द्वीन्द्रिय आदि की भी विराधना करते हैं।

પીવણ. (૧૬) નારીયેલનું પીવણ. (૧૭) કેરનું પીવણ. (૧૮) બોરનું પીવણ (૧૯) આમળાનું પીવણ (૨૦) આંબલીનું પીવણ (૨૧) અગ્નિથી ઉકાળેલું ગરમ જલ.

જે શાક્ય આદિ સચિત્તઅપકાયનું સેવન કરે છે તેમાંથી શાક્ય આદિ પોતાના ઉપભોગ માટે 'જલ સચિત્ત નથી એ પ્રકારની પ્રરૂપણા કરે છે દંડી જલને સચિત્ત માનીને પણ મોહ અને પ્રમાદ વશ થઈ પોતાના માટે પાણી ગરમ કરાવે છે અને બીજાને પાણી ગરમ કરવાનો ઉપદેશ આપે છે કે-જલ ત્રણ ઉકાળા આપીને ઉકાળવું જોઈએ. આ પ્રમાણે ઉપદેશ આપીને અપકાયનો સમારંભ કરતા થકા કેવળ અપકાયનીજ હિંસા કરે છે એટલુંજ નહીં પરન્તુ જલમાં રહેવાવાળા દ્વીન્દ્રિય આદિની પણ વિરાધના કરે છે

दृश्यन्ते च तीर्थादिषु अधःकर्मादिदोषदूषितभक्तपानादिग्रहणेनाप्कायादिमहासमारम्भं कुर्वाणाः । न च ते स्वात्मानं भवसागरात्तारयितुं समर्था भवन्ति, उक्तञ्च–भगवतोत्तराध्ययनसूत्रे–(अध्य २०)

" चिरंपि से मुंडरुई भवित्ता, अथिरव्वए तवनियमेहिं भट्ठे ।
चिरपि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराए " ॥ सू० ११ ॥

न केवल ते हिंसादोषभागिनः, अपि त्वन्यदोषभागिनोऽपि सन्ति, तदेव भगवानाह–' अदुवा. ' इत्यादि ।

मूलम्—

अदुवा अदिन्नादाणं ॥ सू० १२ ॥

छाया—

अथवा अदत्तादानम् ॥ सू० १२ ॥

तीर्थ आदि पर आधाकर्म आदि दोषों से दूषित आहारपानी ग्रहणकरके अप्कायका महारम करते हुए देखे जाते हैं । वे अपने आत्मा को भवसागर से तारने में समर्थ नहीं हैं । भगवान् ने उत्तराध्ययनसूत्र (अध्ययन २०) में कहा हैं—

" जो पुरुष अस्थिर व्रत वाला है और तप तथा नियमों से भ्रष्ट है वह चिरकाल तक अपने आत्मा को क्लेश पहुँचाने पर भी सपराय (ससार से) पार नहीं हो चकता " (उत्त अ २०) ॥ सू० ११ ॥

सचित्त जल का आरभ करने वाले अकेली हिंसा के ही भागी नहीं हैं, किन्तु अन्य दोषों के भागी भी हैं । यही बात भगवान् कहते हैं –'अदुवा.' इत्यादि ।

मूलार्थ—अथवा अदत्तादान का दोष लगता है ॥ सू० १२ ॥

तीर्थ आदि पर आधाकर्म आदि दोषोथी दूषित आहार–पाणी ग्रहण करीने अप्कायनो महारंभ करता होय एम जोवामा आवे छे ते पोताना आत्माने भवसागरथी तारवामा समर्थ नथी भगवाने–उत्तराध्ययन सूत्रमा (अध्ययन २०मा) कह्यु छे के.–

"जे पुरुष अस्थिर व्रतवाळा छे अने तप तथा नियमोथी भ्रष्ट छे, ते लांबा समय सुधी पोताना आत्माने क्लेश पहोंचाडवा उपरात पण ससारथी पार थई शकता नथी" (उत्तरा० अ २०) (सू ११)

सचित्त जलनो आरंभ करवावाळा एकली हिंसानाज भागी नथी परन्तु अन्य दोषोना पण भागी छे ते वात भगवान कहे छे–'अदुवा' ईत्यादि

मूलार्थ—अथवा अदत्तादाननो दोष लागे छे (सू १२)

टीका—

'अथवा'-शब्दः कथितस्यार्थस्य प्रकारान्तरेण स्पष्टीकरणे वर्तते। येऽप्काया रम्भिणस्तेषामदत्तादानदोषोऽपि भवति। यतोऽप्कायजीवैस्तेभ्यो नार्पितानि स्वशरीराण्युपमर्दयितुं, ते च तानि वाङ्मनःकाययोगैः कृतकारितानुमोदितैस्समर्दयन्ति, तत-श्चाप्कायारम्भिणामदत्तादानदोषोऽप्यनिवार्यो भवति, तस्मान्मुमुक्षुभिः सर्वथाऽप्काया-रम्भो वर्जनीयः, इति भगवता साक्षात्प्रोक्तम् ॥ सू० १२ ॥

सचित्तजलोपभोगिनो हि पृष्टाः सन्तो यद् वदन्ति तदाह—

यद्वा-अप्कायारम्भं स्वयं परिहर्तुमसमाः शाक्यादयो यद्वदन्ति तदाह- 'कप्पइ णे' इत्यादि।

टीकार्थ—पहले कही हुई बात को दूसरी तरह से स्पष्टीकरण करने के लिये 'अथवा' शब्द है। जो अप्काय का आरम्भ करते हैं उन्हें अदत्तादान का दोष भी लगता है। कारण यह है कि—अप्काय के जीवों ने अपने शरीर उपमर्दन करने के लिए उन्हें सौंपे नहीं हैं, फिर भी वे लोग मन वचन काय से और कृत कारित, अनुमोदना से उनका उपमर्दन करते हैं अतः अप्काय का आरम्भ करने वालों को अदत्तादान का दोष अनिवार्य है। अतः मुमुक्षु पुरुषों को अप्काय का आरंभ त्यागना चाहिए। ऐसा भगवान् ने साक्षात् कहा है ॥ सू. १२ ॥

सचित्त जलका उपयोग करनेवाले पूछनेपर जो उत्तर देते हैं सो कहते हैं- अथवा जो लोग अप्काय के आरंभ को त्यागने में असमर्थ हैं उनका कथन बतलाते हैं— 'कप्पइ णे' इत्यादि।

ટીકાર્થ—પ્રથમ કહેલી વાતને બીજી રીતથી સ્પષ્ટીકરણ કરવાના અર્થમાં અથવા શબ્દ છે. જે અપ્કાયનો આરંભ કરે છે તેને અદત્તાદાનનો દોષ પણ લાગે છે કારણ એ છે કે—અપ્કાયના જીવોએ પોતાનું શરીર ઉપમર્દન કરવા માટે તેને સોંપ્યું નથી. તો પણ તે લોકો મન, વચન અને કાયાથી અને કરવું, કરાવવું તથા અનુમોદવું તે વડે કરી ઉપમર્દન કરે છે તે કારણથી અપ્કાયનો આરંભ કરવાવાળાને અદત્તાદાનનો દોષ પણ અનિવાર્ય (ટાળી ન શકાય તેવો) છે એ માટે મુમુક્ષુ પુરૂષોએ અપ્કાયનો આરંભ ત્યાગી દેવો જોઈએ એ પ્રમાણે ભગવાને સાક્ષાત્ કહ્યું છે (સૂ. ૧૨)

સચિત્ત જલનો ઉપયોગ કરવાવાળાને પૂછતા જે ઉત્તર આપે છે—તે કહે છે અથવા જે લોક અપ્કાયના આરંભને ત્યજવામાંઅસમર્થ છે તેમનું કહેવું-કથન બતાવે છે-'કપ્પઇ ણે' ઈત્યાદિ

मूलम्—

कप्पइ णे कप्पइ णे पाउं अदुवा विभूसाए ॥ सू० १३ ॥

छाया—

कल्पतेऽस्माकं कल्पतेऽस्माकं पातुं, अथवा विभूषायै ॥ सू० १३ ॥

टीका—

'कल्पतेऽस्माक'-मिति । न वयं स्वेच्छयोदकमुपमर्दयामः किन्त्वस्माकमागमे निर्जीवत्वेन प्रतिबोधितत्वादनिषिद्धत्वाच्च पातुं कल्पते । 'कल्पतेऽस्माकम्' इत्यस्य द्विरुच्चारणेन पुनःपुनरनेकप्रयोजनवशाद् बहुविध उपभोगोऽस्माकं कल्पते, इति बोध्यते । तथाहि—

भस्मस्नायिनो वदन्ति-अस्माकं पातुमेव कल्पते न तु स्नातुमिति ।

शाक्यादयस्त्वेवं जल्पन्ति-स्नान-पानादि सर्वं कल्पते जलेनेति ।

मूलार्थ—हमें कल्पता है, हमें कल्पता है, (जल) पीने और विभूषा करने-हाथ पैर आदि धोने, नहाने-के लिए ॥ सू १३ ॥

टीकार्थ—हम स्वेच्छा से जल की विराधना नहीं करते, वरन हमारे आगम में जल को अचित्त बतलाया है और पीने का निषेध नहीं किया है, अत हमें पीना कल्पता है । 'हमें कल्पता है' यह दो बार कहने से यह सूचित किया गया है कि-प्रयोजन के वश नाना प्रकार का उपभोग करना हमें कल्पता है । जैसे—

भस्म से स्नानकरनेवाले कहते हैं-हमें पीना ही कल्पता है, स्नानकरना नहीं कल्पता ।

शाक्य आदि का कहना है कि-हमें पीना और स्नानकरना-सभी कुछ कल्पता है ।

મૂલાર્થ—અમને કલ્પે છે, અમને કલ્પે છે, (જલ) પીવાને અને વિભૂષા-હાથ પગ આદિ ધોવા, નહાવા માટે (સૂ ૧૩)

ટીકાર્થ—અમે સ્વેચ્છાથી જલની વિરાધના કરતા નથી પરંતુ અમારા આગમમા જલને અચિત્ત બતાવ્યુ છે, અને પીવાનો નિષેધ કર્યો નથી તેથી અમારે પીવુ કલ્પે છે 'અમારે કલ્પે છે.' આ બે વાર કહેવાથી એ સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે કે—પ્રયોજનવશ નાના પ્રકારનો ઉપભોગ કરવાનુ અમને કલ્પે છે જેમ કે-

ભસ્મથી સ્નાનકરવાવાળા કહે છે—અમારે પીવુ કલ્પે છે, સ્નાન કરવુ કલ્પતુ નથી

શાક્ય આદિનુ કહેવુ છે કે-અમારે પીવુ અને સ્નાન, સર્વ કાંઈ કલ્પે છે.

ते पुनरेवं वदन्ति—अथवा विभूषायै=शोभार्थं कल्पतेऽस्माकमुदकमिति। विभूषा नाम—करचरणमुखादिप्रक्षालनादिका, पात्रादिप्रक्षालनरूपा वा, तदर्थं जलेन व्यवहरतामस्माकं नास्ति कोऽपि दोषलेश इति ॥ सू० १३ ॥

पुनः किं कुर्वन्ति ते ? इत्याह—'पुढो सत्थेहिं,' इत्यादि

मूलम्—

पुढो सत्थेहिं विउट्टंति ॥ सू० १४ ॥

छाया—

पृथक् शस्त्रैर्व्यावर्त्तयन्ति (विकुट्टंति वा) ॥ सू० १४ ॥

॥ टीका ॥

आत्मानमनगारं वदमाना शाक्यादयः पृथक्=भिन्नभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः=स्नानपानधावनोत्सेचनादिभिरप्कायजीवान् व्यावर्त्तयन्ति=प्राणेभ्यो व्यपरोपयन्ति। यद्वा विउट्टंती '—विकुट्टंतीति छाया तेन विकुट्टन्ति=विशेषेण छिन्दन्ति, सर्वथा भावेन विराधयन्तीत्यर्थः ॥ सू० १४ ॥

उनका यह भी कहना है कि—विभूषा—शोभा के लिए भी जल का उपभोग हमें कल्पता है। हाथ, पैर, मुख, आदि धोना और वस्त्र आदि धोना विभूषा है। इस के लिए जल व्यवहारकरने में हमें जरा भी दोष नहीं लगता ॥ सू० १३ ॥

वे और क्या करते है, सो करते है:—'पुढो ' इत्यादि।

मूलार्थ—भिन्न—भिन्न शस्त्रों से अप्काय की हिंसा करते हैं ॥ सू० १४ ॥

टीकार्थ—अपने को अनगार कहते हुए शाक्य वगैरह भिन्न—भिन्न प्रकार के शस्त्रों से स्नान, पान धोना सींचना आदि कार्य कर के अप्काय की हिंसा करते हैं। अथवा पूर्णरूप से उस की विराधना करते हैं ॥ सू. १४ ॥

તેમનું એ પણ કહેવું છે કે વિભૂષા—શોભા માટે પણ જલનો ઉપયોગ અમારે કલ્પે છે. હાથ પગ, મુખ આદિને ધોવાં અને વસ્ત્ર આદિ ધોવાં તે વિભૂષા કહેવાય છે એ માટે જલનો વ્યવહાર કરવામાં અમને જરાપણ દોષ લાગતો નથી. (સૂ. ૧૩)

તે બીજું શું કરે છે તે કહે છે 'પુઢો' ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—જુદા જુદા શસ્ત્રોથી જલકાયની હિંસા કરે છે (સૂ. ૧૪)

ટીકાર્થ—પોતાને અણગાર કહેનારા શાક્ય વગેરે ભિન્ન—ભિન્ન પ્રકારના શસ્ત્રોથી સ્નાન, પાન, ધોવું, સીંચવું આદિ કામ કરીને અપ્કાયની હિંસા કરે છે અથવા પૂર્ણ રૂપથી તેની વિરાધના કરે છે (સૂ. ૧૪)

साम्प्रतमेषां युक्त्यागमयोर्निस्सारत्वं प्रदर्शयन्नाह–' एत्थवि.' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

एत्थ वि तेसिं नो निकरणाए ॥ सू० १५ ॥

॥ छाया ॥

अत्रापि तेषां नो निकरणायै ॥ सू० १५ ॥

॥ टीका ॥

तेषां शक्यादीनां युक्तयः अत्र=अस्मिन्नप्कायारम्भविषये नो=नैव निकरणायै=निश्चयकरणाय समर्थाः सन्ति। अपिशब्देन तेषामागमोऽपि न निश्चेतु समर्थो भवति। आगमत्वपि तत्र न संभवति, अनाप्तप्रणीतत्वात्, हिंसाविधायकत्वाच्च। यतो हि स एवागमशब्दवाच्यः यः खलु वीतरागप्रणीतः सर्वप्राणिहितकरो भवति॥ सू० १५ ॥

उन का कथन युक्ति और आगम से सारहीन है, यह बतलाते हुए कहते है–'एत्थवि.' इत्यादि।

मूलार्थ—उन लोगों की युक्तियाँ अप्काय के विषय मे निश्चय नहीं कर सकती॥ सू० १५ ॥

टीकार्थ—उन शाक्य आदि की युक्तियाँ अप्काय के आरभ के विषय में, निश्चय करने में समर्थ नहीं हैं। 'वि' अपि शब्द से यह सूचित किया है कि–उनका आगम भी निश्चय करने में समर्थ नहीं है। उनका आगम, आगम भी नहीं है, क्यों कि वह आप्तपुरुषद्वारा प्रणीत नहीं है और हिंसा का विधान करनेवाला है। आगम वही कहला सकता है जो वीतरागद्वारा प्रणीत हो और प्राणीमात्र का हितकारी हो॥ सू० १५ ॥

તેમનુ કથન–કહેવું–યુક્તિ અને આગમથી સારહીન છે. એ બતાવીને કહે છે–' एत्थवि, ' ઈત્યાદિ

મુલાર્થ–તે લોકોની યુક્તિઓ અપ્કાયના વિષયમા નિશ્ચય કરી શકતી નથી.(સૂ ૧૫)

ટીકાર્થ—તે શાક્ય આદિની યુક્તિઓ અપ્કાયના આરભના વિષયમા નિશ્ચય કરવામા સમર્થ નથી 'વિ' અપિ શબ્દથી એ સૂચિત કર્યું છે કે તેમનું આગમ પણ નિશ્ચય કરવામા સમર્થ નથી તેમનુ આગમ તે આગમ પણ નથી કેમકે તે આપ્ત પુરૂષો દ્વારા પ્રણીત નથી અને હિંસાનુ નિધાન કરવાવાળા છે આગમ તે કહેવાય છે કે જે વીતરાગદ્વારા પ્રણીત હોય અને પ્રાણીમાત્રનુ હિતકારી હોય (સૂ ૧૫)

उद्देशमर्थं जीवत्व प्रतिबोध्य अस्य उद्देशस्य सकलार्थमुपसंहरन्नाह-' एत्थ सत्थं ' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति । एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति । तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं उदयसत्थं समारंभेज्जा, णेव अन्नेहिं उदयसत्थं समारंभावेज्जा, उदयसत्थं समारंभंतेऽवि अन्ने न समणुजाणेज्जा । जस्सेते उदयसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि ॥ सू० १६ ॥

तइओ उद्देसो समत्तो ॥ ३ ॥

छाया—

अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रमसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयमुदकशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरुदकशस्त्रं समारम्भयेत्, उदकशस्त्रं

इस प्रकार अप् को जीव बतलाकर इस उद्देशक के समस्त कथन का उपसंहार करते हैं—'एत्थ सत्थं ' इत्यादि ।

मूलार्थ—अप्काय में शस्त्र का आरंभ करने वाले को ये आरंभ ज्ञात नहीं होते । अप्काय में शस्त्र का आरंभ न करने वाले को ये आरंभ ज्ञात होते हैं । उन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं शस्त्र का आरंभ न करे, दूसरों से आरंभ न कराव और आरंभ करने वाले दूसरे को भला न जाने । जो जलकाय के इस आरंभ को जानता है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है । भगवान् से मैंने जो सुना वह कहता हूँ ॥ सू० १६ ॥

આ પ્રમાણે જળને જીવ બતાવીને આ ઉદ્દેશકનાં સમસ્ત કથનનો ઉપસંહાર કરે છે— एत्थ ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—અપ્કાયમાં શસ્ત્રના આરંભ કરવાવાળાને આરંભ જાણવામાં આવતા નથી. અપ્કાયમાં શસ્ત્રના આરંભ નહિ કરવાવાળાને એ આરંભ જાણવામાં આવે છે તેને જાણી કરીને બુદ્ધિમાન પુરૂષ સ્વયં જળનો આરંભ કરે નહિ બીજા પાસે આરંભ કરાવે નહિ. અને આરંભ કરવાવાળા બીજાને સારો માને નહિ. જે જલકાયનો આ પ્રમાણે આરંભ જાણે છે તે પરિજ્ઞાતકર્મા મુનિ છે, ભગવાન પાસેથી જે સાંભળ્યું તે કહું છું (સૂ. ૧૬)

समारभमाणानन्यान् न समनुजानीयात्। यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १६ ॥

। तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ३ ॥

टीका--

अत्र=अस्मिन्नप्काये शस्त्रं=द्रव्यभावरूपं समारभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते आरम्भाः बन्धहेतुत्वेनापरिज्ञाता भवन्ति। अत्र=अस्मिन्नप्काये शस्त्रं=द्रव्य-भावरूपम् असमारभमाणस्य=अव्यापारयतः इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति। ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः, तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः। ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति दर्शयति-'तत् परिज्ञाये'-त्यादि। तद्=उदकारम्भणं परिज्ञाय='बन्धाय भवती'-त्येवमवबुध्य मेधावी= साधुमर्यादायां सावधान, नैव स्व[illegible]मुदकशस्त्र समारभेत, नैवान्यैरुदकशस्त्रं समारम्भ-

---

टीकार्थ--इस अप्काय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का व्यापार करने वाला अपने व्यपारों को कर्मबंध का कारण नहीं जानता। जो अप्काय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का उपयोग नहीं करते, उन्हे इस व्यापारों का ज्ञान होता है। अर्थात् वे ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देते हैं। ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है सो कहते हैं--जल के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर साधु की मर्यादा में रहने वाले बुद्धिमान् स्वयं जलकाय का आरंभ नहीं करे, दूसरों से आरंभ नहीं करावे और जलका आरंभ करने

ટીકાર્થ—આ અપ્કાયના વિષયમા દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ શસ્ત્રનો વ્યાપાર કરવા-વાળા પોતાના વ્યાપારોને કર્મબંધનુ કારણ જાણતા નથી જે અપ્કાયના વિષયમા દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ શસ્ત્રનો ઉપયોગ કરતા નથી, તેને એ વ્યાપારોનુ જ્ઞાન હોય છે અર્થાત્ તે જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરી દે છે

જ્ઞપરિજ્ઞા પછી પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા કેવા પ્રકારે ઉત્પન્ન થાય છે, તે કહે છે—જલના આરંભને કર્મબંધનુ કારણ જાણી કરીને સાધુની મર્યાદામા રહેવાવાળા બુદ્ધિમાન સ્વય જલકાયનો આરંભ કરે નહિ, બીજા પાસે કરાવે નહિ, અને જલનો આરંભ કરવાવાળાને

येद्, उदकशस्त्रं समारममाणान् अन्यान् अपि न समनुजानीयात् नानुमोदयेदित्यर्थः। यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा मुनिर्भवति, इति ब्रवीमि, एतद्व्याख्यानं प्राग्वद् बोध्यम् ॥ सू० १६ ॥

इत्याचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने
तृतीयोद्देशः समाप्तः ॥ १ । ३ ॥

वाले दूसरों का अनुमोदन नहीं करे। जो उदकशस्त्र के आरंभ को जानता है वह परिज्ञातकर्मा मुनि है। 'इति बेमि' का अर्थ पहले की तरह जानना चाहिए ॥ सू० १६॥

इति श्री आचाराङ्ग सूत्र की 'आचारचिन्तामणि' टीका के
हिन्दी अनुवाद में प्रथम अध्ययनका
तीसरा उद्देशक समाप्त ॥ १-३ ॥

અનુમોદન આપે નહિ. જે ઉદકશસ્ત્રના આરંભને જાણે છે, તે પરિજ્ઞાતકર્મા મુનિ છે 'इति बेमि' નો અર્થ પહેલાનાં પ્રમાણે જાણવો જોઈએ. (સૂ૦ ૧૬)

ઇતિ શ્રી આચારાગ સૂત્રની 'आचारचिन्तामणि' ટીકાના
ગુજરાતી અનુવાદમા પ્રથમ અધ્યયનનો
ત્રીજો ઉદ્દેશક સમાપ્ત ॥ ૧।૩॥



लक्षणद्वारम्—

ननु तेजस्कायजीवाः सन्तीत्यत्र किं मानम्? उच्यते—अङ्गारादयो जीवशरीराणि, छेद्यत्वात्, भेद्यत्वात्, करचरणादिसमुदायवत्।

अङ्गारादीनां प्रकाशपरिणामः आत्मप्रयोगाविर्भूतः शरीरस्थत्वात्, खद्योतदेहपरिणामवत्। यथा—रजन्यादौ विशिष्टकाले प्राणिविशेषस्य खद्योतस्य देहपरिणामो जीवप्रयोगविशेषात् भवति, एवमङ्गारादीनामपि प्रकाशपरिणामः।

यद्वा—अङ्गारादीनामूष्मा आत्मसंप्रयोगपूर्वकः, शरीरस्थत्वात्, ज्वरोष्मवत्।

लक्षणद्वार—

शङ्का—तेजस्काय के जीवों के अस्तित्व में क्या प्रमाण है?

समाधान—अंगार आदि, जीव के शरीर हैं, क्यों कि वह छेद्य है भेद्य है और स्थूल है, जैसे हाथ-पैर आदि का समूह।

अथवा—अंगार आदि की प्रकाशरूप पर्याय, आत्मा के प्रयोग से उत्पन्न हुई है क्यों कि वह शरीर में स्थित है, जैसे—जुगनू के शरीर की पर्याय, जैसे रात्रि वगैरह खास समय में जुगनू नामका प्राणी का शरीरपरिणाम (चमकना) जीव के प्रयोग से प्रकट होता है, उसी प्रकार अंगार आदि का प्रकाशरूप परिणाम भी आत्मा के व्यापार से ही उत्पन्न होता है।

अथवा—अंगार आदि की गर्मी आत्मा के व्यापार से उत्पन्न होती है, क्यों कि वह शरीर में है, जैसे ज्वर की गर्मी. ज्वर की गर्मी जीव से युक्त शरीर में ही उत्पन्न होती है,

---

લક્ષણદ્વાર—

શંકા—તેજસ્કાયના જીવોના અસ્તિત્વ (હોવાપણા)માં શું પ્રમાણ છે?

સમાધાન—અંગાર આદિ જીવના શરીર છે કેમકે તે છેદ્ય છે ભેદ્ય છે અને સ્થૂલ છે જેમકે હાથ, પગ આદિનો સમૂહ

અથવા—અંગાર આદિની પ્રકાશરૂપ પર્યાય આત્માના પ્રયોગથી ઉત્પન્ન થઈ છે, કારણકે તે શરીરમાં સ્થિત છે. જેવી રીતે—જુગનૂ (આગિયો નામના પ્રાણી)ના શરીરની પર્યાય. જેમ રાત્રી વગેરે ખાસ સમયમાં જુગનૂ (આગીઓ) નામક પ્રાણીનો શરીર-પરિણામ (ચમકવું) જીવના પ્રયોગથી પ્રગટ થાય છે તે પ્રમાણે અંગાર આદિના પ્રકાશરૂપ પરિણામ પણ આત્માના વ્યાપારથીજ ઉત્પન્ન થાય છે

અથવા—અંગાર આદિની ગરમી આત્માના વ્યાપારથી ઉત્પન્ન થાય છે કારણકે તે શરીરમાં છે જેમકે જ્વર-તાવની ગરમી. જ્વર-તાવની ગરમી જીવથી યુક્ત શરીરમાંજ

अयं भावः–कृतकारितानुमोदितभेदेन, मनोवाक्कायभेदेन, तथाऽतीतानागतवर्तमानभेदेन च प्रत्येकक्रियायाः सप्तविंशतिभेदा भवन्ति; एवमस्या अपि तेजस्कायजीवाभ्याख्यानरूपक्रियाया एकस्या एव सप्तविंशतिभेदा भवितुमर्हन्ति। तत्र कस्याश्चिदपि क्रियाया स्वात्मानं न नियुञ्ज्यादिति। उपपद्यतेऽप्ययमर्थः, अन्यथा हि स्वयंकृतस्यैवाभ्याख्यानस्य प्रतिषेधे कारितानुमोदितरूपाणां तेजस्कायजीवाभ्याख्यानरूपक्रियाणां प्रतिषेधाभावः प्रसज्येत। ततश्च तादृशाभ्याख्यानं पापाय न स्यात्। तथाचोत्सूत्रप्ररूपणापत्तिः।

तात्पर्य यह है–प्रत्येक के कृत, कारित, अनुमोदना, मन, वचन काय, और अतीत, अनागत, वर्तमान के भेद से (इनका परस्पर गुणाकार करने से) सत्ताईस भेद होते हैं। इसीप्रकार इस तेजस्काय का अपलापरूप क्रिया के भी सत्ताईस भेद हो सकते हैं। इन भेदों से किसी भी भेद में आत्मा को जोडना न चाहिए। अगर ऐसा अर्थ न लगाया जाता तो यह भी समझ लिया जाता कि–अग्निकाय का स्वयं अपलाप न करे, मगर अपलाप कराने और अनुमोदन करने की क्रियाओं का निषेध नहीं है। ऐसा अर्थ संगत नहीं है, क्यों कि ऐसा अर्थ करने से केवल स्वयंकृत अपलापका ही प्रतिषेध होगा, किन्तु कारित और अनुमोदित अपलापका प्रतिषेध नहीं होगा और इस प्रकार का अपलाप पाप का कारण न होगा। फिर तो सूत्र के विरुद्ध प्ररूपणा का दोष आएगा।

તાત્પર્ય એ છે–પ્રત્યેક ક્રિયાના કરવું–કરાવવું અને અનુમોદના, મન, વચન, કાયા અને ભૂતકાલ, ભવિષ્યકાલ તથા વર્તમાન કાલના ભેદથી (એનો પરસ્પર ગુણાકાર કરવાથી) સત્યાવીસ ભેદ થાય છે. એ પ્રમાણે આ તેજસ્કાયના અપલાપરૂપ ક્રિયાના પણ સત્યાવીસ ભેદ થઈ શકે છે એ ભેદોમાંથી કોઈ પણ ભેદમાં આત્માને જોડવો જોઈએ નહિ, પરન્તુ એ પ્રમાણે અર્થ કરવામાં ન આવે તો એ પણ સમજી લેવામાં આવત કે, અગ્નિકાયનો સ્વયં અપલાપ કરે નહિ પરન્તુ અપલાપ કરાવવાની અને અનુમોદન કરવાની ક્રિયાઓનો નિષેધ નથી આ પ્રકારનો અર્થ સંગત નથી, કેમકે–આવો અર્થ કરવાથી કેવળ સ્વયંકૃત અપલાપનોજ નિષેધ થશે કિન્તુ કારિત અને અનુમોદિત અપલાપનો નિષેધ થશે નહિ, અને એ પ્રકારનો અપલાપ પાપનું કારણ ન થાય, પછી તો સૂત્રના વિરુદ્ધ પ્રરૂપણાનો દોષ આવશે.

"तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं" इत्यादि। (दशवै० अ० ४)

प्ररूपणाप्रारम्–

अग्निकायजीवा द्विविधाः, सूक्ष्मबादरभेदात्। तत्र सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्माः। बादरनामकर्मोदयात् बादराः। तत्र सूक्ष्माः द्विधा, पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च। सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनः। बादरास्तु लोकैकदेशे सन्ति।

बादरा अग्निकाया अनेकविधाः—अङ्गारार्चिरलातशुद्धाग्न्यादयः। सर्वे बादरा अग्निकाया अपि द्विविधाः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च। बादराणां यत्रैको जीवस्तत्रा-

---

'तेजस्काय सचित्त कहा गया है। उस में अनेक जीव हैं, उनका अस्तित्व अलग-अलग है, शस्त्रपरिणत अग्नि को छोड़ कर" इत्यादि। (दशवै० अध्य० ४)

प्ररूपणाप्रार—

अग्निकाय के जीव दो प्रकार के हैं—(१) सूक्ष्म और बादर, जिनके सूक्ष्म नामकर्म का उदय हो वे सूक्ष्म और जिनके बादर नामकर्म का उदय हो वे बादर जीव हैं। इनमें से सूक्ष्म के भी दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म जीव समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं और बादर लोक के एक देश में हैं।

बादर अग्निकाय अनेक प्रकार के हैं। जैसे—अंगार ज्वाला, अलात (जलता हुआ काठ), शुद्ध अग्नि आदि। सब बादर अग्निकाय भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्त

"તેજસ્કાય સચિત્ત કહેલું છે તેમાં અનેક જીવ છે તેનું અસ્તિત્વ અલગ-અલગ છે શસ્ત્રપરિણત અગ્નિને છોડીને. ઈત્યાદિ (દશવૈ. અ. ૪)

પ્રરૂપણાપ્રાર—

અગ્નિકાયના જીવ બે પ્રકારના છે—(૧) સૂક્ષ્મ અને (૨) બાદર. જેને સૂક્ષ્મ નામકર્મનો ઉદય હોય તે સૂક્ષ્મ અને જેને બાદર નામકર્મનો ઉદય હોય તે બાદર જીવ છે તેમાંથી સૂક્ષ્મના પણ બે ભેદ છે પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત. સૂક્ષ્મ જીવ સમસ્ત લોકાકાશમાં વ્યાપ્ત છે અને બાદર લોકના એક દેશમાં છે.

બાદર અગ્નિકાય અનેક પ્રકારના છે. જેમકે—અંગાર જ્વાલા, અલાત લાકડું શુદ્ધ અગ્નિ વગેરે. સર્વે બાદર અગ્નિકાય પણ બે પ્રકારના છે—પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત,

यथा-ज्वरोष्मा जीवाधिष्ठितशरीरमेवाश्रित्य भवति, जीवसंयोगं नातिक्रामति। न च मृता ज्वरिणः क्वचिदुपलभ्यन्ते। एवमन्वयव्यतिरेकाभ्यामग्नेः सचित्तता विज्ञेया। न च सूर्यादिभिरनेकान्तो वाच्यः, सर्वेषामात्मसंयोगपूर्वक एवोष्ण परिणामो भवति, तस्मादनेकान्तो न संभवति।

यद्वा--तेजः सचेतनम्, यथायोग्याहारग्रहणेन वृद्धिविशेषतद्विकारवत्त्वात्, पुरुषवत्। एवमुक्तलक्षणेन तेजस्कायजीवाः सन्तीति विज्ञायते।

यद्वा-अव्यक्तोपयोगादीनि कषायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिव्यप्कायवत् तेजस्कायेऽपि समुपलभ्यन्ते। एवं च जीवलक्षणसद्भावात् तेजस्कायजीवाः सन्तीति निश्चीयते। आगमोऽपि यथा—

जीव के सयोग विना उत्पन्न नहीं होती। मुर्देमें ज्वर कहीं नहीं देखा जाता। इस प्रकार अग्नि में अन्वय-व्यतिरेकद्वारा सचित्तता समझनी चाहिए। यहाँ सूर्य से हेतु में व्यभिचार नहीं है, क्यों कि सब मे आत्मप्रयोगपूर्वक ही गर्मी हो सकती है, अतः व्यभिचार नहीं है।

अथवा-तेज सचेतन है, क्यों कि यथायोग्य आहार ग्रहण करने से उस में वृद्धिरूप विकार देखा जाता है, जैसे पुरुष में। इस प्रकार इस लक्षण से तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व विदित होता है। अथवा अप्रकट उपयोग से लेकर कषायपर्यन्त जीव के लक्षण जैसे पृथ्वीकाय और अप्काय में पाये जाते है, उसी प्रकार तेजस्काय मे भी पाये जाते है। इस प्रकार जीव के लक्षण पाये जाने के कारण तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व निश्चित होता है। इसमें आगम प्रमाण भी है—

ઉત્પન્ન થાય છે જીવના સયોગ વિના ઉત્પન્ન થતી નથી મુડદામા જવર-તાવ કોઈ સ્થળે જોવામા આવતો નથી, આ પ્રમાણે અગ્નિમા અન્વય-વ્યતિરેકદ્વારા સચિત્તતા સમજવી જોઈએ. અહિં સૂર્યથી હેતુમા વ્યભિચાર નથી કેમકે સર્વમા આત્મપૂર્વકજ ગરમી હોઈ શકે છે, એટલા કારણથી વ્યભિચાર નથી

અથવા—તેજ સચેતન છે કેમકે યથાયોગ્ય આહાર ગ્રહણ કરવાથી તેનામા વૃદ્ધિરૂપ વિકાર જોવામા આવે છે જેવી રીતે પુરુષમા આ પ્રકારે જીવના લક્ષણ મળવાથી તેજસ્કાયના જીવોનું અસ્તિત્વ જાણવામા આવે છે

અથવા—અપ્રગટ ઉપયોગથી લઈને કષાયપર્યન્ત જીવના લક્ષણ જોવામા આવે છે. તે કારણે તેજસ્કાયના જીવોનુ અસ્તિત્વ નિશ્ચય હોય છે. આમા આગમ પ્રમાણ પણ છે—

त्पद्यन्ते, तस्मात् सूक्ष्मा बादराश्च प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्विविधा भवन्ति। सर्वे चैते वर्णगन्धरसस्पर्शभेदैः सहस्राग्रशो भिद्यमानाः संख्येययोनिप्रमुखशतसहस्रभेदपरिमाणा भवन्ति। तेषां संवृतोष्णा च योनिः सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रिधा। एषां सप्त लक्षाणि योनयो भवन्ति।

सूक्ष्मबादराणामुभयेषामग्निकायानां शरीरसंस्थानं सूचीकलापाकृतिकम्, अन्ये शरीरप्रमाणादिभेदाः पृथिवीकायवत्। उभयेऽग्निकायाः प्रत्येकमसंख्येयाश्च।

पर्याप्त के आश्रय ही उत्पन्न होते हैं। अतः सूक्ष्म और बादर, प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो भेद हैं और वर्ण, गंध रस और स्पर्श के भेद से हजारों भेदों को प्राप्त होते हुए इनकी संख्येय योनि वगैरह भेदों की संख्या लाखों की हो जाती है।

इनकी योनि संवृत और उष्ण है। वह भी सचित्त अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार की है। इनकी सात लाख योनियाँ हैं।

सूक्ष्म और बादर—दोनों प्रकार के अग्निकाय जीवों के शरीर का आकार सूइयों के समूह की तरह है। शरीरत्रय आदि अन्य भेद पृथ्वीकाय के समान हैं। दोनों प्रकार के अग्निकाय असंख्यात—असंख्यात हैं।

આશ્રયેજ ઉત્પન્ન થાય છે એ કારણથી સૂક્ષ્મ અને બાદર પ્રત્યેકના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી બે ભેદ છે અને વર્ણ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શના ભેદથી હજારો ભેદો પામતા થકા એની સંખ્યેય યોનિ વગેરે ભેદોની સંખ્યા લાખો થઈ જાય છે

તેની યોનિ સંવૃત અને ઉષ્ણ છે તે પણ સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્રના ભેદથી ત્રણ પ્રકારની છે એની સાત લાખ યોનિઓ છે

સૂક્ષ્મ અને બાદર બન્ને પ્રકારના અગ્નિકાય જીવોના શરીરનો આકાર સોયના સમૂહની સમાન છે. શરીરત્રય (ત્રણ શરીર) આદિ અન્ય ભેદ પૃથ્વીકાયની સમાન છે બન્ને પ્રકારના અગ્નિકાય અસંખ્યાત—અસંખ્યાત છે

संख्येयैर्नियमतो भाव्यम् । वादराणां स्वस्थानं मनुष्यक्षेत्रमेव, न ततः परमस्ति ।

वादरास्तेजस्कायाः व्याघाताभावे सति मनुष्यक्षेत्रेऽर्धतृतीयद्वीपसमुद्रेषु पञ्चदशक्षेत्रेषु विद्यन्ते । युगलसमयरूपे व्याघाते सति तु पञ्चमहाविदेहेषु वर्तन्ते, नान्यत्र । उपपाताङ्गीकरणेन लोकसंख्येयभागवर्तिनः सन्ति ।

समुद्घातेन सर्वलोकवर्तिनः पृथिवीकायादयश्च मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहता वादराग्निषु समुत्पद्यमानास्तत्तद्व्यपदेशभाजः सर्वलोकव्यापिनः सन्ति ।

यत्र च वादराः पर्याप्तास्त व वादरा अपर्याप्ताः, यतस्ते तन्निश्रयो

और अपर्याप्त । जहाँ एक वादर जीव होता है वहाँ नियम से असख्यात जीव होते हैं । वादर जीवों का क्षेत्र मनुष्यलोक ही है, उससे आगे नहीं ।

वादर तेजस्काय व्याघात (अन्तर) न हो तो मनुष्य क्षेत्र में अढाई द्वीप समुद्रों में पन्द्रह क्षेत्रों में रहते हैं । युगलियों के समयरूप व्याघात (अन्तर) के होने पर पाँच महाविदेहों में रहते हैं, अन्यत्र नहीं । उपघात की अपेक्षा लोक के सख्यात भाग में रहते है ।

समुद्घात की अपेक्षा—समस्तलोकव्यापी पृथ्वीकाय आदि, मारणान्तिक समुद्घात करके वादर अग्नि में उत्पन्न होते हुए उस—उस व्यपदेश (नाम) के पात्र हो कर सर्वलोकव्यापी हैं ।

जहाँ बादर पर्याप्त हैं वहीं वादर अपर्याप्त हैं, क्यों कि—अपर्याप्त जीव

જ્યા એક બાદર જીવ હોય છે ત્યા નિયમથી અસખ્યાત જીવ હોય છે બાદર જીવોનુ ક્ષેત્ર મનુષ્ય લોકજ છે. તેનાથી આગળ નથી

બાદર તેજસ્કાય, અન્તર ન હોય તો મનુષ્ય ક્ષેત્રમા અઢી દ્વીપ-સમુદ્રોમા, ૫દર ક્ષેત્રોમા રહે છે યુગલિઆઓના સમયરૂપ અતર હોવા પર પાચ મહાવિદેહોમાં રહે છે, અન્યત્ર નહિ ઉપપાતની અપેક્ષા લોકના સખ્યાત ભાગમા રહે છે

સમુદ્ઘાતની અપેક્ષા સમસ્તલોકવ્યાપી પૃથ્વીકાય આદિ મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત કરીને બાદર અગ્નિમા ઉત્પન્ન થઈને તે-તે વ્યપદેશ-(નામ)ને પાત્ર થઈને સર્વ લોકવ્યાપી છે

જ્યા બાદર પર્યાપ્ત છે ત્યાજ બાદર અપર્યાપ્ત છે, કેમકે—અપર્યાપ્ત જીવ પર્યાપ્તના

बादरापर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो बादरा अपर्याप्तास्तेजस्काया असंख्यातगुणहीनाः, सूक्ष्मापर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्तास्तेजस्काया विशेषहीनाः। सूक्ष्मपर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्माः पर्याप्तास्तेजस्काया विशेषहीना इति।

एवं युक्त्यागमप्रमाणाभ्यामग्नेर्जीवत्वे सिद्धे यदि कश्चिदग्निकायजीवस्याभ्याख्यानं कुर्यात्, तर्हि उपयोगादिलक्षणैरनुमितस्य शरीराधिष्ठातुरात्मनोऽभ्याख्यानं तेन कर्तव्यं स्यात्, परन्तु तन्न उचितं भवतीत्यत आह—"नैवाऽऽत्मानमभ्याख्याया"—दिति। केनचिदात्मना शरीरमिदं परिगृहीतं, केनचिच्च शरीरमिदं परित्यक्तमिति प्रत्यक्षदर्शनादात्मनः शरीराधिष्ठातृत्वं सिध्यति।

बादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से बादर अपर्याप्त तेजस्काय के जीव असंख्यातगुणा कम हैं। सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्काय के जीव विशेष हीन हैं। सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म पर्याप्त तेजस्काय के जीव विशेष हीन हैं।

इस प्रकार युक्ति और आगमप्रमाण से अग्नि की सजीवता सिद्ध हो जाने पर भी यदि कोई अग्निकाय के जीवों का अपलाप करता है तो वह उपयोग आदि लक्षणों से अनुमान किये जाने वाले और शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का अपलाप करता है, मगर ऐसा करना उचित नहीं है, अत सूत्रकार कहते हैं—' आत्मा का अपलाप न करे '। किसी आत्माने यह शरीर ग्रहण किया है और किसी ने शरीर का त्याग किया है यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है। इस से यह सिद्ध हो जाता है कि शरीर, आत्मद्वारा अधिष्ठित है।

બાદર અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી બાદર અપર્યાપ્ત તેજસ્કાયના જીવ અસંખ્યાત ગુણા ઓછા છે. સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત તેજસ્કાયના જીવ વિશેષહીન છે સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત તેજસ્કાયના જીવ વિશેષહીન છે—વિશેષ ઓછા છે

આ પ્રમાણે યુક્તિ અને આગમપ્રમાણથી અગ્નિની સજીવતા સિદ્ધ થઈ જવા છતાંય પણ જો કોઈ અગ્નિકાયના જીવોનો અપલાપ કરે છે તો તે ઉપયોગ લક્ષણોથી અનુમાન કરવામાં આવેલા અને શરીરના અધિષ્ઠાતા આત્માનો અપલાપ કરે છે પરન્તુ એ પ્રમાણે કરવું તે ઉચિત નથી. તેથી સૂત્રકાર કહે છે— આત્માનો અપલાપ ન કરે.' કોઈ આત્માએ આ શરીર ગ્રહણ કર્યું છે, અને કોઈએ શરીરનો ત્યાગ કર્યો છે એ વાત પ્રત્યક્ષ જોવામાં આવે છે તેથી એ સિદ્ધ થાય છે કે શરીર આત્માદ્વારા અધિષ્ઠિત છે

परिमाणद्वारम्—

बादरपर्याप्तास्तेजस्कायजीवाः क्षेत्रपल्योपमस्याऽसंख्येयभागमात्रवर्तिप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति। तदपेक्षया बादरा अपर्याप्तास्तेजस्कायजीवा असंख्यातगुणाः तदपेक्षया सूक्ष्मा अपर्याप्तास्तेजस्काया असंख्यातगुणाः, तदपेक्षया सूक्ष्माः पर्याप्तास्तेजस्काया असंख्यातगुणाः सन्ति। पृथिवीकायेन सहाग्निकायस्य परिमाणसमालोचनायां त्वेवमवधेयम्—

ये तेजस्काया बादरपर्याप्ताः क्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागमात्रवर्तिप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति, ते बादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्योऽसंख्यातगुणहीनाः। शेषास्त्रयोऽपि राशयः पृथिवीकायवद् विज्ञेयाः। तत्राय विशेषः—

परिमाणद्वार—

बादर पर्याप्त तेजस्काय के जीव क्षेत्रपल्योपम के असख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों की राशि के बराबर हैं। बादर अपर्याप्त तेजस्काय जीव उनसे असख्यात गुणा हैं, सूक्ष्म अपर्याप्त इनसे भी असख्यात गुणा हैं, और सूक्ष्म पर्याप्त इन से भी असंख्यात गुणा हैं। पृथ्वीकाय के साथ अग्निकाय के परिमाण का विचार किया जाय तो इस प्रकार है—

तेजस्काय के जो बादर पर्याप्त जीव क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर हैं, वे बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से असख्यातगुणा हीन हैं। शेष तीनों राशियाँ पृथ्वीकाय से समान ही समझ लेनी चाहिए। विशेषता सिर्फ इतनी है—

પરિમાણુ દ્વાર—

બાદર પર્યાપ્ત તેજસ્કાયના જીવ ક્ષેત્ર–પલ્યોપમના અસખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની રાશિના બરાબર છે બાદર અપર્યાપ્ત–તેજસ્કાય જીવ તેનાથી અસંખ્યાત ગુણા છે સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત તેનાથી પણ અસખ્યાત ગુણા છે અને સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત તેનાથી પણ અસખ્યાત ગુણા છે પૃથ્વીકાયની સાથે અગ્નિકાયના પરિમાણુનો વિચાર કરવામાં આવે તો આ પ્રકારે છે—

તેજસ્કાયના જે બાદર પર્યાપ્ત જીવ ક્ષેત્રપલ્યોપમના અસખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની બરાબર છે, તે બાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી અસખ્યાત ગુણા હીન છે બાકીની ત્રણેય રાશિઓ પૃથ્વીકાયની સમાનજ સમજી લેવી જોઇએ, વિશેષતા માત્ર એટલી છે કે—

स्वपलपने प्रवर्तते, स मूढः लोकम्=अग्निकायलोकम् अभ्याख्याति= 'अग्निकायजीवो नास्ती'-त्यपलपति। अयं भावः-सामान्यरूपेणात्मनः सिद्धौ सत्यामेव हि तस्यात्मनो भेदाः पृथिवीकायादयः सिध्यन्ति, नान्यथा। सामान्यात्मनोऽभ्याख्याने प्रवृत्तः साहसिकः पृथिवीकायादिविशेषात्मनोऽभ्याख्यानं कर्तुं प्रवर्तेतेति।

अपि चायं भावः-करचरणाद्यवयवयुक्तशरीराधिष्ठाता सुव्यक्तोपयोगादि-लक्षणः स्वात्माऽपि येनाभ्याख्यातः, तस्याव्यक्तोपयोगादिलक्षणाग्निकायाभ्याख्यानं किं नु दुष्करं?-मिति॥ सू० १॥

'अग्निकाय नहीं है' इस प्रकार अग्निकाय का निषेध करता है।

तात्पर्य यह है कि-सामान्यरूप से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होने पर ही उसके पृथ्वीकाय आदि भेद सिद्ध हो सकते हैं अन्यथा नहीं। जो साहसी पुरुष सामान्य आत्मा का ही निषेध करने को तैयार हो गया वह पृथ्वीकाय आदि विशेष आत्माओं का निषेध करे यह तो स्वाभाविक ही है।

इससे यह भी आशय निकलता है-हाथ-पैर आदि अवयवों से युक्त शरीर के अधिष्ठाता और भलीभाँति प्रकट उपयोग आदि लक्षणों वाले अपने आत्मा का भी जिसने निषेध कर दिया उसके लिए अप्रकट उपयोग आदि लक्षणों वाले अग्निकाय का निषेध करना कौन बड़ी बात है?॥ सू० १॥

नथी' આ પ્રમાણે અગ્નિકાયનો નિષેધ કરે છે.

તાત્પર્ય એ છે કે-સામાન્યરૂપથી આત્માનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થવાથી જ તેના પૃથ્વીકાય આદિ ભેદ સિદ્ધ થઈ શકે છે અન્યથા-બીજી રીતે નહિ. જે સાહસી પુરુષ સામાન્ય આત્માનોજ નિષેધ કરવા માટે તૈયાર થઈ ગયા તે પૃથ્વીકાય આદિ વિશેષ આત્માઓનો નિષેધ કરે એ તો સ્વાભાવિક જ છે.

એમાંથી એ પણ આશય નિકળે છે કે-હાથ-પગ આદિ અવયવોથી યુક્ત શરીરના અધિષ્ઠાતા ને સારી રીતે પ્રગટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોવાળા પોતાના આત્માનો પણ જેણે નિષેધ કરી દીધો તેને અપ્રગટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોવાળા અગ્નિકાયનો નિષેધ કરવો તે શું મોટી વાત છે? (સૂ. ૧)

एवं च युक्त्यागमसंसिद्धः शरीराधिष्ठाता ज्ञानादिगुणवानयमात्मा कथमपि नापलपितुं शक्यः। तस्मादात्मा नास्तीत्येवमभ्याख्यानमात्मनो न कुर्यादित्यर्थः।

यः खलु मन्दधीः, लोकम्=अग्निकायलोकम्, अभ्याख्याति, आत्मवत्सर्वप्रमाणसंसिद्धमप्यग्निकायलोकं प्रत्याचष्टे—'अग्निकायजीवो नास्ती'ति, स आत्मानमभ्याख्याति=स मूढः खलु युक्त्यागमप्रमाणसंसिद्धमात्मानमपलपति 'आत्मा नास्ती'ति। सर्वप्रमाणसंसिद्धाग्निकायलोकाभ्याख्याने प्रवृत्तस्य सुकरमेवात्मनोऽभ्याख्यानम्, अग्निकायवदेवात्मन्यपि प्रमाणसत्तायास्तुल्यत्वादिति भावः।

य आत्मानमभ्याख्याति=यश्चात्मनोऽभ्याख्याने 'आत्मा नास्ती'

इस प्रकार युक्ति और आगम से सिद्ध शरीर के अधिष्ठाता तथा ज्ञान आदि गुणों वाले आत्मा का निषेध नहीं किया जा सकता। अत एव 'अत्मा नहीं है' इस प्रकार आत्मा का निषेध नहीं करना चाहिए।

जो मन्दबुद्धि पुरुष अग्निकायरूप लोक का जो आत्मा की भाँति समस्त प्रमाणों से सिद्ध है–निषेध करता है अर्थात् अग्निकाय के जीवों का निषेध करता है वह युक्ति और आगम से सिद्ध आत्मा का निषेध करता है। सब प्रमाणों से सिद्ध अग्निकाय लोक का अपलाप करने पर आत्मा का अपलाप करना सरल ही है, क्यों कि अग्निकाय और आत्मा के अस्तित्व में प्रमाणों का सद्भाव समान है।

जो मूर्ख 'आत्मा नहीं है' इस प्रकार आत्मा का निषेध करता है वह

આ પ્રમાણે યુક્તિ અને આગમથી સિદ્ધ, શરીરના અધિષ્ઠાતા તથા જ્ઞાન આદિ ગુણોવાળા આત્માનો નિષેધ કરી શકાતો નથી એટલા માટે 'આત્મા નથી' આ પ્રમાણે આત્માનો નિષેધ કરી શકાતો નથી એટલા માટે 'આત્મા નથી' આ પ્રમાણે આત્માનો નિષેધ કરવો જોઈએ નહિ

જે મન્દબુદ્ધિ પુરુષ અગ્નિકાયરૂપ લોકનો કે જે આત્મા પ્રમાણે સમસ્ત પ્રમાણોથી સિદ્ધ છે તેનો, નિષેધ કરે છે, અર્થાત્ અગ્નિકાયના જીવોનો નિષેધ કરે છે, તે યુક્તિ અને આગમથી સિદ્ધ આત્માનો નિષેધ કરે છે સર્વ પ્રમાણોથી સિદ્ધ અગ્નિકાયલોકના અપલાપ કરવાથી આત્માનો અપલાપ કરવો તે સરલજ છે કેમકે અગ્નિકાય અને આત્માના અસ્તિત્વમા પ્રમાણોનો સદ્ભાવ સમાન છે

જે મૂર્ખ 'આત્મા નથી' આ પ્રમાણે આત્માનો નિષેધ કરે છે, તે 'અગ્નિકાય

न्निरवेषां स्य भवति । तस्य खेदज्ञः=खेदम्=उपमर्दनजन्यदुःखं जानातीति खेदज्ञः, स एव अशस्त्रस्य-अशस्त्रं=संयमः, संयमो हि न व्यापादको भयदो वा कस्यापीत्यशस्त्रमुच्यते । तस्य खेदज्ञः=संयमभङ्गभयजनितदुःखानुभवकुशलः । एवं संयमानुष्ठानादेव मुनित्वं लभ्यमिति भावः ।

ननु-कथमिदं ज्ञायते दीर्घलोकशब्दार्थो वनस्पतिरिति ? उच्यते-कायस्थितिकालेन, परिमाणेन, शरीरावगाहनया च वनस्पतिकायस्य अन्यैकेन्द्रियापेक्षया महत्त्वमस्ति । तथाहि-वनस्पतिकायस्य कायस्थितिकालोऽनन्तः, स चानन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिणीरूपः, तस्मिन्नसंख्येयाः पुद्गलपरावर्ता भवन्ति, ते पुद्गलपरावर्ता आवलिकाया असंख्येये भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणाः

करने के कारण अग्नि, वनस्पतिकाय का शस्त्र है । संयम से किसी की विराधना नहीं होती, न वह किसी को भयकारी है, अत एव संयम को अशस्त्र कहते हैं । संयम के भंग होने के भय से उत्पन्न होने वाला दुःख संयम का खेद कहलाता है । इस प्रकार संयम के पालन करने से ही मुनित्व होता है ।

शंका—दीर्घलोक शब्द का अर्थ वनस्पति कैसे समझा जाय ?

समाधान—कायस्थिति के समय परिमाण और शरीर की अवगाहना से वनस्पतिकाय अन्य एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा महान् है । वनस्पतिकाय की कायस्थिति का काल अनन्त है, और वह अनन्त भी अनन्त उत्सर्पिणीरूप-अवसर्पिणीरूप है । उसमें असंख्यात पुद्गलपरावर्तन होते हैं । वे पुद्गलपरावर्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग में

કારણથી અગ્નિ વનસ્પતિકાયનું શસ્ત્ર છે. સંયમથી કોઈની પણ વિરાધના થતી નથી. તે કોઈને ભયકારી નથી. એ માટે સંયમને અશસ્ત્ર કહે છે. સંયમનો ભંગ થવાના ભયથી ઉત્પન્ન થવાવાળું દુઃખ તે સંયમનો ખેદ કહેવાય છે. આ પ્રમાણે સંયમનું પાલન કરવાથીજ મુનિપણું હોય છે.

શંકા—દીર્ઘલોક શબ્દનો અર્થ વનસ્પતિ કેવી રીતે સમજી શકાય ?

સમાધાન—કાયસ્થિતિના સમય, પરિમાણ અને શરીરની અવગાહનાથી વનસ્પતિકાય, અન્ય એકેન્દ્રિય જીવોની અપેક્ષાએ મહાન્ છે. વનસ્પતિકાયની કાયસ્થિતિનો કાલ અનન્ત છે અને તે અનન્ત પણ અનન્ત ઉત્સર્પિણી-અવસર્પિણીરૂપ છે. તેમાં અસંખ્યાત પુદ્ગલપરાવર્તન થાય છે. તે પુદ્ગલપરાવર્તન આવલિકાના અસંખ્યાતમા

अयमग्निकायलोकः स्वात्मवन्नैव अभ्याख्येय इति प्रतिबोधितम्, इदानीमग्निकायजीवोपमर्दनाद् विनिवृत्त एव मुनिर्भवितुमर्हतीत्याह–'जे दीह०' इत्यादि ।

मूलम्—

जे दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने, से असत्थस्स खेयन्ने, जे असत्थस्स खेयन्ने से दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः, सोऽशस्त्रस्य खेदज्ञः । योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः, स दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः ॥ सू. २ ॥

टीका—

यो भव्यः, दीर्घलोकशस्त्रस्य=दीर्घश्चासौ लोकश्च दीर्घलोकः=वनस्पतिः, तस्य शस्त्र दीर्घलोकशस्त्रम्=अग्निः । वनस्पतिकायस्य दाहकरणेन विनाशकतयाऽ-

---

अग्निकायलोक, आत्मा की तरह निषेध करने योग्य नहीं है, यह बतला दिया । अब बतलाते हैं कि–अग्निकाय के जीवों की हिंसा से निवृत्त होने वाला पुरुष ही मुनि होता है –'जे दीह०' इत्यादि ।

मूलार्थ—जो दीर्घलोक (वनस्पतिकाय) के शस्त्र (अग्निकाय) के दुःख को जानता है वही सयम के खेद को जानता है और जो सयम के खेद को जानता है वह दीर्घलोक के शस्त्र के खेद को जानता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—जो भव्य पुरुष दीर्घलोक अर्थात् वनस्पति के शस्त्र–अग्नि के दुःख को जानता है, वही अशस्त्र अर्थात् संयम के खेद को जानता है । वनस्पतिकाय की विराधना

અગ્નિકાયલોક, આત્માની પ્રમાણે નિષેધ કરવા યોગ્ય નથી, તે બતાવી આપ્યું છે હવે બતાવે છે કે–અગ્નિકાયના જીવોની હિંસાથી નિવૃત્ત થવાવાળા પુરુષજ મુનિ હોય છે –'जे दीह०' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—જે દીર્ઘલોક (વનસ્પતિકાય)ના શસ્ત્ર (અગ્નિકાય)ના દુઃખને જાણે છે, તેજ સંયમના ખેદને જાણે છે, અને જે સંયમના ખેદને જાણે છે. તેજ દીર્ઘ લોકના શસ્ત્રના ખેદને જાણે છે (સૂ. ૨)

ટીકાર્થ—જે ભવ્ય પુરુષ દીર્ઘલોક અર્થાત્ વનસ્પતિનું શસ્ત્ર અગ્નિના દુઃખને જાણે છે, તેજ અશસ્ત્ર અર્થાત્ સંયમના ખેદને જાણે છે વનસ્પતિકાયની વિરાધના કરવાના

पत्रवातानुसारी वायुरपि तत्र संभाव्यते, तदेवं वनस्पतिवशीभूय दहनो बहुतर जीवाबाधपदवीति सूचनाय भगवता दीर्घलोकशस्त्रशब्दः परिगृहीत इति ।

यद्वा—दीर्घलोकः=पृथिवीकायादिः, पृथिव्यब्वायुवनस्पतिकायानां भवस्थितिर्यथाक्रमं द्वाविंशति,-सप्त-त्रि-दश-वर्षसहस्रपरिमाणा, अग्निकायस्य तु त्रीण्येवाहोरात्राणि । यथा बादराग्निकायाः पर्याप्तकाः स्वल्पाः सन्ति, अन्ये पृथिव्यादयः पर्याप्तकाः बहवः सन्ति, अतो दीर्घलोकः पृथिव्यादिस्तस्य शस्त्रम्-अग्निकाय । अग्निरुत्पाद्यमानः प्रज्वाल्यमानो वा पृथिव्यादिजीवसमूहं मभिहन्तीति तस्य शस्त्रत्वम् । उक्तञ्च—

पत्तों (कोंपलों) का अनुसारी वायु भी वहाँ संभव है । इस प्रकार अग्नि वनस्पति का वश हो कर बहुतेरे जीवों का विनाश करता है । यह सूचित करने के लिए भगवान् ने 'दीर्घलोकशस्त्र' शब्द का अग्नि के लिए प्रयोग किया है ।

अथवा—'दीर्घलोकका' अर्थ पृथ्वीकाय आदि है । पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय की भवस्थिति क्रम से बाईस, सात तीन और दस हजार वर्ष की है, मगर अग्निकाय की तीन रात्रि-दिन ही है । बादर अग्निकाय के पर्याप्त जीव स्वल्प हैं मगर पृथ्वी आदि के पर्याप्त जीव बहुत हैं । अतः 'दीर्घलोक' शब्द से पृथ्वीकाय आदि का ग्रहण करना चाहिए और उनका शस्त्र अग्निकाय समझना चाहिए । अग्नि उत्पन्न होते ही और जलते ही पृथ्वी आदि के जीवों के समूह का घात करता है, अतः वह पृथ्वी आदि का शस्त्र है । कहा भी है—

અને અહીં તેમજ પત્તા (કુંપળો)ના અનુસારી વાયુનો પણ ત્યાં સંભવ છે આ પ્રમાણે અગ્નિ, વનસ્પતિનું શસ્ત્ર બની ઘણાંજ જીવોનો વિનાશ કરે છે આ હકીકત સૂચના માટે ભગવાને દીર્ઘલોકશસ્ત્ર શબ્દનો અગ્નિ માટે પ્રયોગ કર્યો છે.

અથવા—દીર્ઘલોકનો અર્થ પૃથ્વીકાય આદિ છે, પૃથ્વીકાય, અપ્કાય વાયુકાય, અને વનસ્પતિકાયની ભવસ્થિતિ ક્રમથી બાવીસ સાત, ત્રણ અને દસ હજાર વર્ષની છે પરન્તુ અગ્નિકાયની ત્રણ રાત્રિ-દિવસજ છે જેમકે-બાદર અગ્નિકાયના પર્યાપ્ત જીવ સ્વલ્પ છે પરન્તુ પૃથ્વી આદિના પર્યાપ્ત જીવ ઘણાજ છે એ માટે 'દીર્ઘલોક' શબ્દથી પૃથ્વીકાય આદિનું ગ્રહણ કરવું જોઈએ, અને તેનું શસ્ત્ર અગ્નિકાય સમજવું જોઈએ. અગ્નિ ઉત્પન્ન થતાંજ અને બળવાની ક્રિયા થતાંજ પૃથ્વીઆદિના જીવોના સમૂહનો ઘાત કરે છે તેથી તે પૃથ્વી આદિનું શસ્ત્ર છે કહ્યું પણ છે કે—

सन्ति। एतावान् कालो वनस्पतिकाल इत्युच्यते। परिमाणतस्तु प्रत्युत्पन्नवनस्पति-कायिकानां निर्लेपना नास्ति।

शरीरावगाहनया च सातिरेकं योजनसहस्रम्। अतो वनस्पतिकायस्य दीर्घलोक इति व्यपदेशः। (प्रज्ञापना १८ पदे)

ननु प्रसिद्धमग्निशब्दं विहाय किमर्थमिह दीर्घलोकशस्त्रशब्दोपादानम्? उच्यते—वनस्पतिकायदहनप्रवृत्तोऽग्निकायो बहुतरप्राणिनां विनाशको भवति, वनस्पतिकाये बहुविधाः प्राणिनः कीट पिपीलिका भ्रमरमधुमक्षिकाकपोतादयो निवसन्ति, तरुकोटरेषु पृथिवीकायाश्च, अवश्यायरूपा अप्काया अपि, मृदुतर-

---

जितने समय होते हैं उतने हैं, इतना काल वनस्पतिकाल कहलाता है। परिमाण से प्रत्युत्पन्न वनस्पतिकायिक जीवों की निर्लेपना नहीं है। इनके शरीर की अवगाहना कुछ अधिक एक हजार योजन है। इसी कारण वनस्पतिकाय को दीर्घलोक कहते हैं।

अब प्रश्न हो सकता है कि–प्रसिद्ध 'अग्नि' शब्द को छोड कर 'दीर्घलोकशस्त्र' शब्द का प्रयोग करने की क्या आवश्यकता थी?

इसका उत्तर यह है कि—वनस्पतिकाय को जलाने में प्रवृत्त अग्निकाय और भी बहुत से प्राणियों का विनाश करता है। वनस्पतिकाय के सहारे कीडे, चिउटी, भौंरे, मधुमक्खी और कबूतर आदि बहुत से प्राणी निवास करते हैं। वृक्षों की खोंतरों में पृथ्वीकाय के जीव भी होते हैं। ओसरूप अप्काय भी होता है, और अत्यन्त कोमल

ભાગમા જેટલા સમય થાય છે તેટલા છે એટલો કાળ તે વનસ્પતિકાળ કહેવાય છે. પરિમાણથી પ્રત્યુત્પન્ન વનસ્પતિકાયિક જીવોની નિર્લેપના નથી તેના શરીરની અવગાહના કંઈક અધિક એક હજાર યોજન છે આ કારણથી વનસ્પતિ કાયને 'दीर्घलोक' કહે છે

હવે પ્રશ્ન થઈ શકે છે કે–પ્રસિદ્ધ અગ્નિ શબ્દને છોડીને 'दीर्घलोकशस्त्र' શબ્દનો પ્રયોગ કરવાની શુ આવશ્યકતા હતી? તેનો ઉત્તર એ છે કે–વનસ્પતિકાયને બાળવામા પ્રવૃત્ત (ચાલુ) અગ્નિકાય બીજા પણ પ્રાણીઓનો વિનાશ કરે છે વનસ્પતિના આશ્રયે કીડા, મકોડા, ભમરા, મધમાખી અને કબૂતર આદિ ઘણાજ પ્રાણીઓ નિવાસ કરે છે. વૃક્ષોના અખોલમાં પૃથ્વીકાયના જીવ પણ હોય છે ઝાકળરૂપ અપ્કાય પણ હોય છે.

उक्तमर्थं दृढीकर्तुं विपर्ययेण पुनः कथयति-'योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः स दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः' इति, व्याख्या पूर्ववत्। ॥ सू० २ ॥

॥ अवतरणम् ॥

ननु येन शस्त्रेण वह्निः खिद्यते, तत् केन दृष्टम्? अपि चाशस्त्रं संयम लक्षणमिति केन दृष्टम्?, इति जिज्ञासायामाह—'वीरेहिं' इत्यादि।

मूलम्—

वीरेहिं एयं अभिभूय दिट्ठं, संजएहिं सया जएहिं सया अप्पमत्तेहिं ॥सू०३॥

छाया—

वीरैः एतद् अभिभूय दृष्टम्, संयतैः सदा यतैः सदा अप्रमत्तैः ॥सू०३॥

इसी बात को दृढ करने के उद्देश्य से पुनः अन्यरूप से कहते हैं कि—जो अशस्त्र (संयम) के खेद को जानता है वह दीर्घलोकशस्त्र के खेद को जानता है। इस की व्याख्या पहले के समान ही समझनी चाहिए ॥ सू० २ ॥

अवतार—

शंका होती है कि—जिस शस्त्र से अग्नि को खेद होता है वह किस ने देखा है और संयमरूप अशस्त्र किस ने देखा है? इसके उत्तर में कहते हैं— 'वीरेहिं' इत्यादि।

मूलार्थ—परिषह उपसर्ग आदि को जीतनेवाले संयत सदा यतनावान् और सदा अप्रमत्त रहने वाले वीर पुरुषों ने यह देखा है ॥ सू० ३ ॥

આ વાતને દઢ કરવાના ઉદ્દેશથી ફરી બીજા રૂપથી કહે છે કે—જે અશસ્ત્ર (સંયમ)ના ખેદને જાણે છે તે દીર્ઘલોકશસ્ત્રના ખેદને જાણે છે તેની વ્યાખ્યા પ્રથમ કહેલી છે તે પ્રમાણે સમજવી જોઈએ (સૂ. ૨)

અવતાર—

શંકા થાય છે કે જે શસ્ત્રથી અગ્નિને ખેદ થાય છે તે કોણે જોયું છે? અને સંયમરૂપ અશસ્ત્ર કોણે જોયું છે? તેના ઉત્તરમાં કહે છે -'વીરેહિં' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—પરીષહ-ઉપસર્ગ આદિને જીતવાવાળા સંયત-સંયમી સદા યતનાવાન્ અને સદા અપ્રમત્ત રહેવાવાળા વીરપુરુષોએ તે જોયું છે (સૂ. ૩)

"भूयाणमेसमाघाओ हव्ववाहो न संसओ"। (दशवै० ३ अ०गा०३५) तस्य खेदज्ञः=खेदयतीति खेदः=अग्नेर्व्यापारः, अग्निव्यापारो हि पृथिव्यादिजीवानां दहनात्मकतया दुःखमुत्पादयतीत्यतः खेद-शब्देन व्यपदिश्यते, तं जानातीति खेदज्ञः। अग्निकायस्य व्यापारः सर्वप्राणिपीडाकर इति विज्ञाता यः खलु भवति, स एव अशस्त्रस्य=सप्तदशविधसंयमस्य खेदज्ञः=संयमक्षरणजन्यदुःखानुभावकः, अस्तीति शेषः। अग्निकायव्यापारेण पृथिव्यादिजीवानां विनाशस्तेन संयमक्षरणं, ततश्च मुनित्वविभ्रंश इति सर्वस्वनाशकतयाऽग्निव्यापारः साधूनां ज्ञपरिज्ञया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरणीय इति भावः।

"यह अग्नि भूतों का घातक है, इसमें संदेह नहीं"। (दशवै ३ अ गा ३५)

उस अग्नि के व्यापार को पृथ्वीकाय आदि का खेद कहते हैं, क्यों कि दाहक होने के कारण वह पृथ्वी आदि को दु ख उत्पन्न करता है। उसे जानने वाला 'खेदज्ञ' कहलाता है। 'अग्निकाय का व्यापार सब प्राणियों को पीडा पहुँचाता है'—जो ऐसा जानता वही पुरुष अशस्त्र का अर्थात् सत्तरह प्रकार के सयम के खेद का—सयम के भग से होने वाले खेद का ज्ञाता होता है। तात्पर्य यह है कि—अग्निकाय के व्यापार से पृथ्वीकाय आदि के जीवों का विनाश होता है, और उससे सयमभग होता है, और सयम के भग से मुनिपन का भग होता है। इस प्रकार अग्निव्यापार सर्वस्व का नाशक होने से वह साधुओं के लिए ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्यागने योग्य है।

"આ અગ્નિ ભૂતોના ઘાતક છે, એમાં સંદેહ નથી" (દશ વૈ. અ. ૩. ગા ૩૫)

આ અગ્નિના વ્યાપારને પૃથ્વીકાયનો ખેદ કહે છે કારણ કે દાહક હોવાના કારણે તે પૃથ્વીઆદિને દુઃખ ઉત્પન્ન કરે છે તેને જાણવાવાળા 'ખેદજ્ઞ' કહેવાય છે. 'અગ્નિકાયનો વ્યાપાર સર્વ પ્રાણીઓને પીડા પહોચાડે છે' જે આ પ્રકારે જાણે છે તેજ પુરુષ અશસ્ત્રનો અર્થાત્ સત્તર પ્રકારના સંયમના ખેદનો—સંયમના ભંગથી થવાવાળા ખેદનો જ્ઞાતા—જાણનાર હોય છે તાત્પર્ય એ છે કે—અગ્નિકાયના વ્યાપારથી પૃથ્વીકાય આદિના જીવોનો નાશ થાય છે અને તેથી સંયમ ભંગ થાય છે, અને સંયમના ભંગથી, મુનિપણું ભંગ થાય છે આ પ્રમાણે અગ્નિવ્યાપાર સર્વસ્વનો નાશક હોવાથી સાધુઓ માટે જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી ત્યાગવા યોગ્ય છે.

किं कृत्वा तैरेतद् दृष्ट ?-मित्याकाङ्क्षायामाह-'अभिभूय' इति। परिषहोपसर्गान्, ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय-ऽन्तरायाख्यघातिकर्म-चतुष्टय च विजित्य केवलं समाप्येत्यर्थः। कथम्भूतैस्तै ?-रित्याह-संयतैः=सम्=सम्यक्प्रकारेण यताः=परमकरुणया ईर्यासमित्यादियतनावन्तस्तैः, सकलषड्जीवनिकायपरित्राणपरायणैरित्यर्थः। यतना द्विविधा-प्रमत्तयतना, अप्रमत्तयतना च। अथ प्रमत्तस्य कीदृशी यतना ? उच्यते-कषायादिनिग्रहेण ईर्याद्युपयोगवत्त्व प्रमत्तयतना कथ्यते।

अप्रमत्तयतना कषायरहितवचनसाध्या भवति। अत्र अप्रमत्तग्रहणादि न्द्रियादिप्रमादवर्जन गृह्यते। यतनाग्रहणात् यावज्जीवयतना गृह्यते। अत एव

उन्हों ने क्या कर के यह देखा है ? इस शंका का उत्तर है-परीषह और उपसर्गों को तथा ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय नामक चार घातिया कर्मों को जीतकर केवल ज्ञान प्राप्त कर के उन्हों ने देखा है।

वे देखने वाले किस प्रकार के थे ? इसका उत्तर यह है-सम्यक् प्रकार से, अत्यन्त करुणापूर्वक ईर्यासमिति आदि का पालन करनेवाले अर्थात् समस्त षट्काय की रक्षा में तत्पर थ। यतना दो प्रकार की है-प्रमत्त की यतना और अप्रमत्त की यतना। प्रमत्त की यतना कैसी होती है ? इसका उत्तर यह है कि-कषाय आदि का निग्रह करने वाला पुरुष ईर्या आदि में जो उपयोग रखता है, वह प्रमत्तयतना है। अप्रमत्त की यतना कषायरहित वचनों से होती है। यहाँ अप्रमत्त शब्द से इन्द्रिय आदि प्रमादों का त्याग लेना चाहिए। यतना शब्द से यहाँ यावज्जीव यतना का ग्रहण करना चाहिए। अतः

तेमणे शुं करीने जोयुं छे ? आ शंकानो उत्तर ए छे परीषह अने उपसर्गोने तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय अने अन्तराय नामना चार घातिया कर्मोने जीतीने केवलज्ञान प्राप्त करीने तेमणे जोयुं छे

ते जोवावाळा केवा प्रकारना हता ? तेनो उत्तर-सम्यक्प्रकारे अत्यन्त करुणापूर्वक ईर्यासमिति आदिना पालन करवावाळा, अर्थात् समस्त षट्कायनी रक्षामां तेओ तत्पर हता यतना बे प्रकारनी छे-प्रमत्तनी यतना अने अप्रमत्तनी यतना. प्रमत्तनी यतना केवी होय छे ? तेनो उत्तर ए छे के-कषाय आदिना निग्रह करवावाळा पुरुष ईर्या आदिमां जे उपयोग राखे छे ते प्रमत्तनी यतना छे. अप्रमत्तनी यतना कषायरहित वचनोथी थाय छे. अहिं अप्रमत्त शब्दथी इन्द्रिय आदि प्रमादोनो त्याग लेवो जोईए. यतना शब्दथी अहिं जीवमात्रनी यतनानुं ग्रहण करवुं जोईए. ए माटे

टीका—

वीरैरिति। घनघातिकर्मरूपरिपुगणक्षपणानन्तरं लब्धातुलकेवलालोकलक्ष्म्या विराजन्त इति वीराः। यथा—राजानश्चतुरङ्गसैन्यसमावृतं स्वकीयमरिवर्गं निहत्य लब्धराज्यविजयलक्ष्म्या विराजमाना वीरा निगद्यन्ते। यद्वा—वि=विशेषेण ईरयन्ति=रागाद्यन्तरङ्गमहासुभटान् निवारयितुमनन्ततपोवीर्यं व्यापारयन्तीति वीराः। यद्वा—विशेषेण ईरयन्ति=शिवगतिं गमयन्ति भव्यजीवानिति वीराः। यद्वा—विशेषेण ईरयन्ति=ज्ञानाचारादीन् प्रति प्रेरयन्ति भव्यजीवानिति वीराः, तीर्थङ्करा गणधराश्च, तैर्वीरैः, एतद्=अग्निकायस्वरूपं, यद्वा—अग्निशस्त्रम् अशस्त्रं चेति द्वयं दृष्टं=ज्ञानदृष्ट्या विलोकितम्, अर्थतस्तीर्थङ्करैः, गणधरैस्तु भगवद्वचनैरिति विशेषः।

टीकार्थ—घातियाकर्मरूपी शत्रुओं के समूह को नाश करने के अनन्तर अनुपम केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त होती है। उस लक्ष्मी से जो विराजमान हैं उन्हें वीर कहते हैं। जैसे कोई राजा, चतुरग सेना से युक्त शत्रुओं को हराकर प्राप्त राज्य और विजय की लक्ष्मी से सुशोभित हो कर 'वीर' कहलाते हैं। अथवा राग—द्वेष आदि आन्तरिक महायोद्धाओं को रोकने के लिए अनन्त तपोवीर्य का प्रयोग करने वाले 'वीर' कहलाते हैं। अथवा भव्य जीवों को विशेषरूप से मुक्ति की ओर प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं। अथवा विशेषरूप से ज्ञानाचार आदि की ओर भव्य जीवों को प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं। ऐसे वीर तीर्थंकर गणधर आदि हैं। उन वीरों ने अग्नि के स्वरूप को अथवा अग्निशस्त्र और अशस्त्र को ज्ञानदृष्टि से देखा है। अर्थ से तीर्थंकरों ने और उन के वचनों के अनुसार गणधरों ने देखा है।

ટીકાર્થ—ઘાતિ—કર્મરૂપી શત્રુઓના સમૂહનો નાશ કર્યાના અનન્તર અનુપમ કેવલજ્ઞાન રૂપી લક્ષ્મી પ્રાપ્ત થાય છે તે લક્ષ્મીથી જે વિરાજમાન છે તેને વીર કહે છે જેમ કોઈ રાજા, ચતુરગ સેનાથી યુક્ત (ચાર પ્રકારની સેના સહિત) શત્રુઓને હરાવીને પ્રાપ્ત કરેલુ રાજ્ય અને વિજયરૂપ લક્ષ્મીથી સુશોભિત બની 'वीर' કહેવાય છે, અથવા—રાગ—દ્વેષ આદિ આન્તરિક મહાયોદ્ધાઓને રોકવાવાળાને 'वीर' કહે છે અથવા ભવ્ય જીવોને વિશેષરૂપથી મુક્તિની તરફ પ્રેરિત કરવાવાળા 'वीर' કહેવાય છે અથવા વિશેષરૂપથી જ્ઞાનાચાર આદિની તરફ ભવ્ય જીવોને પ્રેરિત કરવાવાળા 'वीर' કહેવાય છે એવા વીર તીર્થંકર અને ગણધર આદિ છે, તે વીરોએ અગ્નિના સ્વરૂપને અથવા અગ્નિશસ્ત્ર અને અશસ્ત્રને જ્ઞાનદૃષ્ટિથી જોયા છે. અર્થથી તીર્થંકરોએ જોયા છે. અને તેમના વચનો અનુસાર ગણધરોએ જોયા છે.

उभयकायशस्त्रं च । भावशस्त्रं तु-अग्निं प्रति दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपम् । शेषाणि पृथिवीकायवद् बोध्यानि ॥ सू० ३ ॥

यस्तु प्रमादवशादुपभोगायाग्निकायजीवानुपमर्दयति, तत्कथमाह—'जे' इत्यादि ।

मूलम्—

जे पमत्ते गुणट्ठिए से हु दंडेत्ति पवुच्चइ ॥ ४ ॥

छाया—

यः प्रमत्तः गुणार्थिकः (गुणस्थितः) स खलु दण्ड इति प्रोच्यते ।

टीका—

यो हि प्रमत्तः—विषयकषायादिप्रमादवशगः सन् गुणार्थिकः भवतीत्यन्वयः । गुणः—अग्निकायकृतोपकारः स एवार्थः—प्रयोजनं यस्य स गुणार्थी, स एव गुणार्थिकः, रन्धन-पचन-प्रकाश-तापनादिप्रयोजनवान् भवति । यद्वा-

(अपने) आदि से भिन्न अग्नि तथा गर्म जल अग्नि का उभयकायशस्त्र है । अग्नि के प्रति दुष्ट मन वचन और कायका प्रवर्त्तन भावशस्त्र है । शेष द्वार पृथिवीकाय के समान समझने चाहिए ॥ सू० ३ ॥

प्रमाद के वश होकर उपभोग के निमित्त अग्निकाय के जीवों की विराधना करने वाले को होने वाला फल कहते हैं—'जे' इत्यादि ।

मूलार्थ—जो प्रमादी पुरुष अग्नि के गुणों का अर्थी-रांधना आदि में स्थित-है, वह उसके लिए दण्ड कहलाता है ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—विषय कषाय आदि प्रमादों के अधीन होकर पुरुष गुणार्थी होता है । अग्निकाय द्वारा होने वाला उपकार यहाँ गुण कहा गया है । इस गुण का अर्थी गुणार्थिक कहलाता है । रांधना पकाना, प्रकाश करना आदि अग्नि के गुण हैं । जो

तथा गरम जल अग्निनुं उभयकायशस्त्र छे अग्नि प्रतिनुं दुष्ट मन वचन अने कायनुं प्रवर्तन ते भावशस्त्र छे बाकीना द्वार पृथ्वीकायनी समान बराबर-समजवा जोइए. (सू. ३)

प्रमादने वश थई उपभोगना निमित्ते अग्निकायना जीवोनी विराधना करवा वाळाने जे फळ थाय छे-अगे छे. ते फळ कहे छे 'जे' ईत्यादि.

मूलार्थ—जे प्रमादी पुरुष अग्निना अर्थी-रांधवुं विगेरेमां स्थित-छे ते तेना माटे दंड केहेवाय छे. (सू. ४)

टीकार्थ—विषय कषाय आदि प्रमादोने आधीन थईने पुरुष गुणार्थी थाय छे. अग्निकाय द्वारा थवावाळो उपकार तेने अहिं गुण केहेवामां आव्यो छे आ गुणनो अर्थी ते गुणार्थिक केहेवाय छे रांधवुं-पकाववुं अजवाळुं करवुं आदि अग्निना गुण छे जे

सद=सर्वदा यतैः=चरणकरणविषये निरतिचारतया यत्नवद्भिः, तथा-सदा= सर्वकाले अप्रमत्तैः=विषयकषायादिवर्जितैः । एवम्भूतैर्वीरैरग्निकायस्वरूपं तदीयशस्त्रमशस्त्रं च दृष्टमित्यर्थः ।

ननु किं नामाग्निशस्त्रम्? उच्यते-अग्न्युपमर्दकं शस्त्रम् । तत् किं-स्वरूप?-मितिचेत्, अवधेहि-अग्निशस्त्रं तावद् द्विधा-द्रव्य-भावभेदात् । तत्र द्रव्यशस्त्रं त्रिविधम् स्वकायपरकायोभयकायभेदात् । स्वकायशस्त्रं-अग्निकायस्याग्निकाय एव, यथा-तृणाग्निः, पर्णाग्नेः शस्त्रम् । परकायशस्त्रं-धूलिरापश्च, आर्द्रश्च-वनस्पति, त्रसाः प्राणिनश्च । उभयकायशस्त्रं तुषकरीषादिमिश्रोऽग्निरन्यस्याग्नेः,

सर्वदा चरणसत्तरी और करणसत्तरी में अतिचाररहित यतना करने वाले तथा सदैव विषय-कषाय आदि प्रमाद से रहित वीर पुरुषोंने अग्निकाय के स्वरूप को तथा उसके शस्त्र और अशस्त्र को देखा है।

शङ्का—अग्निशस्त्र क्या है?

समाधान—अग्नि की विराधना करने वाला शस्त्र अग्निशस्त्र कहलाता है। उसका स्वरूप क्या है? सो इस प्रकार समझो-द्रव्य और भाव के भेद से अग्नि शस्त्र दो प्रकार का है । इनमें से द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं-स्वकाय-शस्त्र, परकाय-शस्त्र और उभयकाय-शस्त्र । अग्निकाय का स्वकायशस्त्र अग्नि ही है, जैसे तिनके की अग्नि, पत्तों की अग्नि का शस्त्र है। धूलि और पानी आदि अग्निकाय का परकायशस्त्र है। गीली वनस्पति भी परकायशस्त्र है और त्रस प्राणी भी। तुष (छिलका) और करीष

સર્વદા ચરણ સીતેરી અને કરણસીતેરીમા અતિચારરહિત યતના કરવાવાળા તથા હમેશા વિષય-કષાય આદિ પ્રમાદથી રહિત વીર પુરુષોએ અગ્નિકાયના સ્વરૂપને તથા તેના શસ્ત્ર અને અશસ્ત્રને જોયા છે

શંકા—અગ્નિ શસ્ત્ર એ શુ છે?

સમાધાન—અગ્નિની વિરાધના કરવાવાળુ શસ્ત્ર તે અગ્નિશસ્ત્ર કહેવાય છે તેનું સ્વરૂપ કેવુ છે? તે આ પ્રમાણે સમજો-દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી અગ્નિશસ્ત્ર બે પ્રકારના છે, તેમાથી દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ ભેદ છે સ્વકાયશસ્ત્ર પરકાયશસ્ત્ર, અને ઉભયકાયશસ્ત્ર. અગ્નિકાયનુ સ્વકાયશસ્ત્ર અગ્નિજ છે જેમ તણખાની અગ્નિ, પાદડાની અગ્નિનુ શસ્ત્ર છે ધૂળ અને પાણી આદિ અગ્નિકાયનુ પરકાયશસ્ત્ર છે લીલી વનસ્પતિ પણ પરકાયશસ્ત્ર છે અને ત્રસ પ્રાણી પણ પરકાયશસ્ત્ર છે તુષ અને છાણ આદિથી મળેલી અગ્નિ

तप्तोदकादिकं च। भावशस्त्रं तु-अग्निं प्रति दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपम्। शेषाणि पृथिवीकायवद् बोध्यानि ॥ सू० ३ ॥

यस्तु प्रमादवशादुपभोगार्थमग्निकायजीवानुपमर्दयति, तत्फलमाह—'जे' इत्यादि।

मूलम्—

जे पमत्ते गुणट्ठिए से हु दंडेत्ति पवुच्चइ ॥ ४ ॥

छाया—

यः प्रमत्तः गुणार्थिकः (गुणस्थितः) स खलु दण्ड इति प्रोच्यते।

टीका—

यो हि प्रमत्तः=विषयकषायादिप्रमादवशगः सन् गुणार्थिकः भवती स्यन्वयः। गुणः=अग्निकायकृतोपकारः स एवार्थः=प्रयोजनं यस्य स गुणार्थी, स एव गुणार्थिकः, रन्धन-पचन-प्रकाश-तापनादिप्रयोजनवान् भवति। यद्वा-

(अग्ने) आदि से सिक्त अग्नि तथा गर्म जल अग्नि का उभयकायशस्त्र है। अग्नि के प्रति दुष्ट मन वचन और काय का प्रवर्तन भावशस्त्र है। शेष द्वार पृथिवीकाय के समान समझने चाहिए ॥ सू० ३ ॥

प्रमाद के वश होकर उपभोग के निमित्त अग्निकाय के जीवों की विराधना करने वाले को होने वाला फल कहते हैं- 'जे' इत्यादि।

मूलार्थ—जो प्रमादी पुरुष अग्नि के गुणों का अर्थी-रांधना आदि में स्थित-है, वह उसके लिए दण्ड कहलाता है ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—विषय कषाय आदि प्रमादों के अधीन होकर पुरुष गुणार्थी होता है। अग्निकाय द्वारा होने वाला उपकार यहाँ गुण कहा गया है। इस गुण का अर्थी गुणार्थिक कहलाता है। रांधना पकाना उजाला करना आदि अग्नि के गुण हैं। जो

तथा गरम जल अग्निनुं उभयकायशस्त्र छे अग्नि प्रतिनुं दुष्ट मन, वचन अने कायानुं प्रवर्तन ते भावशस्त्र छे बाकीना द्वार पृथ्वीकायनी समान समजवा-समजवा जोइओ. (सू. ३)

प्रमादने वश थई उपभोगना निमित्ते अग्निकायना जीवोनी विराधना करवा वाळाने जे फल थाय छे-कहे छे. ते फल कहे छे 'जे' इत्यादि.

मूलार्थ—जे प्रमादी पुरुष अग्निना अर्थी-रांधवुं विगेरेमां स्थित-छे ते तेना माटे दंड कहेवाय छे (सू. ४)

टीकार्थ—विषय कषाय आदि प्रमादोने आधीन थइने पुरुष गुणार्थी थाय छे अग्निकाय द्वारा थवावाळो उपकार तेने अहिं गुण कहेवामां आव्यो छे आ गुणनो अर्थी ते गुणार्थिक कहेवाय छे रांधवु-पकाववुं, अजवाळु करवुं आदि अग्निना गुण छे.जे

'गुणस्थितः' इति च्छाया, तेन गुणेषु=अग्निगुणेषु रन्धनपचनादिषु, शब्दादिषु वा स्थितः=आसक्तः, रन्धनाद्यर्थमग्निमुत्पादयति प्रज्वालयति यथाकथञ्चिदुपमर्दयतीत्यर्थः। स मनोवाक्कायस्य दुष्प्रणिधानेनाग्निशस्त्रसमारम्भकरणेन चाग्न्यादीनां प्राणिनां दण्डं प्रति कारणभूतत्वाद् दण्ड इति प्रोच्यते, कारणे कार्योपचाराद्, दण्डवत् प्राणिनां हिंसकतया दण्ड इति निन्द्यनाम्ना लोके प्रसिध्यतीति भावः ॥ सू० ४ ॥

एवं विज्ञायाग्निशस्त्रसमारम्भाद् विनिवर्तितव्यमित्याह--'तं' इत्यादि।

मूलम्—

त परिण्णाय मेहावी इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं ॥ सू० ५ ॥

छाया—

त परिज्ञाय मेधावी इदानीं नो यदहं पूर्वमकार्षं प्रमादेन ॥ सू० ५ ॥

पुरुष इन गुणों में अथवा शब्द आदि इन्द्रियविषयों में आसक्त है अर्थात् रांधने आदि के लिए अग्नि उत्पन्न करता है, जलाता है और किसी भी प्रकार उसका हनन करता है, वह पुरुष अपने मन, वचन, काय के दूषित व्यापार के कारण तथा अग्निशस्त्र का समारभ करने के कारण अग्नि के जीवों के दडका कारण होने से दण्ड कहलाता है। कारण में कार्य का उपचार करने से दड के कारणभूत पुरुष को दड कहते हैं। लोक में उस पुरुष की 'दड' इस निंदनीय नाम से प्रसिद्धि होती है ॥ सू० ४ ॥

अब बतलाते हैं कि पूर्वोक्त कथन जानकर अग्निशस्त्र के समारभ से बचना चाहिए — 'ते' इत्यादि।

मूलार्थ—अग्निकाय अथवा अग्निकाय के समारभ को जानकर बुद्धिमान् पुरुष निश्चय करे कि—प्रमाद के वश होकर मैंने पहले जो किया सो अब नहीं करूगा ॥ सू० ५ ॥

પુરુષ આ ગુણોમા અથવા શબ્દ આદિ ઇન્દ્રિયવિષયોમા આસકત છે અર્થાત્ રાધવા આદિને માટે અગ્નિ ઉત્પન્ન કરે છે, બાળે છે, અને કોઈ પણ પ્રકારે તેનુ હનન કરે છે, તે પુરુષ પોતાના મન, વચન અને કાયાના દૂષિત વ્યાપારના કારણે તથા અગ્નિશસ્ત્રનો સમારભ કરવાના કારણે અગ્નિના જીવોને દડનુ કારણ હોવાથી દડ કહેવાય છે કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી દડના કારણભૂત પુરુષને પણ દડ કહે છે લોકમા તે પુરુષની 'દડ' આ નિંદનીય નામથી પ્રસિદ્ધિ થાય છે (સૂ ૪)

હવે બતાવે છે કે-પૂર્વોકત કથન જાણીને અગ્નિશસ્ત્રના સમારભથી બચવુ જોઈએ—'ત' ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—અગ્નિકાય અથવા અગ્નિકાયના સમારભને જાણી બુદ્ધિમાન પુરુષ નિશ્ચય કરે કે-પ્રમાદના વશ થઈને મે પહેલા જે કર્યું છે તે હવે નહીં કરૂ (સૂ ૫)

टीका—

मेधावी=ग्रहणधारणादिगुणवान्, यद्वा-साधुमर्यादारक्षणे सावधानः, यद्वा-हेयोपादेयविवेकनिपुणः, तम्=अग्निकायं, यद्वा तम्=अग्निशस्त्रसमारम्भं बन्धनाम दुष्फलदं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया च बन्धकारणत्वेन, प्रत्याख्यानपरिज्ञया हेयत्वेन पर्यालोच्य, प्रतिजानीते-अहं=मिथ्यात्वादिमलिनान्तःकरणः प्रमादेन=विषयकषायादिप्रमादवशतः यम्=अग्निशस्त्रसमारम्भं पूर्वम्=अज्ञानावस्थायाम्, अकार्षम्=कृतवान्, यस्त्वोर्निस्य-साकाङ्क्षत्वात् तम् इदानीम्=सम्प्रति प्रव्रज्यावस्थायाम् नो=नैव करिष्य इति शेषः ॥ सू० ५ ॥

अथ सर्वथाऽग्निशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथाऽग्निशस्त्रसमारम्भे प्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह-'लज्जमाणा' इत्यादि ।

टीकार्थ—ग्रहण और धारणादिक गुणों से युक्त, अथवा साधुओं की मर्यादा की रक्षा करने में सावधान अथवा हेय और उपादेय के विवेक में निपुण पुरुष अग्निकाय अथवा अग्निकाय के समारंभ को जानकर अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से उसे कर्मबंध का कारण समझकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से हेय समझकर इस प्रकार प्रतिज्ञा करते हैं—मिथ्यात्व आदि विकारों के वश होकर मैंने अज्ञानदशा में अग्निकाय का समारंभ किया था। वह समारंभ अब दीक्षा-अवस्था में नहीं करूँगा ॥ सू० ५ ॥

अग्निकाय का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारों तथा अग्निकाय के समारंभ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिंगी पुरुषों को अलग अलग कर के समझाते हैं—'लज्जमाणा' इत्यादि ।

ટીકાર્થ—ગ્રહણ અને ધારણાદિક ગુણોથી યુક્ત અથવા સાધુઓની મર્યાદાની રક્ષા કરવામાં સાવધાન, અથવા હેય અને ઉપાદેયના વિવેકમાં નિપુણ પુરુષ અગ્નિકાય અથવા અગ્નિકાયના સમારંભને જાણીને અર્થાત્ જ્ઞપરિજ્ઞાથી તેને કર્મબંધનું કારણ સમજીને અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી હેય-(ત્યાજ્ય) સમજીને આ પ્રમાણે પ્રતિજ્ઞા કરે છે—મેં અજ્ઞાન દશામાં મિથ્યાત્વ આદિ વિકારોને વશ થઈને અગ્નિકાયનો સમારંભ કર્યો હતો; તે સમારંભ હવે દીક્ષા-અવસ્થામાં નહીં કરું (સૂ. ૫)

અગ્નિકાયનો સર્વથા ત્યાગ કરવાવાળા અણગારો તથા અગ્નિકાયના સમારંભમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા દ્રવ્યલિંગી પુરુષોને અલગ-અલગ કરીને સમજાવે છે—'લજ્જમાણા' ઈત્યાદિ

[illegible] त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं [illegible] समारंभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे [illegible]

छाया—

[illegible] अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिम विरूप- [illegible] समारम्भेण, अग्निशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणिनो [illegible] ॥ सू० ६ ॥

टीका—

[illegible] = अग्निकायसमारम्भे परमकरुणया द्रवीभूतहृदयतया संकुचिता- [illegible] अग्निशस्त्रसमारम्भपरित्यागिन इत्यर्थः, पृथक्=विभिन्नाः, केचित् प्रत्यक्ष- [illegible] मनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः

मूलार्थ—अग्निकाय के आरंभ में संकोच करने वालों को अलग समझो। और 'हम अनगार हैं' ऐसा कहने वाले नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा अग्निकर्म का समारंभ करने वाले दूसरे (द्रव्यलिंगी) अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—अत्यन्त दया के कारण अग्निकाय के समारंभ में हार्दिक संकोच करने वाले, इसी कारण अग्निशस्त्र के समारंभ के त्यागी अलग हैं, उन में कोई अवधि-ज्ञानी हैं, कोई मनःपर्ययज्ञानी हैं, कोई केवलज्ञानी हैं। कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा

મૂલાર્થ—અગ્નિકાયના આરંભમાં સંકોચ કરવાવાળાને અલગ સમજો, અને 'અમે અણગાર છીએ' એ પણ કહેવાવાળા નાના પ્રકારના શસ્ત્રો દ્વારા અગ્નિકર્મનો સમારંભ કરવાવાળા બીજા (દ્રવ્યલિંગી) અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે (સૂ ૬)

ટીકાર્થ—અત્યન્ત દયાના કારણે અગ્નિકાયના સમારંભમાં હાર્દિક સંકોચ કરવાવાળા, આજ કારણથી અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભના ત્યાગી અલગ છે—જૂદા છે એમાં કોઇ અવધિજ્ઞાની છે, કોઇ મનઃપર્યયજ્ઞાની છે, કોઈ કેવલજ્ઞાની છે કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની ભાવિતાત્મા અણગાર છે. તે સર્વ સૂક્ષ્મ અને બાદર અગ્નિકાયનો સમારંભ કરવામાં

स्न्तीति पश्य । इमे सूक्ष्मबादराग्निकायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैरग्निकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्ये तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः 'वयमेवाग्निकायजीवरक्षणपरा महाव्रतधारिणः' इति प्रजल्पन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् स्वभावेन पश्य ।

इमे स्वयनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति-'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्-यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः द्रव्यभावभेदभिन्नैः शस्त्रैः=अग्निकायशस्त्रैः, अग्निकर्मसमारम्भेण=अग्नेः कर्मसमारम्भः अग्निकर्मसमारम्भः=

अनगार हैं। ये सब सूक्ष्म और बादर अग्निकाय का समारंभ करने में भीत-डरने वाले हैं, त्रस्त हैं उद्विग्न हैं और तीन करण तीन योग से अग्निकाय के समारंभ के त्यागी हैं, उन्हें देखो।

इन से विपरीत दूसरे लोग 'हम अनगार हैं, हमीं अग्निकाय की रक्षा में तत्पर हैं, महाव्रती हैं' इस प्रकार अभिमान के साथ प्रलाप करते हुए द्रव्यलिंगी हैं, उन्हें अलग समझो।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये लोग साधुओं का तनिक भी कर्तव्य नहीं करते और न गृहस्थकार्य का त्याग करते हैं।

वे लोग तरह-तरह के द्रव्य और भाव रूप अग्निकाय के शस्त्रों से अग्निकर्म का

भीत-भयवान छे त्रस्त छे, उद्विग्न छे अने त्रणकरण, त्रणयोगथी अग्निकायना समारंभना त्यागी छे तेने जुओ.

एनाथी विपरीत (उपर कह्या तेनाथी उलटो व्यवहार करनारा) बीजा लोक 'अमे अणगार छीए, अमे अग्निकायनी रक्षामां तत्पर छीए, महाव्रती छीए. ए प्रमाणे अभिमाननी साथे प्रलाप करे छे ते द्रव्यलिंगी छे तेने अलग समजो.

अणगार होवानुं अभिमान करवावाळा आ लोक साधुओना जरापण कर्तव्यने करता नथी अने गृहस्थनां कर्मोनो त्याग करता नथी.

ते लोक तरेह-तरेहना द्रव्य अने भावरूप अग्निकायना शस्त्रोथी अग्निकर्मनो

अग्निं निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धनिबन्धनसावद्यव्यापारस्तेन, इमम्=अग्निकायं विहिंसन्ति ।

अग्निकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूप लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह–'अग्निशस्त्र'–मित्यादि। अग्निशस्त्रम्=अग्न्युपमर्दकं शस्त्रम्, तत् पूर्वोक्तप्रकारं द्रव्यभावभेदभिन्नं समारभमाणाः=अग्निकायं प्रति व्यापारयन्तः अन्यान् त्रसांश्च विहिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा–'वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः सर्वारम्भपरित्यागिनः षड्जीवनिकायरक्षका अनगाराः स्मः'इति वदन्तो दण्डिशाक्यादयः सन्ति। ते चात्मानमनगारं प्रवदमाना नानगारगुणेषु लेशतोऽपि प्रवर्तन्ते।

आरम कर के अर्थात् अग्नि के निमित्त से ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का कारणभूत सावद्य व्यापार कर के अग्निकाय की हिंसा करते है ।

अग्निकाय की हिंसा मे प्रवृत्त पुरुष षट्कायरूप समस्त जीवों की हिंसा करते हैं, यही बतलाते हैं–अग्नि का घात करने वाले–द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र का अग्नि के विषय में प्रयोग करने वाले अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य पृथ्वीकाय आदि स्थावरों की तथा द्वीन्द्रिय त्रस जीवों की हिंसा करते हैं ।

ससार में बहुत से द्रव्यलिङ्गी हैं। '**हम पञ्चमहाव्रतधारी, समस्त आरंभ का त्याग करने वाले और षट्काय के रक्षक अनगार हैं**। इस प्रकार कहने वाले दडी शाक्य आदि हैं। वे अपने को अनगार कहते हुए भी लेशमात्र भी अनगार के गुणों में प्रवृत्ति नहीं करते ।

આરભ કરીને અર્થાત્ અગ્નિના નિમિત્તથી જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોના કારણભૂત સાવદ્ય વ્યાપાર કરીને અગ્નિકાયની હિંસા કરે છે

અગ્નિકાયની હિંસામા પ્રવૃત્ત પુરુષ ષટ્કાયરૂપ સમસ્ત જીવોની હિંસા કરે છે. એજ બતાવે છે–અગ્નિનો ઘાત કરવાવાળા–દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્રનો અગ્નિના વિષયમા પ્રયોગ કરવાવાળા અગ્નિકાય સાથે બીજા પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોની તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોની હિંસા કરે છે

સસારમા ઘણાજ દ્રવ્યલિંગી છે. 'અમે પચમહાવ્રતધારી સમસ્ત આરભનો ત્યાગ કરવાવાળા અને ષટ્કાયના રક્ષક અણગાર છીએ.' આ પ્રકારે કહેવાવાળા દડી શાક્ય આદિ છે તે પોતાને અણગાર કહેતા થકા પણ લેશમાત્ર અણગારના ગુણોમા પ્રવૃત્તિ કરતા નથી

शाक्यादयः पचन-पाचन-प्रतापन-प्रकाशाद्यर्थमग्निकर्मसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति च, तेन षट्कायजीवविराधका भवन्ति।

दण्डिनोऽपि-'वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनवचनाराधका अनगाराः स्मः' इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्तः शास्त्रनिषिद्धमप्यग्निकर्मसमारम्भं कारयन्ति।

दृश्यन्ते हि-शास्त्रव्याख्यानादौ देवकुलादौ प्रतिमाप्रतिश्रयादिप्रतिष्ठादौ च धूपदीपहवनादिभिरग्निकर्मसमारम्भं कारयन्तो दण्डिनः एवं कथयन्ति च-स्नानादिना पुष्पैर्धूपैः पायसापूपलड्डुकादिभिर्विविधैर्नैवेद्यैः प्रतिमापूजा

शाक्य आदि पचन, पाचन, तापन तथा प्रकाश आदि के लिए अग्निकर्म का समारंभ करते हैं, कराते हैं और करते हुए का अनुमोदन करते हैं, अतः वे षट्काय के विराधक हैं।

दण्डी कहते हैं-'हम पंचमहाव्रतधारी हैं जिनवचन के आराधक अनगार हैं'। ये साध्वाभास सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्रनिषिद्ध अग्निकर्म का समारंभ कराते हैं।

शास्त्र के व्याख्यान आदि में देवकुल आदि में, प्रतिमा प्रतिश्रय और प्रतिष्ठा आदि में धूप दीप और हवन आदि द्वारा अग्निकर्म का आरंभ करवाते हुए दण्डी देखे जाते हैं। वे ऐसा कहते हैं-'स्नान कराकर पुष्पों से धूप से खीर से, पूए से, तथा लड्डू आदि से तथा विविध प्रकार के नैवेद्य से प्रतिमा की पूजा करनी

શાક્ય આદિ પચન, પાચન, તાપન તથા પ્રકાશ આદિ માટે અગ્નિકર્મનો સમારંભ કરે છે કરાવે છે અને કરનારને અનુમોદન આપે છે. તેથી તે ષટ્કાયના વિરાધક છે

દંડી કહે છે કે – અમે પંચમહાવ્રતધારી છીએ, જિનવચનના આરાધક અણગાર છીએ. એ સાધ્વાભાસ સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે અને શાસ્ત્રનિષિદ્ધ અગ્નિકર્મનો સમારંભ કરાવે છે

શાસ્ત્રના વ્યાખ્યાન આદિમાં દેવકુલ આદિમાં, પ્રતિમા પ્રતિશ્રય તથા પ્રતિષ્ઠા આદિમાં ધૂપ, દીપ અને હવન આદિ દ્વારા અગ્નિનો આરંભ કરાવતા દેખ તેવા દંડી જોવામાં આવે છે તે એમ કહે છે કે-સ્નાન કરાવીને પુષ્પોથી ધૂપથી, ખીરથી માલપૂવા તથા લાડુ આદિથી તથા વિવિધ પ્રકારનાં નૈવેદ્યથી પ્રતિમાની પૂજા કરવી જોઈએ જિન

कर्तव्येत्यादि । पुनः-जिनस्य वामपार्श्वे धूपः स्थापनीयः, दक्षिणपार्श्वे घृतपूर्णः प्रज्वालितः प्रदीपः स्थाप्यः, पायसापूपघृतपूरलड्डुकादि नैवेद्यमपि पुरतः स्थापनीयमित्यादि । तच्च विनाग्निकर्मसमारम्भ नोपपद्यते । ओषध्यर्थं काथादि, शुण्ठिपाकादि, पातुमुष्णोदक, भोक्तु विविधाहारं च कारयन्तीति ॥ सू० ६ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद-'तत्थ'. इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया । इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेवे अगणिसत्थं

चाहिए । जिन भगवान् के बाँई (डावी) ओर धूप रखना चाहिए और दाहिनी (जिमणी) ओर घी से भग जलता दीप रखना चाहिए । सामने खीर, मालपूआ, घेवर और लड्डू आदि नैवेद्य रखना चाहिए " । ये सब अग्निकर्म का समारभ किये विना नहीं हो सकते । वे लोग ओषधि के लिए काथ वगैरह, सौंठ का पाक आदि, पीने के लिए गर्म जल और खाने के लिए विविध प्रकार के आहार बनवाते है ॥ सू० ६ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं-'तत्थखलु' इत्यादि ।

मूलार्थ—इस विषय में भगवान्ने बोध दिया है । इसी जीवन के लिए, वन्दन, मानना और पूजा के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, तथा दु खों का निवारण करने के लिए वह स्वय अग्निशस्त्र का आरभ करता है, दूसरों से अग्निशस्त्रका

ભગવાનની ડાબી તરફ ધૂપ રાખવો જોઈએ અને જમણી તરફ ઘીનો ભરેલો બળતો દીપક રાખવો જોઈએ સામે ખીર, માલપૂવા, ઘેવર અને લાડુ આદિ નૈવેદ્ય રાખવું જોઈએ એ સર્વ અગ્નિકર્મના સમારભ કર્યા વિના થઈ શકતા નથી તે લોક ઔષધી માટે કવાથ વગેરે, સુંઠના પાક આદિ, પીવા માટે ગરમ જલ અને ખાવા માટે વિધ-વિધ પ્રકારના આહાર બનાવરાવે છે (સૂ ૬)

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે-'તત્થ ખલુ' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—આ વિષયમા ભગવાને બોધ આપ્યો છે આ જીવન માટે વદન, માનન, અને પૂજાને માટે, જન્મ-મરણથી મુક્ત થવા માટે તથા દુખોનુ નિરાકરણ કરવા માટે તે પોતે અગ્નિશસ્ત્રનો આરભ કરે છે, બીજા પાસે અગ્નિશસ્ત્રનો આરભ કરાવે છે, અને

समारंभइ, अण्णेहिं वा अगणिसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा अगणिसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता। अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दनमानन पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं स स्वयमेव अग्निशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा अग्निशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा अग्निशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ७ ॥

टीका—

तत्र=अग्निकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यगवबोधः खलु प्रवेदिता=प्रतिबोधिता। कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्य शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः।

उपयोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनायाग्निकायमुपमर्दयति?—त्याह—'अस्य चैव जीवितस्य'

आरंभ करवाता है और अग्निकाय का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है, सो वह उस के अहित के लिए है, वह अबोधि के लिए है ॥ सू० ७ ॥

टीकार्थ—अग्निकाय के समारंभ में श्री महावीरने सम्यक् उपदेश दिया है। आशय यह है कि—कर्मबंध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञाका आश्रय अवश्य लेना चाहिए, ऐसा उपदेश दिया है।

उपयोगद्वार—

किस प्रयोजन से लोग अग्निकाय की हिंसा करते हैं यह बतलाते हैं—इसी

અગ્નિકાયનો આરંભ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન કરે છે તે એના (પોતાના) અહિત માટે છે, તે અબોધિને માટે છે (સૂ. ૭)

ટીકાર્થ—અગ્નિકાયના સમારંભમાં શ્રી મહાવીરે સમ્યક્ ઉપદેશ આપ્યો છે. આશય એ છે કે—કર્મબંધનો નાશ કરવા માટે જીવે પરિજ્ઞાનો આશ્રય અવશ્ય લેવો જોઈએ. એવો ઉપદેશ આપ્યો છે

ઉપયોગ દ્વાર—

ક્યા પ્રયોજનથી લોક અગ્નિકાયની હિંસા કરે છે. એ બતાવે છે—આ સંસારમાં

त्यादि। अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थं प्रकाशकरणार्थम्, ओदनादिरन्धनार्थं, धूमयानादिगतिसिद्ध्यर्थं चेत्यर्थः। तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय-परिवन्दनं=प्रशंसा तदर्थं, यथा-अग्नियन्त्रेण 'आतिशबाजी' इति-भाषाप्रसिद्धे क्षणनश्वरस्फुलिङ्गवृष्ट्यादौ, मानन=जनसत्कारः तदर्थं, यथा-भूपादीन् प्रसादयितुं दीपमालादीपवृक्षनिर्माणादौ। पूजन=वस्त्ररत्नादिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-देवप्रतिमाद्यर्थं धूपदीपारात्रिककरणादौ। तथा-जातिमरणमोचनाय=जन्म-मरणबन्धमोचनार्थं, यथा-हवनादौ, दुःखप्रतिघातहेतुम्=वातरोगापनयनार्थं शीतापनोदनार्थं ज्वरविषूचिकादिनिवृत्त्यर्थं च दहनप्रतापनादौ, स=नश्वरजीवन-सुखाद्यर्थी स्वयमेव अग्निशस्त्रम्=अग्न्युपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं समारभते=व्यापारयति।

क्षणभङ्गुर जीवन के सुख के लिए, प्रकाश करने के लिए, चावल आदि पकाने के लिए, रेल आदि चलाने के लिए, तथा अपनी प्रशंसा के लिए, जैसे-अग्नियन्त्र से क्षणविनश्वर चिनगारियाँ वरसाने के लिए अर्थात् 'अतिशवाजी' के लिए' जन-सत्कार के लिए जैसे-राजा वगैरह को प्रसन्न करने के उद्देश्य दीपमालिका जलाना या दीपकों के वृक्ष की रचना करना, तथा वस्त्र, रत्न आदि पुरस्कार पाने के लिए, जैसे-देवप्रतिमा आदि के लिए धूप-दीप आदि करना। तथा जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, जैसे हवन आदि में, दुःखों का प्रतीकार करने के लिए, जैसे-वातरोग हटाने के लिए, ठंड दूर करने के लिए तथा ज्वर एवं विषूचिका दूर करने के लिए डाभ देना या तपाना आदि कार्य करने में। इन सब प्रयोजनों के लिए इस जीवन के सुख का अर्थी पुरुष स्वयं द्रव्य

જીવનના સુખ માટે, પ્રકાશ કરવા માટે, ચોખા આદિ રાંધવા માટે, રેલ આદિ ચલાવવા માટે તથા પોતાની પ્રશંસા માટે, જેમકે-અગ્નિયંત્રથી ક્ષણવિનશ્વર ચિનગારીઓ વરસાવવા માટે અર્થાત્ 'આતશબાજી' માટે, જનસત્કાર માટે, જેમ-રાજા વગેરેને પ્રસન્ન કરવાના ઉદ્દેશથી દીપમાલિકા જગાવવી અથવા દીપકોના વૃક્ષની રચના કરવી, તથા વસ્ત્ર, રત્ન આદિ પુરસ્કાર પ્રાપ્ત કરવા માટે જેમ-દેવપ્રતિમા આદિ માટે ધૂપ-દીપ આદિ કરવું, તથા જન્મ-મરણથી મુક્ત થવા માટે જેમ-હવન આદિમાં, દુઃખોનો પ્રતિકાર કરવા માટે જેમ-વાતરોગ હઠાવવા માટે, ઠંડી દૂર કરવા માટે તથા જ્વર-તાવ અને કોલેરા દૂર કરવા માટે ડામવું-આદિ કાર્ય કરવામાં, આ સર્વ પ્રયોજનો માટે આ જીવનના સુખના અર્થી પુરુષ પોતે દ્રવ્યભાવ રૂપ અગ્નિશસ્ત્રનો

ऽन्यैर्वा अग्निशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति। अन्यान् वा अग्निशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति। तत्=अग्निकायसमारम्भणं, तस्य=अग्निकायसमारम्भणं कुर्वत', कारयितु', अनुमोदयितुश्च, अहिताय भवति, तथा तत्, तस्य अबोधये=सम्यक्त्वाऽलाभाय, भवति॥ सू० ७॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपेऽग्निकायजीवस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह-'से तं' इत्यादि।

मूलम्—

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणं वा अंतिए, इहमेगेसिं णायं भवइ-एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए, इच्चत्थं गड्ढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं

मास्वरूप अग्निशस्त्र का आरंभ करता है दूसरों से आरंभ करवाता है और आरंभ करने वाले की अनुमोदना करता है। वह अग्निकाय का आरंभ करने, कराने और अनुमोदन करने वाले के अहित और सम्यक्त्व की अप्राप्ति के लिए होता है॥ सू० ७॥

जिस ने तीर्थङ्कर आदि से अग्निकाय का स्वरूप समझ लिया है वह इस प्रकार विचार करता है—'से तं' इत्यादि।

मूलार्थ—जो पुरुष तीर्थङ्कर भगवान् या उनके अनगारों से उपदेश सुनकर चारित्र अङ्गीकार कर के विचरता है, वह इस प्रकार सोचता है—संसार में किन्हीं-किन्हीं को ही यह ज्ञान होता है कि—यह ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है।

આરંભ કરે છે બીજા પાસે આરંભ કરાવે છે અને આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે—આ અગ્નિકાયનો આરંભ કરનાર, કરાવનાર અને કરનારને અનુમોદન આપનારના અહિત અને સમ્યક્ત્વની અપ્રાપ્તિ માટે થાય છે (સૂ. ૭)

જેણે તીર્થંકર આદિ પાસેથી અગ્નિકાયનું સ્વરૂપ સમજી લીધું છે તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે—સેતં ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—જે પુરુષ તીર્થંકર ભગવાન અથવા તો તેમના અણગારો પાસેથી ઉપદેશ સાંભળી ચારિત્ર અંગીકાર કરીને વિચરે છે—તે આ પ્રમાણે વિચારે છે કે—સંસારમાં કોઈ-કોઈનેજ આ જાણવામાં આવે છે કે—આ ગ્રંથ છે આ મોહ છે આ માર-મૃત્યુ છે.

अगणिकम्मसमारम्भेणं अगणिसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स तत् संवुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति–एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण अग्निशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य आदानीयम्=उपादेय सर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, संवुध्यमानः=अहितावोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवति।

स हि एवं विभावयति–इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिग्रन्थोपदेश-

गृद्ध लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निकर्म का आरंभ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अनगारों के निकट उपदेश सुनकर सर्वसावद्ययोग के त्यागरूप चारित्र को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के समारंभ को अहितकर और अबोधिकर समझ लेता है।

वह इस प्रकार सोचता है–इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रंथो के उपदेश से

આ નરક છે ગૃદ્ધલોક નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી અગ્નિકર્મનો સમારંભ કરીને અગ્નિ શસ્ત્રનો વ્યાપાર કરતા થકા અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે (સૂ. ૮)

ટીકાર્થ—જે પુરૂષ ભગવાન તીર્થંકર અથવા તેમના અણગારોની સમીપ ઉપદેશ સાંભળીને સર્વસાવદ્યયોગના ત્યાગરૂપ ચારિત્રનો સ્વીકાર કરીને વિચરે છે તે અગ્નિકાયના સમારંભને અહિતકર અને અબોધિકર સમજી લે છે

તે આ પ્રમાણે વિચારે છે કે–આ મનુષ્ય લોકમા શ્રમણ નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી

संजातसम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ? -त्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु ग्रन्थः' इत्यादि ।

एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः-ग्रथ्यते=बध्यतेऽनेनेति-ग्रन्थः=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारात् कारणभूतोऽग्निशस्त्रसमारम्भ एव कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः=अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थं=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूप घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनःपुनरेतदर्थमेव, लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=

जिन्हें सम्यग्ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है उन आत्मार्थी पुरुषों को ही विदित होता है। क्या विदित होता ? सो कहते हैं-'यह ग्रंथ है' इत्यादि ।

यह अग्निशस्त्र का समारंभ निश्चय ही आठ प्रकार का कर्मबंध है। कारण में कार्य का उपचार करने से अग्निशस्त्र के समारंभ को ही कर्मबंध कहा है, वास्तव में यह समारम्भ कर्मबन्ध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए। तथा यह अग्निसमारंभ मोह है-विपर्यास है-अज्ञान है ।

तथा यह समारंभ मृत्युरूप है-निगोद आदि मरणरूप है । और यह नरक है-नरक की दश प्रकार की यातनाओं का स्थान है ।

कर्मबंध मोह, मरण और नरक रूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी

જેને સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે તે આત્માર્થી પુરૂષોનેજ જાણવામાં હોય છે શું જાણવામાં હોય છે? તે કહે છે- આ ગ્રંથ છે આદિ.

આ અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ નિશ્ચય-નક્કીજ આઠ પ્રકારના કર્મબંધ છે કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભનેજ કર્મબંધ કહ્યો છે વાસ્તવિક રીતે આ સમારંભ કર્મબંધનું કારણ છે આ પ્રમાણે આગળ પણ સમજી લેવું જોઈએ. તથા આ સમારંભ મોહ છે-વિપર્યાસ-અજ્ઞાન છે તથા આ સમારંભ મૃત્યુરૂપ છે-નિગોદ આદિ મરણરૂપ છે અને આ નરક છે-નરકની દશ પ્રકારની યાતનાઓનું સ્થાન છે.

કર્મબંધ મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ

अगणिकम्मसमारम्भेणं अगणिसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति–एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण अग्निशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य आदानीयम्=उपादेय सर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, संबुध्यमानः=अहितावोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवति।

स हि एवं विभावयति–इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेश-

---

गृद्ध लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निकर्म का आरभ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अनगारों के निकट उपदेश सुनकर सर्वसावद्ययोग के त्यागरूप चारित्र को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के समारभ को अहितकर और अबोधिकर समझ लेता है।

वह इस प्रकार सोचता है–इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रंथो के उपदेश से

આ નરક છે. ગૃદ્ધલોક નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી અગ્નિકર્મનો સમારભ કરીને અગ્નિ શસ્ત્રનો વ્યાપાર કરતા થકા અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે (સૂ. ૮)

ટીકાર્થ—જે પુરૂષ ભગવાન તીર્થંકર અથવા તેમના અણુગારોની સમીપ ઉપદેશ સાંભળીને સર્વસાવદ્યયોગના ત્યાગરૂપ ચારિત્રનો સ્વીકાર કરીને વિચરે છે તે અગ્નિકાયના સમારભને અહિતકર અને અબોધિકર સમજી લે છે

તે આ પ્રમાણે વિચારે છે કે–આ મનુષ્ય લોકમા શ્રમણ નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી

संजातसम्यग्बोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?-त्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु ग्रन्थः' इत्यादि ।

एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः-ग्रथ्यते=बध्यतेऽनेनेति-ग्रन्थः=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारात् कारणभूतोऽग्निशस्त्रसमारम्भ एव कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः=अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थं=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनःपुनरेतदर्थमेव, लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=

जिन्हें सम्यग्ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है उन आत्मार्थी पुरुषों को ही विदित होता है । क्या विदित होता ? सो कहते हैं—'यह ग्रन्थ है' इत्यादि ।

यह अग्निशस्त्र का समारंभ निश्चय ही आठ प्रकार का कर्मबंध है । कारण में कार्य का उपचार करने से अग्निशस्त्र के समारंभ को ही कर्मबंध कहा है, वास्तव में यह समारम्भ कर्मबन्ध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए । तथा यह अग्निसमारंभ मोह है-विपर्यास है—अज्ञान है ।

तथा यह समारंभ मृत्युरूप है-निगोद आदि मरणरूप है । और यह नरक है—नरक की दस प्रकार की यातनाओं का स्थान है ।

कर्मबंध मोह, मरण और नरक रूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी

जेने सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य उत्पन्न थई गयो छे, ते आत्मार्थी पुरुषोनेज जाणवामां होय छे शुं जाणवामां होय छे ? ते कहे छे—'आ ग्रंथ छे' आदि.

आ अग्निशस्त्रनो आरंभ निश्चय—नक्कीज आठ प्रकारना कर्मबंध छे कारणमां कार्यनो उपचार करवाथी अग्निशस्त्रना समारंभनेज कर्मबंध कह्यो छे वास्तविक रीते आ समारंभ कर्मबंधनुं कारण छे आ प्रमाणे आगळ पण समजी लेवुं जोईए. तथा आ समारंभ मोह छे—विपर्यास—अज्ञान छे तथा आ समारंभ मृत्युरूप छे—निगोद आदि मरणरूप छे अने आ नरक छे—नरकनी दस प्रकारनी यातनाओनुं स्थान छे

कर्मबंध, मोह, मरण अने नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने पण

अगणिकम्मसमारम्भेणं अगणिसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स तत् सम्बुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके, इहैकेषां ज्ञात भवति–एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण अग्निशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य आदानीयम्=उपादेय सर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, सम्बुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवति ।

स हि एवं विभावयति–इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेश-

---

गृद्ध लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निकर्म का आरभ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अनगारों के निकट उपदेश सुनकर सर्वसावद्ययोग के त्यागरूप चारित्र को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के समारभ को अहितकर और अबोधिकर समझ लेता है ।

वह इस प्रकार सोचता है–इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रंथो के उपदेश से

આ નરક છે ગૃદ્ધલોક નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી અગ્નિકર્મનો સમારભ કરીને અગ્નિ શસ્ત્રનો વ્યાપાર કરતા થકા અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે (સૂ. ૮)

ટીકાર્થ—જે પુરૂષ ભગવાન તીર્થંકર અથવા તેમના અણગારોની સમીપ ઉપદેશ સાંભળીને સર્વસાવદ્યયોગના ત્યાગરૂપ ચારિત્રનો સ્વીકાર કરીને વિચરે છે તે અગ્નિકાયના સમારભને અહિતકર અને અબોધિકર સમજી લે છે

તે આ પ્રમાણે વિચારે છે કે–આ મનુષ્ય લોકમાં શ્રમણ નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી

संजातसम्यगवबोधवैराग्याणामारमार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ? -त्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु ग्रन्थः' इत्यादि ।

एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः-ग्रथ्यते=बध्यतेऽनेनेति-ग्रन्थः=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारात् कारणभूतोऽग्निशस्त्रसमारम्भ एव कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः=अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थं=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूप घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनःपुनरेतदर्थमेव, लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=

जिन्हें सम्यग्ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है उन आत्मार्थी पुरुषों को ही विदित होता है । क्या विदित होता ? सो कहते हैं-'यह ग्रंथ है' इत्यादि ।

यह अग्निशस्त्र का समारंभ निश्चय ही आठ प्रकार का कर्मबंध है । कारण में कार्य का उपचार करने से अग्निशस्त्र के समारंभ को ही कर्मबंध कहा है, वास्तव में यह समारम्भ कर्मबन्ध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए । तथा यह अग्निसमारंभ मोह है-विपर्यास है-अज्ञान है ।

तथा यह समारंभ मृत्युरूप है-निगोद आदि मरणरूप है । और यह नरक है-नरक की दश प्रकार की यातनाओं का स्थान है ।

कर्मबंध मोह मरण और नरक रूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी

જેને સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે, તે આત્માર્થી પુરુષોનેજ જાણવામાં હોય છે શું જાણવામાં હોય છે ? તે કહે છે- આ ગ્રંથ છે આદિ.

આ અગ્નિશસ્ત્રને આરંભ નિશ્ચય-ખરેખર આઠ પ્રકારના કર્મબંધ છે કારણમાં કાર્યને ઉપચાર કરવાથી અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભનેજ કર્મબંધ કહ્યો છે વાસ્તવિક રીતે આ સમારંભ કર્મબંધનું કારણ છે આ પ્રમાણે આગળ પણ સમજી લેવું જોઈએ. તથા આ સમારંભ મોહ છે-વિપર્યાસ-અજ્ઞાન છે તથા આ સમારંભ મૃત્યુરૂપ છે-નિગોદ આદિ મરણરૂપ છે અને આ નરક છે-નરકની દસ પ્રકારની યાતનાઓનું સ્થાન છે

કર્મબંધ મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ

भोगाभिलाषी लोकः=संसारी जीवः इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=कर्मबन्धमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तते इति शेषः।

अयं भावः–भोगाभिलाषी लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं चाग्निशस्त्रसमारम्भं करोति, तत्फलं खलु कर्मबन्ध–मोह–मरण–नरकरूपमेव लभते, तस्मादग्निशस्त्रसमारम्भस्य तदेव फलं बोध्यमिति ।

'लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्तते' इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते? इति जिज्ञासायामाह–'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=पूर्वोक्तप्रकारैः अग्निकर्म-

---

जीव बार–बार इसी की इच्छा करते हैं। अथवा भोगों का अभिलाषी ससारी जीव इस कर्मबंध, मोह मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्त होते हैं।

तात्पर्य यह है–भोगों का अभिलाषी लोक शरीर आदि का पोषण करने के लिए, वदना, मानना और पूजा के लिए जन्म–मरण से मुक्त होने के लिए और दु ख का प्रतीकार करने के लिए अग्निशस्त्र का समारभ करता है और फलस्वरूप कर्मबंध, मोह, मरण और नरक रूप फल पाता है। अत एव अग्निशस्त्र के समारभ का फल वही बंध आदि समझना चाहिए।

'लोक बार–बार कर्मबंध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करता है' यह जो कहा है सो कैसे ज्ञात हुआ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—

क्यों कि वह नाना प्रकार के पूर्वोक्तशस्त्रों से अग्नि की विराधना करने वाला

અજ્ઞાની જીવ વારવાર તેનીજ ઈચ્છા કરે છે અથવા–ભોગોનો અભિલાષી સંસારી જીવ આ કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરક માટેજ પ્રવૃત્ત થાય છે

તાત્પર્ય એ છે–ભોગોના અભિલાષી માણસો શરીર આદિનું પોષણ કરવા માટે વંદના, માનના અને પૂજાને માટે, જન્મમરણથી મુક્ત થવા માટે અને દુ:ખનો પ્રતિકાર કરવા માટે અગ્નિશસ્ત્રનો સમારંભ કરે છે અને ફલસ્વરૂપ કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ફલને પ્રાપ્ત કરે છે એટલા માટે અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભનું ફલ તે બંધ આદિ સમજવા જોઈએ

લોક વાર–વાર કર્મબંધ વગેરે માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે એવું જે કહ્યું તે કેવી રીતે જાણવામાં આવ્યું? આ પ્રમાણે જીજ્ઞાસા થવાથી કહે છે—

કેમકે તે નાના પ્રકારના પૂર્વોક્ત શસ્ત્રોથી અગ્નિની વિરાધના કરવાવાળો સાવદ્ય

समारम्भेण=अभ्युपमर्दनरूपसावद्यव्यापारेण, इमम्=अग्निकाय विहिनस्ति । तथा अग्निशस्त्रं समारभमाणः=व्यापारयन् अन्यान्=पृथिवीकायादीन्, अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावरांश्च, प्राणान्=प्राणिनो, विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ८ ॥

अग्निशस्त्रं समारभमाणा अनेकविधान् जीवान् कथं विहिंसन्ति ? तत्प्रति बोधयितुं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह-'से बेमि' इत्यादि ।

मूलम्—

से बेमि-संति पाणा पुढवीनिस्सिया तणनिस्सिया पत्तनिस्सिया कट्ठनिस्सिया गोमयनिस्सिया कयवरनिस्सिया, संति संपाइमा पाणा आहच्च संपयंति, अगणिं च खलु पुट्ठा एगे संघायमावज्जंति, जे तत्थ संघायमावज्जंति,

---

सावद्य व्यापार कर के अग्निकाय की हिंसा करता है और अग्निकाय का आरंभ करता हुआ अन्य पृथ्वीकाय आदि नाना प्रकार के स्थावर एवं त्रस प्राणियों का घात करता है ॥ सू० ८ ॥

अग्निशस्त्र का आरंभ करने वाले अनेक प्रकार के जीवों की विराधना किस प्रकार करते हैं । यह समझाने के लिए श्रीसुधर्मा स्वामी कहते हैं —'से बेमि' इत्यादि।

मूलार्थ—मैं कहता हूँ-जीव पृथिवी के आश्रित हैं, तृण के आश्रित हैं, पत्ता के आश्रित हैं, काष्ठ के आश्रित हैं गोबर के आश्रित हैं कचरे के आश्रित हैं; सपातिम जीव अचानक आकर अग्नि में पड़ जाते हैं, कोई-कोई अग्नि का छूकर सिकुड़

व्यापार કરીને અગ્નિકાયની હિંસા કરે છે અને અગ્નિકાયનો આરંભ કરતાં સાથે અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ નાના પ્રકારના ત્રસ જીવો અને પ્રમાણે સ્થાવર પ્રાણીઓનો ઘાત કરે છે (સૂ. ૮)

અગ્નિકાયનો આરંભ કરવાવાળા અનેક પ્રકારના જીવોની વિરાધના કયા પ્રકારે (કેવી રીતે) કરે છે? તે સમજાવવા માટે, શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે- સે બેમિ ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—તે હું કહું છું-જીવ પૃથ્વીના આશ્રિત છે તૃણને આશ્રિત છે પત્તા-પાંદડાને આશ્રિત છે કાષ્ઠને આશ્રિત છે છાણને આશ્રિત છે કચરાને આશ્રિત છે સંપાતિમજીવ અચાનક આવીને અગ્નિમાં પડી જાય છે કે કોઈ-કોઈ અગ્નિ છે ત

ते तत्थ परियावज्जंति जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उद्दायंति ॥ सू० ९ ॥

छाया—

तद् ब्रवीमि-सन्ति प्राणाः पृथिवीनिश्रिताः तृणनिश्रिताः पत्रनिश्रिताः काष्ठनिश्रिताः गोमयनिश्रिताः कचवरनिश्रिताः, सन्ति सपातिमाः प्राणाः आहत्य संपतन्ति, अग्निं च खलु स्पृष्टा एके संघातमापद्यन्ते, ये तत्र संघातमापद्यन्ते ते तत्र पर्यापद्यन्ते, ये तत्र पर्यापद्यन्ते ते तत्रापद्रावन्ति ॥ सू० ९ ॥

टीका—

तद्=अग्निकायहिंसया यथा बहुविधाः प्राणिनः प्रणश्यन्ति, तद् ब्रवीमि=कथयामि, पृथिवीनिश्रिताः=पृथिवीरूपं कायमाश्रित्य वर्तमानाः पृथिवीकायिका इत्यर्थः । 'पृथिवीनिश्रिताः' इत्युपलक्षणम्, तेन तदाश्रिताः कृमि-कुन्थु-पिपीलिका-भुजङ्गम-मण्डूक-वृश्चिक-कर्कटकादयो गृह्यन्ते । तथा च पृथिवीकायिकास्तदाश्रितास्त्रसाश्चेत्यर्थः, वृक्षलतादयश्च । तथा-तृणनिश्रिताः=वनस्पतिकायिकाः,

---

जाते हैं, जो सिकुड जाते हैं वे मूर्छित हो जाते हैं और जो मूर्छित हो जाते है वे मर भी जाते हैं ॥सू० ९॥

टीकार्थ—अग्निकाय की हिंसा से बहुत प्रकार के जीवों का घात होता है, सो मैं कहता हूँ—पृथिवी के सहारे रहने वाले जीव पृथिवीकायिकों के अतिरिक्त और भी बहुत से हैं। जैसे—कृमि, कुथुवा, चिउटी, साप, मेंढक, बिच्छु, कैंकडा, आदि। अत पृथिवी आश्रित का अर्थ यहा पृथिवीकायिक स्थावर तथा त्रस जीव लेना चाहिए।- वृक्ष और बेल आदि भी इसी में सम्मिलित हैं। तथा तृण—आश्रित वनस्पतिकाय के

मूर्च्छित थई जाय छे, अने जे मूर्छित थाय छे ते मरी पण जाय छे (सू. ९)

टीकार्थ—अग्निकायनी हिंसाथी घणाज प्रकारना जीवोनो घात थाय ते हुं कहुं छुं-पृथ्वीना आश्रये रहेवावाळा जीव पृथ्वीकायोनी साथे बीजा पण घणा छे जेम कृमि कुंथवा, कीडीओ, साप, देडका, वीछी केकडा आदि ओ कारणथी पृथ्वीआश्रितनो अर्थ अहिं पृथ्वीकायिक स्थावर तथा त्रस जीव लेवा जोईओ वृक्ष अने वेला-वेल आदि पण तेमा सम्मिलित छे. तथा तृण—आश्रित वनस्पतिकायना जीव अने तृणना आश्रये रहेवा-

तृणमाश्रित्यावस्थायिनः मत्कुणकीटतृणजलौकादयश्च, तथा-पत्रनिश्रिताः=वनस्पतिकायिकाः पत्रमाश्रित्य निवासिनः पिपीलिकाभेदाः 'योहम' इति मगधदेशे प्रसिद्धाः, कीटपतङ्गनीलकुन्थुप्रभृतयश्च, तथा-काष्ठनिश्रिताः काष्ठं शरणीकृत्य स्थिताः घुणोद्देहिका-तत्सम्बादयः, अत्र काष्ठं शुष्कमिन्धनरूपं सार्द्रं च गृह्यते। तथा-गोमयनिश्रिताः =गण्डूपदभूमिस्फोटादय। तथा कचवरनिश्रिताः-कचवरः शुष्कतृणपत्रसमुदायः, तं निश्रिताः=समाश्रिताः कृमिकुन्थुकीटादयः प्राणाः=प्राणिनः सन्ति।

तथा-सम्पातिमाः=उत्प्लुत्योत्प्लुत्य पतनशीलाः, प्राणाः=प्राणिनः दंशमशकमक्षिकापतङ्गपक्षिपवनादयः सन्ति। एते संपातिमा आहत्य=अग्निशिखाकृष्टाः स्वयमेवोपेत्य, अग्नौ संपतन्ति।

बीज और तृण के सहारे रहने वाले मच्छर कीड़े और घास की जोंक (जौंक) आदि तृण-निश्रित कहलाते हैं। पत्तों के सहारे रहने वाले मगध देश में प्रसिद्ध योहम तथा कीट, पतंग एवं नीलकुंथु (चट) आदि जीव हैं। घुन, उदई और उनके अण्डे आदि काठ के सहारे रहने वाले जीव काष्ठनिश्रित कहलाते हैं। यहाँ 'काठ' शब्द से सूखा ईंधनरूप काठ और गीला काठ, दोनों समझने चाहिए। तथा गोबर के आश्रित गिंडोला और भूमिस्फोटक (भूफोड़) आदि जीव हैं। इसी प्रकार कचरे के सहारे रहने वाले कृमि कुंथुवा तथा कीड़ा वगैरह, ये सब प्राणी हैं।

उड़-उड़ कर गिरने वाले डांस, मच्छर, मक्खी पतंग, पक्षी और पवन आदि संपातिम जीव कहलाते हैं। ये संपातिम जीव आग की शिखा से स्वयं आकर्षित हो कर भस्म में गिर जाते हैं।

વાળા મચ્છર કીડા અને ઘાસની જળો આદિ તૃણ આશ્રિત કહેવાય છે પત્રો-પાંદડાંના આશ્રયે રહેવાવાળા મગધદેશમાં પ્રસિદ્ધ યોહમ તથા કીટ પતંગ અને નીલકુંથુ (ચટ) આદિ જીવ છે ઘુણ ઉધેઈ અને તેનાં ઈંડાં આદિ-લાકડાંના સહારે રહેવાવાળા જીવ કાષ્ઠનિશ્રિત કહેવાય છે. અહિં કાષ્ઠ શબ્દથી સૂકાં લાકડાંરૂપ કાષ્ઠ અને લીલાં કાષ્ઠ, આ બન્ને સમજવાં જોઈએ, તથા છાણમાં આશ્રય કરીને રહેતાં ગિંડોળા અને ભૂફોડા આદિ જીવ છે આ પ્રમાણે કચરાના આશ્રયે રહેવાવાળા કૃમિ, કુંથુવા તથા કીડા વગેરે, આ સર્વ પ્રાણી છે.

ઉડી-ઉડીને પડવાવાળા ડાંસ, મચ્છર, માખી, પતંગ, પક્ષી અને પવન આદિ સંપાતિમ જીવ કહેવાય છે એ સંપાતિમ જીવ આગની-અગ્નિની શિખાથી પોતે આકર્ષિત થઈને અગ્નિમાં પડી જાય છે.

अग्निकायसमारम्भे पृथिव्यादिसमाश्रितानां स्थावराणां त्रसानां चोपमर्दनादिकं यथा भवति तद् दर्शयितुमाह—अग्निं चेत्यादि ।

एके—केचित् प्राणिनः, अग्निम्=समुत्पादितं प्रज्वालितं चाग्निकायं स्पृष्टाः स्पर्शकर्तारः, आर्षत्वात् कर्तरि क्तः ।

संघातं=पक्षादिदहनेन गात्रसंकोचनम् आपद्यन्ते, प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । तत्र=अग्नौ पतित्वा ये जीवाः संघातमापद्यन्ते, ते तत्र पर्यापद्यन्ते=तापाभिभूता मूर्छां प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । ये तत्र=अग्नौ पर्यापद्यन्ते, ते तत्र=अग्नौ, अपद्रावन्ति=प्राणान् परित्यजन्ति । अग्निसमारम्भेण केवलमग्निकायविराधना न भवति, अपितु सर्वदिक्संचारिणां त्रसानां पृथिव्यादीनां स्थावराणामपि बहुतराणां हिंसाऽवश्यं भवतीति भावः । अत एवोक्तं भगवता—

अग्निकाय का आरंभ करने से पृथिवी आदि में आश्रित स्थावरों और त्रस जीवों का विराधन किस प्रकार होता है ? सो कहते हैं ।

कोई—कोई प्राणी जलती अग्नि को स्पर्श करके सिकुड जाते हैं—उन के पंख वगैरह जल जाते हैं । अग्नि में पड कर जो जीव संघात को प्राप्त होते हैं वे गर्मी से मूर्च्छित हो जाते हैं । अग्नि में गिरने वाले अपने प्राण भी खो देते हैं । अग्नि का समारंभ करने से केवल अग्निकाय की ही विराधना नहीं होती वरन् सभी दिशाओं में संचार करने वाले त्रस और बहुत से स्थावर जीवों की भी हिंसा अवश्य होती है । इसी लिए भगवान् ने कहा है —

અગ્નિકાયનો આરંભ કરવાથી પૃથ્વીઆદિમાં આશ્રય કરીને રહેલા સ્થાવરો અને ત્રસ જીવોની વિરાધના જે પ્રકારે થાય છે, તે કહે છે—

કોઈ–કોઈ પ્રાણી બળતી અગ્નિનો સ્પર્શ કરીને સંકોચાઈ જાય છે તેની પાંખો વગેરે બળી જાય છે અગ્નિમાં પડીને જે જીવ સંઘાતને પ્રાપ્ત થાય છે તે ગરમીથી મૂર્છિત થઈ જાય છે અગ્નિમાં પડવાવાળા જીવ જે મૂર્છિત થઈ જાય છે તે પોતાના પ્રાણ પણ ખોઈ નાખે છે અગ્નિનો સમારંભ કરવાથી કેવલ અગ્નિકાયની વિરાધના થતી નથી, પરન્તુ સર્વ દિશાઓમાં સંચાર કરવાવાળા ત્રસ અને ઘણાજ સ્થાવર જીવોની પણ હિંસા અવશ્ય થાય છે. એ માટે ભગવાને કહ્યું છે—

"जायतेयं न इच्छंति, पावगं जलइत्तए ।
तिक्खमन्नयरं सत्थं, सव्वओवि दुरासयं ॥ १ ॥
पाईणं पडिणं वावि, उड्ढं अणुदिसामवि ।
अहे दाहिणओ वावि, दहे उत्तरओवि य ॥ २ ॥
भूयाणमेसमाघाओ, हव्ववाहो न संसओ ।
तं पईवपयावट्ठा, संजओ किंचि नारभे ॥ ३ ॥" (दसवै० अ० ६)

छाया—जाततेजसं नेच्छन्ति, पावकं ज्वालयितुम् ।
तीक्ष्णमन्यतरत् शस्त्रं, सर्वतोऽपि दुरासदम् ॥ १ ॥
प्राच्यां प्रतीच्यां वापि, ऊर्ध्वमनुदिक्ष्वपि ।
अधो दक्षिणतो वापि, दहत्युत्तरतोऽपि च ॥ २ ॥
भूतानामेष आघातो, हव्यवाहो न संशयः ।
तं प्रदीपप्रतापार्थं, संयतः किञ्चिन्नारभेत ॥ ३ ॥

'साधु अग्नि को जलाने की इच्छा तक नहीं करते, क्यों कि यह एक बड़ा ही तीक्ष्ण शस्त्र है, जो किसी भी ओर से दुस्सह है—सभी ओर से जलाता है ॥१॥

यह अग्निशस्त्र पूर्व से भी और पश्चिम से भी ऊपर से भी और विदिशाओं की तरफ से भी नीचे से भी और दक्षिण से भी तथा उत्तर से भी जलाता है ॥२॥

अग्नि जीवों का घातक है, इस में कोई संशय नहीं है । साधु दीपक जलाने तथा प्रतापने के लिए उस का जरा भी आरंभ नहीं करते ॥३॥ (दशवै अध्य ६)

फिर भी कहा है—

સાધુ અગ્નિને સળગાવવાની ઇચ્છા સુધી કરતા નથી, કારણ તે એક મહાન તીક્ષ્ણ શસ્ત્ર છે તે કોઈપણ બાજુથી દુસ્સહ છે—બધીએ તરફથી બાળે છે " ॥ ૨ ॥

આ અગ્નિશસ્ત્ર પૂર્વથી પણ અને પશ્ચિમથી પણ ઉપરથી અને વિદિશાઓની તરફથી પણ નીચેથી અને દક્ષિણથી પણ અને ઉત્તરથી પણ બાળે છે. ॥ ૨ ॥

અગ્નિ જીવોનો ઘાતક છે તેમાં કોઈ પણ સંશય નથી સાધુ દીપક સળગાવવા તથા તાપવાને માટે તેનો જરા પણ આરંભ કરતા નથી." ॥ ૩ ॥ (દશવૈ. અધ્ય. ૬)

ફરી પણ કહે છે—

"दो पुरिसा सरिसवया अन्नमन्नेहिं सद्धिं अगणिकायं समारंभंति, तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकायं समुज्जालेति, एगे विज्झवेति, तत्थ णं के पुरिसे महाकम्मयराए? के पुरिसे अप्पकम्मयराए? गोयमा! जे उज्जालेति से महाकम्मयराए, जे विज्झवेति से अप्पकम्मयराए" ॥

छाया—द्वौ पुरुषौ सदृशवयस्कौ अन्यान्याभ्यां सार्द्धम् अग्निकायं समारभेते, तत्र खलु एकः पुरुषः अग्निकाय समुज्ज्वालयति, एको विध्यापयति, तत्र खलु कः पुरुषः महाकर्मतरकः? कः पुरुषः अल्पकर्मतरकः?। गौतम! यः (अग्निं) उज्ज्वालयति स महाकर्मतरकः, य (अग्निं) विध्यापयति स अल्पकर्मतरकः (भगवती सूत्र०) ॥ सू० ९ ॥

तदेवमग्निकायहिंसया बहुतरजीवोपमर्दनं भवतीति विदित्वा त्रिकरणत्रियोगैः कृतकारितानुमोदितैश्चाग्निशस्त्रसमारम्भो वर्जनीय इत्याह–'एत्थ सत्थ' इत्यादि।

"समान उम्र वाले दो पुरुष परस्पर अग्निकाय का आरंभ करते हैं। एक पुरुष अग्निकाय को जलाता है और एक बुझाता है। इन में से कौन-सा पुरुष महाकर्म बाँधता है? और कौन अल्पकर्म बाँधता है?। हे गौतम! जो अग्नि जलाता है वह महा कर्म बाँधता है और जो अग्नि बुझाता है वह अल्प कर्म बाँधता है" (भगवतीसूत्र) ॥ सू० ९॥

इस प्रकार अग्निकाय की हिंसा होती है, यह जानकर तीन करण, तीन योग से, तथा कृत, कारित और अनुमोदना से अग्निशस्त्र का समारंभ त्याग देना चाहिए, यही बात कहते हैं–'एत्थ सत्थं.' इत्यादि।

"સમાન ઉમરવાળા બે પુરૂષ પરસ્પર અગ્નિકાયનો આરંભ કરે છે. એક પુરૂષ અગ્નિકાયને સળગાવે છે બાળે છે અને એક બુઝાવે–ઓલવે છે તે બેમાથી કયો પુરૂષ મહા કર્મ બાંધે છે અને કોણુ અલ્પ કર્મ બાંધે છે? હે ગૌતમ! જે અગ્નિ સળગાવે છે–બાળે છે તે મહા કર્મ બાંધે છે અને જે અગ્નિ બુઝાવે છે તે અલ્પ કર્મ બાંધે છે" (ભગવતી સૂત્ર) (સૂ. ૯)

આ પ્રમાણે અગ્નિકાયની હિંસાથી ઘણા પ્રકારના જીવોની હિંસા થાય છે. એ જાણી કરીને ત્રણ કરણ, ત્રણ યોગથી તથા કરવું, કરાવવું અને અનુમોદનાથી અગ્નિશસ્ત્રનો સમારંભ ત્યજી દેવો જોઈએ, એજ વાત કહે છે–'एत्थ सत्थं.' ઈત્યાદિ.

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति। एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति। तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं अगणिसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं अगणि-सत्थं समारंभावेज्जा अगणिसत्थं समारंभमाणे अण्णे न समणुजाणिज्जा जस्सेते अगणिकम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्ति बेमि ॥ सू० १० ॥

॥ चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥ १-४ ॥

छाया—

अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति। अत्र शस्त्रमसमारभमाणस्य इत्येत आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति। तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयमग्निशस्त्रं समारभेत नैवान्यैरग्निशस्त्रं समारम्भयत्, अग्निशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात्। यस्यैते अग्निकर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा-इति ब्रवीमि ॥ सू० १० ॥

॥ चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ १-४ ॥

टीका—

अत्र-अस्मिन् अग्निकाये, शस्त्रं द्रव्यभावरूपं प्रागुक्तं समारभमाणस्य=

मूलार्थ—अग्निशस्त्र का आरंभ करने वाला इन आरंभों को नहीं जानता। अग्निशस्त्र का आरंभ न करने वाला इन आरंभो को जानता है। इन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं अग्निशस्त्र का आरंभ न करे, दूसरों से अग्निशस्त्र का आरंभ न करावे और अग्निशस्त्र का आरंभ करने वालों की अनुमोदना न करे। जो इन समारंभों का ज्ञाता होता है वही मुनि परिज्ञातकर्मा है ऐसा मैं (भगवान् के कथनानुसार) कहता हूँ। सू० १०॥

टीकार्थ—अग्निकाय में द्रव्य और भावरूप पूर्वोक्त शस्त्र का व्यापार करने

મૂલાર્થ—અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા એ આરંભોને જાણતા નથી. અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ નહિ કરવાવાળા એ આરંભોને જાણે છે તેને જાણીને બુદ્ધિમાન પુરુષ સ્વયં અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ ન કરે, બીજા પાસે અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ કરાવે નહિ અને અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે નહિ જે આ સમારંભોના જ્ઞાતા-જાણકાર હોય છે તે મુનિ પરિજ્ઞાતકર્મા છે. એ પ્રમાણે હું (ભગવાનના વચનાનુસાર) કહું છું (સૂ. ૧૦)

ટીકાર્થ—અગ્નિકાયમાં દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ પૂર્વોક્ત શસ્ત્રનો વ્યાપાર (ઉપયોગ)

व्यापारयतः, इत्येते=पचनपाचनादयः आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः, अपरिज्ञाताः= अष्टविधकर्मबन्धकारणत्वेनाविज्ञाता भवन्ति, अग्निकाये शस्त्रं प्रयुञ्जानस्य परिज्ञाया अभावादिति भावः ।

अत्र=अस्मिन् अप्काये शस्त्रम्=पूर्वोक्तस्वरूपम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य, इत्येते=पचनपाचनादयः, आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः, परिज्ञाताः ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति तथा दर्शयति-'तत् परिज्ञाये'-त्यादि । तत्=अग्निकायारम्भणं, परिज्ञाय='कर्मबन्धाय भवती'-त्येवमवबुध्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेककुशलः, साधुमर्यादावधानशील इति यावत्, नैव स्वयमग्निशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरग्निशस्त्रं समारम्भयेत्, अग्निशस्त्रं

वाले को अर्थात् पचन-पाचन आदि पापमय कार्य करने वालों को यह ज्ञान नहीं होता कि-यह कार्य आठ प्रकार के कर्मों के बध का कारण है, क्यों कि अग्निकाय के शस्त्र का प्रयोग करने वाले में परिज्ञा का अभाव होता है ।

अग्निकाय में पूर्वोक्त शस्त्र का व्यापार न करने वाले को सावद्य व्यापारों का ज्ञान होता है । वह ज्ञपरिज्ञा से उन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है ।

ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है ? सो कहते हैं-अग्निकाय का आरंभ कर्मबध का कारण है, यह जानकर हेय-उपादेय के विवेक में प्रवीण साधुमर्यादा का ध्यान रखने वाला स्वय अग्निशस्त्र का आरभ नहीं करता, दूसरों से

કરવાવાળાને અર્થાત્-પચન-પાચન આદિ પાપમય કાર્ય-કરવાવાળાને એ જ્ઞાન હોતુ નથી કે આ કાર્ય આઠ પ્રકારના કર્મોના બધનુ કારણ છે. કારણ કે અગ્નિકાયના શસ્ત્રનો પ્રયોગ કરવાવાળાઓમાં પરિજ્ઞાનો અભાવ હોય છે

અગ્નિકાયમા પૂર્વોક્ત શસ્ત્રનો વ્યાપાર-ઉપયોગ નહિ કરવાવાળાને સાવદ્ય વ્યાપારોનુ જ્ઞાન હોય છે તે જ્ઞપરિજ્ઞાથી તેને જાણે છે, અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરી આપે છે

જ્ઞપરિજ્ઞાની પછી પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞા કયા પ્રકારે ઉત્પન્ન થાય છે ? તે કહે છે-

અગ્નિકાયનો આરભ કર્મબંધનુ કારણ છે એ પ્રમાણે જાણીને હેય-ઉપાદેયના વિવેકમા પ્રવીણ-કુશળ સાધુમર્યાદાનુ ધ્યાન રાખવાવાળા પોતે અગ્નિશસ્ત્રનો આરભ કરતા નથી, બીજા પાસે આરભ કરાવતા નથી, અને આરભ કરવાવાળાને અનુમોદન

समारममाणान् अन्यान् न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत्। शेषं सुगमम्। यस्यैते अग्निकर्मसमारम्भाः=कर्मणां समारम्भाः कर्मसमारम्भाः, अग्नौ कर्मसमारम्भाः अग्निकर्मसमारम्भाः=अग्निं निमित्तीकृत्य कर्मकारणीभूता उपमर्दनव्यापारा इत्यर्थः, परिज्ञाताः=सर्वथा ज्ञाताः, ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिवर्जिता भवन्ति ॥ एव परिज्ञातकर्मा-परिज्ञातानि=ज्ञपरिज्ञया स्वरूपतो विपाकतस्त दुपादानतश्चावगतानि प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परित्यक्तानि कर्माणि=सावद्यव्यापाराः येन-स परिज्ञातकर्मा=मनोवाक्कायैः सकलसावद्यकरणकारणानुमतिनिवृत्तः मुनिर्भवती त्यर्थः। 'इति ब्रवीमि' अस्य व्याख्यानं पूर्ववद् बोध्यम्।

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययन चतुर्थोद्देशकः संपूर्णः ॥ १-४ ॥

आरंभ नहीं कराता और आरंभ करने वालों की अनुमोदना नहीं करता। शेष भाग सुगम है।

अग्नि के निमित्त से होने वाले तथा कर्मबंध के कारणभूत यह सब पापमय व्यवहार जिस ने कर्मबंध के कारण ज्ञपरिज्ञा से समझ कर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिये हैं वही परिज्ञातकर्मा मुनि है। जिसने इन व्यापारों का स्वरूप, फल और कारण ज्ञपरिज्ञा से जान लिया है तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग कर दिया है उसे परिज्ञात कर्मा मुनि कहते हैं। ऐसा मुनि मन, वचन काय से समस्त सावद्य के करने कराने और अनुमोदन करने का त्यागी होता है। 'इति ब्रवीमि' की व्याख्या पहले के समान समझ लेना चाहिए। (सू० १०)

श्रीआचाराङ्गसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीकाके हिन्दी अनुवादमें प्रथम अध्ययनका चौथा उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-४ ॥

આરંભ નથી. શેષ-બાકીનો ભાગ સુગમ છે

અગ્નિના નિમિત્તથી થવાવાળા તથા કર્મબંધના કારણભૂત આ સર્વ પાપમય વ્યવહારનો જેણે કર્મબંધના કારણે જ્ઞપરિજ્ઞાથી સમજીને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી ત્યાગ કરી આપ્યા છે તેને પરિજ્ઞાતકર્મા મુનિ કહે છે એવા મુનિ-મન, વચન, કાયાથી સમસ્ત સાવદ્યને કરવું કરાવવું અને અનુમોદન કરવું તેના ત્યાગી હોય છે 'ઇતિ બ્રવીમિ'ની વ્યાખ્યા પ્રથમના સમાન સમજી લેવી જોઈએ. (સૂ. ૧૦)

શ્રી આચારાંગસૂત્રની 'આચારચિંતામણિ' ટીકાના ગુજરાતી-અનુવાદમાં પ્રથમ અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશક સમાપ્ત (૧-૪)

अथ पञ्चमोद्देशकः—

चतुर्थोद्देशेऽग्निकायस्वरूपं मुनित्वप्राप्तये प्रतिबोधितम् । साम्प्रत तदर्थमेव क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधनावसरे वनस्पतिकायजीवस्वरूपं प्रतिबोधयितुकामः पञ्चमोद्देशकमुपक्रमते—'तं णो'. इत्यादि ।

ननु क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधन कथं न प्रक्रम्यते? उच्यते—वायुकायः प्रत्यक्षतया दृष्टिगोचरो न भवति, अतस्तत्र श्रद्धा झटिति नोदेतुं प्रभवति, पृथिव्याद्येकेन्द्रियजीवस्वरूपं प्रतिबुध्य तु सुतरां वायुकायो विज्ञास्यते, अतः स एव क्रमो गुरुभिरुपादेयो भवति, येन जीवादितत्त्वविज्ञानाय शिष्याः

पंचम उद्देशक—

चौथे उद्देश में साधुता प्राप्त करने के लिए अग्निकाय का स्वरूप समझाया है। इसी के लिए क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप समझाने के प्रसग में वनस्पतिकाय का स्वरूप बतलाने के लिए पाँचवाँ उद्देश आरभ करते है—'तं णो' इत्यादि ।

प्रश्न—क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप क्यों नहीं बतलाया गया है? और वायुकाय को छोडकर वनस्पतिकाय के विवेचन का उद्देश्य क्या है?

उत्तर—बात यह है कि वायुकाय नेत्रों से प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता—सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय से उस की प्रतीति होती है। इस कारण उस के विषय में जल्दी श्रद्धा नहीं होती। हाँ, पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों का स्वरूप समझ लेने पर वायुकाय सहज ही समझ में आ जायगा। गुरुजन वही क्रम काम मे लाते हैं जिस से शिष्य जीवादि

પચમ ઉદ્દેશક—

ચોથા ઉદ્દેશકમા સાધુતા પ્રાપ્ત કરવાને માટે અગ્નિકાયનુ સ્વરૂપ સમજાવ્યું છે આ માટેજ ક્રમ અનુસાર વાયુકાયનુ સ્વરૂપ સમજાવવાના પ્રસગે વનસ્પતિકાયનુ સ્વરૂપ બતાવવાને માટે પાચમા ઉદ્દેશકનો આરભ કરે છે—'ત ણો' ઇત્યાદિ.

પ્રશ્ન—ક્રમ પ્રમાણે વાયુકાયનુ સ્વરૂપ શા માટે બતાવ્યું નથી? અને વાયુકાયને છોડીને વનસ્પતિકાયના વિવેચનમા કયો ઉદ્દેશ્ય છે?

ઉત્તર—વાત એ છે કે-વાયુકાય નેત્રથી પ્રત્યક્ષ જોવામા આવતો નથી માત્ર સ્પર્શેન્દ્રિયથી તેની પ્રતીતિ થાય છે આ કારણથી તેના વિષયમા જલ્દી શ્રદ્ધા થતી નથી હા, પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિય જીવોનુ સ્વરૂપ સમજી લીધા પછી વાયુકાય સહજે સમજવામા આવી જશે. ગુરુજન આ ક્રમને કામમા લાવે છે, જે વડે કરી શિષ્ય જીવાદિ

स्वयमेवोत्सहन्ते, तस्मात् वायुकायस्वरूपमनभिधाय वनस्पतिकायः प्रथमं प्रस्तूयते—'तं णो ' इत्यादि ।

यद्वा—अनन्तरचतुर्थोद्देशेऽग्निकायो दीर्घलोकशस्त्रशब्देनाभिप्रतिबोधितः । तत्र दीर्घलोकशब्दार्थो वनस्पतिरित्याशय समधिगम्याग्निकायप्रकरणसमाप्त्यनन्तरं प्रथम वनस्पतिकायस्वरूपं विज्ञातुकामस्य शिष्यस्य प्रतिबोधनाय पञ्चमं वनस्पतिकायोद्देशं कथयति— तं णो ' इत्यादि ।

यथा वनस्पतिकायोपमर्दनमिहत्याऽनगारत्वं लभ्यते, तं प्रकारं निर्दिशति—'तं णो ' इत्यादि ।

तत्त्वों के ज्ञान में उत्साहित हों । यही कारण है कि पहले वायुकाय का स्वरूप न कह कर वनस्पतिकाय का वर्णन किया जाता है–'तं णो' इत्यादि ।

अथवा—चौथे उद्देश में अग्निकाय को 'दीर्घलोकशस्त्र' बतलाया है । दीर्घलोकका अर्थ वनस्पतिकाय है, यह आशय जानकर अग्निकाय के प्रकरण के पश्चात् ही शिष्य को वनस्पतिकाय का स्वरूप जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है । जिज्ञासा के अनुकूल दिया हुआ उपदेश ही अधिक सफल होता है, अत शिष्य की जिज्ञासा तृप्त करने के लिए पाँचवें उद्देश में वनस्पतिकाय का कथन किया जाता है–'तं णो' इत्यादि ।

वनस्पतिकाय की हिंसा से निवृत्त होने पर ही साधुता प्राप्त होती है, वह किस प्रकार प्राप्त होती है ? सो कहते हैं–'तं णो ' इत्यादि।

તત્ત્વોના જ્ઞાનમાં ઉત્સાહિત થાય. આ કારણથી પ્રથમ વાયુકાયના સ્વરૂપને નહિ કહેતાં વનસ્પતિકાયનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે– તં ણો ' ઇત્યાદિ

અથવા—ચોથા ઉદ્દેશકમાં અગ્નિકાયને 'દીર્ઘલોકશસ્ત્ર' તરીકે બતાવ્યું છે. દીર્ઘલોકનો અર્થ વનસ્પતિકાય છે, એ આશયને સમજીને અગ્નિકાયના પ્રકરણની પછીજ શિષ્યને વનસ્પતિકાયના સ્વરૂપને જાણવાની ઇચ્છા હોય–થવી તે સ્વાભાવિક છે જીજ્ઞાસાને અનુરૂપ આપેલો ઉપદેશજ અધિક સફલ થાય છે એ કારણથી શિષ્યની જીજ્ઞાસા તૃપ્ત કરવાને માટે પાંચમા ઉદ્દેશમાં વનસ્પતિકાયનું વિવેચન કરવામાં આવે છે–'તં ણો ઇત્યાદિ.

વનસ્પતિકાયની હિંસાથી નિવૃત્ત થવા પછીજ સાધુતા પ્રાપ્ત થાય છે તે ક્યા પ્રકારે પ્રાપ્ત થાય છે તે કહે છે–'તં ણો ઇત્યાદિ.

मूलम्—

तं णो करिस्सामि समुट्ठाए मत्ता मइमं, अभयं विदित्ता तं जे णो करए, एसोवरए एत्थोवरए, एस अणगारेत्ति पवुच्चइ ॥ सू० १ ॥

छाया—

तं नो करिष्यामि समुत्थाय मत्वा मतिमान्, अभयं विदित्वा तं यो नो कुर्यात्, एष उपरतः अत्रोपरतः, एषः अनगार इति प्रोच्यते ॥ सू० १ ॥

टीका—

मतिमान्=मेधावी श्रमणनिर्ग्रन्थादिदेशनाश्रमणसंजातहेयोपादेयविवेकवानित्यर्थः। मत्वा=वनस्पतिकायस्वरूपं विज्ञाय विभावयति—अहं समुत्थाय आत्मकल्याणार्थमुद्युक्तः सन् प्रव्रज्यां गृहीत्वा, तं=वनस्पतिकायसमारम्भं नो करिष्यामीति।

मूलार्थ—मेधावी पुरुष विचार करता है—मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर वनस्पतिकाय का आरभ नहीं करूँगा। जो पुरुष सयम को जानकर आरभ नहीं करता है वही आरभ से उपरत है—वही जिन शासन में आरभ से निवृत्त कहलाता है। वही अनगार कहलाता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—श्रमण निर्गन्थ आदि का उपदेश सुनने से जिसे हेय और उपादेय का विवेक उत्पन्न हो गया है वह वनस्पतिकाय का स्वरूप जानकर इस प्रकार विचार करता है—मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर—दीक्षा लेकर वनस्पतिकाय का आरभ समारभ नहीं करूँगा ॥

મૂલાર્થ—મેધાવી પુરૂષ વિચાર કરે છે–હું આત્મકલ્યાણ માટે તૈયાર થઈને વનસ્પતિકાયનો આરંભ નહિ કરૂ જે પુરૂષ સયમને જાણીને આરભ કરતા નથી તે આરભથી ઉપરત છે, તેજ જિનશાસનમા આરભથી નિવૃત્ત કહેવાય છે, તેજ અણગાર કહેવાય છે ॥ ૧ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગન્થ આદિનો ઉપદેશ સાભળવાથી જેને હેય અને ઉપાદેયનો વિવેક ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે તે વનસ્પતિકાયના સ્વરૂપને જાણીને આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે—

હુ આત્મકલ્યાણને માટે ઉદ્યત–તૈયાર થઈને–દીક્ષા લઈને વનસ્પતિકાયનો આરભ સમારંભ કરીશ નહિ

अस्योद्देशस्य वनस्पतिकायविषयकतयाऽत्र तच्छब्देन वनस्पतिकायसमारम्भ' परिगृह्यते । अत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तर तत्समारम्भत्यागप्रतिज्ञाप्रदर्शनेन ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष इति प्रतिबोधितम् । यः अभयं-नास्ति भयं यस्मात् कस्य चित् प्राणिनः इत्यभयः=सर्वप्राणिप्राणत्राणलक्षणः संयम, तं-विदित्वा तं=वनस्पतिकाय-समारम्भं नो कुर्यात् । एष उपरतः=वनस्पतिजीवविषये सर्वथा समारम्भात् विनिवृत्तः, अत्र=अस्मिन् जिनशासने उपरतः प्रोच्यते, इत्यन्वय । तथा एषः=पूर्वोक्तलक्षण उपरत' अनगार ' इति प्रोच्यते । अनगारगुणानां संपूर्णतया तत्र सत्त्वात्, स एवानगारशब्दवाच्योऽस्तीति भाव ।

अथ वनस्पतिकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं मातृकाष्टविषद्वाराणि निरूपणी-

---

यह उद्देश वनस्पतिकायसबन्धी है अत यहाँ तत्' शब्द से वनस्पतिकाय का समारंभ लिया जाता है । पहले वनस्पतिकाय का ज्ञान होता है फिर उसके आरंभ का त्याग किया जाता है, यह बतलाकर सूचना की गई है कि मोक्ष, ज्ञान और क्रिया-दोनों से होता है ।

जिससे किसीभी प्राणी को भय नहीं ऐसा, प्राणीमात्र की रक्षारूप संयम अभय कहलाता है । उसे जानकर वनस्पतिकाय का समारंभ न करे । इस प्रकार वनस्पतिकाय के आरंभ से विरत पुरुष जिनशासन में 'उपरत' कहलाता है और वही उपरत पुरुष अनगार है, क्यों कि अनगार के गुण पूर्णरूप से उसीमें पाये जाते हैं ।

वनस्पतिकाय का स्वरूप सम्यक् प्रकार से जानने के लिए पूर्वोक्त आठ

આ ઉદ્દેશ વનસ્પતિકાયસંબંધી છે એ કારણથી અહિં 'तत्' શબ્દથી વનસ્પતિકાયનો સમારંભ લેવામાં આવે છે. પહેલાં વનસ્પતિકાયનું જ્ઞાન થાય છે પછી તેના આરંભનો ત્યાગ કરવામાં આવે છે એ બતાવીને સૂચના કરવામાં આવી છે કે-જ્ઞાન અને ક્રિયા આ બન્નેથી મોક્ષ થાય છે.

જેનાથી કોઈ પણ પ્રાણીને ભય થાય નહિ, એ પ્રમાણે પ્રાણીમાત્રની રક્ષારૂપ સંયમ તે અભય કહેવાય છે તેને જાણીને વનસ્પતિકાયનો સમારંભ કરે નહિ. આ પ્રમાણે વનસ્પતિના આરંભથી વિરત પુરુષ જિનશાસનમાં ઉપરત કહેવાય છે અને તેજ ઉપરત પુરુષ અનગાર છે કારણ કે-અણગારના ગુણ પૂર્ણરૂપથી તેમાંજ જોવામાં આવે છે.

વનસ્પતિકાયનું સ્વરૂપ સમ્યક્પ્રકારે જાણવા માટે પૂર્વોક્ત આઠ દ્વારોનું નિરૂપણ

मूलम्—

तं णो करिस्सामि समुट्ठाए मत्ता मइमं, अभयं विदित्ता तं जे णो करए, एसोवरए एत्थोवरए, एस अणगारेत्ति पवुच्चइ॥ सू० १ ॥

छाया—

तं नो करिष्यामि समुत्थाय मत्वा मतिमान्, अभय विदित्वा तं यो नो कुर्यात्, एष उपरतः अत्रोपरतः, एषः अनगार इति प्रोच्यते ॥ सू० १ ॥

टीका—

मतिमान्=मेधावी श्रमणनिर्ग्रन्थादिदेशनाश्रमणसंजातहेयोपादेयविवेकवानित्यर्थः । मत्वा=वनस्पतिकायस्वरूपं विज्ञाय विभावयति–अह समुत्थाय आत्मकल्याणार्थमुद्युक्तः सन् प्रव्रज्यां गृहीत्वा, तं=वनस्पतिकायसमारम्भं नो करिष्यामीति ।

मूलार्थ—मेधावी पुरुष विचार करता है–मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर वनस्पतिकाय का आरभ नहीं करूँगा । जो पुरुष सयम को जानकर आरम नहीं करता है वही आरम से उपरत है–वही जिन शासन में आरभ से निवृत्त कहलाता है । वही अनगार कहलाता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—श्रमण निर्गन्थ आदि का उपदेश सुनने से जिसे हेय और उपादेय का विवेक उत्पन्न हो गया है वह वनस्पतिकाय का स्वरूप जानकर इस प्रकार विचार करता है –मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर–दीक्षा लेकर वनस्पतिकाय का आरभ समारभ नहीं करूँगा ॥

મૂલાર્થ—મેધાવી પુરૂષ વિચાર કરે છે–હું આત્મકલ્યાણ માટે તૈયાર થઈને વનસ્પતિકાયનો આરભ નહિ કરૂ જે પુરૂષ સયમને જાણીને આરભ કરતા નથી તે આરભથી ઉપરત છે, તેજ જિનશાસનમાં આરંભથી નિવૃત્ત કહેવાય છે, તેજ અણુગાર કહેવાય છે ॥ ૧ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ આદિનો ઉપદેશ સાભળવાથી જેને હેય અને ઉપાદેયનો વિવેક ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે તે વનસ્પતિકાયના સ્વરૂપને જાણીને આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે —

હુ આત્મકલ્યાણને માટે ઉદ્યત–તૈયાર થઇને–દીક્ષા લઇને વનસ્પતિકાયનો આરભ સમારભ કરીશ નહિ

तथा-वृक्षाः अव्यक्तोपयोगसुखादिमन्तः, अव्यक्तचेतनावत्त्वात्, सुप्तमूर्च्छित-पुरुषवत्। अत्र वनस्पतीनां हृद्यत्वहेतुना जीवशरीरत्वं सिद्ध्यति, ततश्च सचित्त-त्वम्। अपरञ्च-वृक्षाः सचेतनाः, सर्वत्वगपहरणे मरणात्, अजवत्। वनस्पति-कायस्य सचेतनत्वमग्रेऽपि साधयिष्यते-'से बेमि-इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं' इत्यत्र।

यद्वा—अव्यक्तोपयोगादीनि कषायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिवी

उपयोग (चेतना) और सुख आदि से युक्त है, क्यों कि उन में अव्यक्त चेतना है, जो अव्यक्त चेतनावाला होता है वह अव्यक्त चेतनावाला और सुख आदि वाला होता है जैसे सुप्त या मूर्च्छित पुरुष।

इस प्रकार 'हृद्यत्व' हेतु से सिद्ध होता है कि-वनस्पति जीव का शरीर है और जीव का शरीर होने के कारण सचित्त भी है। इसके अतिरिक्त और भी प्रमाण है। जैसे वृक्ष चेतनावान् है क्यों कि उनकी सारी त्वचा (छाल) हटाने पर उनकी मृत्यु हो जाती है, सारी त्वचा हटाने पर जिस की मृत्यु हो जाती है वह सचेतन ही होता है, जैसे बकरा। वनस्पतिकाय की सचेतनता आगे भी-'से बेमि-इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं' इस सूत्र की व्याख्या करते हुए सिद्ध की जायगी।

अथवा—अव्यक्त उपयोग से लेकर कषायपर्यन्त जीव के जो लक्षण पृथ्वी-

(ચેતના) અને સુખ આદિથી યુક્ત છે, કેમકે તેમાં અવ્યક્ત ચેતના છે જે અવ્યક્ત ચેતનાવાળા હોય છે તે અવ્યક્ત ચેતનાવાળા અને સુખ આદિવાળા હોય છે. જેમ સુતેલા અથવા મૂર્ચ્છિત પુરૂષ. આ પ્રકારે હૃદ્યત્વ હેતુથી સિદ્ધ થાય છે કે-વનસ્પતિ જીવનું શરીર છે અને જીવનું શરીર હોવાના કારણે સચિત્ત પણ છે એની સાથે બીજું પણ પ્રમાણ છે જેમકેઃ-વૃક્ષ ચેતનાવાન્ છે કેમકે તેની તમામ ચામડી-છાલ કાઢી નાખવાથી તેનું મૃત્યુ થઈ જાય છે; તમામ છાલ કાઢી નાખવાથી જેનું મૃત્યુ થઈ જાય છે તે ચેતન જ હોય છે એવી રીતે બકરા. વનસ્પતિકાયની ચેતનતા આગળ પણ-'से बेमि-इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं' આ સૂત્રની વ્યાખ્યા કરતી વખતે સિદ્ધ કરવામાં આવશે.

અથવા—અવ્યક્ત ઉપયોગથી લઈને કષાય સુધી જીવના જે લક્ષણ પૃથ્વીકાયના

कायोद्देशे प्रागभिहितानि, तेषां जीवलक्षणानां वनस्पतिकायेऽपि सद्भावाद् वनस्पतिः सचित्तोऽस्ति, मनुष्यवदिति निर्णीयते ।

अपिच—वनस्पतिः सचेतनः, वालाद्यवस्थासंदर्शनात्, अनुकूल-प्रतिकूलाहारादिना पुष्टिकार्श्यादिदर्शनात्, छेदनभेदनादिना म्लानतादिदर्शनाच्च मनुष्य-शरीरवत् ।

यथा मनुष्यशरीरमनुकूलेनाहारादिना पुष्यति, तत्प्रतिकूलेन तदभावेन च शुष्यति, एवं वनस्पतिरप्यनुकूलजलवातादिभिः पुष्यति, प्रतिकूलजलवातादिभिश्च शुष्यति । यथा वा छेदनादिना मनुष्यशरीर हस्तादि म्लायति, तथा

काय के उद्देश में पहले कहे गये हैं वे सब वनस्पतिकाय में भी पाये जाते हैं । इस कारण वनस्पति मनुष्य आदि के समान सचित्त है ।

तथा—वनस्पति सचेतन है, क्यों कि उस में बाल्यावस्था आदि देखी जाती हैं, अनुकूल आहार से पुष्टि और प्रतिकूल आहार से कृशता आदि दिखाई देती है, और छेदन-भेदन आदि करने से मुरझाना वगैरह देखा जाता है, जैसे मनुष्य का शरीर ।

तात्पर्य यह है कि जैसे मनुष्य का शरीर अनुकूल आहार आदि से पुष्ट होता है और प्रतिकूल आहार से या आहार के अभाव से सूख जाता है, उसी प्रकार वनस्पति भी अनुकूल जल-वायु आदि से पुष्ट होती है और प्रतिकूल जल-वायु आदि से सूख जाती है । अथवा जैसे छेदन-भेदन करने से मनुष्य का शरीर हाथ आदि मुरझा

ઉદ્દેશમા પહેલા કહ્યા છે, તે સર્વ વનસ્પતિકાયમા પણ જોવામા આવે છે આ કારણથી વનસ્પતિ મનુષ્ય આદિના સમાન સચિત્ત છે

તથા—વનસ્પતિ સચેતન છે, કેમકે તેમા બાલ્યાવસ્થા આદિ અવસ્થાઓ જોવામા આવે છે અનુકૂલ આહારથી પુષ્ટિ અને પ્રતિકૂલ આહારથી કૃશતા-દુર્બલતા આદિ દેખાય છે, અને છેદન, ભેદન આદિ કરવાથી મુરઝાઈ જવુ-કરમાઈ જવુ સુસ્ત કે ખિન્ન થવાપણુ વગેરે જોવામા આવે છે જેવી રીતે મનુષ્યનુ શરીર

તાત્પર્ય એ છે કે-જેમ મનુષ્યનુ શરીર અનુકૂલ આહાર આદિથી પુષ્ટ થાય છે, અને પ્રતિકૂલ આહારથી અથવા તો આહારના અભાવથી સુકાઈ જાય છે તેવી રીતે વનસ્પતિ પણ અનુકૂલ જલ, વાયુ આદિથી પુષ્ટ થાય છે, અને પ્રતિકૂલ જલ વાયુ આદિથી સુકાઈ જાય છે અથવા જેવી રીતે છેદન-ભેદન કરવાથી મનુષ્યશરીરના હાથ-પગ આદિ કરમાઈ જાય છે તે પ્રમાણે પાદડા, ફલ, ફૂલ, આદિ વનસ્પતિ પણ છેદન-ભેદન

पक्वफलकुसुमादिरूपो वनस्पतिरपि छेदनादिना म्लायति, तस्मात् वनस्पतिः सचेतन इति सिद्धम्।

यद्वा—वनस्पतिर्जीवः, चेतनावत्त्वात्, मनुष्यवत्, यथा मनुष्यस्य शब्दादिग्रहणशक्तिरूपा चेतना, तथैव वनस्पतौ समुपलभ्यते। तथाहि-बकुलादयो गीत-सुरागण्डूष-कामिनीचरणताडनादिभिः फलन्ति, शमीलज्जालुप्रभृतिषु च स्वापावबोधसंकोचादयो दृश्यन्ते। शापानुग्रहाभ्यामान्तरौ संकोचविकासौ समस्त वनस्पतीनां भवतः। उक्तञ्च—

जाता है उसी प्रकार पत्ता फल फूल, आदि वनस्पति भी छेदन-भेदन आदि से मुरझा जाती है, इससे सिद्ध होता है कि वनस्पति सचेतन है।

अथवा—वनस्पति जीव है, क्यों कि चेतनावाली है, जैसे मनुष्य। जैसे-मनुष्य आदि में शब्द आदि को ग्रहण करने की शक्तिरूप चेतना है उसी प्रकार वनस्पति में भी शब्द आदि को ग्रहण करने की शक्तिरूप चेतना पाई जाती है। बकुल आदि के वृक्ष गीत मदिरा का कुल्ला, कामिनी के पैर के ताडन आदि से फलते हैं। शमी तथा लज्जावती आदि में स्वाप (सोना) अवबोध (जागना) और संकोच (सिकुडना) देखा जाता है। शाप और अनुग्रह से सब वनस्पति में संकोच और विकास होता है। कहा भी है —

આદિથી કરમાઈ જાય છે સુકાઈ જાય છે, આ કારણથી સિદ્ધ થાય છે કે વનસ્પતિ સચેતન છે

અથવા—વનસ્પતિ જીવ છે કેમકે–ચેતનાવાળી છે જેમ મનુષ્ય. જેવી રીતે મનુષ્ય આદિમાં શબ્દ આદિને ગ્રહણ કરવાની શક્તિરૂપ ચેતના છે તે પ્રમાણે વનસ્પતિમાં પણ શબ્દ આદિને ગ્રહણ કરવાની શક્તિરૂપ ચેતના જોવામાં આવે છે બકુલ આદિ વૃક્ષ ગીત, મદિરાના કોગળા (કોગળા) સ્ત્રીના પગથી થયેલું તાડન આદિથી ફળે છે શમી તથા લજ્જાવતી (રીસામણી) આદિમાં સુઈ જવું જાગવું અને સંકોચાઈ જવું વગેરે જોવામાં આવે છે. શાપ અને અનુગ્રહથી સર્વ વનસ્પતિમાં સંકોચ અને વિકાસ થાય છે. કહ્યું છે કે–

"स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः शीधुगण्डूषसेकात्,
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ।
मन्दारो नर्मवाक्याच्चटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाताद्,
वल्ली गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः" ॥ १ ॥ इति ॥

आगमोऽपि—

"वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणएणं" इति । (दशवै०)

प्रदर्शितं चाधुनिकवैज्ञानिकैः प्रत्यक्षतया स्वकृतप्रयोगविशेषेण वनस्पतीनां सचित्तत्वम्, यथा–क्रोधादिमुन्नाटयतां तेषां गालीप्रदानादिभर्त्सनवाक्यतो

"प्रियगु का पेड स्त्रियों के स्पर्श से विकसित होता है, बकुल मदिरा के कुल्ले से खिल उठता है। अशोक वृक्ष स्त्री के पैर का आघात लगने से खिल जाता है। तिलक वृक्ष स्त्रियों के देखने से, तथा कुरवक उनके आलिंगन से खिल उठता है। मन्दार वृक्ष विनोदमय वाक्य सुनकर, चम्पक मृदुहँसी से, वल्ली वक्त्र (मुख) वायु से और नमेरु गीत से विकसित होता है। कनेर का पेंड सामने नाचने से खिल जाता है" ॥१॥

वनस्पति की सचेतनता आगम प्रमाण से भी सिद्ध होती है। दश वैकालिक सूत्र में कहा है–**शस्त्रपरिणत को छोडकर शेष सब वनस्पति सचित्त कही गई है, वह अनेक जीववाली है और उन जीवों की सत्ता पृथक् पृथक् है"**।

आधुनिक वैज्ञानिकोंने अपने प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष दिखला दिया है कि वनस्पति सचित्त है। क्रोध आदि करने से–गाली देने या भर्त्सना करने से वृक्ष, लता आदि

"પ્રિયગુનો છોડ સ્ત્રીઓના સ્પર્શથી વિકસિત થાય છે, બકુલ મદિરાના કોગળા કરવાથી ખિલી ઉઠે છે અશોક વૃક્ષ સ્ત્રીના પગનો આઘાત લાગવાથી ખિલી ઉઠે છે તિલક વૃક્ષ સ્ત્રીઓને જોવાથી તથા કુરવક સ્ત્રીઓના આલિંગનથી ખિલી ઉઠે છે મન્દાર વૃક્ષ વિનોદમય વાકય સાભળીને, ચમ્પક મૃદુ હાસીથી, વલ્લી વકત્ર (મુખ) વાયુથી અને નમેરુ ગીતથી વિકસિત થાય છે કનેરનો છોડ તેના સામે નાચવાથી ખિલે છે" ॥૧॥

વનસ્પતિની સચેતનતા આગમપ્રમાણોથી પણ સિદ્ધ થાય છે દશવૈકાલિક સૂત્રમા કહ્યુ છે–"શસ્ત્રથી પરિણત–(છેદાએલી)ને છોડીને બાકીની સર્વ વનસ્પતિ સચિત્ત કહેલી છે, તે અનેક જીવવાળી છે, અને તે જીવોની સત્તા પૃથક્–પૃથક્ છે"

આધુનિક વૈજ્ઞાનિકોએ પોતાના પ્રયોગો દ્વારા પ્રત્યક્ષ–બતાવી આપ્યુ છે કે વનસ્પતિ સચિત્ત છે ક્રોધ આદિ કરવાથી, ગાળ દેવાથી અથવા તિરસ્કાર કરવાથી વૃક્ષ, લતા આદિ

हस्तस्पर्शादपि सङ्कोचमापद्यन्ते, स्तुतिवाक्यैश्च प्रवर्धन्ते, विकसन्ति चेति वनस्पतीनां सचेतनत्वे नास्ति केषाश्चिद् विवाद ।

ये तु सूक्ष्मा वनस्पतिकायास्ते चक्षुषा नैव दृश्यन्ते, अतस्तेषां सचित्तत्वं भगवद्वचनमात्रावगम्यमिति तत्रापि श्रद्धा करणीयैव ।

प्ररूपणाद्वारम्—

वनस्पतिजीवा द्विविधाः—सूक्ष्मबादरभेदात्। सूक्ष्माः सर्वलोके कज्जलकूपिकावत् संभृताः । बादरास्तु लोकैकदेशे सन्ति । सूक्ष्माः पर्याप्तापर्याप्तभेदाद्द्विविधाः ।

बादरा द्विविधाः—प्रत्येकशरीर-साधारणशरीरभेदात् । एकमेकं जीव

संकोच को प्राप्त होते हैं और प्रशंसा करने से बढ़ते हैं और फूलते हैं अतः वनस्पति की सचित्तता में अब किसी को भी विवाद नहीं है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकाय के जीव आंख से नहीं दिखाई देते । भगवान् के वचनों से ही जाने जा सकते हैं । उन पर श्रद्धा रखनी चाहिए ।

प्ररूपणाद्वार—

वनस्पतिकाय के जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बादर । सूक्ष्म जीव समस्त लोकाकाश में काजल की कुप्पी की तरह भरे हुए हैं । बादर जीव लोक के एक-एक भाग में रहते हैं । सूक्ष्म जीवों के भी दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त ।

बादर जीव प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर के भेद से दो प्रकार के हैं।

संकोचने प्राप्त थाय છે અને પ્રશંસા કરવાથી વધે છે અને ખિલે છે એ કારણથી વનસ્પતિની સચિત્તતામાં હવે કોઈને પણ વિવાદ નથી.

સૂક્ષ્મ વનસ્પતિકાયના જીવ નેત્રથી જોઈ શકાતા નથી. તે ભગવાનના વચનોથી જ જાણી શકાય છે તેના પર શ્રદ્ધા રાખવી જોઈએ.

પ્રરૂપણાદ્વાર—

વનસ્પતિકાયના જીવ બે પ્રકારના છે (૧) સૂક્ષ્મ અને બાદર. સૂક્ષ્મ જીવ સમસ્ત લોકાકાશમાં કાજલની કુપ્પીની પ્રમાણે ભરેલા છે બાદર જીવ તેના એક-એક ભાગમાં રહે છે.

સૂક્ષ્મ જીવોના પણ બે ભેદ છે (૧) પર્યાપ્ત અને (૨) અપર્યાપ્ત. બાદર જીવ પ્રત્યેકશરીર અને સાધારણશરીરના ભેદથી બે પ્રકારના છે એક-એક જીવ સાથે પી

प्रति गत प्रत्येकम्, प्रत्येक शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः। प्रत्येकनामकर्मोदयवशादेकैकस्य जीवस्य शरीरमौदारिकं वैक्रियं वा पृथक् पृथग् भवति। एवम्भूता जीवाः प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते। नारकदेवमनुष्याः, द्वीन्द्रियादयः, पृथिव्यादयः, वृक्षगुच्छादिवनस्पतयश्च प्रत्येकशरीरिणः सन्ति। इमे प्रत्येकाः प्रत्येकजीवा अपि कथ्यन्ते।

प्रत्येकशरीरा द्वादशविधाः-वृक्ष-गुच्छ-गुल्म-लता-वल्ली-पर्वग-तृण-वलय-रितौ-षधि-जलरुह-कुहणभेदात्।

तत्र वृक्षा द्विविधाः-एकास्थिकाः (एकबीजकाः) बहुबीजकाश्च। तत्रैकास्थिका अनेकविधाः-निम्बाम्रजम्बूकौशम्बादयः। बहुबीजका अप्यनेकविधाः-

एक-एक जीवसबधी शरीर प्रत्येकशरीर कहलाता है। प्रत्येकनामकर्म के उदय से एक-एक जीव के शरीर औदारिक और वैक्रिय अलग-अलग होता है। ऐसे अलग-अलग शरीर वाले जीव प्रत्येकशरीर कहलाते हैं-नारक, देव, मनुष्य द्वीन्द्रिय आदि, पृथ्वीकाय आदि तथा वृक्ष, गुच्छ आदि वनस्पतिजीव प्रत्येक शरीरी हैं। इन्हें प्रत्येक और प्रत्येकजीव भी कहते हैं।

प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकाय बारह प्रकार के हैं-वृक्ष, गुच्छ गुल्म, लता, वल्ली, पर्वग, तृण, वलय, हरित, औषध, जलरुह और कुहण।

इनमें वृक्ष दो प्रकार के हैं-एकास्थिक अर्थात् एक बीज वाले और बहुबीजक अर्थात् बहुत बीजों वाले। एक बीज वाले नीम, आम, जामन और कौशम्ब आदि अनेक प्रकार के हैं। बहुबीजक भी अनेक प्रकार के हैं। जैसे अस्थिक, तिन्दुक,

શરીર પ્રત્યેક શરીર કહેવાય છે પ્રત્યેકનામકર્મના ઉદયથી એક-એક જીવના શરીર ઔદારિક અને વૈક્રિય અલગ-અલગ હોય છે એવા અલગ-અલગ શરીરવાળા જીવ પ્રત્યેકશરીર કહેવાય છે નારક, દેવ. મનુષ્ય, દ્વીન્દ્રિય આદિ પૃથ્વીકાય આદિ તથા વૃક્ષ, ગુચ્છ આદિ વનસ્પતિજીવ પ્રત્યેકશરીર છે તેને પ્રત્યેક અને પ્રત્યેકજીવ પણ કહે છે

પ્રત્યેકશરીરી વનસ્પતિકાય બાર પ્રકારના છે-વૃક્ષ, ગુચ્છ, ગુલ્મ, લતા, વલ્લી, પર્વગ, તૃણ, વલય, હરિત, ઔષધ, જલરુહ અને કુહણ

એમા વૃક્ષ બે પ્રકારના છે-એકાસ્થિક અર્થાત્ એક બીજવાળા, અને બહુસ્થિક અર્થાત્ ઘણાજ બીજવાળા એક બીજવાળા-લીબડો, આબો, જાબુ અને કૌશમ્બ, આદિ અનેક પ્રકારના છે બહુબીજક એટલે ઘણા બીજવાળા પણ અનેક પ્રકારના છે જેમકે-

मस्तिक-तिन्दुक-कपित्था-म्रातक-मातुलिङ्ग-बिल्वा-मलक-पनस-दाडिमादय ।

एकास्थिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलेकजीवमाश्रित्य मूलकन्दस्कन्ध त्वक्शाखाप्रवालेषु प्रत्येकमसङ्ख्येया जीवाः सन्ति । एको मूलजीवस्तु मूलादिफल पर्यन्तं सर्वावयवं व्याप्य वृक्षेषु तिष्ठति ।

नन्वेकास्थिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलकन्दस्कन्धत्वक्शाखादयः प्रत्येकमसङ्ख्येयजीवाः सन्ति, इति यदुक्तं तत् कथमुपपद्यते, मूलादिफलपर्यन्ता वृक्षा सर्वेऽप्येकशरीराकारा एवोपलभ्यन्ते, यथा-देवदत्तस्य शरीरमखण्डमेकरूपमुपलभ्यते तद्वत्, तस्मादेकशरीरात्मका एव वृक्षाः, कथममी प्रत्येकशरीरा असङ्ख्येयजीवा इति ! उच्यते—

(हिं) कपित्थ (कबिठ) अम्बाडक मातुलिंग, बिल्व, आमला पनस और दाडिम आदि ।

एकास्थिक और बहुबीजक वृक्षों में मूल के एक जीव के सहारे मूल कंद स्कंध छाल शाखा और प्रवाल में अलग-अलग असंख्यात जीव हैं । एक मूल जीव मूल से लेकर फल तक वृक्ष के सभी अवयवों में व्याप्त होकर रहता है ।

शंका—एक बीजवाले और बहुत बीज वाले वृक्षों के मूल, कन्द स्कन्ध, त्वचा, शाखा आदि प्रत्येक असंख्यात जीव वाले हैं, यह कथन सही कैसे हो सकता है ? मूल से लेकर फलपर्यन्त वृक्ष सभी एक शरीराकार ही उपलब्ध होते हैं जैसे कि देवदत्त का शरीर अखंड एकरूप ही देखा जाता है । अत वृक्ष एक-एक शरीररूप ही हैं । उन में असंख्यात प्रत्येक किस प्रकार हो सकते हैं ?

અસ્થિક તિ દુક કપિત્થ અબાડક માતુલિગ (બિજોરું) બિલ્વ, (બીલી) આમલા, પનસ અને દાડમ આદિ.

એકાસ્થિક અને બહુબીજક વૃક્ષોમાં મૂળના એક જીવના આધારે મૂલ, કદ સ્કંધ છાલ, શાખા અને પ્રવાલમાં અલગ-અલગ અસખ્યાત જીવ છે એક મૂલ જીવ, મૂળથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષના સર્વ અવયવોમાં વ્યાપ્ત થઈને રહે છે

શકા—એકબીજવાળા અને બહુબીજવાળા વૃક્ષોના મૂળ કદ, સ્કન્ધ ત્વચા-છાલ, શાખા આદિ પ્રત્યેક અસખ્યાત જીવવાળા છે આ કથન સાચુ છે એમ કેવી રીતે કહી શકાય ? અથવા એ કથન સાચુ કેવી રીતે હોઈ શકે ?

મૂળથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષ સવ એક શરીરાકારજ ઉપલબ્ધ થાય છે જેમકે દેવદત્તનું શરીર અખડ એકરૂપજ જોવામાં આવે છે તેમજ વૃક્ષ એક એક શરીર રૂપજ છે તેમા અસખ્યાત પ્રત્યેકશરીર કેવી રીતે હોઈ શકે છે ?

मूलस्कन्धादिषु तेषामसख्येयानामपि जीवानां प्रत्येकनामकर्मोदयात् पृथक् पृथगेव एकैकशरीरसद्भावेन प्रत्येकशरीरत्वं सिध्यति ।

यद्यपि वृक्षाणां मूलादिषु प्रत्येकमसंख्येया अपि जीवाः परस्परं विभिन्नशरीराः, तथापि प्रबलरागद्वेषोपचिततथारूपप्रत्येकनामकर्ममाहात्म्यादेव परस्परं समाश्लिष्टाः संमिश्रिता भवन्ति । यथा श्लेषणद्रव्येण मिश्रीकृत्य निर्मितायां खसखसगुटिकाया प्रत्येकभागे स्वस्वसत्तया खसखसवीजानि तिष्ठन्ति । यथा वा-गुडमिश्रितैस्तिलैः कृतायां तिलपर्पटिकाया तिलाः स्वस्वरूपेण वर्तन्ते, तथैव प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवाः मूलकन्दादिषु प्रत्येकं तिष्ठन्ति । साधारण-

---

समाधान—मूल और स्कन्ध आदि में उन असख्यात जीवों के, प्रत्येकनामकर्म के उदय से अलग-अलग एक-एक शरीर हैं, अत वे सव प्रत्येकशरीरी सिद्ध होते हैं ।

यद्यपि वृक्षों के मूल आदि में असख्यात जीव हैं और उन सब के शरीर भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी तीव्र राग-द्वेष के कारण उपार्जित प्रत्येकनामकर्म के प्रभाव से ही वे सब आपस में मिले हुए-से रहते हैं । जैसे किसी चिपकनी चीज में मिलाकर बनाई हुई खसखस की गोली के प्रत्येक भाग में खसखस के वीज अपना अलग-अलग अस्तित्व वनाये रखते हैं, अथवा जैसे गुड मिले तिलों की बनाई हुई तिलपपडी में तिलों के दाने अपने अपने स्वरूप में विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार प्रत्येकशरीरी असख्यात जीव मूल, कन्द आदि में रहते हैं । साधारणवनस्पति से इन में यह भेद है कि-प्रत्येकशरीरी

સમાધાન—મૂલ અને સ્કધ આદિમા તે અસખ્યાત જીવોના પ્રત્યેકનામકર્મના ઉદયથી અલગ-અલગ એક-એક શરીર છે, તો પણ તીવ્ર રાગ-દ્વેષના કારણે ઉપાર્જિત-પ્રાપ્ત કરેલા પ્રત્યેકનામકર્મના પ્રભાવથીજ તે સર્વ આપસમા-પરસ્પરમાં મળેલા રહે છે, જેમ કોઈ ચિપકની (ચીકણી-ચોટી જાય તેવી) ચીજમા મેળવીને બનાવેલી ખસખસની ગોળીના પ્રત્યેક ભાગમા ખસખસના બીજ પોતાનુ અલગ અલગ અસ્તિત્વ બનાવી રાખે છે અથવા જેમ ગોળ મેળવેલી તલની તલપાપડી-તલસાકળીમા તલના દાણા પોત-પોતાના સ્વરૂપમા વિદ્યમાન રહે છે, તે પ્રમાણે પ્રત્યેકશરીરી અસખ્યાત જીવ મૂલ, કદ આદિમા રહે છે સાધારણ વનસ્પતિથી તેનામા એ ભેદ છે કે-પ્રત્યેકશરીરી

नस्पतिभ्यस्त्वेतावान् विशेषः– प्रत्येकशरीराः परस्परं सम्मिश्रिता अपि भिन्ना एव तिष्ठन्ति, साधारणशरीरास्त्वन्योन्यानुविद्धा इति ।

पत्रेषु प्रत्येकं मूलजीवाद्भिन्न एकैको जीवः । उक्तं हि प्रज्ञापनायामेक जीवबहुजीववृक्षप्ररूपणावसरे–' पत्ता पत्तेयजीविया " इति ।

तथा–तालसरलनालिकेरवृक्षाणां स्कन्धएकजीवः । तदुक्तम्–

" णाणाविहसंठाणा रुक्खाणं एगजीविया पत्ता ।
खंधोवि एगजीवो, ताल–सरल–नालिएरीणं " ॥

छाया–नानाविध संस्थानानि, वृक्षणाम् एकजीविकानि पत्राणि ।
स्कन्धोऽपि एकजीवः, तालसरल नारिकेलानाम् ॥ (प्रज्ञा०)

जीव आपस में मिले हुए भी भिन्न–भिन्न रहते हैं किन्तु साधारणशरीरवाले जीव आपस में अनुविद्ध–एक रूप होकर रहते हैं । तात्पर्य यह है कि–प्रत्येकशरीरी जीवों का शरीर अलग–अलग होता है किन्तु इन साधारणशरीरी जीवों का शरीर एक ही होता है ।

पत्तों में मूल जीव से भिन्न एक–एक जीव अलग–अलग होते हैं । प्रज्ञापना सूत्र में एकजीव और बहुजीव वृक्षों की प्ररूपणा करते हुए कहा है– 'पत्ता पत्तेयजीविया' अर्थात् पत्ते प्रत्येक जीव वाले हैं ।

तथा ताल, साल नालिकेर आदि वृक्षों का स्कन्ध एक जीव है । कहा है–

"नाना प्रकार के आकार वाले वृक्षों के पत्ते प्रत्येकजीव हैं और ताल, सरल तथा नारियल के स्कन्ध एकजीव हैं " ।

જીવ પરસ્પર મળેલા છતાં પણ ભિન્ન–ભિન્ન રહે છે, પરન્તુ સાધારણ શરીરવાળા જીવ પરસ્પરમાં અનુવિદ્ધ–એકરૂપ થઈને રહે છે તાત્પર્ય એ છે કે–પ્રત્યેકશરીરી જીવોનાં શરીર અલગ–અલગ હોય છે. કિન્તુ આ સાધારણશરીરી જીવોનું શરીર એકજ હોય છે

પત્તાં–પાંદડાંમાં મૂલ જીવથી ભિન્ન એક–એક જીવ અલગ–અલગ હોય છે. પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમાં એકજીવ અને બહુજીવ વૃક્ષોની પ્રરૂપણા કરતાં થકાં કહ્યું છે કે:– पत्ता पत्तेयजीविया અર્થાત્ પત્તાં પ્રત્યેક જીવવાળા છે

તથા તાલ, સરલ, નાળિએર આદિ વૃક્ષોના સ્કંધ એક જીવ છે કહ્યું છે કે:–

"નાના પ્રકારના આકારવાળા વૃક્ષોનાં પત્તા–પાંદડાં પ્રત્યેકજીવ છે અને તાલ, સરલ તથા નારિએલના સ્કંધ એકજીવ છે."

मूलस्कन्धादिषु तेषामसंख्येयानामपि जीवानां प्रत्येकनामकर्मोदयात् पृथक् पृथगेव एकैकशरीरसद्भावेन प्रत्येकशरीरत्वं सिध्यति ।

यद्यपि वृक्षाणां मूलादिषु प्रत्येकमसंख्येया अपि जीवाः परस्पर विभिन्नशरीराः, तथापि प्रबलरागद्वेषोपचिततथारूपप्रत्येकनामकर्ममाहात्म्यादेव परस्परं समाश्लिष्टाः समिश्रिता भवन्ति । यथा श्लेषणद्रव्येण मिश्रीकृत्य निर्मितायां खसखसगुटिकाया प्रत्येकभागे स्वस्वसत्तया खसखसबीजानि तिष्ठन्ति । यथा वा-गुडमिश्रितैस्तिलैः कृतायां तिलपर्पटिकाया तिलाः स्वस्वरूपेण वर्तन्ते, तथैव प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवाः मूलकन्दादिषु प्रत्येकं तिष्ठन्ति । साधारण-

---

समाधान—मूल और स्कन्ध आदि में उन असंख्यात जीवों के, प्रत्येक-नामकर्म के उदय से अलग-अलग एक-एक शरीर है, अत वे सब प्रत्येकशरीरी सिद्ध होते हैं ।

यद्यपि वृक्षों के मूल आदि में असंख्यात जीव हैं और उन सब के शरीर भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी तीव्र राग-द्वेष के कारण उपार्जित प्रत्येकनामकर्म के प्रभाव से ही वे सब आपस में मिले हुए-से रहते है । जैसे किसी चिपकनी चीज में मिलाकर बनाई हुई खसखस की गोली के प्रत्येक भाग में खसखस के बीज अपना अलग-अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं, अथवा जैसे गुड मिले तिलों की बनाई हुई तिलपपडी में तिलों के दाने अपने अपने स्वरूप में विद्यमान रहते है, उसी प्रकार प्रत्येकशरीरी असंख्यात जीव मूल, कन्द आदि में रहते हैं । साधारणवनस्पति से इन में यह भेद है कि-प्रत्येकशरीरी

સમાધાન—મૂલ અને સ્કંધ આદિમા તે અસંખ્યાત જીવોના પ્રત્યેકનામકર્મના ઉદયથી અલગ-અલગ એક-એક શરીર છે, તો પણ તીવ્ર રાગ-દ્વેષના કારણે ઉપાર્જિત-પ્રાપ્ત કરેલા પ્રત્યેકનામકર્મના પ્રભાવથીજ તે સર્વ આપસમા-પરસ્પરમા મળેલા રહે છે, જેમ કોઈ ચિપકની (ચીકણી-ચોંટી જાય તેવી) ચીજમા મેળવીને બનાવેલી ખસખસની ગોળીના પ્રત્યેક ભાગમા ખસખસના બીજ પોતાનુ અલગ અલગ અસ્તિત્વ બનાવી રાખે છે અથવા જેમ ગોળ મેળવેલી તલની તલપાપડી-તલસાકળીમા તલના દાણા પોત-પોતાના સ્વરૂપમા વિદ્યમાન રહે છે, તે પ્રમાણે પ્રત્યેકશરીરી અસંખ્યાત જીવ મૂલ, કંદ આદિમા રહે છે સાધારણ વનસ્પતિથી તેનામા એ ભેદ છે કે-પ્રત્યેકશરીરી

गुच्छा अनेकविधाः-आढकी-वृन्ताकी-तुलसी-पिप्पलीप्रभृतयः । गुल्माः-ह्रस्वस्कन्धबहुकाण्डपत्रपुष्पफलोपेताः, तेऽनेकविधाः-सेरिका-नवमालिका-कोरण्टक-मधुबीजकादयः । लता अनेकविधाः-पद्मलता-नागलताऽशोकलताचम्पकलतादयः । यस्य वनस्पतेस्तिर्यक् तथाविधाः शाखा प्रशाखा वा न प्रसृताः सा लतोच्यते ।

वल्ल्योऽनेकविधाः-पुष्पफली-कूष्माण्डी-कालिङ्गी-तुम्बी-त्रपुषी-कोशातकी-पटोलादयः । पर्वगा अनेकविधाः-इक्षु-वंश-नलवंश-वेतसप्रभृतयः । तृणानि-अनेकविधानि-कुशदूर्वादीनि । वलयानि-ताल-तमाल-केतकी-कदली-कन्दल्या

गुच्छ अनेक प्रकार के हैं। जैसे-अरहर वृन्ताकी, तुलसी, पिप्पली आदि। जिनका तना छोटा हो, कांड बहुत हो और जो पत्ता, फूल और फलों से युक्त हों उन्हें गुल्म कहते हैं। वे भी कई प्रकार के हैं। यथा-सेरिका नवमालिका कोरण्टक, मधुबीजक वगैरह। लतायें भी अनेक प्रकार की है, जैसे पद्मलता, नागलता अशोकलता चम्पकलता आदि। जिस वनस्पति की तिरछी अथवा खास तरह की शाखायें प्रशाखायें नहीं फैलती वह लता कहलाती हैं।

वल्ली के भी अनेक भेद हैं। जैसे-पुष्पफली, कूष्माण्डी, कालिंगी, तुम्बी, त्रपुषी (ककड़ी) कोशातकी तथा पटोलादि। पर्वग भी अनेक प्रकार के हैं। जैसे-इक्षु, (सांठी) बांस (वैस) नलबांस बेंत आदि। कुश और दूब आदि तृण अनेक प्रकार के होते है। ताल तमाल केतकी कदली, कन्दली आदि वलय

ગુચ્છ અનેક પ્રકારનાં છે જેવા કે-તુવેર વૃન્તાકી, તુલસી પિપ્પલી, આદિ જેના થડ નાના હોય કાંડ બહુજ હોય અને જે પત્તા-ફૂલ અને ફળોથી યુક્ત હોય તેને ગુલ્મ કહે છે તે પણ ઘણા પ્રકારના છે જેમ-સેરિકા, નવમાલિકા, કોરંટક મધુબીજક વગેરે લતાઓ પણ અનેક પ્રકારની છે. જેવી રીતે કે-પદ્મલતા નાગલતા, અશોકલતા ચમ્પકલતા આદિ. જે વનસ્પતિની તિરછી અથવા ખાસ તરહની શાખાઓ-પ્રશાખાઓ ફેલાતી નથી તે લતા કહેવાય છે

વલ્લીના પણ અનેક ભેદ છે જેવી રીતે પુષ્પફલી કૂષ્માંડી, કાલિંગી, તુમ્બી, ત્રપુષી, કોશાતકી તથા પટોલાદિ. પર્વગ પણ અનેક પ્રકારના છે જેમ-શેરડી વાંસ, નલવંશ વેત આદિ. કુશ-દાભડો અને દુબ-ધરો આદિ તૃણ અનેક પ્રકારના હોય છે તાલ, તમાલ, કેતકી, કદલી-કેળ, કન્દલી આદિને વલય કહેવાય છે તદુપરાંત, (વાંસળી)

पुष्पेषु अनेकजीवाः-संख्याता असंख्याता अनन्ता वा सन्ति। उक्तञ्च-
"पुप्फा अणेगजीवा" इति।

"पुप्फा जलया थलया, विंटवद्धा य नालिवद्धा य।
संखिज्जमसंखिज्जा, बोधव्वाऽणंतजीवा य"॥

छाया-पुष्पाणि जलजानि स्थलजानि, वृन्तबद्धानि च नालिबद्धानि च।
सख्येयानि (सख्येय जीवानि) असख्येयानि (असंख्येय जीवानि)
बोद्धव्यानि अनन्त जीवानि च॥ (प्रज्ञा०)

यत्तु "पुष्पाणि चैकजीवानि मन्तव्यानी"-ति शीलाङ्काचार्यैरभिहितं तत् प्रामादिकम्, प्रज्ञापनासूत्रविरोधात्।

फलेषु मूलजीवमाश्रित्य प्रत्येकं द्वौ द्वौ जीवौ स्तः। दोण्णि य जीवा फले भणिया" इति प्रज्ञापनावचनात्। वृक्षाः प्ररूपिताः, अथगुच्छादयः प्रोच्यन्ते-

---

फूलो मे अनेक-सख्यात असख्यात अथवा अनन्त जीव होते हे। कहा भी है-"पुप्फा अणेगजीवा" फूल अनेक जीव वाले होते है।

"जल में उत्पन्न होने वाले, स्थल में उत्पन्न होने वाले, वृन्तबद्ध या नालिबद्ध फूल सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त जीव वाले समझने चाहिए"। (प्रज्ञापनासूत्र)

"फूल एक जीव वाले होते है" यह शीलाङ्काचार्य का कथन भूलभरा है, क्यों कि यह प्रज्ञापनासूत्र से विरुद्ध है।

फलों में मूल जीव की अपेक्षा प्रत्येक दो-दो जीव है। प्रज्ञापना सूत्र में कहा है-"फल में दो जीव कहे गये है।"

यहाँ तक वृक्षों का निरूपण किया। अब गुच्छ आदि के विषय में कहते हैं—

ફૂલોમા અનેક સખ્યાત અસખ્યાત અથવા અનન્ત-જીવ હોય છે કહ્યુ પણ છે-'पुप्फा अणेगजीवा' "ફૂલ અનેક જીવવાળા હોય છે"

"જલમા ઉત્પન્ન થવાવાળા, સ્થળમા ઉત્પન્ન થવાવાળા વૃન્તબદ્ધ અથવા નાલિબદ્ધ ફૂલ સખ્યાત અસંખ્યાત અથવા અનન્ત જીવવાળા છે, એમ સમજવુ જોઈએ" (પ્રજ્ઞાપનાસૂત્ર)

"ફૂલ એક જીવવાળા હોય છે" આ શીલાકાચાર્યનુ કથન ભૂલભર્યું છે, કેમકે તે પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રથી વિરુદ્ધ છે

ફલોમા મૂલ જીવની અપેક્ષા પ્રત્યેક બે-બે જીવ છે. પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમા કહ્યું છે-"ફલમા બે જીવ કહેલા છે"

અહિં સુધી વૃક્ષોનુ નિરૂપણ કર્યું, હવે ગુચ્છ આદિના વિષયમા કહે છે-

त्मसत्त्वेन तच्छरीरमुत्पादितं, स्वशा स्वायत्तीकृतं च, कथं तमान्यपां जीवानामवकाश', नहि देवदत्तच्छरीरे देवदत्त इवान्येऽपि जीवाः सर्वावयवेषु सहैव परस्परानु प्रवेशपूर्वकं प्रादुर्भवन्ति ?

यद्वा-यनैव तच्छरीरं निष्पाद्य सत्यवकाशे स्वेतरैः सह परस्परानुप्रवेशेन स्वाधीनं कृतं, स एव यत्र प्रधानः स्यात् तत्र तस्यैव पर्याप्तापर्याप्तव्यवस्था, प्राणापानादियोग्यपुद्गलोपादानं वा भवेत्, ननु शेषाणाम् ? अत्रोच्यते—

नायं प्रश्नो युक्तिपथमारोहति, शङ्काकर्तुर्जिनशासनपरिज्ञानाभावात् ।

एक जो जीव उत्पन्न हुआ उसने यह शरीर उत्पन्न किया और उसे पूरी तरह अपना किया। फिर उस शरीर में दूसरे जीवों को अवकाश किस प्रकार मिल सकता है ? देवदत्त के शरीर में देवदत्त की तरह अन्य जीव भी सब अवयवों में एक दूसरे में मिलकर उत्पन्न कैसे हो सकते हैं ?

अथवा—जिस जीवने यह शरीर उत्पन्न करके, अवकाश होने पर अपने से भिन्न अन्य जीवोंके साथ मिलकर ग्रहण किया है वही जीव उस शरीर में प्रधान होगा। उसी स्थिति में उसी की पर्याप्त और अपर्याप्त की व्यवस्था होगी। वही प्राणापान आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करेगा। शेष जीवों के विषय में किस प्रकार यह व्यवस्था हो सकती है।

समाधान—यह शंका उचित नहीं कही जा सकती, क्यों कि शंकाकार को जिनशासन का परिज्ञान नहीं है।

જે જીવ ઉત્પન્ન થયો. તેણે તે શરીર ઉત્પન્ન કર્યું અને તેણે પૂરી રીતે પોતાનું કરી લીધું પછી એ શરીરમાં બીજા જીવોને અવકાશ કેવી રીતે મળી શકે છે? દેવદત્તના શરીરમાં દેવદત્તની પ્રમાણે અન્ય જીવ પણ તમામ અવયવોમાં એક બીજાને મળીને ઉત્પન્ન કેવી રીતે થઈ શકે છે?

અથવા જે જીવે આ શરીર ઉત્પન્ન કરીને અવકાશ મળતાં પોતાનાથી ભિન્ન અન્ય જીવોની સાથે મળીને ગ્રહણ કર્યું છે તે જીવ એ શરીરમા પ્રધાન થશે. એવી અવસ્થામાં-સ્થિતિમાં એની પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તની અવસ્થા થશે. તેજ પ્રાણ-અપાન આદિના યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરશે. શેષ-બાકીના જીવોના વિષયમાં એ અવસ્થા કેવી રીતે થઈ શકે છે?

સમાધાન—આ શંકા યોગ્ય નથી કેમકે-શંકા કરનારને જિન, શાસનનું પરિજ્ઞાન નથી.

दीनि । हरितानि–तन्दुलीयक–वस्तुल–मार्जारपादिका–पालङ्क्यादीनि । ओषधयः–शालि–व्रीहि–गोधूम–यव–वर्जरी–मुद्ग–माषादयः । जलरुहाः–उत्पल–पद्म–कुमुद–नलिन–पुण्डरीक–शतपत्र–सहस्रपत्र–कोकनदा–रविन्द–पनक–पनकचट्ट–शैवालादयः । कुहणाः भूमिस्फोटकाऽऽपकाय–सर्पच्छत्रादयः ।

उक्ताः प्रत्येकशरीरा वनस्पतयः । अथ साधारणशरीराः प्ररूप्यन्ते—

साधारणनामकर्मोदयादनन्तानां जीवानां साधारणमेकं शरीरं भवति । तस्मात् साधारणमेकं शरीरं येषां ते साधारणशरीराः ।

ननु कथमनन्तजीवानामेकं शरीरं सम्भवति, तथाहि–यः खलु प्रथमं

कहलाते है । तन्दुलीयक, वस्तुल, मार्जारपादिका, पालकी आदि को हरित कहते है । शालि व्रीहि (धान) और गेहूँ, जौ, बाजरी, मूग, उडद आदि के पौधे ओषधि कहलाते हैं । उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, पुण्डरीक शतपत्र, सहस्रपत्र, कोकनद, अरविन्द, पनक, पनकचट्ट, शैवाल आदि को जलरुह कहते है । भूमिस्फोटक, आपकाय और सर्पछत्र आदि कुहण कहलाते हैं ।

यहाँ तक प्रत्येकशरीर वनस्पति का विवेचन हुआ । साधारणशरीर का प्ररूपण इस प्रकार है—

साधारणनामकर्म के उदय से अनन्त जीवों का एक साधारण होता है । जिनका शरीर साधारण अर्थात् एक हो, वे साधारणशरीर कहलाते है ।

शङ्का—अनन्त जीवों का शरीर एक कैसे हो सकता हो ? क्यों कि पहले-

---

વસ્તુલ (બથુવા) માર્જારપાદિકા, પાલંકી (સુવાપાલક) આદિને હરિત કહે છે શાલી, વ્રીહિ (ધાન્ય) ગેહૂ–ઘઉ, જવ, બાજરો, મગ, અડદ આદિ ઓષધિ કહેવાય છે ઉત્પલ, પદ્મ, કુમુદ, નલિન, પુંડરીક, શતપત્ર, સહસ્રપત્ર, કોકનદ, અરવિંદ, પનક, પનકચટ્ટ શૈવાલ આદિને જલરુહ કહે છે ભૂમિસ્ફોટક, આપકાય અને સર્પછત્ર આદિ–કુહણ કહેવાય છે

અહિં સુધી પ્રત્યેક વનસ્પતિનુ વિવેચન થયુ, સાધારણ શરીરનુ પ્રરૂપણ આ પ્રકારે છે–

સાધારણનામકર્મના ઉદયથી અનન્ત જીવોનુ એક સાધારણશરીર હોય છે જેનુ શરીર સાધારણ અર્થાત એક હોય તે સાધારણશરીર કહેવાય છે

શંકા—અનન્ત જીવોના શરીર એક કેવી રીતે હોઈ શકે છે ? કેમકે પહેલ વહેલો

प्रातस्तेन तच्छरीरमुत्पादितं, सर्वथा स्वायत्तीकृतं च, कथं तमान्यपां जीवानामवकाश', नहि देवदत्तशरीरे देवदत्त इवान्योऽपि जीवा' सर्वावयवेषु सहैव परस्परानुप्रवेशपूर्वकं प्रादुर्भवन्ति ?

यद्वा-येनैव तच्छरीरं निष्पाद्य सत्यवकाशे स्वेतरैः सह परस्परानुप्रवेशेन स्वाधीनं कृतं, स एव यत्र प्रधानः स्यात् ततश्च तस्यैव पर्याप्तापर्याप्तव्यवस्था, प्राणापानादियोग्यपुद्गलोपादानं वा भवेत्, ननु शेषाणाम् ? अत्रोच्यते—

नायं प्रश्नो युक्तिपथमारोहति, प्रष्टुराकर्षुर्जिनशासनपरिज्ञानाभावात् ।

पहले जो जीव उत्पन्न हुआ उसने वह शरीर उत्पन्न किया और उसे पूरी तरह अपना लिया। फिर उस शरीर में दूसरे जीवों को अवकाश किस प्रकार मिल सकता है ? देवदत्त के शरीर में देवदत्त की तरह अन्य जीव भी सब अवयवों में एक दूसरे में मिलकर उत्पन्न कैसे हो सकते है ?

अथवा—जिस जीवने वह शरीर उत्पन्न करके, अवकाश होने पर अपने से भिन्न अन्य जीवोंके साथ मिलकर ग्रहण किया है वही जीव उस शरीर में प्रधान होगा। उसी स्थिति में उसी की पर्याप्त और अपर्याप्त की व्यवस्था होगी। वही प्राणापान आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करेगा। शेष जीवों के विषय में किस प्रकार यह व्यवस्था हो सकती है।

समाधान—यह शंका उचित नहीं कही जा सकती, क्यों कि शंकाकार को जिनशासन का परिज्ञान नहीं है।

જે જીવ ઉત્પન્ન થયો તેણે તે શરીર ઉત્પન્ન કર્યું અને તેણે પૂરી રીતે પોતાનું કરી લીધું પછી એ શરીરમાં બીજા જીવોને અવકાશ કેવી રીતે મળી શકે છે? દેવદત્તના શરીરમાં દેવદત્તની પ્રમાણે અન્ય જીવ પણ તમામ અવયવોમાં એક બીજાને મળીને ઉત્પન્ન કેવી રીતે થઈ શકે છે?

અથવા જે જીવે આ શરીર ઉત્પન્ન કરીને અવકાશ મળતાં પોતાનાથી ભિન્ન અન્ય જીવોની સાથે મળીને ગ્રહણ કર્યું છે તે જીવ એ શરીરમાં પ્રધાન થશે. એવી અવસ્થામાં-સ્થિતિમાં એની પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તની અવસ્થા થશે. તેજ પ્રાણ-અપાન આદિના યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરશે. શેષ-બાકીના જીવોના વિષયમાં એ અવસ્થા કેવી રીતે થઈ શકે છે?

સમાધાન—આ શંકા યોગ્ય નથી કેમકે-શંકા કરનારને જિન, શાસનનું પરિજ્ઞાન નથી.

वादरा वनस्पतयः संक्षेपतः षड्विधाः–अग्रबीज–मूलबीज–पर्वबीज–स्कन्ध-बीज–बीजरुह–संमूर्च्छिमभेदात् । अग्रे बीजं येषां ते–अग्रबीजाः कोरण्टकप्रभृतयः । मूलमेव बीजं येषां ते मूलबीजाः कदल्यादयः । पर्वणि=ग्रन्थौ सन्धिभागे पर्वैव वा बीजं येषां ते पर्वबीजाः इक्षु–वंश–वेत्रप्रभृतयः। स्कन्धः=स्थुड, स एव बीजं येषां ते स्कन्धबीजाः=अरणि–शल्लकी–स्नुहीप्रभृतयः । बीजाद् रोहन्ति=प्रादुर्भवन्तीति बीज-रुहाः=शालि–गोधूम–जव–मक्का–वर्जरीप्रभृतयः। संमूर्च्छन्ति=बीज विनाऽपि दग्धभू-मावपि समुद्भवन्तीति समूर्च्छिमाः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणविशेषाः ।

वादर वनस्पति सक्षेप में छह प्रकार की हैं–(१) अग्रबीज (२) मूलबीज (३) पर्वबीज (४) स्कन्धबीज (५) बीजरुह और (६) समूर्च्छिम । जिन वनस्पतियोंका बीज आगे रहता है ऐसी कोरण्टक आदि वनस्पतियाँ अग्रबीज कहलाती है । पर्व (पोर–सधिभाग) में जिनका बीज हो, या पर्व ही जिनका बीज हो उन्हें पर्वबीज कहते है, जैसे–ईख, बाँस, वेत आदि । स्कध जिनका बीज हो ऐसी अरणि, शल्लकी, स्नुही (थुहर) वगैरह स्कन्धबीज कहलाती है । शाली, गेहूँ, जौ, मक्की, बाजरी वगैरह बीज से उगने वाली वनस्पति को बीजरुह कहते हैं । बीज के विना भी, जली हुई जमीन आदि में भी पृथ्वी और जल के सयोगमात्र से उत्पन्न होने वाली वनस्पति समूर्च्छिम कहलाती है ।

બાદર વનસ્પતિ સક્ષેપમા છ પ્રકારની છે– (૧) અગ્રબીજ, (૨) મૂળબીજ, (૩) પર્વબીજ, (૪) સ્કન્ધબીજ, (૫) બીજરુહ, (૬) સમૂર્છિમ જે વનસ્પતિઓનું બીજ આગળ રહે છે એવી કોરટક આદિ વનસ્પતિઓ અગ્રબીજ કહેવાય છે મૂળ એજ જેનુ બીજ હોય એવી કદળી આદિ વનસ્પતિઓ મૂળબીજ છે –(પોર–સધિભાગ)મા જેનુ બીજ હોય તેને પર્વબીજ કહે છે, જેમકે –શેલડી, વાંસ, નેતર આદિ સ્કધ જેનુ બીજ હોય તે અરણી શલ્ય, સ્નુહી (થોર) વગેરે સ્કધબીજ કહેવાય છે શાલી, ઘઉ, જવ, મકાઈ, બાજરી વગેરે બીજથી ઉગવા વાળી વનસ્પતિને બીજરુહ કહે છે બીજ વિના પણ બળી ગએલી જમીન આદિમા પણ પૃથ્વી અને જલના સ‘યોગમાત્રથી ઉત્પન્ન થવા વાળી વનસ્પતિ તે સમૂર્છિમ કહેવાય છે

आकारतः प्रत्येकवनस्पतिरूपेण दृश्यमाना अपि वनस्पतयोऽनन्तजीवाः सन्ति। तेषां लक्षणमुच्यते—

यस्मिन् मूले भग्ने सति समचक्राकारो भङ्गो भवति, तत्र नियमतोऽनन्ता जीवा भवन्ति। तथा यस्मिन् स्कन्दे भग्ने सति समचक्राकारो भङ्गो दृश्यते तत्राप्यनन्ता जीवाः। एव नापषु स्कन्ध-त्वक्-शाखा-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीजेष्वपि विज्ञेयम्। ईदृशश्च भङ्गः प्रायशोऽपरिणतावस्थायां भवति।

तथा—यस्य वनस्पतेर्मध्यगतसारभूतकाष्ठापेक्षया बहुलतरा स्थूला त्वग् भवति सा त्वगनन्तजीवस्वरूपा।

आकार से प्रत्येकवनस्पति के समान दिखाई देने वाली वनस्पतियाँ भी अनन्त जीव वाली होती हैं। उनका लक्षण यह है—

जिसका मूलभाग तोड़ने पर समान चक्राकार भंग होता है, उसमें नियम से अनंत जीव होते हैं। इसी प्रकार जिसका कन्द भांगने पर समान चक्राकार भंग दिखाई दे उसमें भी अनंत जीव होते हैं। यही बात स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीजों के विषय में भी समझनी चाहिए। इस प्रकार के भंग प्राय तब होते हैं जब वनस्पति कच्ची होती है।

इसके अतिरिक्त जिस वनस्पति के बीच के सारभाग की अपेक्षा छाल बहुत मोटी होती है वह छाल भी अनंत जीव वाली होती है।

આકારથી પ્રત્યેક વનસ્પતિના સમાન-સરખી-દેખાવાવાળી વનસ્પતિ પણ અનન્ત જીવવાળી હોય છે તેનું લક્ષણ એ છે કે-જેના મૂળભાગને તોડવાથી સમાન ચક્રાકાર ભંગ થાય છે તેમાં નિયમથી અનન્ત જીવ હોય છે એ પ્રમાણે જેના કન્દ ભાંગવાથી સમાન ચક્રાકાર ભંગ થયેલ દેખાઈ આવે તેમાં પણ અનન્ત જીવ હોય છે એજ પ્રમાણે સ્કંધ, ત્વચા શાખા પ્રવાલ પત્ર-પાંદડાં, પુષ્પ, ફળ અને બીજોના વિષયમાં પણ સમજવું જોઈએ. આ પ્રકારનો ભંગ પ્રાય: ક્યારે થાય છે કે જ્યારે વનસ્પતિ કાચી હોય છે ત્યારે થાય છે

એના સિવાય જે વનસ્પતિના વચ્ચમાં સારભાગની અપેક્ષા છાલ વધુ જ મોટી હોય છે તે છાલ પણ અનન્તજીવવાળી હોય છે

साधारणनामकर्मप्रभावादनन्ता अपि जीवा एकस्मिन्नेव काले सहैवोत्पत्तिदेशे तिष्ठन्ति, सहैव पर्याप्तिं निर्वर्त्तयन्ति, सहैव प्राणापानयोग्यपुद्गलानुपाददते, सहैव च तेषामाहारादिपुद्गलग्रहणम्, तस्मान्न काचिदनुपपत्तिरिति । उक्तञ्च भगवता—

" समयं वक्कंताणं, समयं तेसिं शरीरनिव्वित्ती ।
समयं आणग्गहणं, समय उस्सानीसासा ॥ १६ ॥
एक्कस्स उ जं गहणं, वहूण साहारणाण त चेव ।
ज वहुयाणं गहणं, समासओ तंपि एगस्स ॥ १७ ॥

छाया—समकं व्युत्क्रान्तानां, समक तेषां शरीरनिर्वृत्तिः ।
समकमानग्रहणं, समकमुच्छ्वासनिःश्वासौ ॥ १६ ॥
एकस्य तु यद् ग्रहणं, वहूनां साधारणानां तदेव ।
यद् वहुकाना ग्रहणं, समासतस्तदप्येकस्य ॥ १७ ॥

साधारणनामकर्म प्रभाव से अनन्त जीव एक ही काल में साथ ही उत्पत्ति देश में उत्पन्न होते हैं, साथ ही पर्याप्तियाँ पूर्ण करते हैं, साथ ही प्राणापान के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं और साथ ही आहार आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं । अत एव इस कथन में तनिक भी अयुक्ति नहीं है । भगवान् ने कहा है—

"साथ ही वे जीव उत्पत्तिदेश में आते हैं, साथ ही उनका शरीर बनता है, साथ ही प्राण ग्रहण करते है, साथ ही उच्छ्वास—नि श्वास होते हैं (१६) एक जीव जो ग्रहण करता है वह बहुत जीवों के लिए समान होता है और बहुत जीव जो ग्रहण करते हैं वह एक जीव के लिए भी होता है (१७)

સાધારણ નામકર્મના પ્રભાવથી અનન્ત જીવ એકજ કાલમા સાથેજ ઉત્પત્તિદેશમા ઉત્પન્ન થયા છે સાથેજ પર્યાપ્તિઓ પૂર્ણ કરે છે સાથેજ પ્રાણ-અપાનના યોગ્ય-પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, અને સાથેજ આહાર આદિના યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે એ માટે આ કથનમા જરાપણ અસ્વાભાવિકતા અથવા અયુકતતા નથી. ભગવાને કહ્યુ છે કે —

"તે જીવ એક સાથેજ ઉત્પત્તિદેશમા આવે છે, સાથેજ એના શરીરો બને છે, સાથેજ પ્રાણ ગ્રહણ કરે છે સાથેજ શ્વાસોચ્છ્વાસ થાય છે (૧૬) એક જીવ જે ગ્રહણ કરે છે તે બધાય જીવો માટે સમાનપણે થાય છે, અને તમામ જીવો જે ગ્રહણ કરે છે તે એક જીવને માટે પણ થાય છે (૧૭)

साहारणमाहारो, साहारणमाणपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं, साहारणलक्खणं एयं" ॥ १८ ॥ (प्रज्ञा० ११५)

छाया-साधारणमाहारः साधारणमानप्राणग्रहणं च।
साधारणजीवानां, साधारणलक्षणमेतत् ॥ १८ ॥

एवं च परस्परानुविद्धानन्तजीवसमूहरूपेण एकशरीरावस्थायिनो जीवाः साधारणशरीरा इति सिद्धम्। एते साधारणजीवशब्देन साधारणशब्देनापि च व्यपदिश्यन्ते।

तेऽनेकविधाः-सूरणकन्द-वज्रकन्द-शर्कराकन्द-रक्ताळु-पिण्डाळु-लशुन-पलाण्डु-गृञ्जन-शृङ्गबेरादयः। वनस्पतेर्मूलसंलग्नो भूम्यन्तर्गतो भागविशेषः कन्दः। एतेऽनन्तजीवपिण्डस्वरूपाः सन्ति।

साधारण जीवों का आहार साधारण होता है और साधारण प्राणापान का ग्रहण होता है, इस प्रकार उनका यह साधारण लक्षण कहा गया है" ॥१८॥ (प्रज्ञा० ११५)

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि एक दूसरे में मिले हुए अनन्तजीवसमूहरूप से एक ही शरीर में रहने वाले साधारण जीव हैं। इन जीवों के लिए 'साधारणजीव' तथा 'साधारण' शब्द का भी व्यवहार किया जाता है।

साधारण जीव अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे-सूरणकन्द, वज्रकन्द, शक्कर कन्द, रताळु, पिंडाळु, लहसुन प्याज, गाजर अदरख आदि। वनस्पति के मूल के साथ जुड़ा हुआ और जमीन के अन्दर रहने वाला हिस्सा कंद कहलाता है। ये कंद अनंत जीवों के पिंड हैं।

સાધારણ જીવોનો આહાર સાધારણ હોય છે અને સાધારણ પ્રાણાપાનનું ગ્રહણ હોય છે એ પ્રમાણે તેનું આ સાધારણ લક્ષણ કહ્યું છે (૧૮)"

આ પ્રમાણે સિદ્ધ થયું કે એક બીજામાં મળેલા અનન્તજીવસમૂહરૂપથી એક જ શરીરમાં રહેવા વાળા સાધારણ જીવ છે એ જીવોને માટે સાધારણ જીવ તથા સાધારણ શબ્દનો પણ વ્યવહાર કરી શકાય છે

સાધારણ જીવ અનેક પ્રકારના હોય છે જેમ-સૂરણકંદ, રતાળુ પિંડાળુ, લસણ ડુંગળી ગાજર, આદુ આદિ. વનસ્પતિના મૂળની સાથે જોડાએલા અને જમીનની અંદર રહેવાવાળો ભાગ કંદ કહેવાય છે આ કંદ અનન્ત જીવોના પિંડ છે.

वादरा वनस्पतयः सक्षेपतः पड्विधाः-अग्रवीज-मूलवीज-पर्ववीज-स्कन्ध-वीज-वीजरुह-संमूर्च्छिमभेदात्। अग्रे वीजं येषा ते-अग्रवीजाः कोरण्टकप्रभृतयः। मूलमेव वीजं येषा ते मूलवीजाः कदल्यादयः। पर्वणि=ग्रन्थौ मन्धिभागे पर्वैव वा वीजं येषा ते पर्ववीजाः इक्षु-वंश-वेत्रप्रभृतयः। स्कन्धः=स्थुड, स एव वीजं येषा ते स्कन्धवीजाः=अरणि-शल्लकी-स्नुहीप्रभृतयः। वीजाद् रोहन्ति=प्रादुर्भवन्तीति वीज-रुहाः=शालि-गोधूम-जव-मक्का-वर्जरीप्रभृतयः। संमूर्च्छन्ति=वीज विनाऽपि दग्धभू-मावपि समुद्भवन्तीति समूर्च्छिमाः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणविशेषाः।

वादर वनस्पति सक्षेप मे छह प्रकार की है-(१) अग्रवीज (२) मूलवीज (३) पर्ववीज (४) स्कन्धवीज (५) वीजरुह और (६) समूर्च्छिम। जिन वनस्पतियोंका बीज आगे रहता है ऐसी कोरण्टक आदि वनस्पतियॉ अग्रवीज कहलाती है। पर्व (पोर-सधिभाग) में जिनका बीज हो, या पर्व ही जिनका वीज हो उन्हें पर्ववीज कहते है, जैसे-ईख, बॉस, वेत आदि। स्कध जिनका वीज हो ऐसी अरणि, शल्लकी, स्नुही (थुहर) वगैरह स्कन्धवीज कहलाती है। शाली, गेहूँ, जौ, मक्की, वाजरी वगैरह बीज से उगने वाली वनस्पति को बीजरुह कहते हैं। वीज के विना भी, जली हुई जमीन आदि में भी पृथ्वी और जल के सयोगमात्र से उत्पन्न होने वाली वनस्पति समूर्च्छिम कहलाती है।

બાદર વનસ્પતિ સક્ષેપમા છ પ્રકારની છે- (૧) અગ્રબીજ, (૨) મૂળબીજ, (૩) પર્વબીજ, (૪) સ્કન્ધબીજ, (૫) બીજરુહ, (૬) સમૂર્છિમ જે વનસ્પતિઓનુ બીજ આગળ રહે છે એવી કોરટક આદિ વનસ્પતિઓ અગ્રબીજ કહેવાય છે મૂળ એજ જેનુ બીજ હોય એવી કદળી આદિ વનસ્પતિઓ મૂળબીજ છે -(પોર-સધિભાગ)મા જેનુ બીજ હોય તેને પર્વબીજ કહે છે, જેમકે--શેલડી, વાસ, નેતર આદિ સ્કધ જેનુ બીજ હોય તે અરણી શલ્ય, સ્નુહી (થોર) વગેરે સ્કધબીજ કહેવાય છે શાલી, ઘઉ, જવ, મકાઈ, બાજરી વગેરે બીજથી ઉગવા વાળી વનસ્પતિને બીજરુહ કહે છે બીજ વિના પણ બળી ગએલી જમીન આદિમા પણ પૃથ્વી અને જલના સંયોગમાત્રથી ઉત્પન્ન થવા વાળી વનસ્પતિ તે સમૂર્છિમ કહેવાય છે

आकारत प्रत्येकवनस्पतिरूपेण दृश्यमाना अपि वनस्पतयोऽनन्तजीवाः सन्ति। तेषां लक्षणमुच्यते—

यस्मिन् मूले भग्ने सति समचक्राकारो भङ्गो भवति, तत्र नियमतोऽनन्ता जीवा भवन्ति। तथा यस्मिन् स्कन्दे भग्ने सति समचक्राकारो भङ्गोदृश्यते तमाप्य नन्ता जीवाः। एवं शेषेषु स्कन्ध-त्वक्-शाखा-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीजेष्वपि विज्ञेयम्। ईदृशश्च भङ्गः प्रायेणापरिपक्वावस्थायां भवति।

तथा-यस्य वनस्पतेर्मध्यगतसारभूतकाष्ठापेक्षया बहुलतरा स्थूला त्वग् भवति सा त्वगनन्तजीवस्वरूपा।

आकार से प्रत्येकवनस्पति के समान दिखाई देने वाली वनस्पतियाँ भी अनन्त जीव वाली होती हैं। उनका लक्षण यह है—

जिसका मूलभाग तोड़ने पर समान चक्राकार भंग होता है, उसमें नियम से अनंत जीव होते हैं। इसी प्रकार जिसका कन्द भाँगने पर समान चक्राकार भंग दिखाई दे उसमें भी अनंत जीव होते हैं। यही बात स्कन्ध त्वचा, शाखा प्रवाल पत्र पुष्प, फल और बीजों के विषय में भी समझनी चाहिए। इस प्रकार के भंग प्राय सब होते हैं जब वनस्पति कच्ची होती है।

इसके अतिरिक्त जिस वनस्पति के बीच के सारभाग की अपेक्षा छाल बहुत मोटी होती है वह छाल भी अनंत जीव वाली होती है।

આકારથી પ્રત્યેક વનસ્પતિના સમાન-સરખી-દેખાવાવાળી વનસ્પતિ પણ અનન્ત જીવવાળી હોય છે તેનું લક્ષણ આ છે કે-જેના મૂળભાગને તોડવાથી સમાન ચક્રાકાર ભંગ થાય છે તેમાં નિયમથી અનન્ત જીવ હોય છે એ પ્રમાણે જેનો કન્દ ભાંગવાથી સમાન ચક્રાકાર ભંગ થયો દેખાઈ આવે તેમાં પણ અનન્ત જીવ હોય છે એજ પ્રમાણે સ્કંધ, ત્વચા, શાખા પ્રવાલ પત્ર-પાંદડાં, પુષ્પ, ફળ અને બીજોના વિષયમાં પણ સમજવું જોઈએ. આ પ્રકારનો ભંગ પ્રાયઃ ક્યારે થાય છે કે જ્યારે વનસ્પતિ કાચી હોય છે ત્યારે થાય છે

એના સિવાય જે વનસ્પતિના વચ્ચમાં સારભાગની અપેક્ષા છાલ ઘણી જ મોટી હોય છે, તે છાલ પણ અનંતજીવવાળી હોય છે

तथा—किसलयरूपे पत्राङ्कुरे उद्गम्यमाने नियमतोऽनन्ता जीवा भवन्ति। उक्तञ्च प्रज्ञापनाया प्रथमपदे।

' सव्वोऽवि किसलओ खलु, उग्गममाणो अणतओ भणिओ. " इत्यादि।

छाया—सर्वोऽपि किसलयः खलु उद्गच्छन अनन्त भणितः इत्यादि।

वनस्पतिर्भिद्यमानः पृथिवीसदृशेन भेदेन भिद्यते, सोऽप्यनन्तजीवस्वरूपः। अन्यच्च—

" गूढसिराग पत्तं, सच्छीरं ज च होइ निच्छीरं।
जंपि य पट्ठणसधिं, अणतजीव वियाणाहि ॥ १ ॥ " इति। (प्रज्ञा०)
छाया—गूढशिराकं पत्रं, सक्षीर यच्च भवति निःक्षीरम्।
यदपि च प्रणष्टसन्धि, अनन्तजीव विजानीहि ॥ १ ॥ इति।

तथा—कौपल जब उत्पन्न होती है तो उसमें भी अनत जीव होते ह। प्रज्ञापना के पहले पदमें कहा है—

" उगते हुए सभी किसलय अनंतकाय कहे गये हैं। "

जिस वनस्पति की ग्रथि या पोर, तोडनेपर रज से भरी हो, या जो वनस्पति, टूटने पर पृथ्वी के समान भेदों से टूटे, वह भी अनतजीववाली होती है।

और भी कहा है —

" जिस के ततु साफ दिखाई न देते हों, तथा जिसकी सधि विलकुल दिखाई न देती हो ऐसा पत्ता, अगर दूधवाला हो या उसमें दूध उत्पन्न न हो, उसे भी अनतजीववाला समझना चाहिए "।

તથા—કુપળ જ્યારે ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તેમા પણ અનત જીવ હોય છે પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રના પ્રથમ પદમા કહ્યુ છે કે–

" ઉગતા હોય તે સર્વ કિશલય (પલ્લવ તાજા કુમળા પાનનો સમૂહ) અનન્તકાય કહ્યા છે "

જે વનસ્પતિની ગ્રથિ–ગાઠ અથવા પોર, તોડવાથી રજથી ભરેલી, હોય અથવા જે વનસ્પતિ, તૂટવાથી પૃથ્વીના સમાન ભેદોથી તૂટે તે પણ અનત જીવવાળી હોય છે બીજુ પણ કહ્યુ છે કે –

" જેના તતુઓ ચોખ્ખા દેખાતા ન હોય, તથા જેની સધિ (સાધો) બીલકુલ દેખાતી હોય નહિ, એવા પાદડા દૂધવાળા હોય અથવા એમા દૂધ ઉત્પન્ન હોય નહિ, તેને પણ અનત–જીવ વાળા સમજવા જોઈએ "

गूढशिराकमिति-गूढाः=असक्ष्यमाणाः शिराः=नाडीभाले सन्तुभालमिति वा यस्य तत्। प्रच्छन्नसंधीति-प्रणष्ट=सर्वथाऽनुपलक्ष्यमाणः, सन्धिः=पत्रद्वयसंयोगरूपो भागो यस्य तत्। एतादृशं पर्णं सक्षीरं=सदुग्धम्, निःक्षीरम्=अनुत्पन्नदुग्धं वा तदनन्तजीवं विजानीहीत्यर्थः।

एवमन्येऽप्यनेकविधाः शैवालादयोऽनन्तजीवाः स्वबुद्ध्या गुरुगमेन वा परिभावनीयाः। विस्तरतस्तु जिज्ञासुभिः प्रज्ञापनासूत्रं विलोकनीयम्।

सूक्ष्मनिगोदास्तु भगवद्वचनावगम्या एव, अनन्तशरीरसंघाते सत्यप्यतिसूक्ष्मत्वादस्मादृशां चक्षुःपथेऽवतरन्ति। "आणागिज्झा एए चक्खुप्फासं न तं इंति" इति वचनात्। उक्तञ्च प्रज्ञापनायां सदृष्टान्तं निगोदजीवस्वरूपं, यथा—

इसी प्रकार सेवार आदि अन्यान्य वनस्पतियों को भी अपनी बुद्धि से या गुरुगम से अनन्तजीववाली समझ लेनी चाहिए। जिन्हें विस्तारपूर्वक जानना हो उन्हें प्रज्ञापनासूत्र देखना चाहिए।

सूक्ष्म निगोद भगवान् के वचन से ही समझे जा सकते हैं। एक शरीर में अनंत जीवों का पिण्ड होने पर भी वे जीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि हम अपने नेत्रों से (आगम) उन्हें नहीं देख सकते। कहा भी है—"ये जीव सर्वज्ञकी आज्ञा से ही ग्रहण किये (माने) जाते हैं। आंख उन्हें नहीं देख सकती"। प्रज्ञापना सूत्र में उदाहरण के साथ निगोद का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

એ પ્રમાણે સેવાળ આદિ બીજી-બીજી વનસ્પતિઓને પણ પોતાની બુદ્ધિથી અથવા ગુરુગમથી અનંતજીવવાળી સમજી લેવી જોઈએ, જેને વિસ્તારપૂર્વક જાણવાની ઇચ્છા હોય તેઓએ પ્રજ્ઞાપનાસૂત્ર જોઈ લેવું જોઈએ

સૂક્ષ્મનિગોદ ભગવાનના વચનથી જ સમજી શકાય છે (બીજી રીતે શકાય છે) એક શરીરમાં અનંત જીવોના પિંડ હોવા છતાં પણ તે જીવ એટલા સૂક્ષ્મ હોય છે કે આપણે આપણા નેત્રથી તેને જોઈ શકતા નથી. કહ્યું પણ છે કે—"તે જીવ સર્વજ્ઞની આજ્ઞા (આગમ)થી જ ગ્રહણ કરવામાં આવે છે—માનવામાં આવે છે નેત્રથી તે જોઈ શકાતા નથી" પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમાં ઉદાહરણની સાથે નિગોદનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે બતાવ્યું છે—

" जह अयगोलो धंतो, जाओ तत्ततवणिज्जसकासो ।
सव्वो अगणिपरिणओ, निगोअजीवे तहा जाण " ॥ १ ॥ इति ।

छाया—यथाऽयोगोलो ध्मातो, जातस्तप्ततपनीयसंकाशः ।
सर्वोऽग्निपरिणतो, निगोजीवान् तथा जानीहि ॥ १ ॥

यथा-अयोगोलोऽग्निना ध्मातः तप्तसुवर्णसदृशः सर्वांशतोऽग्निपरिणतोऽग्निरूप एव भवति हे शिष्य ! तथैव निगोदजीवान् जानीहि । निगोदजीवाना परिमाणस्वरूपमेव विज्ञेयम्—

अथ लोकश्चतुर्दशरज्जुपरिमितोऽस्ति । एको रज्जुरसख्यातयोजनात्मकः, योजनं सख्याताङ्गुलपरिमितम्, एकमङ्गुलमसख्याताकाशप्रदेशात्मकः भवति । तस्याङ्गुलस्यैकैकाकाशप्रदेशे निगोदानामसंख्याता गोलकाः, एकैकस्मिन् गोलके निगोदानामसख्यातानि शरीराणि, एकैकस्मिश्च शरीरेऽनन्ता जीवा निवसन्ति । उक्तश्च—

"जैसे अग्नि में तपाया हुआ लोहे का गोला तपे सोने के समान पूर्णतया अग्निरूप ही हो जाता है, हे शिष्य ! उसी प्रकार निगोद के जीव समझो " । निगोद जीवों का परिमाण इस प्रकार समझना चाहिए—

लोकाकाश चौदह राजू का है । एक राजू में असख्यात योजन होते हैं और सख्यात अगुल का एक योजन होता है । आकाश के असख्यात प्रदेश-परिमित एक अंगुल होता है । इस अगुल के एक-एक आकाश प्रदेश मे निगोद जीवों के असख्यात गोले होते हैं । एक-एक गोलक में असख्यात शरीर होते हैं और एक-एक शरीर में अनन्त जीवों का निवास है । कहा भी है—

" જેમ અગ્નિમા તપાવેલો લોઢાનો ગોળો તપેલા સોના-પ્રમાણે પૂર્ણપણે અગ્નિરૂપ જ થઈ જાય છે, હે શિષ્ય ! એ પ્રમાણે નિગોદના જીવ સમજો " નિગોદના જીવોનુ પરિમાણ-એ પ્રમાણે સમજવુ જોઈએ—

લોકાકાશ ચૌદ રાજૂનો છે એક રાજૂમા અસખ્યાત યોજન થાય છે, અને સખ્યાત અગુલનો એક યોજન થાય છે આકાશના અસખ્યાતપ્રદેશ-પરિમિત એક અગુલ હોય છે એ અગુલના એક-એક આકાશપ્રદેશમા નિગોદ જીવોના અસખ્ય ગોળા હોય છે એક-એક ગોલકમા અસખ્યાત શરીર હોય છે અને એક-એક શરીરમા અનન્ત જીવોનો નિવાસ છે કહ્યુ પણ છે—

" गोला य असंखिज्जा, हुंति निगोया असंखया गोले।
एक्कक्को य निगोओ अणंतजीवो मुणेयव्वो " ॥ १ ॥

छाया-गोलाश्च असंख्येया, भवन्ति निगोदा असंख्येया गोले।
एकैकश्च निगोदः, अनन्तजीवो ज्ञातव्यः॥ १ ॥ इति।

तत्रस्यप्रत्येकजीवस्य तैजसकार्मणे द्वे द्वे शरीरे पृथक् पृथक् स्तः। तदेकैक शरीरमनन्तज्ञानावरणीयादियावदनन्तान्तरायकर्मणां वर्गणाभिः संयुक्तं वर्तते। सा चैकैका वर्गणाऽनन्तसूक्ष्मपरमाणुमयी भवतीति सूक्ष्मत्वं निगोदजीवानां सिद्धम्।

ये च शरीरत्रयाङ्गुलासंख्येयभागशरीरादिभेदाः पृथिवीकायोद्देशेऽभिहि तास्ते वनस्पतिकायानामपि बोध्याः, केवलमनित्थंस्थम्=अनियताकारं शरीरसंस्था-

"अंगुल के एक आकाशप्रदेश में असंख्यात गोले एक गोले में असंख्यात निगोद-शरीर और एक-एक निगोदशरीर में अनंत जीव जानना चाहिए" ॥१॥

निगोद में रहने वाले हरेक जीव के अलग-अलग तैजस और कार्मण शरीर होते हैं, और प्रत्येक शरीर अनन्त ज्ञानावरणीय आदि तथा अनन्त अन्तराय कर्मों की वर्गणाओं से संयुक्त है, वह एक वर्गणा अनन्तसूक्ष्मपरमाणुरूप होती है। इस कथन से निगोदिया जीवों की सूक्ष्मता सिद्ध होती है।

पृथिवीकाय के उद्देश में तीन शरीर तथा अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना आदि का कथन किया है वह वनस्पतिकाय के लिए भी समझना चाहिए। यहाँ विशेष बात यह है कि वनस्पति जीवों के शरीर का आकार अनियत होता है।

"અંગુલના એક આકાશપ્રદેશમાં અસંખ્યાત ગોળા એક ગોળામાં અસંખ્યાત નિગોદ-શરીર અને એક-એક નિગોદ શરીરમાં અનન્તજીવ જાણવા જોઈએ." ॥૧॥

નિગોદમાં રહેવા વાળા દરેક જીવને અલગ-અલગ તૈજસ અને કાર્મણ શરીર હોય છે અને પ્રત્યેક શરીર અનન્ત જ્ઞાનાવરણીય આદિ તથા અનન્ત અન્તરાય કર્મોની વર્ગણાઓથી સંયુક્ત છે તે એક વર્ગણા અનન્તસૂક્ષ્મપરમાણુરૂપ હોય છે આ વચનથી નિગોદના જીવોની સૂક્ષ્મતા સિદ્ધ થાય છે.

પૃથ્વીકાયના ઉદ્દેશમાં ત્રણ શરીર તથા અંગુલના અસંખ્યાતમા ભાગની અવગા હના આદિનું નિરૂપણ કર્યું છે તે વનસ્પતિકાય માટે પણ સમજી લેવું જોઈએ. અહિં વિશેષ વાત એ છે કે-વનસ્પતિના જીવોનો આકાર અનિયત (નિયમવગરનો) હોય છે

नमेषाम्, शेषमन्यत् समानम्। एषां स्थानं घनोदधिवातवलयादि। संख्यामङ्गीकृत्यानन्ताः सर्वे वनस्पतयः।

एव वनस्पतीना वृक्षादिभेदैः प्रत्येकसाधारणभेदैः, तथा–वर्णगन्धरसस्पर्शभेदैश्च महस्रशो भेदा भवन्ति। योन्यादिभेदैः पुनर्लक्षशो भेदा जायन्ते।

वनस्पतेर्योनिः संवृता भवति। तस्याः सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रयो भेदाः, तथा शीतोष्णमिश्रभेदेन त्रयो भेदाः। एवं गणनया प्रत्येकवनस्पतियोनीना दशलक्षसंख्यका भेदा भवन्ति। साधारणवनस्पतीनां चतुर्दशलक्षसंख्यका भेदा जायन्ते।

शेष सब पूर्ववत् है। इन का स्थान घनोदधिवातवलय आदि है। सख्या की अपेक्षा पूर्वोक्त सब प्रकार की वनस्पति–सख्या अनन्त है।

वृक्ष आदि के भेदों की अपेक्षा, प्रत्येक–साधारण की अपेक्षा तथा वर्ण, रस गध और स्पर्श के भेद की अपेक्षा वनस्पति के हजारों भेद होते हैं। योनि आदि के भेदों की अपेक्षा विचार किया जाय तो लाखों भेद हो जाते है।

वनस्पति की योनि सवृत है। सवृतयोनि सचित्त, अचित्त, और मिश्र के भेद से तीन प्रकार की होती है। शीत, उष्ण तथा मिश्र के भेद से भी तीन प्रकार की है। इस प्रकार गणना करने से प्रत्येकवनस्पति की दस लाख योनियाँ है। साधारणवनस्पति की योनियाँ चौदह लाख है।

બાકી તમામ પૂર્વ પ્રમાણે છે એનુ સ્થાન ઘનોદધિવાતવલય આદિ છે સખ્યાની અપેક્ષા પૂર્વોકત સર્વ પ્રકારની વનસ્પતિ–સખ્યા અનન્ત છે

વૃક્ષ આદિના ભેદોની અપેક્ષાએ, પ્રત્યેક–સાધારણ અપેક્ષાએ તથા વર્ણ, રસ, ગધ અને સ્પર્શના ભેદની અપેક્ષાએ વનસ્પતિના હજારો ભેદ થાય છે યોનિ આદિના ભેદોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામા આવે તો લાખો ભેદ થઈ જાય છે વનસ્પતિની યોનિ સવૃત છે સવૃતયોનિ સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્રના ભેદથી ત્રણ પ્રકારની હોય છે અને શીત ઉષ્ણ તથા મિશ્રના ભેદથી ત્રણ પ્રકારની છે આ પ્રમાણે ગણના કરવાથી પ્રત્યેકવનસ્પતિની દસ લાખ યોનિઓ છે, અને સાધારણવનસ્પતિની યોનિઓ ચૌદ લાખ છે

परिमाणद्वारम्—

उक्तं प्ररूपणाद्वारम्। परिमाणद्वारमुच्यते—पर्याप्तबादराः प्रत्येकवनस्पतिजीवाः पिण्डीभूत-चतुष्कोणीकृत-लोकश्रेण्यसंख्येयभागवर्त्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणाः, बादरपर्याप्ततेजस्कायजीवराशेरसंख्यातगुणाः सन्ति।

अपर्याप्तबादराः प्रत्येकवनस्पतिजीवास्तु असंख्यातानां लोकानां यावन्तः प्रदेशास्तावन्तः सन्ति। इमेऽप्यपर्याप्तबादरतेजस्कायजीवराशितोऽसंख्यातगुणाः। प्रत्येकवनस्पतय सूक्ष्मा न सन्ति, शास्त्रेऽनुपादानात्।

साधारणवनस्पतिजीवाः—सूक्ष्मबादरपर्याप्तभेदेश्चतुर्विधा अपि पृथक् पृथगनन्तानां लोकानां यावन्तः प्रदेशास्तावन्त इति। अत्रायं विशेषः—

परिमाणद्वार—

प्ररूपणाद्वार हुआ। अब परिमाणद्वार कहते हैं—पर्याप्तबादर-प्रत्येकवनस्पति जीव चौकोन की हुई लोकश्रेणी के असंख्यातवें भागवर्ती आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं, और बादरपर्याप्ततेजस्काय के जीवों से असंख्यातगुणे हैं। असंख्यात लोकाकाशों के प्रदेशों की बराबर अपर्याप्त बादर प्रत्येकवनस्पतिकाय के जीव हैं और वे भी अपर्याप्तबादर तेजस्काय के जीवों से असंख्यात गुणे हैं। प्रत्येक वनस्पति में सूक्ष्म जीव नहीं होते क्यों कि शास्त्र में कहीं उनका उल्लेख नहीं है।

साधारण वनस्पति के जीव सूक्ष्म बादर पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चार प्रकार के हैं। इन चारों राशियों में से प्रत्येकजीवराशि की संख्या अनन्त लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर है। इसमें इतनी विशेषता समझ लेनी चाहिए—

પરિમાણ દ્વાર—

પ્રરૂપણાદ્વાર થયું હવે પરિમાણદ્વાર કહે છે-પર્યાપ્તબાદરપ્રત્યેકવનસ્પતિ જીવ ચતુષ્કોણ કરેલી લોકશ્રેણિના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી આકાશપ્રદેશોની રાશિ-ઢગલાના બરાબર છે અને બાદરપર્યાપ્તતેજસ્કાયના જીવોથી અસંખ્યાતગણા છે, અસંખ્યાત લોકાકાશોના પ્રદેશોની બરાબર અપર્યાપ્તબાદર પ્રત્યેકવનસ્પતિકાયના જીવ છે અને તે પણ અપર્યાપ્તબાદર તેજસ્કાયના જીવોથી અસંખ્યાતગણા છે પ્રત્યેક વનસ્પતિમાં સૂક્ષ્મજીવ નથી, કેમકે-તેનો શાસ્ત્રમાં કોઈ સ્થાને ઉલ્લેખ નથી.

સાધારણ વનસ્પતિના જીવ સૂક્ષ્મ બાદર પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી ચાર પ્રકારના છે આ ચારેય રાશિઓમાંથી પ્રત્યેકજીવરાશિની સંખ્યા અનન્ત લોકાકાશના પ્રદેશોની બરાબર છે તેમાં એટલી વિશેષતા સમજી લેવી જોઈએ—

साधारणवादरपर्याप्तकेभ्य. सूक्ष्मा अपर्याप्ता असंख्यातगुणाः । तेभ्योऽपि सूक्ष्मपर्याप्तका असंख्यातगुणा विज्ञेया इति ।

सूक्ष्मानन्तजीवानां परिमाणं कियदिति सदृष्टान्तमुच्यते-यथा-कश्चित् प्रस्थादिमापकवस्तुना धान्यराशिं परिमाप्याऽन्यत्र निक्षिपति, तथा यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशिं लोकरूपप्रस्थेन मापयेत् लोका संभृता भवेयुः ।

पर्याप्तवादरनिगोदपरिमाणं च यथा—

घनीभूतचतुरस्रीकृतसकललोकप्रतरस्यासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः पर्याप्तकवादरनिगोदाः सन्ति, ते प्रत्येकशरीर-वादरवनस्पति-पर्याप्तकेभ्यो-

---

साधारणवादरपर्याप्त जीवों की अपेक्षा वादर-अपर्याप्त असंख्यातगुणा हैं। वादरपर्याप्त की अपेक्षा सूक्ष्म-अपर्याप्त असंख्यातगुणा हैं और सूक्ष्म-अपर्याप्त उनसे भी असंख्यातगुणा हैं ।

सूक्ष्म अनन्त जीवों का परिमाण कितना है, यह वात दृष्टान्त देकर समझाते हैं—जैसे कोई पुरुष प्रस्थ (सेर) आदि बाँटों से धान्य तोलकर दूसरी जगह रख देता है, उसी प्रकार यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशि को लोकरूपी प्रस्थ से नापा जाय तो अनत लोक भर जाएँ ।

पर्याप्त वादर निगोद जीवों का परिमाण इस प्रकार का है—

चौकोर (चतुष्कोण) घन किये हुए सम्पूर्ण लोकप्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर पर्याप्तवादरनिगोद जीव हैं। वे प्रत्येकशरीर—वादरवनस्पति

સાધારણપર્યાપ્ત જીવોની અપેક્ષા બાદરઅપર્યાપ્ત અસખ્યાતગણા છે બાદરપર્યાપ્તની અપેક્ષા સૂક્ષ્મ—અપર્યાપ્ત અસખ્યાતગણા છે અને સૂક્ષ્મ—અપર્યાપ્ત તેનાથી પણ અસંખ્યાતગણા છે

સૂક્ષ્મ અનન્ત જીવોનુ પરિણામ કેટલુ છે એ વાત દૃષ્ટાન્ત આપીને સમજાવે છે—જેમ કોઈ પુરુષ પ્રસ્થ (તોળવાનું વજન ૧ શેર) આદિ તોળવાના બાટ—વજનથી. ધાન્ય તોળીને બીજી જગ્યાએ રાખી દે છે તે પ્રમાણે જો સાધારણ સૂક્ષ્મ જીવરાશિને લોકરૂપી પ્રસ્થથી તોળવામા આવે તો અનત લોક ભરાઈ જાય

પર્યાપ્તબાદરનિગોદ જીવોનું પરિમાણ આ પ્રકારે છે—ચતુષ્કોણ ઘન કરેલા સમ્પૂર્ણ લોકપ્રતરના અસખ્યાતમા—ભાગવર્તી પ્રદેશોની બરાબર પર્યાપ્તબાદરનિગોદ જીવ છે.

असंख्येयगुणाः। शेषास्त्रयः-अपर्याप्तबादरनिगोदाः, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदाः, पर्याप्तसूक्ष्मनिगोदाश्च प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणाः क्रमशो बहुतरकाः सन्ति। साधारणजीवाश्चैतेभ्यो निगोदपरिमाणेभ्योऽनन्तगुणाः सन्तीति बोध्यम्।

यदि लोकाकाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैको प्रत्येकवनस्पतिजीवः स्थाप्यते, तर्हि असंख्याता लोका भ्रियन्ते। यदि तु लोकाकाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैको निगोदजीवः स्थाप्यते, तर्हि अनन्ता लोका भ्रियन्ते।

उक्तञ्च प्रज्ञापनायाम्-१ पदे।

"लोगागासपएसे परित्तजीवं ठवेहि एक्केक्कं।
　　एवं ठवेज्जमाणा, हवंति लोगा असंखिज्जा" ॥ १ ॥

पर्याप्त जीवों से असंख्यातगुणा है। शेष तीन अर्थात् अपर्याप्तबादरनिगोद, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोद और पर्याप्त सूक्ष्मनिगोद असंख्यात लोकाकाश प्रदेशों के बराबर हैं और क्रमश अधिक-अधिक संख्या में हैं। साधारण जीव इन से अनन्तगुणा हैं।

यदि लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक प्रत्येकवनस्पति के जीव स्थापित किये जायें तो असंख्यात लोक भर जावें, और यदि लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक निगोदिया जीव रक्खा जावें तो अनन्त लोकाकाश भर जावें। प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद में कहा है—

"लोकाकाश के एक-एक प्रदेशमें अगर प्रत्येकवनस्पति के एक-एक जीव रख दिये जावें तो असंख्यात लोक भर जाए ॥ १ ॥

તે પ્રત્યેકશરીર-બાદરવનસ્પતિ પર્યાપ્ત જીવોથી અસંખ્યાત ગણા છે. બાકીના ત્રણ અર્થાત્-અપર્યાપ્તબાદરનિગોદ અપર્યાપ્તસૂક્ષ્મનિગોદ અને પર્યાપ્તસૂક્ષ્મનિગોદ અસંખ્યાત-લોકાકાશ પ્રદેશોના બરાબર છે, અને ક્રમશઃ અધિક-અધિક સંખ્યામાં છે. સાધારણ જીવ એનાથી અનન્ત ગણા છે.

જો લોકાકાશના એક-એક પ્રદેશમાં એક-એક પ્રત્યેક વનસ્પતિના જીવને સ્થાપિત કરવામાં આવે તો અસંખ્યાત લોક ભરાઈ જાય, અને જો લોકાકાશના એક-એક પ્રદેશમાં એક-એક નિગોદિયા જીવને રાખવામાં આવે તો અનન્ત લોકાકાશ ભરાઈ જાય.

પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રના પ્રથમ પદમાં કહ્યું છે કે—

"લોકાકાશના એક-એક પ્રદેશમાં જો પ્રત્યેક વનસ્પતિના એક-એક જીવ રાખવામાં આવે તો અસંખ્યાત લોક ભરાઈ જાય.' ॥ ૧ ॥

साधारणवादरपर्याप्तकेभ्य सूक्ष्मा अपर्याप्ता असंख्यातगुणाः। तेभ्योऽपि सूक्ष्मपर्याप्तका असंख्यातगुणा विज्ञेया इति।

सूक्ष्मानन्तजीवानां परिमाणं कियदिति सदृष्टान्तमुच्यते-यथा-कश्चित् प्रस्था दिमापकवस्तुना धान्यराशिं परिमाप्याऽन्यत्र निक्षिपति, तथा यदि साधारणसूक्ष्म जीवराशिं लोकरूपप्रस्थेन मापयेत् लोका संभृता भवेयुः।

पर्याप्तवादरनिगोदपरिमाणं च यथा—

घनीभूतचतुरस्रीकृतसकललोकप्रतरस्यासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः प प्तकवादरनिगोदाः सन्ति, ते प्रत्येकशरीर-वादरवनस्पति-पर्याप्तके

साधारणवादरपर्याप्त जीवों की अपेक्षा वादर-अपर्याप्त असख्यातगुणा वादरपर्याप्त की अपेक्षा सूक्ष्म-अपर्याप्त असख्यातगुणा है और सूक्ष्म-अपर्याप्त उनसे असख्यातगुणा हैं।

सूक्ष्म अनन्त जीवों का परिमाण कितना है, यह वात दृष्टान्त देकर समझ जैसे कोई पुरुष प्रस्थ (सेर) आदि बाँटों से धान्य तोलकर दूसरी जगह रख देता प्रकार यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशि को लोकरूपी प्रस्थ से नापा जाय तो अ भर जाएँ।

पर्याप्त वादर निगोद जीवों का परिमाण इस प्रकार का है-

चौकोर (चतुष्कोण) घन किये हुए सम्पूर्ण लोकप्रतर के असख्यातवे प्रदेशों के वरावर पर्याप्तवादरनिगोद जीव हैं। वे प्रत्येकशरीर-व

સાધારણપર્યાપ્ત જીવોની અપેક્ષા બાદરઅપર્યાપ્ત અસખ્યાતગણા પર્યાપ્તની અપેક્ષા સૂક્ષ્મ-અપર્યાપ્ત અસખ્યાતગણા છે અને સૂક્ષ્મ તેનાથી પણ અસંખ્યાતગણા છે

સૂક્ષ્મ અનન્ત જીવોનું પરિણામ કેટલુ છે એ વાત દૃષ્ટાન્ત આ છે-જેમ કોઈ પુરુષ પ્રસ્થ (તોળવાનું વજન ૧ શેર) આદિ તોળવાના ધાન્ય તોળીને બીજી જગ્યાએ રાખી દે છે તે પ્રમાણે જો સાધારણ સૂક્ષ લોકરૂપી પ્રસ્થથી તોળવામા આવે તો અનત લોક ભરાઈ જાય

પર્યાપ્તબાદરનિગોદ જીવોનુ પરિમાણ આ પ્રકારે છે-ચતુષ્કોણ ઘન લોકપ્રતરના અસખ્યાતમા-ભાગવર્તી પ્રદેશોની બરાબર પર્યાપ્તબાદરનિ

टीका—

यो गुणः=शब्दादिकः, स आवर्तः-आवर्तन्ते=परिभ्राम्यन्ति जीवा यत्र स -आवर्तः-जन्मजराव्याधिनानाविधक्लेशसंघातस्वरूपः संसारः। कारणे कार्योपचारात् संसारकारणीभूतस्य शब्दादिगुणस्य संसारत्वेन व्यपदेशः। गुणसेवनात् संसारं प्राप्नोतीति भावः। इममर्थं दृढीकर्तुमुक्तवाक्यं परावर्तयन्नाह-य आवर्त इति। यआवर्तः=संसारः, स गुणः=शब्दादिः। रागद्वेषवशगः संसारी नैव शब्दादिगुणतो विरज्यते, न च मोक्षमार्गं प्राप्नोतीत्यर्थः।

यद्वा-'गुणे' 'आवर्ते' इति सप्तम्यन्तम्। यः गुणे=शब्दादौ वर्तते,

टीकार्थ—शब्द आदि जो गुण अर्थात् विषय है वही आवर्त है। जिसमें आवर्तन अर्थात् भ्रमण किया जाय उसे आवर्त कहते हैं। जन्म-जरा आधि-व्याधि आदि नाना प्रकार के कष्टों से परिपूर्ण यह संसार ही आवर्त है। शब्द आदि विषय संसार के कारण हैं, स्वयं संसार नहीं हैं, किन्तु यहां कारण में कार्य का उपचार करके शब्दादि विषयों को ही संसार कहा है। आशय यह है कि-इन विषयों का सेवन करने से संसार की प्राप्ति होती है। इसी अभिप्राय को दृढ करने के उद्देश्य से वाक्य को पलट कर पश्चात्कार कहते हैं-'जो आवर्त है वही गुण है'। राग-द्वेष आदि के अधीन रहने वाला संसारी जीव शब्द आदि गुणों से विरक्त नहीं होता और न मोक्षमार्ग प्राप्त करता है।

अथवा—मूल में जो 'गुणे' और 'आवट्टे' पद आये हैं। वे सप्तमीविभक्ति में हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि-जो पुरुष शब्दादि गुणों में वर्तता है वह आवर्त

ટીકાર્થ—શબ્દ આદિ જે ગુણ છે અર્થાત્ વિષય છે તેજ આવર્ત છે જેમાં આવર્તન અર્થાત્ ભ્રમણ કરવામાં આવે તેને આવર્ત કહે છે જન્મ, જરા, આધિ, વ્યાધિ આદિ નાના પ્રકારના કષ્ટોથી પરિપૂર્ણ આ સંસારજ આવર્ત છે શબ્દ આદિ વિષય સંસારના કારણ છે. સ્વયં સંસાર નથી પરન્તુ અહીં કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને શબ્દાદિ વિષયોને જ સંસાર કહ્યો છે આશય એ છે કે-વિષયોનું સેવન કરવાથી સંસારની પ્રાપ્તિ થાય છે તે અભિપ્રાયને દૃઢ કરવાના ઉદ્દેશથી વાક્યને ફેરવીને શાસ્ત્રકાર કહે છે- જે આવર્ત છે તે ગુણ છે' રાગદ્વેષ આદિના આધીન રહેવાવાળા સંસારી જીવ શબ્દ આદિ ગુણોથી વિરક્ત રહેતા નથી અને મોક્ષમાર્ગને પ્રાપ્ત કરતા નથી.

અથવા—મૂળમાં જે 'ગુણે અને 'આવટ્ટે પદ આવ્યાં છે તે સાતમી વિભક્તિમાં છે એનો અર્થ એ થયો કે-જે પુરુષ શબ્દાદિ ગુણોમાં વર્તે છે તે આવર્ત અર્થાત્-

लोगागासपएसे निगोयजीवं ठवेहि एक्केक्कं ।
एवं ठवेज्जमाणा, हवंति लोगा अणन्ताओ ॥ १ ॥ " इति ।

छाया–लोकाकाशप्रदेशे, प्रत्येकजीव स्थापय एकैकम् ।
एवं स्थाप्यमाना भवन्ति लोका असंख्येयाः ॥ १ ॥

लोकाकाशप्रदेशे निगोदजीवं स्थापय एकैकम् ।
एवं स्थाप्यमानाः भवन्ति लोका अनन्ताः ॥ १ ॥

इति परिमाणद्वारम् ॥ सू० १ ॥

शब्दादिविषयासक्त्या वनस्पतिकायापमर्दनपराः पुनः पुनर्भवसिन्धौ निपतन्तीत्याशयेनाह–' जे गुणे ' इत्यादि ।

मूलम्—

जे गुणे से आवट्टे । जे आवट्टे से गुणे ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो गुणः स आवर्तः । य आवर्तः स गुण ॥ सू० २ ॥

लोकाकाश के एक–एक प्रदेश में एक–एक निगोद जीव रख दिये जायँ तो इस प्रकार रखने से अनन्त लोक हो जाएँ "। इति परिमाणद्वार ॥ सू० २ ॥

इन्द्रियों के शब्द आदि विषयों मे आसक्त होकर जो वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं वे बारम्बार भवसागर में डूबते हैं। इस अभिप्राय से शास्त्रकार कहते हैं:– ' जे गुणे ' इत्यादि ।

मूलार्थ—जो गुण है सो आवर्त्त है । जो आवर्त्त है सो गुण है ॥सू० २॥

" લોકાકાશના એક–એક પ્રદેશમા એક–એક નિગોદ જીવ રાખવામા આવે તો આ પ્રકારે રાખવાથી અનન્ત લોક થઈ જાય " ઇતિ પરિમાણદ્વાર ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ઇન્દ્રિયોના શબ્દ આદિ વિષયોમા આસક્ત થઈને જે વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે તે વારવાર ભવ–સાગરમા ડૂબી જાય છે એ અભિપ્રાયથી શાસ્ત્રકાર કહે છે– ' जे गुणे. ' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—જે ગુણ છે તે આવર્ત્ત છે જે આવર્ત્ત છે તે ગુણ છે ॥ ૨ ॥

गत्यागतिरूप आवर्त्तोऽपि न तेषां दुःखजनको भवति । सामान्यतः संसार वर्तित्वं सामान्यश्च शब्दादिगुणोपलब्धिश्च सर्वेषां संसारिणां समपस्येव तस्माद् गुणोप लब्धिर्न प्रतिषिध्यते । किन्तु यस्तत्र रागद्वेषपरिणामः स एव परिवर्जनीयत्वेन प्रतिबोध्यते, अत एवोक्तं भगवता—

"कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं पेम्मं नाभिनिवेसए" इत्यादि । किञ्च—

"न शक्यं रूपमद्रष्टुं, चक्षुर्गोचरमागतम् ।
रागद्वेषौ तु यौ तत्र, तौ बुधः परिवर्जयेत् ॥"

इदमत्र तत्त्वम्—शब्दादिविषयासक्ताः खलु वनस्पतिमीवान् बहुधो

गति-आगतिरूप आवर्त भी उनके लिए दुःखजनक नहीं है । सामान्य संसारवर्तीपन और विषयों की सामान्य उपलब्धि सभी संसारी जीवों में होती है, अतः विषयों की उपलब्धि का निषेध नहीं किया जा सकता । हाँ विषयों में जो राग-द्वेषरूप परिणाम है वही त्याज्य है । अत भगवान् ने कहा है—

"कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं पेम्मं नाभिनिवेसए" इत्यादि ।

"कानों को सुख देने वाले शब्दों पर अनुराग नहीं करना चाहिए" । तथा—आंखोंके आगे आया हुआ रूप अनदेखा नहीं किया जा सकता वह तो दीख ही जाता है, मगर उस से कोई हानि नहीं होती । अलबत्ता उस रूप पर राग या द्वेष करने से हानि होती है । अत विवेकी पुरुष राग और द्वेष का त्याग करे ।

आशय यह है—शब्द आदि विषयों में आसक्त पुरुष वनस्पतिकाय के जीवों की

गति–આગતિરૂપ આવર્ત્ત પણ તેઓને માટે દુઃખરૂપ નથી. સામાન્ય સંસાર વર્તીપણું અને વિષયોની સામાન્ય ઉપલબ્ધિ સવ સંસારી જીવોમાં હોય છે એથી વિષયોની ઉપલબ્ધિનો નિષેધ કરી શકાતો નથી. હા વિષયોમાં જે રાગ–દ્વેષરૂપ પરિણામ છે તેજ ત્યાજ્ય–ત્યજી દેવા યોગ્ય છે એટલે ભગવાને કહ્યું છે–

કણ્ણસોક્ખેહિં સદ્દેહિં પેમ્મં નાભિનિવેસએ" અર્થાત્ કાનોને સુખ દેવાવાળા શબ્દો પર પ્રીતિ નહિ કરવી જોઈએ. તથા નેત્રોની સામે આવેલા રૂપ ન દીઠા–બરોબર કરી શકાતા નથી તે તો દેખવામાં આવેજ છે પરન્તુ તેમાં કોઈ હાનિ થતી નથી. અલબત્ત એ રૂપ પર રાગ અથવા દ્વેષ કરવાથી હાનિ થાય છે એ માટે વિવેકી પુરુષ રાગ અને દ્વેષનો ત્યાગ કરે.

આશય એ છે કે–શબ્દ આદિ વિષયોમાં આસક્ત પુરુષ વનસ્પતિકાયના જીવોની

स आवर्ते=संसारे वर्तते। यश्चावर्ते, स गुणे वर्तते।

ननु 'यो गुणे वर्तते, स आवर्ते वर्तते' इति यदुक्त तत् सम्यगेव, परन्तु य आवर्ते वर्तते, न त्वसौ नियमेन गुणे वर्तते। यतस्तीर्थङ्करा भावितात्मानो मुनयः प्रतिमाधारिश्रावकाश्चावर्ते वर्तन्ते न तु शब्दादिगुणेषु, तदेतत् कथमुपपद्यते–'यश्चावर्ते वर्तते स गुणे वर्तते' इति ?।

अनुकूलशब्दादिषु रागः, प्रतिकूलशब्दादिषु द्वेषः समुद्भवतीति रागद्वेषपूर्वक गुणेषु शब्दादिषु या प्रवृत्तिस्तस्या एवात्राधिकारः। एवं चास्य वाक्यस्य तीर्थङ्करादिविषयकत्वाभावान्नास्त्युक्तशङ्कावसर इति।

अर्थात् संसार मे वर्तता है, और जो ससार में वर्तता है वह शब्द आदि में वर्तता है।

शङ्का—जो शब्दादि गुणों में वर्तता है वह ससार मे वर्तता है, यह कथन तो ठीक है, परन्तु जो ससार में वर्तता है वह नियम से शब्दादि विषयों में नहीं वर्तता। भगवान् तीर्थंकर, भावितात्मा मुनि और प्रतिमाधारी श्रावक ससार में तो वर्तते हैं मगर शब्द आदि विषयों में नहीं वर्त्तते। अत एव यह कथन किस प्रकार बन सकता है कि जो आवर्त्त में वर्तता है वह शब्द आदि मे वर्त्तता है'

समाधान—अनुकूल शब्द आदि मे राग उत्पन्न होता है और प्रतिकूल शब्द आदि में द्वेष होता है। इस प्रकार रागद्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति करने का ही यहाँ प्रकरण है। तीर्थंकर आदि राग–द्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति नहीं करते, अत यह वाक्य तीर्थंकर या भावितात्मा मुनि आदि के लिए लागू नहीं होता। इस प्रकार उक्त शका का यहां स्थान नहीं है।

સંસારમા વર્તે છે, અને જે સંસારમા વર્તે છે તે શબ્દ આદિમા વર્તે છે

શંકા—જે શબ્દાદિ ગુણોમા વર્તે છે, તે સંસારમા વર્તે છે આ કથન–તો ઠીક છે, પરન્તુ જે સંસારમા વર્તે છે તે નિયમથી શબ્દાદિક વિષયોમા વર્તતા નથી ભગવાન તીર્થંકર ભાવિતાત્મા મુનિ અને પ્રતિમાધારી શ્રાવક સંસારમા તો વર્તે છે, પરન્તુ શબ્દાદિ વિષયોમા વર્તતા નથી એ માટે આ કથન કેવી રીતે બની શકે છે, કે–'જે આવર્ત્તમા વર્તે છે તે શબ્દ આદિમા વર્તે છે'

સમાધાન—અનુકૂલ શબ્દ આદિમા રાગ ઉત્પન્ન થાય છે અને પ્રતિકૂલ શબ્દ આદિમા દ્વેષ થાય છે આ પ્રમાણે રાગ–દ્વેષપૂર્વક વિષયોમા પ્રવૃત્તિ કરવી તેનું જ અહીં પ્રકરણ છે તીર્થંકર આદિ રાગ–દ્વેષપૂર્વક વિષયોમા પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, માટે આ વાકય તીર્થંકર અથવા ભાવિતાત્મા મુનિ આદિના માટે લાગુ થતું નથી. આ પ્રમાણે પૂર્વે જે શંકા કરી છે તે શંકાને અહીં સ્થાન નથી.

गत्यागतिरूप आवर्तोऽपि न तेषां दुःखजनको भवति। सामान्यतः संसार वर्तित्वं सामान्यशब्दादिगुणोपलब्धिश्च सर्वेषां संसारिणां समपत्स्येव तस्माद् गुणोप लब्धिर्न प्रतिषिध्यते। किन्तु यस्तत्र रागद्वेषपरिणामः स एव परिवर्जनीयत्वेन प्रतिबोध्यते, अत एवोक्तं भगवता—

"कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं पेम्मं नाभिनिवेसए" इत्यादि। किञ्च—

"न शक्यं रूपमद्रष्टुं, चक्षुर्गोचरमागतम्।
रागद्वेषौ तु यौ तत्र, तौ बुधः परिवर्जयेत्॥"

इदमत्र तत्त्वम्—शब्दादिविषयासक्ताः खलु वनस्पतिजीवान् बहुधो

गति आगतिरूप आवर्त भी उनके लिए दुःखजनक नहीं है। सामान्य संसारवर्तित्व और विषयों की सामान्य उपलब्धि सभी संसारी जीवों में होती है, अत विषयों की उपलब्धि का निषेध नहीं किया जा सकता। हाँ विषयों में जो राग-द्वेषरूप परिणाम है वही त्याज्य है। अत भगवान् ने कहा है—

"कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं पेम्मं नाभिनिवेसए" इत्यादि।

"कानों को सुख देने वाले शब्दों पर अनुराग नहीं करना चाहिए"। तथा—आँखोंके आगे आया हुआ रूप अनदेखा नहीं किया जा सकता, वह तो दीख ही पड़ता है, मगर उस से कोई हानि नहीं होती। अलबत्ता उस रूप पर राग या द्वेष करने से हानि होती है। अतः विवेकी पुरुष राग और द्वेष का त्याग करे।

आशय यह है—शब्द आदि विषयों में आसक्त पुरुष वनस्पतिकाय के जीवों की

ગતિ-આગતિરૂપ આવર્ત પણ તેઓને માટે દુઃખરૂપ નથી. સામાન્ય સંસાર વર્તીપણું અને વિષયોની સામાન્ય ઉપલબ્ધિ, સર્વ સંસારી જીવોમાં હોય છે એથી વિષયોની ઉપલબ્ધિનો નિષેધ કરી શકાતો નથી. હા; વિષયોમાં જે રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણામ છે તેજ ત્યાજ્ય-ત્યજી દેવા યોગ્ય છે. એટલે ભગવાને કહ્યું છે—

'કણ્ણસોક્ખેહિં સદ્દેહિં પેમ્મં નાભિનિવેસએ" અર્થાત્ કાનોને સુખ દેવાવાળા શબ્દો પર પ્રીતિ નહિ કરવી જોઈએ. તથા નેત્રોની સામે આવેલા રૂપ, ન દીઠા-જેવું કરી શકાતા નથી. તે તો દેખવામાં આવેજ છે પરન્તુ તેમાં કોઈ હાનિ થતી નથી. અલબત્ત એ રૂપ પર રાગ અથવા દ્વેષ કરવાથી હાનિ થાય છે એ માટે વિવેકી પુરુષ રાગ અને દ્વેષનો ત્યાગ કરે.

આશય એ છે કે—શબ્દ આદિ વિષયોમાં આસક્ત પુરુષ વનસ્પતિકાયના જીવોની

विहिंसन्ति। तथा हि-अनुकूलशब्दश्रवणार्थी वेणुवीणापटहादिवाद्यानि निर्मातुं बहुविधान् वनस्पतीन् विनिहन्ति। प्रियरूपविलोकनार्थी काष्ठमययुवतिप्रतिमा-गृह-तोरण-वेदिका-स्तम्भादि रचयितु कतिचन वनस्पतीन् विनिकृन्तति। एवं घ्राणसुखार्थी कर्पूर-केतकी-पाटल-लवङ्ग-सरमचन्दना-गुरु-केसर-जातीफल-जातीपत्रिकादीन् परिग्रहीतुं विविधान वनस्पतीन् विहिनस्ति। रसास्वादसुखार्थी मूलकन्दादिगतानसंख्यातानन्तान् वा जीवानुपमर्दयति। एवं स्पर्शसुखाभिलापी च कमलदलमृणालकदलीदलवल्कलानुकूलदुकूलतूलादीन् परिग्रहीतुं नानाविधवनस्पतीनां प्राणव्यपरोपणं प्रकरोति।

बहुत हिंसा करते हैं। जैसे—अनुकूल शब्द सुनने का अभिलापी पुरुष वेणु, वीणा, पटह (ढोल) आदि वाद्य बनाने के लिए नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के जीवों की हिंसा करता है। प्रियरूप देखने का इच्छुक युवती की काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण, वेदिका, और स्तभ बनाने के लिए वनस्पति को काटता है। इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय के सुखका लेलुप कपूर, केतकी, पाटल, (गुलाव) लोंग, सरस चन्दन अगर, केसर, जायफल, जायपत्री आदि के उद्देश्य से विविध प्रकार के वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा करता है। रसास्वाद का अनुरागी मूल आदि कन्दों में रहने वाले असख्यात और अनन्त जीवों की हिंसा करता है। इसी प्रकार स्पर्श—सुख का अभिलाषी कमल के पत्ते, कमल की दडी, केले के , पत्ते छाल और अनुकुल वस्त्र तथा रुई प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के वनस्पति जीवों का प्राण लेता है।

ઘણીજ હિંસા કરે છે જેમ—અનુકૂલ શબ્દ સાભળવાના અભિલાષી પુરુષ વેણુ—વીણા, ઢોલ આદિ વાદ્ય—વાજિત્ર બનાવવા માટે નાના પ્રકારના વનસ્પતિકાયના જીવોની હિંસા કરે છે પ્રિયરૂપ જોવાના ઇચ્છુક યુવતીની કાષ્ઠમય પ્રતિમા, ગૃહ, તોરણ, વેદિકા અને સ્તભ બનાવવા માટે વનસ્પતિને કાપે છે એ પ્રમાણે ઘ્રાણેન્દ્રિય (નાસિકા)ના સુખના લોલુપ—લાલચુ કપૂર, કેતકી ગુલાબ લવીંગ, સરસચદન, અગર કેસર, જાયફળ, જાવત્રી આદિ મેળવવાના ઉદ્દેશ્યથી વિવિધ પ્રકારના વનસ્પતિકાયિક જીવોની હિંસા કરે છે રસાસ્વાદના અનુરાગી જીવ મૂળ આદિ કન્દોમા રહેવાવાળા અસખ્યાત અને અનન્ત જીવોની હિંસા કરે છે એ પ્રમાણે સ્પર્શસુખના અભિલાષી જીવ કમલ-પત્તા, કમલકાકડી, કેવળના પત્તા, છાલ અને અનુકૂલ વસ્ત્ર તથા રૂ પ્રાપ્ત કરવા માટે નાના પ્રકારના વનસ્પતિ જીવોના પ્રાણ લે છે

एवं च वनस्पतिनिष्पन्नेषु शब्दादिगुणेषु वर्तमानः संसारं प्राप्नोति, स च संसारी रागद्वेषमलिनात्मकतया पुनः शब्दादिगुणेषु वर्तमानश्चतुर्गतिकसंसारतो न कदाचिद् बहिर्यातीत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

शब्दादिगुणोपलब्धिमात्रं न संसारान्तःपतनस्य कारणं, किन्तु तत्र मूर्च्छैवेत्याह —'उड्ढं' इत्यादि ।

मूलम्—

उड्ढं अहं तिरियं पाईणं पासमाणे रूवाइं पासइ, सुणमाणे सद्दाइं सुणेइ । उड्ढं अहं तिरियं पाईणं मुच्छमाणे रूवेसु मुच्छइ सद्देसु यावि । एस लोए वियाहिए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

ऊर्ध्वम् अधः तिर्यक् प्राचीनं पश्यन् रूपाणि पश्यति, शृण्वन् शब्दान् शृणोति, ऊर्ध्वम् अधः तिर्यक् प्राचीनं मूर्च्छन् रूपेषु मूर्च्छति, शब्देषु चापि । एष लोकः व्याख्यातः ॥ सू० ३ ॥

इस प्रकार वनस्पति से तैयार होने वाले इन्द्रिय-विषयों में वर्तमान जीव संसार प्राप्त करता है । संसारी जीव राग-द्वेष से मलिन होता है, अतः फिर विषयों में प्रवृत्त होता है । इस प्रकार वह कभी संसार से बाहर नहीं निकल पाता ॥सू० २॥

शब्द आदि विषयों को ग्रहण करने मात्र से संसार में पतन नहीं होता परन्तु उन में मूर्च्छा (गृद्धि) होना ही पतन का कारण है, यह कहते हैं—'उड्ढं' इत्यादि ।

मूलार्थ—ऊपर नीचे और सामने तिरछी दिशा में दृष्टि लगाकर हुआ रूपों को देखता है, सुनता हुआ शब्द सुनता है । ऊपर नीचे और सामने तिरछी दिशा में रूपोंमें मूर्च्छित होता है और शब्दों में भी । यह लोक कहा गया है ॥ सू० ३ ॥

એ પ્રમાણે વનસ્પતિથી તૈયાર થવાવાળા ઇન્દ્રિય વિષયોમાં વર્તમાન જીવ સંસારને પ્રાપ્ત કરે છે સંસારી રાગદ્વેષથી મલિન થાય છે તેથી ફરીને વિષયોમાં પ્રવૃત્ત થાય છે આ પ્રમાણે તે કોઈ દિવસ સંસારથી બહાર નીકળી શકતા નથી (સૂ.૨)

શબ્દ આદિ વિષયોને ગ્રહણ કરવા માત્રથી સંસારમાં પતન થતું નથી પરન્તુ તેમાં મૂર્ચ્છા (ગૃદ્ધિ) થવાથીજ પતન થાય છે તે કહે છે— ઉડ્ઢં ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ઉપર નીચે અને સામે તિરછી દિશામાં દૃષ્ટિ નાંખીને રૂપોને જુવે છે સાંભળતા થકા શબ્દ સાંભળે છે ઉપર નીચે અને સામે તિરછી દિશામાં રૂપોમાં અને શબ્દોમાં પણ મૂર્છિત થાય છે આ લોક કહેવાય છે ॥ ૩ ॥

टीका—

प्रज्ञापकदिशापेक्षया ऊर्ध्वम्=ऊर्ध्वदिश्यवस्थितं पर्वतशिखरप्रासादहर्म्याद्युपरि-भागस्थम्, अधः=अधोदिश्यवस्थितं भूमिगृहादिकं, तिर्यक्=प्राच्यादिदिक्ष्ववस्थितं विदिक्ष्वस्थितं च गृहभित्तिप्रासादहर्म्यादिक, प्राचीन–तिर्यक्पदस्य विवरणमेतत्, प्राच्यां दिशि विद्यमानं पदार्थजातम्, एतच्चोपलक्षणम्–अन्या अपि तिर्यग्दिशो विज्ञेयाः। यद्वा–प्राचीनमिति–ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्दिगन्वयि, तेनोर्ध्वाधस्तिर्यग्दिक्ष्वव-स्थितं, प्राचीनं=पुरातनम्–आधुनिकशिल्पिदुष्करतयाऽऽश्चर्यकारि पदार्थजातं, पश्यन्=चक्षुर्व्यापारयन्, रूपाणि=चक्षुर्ग्राह्यतया परिणतानि रूपवद्रव्याणि शालभञ्जिकादीनि स्त्र्यादिरूपाणि वा पश्यति।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-(देखने वाले की) दिशा की अपेक्षा ऊर्ध्व दिशा में-पर्वत के शिखर पर तथा प्रासाद या महल आदि के ऊपरी भाग में स्थित, भौहरा आदि अधोदिशा में स्थित, पूर्व आदि तिरछी दिशाओं में स्थित तथा विदिशाओं में स्थित दीवार, हवेली और महल आदि को देखता है। मूल में आये हुए 'पाईणं' अर्थात् 'प्राचीन' शब्द को तिरछी दिशा का विवरणरूप समझना चाहिए। अथवा 'प्राचीन' पद ऊर्ध्व, अध' और तिर्यक् सभी दिशाओं के साथ सबध रखता है। तात्पर्य यह निकला कि–ऊर्ध्व दिशा में स्थित अधोदिशा में स्थित तथा तिरछी दिशामें स्थित प्राचीन अर्थात् आधुनिक शिल्पकारों के लिए दुष्कर होने से आश्चर्य उत्पन्न करने वाले पुराने पदार्थों की ओर नजर करता हुआ सुन्दर पुतलियों वगैरह को तथा स्त्री आदि के रूप को देखता है।

ટીકાર્થ—પ્રજ્ઞાપક-(જોનારની) દિશાની અપેક્ષા ઉર્ધ્વ દિશામા–પર્વતના શિખર પર તથા પ્રાસાદ અથવા મહેલ આદિના ઉપર ભાગમા, સ્થિત, ભોયરા આદિ અધોદિશામા સ્થિત, પૂર્વ આદિ તિરછી દિશાઓમા સ્થિત, તથા વિદિશાઓમા સ્થિત ભીંત, હવેલી અને મહેલ આદિને દેખે છે મૂલમા આવેલો 'पाईणं' અર્થાત્ પ્રાચીન શબ્દને તિરછી દિશાના વિવરણરૂપ સમજવો જોઈએ, અથવા પ્રાચીન પદ ઉર્ધ્વ, અધ અને તિર્યક્ સર્વ દિશાઓની સાથે સબધ રાખે છે તાત્પર્ય એ નિકળે છે કે–ઉર્ધ્વ દિશામાં સ્થિત, અધોદિશામા સ્થિત, તથા તિરછી દિશામા સ્થિત પ્રાચીન અર્થાત્ આધુનિક શિલ્પકારો માટે દુષ્કર હોવાથી આશ્ચર્ય ઉત્પન્ન કરવાવાળા પુરાણા પદાર્થોની તરફ નજર કરતા થકા સુન્દર પુતળીઓ વગેરેને તથા સ્ત્રીઆદિના રૂપને દેખે છે

तथा-एतासु दिक्षु च अण्वन्-श्रोत्रोपयोगयुक्तः सन् शब्दान् वेणुवीणादि समुत्थान् गीतनादादिकान् वा शृणोति । श्रोत्रोपयोगाभावे तु न शृणोतीत्यर्थः । उपलक्षणमेतत्-जिघ्रन् गन्धान् जिघ्रति, रसयन् रसान् रसयति, स्पृशन् स्पर्शान् स्पृशति ।

इह दर्शनश्रवणाभ्यां रूपादिगुणोपलब्धिमात्रं प्रदर्शितम् । ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्प्रदर्शोपादानेन च रूपादिगुणानां सर्वदिग्व्यापित्वेन तदुपयोगो दुष्परिहरोऽस्तीति मतिबोधितम् । रूपादिगुणोपयोगमात्रेण संसारगर्तावर्तसंपातो न भवति, किन्तु रूपादिगुणेषु मूर्च्छयेति बोधयितुमाह-'उड्ढं' इत्यादि ।

इसी प्रकार पूर्वोक्त दिशाओं में श्रोत्रेन्द्रिय का उपयोग लगा कर वेणु वीणा आदि बाजों का, तथा गीत आदि का शब्द सुनता है । श्रोत्र का उपयोग न हो तो नहीं भी सुनता है । यह कथन उपलक्षण है, इस से यह भी समझ लेना चाहिए कि घ्राण, रसना और स्पर्श इन्द्रिय का उपयोग लगाकर सूंघता है, चखता है और स्पर्श करता है ।

यहाँ देखने और सुनने से रूप आदि गुणों की उपलब्धिमात्र सूचित की है । ऊर्ध्व, अध तथा तिर्यक् पद देकर यह प्रकट किया है कि-इन्द्रियों के विषय रूप आदि, सभी दिशाओं में भरे पड़े हैं । ऐसी स्थिति में उनकी ओर ध्यान न जाने देना तो बड़ा ही कठिन कार्य है । मगर रूप आदि गुणों की ओर उपयोग जाने मात्र से संसार के गड्ढे में पतन नहीं होता । पतन तब होता है जब उनमें मूर्च्छा या राग-द्वेष हो, यह बात प्रकट करने के लिए कहा है-'उड्ढं.' इत्यादि ।

એજ પ્રમાણે પૂર્વોક્ત દિશાઓમાં શ્રોત્રેન્દ્રિયનો ઉપયોગ લગાવીને વેણુ-વીણા આદિ વાજીંત્રોના તથા ગીત આદિના શબ્દો સાંભળે છે શ્રોત્રનો ઉપયોગ ન હોય તો સાંભળતા નહિ આ કથન ઉપલક્ષણ છે એથી એમ સમજી લેવું જોઇએ કે, ઘ્રાણ, રસના અને સ્પર્શન ઇન્દ્રિયનો ઉપયોગ લગાવીને સૂંઘે છે, ચાખે છે, અને સ્પર્શ કરે છે

અહીં દેખવા અને સાંભળવાથી રૂપ આદિ ગુણોની ઉપલબ્ધિ માત્ર સૂચિત કરી છે ઉર્ધ્વ, અધઃ તથા તિર્યક્ પદ આપીને એ સૂચિત કર્યું છે કે-ઇન્દ્રિયોના વિષય રૂપ આદિ સર્વ દિશાઓમાં ભર્યા પડ્યા છે એવી સ્થિતિમાં તેની તરફ ધ્યાન નહિ જવા દેવું તે તો ભારે કઠિન કામ છે પરન્તુ રૂપ આદિ ગુણોની તરફ ઉપયોગ જવા માત્રથી સંસારના ખાડામાં પડવાનું થતું નથી, પતન-પડવાનું તો ત્યારે થાય છે કે જ્યારે તેમાં મૂર્છા-અથવા રાગ-દ્વેષ થાય. આ વાત પ્રગટ કરવા માટે કહ્યું છે-'उड्ढं. ઇત્યાદિ.

पुनरूर्ध्वादेरुच्चारणं कस्याञ्चिदेकस्यामपि दिशि रूपादिषु मूर्च्छया संसारं प्राप्नोतीति बोधनार्थम् ।

ऊर्ध्वादिदिक्ष्ववस्थितं रूपगुणं प्रति मूर्च्छन्=रागादिपरिणामं कुर्वन् सदसद्विवेकशून्यो भवन् वा रूपेषु=मनोहरेषु रूपवद्द्रव्येषु स्त्र्यादिरूपेषु वा मूर्च्छति=लोलुपो भवति । एवं शब्देषु च मूर्च्छति । अपिग्रहणाद् गन्धरसस्पर्शेषु मूर्च्छति=गृध्नुर्भवति । एषः=मूर्छाविषयीभूतो रूपादिगुणः, लोकः=संसारः, कारणे कार्योपचारात् मूर्च्छाविषयीभूतरूपादिगुणात्मको लोक इति व्याख्यातः=भगवता कथितः । ॥ सू० ३ ॥

संयमे गृहीतेऽपि प्रमादवशेन रूपादिगुणेषु मूर्च्छामुपगतः सन् पुनरगारित्वमापद्यते-इति दर्शयति-'एत्थ अगुत्ते.' इत्यादि ।

दोवारा ऊर्ध्व आदि दिशाओं का कथन करके यह बतलाया है कि-किसी भी एक दिशामें स्थित रूपादि में मूर्च्छा होने पर भी ससार की प्राप्ति होती है ।

ऊर्ध्व आदि दिशाओं में स्थित रूप आदि विषयों में राग-द्वेषरूप परिणाम करता हुआ, सत्-असत् के विवेक से शून्य होकर मनोहर रूपों में या मनोहर रूपवाली स्त्री आदि के रूपों में पुरुष लोलुप हो जाता है । इसी प्रकार शब्दों में मूर्च्छित हो जाता है । गंध, रस, तथा स्पर्श में भी मूर्च्छित हो जाता है । मूर्च्छा का विषयभूत यह रूप आदि ही, कारण में कार्य का उपचार करने से ससार कहलाता है । ऐसा भगवान् ने फरमाया है ॥ सू० ३ ॥

सयम ग्रहण कर लेने के पश्चात् भी प्रमाद के वश में होकर रूप आदि गुणों में मूर्छा को प्राप्त होनेवाला फिर गृहस्थ बन जाता है, यह बात बतलाते हैं-'एत्थ अगुत्ते' इत्यादि ।

બેવાર ઉર્ધ્વ આદિ દિશાઓ કથન કરીને એ બતાવ્યુ છે કે-કોઈ પણ એક દિશામા સ્થિત રૂપાદિમા મૂર્છા થતા પણ સ સારની પ્રાપ્તિ થાય છે ઉર્ધ્વ આદિ દિશાઓમા સ્થિત રૂપ આદિ વિષયોમા રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણામ કરતા થકા સત્-અસત્‌ના વિવેકમા શૂન્ય થઈને મનોહર રૂપોમા અથવા તો મનોહર રૂપવાળી સ્ત્રી આદિના રૂપોમા પુરુષ લોલુપ થઈ જાય છે એ પ્રમાણે શબ્દોમા મૂર્છિત થઈ જાય છે ગ ધ, રસ તથા સ્પર્શમા પણ મૂર્છિત થઇ જાય છે મૂર્છાના વિષયભૂત (મૂર્છા થવાનુ કારણ) આ રૂપ આદિજ, કારણમા કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી, સ સાર કહેવાય છે એ પ્રમાણે ભગવાને ફરમાવ્યુ છે (સૂ ૩)

સ યમ ગ્રહણ કરી લીધા પછી પણ પ્રમાદવશ થઈને રૂપ આદિ ગુણોમા મૂર્છા પામવાવાળા ફરીને ગૃહસ્થ બની જાય છે. એ વાત બતાવે છે -'एत्थ अगुत्ते' ઈત્યાદિ.

मूलम्—

एत्थ मगुत्ते अणाणाए, पुणो पुणो गुणासाए, वंकसमायारे पमत्ते अगारमावसे ॥ सू० ४ ॥

छाया—

अत्र अगुप्तः अनाज्ञायां पुनःपुनर्गुणास्वादः, वक्रसमाचारः प्रमत्तः अगारमावसति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

अत्र=अस्मिन् रूपादिगुणे, अगुप्तः=मनोवाक्कायगुप्तिरहितः मनसा रूपादिषु रज्यते, वचसा प्रार्थयति कायेन तदभिमुखं भवति, स चागुप्तः अनाज्ञायाम्=अनाचारे वर्तमानः भगवदाज्ञाबहिर्वर्ती, अत एव पुनःपुनर्गुणास्वादः=असकृद् विषयसुखानुभवरसिकः, अत एव वक्रसमाचारः–वक्रः=कुटिलः समाचार=

मूलार्थ—रूपादि विषयों में मन वचन कायका व्यापार न रोकने वाला भगवान्की आज्ञा से बाहर है, बार–बार विषयोंका आस्वादन करने वाला कुटिलाचारी, प्रमादी (साधु) फिर गृहस्थ बन जाता है ॥ सू० ४ ॥

टीका—रूप आदि विषयों में मन वचन और काय की गुप्ति से रहित अर्थात् मन से राग करने वाला वचन से विषयों की प्रार्थना करने वाला और काय से उनमें प्रवृत्ति करनेवाला ऐसा अनाचारी साधु भगवान की आज्ञा से बाहर हो जाता है। वह बारम्बार विषयसुखों के भोग में रसिक होकर कुटिल आचारवाला

મૂલાર્થ—રૂપાદિ વિષયોમાં મન, વચન અને કાયાના વ્યાપારને નહિ રોકવાવાળા, તે ભગવાનની આજ્ઞાથી બહાર છે વારંવાર વિષયોનું આસ્વાદન કરવાવાળા, કુટિલાચારી-પ્રમાદી (સાધુ) પાછા ગૃહસ્થ બની જાય છે

ટીકાર્થ—રૂપ આદિ વિષયોમાં મન વચન અને કાયાની ગુપ્તિથી રહિત અર્થાત્ મનથી રાગ કરવાવાળા, વચનથી વિષયોની પ્રાર્થના કરવાવાળા અને કાયથી તેમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા, એવા અનાચારી સાધુ ભગવાનની આજ્ઞાથી બહાર થઈ જાય છે. તે વારંવાર વિષયસુખોના ભોગમાં રસિક થઈને કુટિલ આચારવાળા—અર્થાત્ અસંયમનું

आचारो यस्य स वक्रसमाचारः–असंयमानुष्ठायी, नरकादिगतिजनकत्वादसंयमस्य वक्रतया व्यपदेशः। इत्थम्भूतः स प्रमत्तः=प्रमादवशाद् विषयेषु मूर्च्छितः, अगारं=गृहम् आवसति। गृहीतसंयमोऽपि प्रमादवशाद् विषयासक्तः सन् पुनर्गृहस्थो भवतीत्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

अथ शस्त्रद्वारम्—

अथ सर्वथा वनस्पतिशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथाऽग्निशस्त्रसमारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह–'लज्जमाणा' इत्यादि।

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मो–त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं

अर्थात् असंयम का सेवन करने वाला प्रमादी फिर घर–वास में आजाता है। वह संयम धारण करने के पश्चात् भी प्रमाद के वश होकर विषयों में आसक्त होने के कारण फिर गृहस्थ बन जाता है ॥ सू० ४ ॥

शस्त्रद्वार–

वनस्पतिशस्त्र के आरंभ का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारों का तथा अग्निशस्त्र के आरंभ में प्रवृत्त द्रव्यलिंगियोंका विवेचन करके उपदेश देते हैं — 'लज्जमाणा.' इत्यादि।

मूलार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ में संकोच करने वाले साधुओं को अलग देखो। तथा 'हम अनगार हैं' इस प्रकार कहने वाले नाना प्रकार के शस्त्रोंसे

સેવન કરવાવાળા પ્રમાદી ફરી ઘરવાસમાં આવી જાય છે તે સંયમ ધારણ કર્યા પછી પણ પ્રમાદને વશ થઈને વિષયોમાં આસક્ત થવાના કારણે ફરી ગૃહસ્થ બની જાય છે (સૂ.૪)

શસ્ત્રદ્વાર—

વનસ્પતિશસ્ત્રના આરંભનો સર્વથા ત્યાગ કરવાવાળા અણગારોનું તથા અગ્નિશસ્ત્રના આરંભમાં પ્રવૃત્ત દ્રવ્યલિંગીઓનું વિવેચન કરીને ઉપદેશ આપે છે– 'लज्जमाणा' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—વનસ્પતિકાયના આરંભમાં સંકોચ કરવાવાળા સાધુઓને જુદા જાણો. તથા 'અમે અણગાર છીએ' આ પ્રમાણે કહેવાવાળા, નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી વનસ્પતિ

विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइकम्मसमारंभेणं वणस्सइसत्थं समारभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति ॥ सू० ५ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः वनस्पतिकर्मसमारम्भेण वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० ५ ॥

टीका—

लज्जमानाः=परमकरुणयार्द्रहृदयतया वनस्पतिकायसमारम्भे पराङ्मुखाः, वनस्पतिकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारा इत्यर्थः। पृथक्=विभिन्नाः=कचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः सन्तीति पश्य।

यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य। इमे-सूक्ष्मबादरवनस्पतिकायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैर्वनस्पतिकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते इति विलोकयेत्यर्थः।

वनस्पतिकाय का आरंभ करने वाले, वनस्पतिशस्त्र का आरंभ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ५ ॥

टीकार्थ—परम करुणा से आर्द्र हृदयवाले मुनि वनस्पतिकाय के आरंभ से विमुख रहते हैं। ऐसे मुनि कोई अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, और केवलज्ञानी होते हैं और कोई-कोई परोक्षज्ञानी (मति-श्रुत ज्ञान के धारक) भावितात्मा होते हैं उन्हें देखो।

अथवा इन्हें द्रव्यलिंगियों से अलग ही समझना चाहिए। यह अनगार सूक्ष्म और बादर वनस्पति का आरंभ करने में भीत त्रस्त उद्विग्न हैं। तीन करण, तीन योग से वनस्पतिकाय के आरंभ के त्यागी हैं।

કાયનો આરંભ કરવાવાળા વનસ્પતિ શસ્ત્રનો આરંભ કરતા થકા અન્ય અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે. ॥ ૫ ॥

ટીકાર્થ—અત્યન્ત કરુણાથી આર્દ્ર હૃદયવાળા મુનિ વનસ્પતિકાયના આરંભથી વિમુખ રહે છે એવા મુનિ કોઈ-કોઈ અવધિજ્ઞાની મન પર્યયજ્ઞાની અને કેવલજ્ઞાની, હોય છે અને કોઈ-કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની (મતિ-શ્રુતજ્ઞાનના ધારક) ભાવિતાત્મા હોય છે તેને જુઓ.

અથવા તેને દ્રવ્યલિંગિઓથી અલગ સમજવા જોઈએ. તે અણગાર સૂક્ષ્મ અને બાદર વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરવામાં બીએલા-ભયવાળા, ત્રસ્ત ઉદ્વિગ્ન છે ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી વનસ્પતિકાયના આરંભના ત્યાગી છે.

द्व्यारावयः । मावधास्तु वनस्पतिं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम् । वनस्पति कर्मसमारम्भेण=कर्मणां समारम्भः कर्मसमारम्भः=वनस्पतिं निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणीयादिकर्मबन्धजनकसावद्यव्यापारस्तेन, इमं वनस्पतिकाय विहिंसन्ति ।

वनस्पतिकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूप लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह-'वनस्पतिशस्त्र'-मित्यादि । वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिजीवोपमर्दकं शस्त्रं पूर्वोक्त प्रकारं, समारभमाणाः=वनस्पतिं प्रति प्रयुञ्जानाः, अन्यान्=वनस्पतिकायभिन्नान्, अनेकरूपान्, पृथिवीकायादीन्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च तदाश्रितान् प्राणान्=प्राणिनः हिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्द-मूल-पत्र

मकारवरूप हैं । वसूला, दाँती, कुठार आदि उभयकारण हैं । वनस्पतिकाय के प्रति मन, वचन और काय का असत् प्रयोग करना भावशस्त्र है । इन शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकायका आरंभ करके ज्ञानावरण आदि आठप्रकार के कर्मों को उत्पन्न करने वाला सावद्य व्यापार करके वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं ।

जो वनस्पतिकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह छहों जीवनिकायरूप समस्त लोक की हिंसा करता है, यह बतलाते हैं, 'वनस्पतिशस्त्रम्' इत्यादि ।

वनस्पतिकाय की हिंसाजनक पूर्वोक्त शस्त्रों का आरंभ करनेवाले लोग वनस्पतिकाय के अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावरों की तथा वनस्पति-आश्रित द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में अनेक प्रकार के द्रव्यलिंगी हैं । उन में से शाक्य आदि कंद, मूल,

---

રૂપ અને અગ્નિ આદિ પરકાયશસ્ત્ર છે વસૂલા દાંતી-દાતરડું કુહાર-કુહાડો આદિ ઉભયકાયશસ્ત્ર છે વનસ્પતિકાય પ્રતિ મન, વચન અને કાયનો અસત્-પ્રયોગ કરવો તે ભાવશસ્ત્ર છે એ શસ્ત્રોદ્વારા વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરીને-જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોને ઉત્પન્ન કરવાવાળા સાવદ્ય વ્યાપાર કરીને વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે

જે વનસ્પતિકાયની હિંસામાં પ્રવૃત્ત થાય છે તે છજીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે એ બતાવે છે- વનસ્પતિશસ્ત્રમ્ ઇત્યાદિ

વનસ્પતિકાયના હિંસાજનક પૂર્વોક્ત શસ્ત્રોનો આરંભ કરવાવાળા લોક વનસ્પતિ કાયના અતિરિક્ત પૃથ્વીકાય, આદિ અન્ય સ્થાવરોની તથા વનસ્પતિ આશ્રિત દ્વીન્દ્રિય-બે ઇંદ્રિય આદિ ત્રસ જીવોની પણ હિંસા કરે છે.

સંસારમાં અનેક પ્રકારના દ્રવ્યલિંગી છે તેમાંથી શાક્ય આદિ કંદ, મૂલ, પત્ર

एके पुनरन्ये तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः='वयमेव वनस्पतिजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्य किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति-'यदिमम्' इत्यादि।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः=वनस्पतिकायशस्त्रैः, शस्त्रं हि वनस्पतिकायस्य द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्। तत्र द्रव्यशस्त्रं=स्वकाय-परकायोभयकायभेदात् त्रिविधम्। तत्र स्वकायशस्त्र दण्डलकुटादयः। परकाय-शस्त्रं=कर्तरी-पाषाण-हस्त-पाद-मुख-वह्न्यादयः। उभयकायशस्त्रं=वासी-दात्र-

---

इनसे विपरीत कोई-कोई 'हम अनगार है' ऐसा अभिमानपूर्वक कहते हैं-'हम ही वनस्पति जीवों की रक्षा करने में तत्पर और महाव्रतधारी है,' इस प्रकार प्रलाप करते हुए द्रव्यलिंगी साधुओं को अलग समझो।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिंगी अनगार के गुणो में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते। ये गृहस्थ के किसी भी कामका त्याग नहीं करते हैं, यह बात आगे बतलाते हैं—'यदिमम्' इत्यादि।

नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकाय का आरभ करके वनस्पतिकायकी हिंसा करते हैं। वनस्पतिशस्त्र दो प्रकारका है-द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र। द्रव्यशस्त्र के तीन भेद है-(१) स्वकायशस्त्र (२) परकायशस्त्र (३) उभयकायशस्त्र। डडा लकडी वगैरह स्वकायशस्त्र हैं। कैंची, पत्थर, हाथ, पैर, मुख और आग आदि

તેનાથી વિપરીત-વિરૂદ્ધ કોઈ-કોઈ 'અમે અણગાર છીએ' આ પ્રમાણે અભિમાન પૂર્વક કહે છે-'અમેજ વનસ્પતિ જીવોની રક્ષા કરવામા તત્પર અને મહાવ્રતધારી છીએ' આ પ્રમાણે પ્રલાપ-(બકવાટ) કરનારા દ્રવ્યલિંગી સાધુઓને જુદા સમજો

અણગાર હોવાનુ અભિમાન કરનારા એ દ્રવ્યલિંગી સાચા અણગારના ગુણો માટે જરા પણ પ્રવૃત્તિ કરતા નથી તે ગૃહસ્થોના કોઈ પણ કામનો ત્યાગ કરતા નથી એ બતાવે છે 'यदिमम्.' ઈત્યાદિ

નાના પ્રકારના વનસ્પતિકાયના શસ્ત્રો વડે વનસ્પતિકાયનો આરભ કરીને વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે વનસ્પતિશસ્ત્ર બે પ્રકારના છે-દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્ર દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ ભેદ છે—(૧) સ્વકાયશસ્ત્ર, (૨) પરકાયશસ્ત્ર, અને (૩) ઉભયકાયશસ્ત્ર ડડા, લાકડી વગેરે સ્વકાયશસ્ત્ર છે, કેચી-(કાતર, સાણસો) પત્થર, હાથ, પગ,

इत्यादयः। मानवशस्त्रं तु वनस्पतिं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम्। वनस्पतिकर्मसारम्भेण=कर्मणां समारम्भः कर्मसमारम्भः=वनस्पतिं निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणीयादिकर्मबन्धजनकसावद्यव्यापारस्तेन, इम वनस्पतिकायं विहिंसन्ति।

वनस्पतिकायहिंसायां प्रवृत्ता खलु षड्जीवनिकायरूपलोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह-'वनस्पतिशस्त्रं'-मित्यादि। वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिजीवोपमर्दकं शस्त्रं पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणाः=वनस्पतिं प्रति प्रयुञ्जानाः, अन्यान्=वनस्पतिकायभिन्नान्, अनेकरूपान्, पृथिवीकायादीन्, द्वीन्द्रियादीन् वसांश्च तदाश्रितान् प्राणान्=प्राणिनः हिंसन्ति।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते। तत्र शाक्यादयः कन्द-मूल-पत्र

सकायशस्त्र हैं। कुदाल, दांती, कुठार आदि उभयकायशस्त्र हैं। वनस्पतिकाय के प्रति मन, वचन और काय का असत् प्रयोग करना भावशस्त्र है। इन शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकायका आरंभ करके ज्ञानावरण आदि आठप्रकार के कर्मों को उत्पन्न करने वाला सावद्य व्यापार करके वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं।

जो वनस्पतिकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह छहों जीवनिकायरूप समस्त लोक की हिंसा करता है, यह बतलाते हैं, 'वनस्पतिशस्त्रम्' इत्यादि।

वनस्पतिकाय की हिंसाजनक पूर्वोक्त शस्त्रों का आरंभ करनेवाले लोग वनस्पतिकाय के अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावरों की तथा वनस्पति-आश्रित द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की भी हिंसा करते हैं।

संसार में अनेक प्रकार के द्रव्यलिंगी हैं। उन में से शाक्य आदि कंद, मूल,

---

શુભ અને અગ્નિ આદિ પરકાયશસ્ત્ર છે વસુલા દાંતી-દાતરડું, કુઠાર-કુહાડો આદિ ઉભયકાયશસ્ત્ર છે વનસ્પતિકાય પ્રતિ મન, વચન અને કાયનો અસત્-પ્રયોગ કરવો તે ભાવશસ્ત્ર છે એ શસ્ત્રોદ્વારા વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરીને-જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોને ઉત્પન્ન કરવાવાળા સાવદ્ય વ્યાપાર કરીને વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે

જે વનસ્પતિકાયની હિંસામાં પ્રવૃત્ત થાય છે તે છજીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે એ બતાવે છે- 'વનસ્પતિશસ્ત્રમ્' ઇત્યાદિ

વનસ્પતિકાયના હિંસાજનક પૂર્વોક્ત શસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા લોક વનસ્પતિકાયના અતિરિક્ત પૃથ્વીકાય, આદિ અન્ય સ્થાવરોની તથા વનસ્પતિ આશ્રિત દ્વીન્દ્રિય-બે ઇન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોની પણ હિંસા કરે છે.

સંસારમાં અનેક પ્રકારના દ્રવ્યલિંગી છે તેમાંથી શાક્ય આદિ કંદ મૂળ, પત્તા,

पुष्पफलादिभोजनार्थं वनस्पतिकर्मसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति च, तेन षट्जीवनिकायविराधका भवन्ति। दण्डिनोऽपि "वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः" इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति, शास्त्रप्रतिषिद्धमपि वनस्पतिकर्मसमारम्भं कारयन्ति।

ते हि व्याख्यानमण्डपादौ चाशोकवृक्षपत्रादिभिर्वन्दनमालादिकं बन्धयन्ति, नानाविधपुष्पपत्रफलैः पञ्चोपचारादिपूजासु प्रवर्तयन्ति। तथाहि—

"काले सुइभूएणं, विसिट्ठपुप्फाइएहिं विहिणा उ।
सारथुइथोत्तगरुई, जिणपूया होइ कायव्वा ॥ १ ॥" (पञ्चाशकवृत्तिः)

छाया—काले शुचीभूतेन, विशिष्टपुष्पादिकैर्विधिना तु।
सारस्तुति स्तोत्रकरुचिना, जिनपूजा भवति कर्तव्या ॥ १ ॥

पत्ता, फूल आदि खाने के लिए वनस्पति का आरभ करते हैं, कराते हैं और करने वाले की अनुमोदना करते हैं। ऐसा करके वे षड्जीवनिकाय की विराधना के भागी होते हैं। "हम पंचमहाव्रतधारी, जिन भगवान् की आज्ञा के आराधक अनगार हैं" ऐसा कहने वाले दडी झूठे साधु भी सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध किये हुए वनस्पतिकाय के आरभ का उपदेश देते हैं।

वे व्याख्यानमडप आदि में अशोक वृक्ष के पत्तों से बन्दनवार आदि बँधवाते हैं, नाना प्रकार के फल फूल पतों से पचोपचार आदि पूजाओं में (श्रावकों) को प्रवृत्त करते हैं। जैसे—

"उचित समय पर, विधिपूर्वक विशिष्ट पुष्प आदि के द्वारा सुन्दर स्तोत्र—स्तुतिपूर्वक जिन भगवानकी पूजा करनी चाहिए"।

ફૂલ આદિ ખાવા માટે વનસ્પતિનો આરભ કરે છે, અને કરાવે છે, અને કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે એ પ્રમાણે કરીને તે ષડ્જીવનિકાયની વિરાધનાના ભાગીદાર થાય છે. 'અમે પચ મહાવ્રતધારી, જિન ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક અણુગાર છીએ' આ પ્રમાણે કહેવાવાળા દડી જુઠા સાધુ પણ સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે, અને શાસ્ત્રમા નિષેધ કરવામા આવેલો વનસ્પતિકાયના આરભનો ઉપદેશ આપે છે

તે વ્યાખ્યાન-મડપ આદિમા અશોકવૃક્ષના પાદડાથી તોરણ આદિ બંધાવે છે. નાના પ્રકારના ફલ-ફૂલ અને પાદડાથી પચોપચાર આદિ પૂજાઓમા (શ્રાવકોને) પ્રવૃત્ત કરે છે-જોડે છે જેમ-"ઉચિત સમય-યોગ્ય સમય પર વિધિપૂર્વક વિશિષ્ટ-ઉત્તમ પુષ્પ આદિ દ્વારા સુન્દર સ્તોત્ર, સ્તુતિપૂર્વક જિન ભગવાનની પૂજા કરવી જોઇએ."

अपरञ्च-उमास्वातिवाचककृतप्रकरणे—
'मध्याह्ने कुसुमैः पूजा' इति। 'गन्धवासाक्षतैः स्रग्भिः' इति।
'प्रधानैश्च फलैः पूजा' इत्यादि। किञ्च—

"न शुष्कैः पूजयेद्देवं, कुसुमैर्न महीगतैः।
न विशीर्णदलैः स्पृष्टै,-र्नाशुभैर्नाविकासिभिः" ॥ १ ॥

'न शुष्कैः पूजयेद्देवं कुसुमैर्न महीगतैः'-इत्यनेन 'आर्द्रं त्रोटितं तेन कुसुमेन देवं पूजयेत्'-इत्यर्थोऽवगम्यते। अहो! कीदृशो महासावद्योपदेशस्तेषाम्।

एवं देवमन्दिरादौ कदलीस्तम्भादिरोपणेन, अशोकादिवृक्षपत्रैर्वन्दन-

---

पञ्चाशकवृत्ति उमास्वातिकृत प्रकरण में कहा है—

'मध्याह्न में फूलों से पूजा की जाती है।" "गंध, वास और अक्षत से तथा मालाओं से पूजा होती है।" उत्तम फलों से पूजा की जाती है" इत्यादि। और भी कहा है—

"सूखे जमीन पर गिरे हुए, टूटी पँखुड़ीवाले, छुए हुए, खराब और बिना खिले फूलों से पूजा नहीं करनी चाहिए"।

'सूखे और जमीन पर गिरे हुए फूलों से पूजा नहीं करनी चाहिये' इसका अभिप्राय यह हुआ कि ताजे और तोड़े हुए फूलों से पूजा करनी चाहिये अरे! उनका यह कैसा सावद्य उपदेश है।

इस प्रकार देवमंदिर आदि में कदलीस्तम्भ खड़ा करके, अशोक वृक्ष के पत्तों से

પંચાશકવૃત્તિ ઉમાસ્વાતિકૃત પ્રકરણમાં કહ્યું છે—

'મધ્યાહ્નમાં ફૂલોવડે પૂજા કરવામાં આવે છે' 'ગંધ, વાસ અને અક્ષતથી તથા માળાઓથી પૂજા થાય છે' 'ઉત્તમ ફૂલોથી પૂજા કરવામાં આવે છે' ઇત્યાદિ બીજું પણ કહ્યું છે કે—

"સૂકાં, જમીન પર ખરી પડેલાં, જેની પાંખડી તુટી ગઈ હોય, સ્પર્શ કરાએલાં, અશુભ અને ખિલ્યા વિનાનાં ફૂલોથી પૂજા નહિ કરવી જોઈએ."

'સૂકાં અને જમીન પર ખરી પડેલા ફૂલો વડે પૂજા ન કરવી જોઈએ' આનો અભિપ્રાય એ થયો કે લીલાં અને તાજાં તોડેલાં ફૂલોથી પૂજા કરવી જોઈએ. અરેરે! તેઓનો આ સાવદ્ય ઉપદેશ કેવો છે?

આ પ્રમાણે દેવમંદિર આદિમાં કેળના સ્થંભ ઉભા કરીને અશોકવૃક્ષનાં પાંદડાંથી

मालिकादिबन्धनेन, प्रतिमोपरि सचित्तपत्रपुष्पादिक्षेपणेन सचित्तनालिकेरदाडिमरसालफलादिनैवेद्योपचारेण च वनस्पतिहिंसा कारयन्तस्ते तदाश्रिताननेकविधान् त्रसस्थावरान् प्राणिनो घातयन्ति । नहि–वीतरागाणां सावद्या सपर्या समुचिता, 'एस खलु गंथे' इत्यादिवचनेन सर्वारम्भाणामस्मिन्नेवागमे तैः साक्षात् प्रतिपिद्धत्वात् । नहि तत्तत्त्यागिभ्यस्तत्तत्त्यक्तद्रव्यसमर्पणं तुष्टिकरं भवतीति । नहि लोके मद्यमांसत्यागिभ्यो मद्यमांससमर्पणं तत्परितोपाय जायते । अल बहुना ! हरितकन्दमूलादित्यागिनः श्रावका अपि न हरितकन्दमूलादिसमर्पणेन संतुष्यन्तीति विचारयन्तु मनीपिणः ॥ सू० ५ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद–'तत्थ' इत्यादि ।

वन्दनवार बाँधकर, प्रतिमा पर सचित्त पत्ते, फूल आदि चढाकर, सचित्त नारियल, दाडिम, आम आदि नैवेद्य के उपचार से वनस्पति की हिंसा करते हुए वे वनस्पति–आश्रित अनेक प्रकार के त्रस–स्थावर जीवों का घात करवाते हैं । वीतराग देव की पूजा सावद्य होना उचित्त नहीं है । 'एस खलु गंथे' इत्यादि कथन द्वारा इसी आगम में समस्त आरभों का वीतराग भगवान्ने साक्षात् निपेध किया है । जो पुरुप जिस वस्तु का त्यागी है, उसकी तुष्टि उस वस्तु को अर्पित करने से नहीं हो सकती । लोक में मद्य–मास का त्याग करने वालों को मद्य–मांस की भेंट सतोषजनक नहीं होती । अधिक क्या कहें ! हरित कंद मूल के त्यागी श्रावक भी हरित कन्द मूल की भेट से प्रसन्न नहीं होते हैं । बुद्धिमान् पुरुष स्वय विचार करलें ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते है–'तत्थ' इत्यादि ।

વદનવાર બાધીને, પ્રતિમા ઉપર સચિત્ત પાદડા, ફૂલ આદિ ચઢાવીને, સચિત્ત નાળિએર, દાડમ, આબા આદિ નૈવેદ્યના ઉપચારથી વનસ્પતિની હિંસા કરીને તે વનસ્પતિ–આશ્રિત અનેક પ્રકારના ત્રસ–સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરાવે છે વીતરાગદેવની પૂજા સાદ્ય હોય તે યોગ્ય નથી. 'एस खलु गथे' ઈત્યાદિ કથન દ્વારા આ આગમમા તમામ સમારભોનો વીતરાગ ભગવાને સાક્ષાત્ નિષેધ કર્યો છે જે પુરુષ જે વસ્તુના ત્યાગી છે, તેની પ્રસન્નતા તે વસ્તુને અર્પણ કરવાથી થઈ શકતી નથી લોકમા મદ્ય–માસના ત્યાગી–ત્યાગ કરવાવાળાને મદ્ય–માસની ભેટ સતોષ ઉત્પન્ન કરતી નથી, અધિક શું કહીએ! લીલા કદમૂળના ત્યાગી શ્રાવક પણ લીલા કન્દમૂળની ભેટથી પ્રસન્ન થતા નથી તો બુદ્ધિમાન પુરુષ પોતે વિચાર કરી લીએ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે–'तत्थ' ઈત્યાદિ

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया। इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए, जाइमरणमोयणाए, दुक्खपडिघायहेउं, से सयमेव वणस्सइसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा वणस्सइसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वणस्सइसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ६ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता। अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय, जातिमरणमोचनाय, दुःखप्रतिघातहेतु, स स्वयमेव वनस्पतिशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ६ ॥

टीका—

तत्र=वनस्पतिकायसमारम्भे, भगवता=श्रीमहावीरेण, परिज्ञा=सम्यगवबोधः खलु=निश्चयेन प्रवेदिता=प्रतिबोधिता-कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवन परि

मूलार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ के संबंध में भगवान् ने सम्यक् बोध दिया है। इस जीवन के वन्दन मानन और पूजन के लिए, जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए तथा दुःखों का विनाश करने के लिए स्वयं वनस्पतिकायशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से आरंभ कराता और आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है। वह आरंभ उस के अहित के लिए, उसकी अबोधि के लिए होता है ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ के विषय में भगवान् श्री महावीर स्वामी ने सम्यक् उपदेश दिया है। अर्थात् भगवान ने बतलाया है कि—कर्मबंध को नष्ट करने के

મૂલાર્થ—વનસ્પતિકાયના આરંભના સમ્બન્ધમાં ભગવાને સમ્યક્ બોધ આપ્યો છે આ જીવનના વંદન, માનન, અને પૂજન માટે, જન્મ-મરણથી છુટવાને માટે તથા દુઃખોનો વિનાશ કરવા માટે સ્વયં વનસ્પતિકાયશસ્ત્રનો આરંભ કરે છે બીજા પાસે આરંભ કરાવે છે અને આરંભ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે. તે આરંભ તેના અહિત માટે તેમજ તેની અબોધિ માટે હોય છે ॥ સૂ૦ ૬ ॥

ટીકાર્થ—વનસ્પતિકાયના આરંભના વિષયમાં ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ સમ્યક્ ઉપદેશ આપ્યો છે. અર્થાત્ ભગવાને બતાવ્યું છે કે-કર્મબંધન નષ્ટ કરવા માટે

ज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय वनस्पतिकायमुपर्दयती ? त्याह–'अस्य चैव जीवितस्ये'–त्यादि । अस्यैव नश्वरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्=आहार–वस्त्र–पात्र–माल्य–गन्ध–चूर्ण–तालवृन्ता–ऽर्गला–खट्वा–पल्यङ्क–शिविका–शकट–हल–मुसल–पीठ–फलक–सिंहासन–दण्ड–लकुट–कपाट–वीणा–शालभञ्जिका––निर्माण–तापन–प्रतापन–प्रकाशने–न्धन–तैलाद्यर्थमित्यर्थः । तथा–परिवन्दन–मानन–पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा–कश्चित् स्वप्रशंसार्थम् उपवनादौ पत्रादिकर्तनकलाकौशलेन वृक्षलतादीनां पत्रादीनि तथा छेदयति यथा तत्कर्तनेन

लिए जीव को परिज्ञा (उपदेश) अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।

उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं ? यह बतलाते हैं–इसी नाशशील जीवन के सुख के लिए अर्थात् आहार, वस्त्र, पात्र, माला गंध, चूर्ण, तालवृन्त (पखा), आगल, खाट, पलंग, पालकी, गाडी, हल, मूसल, पीढा, (बाजोट) फलको (पाट), सिंहासन, डंडा, लकडी, किवाड, वीणा, पुतली आदि बनवाने के लिए, तपाना, विशेष तपाना, प्रकाशन, ईंधन, और तैल आदि के प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं । तथा प्रशंसा के लिए भी वनस्पति की हिंसा करते हैं, जैसे–कोई पुरुष अपनी प्रशंसा के लिए बगीचा आदि में पत्ता वगैरह काटने की कला में कुशलता प्रकट करने के अभिप्राय से वृक्ष लता वगैरह को इस प्रकार काटता है जिससे उसमें

જીવને પરિજ્ઞા (ઉપદેશ)નો અવશ્ય સ્વીકાર કરવો જોઈએ

ઉપભોગદ્વાર—

લોક શું પ્રયોજનથી વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે? તે બતાવે છે–આ નાશ પામવાવાળા જીવના સુખ માટે, અર્થાત્–આહાર, વસ્ત્ર, પાત્ર, માલા, ગંધ, ચૂર્ણ, પંખા આગરિયો, ખાટ, પલંગ, પાલખી, ગાડી, હલ, મૂસલ, બાજોઠ, પાટ, સિંહાસન, ડંડા, લાકડી, કમાડ, વીણા, પુતલી વગેરે બનાવવા માટે, તપાવવું વિશેષ તપાવવુ, પ્રકાશન, ઇન્ધન–(બાળવાના લાકડા) અને તેલ આદિના પ્રયોજનથી વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે તથા પ્રશંસા માટે પણ વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે, જેમકે–કોઈ પુરુષ પોતાની પ્રશંસા માટે બગીચા આદિમા પાંદડા વગેરે કાપવાની કલામાં કુશળતા બતાવવાના અભિપ્રાયથી

गजाश्वमृगव्याघ्रसिंहादीनां स्वरूपं यथाना वृक्षादयस्तस्योपवनादेर्विशिष्टशोभां जनयन्ति।

माननं=वन्दनसत्कारस्तदर्थं, यथा–स एव पत्राविकर्तनकलाकुशलो मालाकारः स्वमाननार्थं कर्तरीयन्त्रेण वृक्षलतादीनां पत्रादिकं कृन्तति। पूजनं= सत्कारत्नादिसमस्तदर्थम्, यथा–देवप्रतिमाद्यर्थं पत्रपुष्पफलादीनां त्रोटने। तथा– जातिमरणमोचनाय=जन्ममरणबन्धमोचनार्थं, यथा–मुक्तिकामनया पूजायां पुष्पचयादिसमुच्छेदने, तथा–दुःखप्रतिघातहेतु=व्याधिशमनाद्यर्थम्–ओषधि-वृक्षलतादीनां मूलकन्दशाखापत्रपुष्पफलादिभेदने, स जीवनसुखार्थी स्वयमेव

हाथी, घोड़ा, हिरन, बाघ, सिंह आदि का आकार बन जाता है और इससे उस बगीचे की सुन्दरता बढ़ती है, ऐसा मानकर करता है।

वन्दनसत्कार के लिए भी वनस्पति की हिंसा की जाती है, जैसे–पत्ता वगैरह काटने में कुशल वही पूर्वोक्त माली कैंची से वृक्षों या लताओं के पत्ता आदि काटता है। तथा पूजन के लिए अर्थात् वस्त्रों और रत्नों के लिए भी वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं। जैसे–देव प्रतिमा आदि के लिए पत्र, फूल, फल तोड़ने में।

जन्म मरण से छुटकारा पाने के लिए भी उक्त हिंसा की जाती है। जैसे–मुक्ति की इच्छा से पूजा के लिए फूल–फल तोड़ने में। दुःखों का प्रतीकार करने के लिए भी यह हिंसा की जाती है। जैसे–रोग मिटाने के लिए ओषधि, वृक्ष, लता मूल, कन्द, शाखा पत्र, फूल आदि तोड़ने में हिंसा की जाती है।

વૃક્ષ લતા વગેરેને એવા પ્રકારે કાપે છે કે તેમાં હાથી, ઘોડા, હરણ, વાઘ સિંહ આદિનો આકાર બની જાય છે અને તેથી એ બગીચાની સુંદરતા વધે છે. એવું સમજીને કરે છે

વન્દન-સત્કાર માટે પણ વનસ્પતિની હિંસા કરવામાં આવે છે જેમ-પાંદડાં વગેરેને કાપવામાં કુશલ માળણ કહેલા તેજ માળી કૈંચી (કાતર)થી વૃક્ષો અથવા લતાઓનાં પત્તાં આદિ કાપે છે. તથા પૂજન માટે અર્થાત્ વસ્ત્રો અને રત્નોને માટે પણ વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે જેમ-દેવપ્રતિમા આદિ માટે પત્ર ફૂલ ફલ તોડવામાં.

જન્મ-મરણથી છુટવા માટે પણ પૂર્વ કહેલી હિંસા કરવામાં આવે છે, જેમકે– મુક્તિની ઇચ્છાથી પૂજા માટે ફલ ફૂલ તોડવામાં.

દુઃખોનો પ્રતિકાર કરવા માટે પણ એ હિંસા કરવામાં આવે છે જેમકે–રોગનિવારણ કરવા માટે ઔષધી, વૃક્ષ, લતા, મૂલ કન્દ, શાખા, પત્ર, ફૂલ આદિ તોડવામાં હિંસા કરવામાં આવે છે

वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिकायोपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं समारभते=व्यापारयति । अन्यैर्वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयति । अन्यान् वा वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति= अनुमोदयति ।

तत्=वनस्पतिकायसमारम्भ, तस्य वनस्पतिसमारम्भ कुर्वतः कारयितुः अनुमोदयितुश्च अहिताय भवति । तथा-तत् तस्य अबोधये=सम्यक्त्वालाभाय भवति । ॥ सू० ६ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे वनस्पतिकायस्वरूपं परिज्ञातं, स एवं विभावयतीत्याह—'से तं ' इत्यादि।

मूलम्—

से तं संवुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोच्चा खलु भगवओ अण-

इस प्रकार जीवन को सुखी बनाने का अभिलाषी वह पुरुष वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाले द्रव्य और भावशस्त्र का स्वय उपयोग करता है, दूसरों से उपयोग कराता है और वनस्पतिशस्त्र का उपयोग करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

वनस्पतिकाय का वह आरंभ, आरभ करने वाले, कराने वाले और अनुमोदन करने वाले के अहित के लिए होता है और सम्यक्त्व की अप्राप्ति का कारण बनता है ॥ सू० ६ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट वनस्पतिकाय का स्वरूप जिसने जान लिया है, वह इस प्रकार विचार करता है–'से तं ' इत्यादि ।

मूलार्थ—वह पुरुष भगवान् या अनगारों से सुनकर समझ–बूझकर सयम

એ પ્રમાણે જીવનને સુખી બનાવવાના અભિલાષી તે પુરુષ વનસ્પતિકાયની હિંસા કરવાવાળા દ્રવ્ય અને ભાવ શસ્ત્રનો સ્વય ઉપયોગ કરે છે, બીજા પાસે ઉપયોગ કરાવે છે અને વનસ્પતિશસ્ત્રનો ઉપયોગ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે

વનસ્પતિકાયનો આ આરભ, આરભ કરવાવાળાને, કરાવવાવાળાને અને અનુમોદન કરવાવાળાને અહિત માટે છે અને સમ્યક્ત્વની અપ્રાપ્તિનું કારણ બને છે ॥ સૂ૦૬ ॥

તીર્થંકર આદિના સમીપે વનસ્પતિકાયનું સ્વરૂપ જેણે જાણી લીધું છે તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે–'से त ' ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—તે પુરુષ ભગવાન અથવા અણગારો પાસેથી સાભળી–સમજી–બુઝીને

गाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ-एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए। इच्चत्थं गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइकम्मसमारंभेणं वणस्सइसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥सू० ७॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः। इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः वनस्पतिकर्मसमारम्भेण वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ७ ॥

टीका—यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा, आदानीयम्=उपादेयसर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=वनस्पतिकायसमारम्भम संबुध्यमानः= अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता सन् एवं विभावयति—'एवं खलु०' इत्यादि।

ग्रहण करके विचरता है। वह इस प्रकार समझता है—वनस्पतिकाय का आरंभ ग्रन्थ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है। मूढ लोग इसके लिए नाना प्रकार के शस्त्रों से वनस्पतिकाय का आरंभ करके, शस्त्र का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्राणियों का हनन करते हैं ॥ सू० ७ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष तीर्थंकर से या उनके श्रमण निर्ग्रन्थों से सर्वसावद्य त्याग रूप संयम स्वरूप समझकर और उसे अंगीकार करके विचरता है वह वनस्पतिकाय के आरंभ को अहितकर और अबोधिजनक समझकर इस प्रकार विचार करता है— 'एवं खलु०' इत्यादि।

સંયમ ગ્રહણ કરીને વિચરે છે તે આ પ્રમાણે સમજે છે—વનસ્પતિકાયનો આરંભ ગ્રંથ છે, એ મોહ છે એ માર છે એ નરક છે મૂઢ લોક એ માટે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરીને શસ્ત્રનો પ્રયોગ કરતા થકા બીજા પણ અનેક પ્રાણીઓનો ઘાત કરે છે ॥ સૂ. ૭ ॥

ટીકાર્થ—જે પુરૂષ તીર્થંકરથી અથવા તેમના શ્રમણ નિર્ગ્રન્થો પાસેથી સર્વ સાવદ્ય (કર્મના) ત્યાગરૂપ સંયમના સ્વરૂપને સમજી ને અને તેને અંગીકાર કરીને વિચરે છે, તે વનસ્પતિકાયના આરંભને અહિતકર અને અબોધિજનક સમજી આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે— एवं खलु० ઇત્યાદિ

इह=मनुष्यलोके एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजातसम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेवं ज्ञातं=विदितं भवति। किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु०' इत्यादि।

एषः=वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मवन्धः, कारणे कार्योपचारात् कारणभूतो वनस्पतिशस्त्रसमारम्भ एव कर्मवन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते। एवमग्रेऽपि बोध्यम्। तथा-एषः वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः-अज्ञानम्। तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः। तथा-एष एव नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम्।

इस मनुष्य लोक में जिन्हें श्रमण निर्ग्रंथों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है, उन्हीं को यह विदित होता है। क्या विदित होता है? इस शंका का समाधान करने के लिए आगे कहते हैं-'एष खलु ग्रन्थ०' इत्यादि।

वनस्पतिकाय का आरंभ निश्चय से ग्रंथ अर्थात् कर्मबंधरूप है। कारण में कार्य का उपचार करके आरंभ को कर्मबंध कहा है। वस्तुतः वह कर्मबंध का कारण है। इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए।

वनस्पतिकाय का समारंभ मोह अर्थात् अज्ञान है—अज्ञानजनक है। यह मार है अर्थात् निगोद आदि में मृत्यु का कारण है। यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को दश प्रकार की यातना का कारण है।

આ મનુષ્યલોકમા જેને નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન, અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે તેઓ આ જાણે છે શું જાણે છે? એ શંકાનું સમાધાન કરવા માટે આગળ કહે છે, 'एष खलु ग्रन्थ०'-ઇત્યાદિ

વનસ્પતિકાયને। આરંભ નિશ્ચય ગ્રંથ છે-અર્થાત્ કર્મબંધરૂપ છે, કારણમાં કાર્યને। ઉપચાર કરીને આરંભને કર્મબંધ કહે છે, વસ્તુત તે કર્મબંધનું કારણ છે એ પ્રમાણે આગળ પણ સમજી લેવુ જોઈએ.

વનસ્પતિકાયને। સમારંભ મોહ અર્થાત્ અજ્ઞાન છે—અજ્ઞાનજનક છે, તે માર છે, અર્થાત્ નિગોદ આદિમા મૃત્યુનું કારણ છે તે નરક છે, અર્થાત્ નારકી જીવોને દસ પ્રકારની યાતનાઓનું કારણ છે.

इत्यर्थम्=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः, गृद्धः=लिप्सुरस्ति। यद्वा-गृद्धः=भोगाभिलाषी, लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=ग्रन्थ-मोह-मरणनरकार्थमेव प्रवर्तत इति शेषः।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्तत इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते? इति जिज्ञासायामाह—'यदिमम्' इत्यादि।

यत्=यस्मात्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः पूर्वोक्तप्रकारैः, वनस्पतिकर्मसमारम्भेण=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपसावद्यव्यापारेण, इमम्=वनस्पतिकायं विहिनस्ति। तथा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भमाणः=व्यापारयन् अन्यान्=पृथिवीकायादीन् अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावरांश्च तदाश्रितान् प्राणान्=प्राणिनः विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥सू० ७॥

अज्ञानी जीव कर्मबंध, मोह, मरण और नरक रूप इन फलों को प्राप्त करके भी बार-बार इसी में गृद्ध होते हैं। अथवा भोग के अभिलाषी पुरुष इसी ग्रंथ, मोह, मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं।

लोग पुनः-पुनः कर्मबंध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं यह जो कथन किया है सो कैसे ज्ञात हुआ? इस जिज्ञासा के होने पर कहते हैं—'यदिमम्' इत्यादि।

क्यों कि नाना प्रकार के पूर्वोक्त शस्त्रों द्वारा वनस्पतिकाय की हिंसा करने वाले लोग सावद्य व्यापार से वनस्पतिकाय का घात करते हैं। तथा वनस्पतिकाय का आरंभ करते हुए अन्य पृथ्वीकाय आदि अनेक प्रकार के तदाश्रित त्रस और स्थावर जीवों की घात करते हैं ॥ सू० ७ ॥

અજ્ઞાની જીવ કર્મબંધ મોહ, મરણ અને નરકરૂપ એ ફળોને પ્રાપ્ત કરીને પણ વાર-વાર એમાં ગૃદ્ધ થાય છે. અથવા ભોગના અભિલાષી પુરુષ આ ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરક માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે

લોક પુનઃ પુનઃ (ફરી-ફરી) કર્મબંધ વગેરે માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે; એ કથન જે કર્યું છે તે કેવી રીતે જાણવામાં આવ્યું? એ જીજ્ઞાસા બતાવી કહે છે 'यदिमम्' ઈત્યાદિ.

કેમકે નાના પ્રકારના પૂર્વોક્ત શસ્ત્રો દ્વારા વનસ્પતિ કાયની હિંસા કરવાવાળા લોક સાવદ્ય વ્યાપારથી વનસ્પતિકાયનો ઘાત કરે છે તથા વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરતા થકા, અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ અનેક પ્રકારના તદાશ્રિત ત્રસ અને સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરે છે ॥ સૂ. ૭ ॥

वनस्पतिकर्मसमारम्भफलप्रदर्शनपुरस्सरं वनस्पतिसमारम्भेऽनेकत्रसस्थावरजीव-हिंसाऽवश्यम्भाविनीति प्रदर्शितम्, संप्रति वनस्पतेः सचेतनत्वशङ्कायां तस्य मनुष्य-शरीरवत् सचेतनत्वमस्तीति प्रदर्शयति—'से बेमि.' इत्यादि ।

यद्वा-यथा मनुष्यशरीरे चैतन्यं सुगमं, तथा वनस्पतिकायेऽपि, तस्माद् वनस्पतेर्मनुष्यशरीरसादृश्य दर्शयति सूत्रकारः-'से बेमि.' इत्यादि ।

मूलम्—

से बेमि-इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं, इमंपि बुड्ढिधम्मयं एयंपि बुड्ढिधम्मयं, इमंपि चित्तमंतयं एयंपि चित्तमंतयं, इमंपि छिण्ण मिलाइ एयंपि

वनस्पतिकाय के आरभ का फल प्रगट करके यह भी प्रदर्शित कर दिया गया है कि—वनस्पतिकाय का आरभ करने से अन्य त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा भी अवश्य होती है । अब वनस्पतिकाय के सचेतन होने में शंका होने पर उसकी मनुष्य शरीर के समान सचेतनता सूत्रकार प्रकट करते है-'से बेमि.' इत्यादि ।

अथवा—जैसे मनुष्यशरीर में चैतन्य को समझना सुगम हैं उसी प्रकार वनस्पतिकाय में भी । अत एव वनस्पति मनुष्यशरीर के समान है, यह बात सूत्रकार कहते हैं-'से बेमि.' इत्यादि ।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ-यह (मनुष्यशरीर) जन्मशील है, वह (वनस्पतिशरीर) भी जन्मशील है। यह वृद्धिशील है, वह भी वृद्धिशील है। यह सचित्त है वह भी सचित्त है। छेदने पर यह मुरझा जाता है, वह भी छेदने पर मुरझा जाता है।

વનસ્પતિકાયના આરભનુ ફળ પ્રગટ કરીને એ પણ પ્રદર્શિત કરી આપ્યુ છે કે-વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરવાથી અન્ય ત્રસ અને સ્થાવર જીવોની હિંસા પણ અવશ્ય થાય છે. હવે વનસ્પતિકાયની સચેતનતા હોવામા શકા હોવાથી તેની સચેતના મનુષ્યશરીરની સચેતનતા સમાન સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે-'से बेमि' ઇત્યાદિ

અથવા—જેમ મનુષ્ય શરીરમા ચૈતન્યને સમજવામા સુગમતા છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિકાયમા પણ સુગમતા છે. એ માટે વનસ્પતિ મનુષ્યશરીરના સમાન છે એ વાત સૂત્રકાર કહે છે-'से बेमि' ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—તે હુ કહુ છુ-આ (મનુષ્ય શરીર) જન્મશીલ છે તે (વનસ્પતિ-શરીર) પણ જન્મશીલ છે, આ વૃદ્ધિશીલ છે, તે પણ વૃદ્ધિશીલ છે, આ સચિત્ત છે-છેદવાથી તે સૂકાઈ જાય છે, તે પણ છેદવાથી સૂકાઈ જાય છે આ પણ આહારક છે, તે

छिन्नं मिलाइ, इमंपि आहारगं, एयंपि आहारगं, इमंपि अणिच्चयं एयंपि अणिच्चयं, इमंपि असासयं एयंपि असासयं, इमंपि चओवचइयं एयंपि चओवचइयं, इमंपि विप रिणामधम्मयं एयंपि विपरिणामधम्मय ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स ब्रवीमि-इदमपि जातिधर्मकम् एतदपि जातिधर्मकम्, इदमपि वृद्धिधर्मकम् एतदपि वृद्धिधर्मकम्, इदमपि चित्तवत् एतदपि चित्तवत्, इदमपि छिन्नं म्लायति एतदपि छिन्नं म्लायति, इदमपि आहारकम् एतदपि आहारकम्, इदमपि अनित्यकम् एतदपि अनित्यकम्, इदमपि अशाश्वतम् एतदपि अशाश्वतम्, इदमपि चयोपचयिकम् एतदपि चयोपचयिकम्, इदमपि विपरिणामधर्मकम् एतदपि विपरिणामधर्मकम् ॥ सू० ८ ॥

टीका—

येन साक्षाद्भगवन्मुखात् वनस्पतेः सचेतनत्वं श्रुतं सोऽहं ब्रवीमि= यथा भगवता कथितं, तथा कथयामीत्यर्थः । प्रतिज्ञातमर्थं प्रदर्शयति-इदमपीत्यादि ।

यह भी आहारक है, वह भी आहारक है । यह भी अनित्य है, वह भी अनित्य है । यह भी अशाश्वत है, वह भी अशाश्वत है । यह भी चय-उपचय वाला है, वह भी चय-उपचय वाला है । यह भी विविध प्रकार से परिणमनशील है और वह भी विविध प्रकार से परिणमनशील है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जिसने साक्षात् भगवान् के मुख से वनस्पतिकाय की सचेतनता सुनी है वही मैं कहता हूँ-जैसा भगवान् ने कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ । यही बात कहते हैं-'इदमपि०' इत्यादि ।

પણ આહારક છે આ પણ અનિત્ય છે. તે પણ અનિત્ય છે આ પણ અશાશ્વત છે તે પણ અશાશ્વત છે આ પણ ચય-ઉપચયવાળા છે તે પણ ચય-ઉપચયવાળા છે આ પણ વિવિધ પ્રકારથી પરિણમનશીલ છે અને તે પણ વિવિધ પ્રકારથી પરિણમન શીલ છે ॥સૂ૦ ૮॥

ટીકાર્થ—જેણે સાક્ષાત્ ભગવાનના મુખથી વનસ્પતિકાયની સચેતનતા સાંભળી છે તેજ હું કહું છું-જેવું ભગવાને કહ્યું છે તેવું જ હું કહું છું એ વાત કહે છે-'इदमपि' ઈત્યાદિ.

इह पुरुषस्योपदेशयोग्यतया सामर्थ्येन संनिहितत्वात्तच्छरीरं संनिकृष्टवाचिनेदम्शब्देन परामृश्यते। इदमपि मनुष्यशरीरं, यद्वा-सामान्यरूपेण त्रसकाये चैतन्यस्य सुज्ञेयत्वात् इद=त्रसशरीर, जातिधर्मक-जातिः-जननं, तद्धर्मकं-जननस्वभाव, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि जातिधर्मकं=मनुष्यशरीरवद् वनस्पतिशरीरमपि जननस्वभावकमस्तीत्यर्थः । तथा इदमपि मनुष्यशरीरं वृद्धिधर्मकं=बालकौमाराद्यवस्थामाश्रित्य वर्धनस्वभावम्, एतदपि वनस्पतिशरीर अङ्कुरकिसलय-पत्रस्कन्धशाखाप्रशाखादिना वर्धनशीलम् । इदमपि मनुष्यशरीरं चित्तवत्=चेतना-

---

'इदम्' शब्द का प्रयोग समीपवर्ती वस्तु के लिए किया जाता है। मनुष्य ही उपदेश का पात्र है और उसका शरीर भी अयन्त समीप है अत मनुष्य के शरीर को 'इदम्' शब्दद्वारा निर्दिष्ट किया गया है। अथवा त्रस जीव के शरीर में चैतन्य को समझना सुगम है, इस कारण 'इदम्' का अर्थ मनुष्यशरीर के बजाय त्रस जीव का शरीर समझ लेना चाहिए।

यह मनुष्यशरीर या त्रस जीव का शरीर उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है, उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है। तथा मनुष्य शरीर वृद्धिशील है-बाल, कुमार आदि अवस्थाओं में बढता जाता है उसी प्रकार वनस्पति—शरीर भी अकुर, किसलय, पत्र, स्कध, शाखा और प्रशाखा आदि रूप से बढता जाता है। मनुष्यशरीर चेतनावान् है उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी चेतनावान् है,

---

'इदम्' શબ્દનો પ્રયોગ સમીપવર્ત્તી વસ્તુ માટે કરવામા આવે છે મનુષ્યજ ઉપદેશને પાત્ર છે, અને તેનુ શરીર અત્યન્ત સમીપ છે એ કારણથી મનુષ્યના શરીરને 'इदम्' શબ્દદ્વારા નિર્દિષ્ટ કર્યુ છે અથવા ત્રસ જીવના શરીરમા ચૈતન્યને સમજવું સુગમ છે. એ કારણથી 'इदम्'નો અર્થ મનુષ્ય શરીરના બદલે ત્રસ જીવનુ શરીર સમજી લેવુ જોઈએ

આ મનુષ્યશરીર અથવા ત્રસજીવનુ શરીર ઉત્પન્ન થવાના સ્વભાવવાળુ છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિનુ શરીર પણ ઉત્પન્ન થવાના સ્વભાવવાળુ છે તથા મનુષ્યશરીર વૃદ્ધિશીલ છે-બાલકુમાર, આદિ અવસ્થાઓમા વધતુ જાય છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિશરીર પણ અકુર, કિસલય-કુમળા, પાન, પત્ર, સ્કધ, શાખા અને પ્રશાખા આદિરૂપથી વધ્યે જાય છે, મનુષ્યશરીર ચેતનાવાન છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ ચેતનાવાન છે.

युक्तम्, एतदपि=वनस्पतिशरीरं चित्तवत्=चेतनावत्, लज्जालुधात्र्यादीनां सङ्कोच विकास-स्वाप-प्रबोधदर्शनात् । इदमपि=मनुष्यशरीरं हस्तादि छिन्नं सत् म्लायति=शुष्यति, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि पत्रपुष्पफलादि छिन्नं सत् म्लायति=शुष्कं भवति । इदमपि आहारकम्=क्षीरौदनाद्याहारकरणशील, तथैव एतदपि=वनस्पतिशरीरं भूजलाद्याहारभोजि न चैतदाहारकत्वमचेतनानां दृष्टम् ।

तथा इदमपि=मनुष्यशरीरम् अनित्यकम्= न सर्वदाऽवस्थायि, एतदपि वनस्पतिशरीरम् अनित्यकम् आयुषोऽवधिसत्त्वात्, वनस्पतिशरीरस्य हि उत्कृष्टमायुर्दशवर्षसहस्राणि । तथा-इदमपि=मनुष्यशरीरम् अशाश्वतम्=प्रतिक्षणमावीचीमर

क्यों कि छुईमुई धात्री आदि वनस्पतियों में संकोच विकास स्वाप (निद्रा) और प्रबोध (जागना) देखा जाता है । हाथ आदि मनुष्यशरीर छेदने पर मुरझा जाता है उसी प्रकार पत्ता फूल, फल आदिरूप वनस्पतिशरीर भी छेदने पर मुरझा जाता है । यह मनुष्यशरीर दूध और भोजन आदि का आहार करता है और वनस्पति शरीर भी पृथ्वी, जल आदि का आहार करता है । आहार करने कि क्रिया अचेतन में नहीं देखी जाती ।

मनुष्यशरीर अनित्य है-सदा ठहरने वाला नहीं है, इसी प्रकार वनस्पतिशरीर भी अनित्य है, क्यों कि उसकी आयु की सीमा है । वनस्पतिशरीर की उत्कृष्ट आयु दस हजार वर्ष की है ।

मनुष्य शरीर अशाश्वत है-आवीचिमरण प्रतिक्षण होता रहता है और वनस्पति

કેમકે લજામણી-(રીસામણી), ધાત્રી આદિ વનસ્પતિઓમાં સંકોચાવું, વિકાસ, નિદ્રા અને જાગવું જોવામાં આવે છે

હાથ-આદિ મનુષ્યશરીર છેદવાથી સૂકાઈ જાય છે. તે પ્રમાણે પાંદડાં, ફૂલ, ફળ આદિ રૂપ વનસ્પતિશરીર પણ છેદવાથી સૂકાઈ જાય છે આ મનુષ્યશરીર દૂધ અને ભાત વગેરેનો આહાર કરે છે તેમ વનસ્પતિશરીર પણ પૃથ્વી, જળ આદિનો આહાર કરે છે, આહાર કરવાની ક્રિયા અચેતનમાં જોવામાં આવતી નથી.

મનુષ્ય શરીર અનિત્ય છે. હંમેશાં સ્થિર રહેવાવાળું નથી એ પ્રમાણે વનસ્પતિ શરીર પણ અનિત્ય છે કેમકે-તેની આયુષ્યની સીમા છે વનસ્પતિશરીરનું ઉત્કૃષ્ટ આયુ દસ હજાર વર્ષનું છે.

મનુષ્યશરીર અશાશ્વત છે-આવીચિમરણ પ્રતિક્ષણ થતું રહે છે તેમ

गेन मरणात्, एतदपि=वनस्पतिशरीरम् अशाश्वत=प्रतिक्षणमरणशीलम् । यथा-इदमपि=मनुष्यशरीर चयापचयिकम्=इष्टानिष्टाहारादिक प्राप्य वृद्धिह्रासशीलम्, तथा-एतदपि=वनस्पतिशरीर चयापचयिकम्=अनुकूल-प्रतिकूलजलवातादिना वृद्धिह्रासस्वभावम् । यथा-इदमपि मनुष्यशरीरं विपरिणामधर्मकं=विविधपरिणामशीलम्, तत्तद्व्याधिवशाद् उदरवृद्धिपाण्डुकृशत्वादिरूपं, रसायनस्नेहाद्युपचारवशाद् विशिष्टरूपबलोपचयादिरूप वा विविधपरिणामं प्राप्नोति तथा-एतदपि=वनस्पतिशरीर विपरिणामधर्मकं=व्याधिवशात् पत्रपुष्पफलादीनां वर्णादिष्वन्यथाभावदर्शनात्, विशिष्टदोहदप्रदानेन कदाचित्तेषामुपचयदर्शनाद विविधपरिणामशीलम् । यथा जननस्वभावादिधर्माणां समुदायः सचेतने मनुष्यशरीरे

शरीर भी अशाश्वत है-उसका भी प्रतिक्षण मरण होता है । मनुष्यशरीर इष्टानिष्ट आहार आदि को पाकर बढता-घटता रहता है, उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी अनुकूल जल-वायु से बढता और प्रतिकूल जल-वायु से घटता है । जैसे मनुष्यशरीर में नाना प्रकार के परिणमन होते हैं-विविध बीमारियों से उदर का बढना, पाण्डु, कृशता आदि, तथा रसायन और घृत आदि के सेवन से विशिष्टरूप और बल की वृद्धि होती है, उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी विविध प्रकार के परिणमनवाला है-रोग होने पर वनस्पति के पत्ते, फूल, फल आदि और ही तरह के देखे जाते हैं, विशेष प्रकार का दोहद देने से कभी-कभी उन में उपचय भी होता है । इस प्रकार वनस्पति का शरीर भी विविध परिणमन वाला है । जननस्वभाव आदि धर्मों का समूह सचेतन मनुष्य शरीर में या त्रस

વનસ્પતિશરીર પણ અશાશ્વત છે-તેનું પણ પ્રતિક્ષણ મરણ થતું રહે છે મનુષ્ય શરીર ઈષ્ટાનિષ્ટ આહાર આદિથી વધતુ ઘટતુ રહે છે તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ અનુકૂલ જલ-વાયુથી વધે છે અને પ્રતિકૂળ જલવાયુથી ઘટે છે જેમ મનુષ્યશરીરમા નાના પ્રકારનુ પરિણમન થાય છે, વિવિધ બિમારીઓથી પેટનુ વધવું, પાડુરોગ, કૃશતા (દુબલાપણું) આદિ, તથા રસાયન અને ઘૃતઆદિના સેવનથી વિશિષ્ટરૂપ અને બલવૃદ્ધિ થાય છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ વિવિધ પ્રકારના પરિણમનવાળું છે, રોગ થતાં વનસ્પતિના પાદડા, ફૂલ, ફલ આદિ જૂદીજ જાતના દેખાય છે, વિશિષ્ટ પ્રકારના દોહદ દેવાથી કોઈ-કોઈ વખત તેમા ઉપચય થાય છે, એ પ્રમાણે વનસ્પતિનુ શરીર પણ વિવિધ પરિણમનવાળુ છે જનનસ્વભાવ આદિ ધર્મોના સમૂહ સચેતન મનુષ્યશરીરમા અથવા ત્રસજીવના શરીરમા જોવામા આવે છે, તેજ પ્રમાણે

मनुष्यशरीरे वा वर्तते, तथा-वनस्पतिशरीरेऽपि, तस्माद् वनस्पतिकायः सचेतन इति निःसंशयं जानीहीति भावः ॥ सू० ८ ॥

एवं वनस्पतिकायस्य सचित्तत्वं विदित्वा मुनित्वप्राप्तये त्रिकरणत्रियोगैस्तत्समारम्भो वर्जनीय इत्याशयेनाह—' एत्थ सत्थं ' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति, एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वणस्सइसत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं वणस्सइसत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे

जीव के शरीर में पाया जाता है, उसी प्रकार वनस्पति के शरीर में भी पाया जाता है। अत एव वनस्पतिकाय सचेतन है, यह बात निःसंशय समझ लेना चाहिए ॥ सू० ८ ॥

इस प्रकार वनस्पतिकाय की सचित्तता जानकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन करण और तीन योग से वनस्पतिकाय का समारंभ त्यागना चाहिए। इस अभिप्राय से कहते हैं—' 'एत्थ सत्थं ' इत्यादि ।

मूलार्थ—वनस्पतिकाय में शस्त्र का आरंभ करने वाले को ये आरंभ ज्ञात नहीं होते। वनस्पतिकाय में शस्त्र का आरंभ न करने वाले को ये आरंभ ज्ञात होते हैं। इन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष न स्वयं वनस्पतिकाय का आरंभ करे, न दूसरों से वनस्पतिकाय का आरंभ कराये और न वनस्पतिकाय का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन

वनस्पतिना शरीरमां पण जेवामां आवे छे अेज माटे वनस्पतिकाय सचेतन छे, अे वात संदेहरहित समजी लेवी जोईअे. ॥ ८ ॥

अे प्रमाणे वनस्पतिकायनी सचित्तता जाणीने साधुता प्राप्त करवा माटे त्रण करण अने त्रण योगथी वनस्पतिकायनो समारंभ त्यजवो जोईअे. अे अभिप्रायथी कहे छेः—' एत्थ सत्थं ' ईत्यादि.

मूलार्थ—वनस्पतिकायमां शस्त्रनो आरंभ करवावाळाने आ आरंभ जाणवामां नथी. (अने) वनस्पतिकायमां शस्त्रनो आरंभ नहि करवावाळाने आ आरंभ जाणवामां छे तेने जाणीने बुद्धिमान् पुरुष पोते वनस्पतिकायनो आरंभ करता नथी बीजानी पासे वनस्पतिनो आरंभ करावता नथी. अने वनस्पतिकायनो आरंभ करवावाळा बीजाने अनुमोदन करता नथी. जे वनस्पतिकायना समारंभना जाणकार

वणस्सइसत्थं समारभंते समणुजाणेज्जा। जस्सेते वणस्सइसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्ति बेमि ॥ सू० ९ ॥

छाया-अत्र शस्त्र समारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति। अत्र शस्त्रमसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्तिः तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं वनस्पतिशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैर्वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयेत्, वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात्। यस्यैते वनस्पतिशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

टीका-अत्र=अस्मिन् वनस्पतिकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणस्य= व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरण-त्रियोगैः आरम्भाः=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपाः सावद्यव्यापाराः अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति। अत्र=अस्मिन्नेव वनस्पतिकाये शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम् असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाता भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति त प्रकारं दर्शयति-

---

करे। जो वनस्पतिशस्त्र के समारंभ का ज्ञाता है वही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है। ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

टीकार्थ—वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त प्रकार से शस्त्र का उपयोग करने वाले को पूर्वोक्त-तीन करण तीन योग से होने वाले वनस्पति की हिंसारूप सावद्य व्यापार-अज्ञात होते हैं, अर्थात् वह नहीं जानता कि-इन व्यापारों से कर्म का बंध होता है। जो वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का प्रयोग नहीं करता वह पूर्वोक्त सावद्य व्यापारों का ज्ञाता होता है। वह ज्ञपरिज्ञा से इन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है। ज्ञपरिज्ञा के पश्चात् ही प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार होती है सो दिखलाते हैं-

---

છે, તેજ મુનિ છે, તેજ પરિજ્ઞાતકર્મા છે એ પ્રમાણે હું કહું છું ॥ સૂ० ૯ ॥

ટીકાર્થ—વનસ્પતિકાયના વિષયમાં પૂર્વોક્ત પ્રકારથી શસ્ત્રનો ઉપયોગ કરવાવાળાને પૂર્વોક્ત (આગળ કહેલા) ત્રણ કરણ-ત્રણ યોગથી થવાવાળી વનસ્પતિની હિંસારૂપ સાવદ્ય વ્યાપાર અજ્ઞાત હોય છે, અર્થાત્ તેને જાણવામાં નથી કે આ વ્યાપારોથી કર્મનો બંધ થાય છે

જે વનસ્પતિકાયના વિષયમાં પૂર્વોક્ત સાવદ્ય વ્યાપારોના જ્ઞાતા હોય છે તે જ્ઞપરિજ્ઞાથી તેને જાણે છે અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી ત્યાગ કરી દે છે

જ્ઞપરિજ્ઞાની પછીજ પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા કેવા પ્રકારે હોય છે તે બતાવે છે-

'तद् परिज्ञाय' इत्यादि। तद्=वनस्पतिकायारम्भणं, परिज्ञाय=कर्मबन्धस्य कारणं मत्वेत्यर्थः, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं वनस्पतिशस्त्रं समारभेत= व्यापारयेत्, अन्यैर्वा नैव वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयेत्, वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत्। शेषं सुगमम्।

यस्यैते वनस्पतिकर्मसमारम्भाः=वनस्पतिं निमित्तीकृत्य कर्मकारणीभूताः सावद्यव्यापाराः परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जितसकलसावद्यव्यापारः, मुनिर्भवति। 'इति ब्रवीमि' इति=एतत्सर्वम्, ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने पञ्चमोद्देशकः संपूर्णः ॥

वनस्पतिकाय के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर हेय-उपादेय का विवेक रखनेवाला बुद्धिमान् पुरुष स्वयं वनस्पतिकाय का आरंभ न करे, दूसरों से आरंभ न कराये और आरंभ करने वालों का अनुमोदन न करे। शेष सब सुगम है। वनस्पतिकाय के आरंभ के निमित्त से होने वाले सावद्य व्यापारों को जिसने ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जान लिया है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है, वह तीन करण तीन योग से समस्त सावद्यों का त्यागी ही मुनि होता है। सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं-हे जम्बू! जैसा भगवान् के समीप मैंने सुना है वैसा ही यह सब मैं कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

॥ श्री आचाराङ्गसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीकाके हिन्दी अनुवाद में प्रथम अध्ययनका पाँचवाँ उद्देश समाप्त ॥ १-५ ॥

વનસ્પતિકાયના આરંભને કર્મબંધનું કારણ જાણીને હેય-ઉપાદેયનો વિવેક રાખવાવાળા બુદ્ધિમાન્ પુરૂષ પોતે વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરતા નથી, બીજા પાસે આરંભ કરાવતા નથી, અને આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપતા નથી. શેષ-બાકી સર્વ સુગમ છે.

વનસ્પતિકાયના આરંભના નિમિત્તથી થવાવાળા સાવદ્ય વ્યાપારોને જેણે જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મબંધનું કારણ જાણી લીધું છે અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી ત્યાગ આપ્યા છે તે ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી સમસ્ત સાવદ્યોના ત્યાગીજ મુનિ હોય છે. સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે-હે જમ્બૂ! જેવું ભગવાનની સમીપ મેં સાંભળ્યું છે; તેવુંજ આ સર્વ હું કહું છું ॥સૂ. ૯॥

શ્રી આચારાંગસૂત્રની 'આચારચિન્તામણિ' ટીકાના ગુજરાતી અનુવાદમાં પ્રથમ અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશક સમાપ્ત ॥૧-૫॥

॥ अथ षष्ठोद्देशः ॥

अनन्तरपञ्चमोद्देशके वनस्पतिकायस्वरूपं निरूपितम् । अधुना क्रमप्राप्त त्रसकायस्वरूपप्रतिबोधनार्थमयं षष्ठ उद्देशकः प्रस्तूयते । इयं हि शैली भगवद्देशनायाः, यद्-वनस्पतिकायानन्तर त्रसकायप्रतिबोधनम्, सर्वस्मिन्नागमे तथैव भगवद्देशनायाः सत्त्वात् । एतत् समीचीनमपि, मनुष्यशरीरदृष्टान्तोपन्यासेन वनस्पतेः सचेतनत्वं साध्यते, तत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तरं मनुष्यस्वरूपं जिज्ञासमानस्य शिष्यस्य प्रतिबोधनाय तस्य त्रसकायान्तर्गतत्वेन त्रसकायोद्देशकथनस्यौचित्यात् । त्रसकाय-स्वरूप वक्तुमनाः श्री सुधर्मास्वामी कथयति-'से बेमि.' इत्यादि ।

छठाउद्देश

पिछले पाँचवें उद्देश में वनस्पतिकाय का स्वरूप निरूपण किया गया है अब क्रम से प्राप्त त्रसकाय का स्वरूप बतलाने के लिए छठा उद्देश कहते हैं ।

भगवान् के उपदेश की यही शैली है कि वनस्पतिकाय के अनन्तर त्रसकाय का स्वरूप समझाया जाता है । तब आगमों में भगवान् का उपदेश इसी प्रकार है । यह ठीक भी है, क्यों कि मनुष्य के शरीर का दृष्टान्त देकर वनस्पति की सचित्तता सिद्ध की है तो वनस्पतिकाय के स्वरूप के पश्चात् मनुष्य का स्वरूप जानने की इच्छा रखने वाले शिष्य के प्रतिबोध के लिए त्रसकाय का स्वरूप समझना चाहिए, क्यों कि मनुष्य भी त्रसकाय के अन्तर्गत है । त्रसकाय का स्वरूप कहने की इच्छा रखने वाले श्री सुधर्मा स्वामी अलग सूत्र कहते हैं:-'से बेमि' इत्यादि ।

छठ्ठो उद्देश—

पाछ्ळना पांचमा उद्देशमा वनस्पतिकायना स्वरूपनु निरूपणु करवामा आव्यु छे. हवे क्रमथी प्राप्त त्रसकायना स्वरूपने बतावना माटे छठ्ठा उद्देशने कहे छे

भगवानना उपदेशनी एज शैली छे के -वनस्पतिकायनी पछी त्रसकायनु स्वरूप समजाववामा आवे छे. सर्व आगमोमा भगवाननो उपदेश आ प्रमाणे छे, अने ते ठीक पण छे, केमके मनुष्यना शरीरनु दृष्टान्त आपीने वनस्पतिनी सचित्तता सिद्ध करी छे, तो वनस्पतिकायना स्वरूप पछी मनुष्यस्वरूप जाणवानी ईच्छा राखवावाळा शिष्यना प्रतिबोध माटे त्रसकायनु स्वरूप समजाववु जोईए, कारणके मनुष्य पण त्रसकायनी अन्तर्गत छे त्रसकायना स्वरूपने कहेवानी ईच्छा राखवावाळा श्री सुधर्मा स्वामी आगळनु सूत्र कहे छे-'से बेमि' ईत्यादि.

मूलम्—

से बेमि संतिमे तसा पाणा, तंजहा-अंडया, पोयया, जराउया, रसया, संसेयया, संमुच्छिमा, उब्भियया, उववाइया, एस संसारेत्ति पवुच्चइ मंदस्स अवियाणओ ॥ सू० १ ॥

छाया—

स ब्रवीमि, सन्तीमे त्रसाः प्राणाः, तद्यथा-अण्डजाः, पोतजाः, जरायुजाः, रसजाः, संस्वेदजाः, संमूर्च्छिमाः (संमूर्च्छनजाः) उद्भिज्जाः, औपपातिकाः (उपपातजाः)। एष संसार इति प्रोच्यते मन्दस्य अविजानतः ॥ सू० १ ॥

टीका—

येन भगवद्वदनारविन्दनिर्गतसकलार्थाः सम्यगवधारिताः, सोऽहं ब्रवीमि= यथा भगवन्मुखाच्छ्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः।

त्रसाः प्राणाः इम सन्तीत्यन्वयः। त्रसाः—त्रस्यन्ति-त्रसनामकर्मोदयात् तापाऽऽद्युपतप्ताच्छायाऽऽदिकं प्रत्यभिसर्पन्तीति त्रसाः=द्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ताः।

मूलार्थ—यह मैं कहता हूँ—ये त्रस प्राणी हैं, जैसे—अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज संस्वेदज, संमूर्छिम उद्भिज्ज और औपपातिक (उपपातज)। मंद एवं अज्ञानी के लिए यह संसार कहा गया है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—जिसने भगवान् के मुखकमल से निकले हुए समस्त जीवादि स्वरूपों को भली भाँति समझ लिया है ऐसा मैं कहता हूँ अर्थात् हे जम्बू! भगवान के मुख से जैसा मैंने सुना है वैसा तुझे कहता हूँ।

त्रसनामकर्म के उदय से ताप आदि से पीड़ित होकर छाया वगैरह की ओर जाने वाले द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते हैं। इन में द्वीन्द्रिय जीव के स्पर्शन

મૂલાર્થ—તે હું કહું છું—આ ત્રસ પ્રાણી છે જેમ—અંડજ પોતજ જરાયુજ રસજ સસ્વેદજ સમૂર્છિમ ઉદ્‌ભિજ અને ઔપપાતિક (ઉપપાતજ) મંદ અને અજ્ઞાનીઓ માટે આ સંસાર કહેવામાં આવ્યો છે. ॥સૂ. ૧॥

ટીકાર્થ—જેણે ભગવાનના મુખકમળથી નીકળેલા સમસ્ત જીવાદિ સ્વરૂપોના અર્થને રૂડી રીતે સમજી લીધા છે એવો હું કહું છું અર્થાત્ હે જમ્બૂ! ભગવાનના મુખથી જેવું મેં સાંભળ્યું છે તેવું જ તને કહું છું

ત્રસનામકર્મના ઉદયથી તાપ વગેરેથી પીડા પામીને છાયા વિગેરેની પાસે જવાવાળા દ્વીન્દ્રિય, (બે ઇન્દ્રિય) જીવથી લઈને પંચ ઇન્દ્રિયવાળા જીવો સુધી સવ ત્રસ

तत्र द्वीन्द्रियाणां स्पर्शनरसनरूपे द्वे इन्द्रिये, त्रीन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राणरूपाणि त्रीणीन्द्रियाणि, चतुरिन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरूपाणि चत्वारीन्द्रियाणि, पञ्चेन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणि पञ्चेन्द्रियाणि सन्ति।

यद्यपि–त्रस्यन्ति=अभिसन्धिपूर्वकमनभिसन्धिपूर्वकं वा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु चलन्तीति व्युत्पत्त्या द्वीन्द्रियादयस्तथाऽग्निकाया वायुकाया अपि त्रसा उच्यन्ते। त्रसानां हि द्वौ भेदौ मुख्यतः स्तः–गतितो लब्धितश्च। तत्र गतिः=क्रिया चलनं, देशान्तरप्राप्तिः; स्वभावतोऽनभिसन्धिपूर्वक–तद्योगादग्निकाया वायुकायाश्च त्रसा भवन्तीति गतित्रसा उच्यन्ते। लब्धिस्तु त्रसनामकर्मोदये सति भवति,

---

और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती हैं। तीनइन्द्रियवालों के स्पर्शन, रसना और घ्राण, ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं। चतुरिन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु, ये चार इन्द्रियाँ होती हैं। पचेन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना घ्राण, चक्षु और श्रोत्ररूप पाँच इन्द्रियाँ होती हैं।

जो जीव इरादापूर्वक या विना ही इरादे के, ऊपर नीचे या तिरछे चलते हैं वे त्रस जीव हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार द्वीन्द्रिय आदि तथा अग्निकाय और वायु भी त्रस कहलाते है। मुख्यरूप से त्रस जीवों के दो भेद है–(१) गतित्रस और (२) लब्धित्रस। गति कहिए अथवा क्रिया, चलना अथवा एक देश से दूसरे देश में पहुँचना कहिए। विना इरादे के यह गतिक्रिया मौजूद होने के कारण अग्निकाय और वायुकाय भी त्रस हैं। उन्हें गतित्रस कहते हैं। त्रसनाकर्म का उदय होने पर लब्धि-

---

કહેવાય છે દ્વીન્દ્રિય જીવોને સ્પર્શન (ચામડી) અને રસના (જીભ) આ બે ઇન્દ્રિયો હોય છે ત્રીન્દ્રિયોને ચામડી, જીભ અને નાસિકા રૂપ ત્રણ ઇન્દ્રિયો હોય છે ચતુરિન્દ્રિય જીવોને ચામડી, જીભ, નાસિકા અને નેત્ર, આ ચાર ઇન્દ્રિયો હોય છે પચેન્દ્રિય જીવોને ચામડી, જીભ, નાસિકા, નેત્ર અને શ્રોત્ર–કાન રૂપ પાચ ઇન્દ્રિયો હોય છે

જે જીવ ઇચ્છાપૂર્વક અથવા ઇચ્છા વિના ઉપર, નીચે અથવા તિરછા ચાલે છે તે ત્રસ જીવ છે આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર દ્વીન્દ્રિય આદિ તથા અગ્નિકાય અને વાયુકાય પણ ત્રસ કહેવાય છે મુખ્યરૂપથી ત્રસ જીવોના બે ભેદ છે–(૧) ગતિત્રસ (૨) લબ્ધિત્રસ ગતિ કહો અથવા ક્રિયા કહો તે એકજ છે ચાલવું અથવા એક દેશથી બીજા દેશમા પહોચવુ કહો વિના ઇચ્છાથી આ ગતિ કરવાની ક્રિયા હાજર હોવાથી અગ્નિકાય અને વાયુકાય પણ ત્રસ છે. તેને ગતિત્રસ કહે છે. ત્રસનામકર્મનો ઉદય હોવાથી લબ્ધિત્રસતા

तद्योगादभिसन्धिपूर्वकदेशान्तरप्राप्तिलक्षणक्रियायुक्तत्वात् द्वीन्द्रियादय एव लब्धित्रसा उच्यन्ते । तेजोवायवः किल न त्रसनामकर्मोदयनिर्वृत्ता', किन्तु स्थावरनामकर्मोदयनिर्वृत्तत्वाल्लब्धित स्थावरा एव; तथाप्यत्र द्वीन्द्रियादयो लब्धित्रसा एव परिगृह्यन्ते, न तु गतित्रसाः, अग्निकायानां प्रागेव चतुर्थोद्देशे प्रतिबोधितत्वात्, वायुकायानामग्रे वक्ष्यमाणत्वाच्च ।

यत्तु "लब्ध्या तेजोवायू त्रसौ, लब्धिस्तच्छक्तिमात्र लब्धित्रसानामिहाधिकारो नास्ति, तेजसोऽभिहितत्वात् वायोरभिधास्यमानत्वात्, अत सामर्थ्यात् गतित्रसा एवाधिक्रियन्ते" इति केश्चिदुक्तं, तत् प्रमादिकम्,

---

त्रसता प्राप्त होती है। इस लब्धि से इरादापूर्वक गतिक्रिया द्वीन्द्रिय आदि में ही पाई जाती है, अत एव उन्हें लब्धित्रस कहते हैं। तेजस्काय और वायुकाय में त्रसनाम-कर्म का उदय नहीं होता। उन में स्थावरनामकर्म का उदय है, अत लब्धि की अपेक्षा वे दोनों स्थावर ही है। फिर भी यहाँ द्वीन्द्रिय आदि लब्धित्रस जीवों का ग्रहण करना चाहिए, गतित्रस जीवों का नहीं, क्यों कि अग्निकायिक जीवों का चौथे उद्देश में पहले ही वर्णन किया जा चुका है और वायुकाय का आगे वर्णन किया जायगा।

किसी ने कहा है—'लब्धि की अपेक्षा तेजस्काय और वायुकाय त्रस हैं। लब्धि सिर्फ शक्ति को ही कहते हैं। यहाँ लब्धित्रस जीवों का प्रकरण नहीं है, क्यों कि अग्निकाय का कथन किया जा चुका है और वायुकाय का कथन आगे किया जायगा अतः सामर्थ्य से गतित्रस ही यहाँ ग्रहण करने योग्य हैं"। यह कथन प्रमादपूर्ण है,

---

પ્રાપ્ત છે એ લબ્ધિથી ઇચ્છાપૂર્વક ગતિ કરવાની ક્રિયા દ્વીન્દ્રિયાદિમાંજ જોવામાં આવે છે એ કારણ માટે તેને લબ્ધિત્રસ કહે છે તેજસ્કાય અને વાયુકાયમાં ત્રસનામકર્મનો ઉદય નથી; તેનામાં સ્થાવરનામકર્મનો ઉદય છે તેથી લબ્ધિની અપેક્ષાએ એ બન્ને સ્થાવર જ છે કરીને પણ અહિ દ્વીન્દ્રિય આદિ લબ્ધિત્રસ જીવોનુ જ ગ્રહણ કરવું જોઈએ, ગતિત્રસ જીવોનુ નહિ. કારણકે અગ્નિકાયિક જીવોનુ ચોથા ઉદ્દેશકમાં પ્રથમ વર્ણન કરવામાં આવી ગયું છે અને વાયુકાયનુ આગળ ઉપર વર્ણન કરવામાં આવશે.

કોઇએ કહ્યું છે– લબ્ધિની અપેક્ષા તેજસ્કાય અને વાયુકાય ત્રસ છે; લબ્ધિ, માત્ર શક્તિનેજ કહે છે અહિ લબ્ધિત્રસ જીવોનુ પ્રકરણ નથી. કારણકે અગ્નિકાયનુ વિવેચન તો કરી દેવામાં આવ્યું છે અને વાયુકાયનુ વિવેચન આગળ કરવામાં આવશે. તેથી સામર્થ્યથી ગતિત્રસનુ જ અહિ ગ્રહણ કરવું યોગ્ય છે" આ કથન પ્રમાદપૂર્ણ છે

लब्धित्रसानां गतित्रसत्वेनाङ्गीकारात्। गतित्रसानां लब्धित्रसत्वाभावात्, द्वीन्द्रियादीनां गतित्रसत्वेन शास्त्रेऽनङ्गीकाराच्च ।

प्राणाः=प्राणिनः, इमे=प्रत्यक्षतोऽवगम्याः, यद्वा-वक्ष्यमाणप्रकारकाः सन्ति । ते यथा-(१) अण्डजाः=अण्डाज्जाताः-पक्षिगृहकोकिलादयः, (२) पोतजाः=पोता एव जायन्त इति पोतजाः-हस्तिवल्गुलीचर्मजलूकादयः, (३) जरायुजाः=जरायुर्गर्भवेष्टनचर्म, तत्र जाताः-गोमहिष्यजा, विकमनुष्यादयः, (४) रसजाः=विकृतरसाज्जाताः, (५) संस्वेदजाः=सम्वेदाज्जाताः-मत्कुणयूकादयः, (६) संमूर्छिमाः=समूर्छनजाः मक्षिकापिपीलिकाशलभादयः, (७) उद्भिज्जाः=उद्भेदनम् उद्भित्, तस्माज्जाताः-पतङ्गखञ्जरीटादयः, (८) औपपातिकाः=उपपाते भवाः देवानार-

---

क्यों कि लब्धित्रसों को गतित्रसरूप में अगीकार किया गया है। मगर गतित्रस लब्धित्रस नहीं हो सकते। द्वीन्द्रिय आदि में गति का सद्भाव है अत' शास्त्र में ऐसा अगीकार नहीं किया गया।

त्रस प्राणी इस प्रकार हैं-(१) अण्डज-अडों से उत्पन्न होने वाले पक्षी, गृहकोकिला आदि। (२) पोतज-पोतरूप पैदा होने वाले हाथी, वल्गुली, चर्मजलू आदि। (३) जरायुज-गर्भ जिस से लिपटा रहता है वह पतली चमडी जरायु कहलाती है, उस से उत्पन्न होने वाले गाय, भैंस, बकरी, मनुष्य आदि जरायुज कहलाते हैं। (४) रसज-विकृत रस में पैदा हो जाने वाले, (५) सस्वेदज-पसीने से पैदा होने वाले खटमल, जू आदि। (६) समूर्च्छिम-मक्खी, कीडी, शलभ आदि। (७) उद्भिज-उद्भेदन से उत्पन्न होने वाले पतग, खजरीट आदि। (८) औपपातिक-देव और नारकी।

કારણ કે લબ્ધિત્રસોને ગતિત્રસના રૂપમા અ ગીકાર કરવામા આવ્યો છે, પરન્તુ ગતિત્રસ લબ્ધિત્રસ થઈ શકતા નથી દ્વીન્દ્રિય આદિમા ગતિનો સદ્ભાવ છે, તેથી શાસ્ત્રમા એ પ્રમાણે અ ગીકાર કરવામાં આવ્યો નથી

ત્રસ પ્રાણી આ પ્રમાણે છે-(૧) અ ડજ-ઇંડાથી ઉત્પન્ન થવાવાળા પક્ષી, ગૃહ-કોકિલા (ગરોળી) આદિ. (૨) પોતજ-પોતરૂપ પેદા થવાવાળા હાથી, વલ્ગુલી, ચર્મ-જલૂક (જળો) આદિ (૩) જરાયુજ-ગર્ભ જેનાથી વિંટાએલુ રહે તે પાતળી ચામડી જરાયુ કહેવાય છે તેમા ઉત્પન્ન થવાવાળા ગાય, ભેસ, બકરી, મનુષ્ય આદિ જરાયુજ કહેવાય છે (૪) રસજ-વિકૃતરસમા પેદા થવાવાળા (૫) સ સ્વેદજ-પરસેવાથી પેદા થવાવાળા માકડ, જૂ આદિ (૬) સ મૂર્છિમ-માખી, કીડી, તીડ આદિ (૭) ઉદ્ભિજ્જ-ઉદ્ભેદનથી ઉત્પન્ન થવાવાળા પત ગ, ખ જરીટ આદિ (૮) ઔપપાતિક-દેવ અને નારકી

इह सर्वेषां त्रसजीवानामष्टविधं जन्म प्रतिबोधितम्, एतदेव संमूर्च्छनगर्भोपपातेषु समावेश्य त्रिविधं जन्मेत्यपि शास्त्रेऽभिहितम्। सन्तीत्यनेन त्रसानामप्यस्तित्वं त्रिकालवर्तीति बोध्यते। मन्दस्य=कुशास्त्रवासनासमायुक्तस्य, अत एव-अविज्ञानतया हिताहितविवेकरहितस्य एषः=अण्डजादिसमुदायः संसारः प्रोच्यते, अष्टविधत्रसकाये कुशास्त्रवासनावतः पुनः पुनरुत्पत्तिरूपं संसरणं भवतीति स एषः संसारो निगद्यत इत्यर्थः।

अथ त्रसकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं लक्षणाद्यष्टद्वाराणि निरूपणीयानि। तत्र लक्षण-प्ररूपणा-परिमाण-शस्त्रो-पभोग-वेदना-द्वाराणि यथाक्रमं प्रदर्श्यन्ते, अव-शिष्ट-वध-निवृत्ति-द्वारद्वयं पृथिवीकायोद्देशे यथाऽभिहितं तथैवावगन्तव्यम्।

यहाँ सभी त्रस जीवों का आठ प्रकार का जन्म बतलाया गया है। इसे संमूर्छन, गर्भ और उपपात में समाविष्ट कर देने से तीन प्रकार का जन्म शास्त्र में बतलाया है। 'संति' इस पद द्वारा त्रस जीवों का त्रिकालवर्ती अस्तित्व सूचित किया गया है। मन्द अर्थात् मिथ्याशास्त्रों के संस्कार से प्रभावित अत एव हित-अहित के विवेक से शून्य पुरुष के लिए अण्डज आदि का समूहरूप संसार कहा गया है। आठ प्रकार के त्रसकाय में मिथ्याशास्त्रों के संस्कार वाले का पुनः पुनः जन्म-मरणरूप संसरण होता है। वही संसरण संसार कहलाता है।

त्रसकाय का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए लक्षण आदि आठ द्वारों का निरूपण करना चाहिए। उन में से लक्षण प्ररूपणा परिमाण शस्त्र उपभोग और वेदना द्वार क्रम से बतलाते हैं। वध और निवृत्ति द्वार जैसे पृथ्वीकाय के उद्देश में कहे हैं वैसे ही यहाँ समझ लेने चाहिए।

અહિં સર્વ ત્રસ જીવોનો આઠ પ્રકારનો જન્મ બતાવ્યો છે તેને સંમૂર્છન, ગર્ભ અને ઉપપાતમાં સમાવેશ કરી દેવાથી ત્રણ પ્રકારનો જન્મ શાસ્ત્રમાં બતાવ્યો છે 'સંતિ' આ પદ દ્વારા ત્રસ જીવોનું ત્રિકાલવર્તી અસ્તિત્વ સૂચિત કરવામાં આવ્યુ છે. મંદ અર્થાત્ મિથ્યાશાસ્ત્રોના સંસ્કારથી પ્રભાવિત, એવં હિત અહિતના વિવેકથી શૂન્ય પુરૂષ માટે અંડજ આદિના સમૂહરૂપ સંસાર કહેવામાં આવ્યો છે આઠ પ્રકારના ત્રસકાયમાં મિથ્યાશાસ્ત્રોના સંસ્કારવાળાઓનું પુનઃ પુનઃ જન્મ-મરણ રૂપ સંસરણ થાય છે એજ સંસરણ તે સંસાર કહેવાય છે

ત્રસકાયનું સાચું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે લક્ષણ આદિ આઠ દ્વારોનું નિરૂપણ કરવું જોઈએ તેમાંથી લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર ઉપભોગ અને વેદના દ્વાર ક્રમથી બતાવે છે, વધ અને નિવૃત્તિ દ્વાર જેવી રીતે પૃથ્વીકાયના ઉદ્દેશમાં કહ્યાં છે તેવી રીતેજ અહિં સમજી લેવા જોઈએ.

लक्षणद्वारम्—

सुखदुःखेच्छाद्वेषादिकं चेतनलक्षणं त्रसकाये परिस्पष्टमस्ति। अस्य सचेतनत्वे विवादो नास्ति केषाञ्चित् अस्य व्यक्तोच्छ्वासादिलक्षणप्राणयोगात्। अपरञ्च—

त्रसकायस्य लक्षणं शास्त्रे नवविधं मज्ञप्तम् यथा-(१) अभिक्रमणम्, (२) प्रतिक्रमणम्, (३) संकोचनम्, (४) प्रसारणम्, (५) रुतम्, (६) भ्रमणम्, (७) त्रसनम्, (८) पलायनम्, (९) आगतिगतिविज्ञानम्, इति॥

अभिक्रमणं=प्रज्ञापकं प्रत्यभिमुखं क्रमणम्, प्रतिक्रमणं=प्रज्ञापकात् प्रतिकूलं क्रमणम्। संकोचनम्=गात्रसंकोचकरणम्, प्रसारणं=गात्रविततकरणम्,

---

लक्षणद्वार—

सुख, दुःख, इच्छा और द्वेष आदि चेतना के लक्षण त्रसकाय में स्पष्ट मालूम होते है। इस की सचेतनता में किसी को भी विवाद नहीं है। प्रकट उच्छ्वास आदि प्राण होने के कारण त्रस जीव प्राणी हैं।

शास्त्र में त्रसकाय का लक्षण नव प्रकार से बतलाया गया है। जैसे-(१) अभिक्रमण (२) प्रतिक्रमण (३) संकोचन (४) प्रसारण (५) रुत (६) भ्रमण (७) त्रसन–त्रास पाना (८) पलायन–भागना और (९) गति–आगति का ज्ञान। प्रज्ञापक की अपेक्षा से सामने जाना अभिक्रमण है। प्रज्ञापक की अपेक्षा से प्रतिकूल जाना–पीछे लौटना प्रतिक्रमण है। शरीर को सिकोडना संकोचन है। शरीर को फैलाना

લક્ષણદ્વાર—

સુખ, દુ:ખ, ઇચ્છા અને દ્વેષ આદિ ચેતનાનું લક્ષણ ત્રસકાયમાં સ્પષ્ટ માલૂમ પડે છે, તેની ચેતનતામાં કોઈને પણ વિવાદ–વાંધો નથી પ્રગટ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણ હોવાના કારણથી ત્રસ જીવ પ્રાણી છે

શાસ્ત્રમાં ત્રસકાયના લક્ષણો અનેક પ્રકારે બતાવવામાં આવ્યા છે જેમકે-(૧) અભિક્રમણ, (૨) પ્રતિક્રમણ, (૩) સંકોચન, (૪) પ્રસારણ, (૫) રૂત, (૬) ભ્રમણ, (૭) ત્રસન–ત્રાસ પામવો, (૮) પલાયન–ભાગવું અને (૯) ગતિ–આગતિનું જ્ઞાન પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી સામે જવું તે અભિક્રમણ છે પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી પ્રતિકૂલ જવું–પાછા ફરવું તે પ્રતિક્રમણ છે. શરીરને સંકોડવું તે સંકોચન છે શરીરને ફેલાવવું તે પ્રસારણ છે

रुतं=शब्दकरणम्, भ्रान्तम्=इतस्ततः गमनम्, त्रसनम्=दुःखादुद्वेजनम्, पलायितम्=पलायनम्, आगतेः कुतश्चित्क्वचित्, गतेश्च कुतश्चित् क्वचिदेव च विज्ञानम्। उक्तञ्चैतद्भगवता दशवैकालिकसूत्रे —

"जेसिं केसिंचि पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं आगइगइविण्णाया" ॥ १ ॥ इति।

प्ररूपणाद्वारम्—

त्रसकायाश्चतुर्विधाः—द्वीन्द्रिय - त्रीन्द्रिय - चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियभेदात् । इहैव प्रथमोद्देशके लोकवादिप्रकरणे त्रसानां भेदप्रभेदाः प्ररूपिताः। विस्तरतो

प्रसारण है। बोलना रुत कहलाता है। इधर-उधर जाना भ्रमण है। दुःख से उद्वेग पाना त्रसन है। भागने को पलायन कहते हैं। एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने का विज्ञान आगतिगतिविज्ञान कहलाता है।

भगवान् ने दशवैकालिक सूत्र में कहा है —

"जिन किन्हीं प्राणियों में अभिक्रमण, संकोचन, प्रसारण, रुत, भ्रमण, त्रसन, पलायन और आगतिगतिका विज्ञान (पाया जाता है वे सब त्रस जीव हैं।)"

प्ररूपणाद्वार—

त्रसकाय के चार भेद हैं-द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इसी शास्त्र के पहले उद्देश के अन्दर लोकवादी प्रकरण में त्रस जीवों के भेद-प्रभेद कहे हैं। विस्तार से जानने के इच्छुक वहीं से जान लेवें। इस सूत्र में भगवान् ने

બોલવું તે રૂત કહેવાય છે અહીં-તહીં જવું તે ભ્રમણ છે. દુઃખથી ઉદ્વેગ પામવું તે ત્રસન છે ભાગવું તેને પલાયન કહે છે એક જગ્યાથી બીજી જગ્યાએ આવવા-જવાનું વિજ્ઞાન તે આગતિગતિવિજ્ઞાન કહેવાય છે

ભગવાને દશવૈકાલિક સૂત્રમાં કહ્યું છે—

"જે કોઈ પ્રાણીઓમાં અભિક્રમણ, પ્રતિક્રમણ, સંકોચન, પ્રસારણ, રુત ભ્રમણ, ત્રસન, પલાયન અને આગતિ-ગતિનું વિજ્ઞાન (જોવામાં આવે છે તે સર્વ ત્રસ જીવ છે)"

પ્રરૂપણાદ્વાર—

ત્રસ કાયના ચાર ભેદ છે-દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય. આજ શાસ્ત્રના પ્રથમના ઉદ્દેશમાં લોકવાદીપ્રકરણમાં ત્રસજીવોના ભેદ-પ્રભેદ બતાવ્યા છે, વિસ્તારથી

लक्षणद्वारम्—

सुखदुःखेच्छाद्वेषादिकं चेतनलक्षणं त्रसकाये परिस्पष्टमस्ति। अस्य सचेतनत्वे विवादा नास्ति केषाञ्चित् अस्य व्यक्तोच्छ्वासादिलक्षणप्राणयोगात्। अपरञ्च—

त्रसकायस्य लक्षणं शास्त्रे नवविध प्रज्ञप्तम् यथा-(१) अभिक्रमणम्, (२) प्रतिक्रमणम्, (३) सकोचनम्, (४) प्रसारणम्, (५) रुतम्, (६) भ्रमणम्, (७) त्रसनम्, (८) पलायनम्, (९) आगतिगतिविज्ञानम्, इति ॥

अभिक्रमणं=प्रज्ञापकं प्रत्यभिमुखं क्रमणम्, प्रतिक्रमणं=प्रज्ञापकात् प्रतिकूलं क्रमणम्। सकोचनम्=गात्रसंकोचकरणम्, प्रसारणं=गात्रविततकरणम्,

---

लक्षणद्वार—

सुख, दु ख, इच्छा और द्वेष आदि चेतना के लक्षण त्रसकाय में स्पष्ट मालूम होते है। इस की सचेतनता में किसी को भी विवाद नहीं है। प्रकट उच्छ्वास आदि प्राण होने के कारण त्रस जीव प्राणी हैं।

शास्त्र में त्रसकाय का लक्षण नव प्रकार से बतलाया गया है। जैसे—(१) अभिक्रमण (२) प्रतिक्रमण (३) सकोंचन (४) प्रसारण (५) रुत (६) भ्रमण (७) त्रसन–त्रास पाना (८) पलायन–भागना और (९) गति–आगति का ज्ञान। प्रज्ञापक की अपेक्षा से सामने जाना अभिक्रमण है। प्रज्ञापक की अपेक्षा से प्रतिकूल जाना–पीछे लौटना प्रतिक्रमण है। शरीर को सिकोडना संकोचन है। शरीर को फैलाना

લક્ષણદ્વાર—

સુખ, દુ ખ, ઇચ્છા અને દ્વેષ આદિ ચેતનાનુ લક્ષણ ત્રસકાયમા સ્પષ્ટ માલૂમ પડે છે, તેની ચેતનતામા કોઈને પણ વિવાદ–વાધો નથી પ્રગટ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણ હોવાના કારણથી ત્રસ જીવ પ્રાણી છે

શાસ્ત્રમા ત્રસકાયના લક્ષણો અનેક પ્રકારે બતાવવામા આવ્યા છે જેમકે—(૧) અભિક્રમણ, (૨) પ્રતિક્રમણ, (૩) સ કોચન, (૪) પ્રસારણ, (૫) રૂત, (૬) ભ્રમણ, (૭) ત્રસન–ત્રાસ પામવો, (૮) પલાયન–ભાગવુ અને (૯) ગતિ–આગતિનુ જ્ઞાન પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી સામે જવું તે અભિક્રમણ છે પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી પ્રતિકૂલ જવું–પાછા ફરવુ તે પ્રતિક્રમણ છે શરીરને સ કોડવુ તે સ કોચન છે શરીરને ફેલાવવુ તે પ્રસારણ છે

रुतं=अव्यक्तरणम्, भ्रान्तम्=इतश्चेतश्च गमनम्, त्रसनम्=दुःखादुद्वेजनम्, पलायितम्=पलायनम्, आगतेः कुतश्चित्क्वचित्, गतेश्च कुतश्चित् क्वचिदेव च विज्ञानम्। तदुक्तमेवमुक्तं भगवता दशवैकालिकसूत्रे -

"जेसिं केसिंचि पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं आगइगइविण्णाया" ॥ १ ॥ इति।

प्ररूपणाद्वारम्—

त्रसकायाश्चतुर्विधाः—द्वीन्द्रिय – त्रीन्द्रिय – चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियभेदात्। इहैव प्रथमोद्देशके लोकवादिप्रकरणे त्रसानां भेदप्रभेदाः प्ररूपिताः। विस्तरतो

प्रसारण है। बोलना रुत कहलाता है। इधर-उधर जाना भ्रमण है। दुःख से उद्वेग पाना त्रसन है। भागने को पलायन कहते हैं। एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने का विज्ञान आगतिगतिविज्ञान कहलाता है।

भगवान् ने दशवैकालिक सूत्र में कहा है —

"जिन किन्हीं प्राणियों में अभिक्रमण, संकोचन, प्रसारण, रुत, भ्रमण त्रसन, पलायन और आगतिगतिका विज्ञान (पाया जाता है वे सब त्रस जीव हैं।)"

प्ररूपणाद्वार—

त्रसकाय के चार भेद हैं—द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इसी शास्त्र के पहले उद्देश के अन्तर लोकवादी प्रकरण में त्रस जीवों के भेद-प्रभेद कहे हैं। विस्तार से जानने के इच्छुक वहीं से जान लेवें। इस सूत्र में भगवान् ने

બોલવુ તે રુત કહેવાય છે અહીં-તહીં જવુ તે ભ્રમણ છે દુઃખથી ઉદ્વેગ પામવુ તે ત્રસન છે ભાગવુ તેને પલાયન કહે છે એક જગ્યાથી બીજી જગ્યાએ આવવા-જવાનું વિજ્ઞાન તે આગતિગતિવિજ્ઞાન કહેવાય છે.

ભગવાને દશવૈકાલિક સૂત્રમાં કહ્યું છે:-

"જે કોઈ પ્રાણીઓમાં અભિક્રમણ, પ્રતિક્રમણ, સંકોચન, પ્રસારણ, રુત ભ્રમણ, ત્રસન, પલાયન અને આગતિ-ગતિનું વિજ્ઞાન (જોવામાં આવે છે તે સર્વ ત્રસ જીવ છે)"

પ્રરૂપણાદ્વાર—

ત્રસ કાયના ચાર ભેદ છે-દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય. આ શાસ્ત્રના પ્રથમના ઉદ્દેશમાં લોકવાદીપ્રકરણમાં ત્રસજીવોના ભેદ-પ્રભેદ બતાવ્યા છે, વિસ્તારથી

जिज्ञासुभिस्तत एवावगन्तव्याः । अस्मिन् सूत्रेऽपि भगवता-अण्डजपोतजादिभेदाः प्रदर्शितास्तेऽपि तत्रैव समाविष्टाः ॥

परिमाणद्वारम्—

क्षेत्रतः सवर्तितलोकप्रतरासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः त्रसकायपर्याप्तकाः । एते च बादरतेजस्कायपर्याप्तकेभ्योऽसंख्येयगुणाः, त्रसकायपर्याप्तकेभ्यस्त्रसकायिकाऽपर्याप्तकाः असंख्येयगुणाः ।

तथा कालतः प्रत्युत्पन्नत्रसकायिकाः सागरोपमलक्षपृथक्त्वसमयराशिपरिमाणा जघन्यपदे, उत्कृष्टपदेऽपि सागरोपमलक्षपृथक्त्वपरिमाणा एवेति । तथा चागमः—

अण्डज और पोतज आदि जो भेद बतलाये हैं, ये सब भी उन्हीं में अन्तर्गत हो जाते हैं ।

परिमाणद्वार-

त्रसकाय के पर्याप्त जीव क्षेत्र की अपेक्षा सवर्तित लोकप्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों की राशि के बराबर हैं । ये बादर तेजस्काय पर्याप्त जीवों से असंख्यातगुणा हैं । पर्याप्त त्रसकायिक जीवों की अपेक्षा अपर्याप्त त्रस जीव असंख्यातगुणा हैं । काल की अपेक्षा जघन्यपद में प्रत्युत्पन्न त्रस जीव एक लाख से नौ लाख तक के सागरोपम की समय-राशि के बराबर है और उत्कृष्ट पद में भी एक लाख से नौ लाख तक के सागरोपम की समयराशि के बराबर ही हैं । आगम में भी कहा है—

જાણવાની ઇચ્છાવાળા ત્યાંથી જાણી લે આ સૂત્રમાં ભગવાને-અંડજ અને પોતજ આદિના જે ભેદ બતાવ્યા છે, તે સર્વનો તેમાં સમાવેશ થઈ જાય છે.

પરિમાણદ્વાર—

ત્રસકાયના પર્યાપ્તજીવ ક્ષેત્રની અપેક્ષા સવર્તિત લોકપ્રતરના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની રાશિના બરાબર છે તે બાદર તેજસ્કાય પર્યાપ્ત જીવોથી અસંખ્યાત ગણા છે પર્યાપ્ત ત્રસકાયિક જીવોની અપેક્ષા અપર્યાપ્ત ત્રસજીવ અસંખ્યાત ગણા છે

કાલની અપેક્ષા જઘન્યપદમાં પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસજીવ એકલાખ થી નવલાખ સુધીના સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર છે. અને ઉત્કૃષ્ટ પદમા પણ એક લાખથી નવલાખ સુધીના સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર જ છે આગમમા પણ કહ્યું છે -

"पडुप्पन्ना तसकाइया केवइकालस्स निल्लेवा सिया ? गोयमा ! जहण्णपए सागरोवमसयसहस्सपुहुत्तस्स, उक्कोसपए वि सागरोवमसयसहस्सपुहुत्तस्स" ॥ इति ।

विरहापेक्षया त्रसानां निष्क्रमणमुपपातश्च जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा भवन्ति, उत्कृष्टतस्तु प्रतरस्यासंख्येयभागभवप्रदेशपरिमाणाः । त्रसपु जीवानां नैरन्तर्येणोत्पत्तिर्निष्क्रमो वा जघन्यतेन समयं द्वौ समयौ त्रीन् वा समयान् भवति । उत्कृष्टतस्त्वावलिकाया असंख्येयभागपरिमितं कालं सततं मेवोत्पत्तिर्निष्क्रमो वा भवति । नैरन्तर्येणैकजीवस्यावस्थानं तु जघन्यतोऽन्त र्मुहूर्तं त्रसकाये भवति, तदनु स पृथिव्याद्येकेन्द्रियेषु समुत्पद्यते । उत्कृष्टतः सातिरेकं सागरोपमसहस्रद्वयं सततं नैरन्तर्येण त्रसकाये तिष्ठति । तत

"प्रत्युत्पन्न त्रसकायिक जीव कितने काल के बराबर हैं ? गौतम ! जघन्य पद में एक लाख से नौ लाख तक के सागरोपम के बराबर और उत्कृष्ट पद में भी इतने ही हैं"।

विरह की अपेक्षा त्रस जीवों का निष्क्रमण और उपपात जघन्य एक, दो या तीन है और उत्कृष्ट प्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर है । त्रसकाय में जीवों की निरन्तर उत्पत्ति या च्यवन जघन्य एक समय, दो समय, तीन समयतक है । उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग परिमित काल तक निरन्तर उत्पत्ति और च्यवन होता रहता है । निरन्तर एक जीव की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक त्रसकाय में होती है और उसके बाद वह पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय में उत्पन्न होता है । उत्कृष्ट कुछ अधिक दो हजार सागरोपमतक निरन्तर त्रसकाय में ठहर सकता है । तत्पश्चात्

"प्रत्युत्पन्न त्रसकायिक જીવ કેટલા કાળની બરાબર છે ? ગૌતમ ! જઘન્ય પદમાં એક લાખથી નવલાખ સુધીના સાગરોપમની બરાબર અને ઉત્કૃષ્ટ પદમાં પણ એટલા જ છે"

વિરહની અપેક્ષા ત્રસ જીવોનું નિષ્ક્રમણ અને ઉપપાત જઘન્ય એક, બે અથવા ત્રણ છે અને ઉત્કૃષ્ટ પ્રતરના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની બરાબર છે ત્રસકાયમાં જીવોની નિરંતર ઉત્પત્તિ અથવા નિષ્ક્રમણ (ચ્યવન) જઘન્ય એક સમય બે સમય અથવા ત્રણ સમય સુધી છે ઉત્કૃષ્ટ આવલિકાના અસંખ્યતમા ભાગ પરિમિત કાળ સુધી નિરંતર ઉત્પત્તિ અને નિષ્ક્રમણ (નીકળવું) થતું રહે છે નિરંતર એક જીવની સ્થિતિ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત સુધી ત્રસકાયમાં રહે છે અને તે પછી તે પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિયમાં ઉત્પન્ન થાય છે ઉત્કૃષ્ટ કાંઈક અધિક બે હજાર સાગરોપમ સુધી

पृथिव्यादिपूत्पद्यते । ॥ सू० १ ॥

त्रसजीवाना सुख दुःख वा यथा भवति तदाह—'निज्झाइत्ता' इत्यादि ।

मूलम्—

निज्झाइत्ता पडिलेहित्ता पत्तेयं परिनिव्वाणं सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं असाय अपरिनिव्वाणं महब्भयं दुक्खं-त्ति बेमि ॥ सू० २ ॥

छाया—

निध्याय प्रतिलेख्य प्रत्येक परिनिर्वाणं सर्वेषां प्राणाना सर्वेषा भूतानां सर्वेषा जीवाना सर्वेषां सत्त्वानाम् असातम् अपरिनिर्वाणं महाभय दुःखमिति ब्रवीमि ॥ सू० २ ॥

प्रकरणसम्बन्धात् त्रसजीवस्वरूपं पृथिव्यादिसकलजीवस्वरूप वा

पृथ्वीकाय आदि स्थावरों में उत्पन्न होता है ॥ सू० १ ॥

त्रसजीवों को सुख-दु ख जिस प्रकार होता है सो कहते हैं:—'निज्झाइत्ता.' इत्यादि ।

मूलार्थ—विचार करके और अच्छी तरह देखकर कहता हूँ कि-सभी प्राणियों का, सभी भूतों का, सभी जीवों का, और सभी सत्वों का परिनिर्वाण अर्थात् सुख पृथक्-पृथक् है । तथा असातारूप, अपरिनिर्वाणरूप महाभयरूप दु ख भी पृथक्-पृथक् है । ॥ सू० २ ॥

टीकार्थ—त्रस जीवों का प्रकरण होने के कारण 'विचार करने' का आशय यह है कि त्रसजीवों का स्वरूप, अथवा पृथ्वीकाय आदि समस्त जीवों का

નિરંતર ત્રસકાયમાં રહી શકે છે, તે પછી પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોમાં ઉત્પન્ન થાય છે. ॥સૂ૦ ૧॥

ત્રસ જીવોને સુખ-દુઃખ જે પ્રકારે થાય છે, તે કહે છે—'निज्झाइत्ता' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—વિચાર કરીને સારી રીતે જોઈને કહું છું કે-સર્વ પ્રાણીઓ સર્વ-ભૂતો, સર્વ જીવો અને સર્વ સત્ત્વોનુ પરિનિર્વાણ અર્થાત્ સુખ પૃથક્-પૃથક્-જૂદા-જૂદા છે, તથા અસાતારૂપ અપરિનિર્વાણરુપ મહાભયરૂપ દુઃખ પણ જૂદા-જૂદા છે ॥સૂ૦ ૨॥

ટીકાર્થ—ત્રસજીવોનુ પ્રકરણ હોવાના કારણે ત્રસજીવોનું સ્વરૂપ અથવા પૃથ્વીકાય

निध्याय=मनसा समालोच्य, प्रतिलेख्य=विमोक्य सम्यग् विज्ञायेत्यर्थः, ब्रवीमि=कथयामि-सर्वेषां प्राणानां=प्राणाः सन्ति येषां ते प्राणाः=प्राणिनस्तेषां सर्वेषां भूतानाम्=उत्पत्तिशीलानाम्, सर्वेषां जीवानां=कालत्रये जीवनात् चैतन्यस्वरूपाणामित्यर्थः, सर्वेषां सत्त्वानां=सदाऽस्तित्ववताम् त्रसजीवानाम्, यद्वा-सर्वेषामित्यस्य पुनः पुनरुपादानेन स्थावरा अपि गृह्यन्ते, तेन त्रसानां स्थावराणां च जीवानामित्यर्थः। परिनिर्वाणं=सुखं, प्रत्येकम्=एकैकं पृथक् पृथगस्ति।

शब्दव्युत्पत्त्या विभिन्नार्थबोधकत्वात् प्राणभूतादिशब्दानामुच्चारणे न पुनरुक्तिदोषः। 'निज्झाइत्ता' 'पडिलेहित्ता' इति पदद्वयेन जीवानां पुनः पुनरनुसन्धानं प्रतिलेखनं च सूचितम्, तदेव पुनः पुनर्विधेयतया प्रतिबोधनाय

स्वरूप मन से विचार करके तथा सम्यक् प्रकार से जानकर कहता हूँ। सभी प्राणियों का सभी भूतों अर्थात् उत्पत्तिशील जीवों का सभी जीवों (त्रिकाल में जीवित रहने वालों) का और सभी सत्त्वों (सदा अस्तित्व वाले त्रस जीवों) का, अथवा बार-बार 'सव्वेसिं' पद का प्रयोग करने के कारण यह अर्थ लेना चाहिए कि-सभी त्रस और स्थावर जीवों का सुख पृथक्-पृथक् है।

शब्दशास्त्र की दृष्टि से भिन्न-भिन्न अर्थ के बोधक प्राण, भूत आदि शब्दों का उच्चारण करने पर भी पुनरुक्ति दोष नहीं है। अथवा प्राण भूत आदि शब्दों को एक ही अर्थ का वाचक मान लिया जाय तो भी पुनरुक्तिदोष नहीं है। 'निज्झाइत्ता' 'पडिलेहित्ता' इन दो पदों द्वारा जीवों का पुन: पुन: विचार एवं प्रतिलेखन सूचित किया है। उसी को पुनः पुनः विधेयरूप से समझाने के लिए

આદિ સમસ્ત જીવોનું સ્વરૂપ મનથી વિચાર કરીને તથા સમ્યક્ પ્રકારે જાણીને કહું છું-સર્વ પ્રાણીઓનું સર્વ ભૂતોનું અર્થાત્ ઉત્પત્તિશીલ જીવોનું સર્વ જીવો (ત્રણ કાલ જીવિત રહેવાવાળા)નું અને સર્વ સત્ત્વો-(સર્વદા અસ્તિત્વવાળા ત્રસ જીવો)નું અથવા વારંવાર 'सव्वेसिं' પદનો પ્રયોગ કરવાના કારણે એ અર્થ લેવો જોઈએ કે-સર્વ ત્રસ અને સ્થાવર જીવોનું સુખ પૃથક્-પૃથક્ છે.

શબ્દશાસ્ત્રની દૃષ્ટિથી ભિન્ન-ભિન્ન અર્થના બોધક પ્રાણ-ભૂત આદિ શબ્દોનું ઉચ્ચારણ કરવાથી પણ પુનરુક્તિ દોષ આવતો નથી અથવા પ્રાણભૂત આદિ શબ્દોને એકજ અર્થના વાચક માની લેવામાં આવે તો પણ પુનરુક્તિદોષ નથી. 'निज्झाइत्ता' 'पडिलेहित्ता' આ બે પદો દ્વારા જીવોનો પુનઃ પુનઃ વિચાર અર્થાત્ પ્રતિલેખન સૂચિત કર્યું છે. તેને પુનઃ પુનઃ

मनेकपर्यायशब्दैस्तेषामुपादानात् ।

तथा सर्वेषां दुःखं प्रत्येकं पृथक् पृथगस्ति । कथम्भूतं दुःखमित्याह—'असात'-मित्यादि । असातम् असातवेदनीयकर्मफलभूतम्, तथा-अपरिनिर्वाणम्=सर्वथा शरीरमनः पीडाकरम्, तथा-महाभयम्=दुःखादधिकं भयमन्यन्नास्ति, यतः सर्वेऽपि प्राणिनः शारीरान्मानसादपि दुःखादुद्विजन्ते, तस्मान्महाभयस्वरूपमित्यर्थः ॥ सू० २ ॥

एतच्च ब्रवीमीत्याह 'तसंति पाणा.' इत्यादि ।

मूलम्—

तसति पाणा पदिसो दिसासु य । तत्थ पुढो पास आतुरा, परितावंति, संति पाणा पुढो सिया ॥ सू० ३ ॥

अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

इसी प्रकार सब जीवों का दु ख भी पृथक्-पृथक् है । दु ख किस प्रकार का है ? सो कहते है-वह असातावेदनीय कर्म का फल है, शरीर और मन को पूरी तरह पीडा उत्पन्न करता है और महाभयकर है-दु ख से बढकर और कोई भय नहीं है, क्यों कि सभी प्राणी शारीरिक और मानसिक दु ख से घबराते हैं, अत वह महाभयकारी है ॥ सू० २ ॥

और मैं यह कहता हूँ —'तसति पाणा ' इत्यादि ।

मूलार्थ-प्राणी विदिशाओ में और दिशाओ में उद्वेग पाते हैं। अलग-अलग प्रयोजनो के लोलुप लोग उन्हे सताप पहुचाते है। वे त्रस प्राणी पृथ्वी आदि विभिन्न आश्रयो पर आश्रित हैं ॥ सू० ३ ॥

વિધેયરૂપથી સમજાવવા માટે અનેક પર્યાયવાચી શબ્દોનો પ્રયોગ કરવામા આવ્યો છે.

આ પ્રમાણે સર્વજીવોના દુ ખ પણ જૂદા-જૂદા છે દુ ખ કયા પ્રકારના છે? તે કહે છે-તે આ અસાતાવેદનીય કર્મનું ફળ છે, શરીર અને મનને પૂરી રીતે પીડા ઉત્પન્ન કરે છે અને મહા ભયકર છે દુ ખથી વધારે કોઈ પણ ભય નથી. કારણકે સર્વ પ્રાણી-શારીરિક અને માનસિક દુ ખથી ગભરાય છે તેથી તે મહાભયકારી છે ॥સૂ૦ ૨॥

અને હુ એ પણ કહુ છુ —'तसति पाणा ' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—પ્રાણી વિદિશાઓમા અને દિશાઓમા ઉદ્વેગ પામે છે અલગ-અલગ પ્રયોજનોથી લોલુપ લોક તેને સ તાપ પહોચાડે છે તે ત્રસ પ્રાણી પૃથ્વી આદિ વિભિન્ન આશ્રયો પર આશ્રિત છે ॥સૂ૦ ૩॥

छाया—

त्रस्यन्ति प्राणाः प्रदिशः दिशासु च । तत्र तत्र पृथक् पश्य, आतुराः परितापयन्ति, सन्ति प्राणाः पृथक् श्रिताः ॥ सू० २ ॥

टीका—

प्राणाः=प्राणिनः प्रकरणसामर्थ्यात् त्रसजीवाः प्रदिशः=अपगता दिक् प्रदिक् विदिगित्यर्थः, ततः प्रदिक्षु, तथा-दिशासु प्राच्यादिदिक्षु च समागन्तुकेभ्यो दुःखेभ्यः, त्रस्यन्ति=बिभ्यति । सर्वदिग्विदिक्षु त्रसाः सन्ति, ते च सर्वदिग्विदिग्भ्यः समागन्तुकेभ्यो दुःखेभ्यस्त्रस्यन्तीत्यर्थः ।

कुतस्तेषां दुःखसंभवः ? इति जिज्ञासायामाह 'तत्र-तत्र' इत्यादि । तत्रतत्र=तेषु-तेषु, पृथक्=विभिन्नेषु प्रयोजनेषु, आतुराः=अर्चाचर्ममांसादिगृध्नवः त्रसान् परितापयन्ति=परिपीडयन्ति । विविधवेदनोत्पादनेन प्राणव्यपरोपणेन च सर्वथा दुःखं जनयन्तीत्यर्थः । कीदृशास्ते त्रसाः, यानातुराः परितापयन्ति ? इति जिज्ञासाया-

---

टीकार्थ—त्रस का प्रकरण होने से 'प्राण' शब्द का अर्थ यहाँ त्रसजीव समझना चाहिए । त्रस प्राणी विदिशाओं में आगन्तुक दुःखों से त्रस्त हैं । तात्पर्य यह है कि—सभी विदिशाओं में और सभी दिशाओं में त्रसजीव विद्यमान हैं और सभी विदिशाओं और दिशाओं से आने वाले दुःखों से वे पीड़ित होते हैं ।

उन्हें दुःख क्यों होता है ? इसका उत्तर यह है—विभिन्न प्रयोजनों से आतुर लोग अर्थात् अर्चा (शरीर), चर्म, मांस, आदि के लोलुप पुरुष त्रस जीवों को पीड़ा पहुँचाते हैं । उन्हें भाँति-भाँति की वेदना उत्पन्न करके उनके प्राणों का व्यपरोपण करते हैं और सब प्रकार से दुःख उत्पन्न करते हैं । वे त्रसजीव पृथिवी आदि के

ટીકાર્થ—ત્રસનું પ્રકરણ હોવાથી પ્રાણ શબ્દનો અર્થ ત્રસજીવ સમજવો. એટલે ત્રસ પ્રાણી વિદિશાઓમાં તથા દિશાઓમાં આગન્તુક દુઃખોથી ત્રાસ પામે છે. તાત્પર્ય એ છે કે—સર્વ વિદિશાઓમાં અને સર્વ દિશાઓમાં ત્રસ જીવ વિદ્યમાન છે અને સર્વ વિદિશાઓ તથા દિશાઓથી આવવાવાળા દુઃખોથી તે પીડા પામે છે.

તેને દુઃખ શા માટે થાય છે? તેનો ઉત્તર એ છે કે—જુદા-જુદા પ્રયોજનોથી આતુર લોક અર્થાત્ અર્ચા (શરીર), ચર્મ, માંસ વગેરેના લાલચુ પુરુષ ત્રસ જીવોને પીડા પહોંચાડે છે, તેને જુદી-જુદી જાતની વેદના ઉત્પન્ન કરે છે તે ત્રસ જીવ પૃથ્વી આદિના આશ્રયે

माह-' सन्ति' इत्यादि। श्रिताः=पृथिव्यादीन् समाश्रित्यावस्थिताः, पृथक्=विभिन्नाः द्वीन्द्रियादयः, प्राणाः=प्राणिनः सन्ति।

यद्यपि सर्वदिग्विदिग्भ्य आगामिनो दुःखाद् विभ्यन्तस्त्रसजीवाः स्वात्मरक्षार्थं पृथिव्यादीन् समाश्रित्य वर्तन्ते तथापि मांसचर्मादिलुब्धा आतुरास्तान् बन्धनताडनादिना शावकाद्यपहारेण प्राणाद्यपहारेण च परिपीडयन्ति, ततः संसारं प्राप्नुवन्ति। तस्मादेतत् परिज्ञाय सकलसावद्यव्यापारपरिहारेण संयमानुष्ठाने प्रवर्तितव्यमिति भावः॥ सू० ३॥

अथ सर्वथा त्रसकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथा त्रसकाय-समारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह-' लज्जमाणा ' इत्यादि।

सहारे अलग-अलग रहे हुए हैं।

यद्यपि सब दिशाओं और विदिशाओं से आनेवाले दुःखों से डरने वाले त्रस जीव अपनी रक्षा के लिए पृथ्वी आदि के सहारे टिके रहते हैं फिर भी मांस और चर्म आदि के लोभी लोग उन्हें बंधन एवं ताडन द्वारा, उनके बच्चोंका अपहरण करके तथा उनके प्राणों का हनन करके उन्हें पीडा पहुँचाते हैं और इस कारण वे हिंसक, संसार को प्राप्त होते हैं। आशय यह है कि-यह सब जानकर सम्पूर्ण सावद्य व्यापार का त्याग करके संयम की साधना में प्रवृत्त होना चाहिए॥ सू० ३॥

अब पूर्णरूप से त्रसकाय के आरंभ का त्याग करने वाले अनगारों का तथा त्रसकाय के आरंभ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिंगियों का विवेचन करके समझाते हुए कहते हैं-' लज्जमाणा ' इत्यादि।

અલગ-અલગ રહેલા છે

જો કે સર્વ દિશાઓ અને વિદિશાઓથી આવનારા દુઃખોથી ડરવાવાળા ત્રસજીવ પોતાની રક્ષા માટે પૃથ્વી આદિના આશ્રયે ટકી રહે છે ફરી પણ માંસ અને ચામડા આદિના લોભી લોક તેને બંધન એ પ્રમાણે તાડનદ્વારા, તેના બચ્ચાઓનું અપહરણ કરીને (ચોરી જઈને) તથા તેના પ્રાણોનું હનન-નાશ કરીને તેને પીડા પહોંચાડે છે અને આ કારણથી તે હિંસક-સંસારને પ્રાપ્ત થાય છે આશય એ છે કે-એ સર્વ જાણી કરીને સંપૂર્ણ સાવદ્ય વ્યાપારનો ત્યાગ કરીને સંયમની સાધનામાં પ્રવૃત્ત થવું જોઈએ ॥૩॥

હવે પૂર્ણરૂપથી ત્રસકાયનાં આરંભનો ત્યાગ કરવાવાળા અણગારોનું તથા ત્રસ-કાયના આરંભમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા દ્રવ્યલિંગિઓનું વિવેચન કરીને સમજાવતા થકા કહે છે-' लज्जमाणा ' ઈત્યાદિ

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा, जमिणं, विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारंभेणं, तसकायसत्थं समारभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति ॥ सू० ४ ॥

छाया—

लज्जमाना पृथक् पश्य, अनगाराः स्मः, इति एके प्रवदमानाः, यदिदं विरूपरूपैः शस्त्रैः त्रसकायसमारम्भेण, त्रसकायशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

लज्जमानाः=परमकरुणयाऽऽर्द्रहृदयतया त्रसकायसमारम्भे पराङ्मुखाः त्रसकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारा इत्यर्थः । पृथक्=विभिन्नाः, कश्चित्-मत्यवधिज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित्-परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः, सन्तीति पश्य । यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे त्रस-

मूलार्थ—त्रसकाय के आरंभ में संकोच करने वाले (अनगारों को) अलग समझो । 'हम अनगार हैं' ऐसा कहने वाले कोई-कोई (द्रव्यलिंगी) नाना प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं उनको अलग देखो ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—परम करुणा से जिनका हृदय द्रवित है ऐसे अनगार त्रसकाय के आरंभ से सदा विमुख रहते हैं । वे अनगार अलग-अलग हैं । कोई अवधिज्ञानी, कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं । कोई-कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा हैं

મૂલાર્થ—ત્રસકાયના આરંભમાં સંકોચ કરવાવાળા અણગારોને અલગ-જુદા-સમજો, 'અમે અણગાર છીએ' એ પ્રમાણે કહેવાવાળા કોઈ-કોઈ દ્રવ્યલિંગી, નાના પ્રકારનાં શસ્ત્રોથી ત્રસકાયનો આરંભ કરીને, ત્રસકાયનાં શસ્ત્રોનો પ્રયોગ કરતા થકા બીજા પણ અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે તેને અલગ જુઓ ॥સૂ. ૪॥

ટીકાર્થ—પરમ કરુણાથી જેનું હૃદય દ્રવિત છે એવા અણગાર ત્રસકાયના આરંભથી સદા વિમુખ રહે છે-દૂર રહે છે તે અણગાર અલગ-અલગ છે. કોઈ અવધિજ્ઞાની, કોઈ મનઃ-પર્યયજ્ઞાની, અને કોઈ કેવલજ્ઞાની છે કોઈ-કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની

कायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैस्त्रसकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते, इति विलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्ते तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमान प्रवदमानाः 'वयमेव त्रसकायरक्षणपरा महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्; विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः, शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद्

इन्हें देखो । अथवा इन्हें द्रव्यलिंगियों से अलग समझना चाहिए । ये त्रसकाय का आरम करते हुए डरते हैं, त्रस्त होते है, उद्विग्न होते है—तीन करण, तीन योग से त्रसकाय के आरभ के त्यागी हैं, यह देखो ।

और कोई–कोई 'हम अनगार हैं' इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए तथा 'हम ही त्रसकाय के रक्षक और महाव्रतधारी है' इस तरह प्रलाप करते हुए कई द्रव्यलिंगी है, उन्हें अनगारों से अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिंगी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्त नहीं होते और न गृहस्थ के किसी काम का त्याग करते है । यह वात आगे बतलाते है –'यदिमम्' इत्यादि ।

द्रव्य और भाव के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है। द्रव्यशस्त्र के तीन

ભાવિતાત્મા છે આને જુઓ. અથવા એને દ્રવ્યલિંગીઓથી અલગ સમજવા જોઈએ જે ત્રસકાયનો આરંભ કરતા ડરે છે, ત્રસ્ત થાય છે, ઉદ્વિગ્ન થાય છે–ત્રણ કરણ, ત્રણ યોગથી ત્રસકાયના આરંભના ત્યાગી છે એ જુઓ

અને કોઈ–કોઈ 'અમે અણગાર છીએ' એ પ્રમાણે અભિમાનપૂર્વક કહેતા થકા તથા 'અમેજ ત્રસકાયના રક્ષક અને મહાવ્રતધારી છીએ' એ પ્રમાણે પ્રલાપ–બકવાદ કરનારા કેટલાક દ્રવ્યલિંગી છે તેને અણગારોથી જૂદા સમજો.

અણગાર હોવાનુ અભિમાન કરવાવાળા એ દ્રવ્યલિંગી અણગારના ગુણોમા જરાપણ પ્રવૃત્ત નથી અને ગૃહસ્થના કોઈ પણ કામનો તેઓએ ત્યાગ કર્યો નથી તે વાત આગળ બતાવે છે–'यदिमम्' ઈત્યાદિ

દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ ભેદ છે સ્વકાય,

द्विविधम्, तत्र-द्रव्यशस्त्र-स्वकाय-परकायो-भयकायभेदात् त्रिविधम्। तत्रस्वकाय-शस्त्रंत्रसकायस्य त्रसकायः, यथा-मृगादीनां व्याघ्रकुक्कुरादयः, मनुष्यादीनां मनुष्यादयः। परकायशस्त्रम्-पाषाणजलाग्निमुद्गरखड्गतोमरछुरिकादयः। उभयकायशस्त्रम्-लगुडखड्गादिधारिणो मनुष्यादयः। भावशस्त्रं तु त्रसकायं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम्। त्रसकायसमारम्भेण, त्रसाः=त्रसनशीलाः कायाः=शरीरं यस्य स त्रसकायस्तस्य समारम्भः=पीडाकरः सावद्यव्यापारस्तेन, इमं=त्रसकायं विहिंसन्ति।

त्रसकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायमप्य लोके सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह-'त्रसकायशस्त्रम्' इत्यादि। त्रसकायशस्त्रं=त्रसजीवोपमर्दकं शस्त्रं पूर्वोक्तप्रकारं, समारम्भमाणाः=त्रसकायं प्रति प्रयुञ्जाना अन्यान्=त्रसकायभिन्नान्

भेद हैं-स्वकाय परकाय, और उभयकाय। त्रसकाय का त्रसकाय स्वकायशस्त्र है जैसे मृग आदि के लिए व्याघ्र कुत्ता आदि, मनुष्य के लिए मनुष्य आदि। परकायशस्त्र जैसे पत्थर जल अग्नि, लकड़ी, तलवार तोमर, छुरी आदि। उभयकायशस्त्र जैसे लाठी, तलवार आदि धारण करने वाला मनुष्य आदि। त्रसकाय के प्रति मन वचन, और कायका अप्रशस्त व्यापार होना भावशस्त्र है। इन नाना प्रकार के शस्त्रों से त्रसकाय का समारंभ करके लोग त्रसकाय को पीड़ा पहुँचाते हैं।

त्रसकाय की हिंसा में प्रवृत्ति करने वाले छह प्रकार के जीवनिकायरूप सम्पूर्ण लोक की हिंसा करते हैं, यह बात कहते हैं-त्रसकाय में त्रसकाय की हिंसा करने वाले शस्त्रों का जो प्रयोग करते हैं वे त्रसकाय के अतिरिक्त अनेक प्रकार के पृथ्वीकाय आदि

પરકાય અને ઉભયકાય, ત્રસકાયનું ત્રસકાય તે સ્વકાયશસ્ત્ર છે જેમ મૃગ આદિને માટે વાઘ-કુતરા આદિ, મનુષ્યને માટે મનુષ્ય આદિ પરકાયશસ્ત્ર, જેમકે પથ્થર જલ, અગ્નિ, લાકડી તરવાર, ભાલું છરી આદિ. ઉભયકાયશસ્ત્ર, જેમકે-લાકડી તલવાર આદિ ધારણ કરવાવાળા મનુષ્ય આદિ. ત્રસકાયના પ્રતિ મન, વચન અને કાયાનો અપ્રશસ્ત વ્યાપાર થવો તે ભાવશસ્ત્ર છે તે નાના પ્રકારનાં શસ્ત્રોથી ત્રસકાયના સમારંભ કરીને લોક ત્રસકાયને પીડા પહોંચાડે છે

ત્રસકાયની હિંસામાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા છ પ્રકારના છજીવનિકાયરૂપ સમ્પૂર્ણ લોકની હિંસા કરે છે એ વાત કહે છે-ત્રસકાયમાં ત્રસકાયની હિંસા કરવાવાળા-શસ્ત્રનો જે પ્રયોગ કરે છે, તે ત્રસકાયથી જૂદા અનેક પ્રકારના પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવર

अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् पञ्चस्थावरान्, प्राणान्=प्राणिनः, विहिंसन्ति।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते। तत्र शाक्यादयः कन्दमूलपत्रपुष्पफलादि भोक्तुं तदाश्रितत्रसजीवसमारम्भेण पृथिव्यादिस्थावरसमारम्भेण च त्रसजीवान्, पृथिव्यादीन् स्थावरांश्च घ्नन्ति घातयन्ति हिंसतोऽनुमोदयन्ति च। दण्डिनोऽपि—

"वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः" इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति शास्त्रप्रतिषिद्धमपि षड्जीवनिकायसमारम्भं कारयन्ति। प्रतिमामन्दिरादिनिर्माणार्थं गर्तकरणे, पाषाणादीना खण्डश करणे, तेषामूर्ध्वतो निपतने च मनुष्यादीन् तथा–बहुतरवृक्षच्छेदने

पाँच स्थावर प्राणियों की भी हिंसा करते है।

ससार में बहुत प्रकार के द्रव्यलिंगी है। उन में से शाक्य आदि कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल आदि भोगने के लिए उन पर रहे हुए त्रसजीवों का समारभ करके त्रस और स्थावर जीवों की घात करते हैं, कराते हैं और घात करने वाले की अनुमोदना करते हैं। दण्डी भी—

'हम पंचमहाव्रतधारी, जिनाज्ञा के आराधक अनगार हैं' ऐसा कहने वाले झूठे साधु सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध षड्जीवनिकाय का समारभ कराते हैं। प्रतिमा, मन्दिर, आदि का निर्माण करने के लिए–खड्डे खोदने में, पत्थरों के टुकडे करने में, उन्हें ऊपर से पटकने में मनुष्य आदि का घात कराता है। बहुत–से वृक्षों को छेदने में वृक्षाश्रित अण्डजों के पचेन्द्रिय बच्चों का घात कराते हैं।

પ્રાણીઓની પણ હિંસા કરે છે

સ સારમા ઘણા પ્રકારના દ્રવ્યલિંગી છે એમાથી શાકય આદિ કન્દ, મૂળ, પત્ર, પુષ્પ, ફલ આદિ ભોગવવા માટે–ઉપયોગ કરવા માટે, તેના પર રહેલા ત્રસ જીવોનો સમારભ કરીને અને પૃથ્વી આદિ સ્થાવર જીવોનો સમારભ કરીને ત્રસ અને સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરે છે કરાવે છે, અને ઘાત કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે દડી પણ "અમે પચમહાવ્રતધારી, જિનાજ્ઞાના આરાધક અણગાર છીએ." એ પ્રમાણે કહેવાવાળા જુઠા સાધુ સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે અને શાસ્ત્રમા નિષિદ્ધ ષડ્જીવનિકાયનો સમારભ કરાવે છે

પ્રતિમા, મ દિર વગેરેનુ નિર્માણ કરવા માટે ખાડા ખોદવા, પત્થરોના ટુકડા કરાવવા, તેને ઉપરથી પછાડવામા મનુષ્ય આદિનો ઘાત કરાવે છે ઘણાજ વૃક્ષોને કાપવાથી વૃક્ષોના

उद्दालितान् अण्डकशावकादीन्, पञ्चेन्द्रियान् पिपीलिकापतङ्गादिबहुविधविकलेन्द्रियान्, प्रतिमापूजनार्थं पुष्पवाटिकाकरणे पुष्पपत्रफलादित्रोटनेऽपि च षड्जीवनिकायान् घातयन्ति ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं कथयति—' तत्थ खलु ' इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव तसकायसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा तसकायसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा तसकायसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ५ ॥

कीड़ी पतंग आदि बहुत प्रकार के विकलेन्द्रिय जीवों का घात कराते हैं। प्रतिमापूजन के लिए फूलों का बगीचा बनाने में फूल, पत्ता और फल आदि तोड़ने में भी षट्काय के जीवों का घात कराते हैं ॥ सू० ४ ॥

अब सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—'तत्थ खलु' इत्यादि ।

मूलार्थ—त्रसकाय के आरंभ के विषय में भगवान्‌ने उपदेश दिया है। इसी जीवन के वन्दन मानन, और पूजन के लिए, तथा जन्म-मरण से छूटने के लिए और दुःख का विनाश करने के लिए वह स्वयं त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ करता है दूसरों द्वारा त्रसकाय का समारंभ कराता है और त्रसकाय का समारंभ करने वाले अन्य लोगों का अनुमोदन करता है। यह उसके अहित के लिए है, उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू० ५ ॥

આશ્રયે રહેલા અંડજ જીવોના પંચેન્દ્રિય બચ્ચાઓનો ઘાત કરાવે છે કીડી પતંગ આદિ બહુજ પ્રકારના વિકલેન્દ્રિય જીવોનો ઘાત કરાવે છે પ્રતિમાપૂજન માટે ફૂલોના બગીચા બનાવવામાં ફૂલ પત્તાં (પાંદડા) અને ફળ આદિ તોડવામાં પણ ષ ટકાયના જીવોનો ઘાત કરે છે ॥ ૪ ॥

હવે સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે– तत्थ खलु. ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—ત્રસકાયના આરંભના વિષયમાં ભગવાને ઉપદેશ આપ્યો છે આ જીવનના વંદન માન, અને પૂજનને માટે તથા જન્મ-મરણથી છૂટવા માટે અને દુઃખનો નાશ કરવા માટે તે પોતે ત્રસકાયના શસ્ત્રનો સમારંભ કરે છે બીજા પાસે ત્રસકાયનો આરંભ કરાવે છે અને ત્રસકાયનો સમારંભ કરવાવાળા અન્ય લોકોને અનુમોદન આપે છે તે એમના અહિત માટે છે એમની અબોધિ માટે છે ॥સૂ૦ ૫॥

अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् पञ्चस्थावरान्, प्राणान्=प्राणिनः, विहिंसन्ति।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते। तत्र शाक्यादयः कन्दमूलपत्र-पुष्पफलादि भोक्तुं तदाश्रितत्रसजीवसमारम्भेण पृथिव्यादिस्थावरसमारम्भेण च त्रसजीवान्, पृथिव्यादीन् स्थावरांश्च घ्नन्ति घातयन्ति हिंसतोऽनुमोदयन्ति च। दण्डिनोऽपि—

"वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः" इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति शास्त्रप्रतिषिद्धमपि षड्जीवनिकाय-समारम्भं कारयन्ति। प्रतिमामन्दिरादिनिर्माणार्थं गर्तकरणे, पाषाणादीनां खण्डश करणे, तेषामूर्ध्वतो निपतने च मनुष्यादीन् तथा–बहुतरवृक्षच्छेदने

पाँच स्थावर प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

ससार में बहुत प्रकार के द्रव्यलिंगी हैं। उन में से शाक्य आदि कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल आदि भोगने के लिए उन पर रहे हुए त्रसजीवों का समारभ करके त्रस और स्थावर जीवों की घात करते हैं, कराते है और घात करने वाले की अनुमोदना करते हैं। दण्डी भी—

'हम पंचमहाव्रतधारी, जिनाज्ञा के आराधक अनगार हैं' ऐसा कहने वाले झूठे साधु सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध षड्जीवनिकाय का समारभ कराते हैं। प्रतिमा, मन्दिर, आदि का निर्माण करने के लिए–खड्डे खोदने में, पत्थरों के टुकडे करने में, उन्हें ऊपर से पटकने में मनुष्य आदि का घात कराता हैं। बहुत–से वृक्षों को छेदने में वृक्षाश्रित अण्डजों के पचेन्द्रिय बच्चों का घात कराते हैं।

પ્રાણીઓની પણ હિંસા કરે છે

સસારમા ઘણા પ્રકારના દ્રવ્યલિંગી છે એમાથી શાકય આદિ કન્દ, મૂળ, પત્ર, પુષ્પ, ફલ આદિ ભોગવવા માટે–ઉપયોગ કરવા માટે, તેના પર રહેલા ત્રસ જીવોનો સમારભ કરીને અને પૃથ્વી આદિ સ્થાવર જીવોનો સમારભ કરીને ત્રસ અને સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરે છે કરાવે છે, અને ઘાત કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે દડી પણ "અમે પચમહાવ્રતધારી, જિનાજ્ઞાના આરાધક અણગાર છીએ." એ પ્રમાણે કહેવાવાળા જુઠા સાધુ સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે અને શાસ્ત્રમા નિષિદ્ધ ષડ્જીવનિકાયનો સમારભ કરાવે છે

પ્રતિમા, મદિર વગેરેનુ નિર્માણ કરવા માટે ખાડા ખોદવા, પત્થરોના ટુકડા કરાવવા, તેને ઉપરથી પછાડવામા મનુષ્ય આદિનો ઘાત કરાવે છે ઘણાજ વૃક્ષોને કાપવાથી વૃક્ષોના

दंशमशकान् अवमत्कुणादीन्, पञ्चेन्द्रियान् पिपीलिकापतङ्गादिबहुविधविकलेन्द्रियांश्च, प्रतिमापूजनार्थं पुष्पवाटिकाकरणे पुष्पपत्रफलादित्रोटनेऽपि च षड्जीवनिकायान् घातयन्ति ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं कथयति—'तत्थ खलु' इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव तसकायसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा तसकायसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा तसकायसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ५ ॥

कीड़े पतंग आदि बहुत प्रकार के विकलेन्द्रिय जीवों का घात कराते हैं। प्रतिमापूजन के लिए फूलों का बगीचा बनाने में, फूल, पत्ता और फल आदि तोड़ने में भी षट्काय के जीवों की घात कराते हैं ॥ सू० ४ ॥

अब सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—'तत्थ खलु' इत्यादि ।

मूलार्थ—त्रसकाय के आरंभ के विषय में भगवान्ने उपदेश दिया है। इसी जीवन के वन्दन, मानन, और पूजन के लिए, तथा जन्म-मरण से छूटने के लिए और दुःख का विनाश करने के लिए वह स्वयं त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ करता है, दूसरों द्वारा त्रसकाय का समारंभ करता है और त्रसकाय का समारंभ करने वाले अन्य लोगों का अनुमोदन करता है। वह उसके अहित के लिए है, उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू० ५ ॥

આશ્રયે રહેલા મકડ જીવોના પંચેન્દ્રિય અવયવોનો ઘાત કરાવે છે કીડી પતંગ આદિ બહુજ પ્રકારના વિકલેન્દ્રિય જીવોનો ઘાત કરાવે છે પ્રતિમાપૂજન માટે ફૂલોના બગીચા બનાવવામાં ફૂલ પત્તાં (પાંદડાં) અને ફળ આદિ તોડવામાં પણ ષટ્કાયના જીવોનો ઘાત કરે છે ॥ ૪ ॥

હવે સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે:- તત્થ ખલુ. ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ત્રસકાયના આરંભના વિષયમાં ભગવાને ઉપદેશ આપ્યો છે આ જીવનના વંદન માન, અને પૂજનને માટે તથા જન્મ-મરણથી છૂટવા માટે અને દુઃખનો નાશ કરવા માટે તે પોતે ત્રસકાયના શસ્ત્રનો સમારંભ કરે છે બીજા પાસે ત્રસકાયનો આરંભ કરાવે છે અને ત્રસકાયનો સમારંભ કરવાવાળા અન્ય લોકોને અનુમોદન આપે છે તે એમના અહિત માટે છે એમની અબોધિ માટે છે ॥સૂ ૫॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता। अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दनमानन-पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतु, स स्वयमेव त्रसकायशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत्तस्याहिताय, तत्तस्याबोधये ॥ सू० ५ ॥

टीका—

तत्र=त्रसकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=ज्ञ-प्रत्याख्यानभेदाद् द्विविधा, खलु निश्चयेन प्रवेदितः=प्रतिबोधिता। कर्मरजःपरिहरणार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्य शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः।

उपभोगद्वारम्—

लोक कस्मै प्रयोजनाय त्रसकायमुपमर्दयतीत्याह—'अस्य चैव जीवितस्य' इत्यादि। अस्यैव=अचिरस्थायिनः, जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्-मांसचर्माद्यर्थम्, तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशसा, तदर्थम्, यथा-व्याघ्रादिमृगयादौ, मानन=जनसत्कारस्तदर्थम्, यथा-राज्ञ सकाशात् पदकादि

टीकार्थ—त्रसकाय के समारंभ के संबंध में श्री महावीरने ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान-परिज्ञा का उपदेश दिया है। अर्थात् भगवान्ने कहा है कि—कर्मरज को हटाने के लिए जीव को परिज्ञा अवश्य स्वीकार करनी चाहिए।

उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा करते हैं? सो कहते हैं—इसी अस्थायी जीवन के सुख के लिए, मास और चमडी के लिए, तथा प्रशसा के लिए, जैसे व्याघ्र आदि का शिकार करने में, मानन के लिए, जैसे राजा से पदवी पाने के उद्देश्य से

ટીકાર્થ—ત્રસકાયના સમારભના સબધમા શ્રી મહાવીરે જ્ઞપરિજ્ઞા અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાનો ઉપદેશ આપ્યો છે અર્થાત્ ભગવાને કહ્યુ છે કે—કર્મ રજને દૂર કરવા માટે જીવે પરિજ્ઞા અવશ્ય સ્વીકારવી જોઈએ

ઉપભોગ દ્વાર—

લોક શું પ્રયોજનથી ત્રસકાયની હિંસા કરે છે? તે કહે છે—આ અસ્થિર જીવનના સુખ માટે, માસ અને ચામડીના માટે, તથા પ્રશસા માટે જેમ કે—વાઘ આદિનો શિકાર કરવામા માન માટે, જેમ કે—રાજા પાસેથી પદવી મેળવવાના ઉદ્દેશ્યથી જીવતા

सर्वं सजीवसदृशव्याघ्रादिप्रतकलेवरनिर्माणादौ, तथा-पूजन=वस्त्ररत्नादिलाभसत्कारम्, यथा-देवीपूजार्थं बलिविधानादौ,

तथा-जातिमरणमोचनार्थम् = जन्ममरणबन्धपरिहारार्थम्=यथा मोक्षकामनया यागादौ, यथा-वातादिव्याधिप्रतीकाराय तैलादौ सः-जीवनसुखार्थी स्वयमेव त्रसकायशस्त्रं समारभते=व्यापारयति अन्यैर्वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भयति=प्रयोजयति, अन्यान् वा त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति, तत्=त्रसकायसमारम्भणम्, तस्य=त्रसकाय समारम्भं कुर्वतः, कारयितुः, अनुमोदयितुश्च, अहिताय भवति। तथा तत्-तस्य अबोधये=सम्यक्त्वालाभाय भवति।

सजीव व्याघ्र आदि के समान व्याघ्र आदि का कलेवर बनाने में, और पूजन के लिए जैसे वस्त्र रत्न आदि की प्राप्ति के लिए, तथा-देवीकी पूजा करने के लिए प्रयोजन से बलिदान आदि करने में हिंसा करते हैं।

तथा-जन्म-मरण-बंध आदि से छुटकारा पाने के लिए, जैसे-मोक्ष की कामना से यज्ञ आदि करने में, वात आदि के रोगों का प्रतीकार करने के लिए तैल आदि तैयार करने में, जीवन के सुख का अर्थी स्वयं ही त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ करता है दूसरों से त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ कराता है और त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ करने वाले का अनुमोदन करता है। यह त्रसकाय का आरंभ उस आरंभकर्ता के लिए अहितकर और अबोधिजनक होता है।

વાઘના સમાન વાઘ આદિનું કલેવર બનાવવામાં અને પૂજન માટે જેમકે-વસ્ત્ર, રત્ન આદિ પ્રાપ્તિ માટે તથા દેવીની પૂજા કરવાના પ્રયોજનથી બલિદાન આદિ કરવામાં હિંસા કરે છે.

તથા-જન્મ, મરણ બંધ આદિથી છુટવા માટે જેમકે-મોક્ષની કામનાથી યજ્ઞ આદિ કરવામાં, વાત આદિ રોગનો પ્રતિકાર કરવા માટે (રોગની દવા કરવા માટે) જીવનના સુખના અર્થી સ્વયં-પોતેજ ત્રસકાયના શસ્ત્રનો સમારંભ કરે છે બીજા પાસે ત્રસકાયના શસ્ત્રનો સમારંભ કરાવે છે અને ત્રસકાયના શસ્ત્રનો સમારંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે તે ત્રસકાયનો આરંભ એ આરંભ કરનારને માટે અહિતકારી અને અબોધિ ઉત્પન્ન કરનાર છે

वेदनाद्वारम्-

अत्र प्रसङ्गतस्त्रसकायस्य वेदनोच्यते-वेदना यथासंभवं द्विविधा-कायिकी, मानसी च। शल्यसूच्यादिवेधाज्जाता, ज्वरातिसारकासादिव्याधिजनिता वा कायिकी, प्रियवियोगादकृता मानसी ॥ सू० ५ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे त्रसकायस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह— 'से तं ' इत्यादि।

मूलम्—

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोच्चा भगवओ अनगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ, एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु

वेदनाद्वार-

प्रसंग पाकर त्रसकाय की वेदना का निरूपण किया जाता है-यथासंभव वेदना दो प्रकार की है-कायिक और मानसिक। कांटे, सुई आदि चुभने से अथवा ज्वर, अतिसार, खांसी आदि रोगों से उत्पन्न होने वाली वेदना कायिक कहलाती हैं। प्रिय वस्तु के वियोग आदि कारणों से होने वाली वेदना मानसिक वेदना है ॥ सू० ५ ॥

जिसने तीर्थंकर आदि के समीप त्रसकायका स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार विचारता है.-'से तं.' इत्यादि।

मूलार्थ—भगवान अथवा अनगारों के समीप सुनकर वह त्रसकाय का ज्ञाता त्रसकाय को जानता हुआ संयम धारण करके इस प्रकार जानता है—यह त्रसकाय का आरंभ

વેદનાદ્વાર—

પ્રસંગ હોવાથી ત્રસકાયની વેદનાનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે-સાધારણ રીતે વેદના બે પ્રકારની છે-કાયિક અને માનસિક કાંટા, સોય આદિ વાગવાથી, અથવા જ્વર-તાવ, અતિસાર-ઝાડા, ખાંસી આદિ રોગોથી ઉત્પન્ન થવાવાળી વેદના કાયિક કહેવાય છે પ્રિય વસ્તુના વિયોગ વગેરેના કારણોથી થનારી વેદના માનસિક-વેદના છે ॥સૂ૦૫॥

જેણે તીર્થંકર આદિના સમીપમા ત્રસકાયનુ સ્વરૂપ સમજી લીધું છે, તે આ પ્રમાણે વિચારે છે—'से त' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાન અથવા અણગારોના સમીપ સાંભળીને તે ત્રસકાયના જ્ઞાતા ત્રસકાયને જાણતા થકા સંયમ ધારણ કરીને આ પ્રમાણે જાણે છે-આ ત્રસકાયનો આરંભ

मारे, एस खलु णरए, इच्चत्थं गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारंभेणं, तसकायसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ६ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा भगवतोऽनगाराणां वा अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति–एष खलु ग्रन्थः एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः। इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः त्रसकायसमारम्भेण त्रसकायशस्त्रं समारभमाणोऽन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा, आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य, विहरति, स तत्=त्रसकायसमारम्भणं संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता सन् एवं विभावयति—

ग्रन्थ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है। लोलुप लोग नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा त्रसकायका आरंभ करके, त्रसकायका आरंभ करते हुए अनेक प्रकारके अन्य प्राणियोंका (भी) विराधना करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थंकर के मुख से अथवा उनके अनुयायी निर्ग्रन्थ श्रमणों के मुख से सुनकर सर्व सावद्य के त्यागरूप चारित्र को अंगीकार करके विचरता है, वह त्रसकाय के समारंभ को अहितकर और अबोधिजनक समझता है। वह इस प्रकार सोचता है—

ग्रन्थ છે, આ મોહ છે આ માર છે, આ નરક છે લોલુપ લોક નાના પ્રકારનાં શસ્ત્રોદ્વારા ત્રસકાયનો આરંભ કરીને, ત્રસકાયનો આરંભ કરતા થકા અનેક પ્રકારના અન્ય પ્રાણીઓનો પણ ઘાત કરે છે ॥સૂ. ૬॥

ટીકાર્થ—જે પુરુષ ભગવાન તીર્થંકરના મુખથી અથવા તેમના અનુયાયી નિર્ગ્રન્થ શ્રમણોના મુખથી સાંભળીને સર્વ સાવદ્ય ત્યાગરૂપ ચારિત્રને અંગીકાર કરીને વિચરે છે તે ત્રસકાયના સમારંભને અહિતકર અને અબોધિકર-અબોધિ ઉત્પન્ન કરનાર સમજે છે. તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે—

इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशमजातसम्यगवबोधवैराग्याणा मात्मार्थिनामेव ज्ञातं भवति। किं ज्ञातं भवती ?-त्याकाङ्क्षायामाह—' एस खलु ग्रन्थः. ' इत्यादि।

एष=त्रसकायसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे कार्योपचारात्, एवमग्रेऽपि बोध्यम्। तथा एषः=त्रसकायसमारम्भः मोहः= विपर्यासः-अज्ञानम्। तथा-एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः। तथा-एष एव नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम्।

इत्यर्थम्=एतदर्थं=ग्रन्थ-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः, गृद्धः=लिप्सुरस्ति। यद्वा-गृद्धः= भोगाभिलाषी, लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्थ- मेव प्रवर्तते।

इस मनुष्य लोक में श्रवण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग् ज्ञान और वैराग्य प्राप्त कर लेने वाले ही यह जान लेते हैं कि-त्रसकाय का समारभ निश्चय ही कर्मवध है। यहाँ कारण में कार्यका उपचार करके कर्मवध के कारण को कर्मवध कहा है। आगे भी इसी प्रकार समझना चाहिए। यह त्रसकाय का समारभ मोह अर्थात् अज्ञान है। वह मार अर्थात् निगोद आदि में मृत्यु का कारण है। यह समारभ नरक है अर्थात् दस प्रकार की नारकीय यातना का स्थान है।

ग्रथ, मोह, मरण और नरकरूप घोर दु खमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी लोग वार-वार इसी के इच्छुक होने हैं। अथवा भोगों की अभिलाषा करने वाले ससारी लोग इस ग्रथ, मोह, मार और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं।

આ મનુષ્ય લોકમા નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરી-લેવાવાળાજ એમ જાણી શકે છે કે-ત્રસકાયનો સમારભ નિશ્ચયજ ગ્રથ-કર્મબધ છે અહિં કારણમા કાર્યનો ઉપચાર કરીને કર્મબધના કારણને કર્મબધ કહ્યો છે આગળ પણ આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ

આ ત્રસકાયનો સમારભ મોહ અર્થાત્ અજ્ઞાન છે આ માર અર્થાત્ નિગોદ આદિમા મૃત્યુનું કારણ છે આ સમારભ નરક છે અર્થાત્ દસ પ્રકારની નારકીય યાતનાનુ સ્થાન છે

ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુ ખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની લોક વારવાર તેની ઇચ્છાવાળા થાય છે અથવા ભોગોની અભિલાષા કરવાવાળા સંસારી લોક આ ગ્રથ, મોહ, માર અને નરક માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે.

'मोक्ष पुनः पुनर्गम्याद्यर्थमेव प्रवर्तते' इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ? इति जिज्ञासायामाह—'यदिदम्' इत्यादि ।

यद्=यस्मात्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=पूर्वोक्तप्रकारैः त्रसकायसमारम्भेण=त्रसकायोपमर्दनरूपसावद्यव्यापारेण, इमम्=त्रसकार्यं विहिनस्ति। तथा त्रसकाय शस्त्रं समारभमाणः=व्यापारयन् अन्यान् पृथ्वीकायादीन् स्थावरान्, प्राणान्= प्राणिनः, विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ६ ॥

यस्मै प्रयोजनाय त्रसकायो हन्यते, तत् प्रयोजनं यद्यपि–'इमस्स चेव जीवियस्स' इत्यादिनाऽभिहितम्, तथापि विशिष्य तत्प्रयोजन पुन प्रदर्शयितुमाह– 'से बेमि' इत्यादि ।

लोग बारम्बार मथ आदि के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं यह बात कैसे मालूम हुई ? इस का समाधान के लिए कहते हैं–'यदिदम्' इत्यादि ।

क्यों कि वे नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा त्रसकाय का समारंभ करके त्रसकाय की हिंसा करते हैं और त्रसकाय का समारंभ करते हुए पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावर प्राणियों का भी विराधना करते हैं ॥ सू० ६ ॥

जिस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा की जाती है वह योजन 'इस जीवन के सुख के लिए' इत्यादि कथन द्वारा बतलाया जा चुका है, फिर भी विशेष रूप से उस हिंसाका प्रयोजन बतलाने के लिए श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं–'से बेमि' इत्यादि ।

લોક વારંવાર મથ આદિના માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે એ વાત કેવી રીતે માલૂમ પડી ? એનું સમાધાન કરવા માટે કહે છે– યદિદમ્ ઈત્યાદિ

કેમ કે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોદ્વારા ત્રસકાયનો સમારંભ કરીને ત્રસકાયની હિંસા કરે છે અને ત્રસકાયનો સમારંભ કરતા થકા પૃથ્વીકાય આદિ અન્યસ્થાવર પ્રાણીઓનો પણ ઘાત કરે છે ॥ સૂ ૬ ॥

જે પ્રયોજનથી ત્રસકાયની હિંસા કરવામાં આવે છે તે પ્રયોજન આ જીવનના સુખ માટે ઈત્યાદિ નિવેદનદ્વારા બતાવ્યું છે (બતાવી ચૂકયા છીએ.) ફરી પણ વિશેષરૂપથી આ હિંસાનું પ્રયોજન બતાવવા માટે શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે– સે બેમિ ઈત્યાદિ

मूलम्—

से बेमि–अप्पेगे अच्चाए हणंति, अप्पेगे अजिणाए वहंति, अप्पेगे मंसाए वहंति, अप्पेगे सोणियाए वहंति, एवं हियवाए, पित्ताए, वसाए, पिच्छाए, पुच्छाए, वालाए, सिंगाए, विसाणाए, दंताए, दाढाए, णहाए, ण्हारुणीए, अट्ठीए, अट्ठिमिंजाए, अट्ठाए, अणट्ठाए, अप्पेगे 'हिंसिंसु मे' त्ति वा वहंति, अप्पेगे 'हिंसंति मे' त्ति वा वहंति, अप्पेगे 'हिंसिस्संति मे' त्ति वा वहंति ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तद् ब्रवीमि–अप्येके अर्चायै घ्नन्ति, अप्येके अजिनाय घ्नन्ति, अप्येके मांसाय घ्नन्ति, अप्येके शोणिताय घ्नन्ति एव हृदयाय, पित्ताय, वसायै, पिच्छाय, पुच्छाय वालाय, शृङ्गाय, विषाणाय, दन्ताय, दंष्ट्रायै, नखाय, स्नायवे, अस्थ्ने, अस्थिमज्जायै, अर्थाय, अनर्थाय, अप्येके 'अवधीपुरस्मा'–निति वा घ्नन्ति, अप्येके 'हिंसन्त्यस्मा' निति वा घ्नन्ति, अप्येके 'हनिष्यन्त्यस्मा'–निति वा घ्नन्ति ॥ सू० ७ ॥

मूलार्थ—मैं वह (प्रयोजन) कहता हूँ–कोई अर्चा शरीर के लिए त्रसकाय का विराधना करते है, कोई चर्म–चमडे के लिए घात करते हैं, कोई मांस के लिए घात करते हैं, कोई रक्त के लिए घात करते है, कोई हृदय के लिए, पित के लिए, चर्बी के लिए पख के लिए, पूँछ के लिए, बाल के लिए, सींग के लिए, विषाण (सुअर का दात) के लिए, दात (हाथीदात) के लिए, दाढों के लिए, नख के लिए, स्नायु के लिए, हड्डी के लिए, मज्जा के लिए, अर्थ के लिए, अनर्थ के लिए–(निरर्थक) कोई 'हमें मारा था' इस भावना से, कोई 'हमें मारता है' इस भावना से, और कोई 'हमें मारेगा' इस भावना से त्रसकाय का घात करते हैं ॥ सू० ७ ॥

મૂલાર્થ—હુ કહું છુ –કોઈ અર્ચા (શરીર) માટે ત્રસકાયના ઘાત કરે છે કોઈ ચામડી માટે ઘાત કરે છે. કોઈ માસ માટે ઘાત કરે છે કોઈ રક્ત–લોહી માટે ઘાત કરે છે કોઈ હૃદય માટે, પિત્ત માટે, ચરબી માટે, પાખો માટે, પૂછડા માટે, વાળ માટે, શીંગડા માટે, વિષાણ (સૂવરના દાત) માટે, હાથી દાત માટે, દાઢો માટે, નખ માટે, સ્નાયુ માટે, હાડકા માટે, મજ્જા માટે, અર્થ માટે, અનર્થ–(નિરર્થક) કોઈ 'અમને માર્યા હતા' એ ભાવનાથી, કોઈ 'અમને મારે છે' એ ભાવનાથી, અને કોઈ 'અમને મારશે' આ ભાવનાથી ત્રસકાયના ઘાત કરે છે. ॥ સૂ૦ ૭ ॥

टीका—

यदर्थं त्रसजीवा हन्यन्ते, तद् ब्रवीमि-अप्येके=केचिच्च, अत्रापि-शब्दः वक्ष्यमाणापेक्षया समुच्चयार्थः, अर्चायै-अर्च्यते=पूज्यते-इत्यर्चा=शरीरं, तदर्थं घ्नन्ति=हिंसन्ति, यथा सुलक्षणं पुरुषं व्यापाद्य तच्छरीरेण विद्यामन्त्रं, साधयन्ति, यद्वा स्वर्णपुरुषनिर्माणार्थं द्वात्रिंशल्लक्षणं पुरुषं प्रतप्ततैले निक्षिप्य निघ्नन्ति। तथा अप्येके=केचन अजिनाय=चर्मार्थं मृगव्याघ्रादीन् घ्नन्ति। तथा अप्येके=केचन मांसाय छागादीन् घ्नन्ति। अप्येके=केचन शोणिताय=त्रिशूलालेख्यकरणादौ शोणितं ग्रहीतुं घ्नन्ति। एवं हृदयाय=हृदयं गृहीत्वा खादका मथ्नन्ति, तदर्थं घ्नन्ति। पित्ताय मयूरादीन्, वसायै व्याघ्रादीन्, पिच्छाय मयूरादीन्, पुच्छाय रोझादीन्, वालाय चमर्यादीन्, शृङ्गाय मृगादीन्,

---

टीकार्थ—हे जम्बू! जिस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा होती है वह कहता हूँ। कोई-कोई अर्चा अर्थात् शरीर के लिए विराधना करते हैं जैसे किसी पुरुष को अच्छे लक्षण वाला समझकर उसे मार डालते हैं और उसके शरीर से विद्या तथा मंत्र का साधन करते हैं। अथवा स्वर्णपुरुष के निर्माण के लिए बत्तीस लक्षण वाले पुरुष को तपे हुए तैल में डालकर मारते हैं। कोई चर्म के लिए मृग और बाघ आदि का घात करते हैं। कोई मांस के लिए बकरा आदि को मारते हैं। कोई त्रिशूल का चिह्न बनाने आदि के लिए तथा रक्त पीने के उद्देश्य से घात करते हैं। इसी प्रकार हृदय के लिए घात करते हैं—घातक लोग हृदय लेकर मथते हैं। इसी तरह पित्त के लिए मयूरों को, चर्बी के लिए बाघ आदि को पंखों के लिए मयूरों को, पूछ के लिए रोझ आदि को, बाल के

टीकार्थ—जे प्रयोजनथी त्रसजीवोनी हिंसा थाय छे, ते कहुं छु कोई-कोई अर्चा अर्थात् शरीरना माटे घात करे छे जेमके-कोई पुरुषने सारा लक्षणवाळो समजीने तेने मारी नाखे छे अने तेना शरीरथी विद्या तथा मंत्रनी साधना करे छे अथवा-स्वर्ण पुरुषना निर्माण माटे बत्रीस लक्षणवाळा पुरुषने तपावेला तेलमां नांखीने मारे छे कोई चामडा माटे मृग अने वाघ वगेरेनो घात करे छे कोई मांस माटे बकरा वगेरेने मारे छे कोई त्रिशूलनुं चिह्न बनाववा वगेरे माटे लोही प्राप्त करवाना उद्देशथी घात करे छे. ए प्रमाणे कोई हृदय माटे घात करे छे—घातकी लोक हृदय लईने मथे छे ए प्रमाणे पित्त माटे मोरने, चरबी माटे वाघ आदिने पांख माटे चमरी-गाय आदिने पूंछ माटे मृग आदिने मारे छे विषाणु-शींग ले के हाथी

विषाणाय, विषाणशब्दो गजदन्ते रूढस्तथापीह सूकरदन्तो ग्राह्यः, तदर्थं सूकरम्, दन्ताय हस्त्यादीन्, दंष्ट्रायै वराहादीन्, नखाय व्याघ्रादीन, स्नायवे गवादीन्, अस्थ्ने शङ्खादीन, अस्थिमज्जायै–अस्थिमज्जा=अस्थिगतरसः, तदर्थं, महीषादीन्, घ्नन्ति। इत्थम्–अर्थाय=प्रयोजनवशात् केचिद् घ्नन्ति। तथा– अनर्थाय= विनाऽपि प्रयोजन केचिद् घ्नन्ति। अप्येके=केचिच्च, "इमे व्याघ्रसर्प-सूकरादयः शत्रवो वा अस्मान अपीडयन्, अस्मदीयान् वाऽवधिषुः" इति द्वेषवासनया घ्नन्ति। अप्येके=केचिन्च, "इमे व्याघ्रादयः शत्रवो वा वर्तमानकालेऽस्मान्, अस्मदीयान वा हिंसन्ति" इति मत्वा घ्नन्ति।

लिए चमरी गाय आदि को, सींग के लिए मृग आदि को मारते हैं। विषाण शब्द यद्यपि हाथीदात के अर्थ में रूढ है तथापि यहाँ 'सुअर का दांत' अर्थ लेना चाहिए। सुअर के दात के लिए सुअर का घात किया जाता है। दांत के लिए हाथी आदि को, दाढों के लिए शूकर वगैरह को, नख के लिए वाघ आदि को, स्नायु के लिए गाय आदि को, हड्डी के लिए शख आदि को, अस्थिमज्जा अर्थात् हड्डियों में रहने वाले एक प्रकार के रस के लिए भैंसा वगैरह का घात करते हैं। इस प्रकार कोई–कोई प्रयोजन के लिए त्रसजीवों की हिंसा करते हैं और कोई–कोई विना प्रयोजन ही हिंसा करते हैं। कोई–कोई 'इस वाघ, सर्प और शूकरने तथा शत्रुओंने हमें पीडा पहुंचाई है, अथवा हमारे आत्मीयजन का वध किया है' इस प्रकार की द्वेष–वासना से इनका घात करते हैं। कोई लोग यह सोचकर कि–'ये व्याघ्र आदि अथवा शत्रु वर्तमान कालमें हमें या हमारे लोगोंको मारते हैं' उनका घात करते हैं। कोई लोग यह विचार करके कि–'यह

દાંતના અર્થમા રૂઢ છે તો પણ અહિં 'સૂઅરના દાંત' એવો અર્થ લેવો જોઇએ સૂઅરના દાત માટે સૂઅરનો ઘાત કરવામા આવે છે દાત માટે હાથી આદિનો, દાઢોને માટે શૂકર–ભૂડ વગેરેનો, નખ વગેરે માટે વાઘ આદિનો, સ્નાયુને માટે ગાય આદિનો, હાડકાં વગેરે માટે શખ આદિનો, અસ્થિમજ્જા અર્થાત્, હાડકામા રહેનારા એક પ્રકાર રસ માટે ભેસા–પાડા વગેરેનો ઘાત કરે છે, આ પ્રમાણે કોઈ–કોઈ પ્રયોજન માટે ત્રસ જીવોની હિંસા કરે છે અને કોઈ–કોઈ પ્રયોજન વિનાજ હિંસા કરે છે કોઈ–કોઈ 'આ વાઘ સર્પ અને શૂકર–ભૂડે તથા શત્રુઓએ અમને પીડા પહોચાડી હતી અથવા અમારા આત્મીય જનનો (તેણે) વધ કર્યો હતો.' આ પ્રકારે દ્વેષ–વાસનાથી તેનો ઘાત કરે છે કોઈ માણસ એવો વિચાર કરીને કે–'આ વાઘ આદિ, અથવા શત્રુ વર્ત્તમાન કાલમા મને અથવા

अप्येके-केचिच्च, 'अस्मान् अस्मदीयान् वा इमे व्याघ्रादयः शत्रवो वा हनिष्यन्ति' इति हेतोस्त्रसकायान् घ्नन्ति ॥ सू० ७ ॥

एवं त्रसकायसमारम्भं विदित्वा मुनित्वलाभाय तत्समारम्भाः सर्वथा परिवर्जनीया, इत्याशयेनोद्देशकार्थमुपसंहरन्नाह— 'एत्थ सत्थं' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति । एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं तसकायसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं तसकायसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे तसकायसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते तसकायसमा

व्याघ्र आदि अथवा यह शत्रु हमें या हमारों को मारेंगे' उन्हें मार डालते हैं । इस प्रकार कोई त्रसकाय की हिंसा करते हैं ॥ सू० ७ ॥

इस प्रकार त्रसकाय के समारंभ को जानकर साधुता प्राप्त करने के लिए त्रसकाय का आरंभ सर्वथा त्याग देना चाहिए । इस आशय से इस उद्देश का उपसंहार करते हुए कहते हैं-'एत्थ सत्थं' इत्यादि ।

मूलार्थ—त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ करने वाले को यह आरंभ अपरिज्ञात होते है । त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ नहीं करने वाले को यह आरंभ परिज्ञात होते हैं । मेधावी पुरुष उन्हें जानकर स्वयं त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ न करे, दूसरों से त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ न करावे और त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ करने वाले का अनु

अमाराने मारे छे' तेथी तेनो घात करे छे कोई लोक 'आ वाघ आदि अथवा आ शत्रु अमने अथवा अमाराने मारशे' एवुं विचारीने तेने मारी नांखे छे. आ प्रमाणे लोक त्रसकायनी हिंसा करे छे. ॥ सू० ७ ॥

आ प्रमाणे त्रसकायना समारंभने जाणीने साधुता प्राप्त करवा माटे त्रसकायनो आरंभ सर्वथा त्यागी देवो जोईए-छोडी देवो जोईए. ए आशयथी आ उद्देशकनो उपसंहार करता थका कहे छे— 'एत्थ सत्थं' इत्यादि

मूलार्थ—त्रसकायने विषे शस्त्रनो समारंभ करवावाळाने आ आरंभ अपरिज्ञात होय छे त्रसकायने विषे शस्त्रनो समारंभ नहि करवावाळाने आ आरंभ परिज्ञात छे (जाणवामां छे). बुद्धिमान पुरुष तेने जाणीने पोते त्रसकायमां शस्त्रनो समारंभ करे नहि बीजा पासे त्रसकायना शस्त्रनो समारंभ करावे नहि अने त्रसकायमां शस्त्रनो समारंभ

रंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय कम्मे-त्ति बेमि ॥ सू० ८ ॥

छट्ठो उद्देसो समत्तो ॥ ६ ॥

छाया—अत्र शस्त्रं समारभमाणस्यइत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति। अत्र शस्त्रसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, तं परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं त्रसकायशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैस्त्रसकायशस्त्रं समारम्भयेत्, त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान न समनुजानीयात्। यस्यैते त्रसकायशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ८ ॥

॥ षष्ठोद्देशः समाप्तः ॥ ६ ॥

टीका—अत्र=अस्मिन् त्रसकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकार, समारभमाणस्य=व्यापारयत, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरणत्रियोगैः आरम्भाः=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपाः सावद्यव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति।

अत्र=अस्मिन्नेवत्रसकाये, शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विज्ञाता भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः।

मोदन न करे। जो त्रसकाय के समारंभो का ज्ञाता है वही मुनि है, परिज्ञातकर्मा है ॥सू० ८॥

टीकार्थ—त्रसकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार करने वाले को 'तीन करण और तीन योग से होने वाले सावद्य व्यापार कर्मबंध के कारण हैं' ऐसा ज्ञात नहीं होता।

और त्रसकाय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार न करने वाला पूर्वोक्त सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण समझता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है।

કરવાવાળાને અનુમોદન આપે નહિ, જે ત્રસકાયના સમારભને જાણે છે તેજ મુનિ છે. પરિજ્ઞાતકર્મા છે ॥સૂ૦ ૮॥

ટીકાર્થ—ત્રસકાયના વિષયમા પૂર્વોકત (આગળ કહેલા) શસ્ત્રોનો વ્યાપાર કરવાવાળા 'ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી થવાવાળો સાવદ્ય વ્યાપાર કર્મબંધનું કારણ છે' એ પ્રમાણે જાણતા નથી. અને ત્રસકાયમા પૂર્વોકત (આગળ કહેલા) શસ્ત્રોનો વ્યાપાર નહિ કરવાવાળા પૂર્વોકત (આગળ કહેલા) સાવદ્ય વ્યાપારોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મબંધનું કારણ સમજે છે, અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરી દે છે

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति तं प्रकारं वर्णयति-'तत् परिज्ञाय'-इत्यादि। तत्=त्रसकायारम्भणम्, परिज्ञाय=कर्मबन्धस्य कारणं मत्वा त्यक्त्वा च, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं त्रसकायशस्त्रं समारभेत=व्यापारयेत्, अन्यैर्वा नैव त्रसकायशस्त्रं समारम्भयेत्, त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् वा न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत्।

यस्यैते त्रसकायसमारम्भाः=त्रसकायोपमर्दकसावद्यव्यापाराः, परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जितसकलसावद्यव्यापारः, मुनिर्भवति। 'इति ब्रवीमि' इति। अस्य व्याख्यानं पूर्ववत् ॥ सू० ८ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने षष्ठ उद्देशकः सपूर्णः ॥

ज्ञपरिज्ञापूर्वक होने वाली प्रत्याख्यानपरिज्ञा का स्वरूप सूत्रकार दिखलाते हैं त्रसकाय के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर बुद्धिमान् अर्थात् हेय-उपादेय का विवेकी पुरुष स्वयं त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग न करे, दूसरों से त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग न करावे और त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग करनेवाले का अनुमोदन न करे।

जिसने त्रसकाय का घात करने वाले सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से बंध का कारण समझ लिया है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है वही तीन करण तीन योग से सर्व सावद्य व्यापारों का ज्ञाता पुरुष मुनि होता है। 'त्ति बेमि' पदकी व्याख्या पहले के समान समझनी चाहिए ॥ सू० ८ ॥

श्री आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन का छठा उद्देश समाप्त १-६ ॥

ज्ञपरिज्ञापूर्वक थवावाणी प्रत्याख्यानपरिज्ञानुं स्वरूप सूत्रकार बतावे छे-त्रसकायना आरंभने कर्मबंधनुं कारण जाणीने बुद्धिमान अर्थात् हेय-उपादेयनो विवेकी पुरुष पोते त्रसकायना शस्त्रनो उपयोग करे नहि बीजा पासे त्रसकायना शस्त्रनो उपयोग करावे नहि, अने त्रसकायना शस्त्रनो उपयोग करवावाळाने अनुमोदन आपे नहि.

जेणे त्रसकायनो घात करवावाळा सावद्य व्यापारोने ज्ञपरिज्ञाथी बंधनुं कारण समजी लीधुं छे अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्याग करी दीधुं छे ते त्रण करण त्रण योगथी सर्वसावद्यव्यापारोना ज्ञाता-जाणकार पुरुष मुनि होय छे 'त्ति बेमि' पदनी व्याख्या पहेलां प्रमाणे समजी लेवी जोईए. ॥सू० ८॥

॥ श्री आचाराङ्गसूत्रना प्रथम अध्ययननो छट्ठो उद्देश समाप्त ॥१।६॥

। अथ सप्तमोद्देशकः ।

वायुकायस्य चाक्षुषप्रत्यक्षविषयत्वाभावात् तस्य सचित्तत्वे स्वतः श्रद्धा नोत्पद्यते, किन्तु पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणां, द्वीन्द्रियादेस्त्रसकायस्य च स्वरूपं विदित्वा जातश्रद्धो वायुकायं सुतरां विजानातीत्याशयेन तद्विषयकश्चरमः सप्तमोऽयमुद्देशकः प्रारभ्यते ।

यथा वायुकायोपमर्दननिवृत्त्या मुनित्वं प्राप्यते, तं प्रकारं प्रदर्शयितुमाह— 'पहू एजस्स.' इत्यादि ।

मूलम्—

पहू एजस्स दुगुंछणाए आयंकदंसो अहियं-ति नच्चा । जे अज्झत्थं

सातवाँ उद्देश-

वायुकाय के जीव चक्षु के गोचर नहीं होते, अत एव वायु की सचित्तता में स्वत' श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती । किन्तु पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रियों का, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों का स्वरूप समझ लेने से जिसे श्रद्धा उत्पन्न होगई है वह वायुकाय को स्वय ही जान लेता है । इस आशय से वायुकायसबधी यह अतिम सातवाँ उद्देश आरभ किया जाता है ।

वायुकाय की हिंसा त्यागने से ही साधुपन प्राप्त होता है, यह बात आगे प्रदर्शित करते है —'पहू एजस्स ' इत्यादि ।

मूलार्थ—दु खदर्शी पुरुष (वायुकाय के आरभ को) अहितकर जानकरके वायुकाय के आरम्भ को त्यागने में समर्थ होता है । जो अध्यात्म को जानता है वह

સાતમા ઉદ્દેશ-

વાયુકાયના જીવ નેત્રથી જોવામા આવતા નથી, એ કારણથી વાયુની સચિત્ત-તામા સ્વત શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થતી નથી પરન્તુ પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિયોના તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોના સ્વરૂપને સમજી લેવાથી જેને શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ ગઈ છે, તે વાયુકાયને પોતેજ જાણી લે છે. એ આશયથી વાયુકાયસ બ ધી આ અ તિમ-છેલ્લા સાતમા ઉદ્દેશનો આર ભ કરવામા આવે છે.

વાયુકાયની હિંસા ત્યાગવાથી સાધુતા પ્રાપ્ત થાય છે એ વાત આગળ બતાવે છે—' पहू एजस्स ' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—દુ ખદર્શી પુરૂષ (વાયુકાયના આર ભને) અહિતકર જાણીને વાયુકાયના આરભને ત્યજી દેવામા સમર્થ હોય છે, જે અધ્યાત્મને જાણે છે તે બહારને જાણે છે,

जाणइ, से बहिया जाणइ, जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ। एयं तुल्लमन्नेसिं। इह संतिगया दविया णावकंखंति जीविउं ॥ सू० १ ॥

छाया—

प्रभु एजस्य जुगुप्सायाम् आतङ्कदर्शी अहित-मिति ज्ञात्वा। यः अध्यात्मं जानाति, स बहिर्जानाति। यः बहिर्जानाति स अध्यात्मं जानाति। एतत् तुल्य मन्येषाम्। इह शान्तिगताः द्रविकाः नावकाङ्क्षन्ति जीवितुम् ॥ सू० १ ॥

टीका—

यः आतङ्कः=कष्टजीवनं, दुःखं, तच्च शारीरमानसभेदात् द्विविधम्, तत्र कण्टकक्षतादिजनितं शारीरम्, प्रियवियोगाप्रियसंयोगाभिलषितालाभदारिद्र्यादि रूपं मानसम्। एतद् द्विविधदुःखरूपमातङ्कं पश्यति तच्छीलश्चेत्यातङ्कदर्शी, यद्वा-षड्जीवकायसमारम्भेण वायुकायसमारम्भेण वा यद्दुःखं स आतङ्कः, तं

बाह्य को जानता है, जो बाह्य को जानता है वह अध्यात्म को जानता है। यह (सुख-दुःख) दूसरों का भी अपने समान है। उपशम को प्राप्त और राग-द्वेष से रहित संयमी पुरुष, पर की हिंसा करके अपने जीवन की इच्छा नहीं करते ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—कष्टमय जीवन या दुःख को आतंक कहते हैं। शारीरिक और मानसिक भेद से दुःख दो प्रकार का है। कंटक एवं शस्त्र आदि से होने वाला दुःख शारीरिक कहलाता है। प्रियवियोग और अप्रियसंयोग, इष्ट की अप्राप्ति और दरिद्रता आदि से होने वाला दुःख मानसिक कहलाता है, इन दोनों प्रकार के दुःखरूप आतंक को देखने वाला आतंकदर्शी कहलाता है। अथवा षड्जीवनिकाय या वायुकाय के समारम्भ से होने वाला दुःख आतंक कहलाता है, और उसे देखने वाला आतंकदर्शी है। वह

બહારને જાણે છે તે અધ્યાત્મને જાણે છે આ (સુખ-દુઃખ) બીજાઓને પણ આપણા સમાન છે

ઉપશમને પ્રાપ્ત અને રાગ-દ્વેષથી રહિત સંયમી પુરૂષ પરની-બીજાની હિંસા કરીને પોતાના જીવનની ઇચ્છા કરતા નથી. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકાર્થ—કષ્ટમય જીવન અથવા દુઃખને આતંક કહે છે શારીરિક અને માનસિક ભેદથી દુઃખ બે પ્રકારનાં છે કંટક અર્થાત્ કાંટા આદિથી થવાવાળા દુઃખ શારીરિક કહેવાય છે પ્રિયવિયોગ અને અપ્રિયસંયોગ, ઇષ્ટની અપ્રાપ્તિ અને દરિદ્રતા આદિથી થનાર દુઃખ તે માનસિક કહેવાય છે આ બન્ને પ્રકારનાં દુઃખરૂપ આતંકને દેખવાવાળા આતંકદર્શી કહેવાય છે. અથવા ષડ્જીવનિકાય અથવા વાયુકાયના સમારંભથી

पश्यतीत्यातङ्कदर्शी भवति, स हिताहितविवेककुशलत्वाद् अहितम्=अशुभकरं वायुकायसमारम्भणमस्तीति ज्ञात्वा, एजस्य=एजतीत्येजः कम्पनशीलत्वाद् वायुः, तस्य, जुगुप्सायां=निन्दायां, सेवनपरिवर्जने समारम्भनिवृत्तौ, इति यावत् ,

प्रभुः=समर्थो भवति । जुगुप्सा, संयमना, अकरणा, वर्जना, व्यावर्तना, निवृत्तिरित्येकार्थाः ।

अयमाशयः–वायुकायसमारम्भकरणे शारीरं मानसं च सर्वमेव दुःखं मयि समापद्येत, तस्मादिदमातङ्कजनकत्वादहितमिति विज्ञाता, तत्सेवनलक्षणसमारम्भपरिहरणे समर्थो भवतीति ।

यः अध्यात्मम्=आत्मनीति अध्यात्मम् स्वात्मगतं सुखं दुःखं वेत्यर्थः,

---

हित–अहित के विवेक में कुशल होने से वायुकाय से आरम्भ को अहितकर समझकर वायु के आरम्भ का त्याग करने में समर्थ होता है । मूल में आये हुए जुगुप्सा (दुगुछा) शब्द के कई अर्थ होते हैं । जैसे–सयमन, अकरण (न करना), वर्जन (त्यागना), व्यावर्त्तन (हटना) और निवृत्ति (त्याग) ।

आशय यह है–'वायुकाय का आरम्भ करने से मुझे शारीरिक और मानसिक सभी दु:ख प्राप्त होंगे अत यह आरम्भ अतकजनक होने के कारण अहितकर है' । ऐसा जानने वाला उसके सेवनरूप आरम्भ के त्याग में समर्थ होता है ।

जो अध्यात्म को अर्थात् अपने आत्मा में स्थित सुख–दु ख को जानता है

थनारु दु ख आतक कहेवाय छे, अने एने जोवावाळा आतकदर्शी छे ते हित–अहितना विवेकमा कुशळ होवाना कारणथी वायुकायना आरभने अहितकर समजीने वायुना आरभने त्याग करवामा समर्थ होय छे मूळमा आवेलो 'दुगुंछणा–जुगुप्सा' शब्दना केटलाय अर्थ थाय छे जेमके–सयमन, अकरणु–(नहि करवु) वर्जन, (त्यागवु) व्यावर्त्तन, (हठवु) अने निवृत्ति (त्याग)

आशय ए छे के–' वायुकायनो आरभ करवाथी मने शारीरिक अने मानसिक सर्व दु ख प्राप्त थशे, ए माटे ए आरभ आतकजनक होवाना कारणे अहितकर छे,' ए प्रमाणे जाणुवावाळा एना सेवनरूप आरभना त्यागमा समर्थ होय छे

जे अध्यात्मने अर्थात् पोताना आत्मामा स्थित सुख–दु खने जाणे छे, ते बाह्य

जानाति स बहिः=परकीयं सुखं दुःखं वा जानाति। ममात्मनि दुःखमसातवेदनीयकर्मोदयात् समापतितं, सुखमपि सातवेदनीयकर्मोदयात् स्वानुभवसिद्धम्, एवं स्वात्मगतसुखदुःखप्रत्यक्षेण परकीयसुखदुःखानुमानं कर्तुं शक्नोतीत्यर्थः। उक्तमर्थं दृढीकर्तुं पुनस्तमेव परावर्तयन्नाह—'यः बहिर्जानाति' इत्यादि।

यः बहिः=परात्मगतं सुखं दुःखं वा जानाति, स अध्यात्मं=स्वात्मगतं सुखं दुःखं वा जानाति। परेषां स्वस्य च सुखदुःखयोरनुकूलप्रतिकूलवेदनीयरूपे स्वरूपे साम्यादिति भावः।

यद्वा-परविराधनापरिहारेण तत्फलभूतं स्वात्मनः सुखं, तथा परपीडनेन तत्फलभूतं स्वात्मनो दुःखं भवति, एवं परकीयमेव सुखं दुःखं वा

वह बाह्य अर्थात् दूसरे के सुख-दुःख को जानता है। मेरे आत्मा में असातावेदनीय कर्म के उदय से दुःख आया है और सातावेदनीय कर्म के उदय से सुख स्वानुभव सिद्ध है। इस प्रकार अपने आत्मा का सुख और दुःख जो प्रत्यक्ष से जानता है, वह दूसरों के सुख-दुःख का अनुमान कर सकता है। इसी अभिप्राय को पुष्ट करने के लिए यही बात पलटकर कहते हैं—जो बाह्य को जानता है वह अध्यात्म को जानता है।

अर्थात्—जो पराये सुख-दुःख को जानता है वह अपने आत्मा के सुख दुःख को जानता है। पराये और अपने सुख-दुःख का अनुकूल वेदन और प्रतिकूल वेदन रूप स्वरूप समान है।

अथवा-परको पीड़ा पहुंचाने का त्याग करने से सुखरूप फल प्राप्त होता है और पीड़ा पहुंचाने से दुःख मिलता है। इस प्रकार पराया सुख और दुःख

અર્થાત્ બીજાના સુખ-દુઃખને જાણે છે મારા આત્માને વિષે અસાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી દુઃખ આવ્યું છે અને સાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી સુખ સ્વાનુભવસિદ્ધ છે આ પ્રમાણે પોતાના આત્માના સુખ-દુઃખનું અનુમાન કરી શકે છે એ અભિપ્રાયને પુષ્ટ કરવા માટે એજ વાત પલટાવીને કહે છે:—જે બાહ્યને જાણે છે તે અધ્યાત્મને જાણે છે.

અર્થાત્—જે પરાયા સુખ-દુઃખને જાણે છે તે પોતાના આત્માના સુખ-દુઃખને જાણે છે પરાયા-બીજાના અને પોતાના સુખ-દુઃખનું અનુકૂલ વેદન અને પ્રતિકૂલ વેદનરૂપ સ્વરૂપ સમાન છે

અથવા—બીજાને પીડા પહોંચાડવાના ત્યાગ કરવાથી સુખરૂપ ફલ પ્રાપ્ત થાય છે. અને પીડા પહોંચાડવાથી દુઃખ મળે છે

स्वात्मनः सुखरूपेण दुःखरूपेण वा परिणम्यते। एवं तयोः कार्यकारणभावं यो विजानाति, स एव स्वात्मगतसुखदुःखविज्ञातेति भावः।

परकीयसुखदुःखविज्ञाता स्वात्मनः सुखं दुःखं वा जानातीत्युक्तार्थे हेतुं प्रदर्शयन्नाह– 'एयं तुल्लमन्नेसिं' इति। एतत्=सुखं दुःखं वा, तुल्य=सदृशमेव, अन्येषाम्=परेषां जीवानां स्वस्य चेत्यर्थः।

" कट्ठेण कटणए व, पाए विद्धस्स वेयणट्टस्स।
जा होइ अणिव्वाणी, णायव्वा सव्वजीवाण॥
जह मम ण पिय दुक्ख, जाणिय एमेव जीवाणं "॥

छाया–– काष्ठेन कण्टकेन वा पादे विद्धस्य वेदनार्त्तस्य।
या भवति अनिर्वाणि–र्ज्ञातव्या सर्वजीवानाम्॥
यथा मम न प्रिय दुःखं ज्ञात्वा एवमेव सर्वजीवानाम्। " इति।

ही अपने सुख–दु ख के रूप में परिणत हो जाता है। इस प्रकार जो उनके कार्यकारण भाव को जानता है वही अपने आत्मा के सुख–दु ख का ज्ञाता होता है।

दूसरों के सुख–दु ख का ज्ञाता ही अपने सुख–दु ख को जानता है, इस कथन में हेतु दिखलाते हुए कहते हैं–'यह सुख और दुःख दूसरों के और अपने समान ही है'। कहा भी है ––

लकडी से या कटक से पैर में विंध जाने की वेदना से पीडित पुरुष को जो असतोष होता है, वही सब जीवों को होता है।

जैसे मुझे दु ख प्रिय नहीं है, उसी प्रकार अन्य अन्य प्राणियों को भी दु ख प्रिय नहीं हैं "।

આ પ્રમાણે બીજાના સુખ અને દુ ખજ પોતાના સુખ–દુ.ખના રૂપમાં પરિણુત થઈ જાય છે. આ પ્રમાણે જે તેના કાર્ય–કારણુ ભાવને જાણે છે, તેજ પોતાના આત્માના સુખ–દુ ખના જ્ઞાતા હોય છે

બીજાના સુખ–દુ ખના જ્ઞાતા જ પોતાના સુખ–દુ ખને જાણે છે. આ કથનમા હેતુ બતાવતા થકા કહે છે કે ––

" આ સુખ અને દુ ખ બીજાના અને આપણા સમાન છે " કહ્યું છે કે–

" લાકડીથી અથવા કાટાથી પગમા વિંધાઈ જવાની વેદનાથી પીડિત પુરુષને જે અ તવેદના થાય છે, તેવીજ સર્વ જીવોને (વેદના) થાય છે "

"જેમ મને દુ ખ પ્રિય નથી, તે પ્રમાણે બીજા પ્રાણીઓને પણ દુ ખ પ્રિય નથી."

अन्यच्च—"मर्तव्यमिति यद्दुःखं पुरुषस्योपजायते ।

शक्यस्तेनानुमानेन, परोऽपि परिरक्षितुम्" ॥१॥ इति ।

स्वपर-सुखदुःखयोस्तुल्यत्ववेदिनो न वायुकायं विराधयन्तीत्याह—'इह शान्तिगता' इत्यादि । इह=जिनप्रवचने, शान्तिगताः=स्वपरसुखदुःखयोः समत्वविज्ञानात् औपशमिकमार्गं प्राप्ताः सम्यक्त्विन इत्यर्थः यद्वा=शान्तिः= सावद्यव्यापारपरिहारः, तामुपगताः द्रविकाः=रागद्वेषरहिताः, यद्वा—द्रवः= संयमः कर्मद्रवणकारित्वात्, स विद्यते येषां ते द्रविकाः= कर्मनिवारणक्षमाः संयमिनः जीवितुम्=व्यजनादिना वायुकायस्य समारम्भेण प्राणान् परिरक्षितुं नावकाङ्क्षन्ति=नेच्छन्ति ।

दूसरी जगह कहा है—

'तेरा मरना ही अच्छा है, ऐसा वाक्य सुनने मात्र से पुरुष को जो दुःख होता है, इसी से अनुमान लगाकर दूसरों की रक्षा करनी चाहिए" । १ ।

जो पुरुष स्व-पर सुख-दुःख को समान समझते हैं वे वायुकाय की विराधना नहीं करते, यही बात कहते हैं—

जिनशासन में अपने और पराये सुख-दुःख को समान समझकर जो उपशम भावको प्राप्त हुए हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टि हैं अथवा पापमय व्यापारों के त्यागी हैं, तथा राग-द्वेष से रहित हैं, अथवा कर्मों को निवारण करनेवाले संयम से विभूषित हैं, वे पंखा आदि से वायुकाय का समारम्भ करके अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा नहीं करते ।

बीजे ठेकाणे पण कह्यु छे के:—

"तारे मरवुं ज सारुं छे" ओ प्रमाणे सांभळवाथी पुरुषने जे दुःख थाय छे ते अनुमानथी बीजानी रक्षा करवी जोईओ. ॥ १ ॥

जे पुरुष स्व-परना (पोतानां अने पारकांना) सुख-दुःखने समान समजे छे ते वायुकायनी विराधना करता नथी. ते वात कहे छे—

जिन शासनमां पोतानां अने बीजानां सुख-दुःखने समान समजीने जे उपशम भावने प्राप्त थया छे, अर्थात् सम्यग्दृष्टि छे अथवा पापमय व्यापारोना त्यागी छे तथा राग द्वेषथी रहित छे अथवा कर्मोनुं निवारण करवावाळा संयमथी विभूषित छे ते पंखा आदिथी वायुकायनो समारंभ करीने पोताना प्राणोनी रक्षा करवानी इच्छा करता नथी.

जिनप्रवचनोक्तचरणकरणसेविनः स्वप्राणरक्षणार्थमपि परजीवोपमर्दनं नेच्छन्ति, ते हि अचाक्षुषवायुजीवविराधनाविनिवृत्ताः कथमन्यचाक्षुषपृथिव्यादिजीवोपमर्दने प्रवर्तेत, न कथमपीति भावः।

अथ वायुकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं लक्षणाद्यष्ट द्वाराणि निरूपणीयानि। तत्र लक्षणप्ररूपणापरिमाणशस्त्रोपभोगद्वाराणि यथाक्रमं निरूप्यन्ते। अवशिष्ट-वधवेदनानिवृत्ति द्वाराणि पृथिवीकायोद्देशे यथा कथितानि तथैवावगन्तव्यानि।

जिनागम में कथित चरण-करण का सेवन करने वाले अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए भी दूसरे जीव की हिंसा करने की अभिलाषा नहीं करते। वे चक्षु से न दिखाई देने वाले वायुकाय के जीवों की विराधना से भी निवृत होते हैं तो चक्षु-गोचर अन्य पृथ्वीकाय आदि के जीवों की विराधना में कैसे प्रवृत्त हो सकते हैं—किसी प्रकार भी नहीं।

वायुकाय का सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने के लिए लक्षण आदि आठ द्वारों का निरूपण करना चाहिए। उनमें से लक्षण, प्ररूपणा, परिमाण, शस्त्र और उपभोग द्वारों का क्रम से निरूपण करते हैं। शेष वध, वेदना और निवृत्ति द्वार जैसे पृथ्वीकाय के उद्देश में कहे हैं वैसे ही यहाँ समझ लेने चाहिए।

જિનાગમમા કહેલા ચરણ-કરણનું સેવન કરવાવાળા પોતાના પ્રાણોની રક્ષા કરવા માટે પણ બીજા જીવોની હિંસા કરવાની અભિલાષા કરતા નથી તે નેત્રથી નહિ દેખાતા વાયુકાયના જીવોની વિરાધનાથી પણ નિવૃત્ત હોય છે, તો પછી નેત્રથી જોઈ શકાય તેવા બીજા પૃથ્વીકાય આદિના જીવોની વિરાધનામા કેવી રીતે પ્રવૃત્ત થઈ શકે છે? કોઈ પ્રકારે પણ થઈ શકતા નથી

વાયુકાયનું સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે લક્ષણ આદિ આઠ દ્વારોનું નિરૂપણ કરવું જોઈએ. તેમાંથી લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર અને ઉપભોગ દ્વારોનું ક્રમથી નિરૂપણ કરે છે, શેષ-(બાકી) વધ, વેદના અને નિવૃત્તિ દ્વાર જેવી રીતે પૃથ્વીકાયના ઉદ્દેશમા કહ્યા છે, તેવીજ રીતે અહિં સમજી લેવું જોઈએ

लक्षणद्वारम्-

ननु कथमिदं ज्ञायते वायुः सचित्त इति?, अत्रोच्यते-श्रूयतां तावदनुमानं प्रमाणम् वायुश्चेतनावान् अनन्यप्रेरिताऽनियततिर्यग्गमनवत्त्वात्, हरिणगवयादिवदिति। अनियतविशेषणोपादानात् परमाणौ अपरप्रेरिततिर्यग्गतिसत्त्वेऽपि नानैकान्तिकत्वम्, तस्य हि परप्रयोगनिरपेक्षस्य स्वाभाविकी गतिरनुश्रेणिर्भवति तस्मात् सा नियतैव। आगमोऽपि प्रमाणं, यथा-दशवैकालिकसूत्रे-“वाउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण”। इति,

वायुश्चित्तवानाख्यातोऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वः अन्यत्र शस्त्रपरिणतात्। इति च्छाया

लक्षणद्वार-

शंका—वायु सचित्त है, यह बात किस प्रकार जानी जाय?

समाधान—पहले अनुमान प्रमाण ही लीजिए—वायु चेतनायुक्त है क्यों कि वह दूसरों की प्रेरणा बिना अनियत रूप से तिरछी गति करती है, जैसे हिरन रोझ आदि। हेतु में 'अनियत' विशेषण लगा देने से प्रेरणा का अभाव और तिरछी गति होने पर भी परमाणु व्यभिचार नहीं होता। परमाणु दूसरे की प्रेरणा के बिना जो गति करता है वह गति श्रेणी के अनुसार नियत ही होती है—अनियत नहीं। इस विषय में आगम भी प्रमाण है। दशवैकालिक सूत्र में कहा है—

“वायु सचित्त कही गई है। वह अनेक जीवोंवाली है, और उन जीवों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् है। सिर्फ शस्त्रपरिणत वायु सचित्त नहीं है”।

લક્ષણદ્વાર—

શંકા—વાયુ સચિત્ત છે એ વાત કેવી રીતે જાણી શકાય?

સમાધાન—પ્રથમ અનુમાનપ્રમાણ લઈએ-વાયુ ચેતનાયુક્ત છે કેમકે તે બીજાની પ્રેરણા વિના અનિયતરૂપથી તિરછી ગતિ કરે છે જેમ-હરણ રોઝ આદિ. હેતુમાં અનિયત વિશેષણ લગાવી દેવાથી પરપ્રેરણાનો અભાવ અને તિરછી ગતિ હોવા છતાં પણ પરમાણુથી વ્યભિચાર થતો નથી, પરમાણુ બીજાની પ્રેરણા વિના જે ગતિ કરે છે તે ગતિ શ્રેણી-અનુસાર નિયતજ હોય છે અનિયત નહિ.

આ વિષયમાં આગમ પણ પ્રમાણ છે દશવૈકાલિક સૂત્રમાં કહ્યું છે-

“વાયુ સચિત્ત કહેવામાં આવ્યો છે તે અનેક જીવવાળો છે અને તે જીવોનું અસ્તિત્વ પૃથક્-પૃથક્ (જુદું-જુદું) છે માત્ર શસ્ત્રપરિણત વાયુ સચિત્ત નથી.”

प्ररूपणाद्वारम्-

वायुकाया द्विविधाः-सूक्ष्मा बादराश्चेति । तत्र सूक्ष्माः सकललोकव्यापिनः, बादरास्तु लोकैकदेशे सन्ति । बादराः पञ्चविधाः-उत्कलिकावातः, मण्डलिकावातः, गुञ्जावातः, घनवातः, शुद्धावतश्चेति । ये तु ते पौरस्त्यादिभेदा लोकवादिप्रकरणे प्रागभिहितास्तेऽप्यत्रैवान्तर्भूताः । यः स्थित्वा स्थित्वा उत्कलिकाभिर्वाति स उत्कलिकावातः, वातोलीरूपो मण्डलिकावातः, यो गुञ्जन् वाति स गुञ्जावातः, पृथिव्यादीनामाधारतया व्यवस्थितो हिमपटलकल्पोऽतिघनीभूतो घनवातः, मन्द-स्तिमितः शीतकालादिषु शुद्धवातः ।

संक्षेपेण वायुकायास्त्रिविधाः-सचिता अचित्ता मिश्राश्च । उत्कलिकावातादयः

प्ररूपणाद्वार-

वायुकाय दो प्रकार का है-सूक्ष्म और बादर । सूक्ष्म जीव समस्त लोक में रहते हैं । बादर पाँच प्रकार के हैं-(१) उत्कलिकावात (२) मण्डलिकावात (३) गुञ्जावात (४) घनवात और (५) शुद्धवात । पौरस्त्य आदि जो भेद लोकवादी के प्रकरण में पहले बतलाये हैं वे सब भी इन्हीं भेदों में अन्तर्गत हो जाते हैं । ठहर-ठहर कर उत्कलिकारूप से बहनेवाली वायु उत्कलिकावात है । वातोलीरूप वायु को मण्डलिकावात कहते हैं । गूँज-गूँज कर वहने वाली वायु को गुञ्जावात कहते है । पृथ्वी आदि के आधार पर स्थित हिमपलट के समान अत्यन्त सघन वायु को घनवात कहते है । शीतकाल आदि में धीमे-धीमे चलने वाली वायु शुद्धवात है ।

सक्षेप से वायुकाय के तीन भेद हैं-(१) सचित (२) अचित और

પ્રરૂપણાદ્વાર—

વાયુકાય બે પ્રકારના છે (૧) સૂક્ષ્મ અને (૨) બાદર. સૂક્ષ્મ જીવ સમસ્ત લોકમા વ્યાપ્ત છે અને બાદર, લોકના એક-દેશમા રહે છે બાદર પાચ પ્રકારના છે (૧) ઉત્કલિકાવાત, (૨) મડલિકાવાત, (૩) ગુજાવાત, (૪) ઘનવાત અને (૫) શુદ્ધવાત

પૌરસ્ત્ય આદિ જે ભેદ લોકવાદીના પ્રકરણમા પહેલા બતાવ્યા છે, તે સર્વે આ ભેદોમા અન્તર્ગત થઇ જાય છે જરા-રહી-રહીને ઉત્કલિકારૂપમા વહેવાવાળો વાયુ તે ઉત્કલિકાવાત છે વાતોલીરૂપ વાયુને મડલિકાવાત કહે છે ગૂજી-ગૂજી ને વહેવાવાળી હવાને ગુજાવાત કહે છે પૃથ્વીઆદિના આધારપર સ્થિતિ હિમપટલ સમાન અત્યન્ત સઘન વાયુને ઘનવાત કહે છે શીતકાલ આદિમા ધીમે-ધીમે વહેતો વાયુ તે શુદ્ધવાયુ છે

સક્ષેપથી વાયુકાયના ત્રણ ભેદ છે (૧) સચિત્ત (૨) અચિત અને (૩) મિશ્ર.

सचित्ताः, उद्गारोच्छ्वासादयोऽचित्ताः सचित्ताचित्तयोः सम्मिश्रणेन मिश्राः ।

परिमाणद्वारम्-

ये बादरपर्याप्तका वायुकायास्ते संवर्तितलोकप्रतरासंख्येयभागवर्ति प्रदेशराशिपरिमाणाः, शेषास्त्रयोऽपि राशयः पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेश-परिमाणा भवन्ति, विशेषश्चायमवगन्तव्यः-बादराप्कायपर्याप्तकेभ्यो बादरवायु पर्याप्तका असंख्येयगुणाः, बादराप्कायाऽपर्याप्तकेभ्यो बादरवायुकायाऽ पर्याप्तका असंख्येयगुणाः । सूक्ष्माप्कायाऽपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवायुकायाऽपर्याप्तका विशेषाधिकाः, सूक्ष्माप्कायपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवायुकायपर्याप्तका विशेषाधिकाः ॥ सू० १ ॥

(३) मिश्र । उत्कालिकावात आदि सचित हैं, उद्गार और उच्छ्वास आदि अचित हैं, और मिली हुई-सचित्त-अचित्त वायु मिश्र है ।

परिमाणद्वार-

बादरपर्याप्तवायुकाय के जीव संवर्तित लोकप्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर हैं । शेष तीनों प्रत्येक राशियाँ असंख्यात लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर हैं । यहाँ इतना विशेषता समझनी चाहिए-बादर अप्काय के पर्याप्त जीवों की अपेक्षा वायुकाय के बादर पर्याप्त असंख्यात गुणा हैं । अप्काय के अपर्याप्त बादर जीवों से वायुकाय के अपर्याप्त बादर असंख्यात गुणा हैं । अप्काय के सूक्ष्म अपर्याप्त जीवों से सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त विशेष अधिक हैं । अप्काय के सूक्ष्म पर्याप्त जीवों से सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्त विशेषाधिक हैं ॥ सू० १ ॥

ઉત્કાલિકાવાત આદિ સચિત્ત છે ઉદ્ગાર અને ઉચ્છ્વાસ આદિ અચિત્ત છે અને સચિત્ત તથા અચિત્ત એ બંને એક સાથે મળેલા હોય તે વાયુ મિશ્ર છે

પરિમાણદ્વાર—

બાદરપર્યાપ્તવાયુકાયના જીવ સંવર્તિત લોક પ્રતરના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોના બરાબર છે બાકી ત્રણ પ્રત્યેક રાશીઓ અસંખ્યાત લોકાકાશના પ્રદેશોની બરાબર છે અહિં એટલી વિશેષતા સમજવી જોઈએ-બાદર અપ્કાયના પર્યાપ્ત જીવોની અપેક્ષા વાયુકાયના બાદર પર્યાપ્ત અસંખ્યાત ગણા છે અપ્કાયના અપર્યાપ્ત બાદર જીવોથી વાયુકાયના અપર્યાપ્ત બાદર અસંખ્યાત ગણા છે અપ્કાયના સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત જીવોથી સૂક્ષ્મ વાયુકાયના અપર્યાપ્ત વિશેષ અધિક છે અપ્કાયના સૂક્ષ્મપર્યાપ્ત જીવોથી, સૂક્ષ્મ વાયુકાયના પર્યાપ્ત વિશેષાધિક છે. ॥ સૂ. ૧ ॥

अथ सर्वथा वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथा वायुकायसमारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह—'लज्जमाणा.' इत्यादि।

अथ शस्त्रद्वारम्–

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास। अणगारा मो–त्ति एगे पवयमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेणं, वाउसत्थं समारंभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति ॥ सू० २ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य। अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकायसमारम्भेण, वायुकायशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० २ ॥

वायुकाय के समारंभ का सर्वथा त्याग करने वाले मुनियों को और वायुकाय के समारम्भ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिंगियों को अलग–अलग बतलाने के लिए कहते हैं—'लज्जमाणा.' इत्यादि।

शस्त्रद्वार–

मूलार्थ—वायुकाय का समारम्भ करने में संकोच करने वाले अनगारों को अलग देखो, और कोई–कोई 'हम अनगार हैं' ऐसा कहते हुए नाना प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय का समारम्भ करके, वायुकाय का समारम्भ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते है उनको अलग देखो ॥ सू० २ ॥

વાયુકાયના સમારંભનો સર્વથા ત્યાગ કરવાવાળા મુનિઓને અને વાયુકાયના સમારંભમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા દ્રવ્યલિંગિઓને જૂદા–જૂદા બતાવવા માટે કહે છે—'लज्जमाणा.' ઈત્યાદિ

શસ્ત્રદ્વાર—

મૂલાર્થ—વાયુકાયના સમારંભમાં સંકોચ કરવાવાળા અણગારોને જૂદા જાણો, અને કોઈ–કોઈ 'અમે અણગાર છીએ' એવું કહેનારા અને નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી વાયુકાયનો સમારંભ કરીને, વાયુકાયનો સમારંભ કરતા થકા બીજા અનેક પ્રકારના પ્રાણિઓની હિંસા કરે છે તેને પણ જૂદા–જૂદા જાણો ॥ સૂ૦ ૨ ॥

टीका—

लज्जमानाः=परमकरुणयाऽऽर्द्रचित्तया वायुकायसमारम्भे पराङ्मुखाः, वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगाराः, पृथक्=विभिन्ना, कचन प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः सन्तीति पश्य। यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्य पृथग्भावेन सन्तीति पश्य। इमे वायुकायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैर्वायुकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्त इति विलोकयेत्यर्थः।

एके पुनरन्यत्तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः 'वयमेव वायुकायरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य।

टीकार्थ—परम करुणा से आर्द्र-चित्त होने के कारण वायुकाय के समारम्भ से विमुख, वायुकाय के समारम्भ का सर्वथा त्याग करने वाले अनगार भिन्न हैं—कोई अवधिज्ञानी कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं और कोई मतिश्रुतज्ञान के धारक भावितात्मा साधु हैं उन्हें देखो। अथवा उन्हें द्रव्यलिंगियों से भिन्न समझो। ये अनगार वायुकाय का समारम्भ करने में भीत हैं त्रस्त हैं उद्विग्न हैं तथा तीन करण तीन योग से वायुकाय का समारम्भ करने के त्यागी हैं।

और कोई-कोई 'हम अनगार हैं' इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए 'हम ही वायुकाय की रक्षा करने वाले पंचमहाव्रतधारी हैं' ऐसा प्रलाप करने वाले द्रव्यलिंगी हैं उन्हें अनगारों से अलग समझो।

ટીકાર્થ—પરમ કરુણાથી આર્દ્ર-ચિત્ત હોવાના કારણે વાયુકાયના સમારંભથી વિમુખ વાયુકાયના સમારંભનો સર્વથા ત્યાગ કરવાવાળા અણગાર જુદા છે—કોઈ અવધિજ્ઞાની કોઈ મનઃપર્યયજ્ઞાની અને કોઈ કેવલજ્ઞાની છે અને કોઈ મતિ-શ્રુત જ્ઞાનના ધારક ભાવિતાત્મા સાધુ છે, તેને જુઓ અથવા તેને દ્રવ્યલિંગીઓથી જુદા જાણો. તે અણગાર વાયુકાયનો સમારંભ કરવામાં ભીત (બીવા વાળા) છે ત્રસ્ત છે ઉદ્વિગ્ન છે તથા ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી વાયુકાયનો સમારંભ કરવાના ત્યાગી છે

અને કોઈ-કોઈ અમે અણગાર છીએ' આ પ્રમાણે અભિમાનપૂર્વક કહે છે કે 'અમેજ વાયુકાયની રક્ષા કરવાવાળા પંચમહાવ્રતધારી છીએ. એવો બકવાદ કરનારા દ્રવ્યલિંગી છે. તેને અણગારોથી જુદા જાણો.

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः, शस्त्रैः शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्यशस्त्रं-स्वकायपरकायोभयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं-शीतवायोरुष्णवायुः, उष्णवायोश्च शीतवायुः पूर्वदिगादिवायोः पश्चिमदिगादिवायुः स्वकायशस्त्रम् । व्यजन-तालवृन्त-शूर्प-चामर-पत्र-वेलकर्णाभिधारणादयः, घर्मार्तो यद् बहिरवतिष्ठते वातागमनमार्गे साऽभिधारणा,

तथा-चन्दनोशीरादीनां गन्धाः, अग्निर्ज्वालाप्रतापश्च, तथा मुशलादिना

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिंगी अनगार के गुणो में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते और गृहस्थों के किसी कृत्य का त्याग नहीं करते हैं। यह आगे कहते हैं.—

द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है। द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं–(१) स्वकाय (२) परकाय और (३) उभयकायशस्त्र। उष्णवायु, शीतवायु का और शीतवायु, उष्णवायु का, तथा पूर्वादिदिशाओंका वायु, पश्चिमादिदिशाओं के वायु का स्वकायशस्त्र है, पखा, तालवृन्त, सूप, चामर, पत्र, कपडा और अभिधारणा आदि, धूप से पीडित पुरुष हवा आने के रास्ते में ठहरता है उसको अभिधारणा कहते हैं।

तथा–चन्दन, खसखस आदि की गध, आगकी ज्वाला, ताप आदि परकायशस्त्र है।

અણુગાર હોવાનું અભિમાન કરવાવાળાઓ દ્રવ્યલિંગી (સાચા) અણુગારના ગુણોમા જરા પણ પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, અને ગૃહસ્થોના કોઈ પણ કાર્યનો ત્યાગ કરતા નથી તે આગળ કહે છે

દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્રના ભેદથી શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે, દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ ભેદ છે (૧) સ્વકાય, (૨) પરકાય, (૩) ઉભયકાય-શસ્ત્ર, ઉષ્ણવાયુ, શીતવાયુનો અને શીતવાયુ, ઉષ્ણવાયુનો તથા પૂર્વાદિ દિશાઓના વાયુનો પશ્ચિમ આદિ દિશાઓનો વાયુ સ્વકાયશસ્ત્ર છે વાસનો બનાવેલો તથા તાલપત્રનો બનાવેલો પખો, સૂપડા, ચામર, પત્ર, વસ્ત્રખડ અને અભિધારણા આદિ, તાપથી પીડિત પુરુષ હવા આવવાના રસ્તામા થોભી જાય છે, તેને અભિધારણા કહે છે

તથા-ચન્દન, ખસખસ, આદિની ગંધ, અગ્નિ, અગ્નિની જ્વાલા, તાપ આદિ તથા

कम्पनं, तुषापसारणार्थं शूर्पास्फालनं, वस्त्रादिगतरजःप्रभृतिवारणाय वस्त्रादीनामास्फोटनमास्फोटनं वस्फोटनं च, तथा शीघ्रगमनं वायुकायस्य विराधकं परकायशस्त्रम्। उभयकायशस्त्रम्—अनावृतमुखेन भाषणम्, एतत्सर्वं द्रव्यशस्त्रम्। भावशस्त्रं तु मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम्। एवंविधैः शस्त्रैः, वायुकायसमारम्भेण=वायुकायोपमर्दकसावद्यव्यापारेण, इमं वायुकायं विहिंसन्ति।

वायुकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह—'वायुकायशस्त्रम्' इत्यादि। वायुकायशस्त्रं=वायुकायोपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणाः=वायुकायं प्रति प्रयुञ्जानाः अन्यान्=वायुकायभिन्नान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् स्थावरान् द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च प्राणान्=प्राणिनः, विहिंसन्ति।

मस्तक से कूटना छिलके हटाने के लिए सूप से फटकना, धूल-रेत आदि झाड़ने के लिए वस्त्र आदि को फटकारना—झटकना तथा जल्दी जल्दी चलना भी वायुकाय का विराधक परकाय शस्त्र है खुले मुख से बोलना उभयकायशस्त्र। मन वचन, और कायका अप्रशस्त व्यापार भावशस्त्र है। इन नाना प्रकार के शस्त्रों से द्रव्यलिंगी वायुकाय की हिंसा करने वाले सावद्य व्यापार करके वायुकाय की हिंसा करते हैं।

जो वायुकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह षट्कायरूप समस्त लोक की हिंसा करता है, यह कहते हैं—वायुकाय की विराधना करने वाले पूर्वोक्त द्रव्य और भावशस्त्रों का वायुकाय के प्रति प्रयोग करने वाले वायुकाय से भिन्न अनेक प्रकार के पृथ्वीकाय आदि स्थावरों की तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रसजीवों की भी हिंसा करता है।

મસ્તકથી કૂટવું, છાલ કાઢવા માટે, સૂપડાથી ઝાટકવું, ધૂળ–રેતી વગેરેને ખંખેરવા માટે વસ્ત્ર વગેરેને ઝાટકવું–પછાડવું, તથા જલ્દી–જલ્દી ચાલવું તે પણ વાયુકાયનું વિરાધક પરકાય શસ્ત્ર છે. ઉઘાડા–ખુલ્લા મોઢે બોલવું તે ઉભયકાયશસ્ત્ર છે. આ સર્વ વાયુકાયનાં દ્રવ્યશસ્ત્ર છે મન, વચન અને કાયાનો અપ્રશસ્ત (વખાણવા લાયક નહિ તે) વ્યાપાર તે ભાવશસ્ત્ર છે આ નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી દ્રવ્યલિંગી વાયુકાયની હિંસા કરવાવાળાઓ સાવદ્ય વ્યાપાર કરીને વાયુકાયની હિંસા કરે છે

જે વાયુકાયની હિંસામાં પ્રવૃત્ત થાય છે તે ષટ્કાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે એ કહે છે—વાયુકાયની વિરાધના કરવાવાળા પૂર્વોક્ત દ્રવ્ય અને ભાવશસ્ત્રનો વાયુકાયના પ્રતિ પ્રયોગ કરવાવાળા વાયુકાયથી ભિન્ન અનેક પ્રકારના પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોની, તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોની પણ હિંસા કરે છે.

इह बहुविधद्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, तत्र शाक्यादयो व्यजनादिशस्त्रैर्वायुकाय-समारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति, तथा च संपातिमादीनां हिंसनेन षड्जीवनिकायविराधका भवन्ति। दण्डिनोपि—"वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः" इत्यादि भवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति, शास्त्रप्रतिषिद्धमपि वायुकायसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति च। ते हि अनावृतमुखेन वदन्ति गायन्ति च। तथा अग्रपूजादौ विविधवाद्यनृत्यादिकं कारयन्ति, एतत्सर्वं मिथ्यादर्शनशल्याभिधं पापमाचरन्ति।

उक्तञ्च—"गंधव्वनट्टवाइय-लवणजलारत्तिआइदीवाई।
जं किच्चं तं सव्वं-पि ओअरइ अग्गपूयाए" ॥ १ ॥

ससार में तरह–तरह के द्रव्यलिंगी हैं, उन में से शाक्य आदि पखा वगैरह से वायुकाय का आरम करते हैं, कराते हैं और आरम करने वाले की अनुमोदना करते हैं, और सपातिम (उडकर अचानक आजाने वाले) आदि जीवों की हिंसा करके षट्काय के विराधक बनते हैं। झूठे साधु दण्डी भी 'हम पंचमहाव्रतधारी तथा जिन भगवान् की आज्ञा के आराधक अनगार हैं' इस प्रकार कहते हुए सावद्य का उपदेश देते हैं। शास्त्र में निषिद्ध वायुकाय का समारंभ करते हैं और कराते हैं। वे खुले मुख से बोलते और गाते हैं, तथा अग्रपूजा आदि में विविध प्रकार से वाद्य एव नृत्य आदि कराते हैं। यह सब मिथ्यादर्शनशल्यनामक पाप है। वे इसका आचरण करते हैं। जैसे कहा है—

સસારમાં તરેહ–તરેહના દ્રવ્યલિંગી છે, તેમાંથી શાકય આદિ પખા વગેરેથી વાયુકાયનો આરંભ કરે છે, કરાવે છે, અને આરભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે, અને સપાતિમ (ઉડીને અચાનક આવવાવાળા) આદિ જીવોની હિંસા કરીને ષટ્કાયના વિરાધક બને છે. દંડી પણ 'અમે પંચમહાવ્રતધારી તથા જિન ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક અણુગાર છીએ.' આ પ્રમાણે કહેતા થકા સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે શાસ્ત્રમા નિષિદ્ધ મનાએલા વાયુકાયનો સમારભ કરે છે અને કરાવે છે તે ખુલ્લા મુખથી–ઉઘાડા મોઢે–બોલે છે અને ગાય છે, તથા અગ્રપૂજા વગેરેમા વિવિધ પ્રકારથી વાદ્ય અને નૃત્ય આદિ કરાવે છે આ સર્વે મિથ્યાદર્શનશલ્ય નામનુ પાપ છે તે એનું આચરણ કરે છે. જેમ કહ્યું છે–

छाया—गन्धर्वनृत्यवादित्र-लवणजलारात्रिकादिदीपादयः।
यत्किञ्चित्कृत्यं तत्सर्वमप्यवतरत्यग्रपूजायाम् ॥ १ ॥ इति।

किञ्च—सप्तदशभेदिपूजाविधावपि गीतनृत्यवाद्यानि कर्तव्यतयोपदिशन्ति।

किञ्चैकविंशतिविधपूजायामपि नृत्यगीतवादित्रचामरवीजनैश्च वायुकायसमारम्भं कारयन्ति।

उक्तञ्च—"स्नान विलेपनविभूषणपुष्पवास—
धूपप्रदीपफलतन्दुलपत्रपूगैः।
नैवेद्यवारिवसनैश्चमरातपत्र,–
वादित्रगीतनटनस्तुतिकोशवृद्ध्या ॥ १ ॥
इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा" इत्यादि।

'गाना, नाचना बजाना लवण-जल आरती करना, दीपक जलाना आदि जितने कार्य हैं, वे सब अग्रपूजा में किये जाते हैं' ॥१॥

तथा वे द्रव्यलिंगी दण्डी 'सत्रहप्रकार की पूजा में भी गीत, नृत्य और वाद्य आदि क्रियाएँ करनी चाहिए' ऐसा उपदेश देते हैं।

तथा इक्कीसभेदी पूजा में भी नृत्य गीत, वादित्र तथा चामर और पंखा आदि के द्वारा वायुकाय का समारंभ कराते हैं। जैसा कहा है—

"स्नान, विलेपन, आभूषण, पुष्प वास धूप दीप, फल, चावल पत्र, सुपारी, नैवेद्य जल, वस्त्र चामर, छत्र वादित्र गीत नाटक, स्तुति और कोशवृद्धि, इस तरह इक्कीस प्रकार की जिन भगवान् की पूजा होती है" ॥१॥

ગાવું, નાચવું, બજાવવું, મીઠું જળ, આરતી કરવી, દીપક-દીવો બાળવો આદિ જેટલાં કાર્ય છે તે સર્વ અગ્રપૂજામાં કરવામાં આવે છે.' ॥ ૧ ॥

તથા તે દ્રવ્યલિંગી-દંડી સત્તરપ્રકારની પૂજામાં પણ હમેશાં નૃત્ય અને વાદ્ય વાજીંત્ર આદિ ક્રિયાઓ કરવી જોઈએ. એવો ઉપદેશ આપે છે.

તથા એકવીસભેદી પૂજામાં પણ નૃત્ય, ગીત, વાજીંત્ર તથા ચામર અને પંખા આદિ દ્વારા વાયુકાયનો સમારંભ કરાવે છે જેમ કહ્યું પણ છે—

"સ્નાન, વિલેપન, આભૂષણ, પુષ્પ, વાસ, ધૂપ, દીપ, ફળ ચોખા, પત્ર, સોપારી, નૈવેદ્ય, જળ, વસ્ત્ર ચામર છત્ર, વાજીંત્ર, ગીત, નાટક સ્તુતિ અને કોશવૃદ્ધિ (ધર્માદાના નામે નાણાં-ધન-ની વૃદ્ધિ) આ પ્રમાણે એકવીસ પ્રકારની જિનભગવાનની પૂજા થાય છે." ॥૧॥

अलमधिकेन—एवमपि ते प्रलपन्ति—यदि जिनभक्त्युद्रेकेण साधुरपि नृत्येत्तदा नास्ति दोष इति ॥ सू० २ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह—'तत्थ खलु.' इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया । इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव वाउसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा वाउसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वाउसत्थं समारंभते समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परि-

ज्यादा क्या कहें ! वे यहाँ तक भी बकते हैं कि—जिनराज की भक्ति में मस्त होकर अगर साधु भी नाचने लगे तो भी कोई दोष नहीं है अर्थात् वह आराधक है ॥ सू० २ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—'तत्थ खलु' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने वायुकाय के आरंभ के विषय में उपदेश दिया है । इसी जीवन के परिवन्दन, मानन, और पूजन के लिए, जन्म–मरण से छुटकारा पानेके लिए, दुःख का नाश करने के लिए लोग स्वयं वायुकायशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से वायुकायशस्त्र का आरंभ कराता है और वायुकायशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों की अनुमोदना करता है । यह उसके अहित के लिए और उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू० ३ ॥

વિશેષ શું કહીએ, તે એટલે સુધી પણ કહે છે કે—જિનરાજની ભક્તિમાં મસ્ત થઈને અગર સાધુ પણ નાચ કરવા લાગે તો પણ કોઈ દોષ નથી અર્થાત્ તે આરાધક છે ॥૨॥

સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે—'तत्थ खलु' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—ભગવાને વાયુકાયના આરંભના વિષયમાં ઉપદેશ આપ્યો છે આ જીવનના પરિવંદન, માનન અને પૂજા માટે, જન્મ, મરણથી છુટવા માટે, દુઃખનો નાશ કરવા માટે લોક સ્વયં–પોતે વાયુકાયશસ્ત્રનો આરંભ કરે છે, બીજા પાસે વાયુકાયશસ્ત્રનો આરંભ કરાવે છે અને વાયુકાયશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે. તે એના (પોતાના) અહિત માટે અને તેમની અબોધિને માટે છે ॥ ૩ ॥

वन्दनमानन्पूजनाय, जातिमरणमोचनाय, दुःखप्रतिघातहेतुं स स्वयमेव वायुशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा वायुशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वायुशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ३ ॥

टीका—

तत्र=वायुकायसमारम्भे, भगवता=श्रीमहावीरेण, परिज्ञा—ज्ञ—प्रत्याख्यानभेदात् द्विविधा, सत्व=निश्चयेन, प्रवेदिता=प्रतिबोधिता। कर्मरज —परिहरणार्थं भव्यजीवेन परिज्ञाऽवश्यं स्वीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः।

उपभोगद्वार—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय वायुकायमुपमर्दयतीत्याह—'अस्य चेव जीवितस्य' इत्यादि। अस्यैव=अल्पकालावस्थायिन', जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम् व्यजन—तालवृन्त—मल—ध्मात—फूत्कारा—श्वासादिभिः, शीतोष्णवायु

टीकार्थ—वायुकाय के समारंभ के विषय में श्री महावीरने ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा बतलाई है। तात्पर्य यह है कि—कर्मरूपी रजको हटाने के लिए भव्य जीव को परिज्ञा अवश्य स्वीकार करना चाहिए, ऐसा उपदेश भगवान्ने दिया है।

उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से वायुकाय की विराधना करते हैं? यह बतलाते हैं-इस अल्पकालीन जीवन के सुख के लिए पंखा ताडपत्ता हिलाना, धौंकनी का धौंकना, फूंक मारना, श्वास लेना आदि क्रियाओं द्वारा तथा शीत और उष्ण वायुका सेवन द्वारा वायुकाय की हिंसा करते हैं।

टीकार्थ—वायुकायना समारंभना विषयमां श्रीमहावीरे ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यान परिज्ञा बतावी छे तात्पर्य ओ छे के -कर्मरूपी रजने दूर करवा माटे भव्य जीवोओ परिज्ञानो अवश्य स्वीकार करी लेवो जोईओ. आ प्रमाणे भगवाने उपदेश आप्यो छे

उपभोगद्वार—

लोक क्या प्रयोजनथी वायुकायनी विराधना करे छे? ओ बतावे छे आ अल्प काळना जीवनना सुख माटे पंखा ताडपत्रा हलाववा धमण धमवी—फूंक मारवी, श्वास लेवो, आदि क्रियाओद्वारा तथा शीत अने उष्ण (ठंडा अने गरम) वायुना सेवनद्वारा

सेवनेश्च, तथा परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं-दृतिर्वाद्यवेणुप्रभृतिवादनादौ, माननं=जनसत्कारस्तदर्थं, व्यजनयन्त्रादिप्रचालनादौ, पूजनं=वस्त्ररत्नादिलाभस्तदर्थं वायुयान-वायुयन्त्रादिनिर्माणादौ, तथा जातिमरणमोचनार्थं=देवप्रतिमाभिमुख नृत्यगीतवादित्रप्रयोगे, व्यजनचामरादिवीजने च, तथा दुःखप्रतिघातहेतु=व्याधिप्रतीकारार्थं नवीनवैज्ञानिकोद्भावितवायुचिकित्सायां, तथा-तालवृन्तादिना वायुकायोद्भावने स=जीवनसुखाद्यर्थी, स्वयमेव वायुशस्त्रं=वायुकायोपमर्दकं-शस्त्रं समारभते=व्यापारयति, अन्यैर्वा वायुकायशस्त्रं समारम्भयति=प्रयोजयति, अन्यान् वायुशस्त्रं समारभमाणान् समनु-

---

तथा परिवन्दन अर्थात् प्रशशा पाने के लिए, मशकवाद्य और बाँसुरी बजाकर, मानन अर्थात् जनसत्कार के लिए व्यजनयत्र (बीजली का पखा) गानयत्र (रेडियो, ग्रामोफोन आदि) बजाकर, पूजन अर्थात् वस्त्रों एव रत्नो आदि के लाभ के लिए वायुयान (एरोप्लेने) वायुयत्र आदि के बनाने में, तथा जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए, जैसे-जिनप्रतिमा के आगे नृत्य, गीत और वादित्र का प्रयोग करने में, चामर पखा आदि डुलाने में, तथा दुःख का नाश करने के लिए, जैसे-व्याधि मिटाने के लिए आधुनिक वैज्ञानिको द्वारा निकाली हुई वायुचिकित्सा में तथा ताडपखा आदि द्वारा वायुकाय की उदीरणा करने में वायुकाय की हिंसा करते हैं। इस प्रकार इस जीवन के सुख के अर्थी स्वय वायुकाय के घातक शस्त्रों का समारम करते हैं, दूसरों से कराते हैं और वायुकाय का समारभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन

તથા પરિવન્દન, અર્થાત્ પ્રશસા મેળવવા માટે મશકવાદ્ય અને વાસળી વગેરે બજાવીને, વ્યજનયત્ર તથા ગાનયત્ર (વિજળીથી ચાલતા પખા અને રેડીઓ તથા ગ્રામોફોન) વગેરે બજાવીને, પૂજન અર્થાત્-વસ્ત્રો એવ રત્નો આદિના લાભ માટે વાયુયાન (એરોપ્લેન) અને વાયુયત્ર આદિ બનાવવામા તથા જન્મ-મરણથી છુટવા માટે જેમકે-દેવપ્રતિમાની પાસે નૃત્ય-ગીત અને વાજીત્રનો પ્રયોગ કરવામા, ચામર, પખા આદિ હલાવવામા, તથા દુખનો નાશ કરવા માટે, જેમકે-વ્યાધિ મટાડવા માટે આજકાલના વૈજ્ઞાનિકદ્વારા શોધ કરાએલી વાયુચિકિત્સામા, તથા તાડપત્રના પંખાદ્વારા વાયુકાયની ઉદીરણામા વાયુકાયની હિંસા કરે છે એ પ્રમાણે આ જીવનના સુખના અર્થી પોતે વાયુકાયના ઘાતક શસ્ત્રોનો સમારભ કરે છે, બીજાની પાસે કરાવે છે અને વાયુકાયનો સમારભ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે. વાયુકાયને-

जानाति=अनुमोदयति। तत्=वायुकायसमारम्भणं, तस्य=वायुकायसमारम्भणं कुर्वतः कारयितुः अनुमोदयितुश्च अहिताय भवति। तथा-तत् तस्य अबोधय= सम्यक्त्वालाभाय भवति ॥ सू० ३ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे वायुकायस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह— 'से तं' इत्यादि।

मूलम्—

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणं वा अंतिए, इहमेगेसिं णायं भवइ-एस खलु गंथे एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए। इच्चत्थं गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेणं, वाउसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ४ ॥

करते हैं। वायुकाय का यह आरंभ करने वाले कराने वाले और उसकी अनुमोदना करने वाले को अहितकर होता है तथा अबोधिकारक होता है ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट जिसने वायुकाय का स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार विचार करता है—'से तं' इत्यादि।

मूलार्थ—भगवान् से या उनके अनगारों से सुनकर-समझकर जिसने संयम धारण किया है वह जानता है कि—यह वायुकाय का समारंभ ही ग्रंथ है यही मोह है, यही मार है, यही नरक है। इसी में लोग गृद्ध हो रहे हैं, क्यों कि नाना प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय के समारंभद्वारा वायुकाय का आरंभ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ४ ॥

આરંભ આરંભ કરવાવાળાને, કરાવનારને અને તેની અનુમોદના આપવાવાળાને અહિતકર થાય છે તથા અબોધિજનક થાય છે. ॥ સૂ૦ ૩ ॥

તીર્થંકર આદિના સમીપમાં જેણે વાયુકાયનું સ્વરૂપ સમજી લીધું છે, તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે— સે તં ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાન પાસેથી અથવા તેમના અણગારો પાસેથી સાંભળી-સમજી ને જેણે સંયમ ધારણ કર્યું છે તે જાણે છે કે—આ વાયુકાયનો સમારંભ જ ગ્રંથ છે. એજ મોહ છે એજ માર છે એજ નરક છે એમાં લોકો ગૃદ્ધ થઈ રહ્યા છે કેમકે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી વાયુકાયના સમારંભદ્વારા વાયુકાયનો આરંભ કરતા થકા અન્ય અનેક પ્રકારનાં પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે ॥સૂ૦ ૪॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके इहैकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिम विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकर्मसमारम्भेण वायुशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावद्ययोगविरतिरूप चारित्रं समुत्थाय= अङ्गीकृत्य, विहरति, स तत्=वायुकाय समारम्भणं सबुध्यमानः=अहितावोधिजनकत्वेन विज्ञाता सन्नेवं विभावयति—

इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजातसम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति। किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु ग्रन्थः', इत्यादि।

एषः वायुशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे

टीकार्थ— जिस पुरुषने तीर्थंकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थों के मुखारविन्द से सुनकर सर्व सावद्य का त्यागरूप सयम अगीकर किया है वह वायुकाय के समारभ को अहितकर और अबोधिजनक समझता हुआ इस प्रकार विचारता है—

इस लोक में श्रमण निर्ग्रंथों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करने वाले आत्मार्थी जनों को ही यह विदित होता है कि—

वायुशस्त्र का यह समारभ निश्चितरूप से कर्मबध का कारण है। कारण में

ટીકાર્થ—જે પુરુષે તીર્થંકર ભગવાન અથવા તેમના અનુયાયી શ્રમણ–નિર્ગ્રંથોના મુખારવિન્દથી સાભળીને સર્વ સાવદ્યના ત્યાગરૂપ સયમ અગીકાર કર્યો છે, તે વાયુકાયના સમારભને અહિતકર અને અબોધિજનક સમજતા થકા આ પ્રમાણે વિચારે છે—

આ લોકમા શ્રમણ નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરવાવાળા આત્માર્થી જીવોનેજ એ જાણવામા છે કે—

વાયુશસ્ત્ર આનો સમારભ નિશ્ચિતરૂપથી કર્મબંધનું કારણ છે કારણમા

कार्ये कारणोपचारात्। एवमग्रेऽपि बोध्यम्। तथा—एषः वायुकायसमारम्भः, मोहः=विपर्यासः =अज्ञानम्। तथा एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः। तथा एष एव नरकः= नारकजीवानां वसतिः यातनास्थानम्।

इत्यर्थ=एतदर्थं ग्रन्थमोहमरणनरकरूप घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थमेव, लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति। यद्वा गृद्धः=भोगाभिलाषी, लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थ—एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तत इति शेषः।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धार्थमेव प्रवर्तत इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते? इति जिज्ञासायामाह—'यदिमम्' इत्यादि।

यद्=यस्मात् विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः पूर्वोक्तप्रकारैः वायुकर्म

कार्य का उपचार करके कर्मबंध के कारण को मूल में कर्मबंध कहा है। आगे भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए। तथा यह वायुकाय का समारंभ अज्ञानरूप है, यह निगोद आदि में मृत्यु का कारण है, और नरक है अर्थात् नारकीय यातनाओं का स्थान है।

ग्रंथ, मोह मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल पाकर भी अज्ञानी जीव बार–बार इसी की अभिलाषा करते हैं। अथवा भोगों के अभिलाषी संसारी जीव इस ग्रंथ, मोह, मरण और नरकरूप फल के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं।

लोग कर्मबंध के लिए ही पुनः पुनः प्रवृत्ति करते हैं, यह जो कहा है सो किस प्रकार जाना जाय? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—'यदिमम्' इत्यादि।

क्यों कि नाना प्रकार के, वायुकाय की विराधना करने वाले सावद्य व्यापार

કાર્યનો ઉપચાર કરીને કર્મબંધના કારણને મૂલમાં કર્મબંધ કહેલ છે. આગળ પણ આ પ્રકારે સમજી લેવું જોઈએ. તથા એ વાયુકાયનો સમારંભ અજ્ઞાનરૂપ છે એ નિગોદ આદિમાં મૃત્યુનું કારણ છે (અર્થાત્ નિગોદમાં લઈ જવાવાળો છે.) અને નરક છે અર્થાત્ નારકીય યાતનાઓનું સ્થાન છે

ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની જીવ વારંવાર એની લાલચ કરે છે અથવા ભોગોના અભિલાષી સંસારી જીવ આ ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ફલ માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે

લોક કર્મબંધ માટેજ પુનઃ પુનઃ પ્રવૃત્તિ કરે છે એ પ્રમાણે જે કહ્યું છે તે કેવી રીતે જાણી શકાય? એવી જીજ્ઞાસા થતાં કહે છે—'યદિમમ્' ઈત્યાદિ.

કેમકે નાના પ્રકારથી વાયુકાયની વિરાધના કરવાવાળા સાવદ્યવ્યાપારદ્વારા તે

समारम्भेण=वायुकायोपमर्दनरूपसावद्यव्यापारेण, इमं=वायुकायं विहिनस्ति। तथा-वायुशस्त्रं समारभमाणः-व्यापारयन्, अन्यान्=पृथिवीकायादीन्, अनेकरूपान् स्थावरांस्त्रसांश्च, प्राणान्=प्राणिनः विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ४ ॥

वायुशस्त्र समारभमाणा अनेकविधान् जीवान् कथं विहिंसन्ति, तत् च प्रतिबोधयितुं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह—'से वेमि.' इत्यादि।

मूलम्—

से वेमि-सति संपाइमा पाणा आहच्च संपयंति य, फरिसं च खलु पुट्ठा एगे संघायमावज्जति। जे तत्थ संघायमावज्जंति, ते तत्थ परियावज्जंति। जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उद्दायति ॥ सू० ५ ॥

छाया—

तद् ब्रवीमि-संति संपातिमाः प्राणाः, आहत्य संपतन्ति च, स्पर्शं च खलु स्पृष्टा एके संघातमापद्यन्ते। ये तत्र संघातमापद्यन्ते, ते तत्र पर्यापद्यन्ते। ये तत्र पर्यापद्यन्ते ते तत्रापद्रावन्ति ॥ ५ ॥

द्वारा वे वायुकाय का घात करते हैं। तथा वायुकाय के शस्त्रों का प्रयोग करते हुए पृथ्वीकाय आदि अनेक प्रकार के स्थावरों का, तथा त्रस जीवों का उपमर्दन करते हैं ॥सू० ४॥

वायुकाय के शस्त्रों का प्रयोग करने वाले नाना प्रकार के जीवों की हिंसा कैसे करते हैं? यह बतलाने के लिए श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—'से वेमि.' इत्यादि।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ—एकाएक उडकर पडने वाले जीव हैं जो अचानक आपडते हैं, और वायुकाय से स्पृष्ट होकर कोई-कोई सघात को प्राप्त होते हैं। जो सघात को प्राप्त होते हैं उनका शरीर सिकुड जाता है, मूर्छित हो जाते हैं, वे मर भी जाते हैं ॥ सू० ५ ॥

વાયુકાયનો ઘાત કરે છે તથા વાયુકાયના શસ્ત્રોનો પ્રયોગ કરતા થકા પૃથ્વીકાય આદિ અનેક પ્રકારના સ્થાવરો તથા ત્રસજીવોનું ઉપમર્દન (નાશ) કરે છે ॥સૂ. ૪॥

વાયુકાયના શસ્ત્રોના પ્રયોગ કરવાવાળા નાના પ્રકારના જીવોની હિંસા કેવી રીતે કરે છે? એ બતાવવા માટે શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે—'से वेमि' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—હું તે કહું છું—એકાએક (ઓચિંતા) ઉડીને પડવાવાળા જીવ છે તે અચાનક આવી પડે છે, અને વાયુકાયથી સ્પૃષ્ટ થઈને કોઈ-કોઈ જથારૂપે થાય છે જે સંઘાત-સમુદાય-જથારૂપમા પ્રાપ્ત થાય છે, તેનું શરીર સંકોચાઈ જાય છે, મૂર્છિત થઈ જાય છે, અને તે મરી પણ જાય છે ॥ સૂ. ૫ ॥

टीका—

तद् ब्रवीमि=वायुकायहिंसया यथा बहुविधाः प्राणिनः प्रणश्यन्ति, तद् कथयामि-सपातिमाः=उत्पत्योत्पत्यपतनशीलाः, प्राणाः=प्राणिनः सन्ति=वायुकायमाश्रित्य विद्यन्ते। एते संपातिमाः आहत्य=व्यजनतालवृन्तवस्त्रादिभिः मोक्षाविदवायुकायादाघातं प्राप्य, संपतन्ति=वायुवेगसमाकृष्टाः प्राणापगमायोद्विग्नास्तत्रैव वायुकाये संविशन्ति, संश्लिष्यन्तीत्यर्थः।

स्पर्शं चेति। स्पर्शोऽस्यास्तीति स्पर्शः=स्पर्शवान्, तं स्पर्शं=वायुकायं, स्पृष्टाः =स्पर्शकर्तारः आर्षत्वात् कर्तरि क्तः। एके=वायुवेगसमाहताः प्राणिनः, संघातमापद्यन्ते=परस्परसंघर्षेण गात्रसङ्कोचं प्राप्नुवन्ति।

ये तत्र=वायुकाये संपतिता संघातमापद्यन्ते, ते तत्र=वायुकाये

टीकार्थ—वायु की हिंसा से अनेक प्रकार के प्राणियों का घात किस प्रकार होता है सो कहता हूँ। संपातिम अर्थात् उड़-उड़कर पड़ने वाले अनेक जीव वायुकाय के आश्रित रहते हैं। ये संपातिम जीव पंखा तालवृन्त-पंखा कि एक जाति, वस्त्र आदि से उदीरणा की हुई वायुकायद्वारा आघात पाकर गिर पड़ते हैं, अर्थात् वायु के वेग से खिंचकर घबराये हुए वायुकाय के साथ ही जुड़-से जाते हैं।

यहाँ स्पर्श का अर्थ है स्पर्शवान् अर्थात् वायु। कोई-कोई वायु के वेग से आहत हुए जीव संघात को प्राप्त होते हैं अर्थात् परस्पर रगड़ खाकर सिकुड़ जाते हैं।

वायुकाय में पड़े हुए जो जीव सिकुड़ जाते हैं वे वायुकाय के आघात से

ટીકાર્થ—વાયુકાયની હિંસાથી અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓનો ઘાત કેવી રીતે થાય છે તે હું કહું છું:-સંપાતિમ-ઉડી-ઉડીને પડવાવાળા અનેક જીવ વાયુકાયના આશ્રયે રહે છે તે સંપાતિમ જીવ, પંખા, તાડપત્ર, વસ્ત્ર આદિથી ઉદીરવા કરાએલા વાયુકાયદ્વારા આઘાત પામીને પડી જાય છે અર્થાત્ વાયુના વેગથી ખેંચાઈને ગભરાએલા વાયુકાયની સાથેજ જોડાઈ જાય છે

અહીં સ્પર્શનો અર્થ છે-સ્પર્શવાન્-અર્થાત્ વાયુ કોઈ-કોઈ વાયુના વેગથી આહત-તાડન કરાએલા જીવ સંઘાત-જથાપણાને પ્રાપ્ત થાય છે અર્થાત્ પરસ્પર ઘસાઈને સંકોચાઈ જાય છે.

વાયુકાયમાં પડેલા જે જીવો સંકોચાઈ જાય છે તે વાયુકાયના આઘાતથી મૂર્છિત

संश्लिष्टा पर्यापद्यन्ते=वायुकायाघातेन मूर्छामाप्नुवन्ति–प्रणष्टचेतना भवन्तीत्यर्थः। ये तत्र=पर्यापद्यन्ते, ते तत्र=वायुकाये, अपद्रावन्ति=प्राणैर्वियुज्यन्ते ।

वायुशस्त्रसमारम्भेण न केवलं वायुजीवविराधना जायते, किन्तु सर्वदिक्संचारिणां संपातिमजीवानामन्येषां च बहुविधाना हिंसाऽपि दुर्निवारा भवतीति भावः ॥ सू० ५ ॥

एवं वायुकायस्य सचित्तत्वं विदित्वा मुनित्वप्राप्तये त्रिकरण–त्रियोगैस्तत्समारम्भो वर्जनीय इत्याशयेनाह—'एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारम्भमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति।

मूर्छित हो जाते हैं–उनकी चेतना नष्ट हो जाती है, और जो मूर्छित हो जाते हैं वे प्राणों से रहित हो जाते हैं अर्थात् मर जाते हैं ।

वायुकाय के शस्त्र का आरम्भ करने से अकेले वायुकाय की ही विराधना नहीं होती वरन् सभी दिशाओं में फिरने वाले संपातिम जीवों की तथा अन्य अनेक प्रकार के जीवों की हिंसा होना भी अनिवार्य है ॥ सू० ५ ॥

इस प्रकार वायुकाय की सचित्तता समझकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन करण तीन योग से वायुकाय का समारम्भ त्यागने योग्य है । इस आशय से सूत्रकार कहते है—**'एत्थ सत्थं.'** इत्यादि ।

मूलार्थ—वायुकाय के विषय में शस्त्र का व्यापार करने वाला इन व्यापारों

થઈ જાય છે–તેની ચેતના નાશ પામી જાય છે અને જે મૂર્છિત થઈ જાય છે તે પ્રાણોથી રહિત પણ થઈ જાય છે અર્થાત્ મરણ પામે છે

વાયુકાયના શસ્ત્રનો આરંભ કરવાથી, એકલા વાયુકાયના જીવોનીજ વિરાધના થાય છે એટલુજ નહિ પરન્તુ સર્વ દિશાઓમાં ફરવાવાળા સંપાતિમ જીવોની તથા અન્ય અનેક પ્રકારના જીવોની ઘાત થવી તે પણ અનિવાર્ય છે ॥સૂ. ૫॥

આ પ્રમાણે વાયુકાયની સચિત્તતા સમજીને સાધુતા પ્રાપ્ત કરવા માટે ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી વાયુકાયનો સમારંભ ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે. એ આશયથી સૂત્રકાર કહે છે–'एत्थ सत्थं' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—વાયુકાયના વિષયમાં શસ્ત્રનો વ્યાપાર કરવાવાળાઓ એ વ્યાપારોને

एत्थं सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति। तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वाउसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं वाउसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे वाउसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा, जस्सेते वाउसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्ति बेमि ॥ सू० ६ ॥

छाया—

अत्र शस्त्रं समारम्भमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति। अत्र शस्त्रमसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति। तं परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं वायुशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैर्वायुशस्त्रं समारम्भयेत्, नैवान्यान् वायुशस्त्रं समारम्भमाणान् समनुजानीयात्। यस्यैते वायुशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ६ ॥

टीका—

अत्र=अस्मिन् वायुकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं समारभमाणस्य=व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरणत्रियोगैः कृता आरम्भाः=वायुकायोपमर्दनरूपाः

को कर्मबंध का कारण नहीं समझता। वायुकाय में शस्त्र का व्यापार न करने वाला इन व्यापारों को कर्मबंध का कारण समझता है। उसे जानकर विवेकी पुरुष स्वयं वायु शस्त्र का आरम्भ न करे, दूसरों से वायुशस्त्र का आरम्भ न कराये और वायुशस्त्र का आरम्भ करने वालों का अनुमोदन न करे। जो वायुकाय के शस्त्र के व्यापार को जानता है वही मुनि है, वही सावद्य व्यापार का त्यागी है। ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—वायुकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का उपयोग करने वाला तीन करण तीन योग से किये जाने वाले और वायुकाय के घातक सावद्य व्यापारों को कर्मबंध

કર્મબંધનું કારણ સમજતો નથી, વાયુકાયમાં શસ્ત્રોનો વ્યાપાર નહિ કરવાવાળા તે વ્યાપારને કર્મબંધનું કારણ સમજે છે તેને જાણીને વિવેકી પુરુષ પોતે વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરે નહિ, બીજા પાસે વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરાવે નહિ, અને વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે નહિ. જે વાયુકાયના શસ્ત્રોના વ્યાપારને જાણે છે તેજ મુનિ છે તેજ સાવદ્ય વ્યાપારના ત્યાગી છે આવું-(આ પ્રમાણે) હું કહું છુ ॥ સૂ. ૬ ॥

ટીકાર્થ—વાયુકાયના વિષયમાં પૂર્વોક્ત શસ્ત્રોનો ઉપયોગ કરવાવાળા ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી કરવામાં આવતા અને વાયુકાયના ઘાતક સાવદ્ય વ્યાપારોને કર્મબંધનું કારણ

सावद्यव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगताः भवन्ति ।

अत्र=अस्मिन्नेव वायुकाये, शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः, परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति, तं प्रकारं दर्शयति–'तद् परिज्ञाय' इत्यादि । तद्=वायुकायारम्भणं, परिज्ञाय='कर्मबन्धस्य कारणं भवती' त्यवगत्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः स्वयं वायुशस्त्रं नैव समारभेत=नैव व्यापारयेत्, अन्यैर्वायुशस्त्रं नैव समारम्भयेत्, वायुशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत् ।

यस्यैते वायुशस्त्रसमारम्भाः=वायुकायमुद्दिश्य शस्त्रैस्तदुपमर्दनरूपाः

का कारण नहीं समझता । अर्थात् उसे यह ज्ञान नहीं होता कि–'इन पाप–कृत्यों से मुझे कर्म का बंध होगा'

लेकिन इसी वायुकाय के विषय में शस्त्रों का आरंभ न करने वाला सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है ।

ज्ञपरिज्ञापूर्वक प्रत्याख्यानपरिज्ञा जिस प्रकार होती है सो दिखलाते हैं–वायुकाय के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर हेयोपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष स्वयं वायुशस्त्र का आरंभ न करे, दूसरों से वायुशस्त्र का आरंभ न करावे और वायुशस्त्र का आरंभ करनेवालों का अनुमोदन न करे ।

जिसने वायुकायसंबंधी इन आरंभों का अर्थात् सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से

સમજતા નથી અર્થાત્ તેમને એ જ્ઞાન થયું નથી કે–'આ પાપકૃત્યોથી મને કર્મનો બંધ થશે' પરંતુ આ વાયુકાયના વિષયમાં શસ્ત્રોનો આરંભ નહિ કરવાવાળા સાવદ્ય વ્યાપારોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણે છે, અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી ત્યજી દે છે જ્ઞપરિજ્ઞાપૂર્વક પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા જે પ્રમાણે હોય છે. તે બતાવે છે–વાયુકાયના આરંભને કર્મબંધનું કારણ જાણીને હેય–ઉપાદેયનો વિવેક રાખવાવાળા પુરુષ પોતેજ વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરે નહિ બીજા પાસે વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરાવે નહિ. અને વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે નહિ.

જે વાયુકાયસંબંધી એ આરંભોને અર્થાત્ સાવદ્ય વ્યાપારોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી 'કર્મ-

सावद्यव्यापाराः, परिज्ञाता-ज्ञ-परिज्ञया बन्धकारणतया विदिता प्रत्याख्यान-परिज्ञया च परिवर्जिता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा-त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जित सकलसावद्यव्यापारः, मुनिर्भवति।

ननु त्रिकरणत्रियोगैर्वायुकायविराधनापरिहारेण यस्तु परिज्ञातकर्मा स एव मुनिर्भवतीत्युक्तं तत्कथमुपपद्यते ? यतो हि गच्छता तिष्ठता आसीनेन स्वपता भुञ्जानेन भाषमाणेन वायुकायविराधना दुष्परिहरा कथं तर्हि मुनिश्चरेत् तिष्ठेत् आसीत शयीत भुञ्जीत भाषेत ? इति। अत्रोच्यते-मुनिना सर्वं स्वकर्तव्यं यतनयैव संपादनीयम्, अत एवोक्तं भगवता—

कर्मबंध का कारण जान लिया और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है वही तीन करण और तीन योग से त्याग करने वाला मुनि होता है।

शंका—'तीन करण और तीन योग से वायुकाय की विराधना का त्याग करने वाले ही मुनि होते हैं' यह कथन किस प्रकार सही हो सकता है ? चलने, ठहरने, बैठने सोने आहार करने और भाषण करने में वायुकाय की विराधना से बच नहीं सकते। ऐसी दशा में मुनि कैसे चले, कैसे ठहरे कैसे बैठे, कैसे सोए, कैसे भोजन करे और कैसे बोले ?

समाधान—मुनि को अपनी सब क्रियाएँ यतनापूर्वक ही करनी चाहिए। भगवान्‌ने कहा है—

બન્ધનું કારણ છે એમ જાણી લીધું છે અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેને ત્યાગી દીધા છે તે ત્રણ કરણ અને ત્રણયોગથી ત્યાગ કરવાવાળા મુનિ હોય છે

શંકા— ત્રણ કરણ અને ત્રણયોગથી વાયુકાયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવાવાળા જ મુનિ હોય છે આ વચન કેવી રીતે સાચું હોઈ શકે છે ? ચાલતાં બેસતાં, રોકાતાં, સુતાં ભોજન કરતાં અને ભાષણ કરતાં વાયુકાયની વિરાધનાથી બચી શકાતું નથી. એવી દશામાં મુનિ કેવી રીતે ચાલે કેવી રીતે બેસે, કેવી રીતે રોકાય, કેવી રીતે સુવે, કેવી રીતે ભોજન કરે અને કેવી રીતે બોલે ?

સમાધાન—મુનિએ પોતાની સવ ક્રિયાઓ યતનાપૂર્વક કરવી જોઈએ, ભગવાને કહ્યું છે—

"जय चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई" ॥ १ ॥

ननु गमनागमनादौ यतनायाः सुसपाद्यत्वेऽपि भाषणयतना कथ विधेया? कथमपि भाषणे हि वायुकायविराधना परिहर्त्तुं न शक्यते, कथं मुनिर्यतनया भाषेत? भाषणे वायुकायविराधनया सार्द्धं सूक्ष्मत्र्यापिसपातिमजीवानामपि विराधनाऽवश्यम्भाविनी, तेषां वायुवेगसमाक्रान्तानामाहत्य संपतनेन, वायुसंस्पर्शेन च संघात पर्यापत्त्य-पद्रावणान्त भवतीत्यत्रैवोद्देशेऽभिहितत्वात्? इति चेदुच्यते—

मुखवस्त्रिकाबन्धनं भाषणयतना भगवता प्रतिबोधिता, एष वायुकाय-

"यतनापूर्वक चले, यतनापूर्वक खडा रहे, यतनापूर्वक बैठे, यतनापूर्वक सोए, यतनापूर्वक भोजन करे और यतनापूर्वक बोले तो (साधु) पापकर्म का बध नहीं करता है" ॥१॥

शङ्का—जाने-आने में यतना सरलता से हो सकती है मगर बोलने की यतना किस प्रकार करनी चाहिए? बोलने में वायुकाय की विराधना कीसी भी प्रकार नहीं टल सक्ती तो मुनि किस प्रकार भाषण करे?, भाषण करने में वायुकाय की विराधना के साथ सर्वत्र व्याप्त छोटे-छोटे सपातिम जीवों की विराधना भी अवश्य होती है। इसी उद्देश में बतलाया गया है कि-सपातिम जीव वायु के वेग से खिंचकर आ पडते हैं और वायु के स्पर्श से सघात को प्राप्त होते हैं, मूर्छित्त हो जाते हैं और मर भी जाते हैं।

समाधान—भगवान् ने मुखवस्त्रिका बाँधना भाषणी की यतना बतलाई है।

'યતનાપૂર્વક ચાલે, યતનાપૂર્વક બેસે, યતનાપૂર્વક રોકાય, યતનાપૂર્વક સુવે, યતનાપૂર્વ ભોજન કરે, અને યતનાપૂર્વક બોલે તો (સાધુ) પાપ કર્મનો બંધ કરતા નથી ॥૧॥

શંકા—જવા આવવામાં યતના સરલતાપૂર્વક થઈ શકે છે, પરંતુ બોલવાની યતના કેવી રીતે કરવી જોઈએ? બોલવામાં વાયુકાયની વિરાધના કોઈ પણ પ્રકારથી ટળી શકતી નથી, તો મુનિ કેવી રીતે ભાષણ કરે? ભાષણ કરવામા વાયુકાયની વિરાધનાની સાથે સર્વત્ર વ્યાપ્ત નાના-નાના સંપાતિમ જીવોની વિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે આ ઉદ્દેશમાં બતાવવામાં આવ્યુ છે કે-સંપાતિમ જીવ વાયુના વેગથી ખેંચાઈને આવી પડે છે, અને વાયુના સ્પર્શથી સંઘાત-(સમુદાય)ને પામે છે, મૂર્છિત થઈ જાય છે અને મરણ પણ પામે છે

સમાધાન-ભગવાને મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી તે ભાષણની યતના બતાવી છે આ વાયુકાયનો

समारम्भः ग्रन्थमोहमारनरकरूपस्तस्मादहितोऽयमिति मत्वा वायुकायविराधनया शान्तिमार्गावलम्बिनः संयमिनः प्राणान् धारयितुमपि नावकाङ्क्षन्तीत्यस्मिन्नुद्देशे समुपदिशता भगवता भाषणयतनारूपं मुखवस्त्रिकाबन्धनमिति सूचितम्। उक्तञ्च समुत्थानसूत्रे—

"तओ पच्छा गोयमा! सलिंगे मुहपत्तिं मुहेण सद्धिं बंधे ॥ १ ॥

मुहपत्तीः णं भंते! किंपमाणा? गोयमा! मुहप्पमाणा मुहपत्ती। मुहपत्ती णं भंते! कस्स वत्थस्स करे? गोयमा! एगस्सवि सेयवत्थस्स णं अट्ठपुडलाए मुहपत्तिं करेइ ॥ २ ॥

कस्सट्ठं मुहपत्तीए णं अट्ठ पुडलाइं? गोयमा! अट्ठकम्मखयट्ठं ॥

मुहपत्ती णं भंते!, कहं बंधे?, गोयमा! एगकरोण दुचक्कुप्पमाणेण दोरेण सद्धिं मुहे बंधेइ। मुहपत्तीए णं भंते! के अट्ठे?, गोयमा! जम्हं मुहजत्ते सह वहति से तेणट्ठेण मुहपत्ती। कस्सट्ठं भंते! मुहपत्तिं मुहेणसद्धिं बंधे?, गोयमा! सलिंगवाउ जीवरक्खणट्ठं ॥ ३ ॥

जइ णं भंते! मुहपत्ती वाउजीवरक्खणट्ठाए तो किं सुहुमवाउकायजीवरक्खणट्ठाए वा बायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए वा? गोयमा! णोत्ति सुहुमवाउकायजीवरक्खणट्ठाए बायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए। णो-त्ति अविसेसं, एवं ते सव्वेवि अरिहंता पवुच्चंति ॥ ४ ॥" इति।

यह वायुकाय का समारंभ ग्रन्थ है, मोह है, मार है, नरक है और इस कारण अहितकारी है, अत एव शान्ति-मोक्षमार्ग का अवलम्बन करने वाले संयमी वायुकाय की विराधना करके अपने प्राणों को भी इच्छा नहीं करते। इसी उद्देश में भगवान् ने उपदेश देते हुए भाषा यतनारूप मुखवस्त्रिका का बांधना सूचित किया है। समुत्थान सूत्र में कहा भी है—

સમારંભ ગ્રંથ છે, મોહ છે, માર છે, નરક છે અને તે કારણે અહિતકારી છે એટલા માટે શાંતિ-મોક્ષ માર્ગનું અવલંબન કરવાવાળા સંયમી વાયુકાયની વિરાધના કરીને પોતાના પ્રાણની પણ ઇચ્છા કરતા નથી. આ ઉદ્દેશામાં ભગવાને ઉપદેશ આપતા થકા ભાષા યતનારૂપ મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાની સૂચના કરી છે.

સમુત્થાનસૂત્રમાં કહ્યું પણ છે:—

"जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई" ॥ १ ॥

ननु गमनागमनादौ यतनायाः सुसंपाद्यत्वेऽपि भाषणयतना कथं विधेया? कथमपि भाषणे हि वायुकायविराधना परिहर्तुं न शक्यते, कथं मुनिर्यतनया भाषेत? भाषणे वायुकायविराधनया सार्द्धं सूक्ष्मव्यापिसपातिमजीवानामपि विराधनाऽवश्यम्भाविनी, तेषां वायुवेगसमाकृष्टानामाहत्य संपतनेन, वायुसंस्पर्शेन च संघात पर्यापत्त्य-पद्रावणान्त भवतीत्यत्रैवोद्देशेऽभिहितत्वात्? इति चेदुच्यते—

मुखवस्त्रिकाबधनं भाषणयतना भगवता प्रतिबोधिता, एष वायुकाय-

"यतनापूर्वक चले, यतनापूर्वक खडा रहे, यतनापूर्वक बैठे, यतनापूर्वक सोए, यतनापूर्वक भोजन करे और यतनापूर्वक बोले तो (साधु) पापकर्म का बध नहीं करता है" ॥१॥

शङ्का——जाने–आने में यतना सरलता से हो सकती है मगर बोलने की यतना किस प्रकार करनी चाहिए? बोलने में वायुकाय की विराधना कीसी भी प्रकार नहीं टल सकती तो मुनि किस प्रकार भाषण करे?, भाषण करने में वायुकाय की विराधना के साथ सर्वत्र व्याप्त छोटे–छोटे सपातिम जीवों की विराधना भी अवश्य होती है। इसी उद्देश में बतलाया गया है कि–सपातिम जीव वायु के वेग से खिंचकर आ पडते हैं और वायु के स्पर्श से सघात को प्राप्त होते हैं, मूर्छित हो जाते हैं और मर भी जाते हैं।

समाधान——भगवान् ने मुखवस्त्रिका बाँधना भाषणी की यतना बतलाई है।

'यतनापूर्वक चाले, यतनापूर्वक બેસે, યતનાપૂર્વક રોકાય, યતનાપૂર્વક સુવે, યતનાપૂર્વ ભોજન કરે, અને યતનાપૂર્વક બોલે તો (સાધુ) પાપ કર્મનો બંધ કરતા નથી ॥૧॥

શંકા—જવા આવવામાં યતના સરલતાપૂર્વક થઈ શકે છે, પરંતુ બોલવાની યતના કેવી રીતે કરવી જોઈએ? બોલવામાં વાયુકાયની વિરાધના કોઈ પણ પ્રકારથી ટળી શકતી નથી, તો મુનિ કેવી રીતે ભાષણ કરે? ભાષણ કરવામાં વાયુકાયની વિરાધનાની સાથે સર્વત્ર વ્યાપ્ત નાના–નાના સંપાતિમ જીવોની વિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે આ ઉદ્દેશમા બતાવવામાં આવ્યું છે કે–સંપાતિમ જીવ વાયુના વેગથી ખેંચાઈને આવી પડે છે, અને વાયુના સ્પર્શથી સંઘાત–(સમુદાય)ને પામે છે, મૂર્છિત થઈ જાય છે અને મરણ પણ પામે છે

સમાધાન–ભગવાને મુખવસ્ત્રિકા બાધવી તે ભાષણની યતના બતાવી છે આ વાયુકાયનો

प्रमाणदवरकेण सार्द्धं मुखे बध्नीयात् मुखपत्र्या भदन्त ! कोऽर्थः ?, गौतम ! यस्मात्तु मुखान्ते सदा वर्तते तेनार्थेन मुखपत्री । कस्मै अर्थाय भदन्त ! मुखपत्रीं मुखेन सार्द्धं बध्नीयात् ?, गौतम ! स्वलिङ्गवायुजीवरक्षणार्थम् ॥ ३ ॥

यदि खलु भदन्त ! मुखपत्री वायुजीवरक्षणार्थाय तर्हि सूक्ष्मवायुकायजीवरक्षणार्थाय वा बादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय ? गौतम ! नो इति सूक्ष्मवायुकायजीवरक्षणार्थाय, (किन्तु) बादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय, नो इति अविशेषम्, एवं ते सर्वेऽपि अर्हन्तः ब्रुवन्ति ॥ ४ ॥ इति ।

संप्रति केचिन्मुनिम्मन्या मुखवस्त्रिकाबन्धनं प्रतिषेधयन्ति तेषामाचार्यास्तु

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती का अर्थ क्या है ?

उत्तर—यह सदैव मुँह पर बंधी रहती है इस लिए यह मुँहपत्ती कहलाती है ।

प्रश्न—किस प्रयोजन से मुँहपत्ती मुख पर बाँधनी चाहिए ?

उत्तर—मुँहपत्ती बाँधना साधु का स्वलिंग है इस लिए, तथा वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए मुँहपत्ती बाँधी जाती है ॥३॥

प्रश्न—भगवान् अगर वायुकाय की रक्षा के लिए मुँहपत्ती है तो सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए है या बादर वायुकाय की रक्षा के लिए ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए नहीं किन्तु बादर वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए है । सभी अर्हन्त ऐसा ही कहते हैं " ॥४॥

आजकल अपने को मुनि मानने वाले कोई-कोई मुखवस्त्रिका के बाँधने का

પ્રશ્ન—ભગવન્ ! મુહપત્તીનો અર્થ શું છે ?

ઉત્તર—ગૌતમ ! તે હમેશાં મુખપર બાંધી રહે છે તેથી તે મુહપત્તી કહેવાય છે

પ્રશ્ન—શું પ્રયોજનથી મુહપત્તી મુખપર બાંધવી જોઇએ ?

ઉત્તર—મુહપત્તી બાંધવી તે સાધુનું સ્વલિંગ છે એ માટે, તથા વાયુકાયના જીવોની રક્ષા માટે મુહપત્તી બાંધે. (૩)

પ્રશ્ન—ભગવન્ ! અગર વાયુકાયની રક્ષા માટે, મુહપત્તી છે તો શું સૂક્ષ્મ વાયુકાયની રક્ષા માટે છે અથવા બાદર વાયુકાયની રક્ષા માટે છે ?

ઉત્તર—સૂક્ષ્મ વાયુકાયની રક્ષા માટે નહિ પરન્તુ બાદર વાયુકાયના જીવોની રક્ષા માટે છે સર્વ અર્હન્ત એ પ્રમાણેજ કહે છે (૪)

આજ કાલ પોતાને મુનિ માનવાવાળા કોઈ-કોઈ મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાનો નિષેધ

मुखवस्त्रिकाबन्धन स्वीकुर्वन्त्येव। उक्तश्च जिनमतिशिष्यपूर्णभद्रगणिकृतातिमुक्तक-चरित्रे (श्लोकेषु ८०-८१-८२)—

"अथानन्यमुखस्तिष्ठन्, पुरतो निश्चलासनः।
प्राञ्जलिर्वदनद्वारे, दधानो मुखवस्त्रिकाम् ॥ ८० ॥

इत्यादि यावत्—

शुश्रावासौ श्रुतस्यार्थं,-मतिमुक्तमुनिर्मुदा" ॥ २ ॥ इति

विक्रमसवत्सरे द्व्यशीत्यधिकद्वादशशत (१२८२) परिमिते पूर्णभद्रगणिना विरचितोऽयमतिमुक्तकचरित्रनाधेयो ग्रन्थः, यस्यास्मिन् विक्रमसवत्सरे द्व्यधिकद्विसहस्र (२००२) परिमिते विंशत्यधिकसप्तशत (७२०) वर्षाणि व्यतीतानि,इतश्च स्फुटमेतदवगम्यते मुखवस्त्रिकाबन्धन-सादर परिगृहीतं तेषामाचार्यैस्तदनुयायिभिश्च।

निषेध करते हैं। परन्तु उनके आचार्य मुखवस्त्रिका बाधना स्वीकार करते हैं। जिनपति के शिष्यपूर्णभद्रगणिविरचित 'अतिमुक्तकचरित्र' (श्लोक ८०-८१-८२) में कहा है—

"पर-पदार्थों में सुख न मानने वाला, निश्चल आसन से सामने हाथ जोडकर मुख पर मुँहपत्ती धारण किये हुए अतिमुक्तक मुनिने श्रुतका अर्थ सुना ॥८०-८२॥

विक्रम सवत १२८२ में पूर्णभद्र गणिने यह अतिमुक्तकचरित्र नामक ग्रथ लिखा है। इस सवत् २००२ तक उसे ७२० वर्ष हो चुके हैं। इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनके आचार्योंने और उनके अनुयायियोंने मुखवस्त्रिका का बाँधना आदरपूर्वक अगीकार किया है।

કરે છે પરન્તુ તેમના આચાર્ય મુખવસ્ત્રિકા બાધવાનુ સ્વીકાર કરે છે જિનપતિના શિષ્ય પૂર્ણભદ્રગણિ-વિરચિત 'અતિમુક્તકચરિત્ર'મા શ્લોક ૮૦-૮૧-૮૨મા કહ્યું છે—

પર પદાર્થોમા સુખ નહિ માનવાવાળા નિશ્ચલ આસનથી સામે હાથ જોડીને મુખપર મુહપત્તી ધારણ કરેલા 'અતિમુક્તક' મુનિએ શ્રુતનો અર્થ સાભળ્યો ॥૮૦-૮૨॥

વિક્રમ સવત્ ૧૨૮૨મા પૂર્ણભદ્ર ગણિએ આ અતિમુકતકચરિત્ર નામનો ગ્રથ લખ્યો છે આ સવત્ ૨૦૦૨ સુધીમા તેને ૭૨૦ વર્ષ વ્યતીત થઈ ચૂકયા છે એથી સ્પષ્ટ જાણુમા આવે છે કે-તેમના આચાર્યોએ અને તેમના અનુયાયિઓએ મુખવસ્ત્રિકા બાધવાનુ આદરપૂર્વક અગીકાર કર્યું છે

अपरञ्च जिनपतिशिष्य कृत विरचिते सनत्कुमारचरित्रे सनत्कुमारस्यैव तृतीय-पूर्वभविक—'विक्रमयशो'-नृपवर्णनेऽभिहितम्—

" मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकश्च,
कृपाम्बु लेभे विरजा द्विजौघैः ।
निषेवितः मान्तनिविष्टराज,—
हंसीव विभ्राजि सरः श्रियं यः ॥ १ ॥ "

सनत्कुमारः, तृतीयपूर्वजन्मनि विक्रमयशो नाम नृपोऽभवत् । स च परिषदि धर्मकथामाकर्णयितुं यथोपविष्टस्तद्वर्णनं कुर्वन्नाह—

" मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकश्च " इत्यादि । व्याख्या—इन्दुरिव मुखं मुखेन्दुः, मुखेन्दौ राजन्ती मुखवस्त्रिका यस्य स मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकः, मुखोपरिनिबद्धातिशुक्लवस्त्रविनिर्मितदेदीप्यमानमुखवस्त्रिकः । विरजाः=निर्मलान्तः करणः,

---

इसके अतिरिक्त जिनपति के शिष्य द्वारा रचित सनत्कुमारचरित्र में सनत्कुमार के तीसरे पूर्वभववर्ती विक्रमयश नामक राजा का वर्णन करते हुए कहा है—

सनत्कुमार अपने तृतीय पूर्वभव में विक्रमयश नामक राजा था । वह परिषद् में धर्मकथा सुनने के लिए जिस प्रकार बैठा था उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—'मुखेन्दु' इत्यादि । इसकी व्याख्या इस प्रकार है:—

जिसके मुखचन्द्र पर मुखवस्त्रिका सुशोभित थी अर्थात् मुख के ऊपर बँधी हुई, सफेद वस्त्र की बनी हुई मुखवस्त्रिका से जिसका मुख शोभायमान हो रहा था, जिसका अन्तःकरण निर्मल था और जो द्विजों के समूह से सेवित था ऐसा विक्रमयश—

એ સિવાય જિનપતિનાશિષ્ય દ્વારા રચિત સનત્કુમારચરિત્રમાં સનત્કુમારના ત્રીજા પૂર્વભવવર્તી 'વિક્રમયશ' નામના રાજાનું વર્ણન કરતા થકા કહે છે કે—

સનત્કુમાર પોતાના ત્રીજા પૂર્વભવમાં વિક્રમયશ નામના રાજા હતા, તે પરિષદમાં (સભામાં) ધર્મકથા સાંભળવા માટે જે પ્રમાણે બેઠા હતા તેનું વર્ણન કરતા થકા કહે છે કે-'મુખેન્દુ' ઈત્યાદિ. એની વ્યાખ્યા આ પ્રમાણે છે—

જેના મુખચન્દ્ર પર મુખવસ્ત્રિકા સુશોભિત હતી અર્થાત્ મુખ ઉપર બાંધેલી સફેદ વસ્ત્રની બનેલી મુખવસ્ત્રિકાથી જેનું મુખ શોભાયમાન થઈ રહ્યું હતું જેનું અન્તઃકરણ નિર્મલ હતું, અને જે દ્વિજોના સમૂહથી સેવિત હતા, એવા વિક્રમયશ નામના રાજા

द्विजौघैः=द्विजसमूहैर्निषेवितः, यः=विक्रमयशो नृपः कथासु=धर्मकथापरिषत्सु श्रियं=शोभा छेभे=प्राप्तवान । किमिव ? प्रान्ते निविष्टा राजहंसी यस्य तद् प्रान्तनिविष्टराजहंसि, विभ्राजि=देदीप्यमानं सर इव ।

यथा प्रान्तनिविष्टया राजहंस्या विभ्राजमानं सरः श्रियं लभते तथा मुखोपरिनिबद्धदेदीप्यमानमुखवस्त्रिकया विक्रमयशो नृपः सदसि श्रियं लब्धवानित्यर्थः ।

करेण मुखवस्त्रिकाधारणे तु करतलाच्छादितमुखवस्त्रिकाया दीप्तिः समाच्छादिता स्यात्, कथं तर्हि ' राजन्मुखवस्त्रिकः '-इत्यत्र 'राजन्'-पदप्रयोगसंसूचितमुखवस्त्रिकागतप्रभायाः प्रकाशमानता तिरोहिता भवेत्, तर्हि राजहंसीप्रभया ' विभ्राजी '-ति सरोविशेषणेन साम्यमपि न सिद्धयेत् ।

नामक राजा धर्मकथा की परिषद् में शोभा को प्राप्त हुआ । कैसी शोभा को प्राप्त हुआ ? जैसे जिसके किनारे राजहंसी बैठी हो वह तालाव सुशोभित होता है ।

जिसके किनारे राजहंसी बैठी हो वह तालाव जैसे शोभित होता है उसी प्रकार मुख पर बंधी हुई और देदीप्यमान मुखवस्त्रिका से विक्रमयश राजा व्याख्यानपरिषद् में शोभित हुआ ।

अगर हाथ से मुखवस्त्रिका पकडी होती तो मुखवस्त्रिका की दीप्ति हथेली से छिप जाती । ऐसी स्थिति में ' .राजन्मुखवस्त्रिकः' इस पद में 'राजन्' शब्द के प्रयोग से मखवस्त्रिका की जो प्रभा सूचित की है वह प्रकाशमान कैसी होती ? फिर तो वह छिपी हुई प्रभा रहजाती ! और फिर सरोवर के किनारे बैठी हुई राजहंसिनी की उपमा भी ठीक नहीं बैठ सकती ।

ધર્મકથાની સભામા શોભાને પામ્યા છે કેવી શોભાને પામ્યા છે? જેમકે-જેના કિનારે રાજહંસી બેઠા હોય તે તળાવ સુશોભિત થાય છે

જેના કિનારે રાજહંસી બેઠા હોય તે તળાવ જેવી રીતે સુશોભિત હોય છે તે પ્રમાણે મુખ પર બાધેલી અને ઝગમગાટ શોભાયમાન મુખવસ્ત્રિકાથી વિક્રમયશ રાજા વ્યાખ્યાપરિષદ્-(સભા)મા શોભતા હતા

અથવા હાથથી મુખવસ્ત્રિકા પકડી હોતે તો તે મુખવસ્ત્રિકાની દીપ્તિ-પ્રકાશ હથેલીથી ઢકાઈ જાત. એવી સ્થિતિમા 'राजन्मुखवस्त्रिक' આ પદમા 'राजन्' શબ્દના પ્રયોગથી મુખવસ્ત્રિકાની જે પ્રભા-(પ્રકાશ) સૂચિત કરી છે, તે પ્રકાશમાન કેવી રીતે થાત? પછી તો તે ઢકાએલી જેવી પ્રભા રહી જાત અને પછી સરોવરના કિનારે બેઠેલા રાજહંસીની ઉપમા બરાબર ઘટી શકત નહિ.

अपरञ्च सरसि राजहंसी यथा सवयाऽनावृता सती सरःशोभां मनयति तथ मुखवस्त्रिका नृपस्य प्रिय करोतीति तात्पर्यं करतलेन मुखवस्त्रिकाधारणे कथमपि नोपपद्यते।

तस्मादेतत्सनत्कुमारचरित्रपद्य विक्रमयशोनृपस्य सदोरकमुखवस्त्रिकाबन्धन मासीदिति सुस्पष्टमावेदयति।

अहो! महीयान् मोहमहिमा यत्स्वकीयगुरुवराणां सम्प्रदायवाक्यमपिसमुल्लङ्घयन्तो नवीना न कथमपित्रपन्ते।

विस्तरतस्तु जिज्ञासुभिर्दशवैकालिकसूत्रस्य मत्कृताचारमणिमञ्जूषाटीकायां मयमाध्ययने विलोकनीयम्।

इसके अतिरिक्त—जैसे राजहंसिनी बिलकुल उघाड़ी होकर ही सरोवर की शोभा बढ़ाती है उसी प्रकार मुखवस्त्रिका राजा की शोभा बढ़ाती थी। यह तात्पर्य हाथ से मुख वस्त्रिका धारण करने में किसी भी प्रकार नहीं घट सकता।

अतः सनत्कुमारचरित्र का यह पद्य स्पष्टरूप से प्रकट करता है कि—विक्रम यशा राजा के मुख पर डोरासहित मुखवस्त्रिका बंधी थी।

अहो! मोह की महिमा महान है जिस के प्रभाव से आधुनिक लोग अपने गुरुओं के परम्परा वाक्य का उल्लंघन करते हुए भी लज्जित नहीं होते।

विस्तार से समझने की इच्छा हमने वाले मेरी रची हुई दशवैकालिक सूत्र की 'आचारमणिमञ्जूषा'—टीका के अन्दर पहले अध्ययन में देख सकते हैं।

એ સિવાય–જેવી રીતે રાજહંસિની એકદમ ઉઘાડી થઈને જ સરોવરની શોભા વધારે છે તેવીજ રીતે મુખવસ્ત્રિકા રાજાની શોભા વધારતી હતી. આ તાત્પર્ય હાથથી મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરે તો–અથવા કરવાથી કોઈ પણ પ્રકારે બની શકે નહિ

એ કારણથી સનત્કુમારચરિત્રનું એ પદ સ્પષ્ટરૂપથી બતાવી આપે છે કે– વિક્રમયશા રાજાના મુખપર દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકા બાંધી હતી.

અહો! મોહનો મહિમા મહાન્ છે એના પ્રભાવથી આધુનિક લોક પોતાના ગુરુઓના પરંપરા વાક્યનું ઉલ્લંઘન કરતા પણ શરમાતા નથી.

વિસ્તારથી સમજવાની ઇચ્છા રાખનારાઓ મારી રચેલી દશવૈકાલિકસૂત્રની આચારમણિમંજૂષા –ટીકાની અંદર પહેલા અધ્યયનમાં જોઈ શકે છે

इति ब्रवीमि, इति=एतत्सर्वं ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

अथ षड्जीवनिकायारम्भकरणेन कर्मबन्धो भवतीत्याह—'एत्थपि' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थंपि जाण उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति, आरंभमाणाविणयं वयंति, छन्दोवणीया अज्झोववण्णा आरंभसत्ता पकरंति संगं ॥ सू० ७ ॥

छाया—

अत्रापि जानीहि उपादीयमानाः, ये आचारो न रमन्ते, आरभमाणा विनय वदन्ति, छन्दोपनीता अध्युपपन्नाः, आरम्भसक्ताः प्रकुर्वन्ति सङ्गम् ॥ सू० ७ ॥

सुधर्मा स्वामी कहते हैं—यह सब भगवान् के समीप जैसा सुना है वैसा कहता हूँ ॥ सू० ३ ॥

अब यह कहते हैं कि—षड्जीवनिकाय का आरंभ करने से कर्मबंध होता है:—'एत्थंपि.' इत्यादि ।

मूलार्थ—वायुकाय के विषय में भी आरंभ करने वाले, कर्मों से बद्ध होते हैं, ऐसा समझो । जो आचार में रमण नहीं करते आरम्भ करते हुए भी अपने को विनय (चारित्र) वाले मानते है, इच्छानुसार चलते है, गृद्ध हैं और आरम्भ में आसक्त हैं वे कर्मों उपार्जन करते हैं ॥ सू० ७ ॥

સુધર્મા સ્વામી કહે છે —આ સર્વ ભગવાનની સમીપમાં જેવું સાભળ્યુ છે તેવુંજ કહું છુ. ॥ ૬ ॥

હવે એ કહે છે કે—ષડ્જીવનિકાયનો આરંભ કરવાથી કર્મબંધ થાય છે—'एत्थंपि' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—વાયુકાયના વિષયમા પણ આરંભ કરવાવાળા, કર્મોથી બદ્ધ થાય છે એ પ્રમાણે સમજો જે આચારમા રમણ કરતા નથી, આરભ કરતા થકા પણ પોતાને વિનય (ચારિત્ર) વાળા માને છે, ઇચ્છાનુસાર ચાલે છે, ગૃદ્ધ છે, અને આરભમા આસકત છે, તે કર્મોનુ ઉપાર્જન કરે છે ॥ સૂ० ૭ ॥

टीका—

अत्रापि=एतस्मिन् वायुकायेऽपि, अपिशब्दात् अवशिष्टे पृथिव्यादिचतुष्के स्थावरे त्रसकाये च ये भोगलोलुपाः स्वार्थवशगाः आरम्भं कुर्वन्ति, ते उपादीयमानाः=ज्ञानावरणीयादिकर्मभिर्बध्यमाना भवन्तीत्येव जानीहि।

एकजीवारम्भप्रवृत्तः शेषजीवनिकायारम्भजनितकर्मभिर्बद्धो भवतीत्येवं विदीत्यर्थः। के पुनः पृथिव्याद्यारम्भकरणेन शेषजीवारम्भजन्यकर्मभिरपि बध्यमाना भवन्तीति जिज्ञासायामाह–'ये आचारे न रमन्ते' इति।

ये आचारे=ज्ञानदर्शनादिपञ्चविधाचारे न रमन्ते=न धृतिं कुर्वन्ति, तान् कर्मभिर्बध्यमानान् जानीहि। के पुनराचारे न रमन्ते? दण्डिशाक्यादयः।

कथमेतद्विज्ञायते? इति जिज्ञासायामाह–'आरम्भमाणा विनयं वदन्ति'

टीकार्थ—इस वायुकाय के विषय में भी–(अपि) शब्द से पृथ्वी आदि अन्य स्थावरों में तथा त्रसकाय में जो भोगों के लोलुप और स्वार्थपरायण होकर आरम्भ करते हैं वे ज्ञानावरण आदि कर्मों से बद्ध होते हैं, ऐसा समझो।

तात्पर्य यह है कि–एक जीव के आरम्भ में प्रवृत्ति करने वाला शेष जीवनिकायोंके आरम्भ से उत्पन्न होने वाले कर्मों से भी बद्ध होता है।

ऐसे कौन हैं जो पृथ्वी आदि एक कायका आरम्भ करके शेष जीवनिकायों के आरम्भ से होने वाले कर्मोंद्वारा बद्ध होते हैं? इस का समाधान करने के लिए कहते हैं–

जो ज्ञानाचार दर्शनाचार आदि पाँच आचारों में स्थिर नहीं होते उन्हें कर्मबंध होता है, ऐसा जानो। आचार में कौन स्थिर नहीं होते? दण्डी तथा शाक्य आदि।

यह कैसे ज्ञात हुआ? इसके उत्तर में कहते हैं–वे पृथ्वीकाय आदि की विराधना

टીકાર્થ—આ વાયુકાયના વિષયમાં પણ 'અપિ' શબ્દથી પૃથ્વી આદિ અન્ય સ્થાવરોમાં તથા ત્રસકાયમાં જે ભોગોના લાલચુ અને સ્વાર્થપરાયણ થઈને આરંભ કરે છે તે જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોથી બદ્ધ થાય છે એ પ્રમાણે સમજો.

તાત્પર્ય એ છે કે–એક જીવના આરંભમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા બાકીના જીવ-નિકાયોના આરંભથી ઉત્પન્ન થવાવાળા કર્મોથી પણ બદ્ધ થાય છે.

એવા કોણ છે કે જે પૃથ્વી આદિ એક કાયનો આરંભ કરીને બાકીના જીવ-નિકાયોના આરંભથી થનારા કર્મોદ્વારા બદ્ધ થાય છે? તેનું સમાધાન કરવા માટે કહે છે.–

જે જ્ઞાનાચાર-દર્શનાચાર આદિ પાંચ આચારોમાં સ્થિર નથી થતા તેને કર્મ બન્ધ થાય છે એ પ્રમાણે જાણો.

આચારમાં કોણ સ્થિર નથી રહેતા? દંડી અને શાક્ય આદિ.

એ કેવી રીતે જાણ્યું? તેના ઉત્તરમાં કહે છે–તે પૃથ્વીકાય આદિની વિરાધના

इति । आरभमाणाः, पृथिव्यादीन् पीडयन्तोऽपि विनय=कर्मणां विनयाद् विनयः संयमस्तं, वदन्ति='वयमेव संयमिसेवनपराः' इति निश्शङ्कं निगदन्तीत्यर्थः ।

ननु स्वात्मानं संयमिन मन्यमानास्ते कस्मात्पृथिव्यादिजीवविहिंसनपराः ? इति जिज्ञासायां हेतुगर्भविशेषणपदद्वयमाह–'छन्दोपनीताः' 'अध्युपपन्नाः' इति । 'छन्दोपनीताः'=छन्दः=स्वाभिप्रायः, तेनोपनीताः स्वतन्त्राः शास्त्रविरुद्धविचारशीला इत्यर्थः ।

यद्वा छन्दः–अभिप्रायः=इच्छा, विषयाभिलापस्तेनोपनीताः, तथा 'अध्युपपन्नाः,' अधि=अधिकम् अतिशयेन उपपन्नाः=तद्गतचित्ताः विषयसंनिविष्टचित्ताः विषयभोगार्थमातुरा इत्यर्थः । यतश्छन्दोपनीता अध्युपपन्नाश्च तस्मात्ते पृथिव्यादीन् विहिंसन्तीति भावः । एवं पृथिव्यादिहिंसनेन पुनः कर्मबन्धं प्राप्नोतीत्याह—'आरम्भसक्ताः' इत्यादि । आरम्भः=सावद्यव्यापारः,

---

करते हुए भी अपने आपको निश्शक होकर सयमी कहते है । वे यह मानते हैं कि हम ही सयम का सेवन करने में तत्पर हैं ।

वे लोग अपने आपको संयमी मानते हुए भी पृथ्वीकाय आदि के जीवों की हिंसा में तत्पर क्यों होते हैं ? ऐसी जिज्ञासा होने पर दो विशेषण कहते हैं, जिन में हेतु छिपा है– 'छन्दोपनीत' और 'अध्युपपन्न'

छन्द का अर्थ है–अपना अभिप्राय, उससे स्वतत्र अर्थात् शास्त्र से विरुद्ध विचार करने वाले । अथवा छन्द का अर्थ इच्छा है । कहाँ विषयभोगों की अभिलाषा को छन्द कहा है, उस में जो स्वतत्र हों । तथा अध्युपपन्न अर्थात् विषयों में अत्यन्त आसक्त–विषयभोगों के लिए आतुर । तात्पर्य यह है कि–छन्दोपनीत और अध्युपपन्न होने के कारण वे पृथ्वी आदि की हिंसा करते हैं और कर्मों का बंध करते हैं । आरम्भ

કરવા છતાય પણ પોતે–પોતાને નિશંક થઈને સયમી કહે છે તે એવુ માને છે કે–અમે પણ સંયમનું સેવન કરવામા તત્પર છીએ

તે લોક પોતે–પોતાને સયમી માનતા થકા પણ પૃથ્વીકાય આદિના જીવોની હિંસામા તત્પર શા માટે હોય છે? એવી જીજ્ઞાસા થતા બે વિશેષણ કહે છે જેમા હેતુ છુપાએલો છે 'छन्दोपनीत' અને 'अध्युपपन्न' 'છન્દ'નો અર્થ છે પોતાનો અભિપ્રાય તેનાથી સ્વતંત્ર અર્થાત્ શાસ્ત્રથી વિરૂદ્ધ વિચાર કરવાવાળા અથવા છન્દનો અર્થ ઇચ્છા છે. અહિં વિષયભોગોની અભિલાષાને છન્દ કહેલ છે તેમા જે સ્વતત્ર હોય તથા અધ્યુપપન્ન અર્થાત્ વિષયોમાં અત્યન્ત આસક્ત–વિષયભોગો માટે આતુર તાત્પર્ય એ છે કે છન્દોપનીત અને અધ્યુપપન્ન હોવાના કારણે તે પૃથ્વી આદિની હિંસા કરે છે અને કર્મોનો બધ કરે છે આરભ અર્થાત્–સાવદ્ય વ્યાપારમા પ્રવૃત્ત પુરુષ જ્ઞાનાવરણીય

तत्र सक्ताः=प्रवृत्ताः, सङ्गः=सज्यन्ते=श्लिष्यन्ते जीवा अनेनेति सङ्गः=ज्ञानावरणीयादिकं कर्म, तं सङ्गमकुर्वन्ति=समुत्पादयन्ति।

एवं षड्जीवनिकायारम्भकारिणः खलु कर्मबन्धनपराधीनतां समुपेत्य जन्म जरामरणेष्टवियोगानिष्टसंयोगेप्सिताऽसिद्धिविविधव्याधिजनितदुःख सङ्कुलेघोरतर संसारदावानले पुनः पुनः स्वात्मानमिन्धनीकुर्वन्तीति भावः ॥ सू० ७ ॥

अथ यस्तु पृथिव्यादिषड्जीवनिकायारम्भकरणाद्विनिवृत्तः स एव मुनिर्भवतीत्युद्देशार्थमुपसंहरन्नाह—' से वसुमं ' इत्यादि ।

मूलम्—

से वसुमं सव्वसमन्नागयपन्नाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं णो अण्णेसि ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन आत्मना अकरणीयं पापं कर्म नो अन्वेषयेत् ॥ सू० ८ ॥

अर्थात् सावद्य व्यापार में प्रवृत्त ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को उपार्जन करते हैं।

इस प्रकार षड्जीवनिकाय का आरम्भ करने वाले कर्मबन्धन के अधीन होकर जन्म मरण, इष्टवियोग अनिष्टसंयोग इष्ट की असिद्धि तथा विविध प्रकार की व्याधियों से उत्पन्न होने वाले दुःखों से व्याप्त, घोरतरसंसाररूपी दावानल में अपने आत्मा को ईंधन बनाते हैं ॥ सू० ७ ॥

जो पृथ्वी आदि षड्जीवनिकाय के आरम्भ से निवृत्त है वही मुनि होता है, इस उद्देश के अर्थ का उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं-'से वसुमं ' इत्यादि ।

मूलार्थ—वही वसुमान् है (सम्यक्त्व-चारित्रवान्-सम्यग्दृष्टि है) जो यथार्थ पदार्थों को जाननेवाले ज्ञानात्मा से पाप को अकरणीय समझकर नहीं करता है ॥ सू० ८ ॥

આદિ કર્મોનું ઉપાર્જન કરે છે

આ પ્રમાણે ષડ્જીવનિકાયનો આરંભ કરવાવાળા કર્મબંધનને આધીન થઈને જન્મ, જરા મરણ ઇષ્ટવિયોગ, અનિષ્ટસંયોગ, ઇચ્છેલી વસ્તુની અપ્રાપ્તિ, તથા વિવિધ પ્રકારની વ્યાધિઓથી ઉત્પન્ન થનારાં દુઃખોથી વ્યાપ્ત, ઘોરતર સંસારરૂપી દાવાનલમાં પોતાના આત્માને ઇંધન-(બળતણરૂપ) બનાવે છે ॥ સૂ૰ ૭॥

જે પૃથ્વી આદિ ષડ્જીવનિકાયના આરંભથી નિવૃત્ત છે તેજ મુનિ હોય છે આ ઉદ્દેશના અર્થનો ઉપસંહાર કરીને સૂત્રકાર કહે છે- से वसुमं ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—તેજ વસુમાન્ છે (સમ્યક્ત્વ-ચારિત્રવાન્ સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે) જે યથાર્થ પદાર્થોને જાણવાવાળા જ્ઞાનાત્માથી પાપને અકરણીય (કરવા યોગ્ય નથી એવું) સમજીને કરતા નથી ॥સૂ૰ ૮॥

टीका—

यस्तु षड्जीवनिकायारम्भनिवृत्त्या संयमपालनपरायणः, स वसुमान्, द्विविधानि हि वसूनि सन्ति द्रव्यभावभेदात्, तत्र द्रव्यवसूनि-सुवर्णादीनि, भाववसूनि-सम्यक्त्वादीनि, अत्र भाववसुतात्पर्यको वसुशब्दः, तानि वसूनि यस्य यस्मिन् वा सन्ति स वसुमानित्यर्थः, सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन=सर्वाणि समन्वागतानि प्रज्ञानानि यस्यात्मनः स सर्वसमन्वागतप्रज्ञानः=यथावस्थितविषय-ग्राहिसर्वविषयकज्ञानवान्, तेन।

यद्वा-सर्वेषु द्रव्यपर्यायेषु समन्वागतं=सम्यक्प्राप्त तत्तद्विषयमाकलय्य सर्व-द्रव्यपर्यायगतं प्रज्ञानं यस्य स सर्वसमन्वागतप्रज्ञानः, तेन, आत्मना, अकरणीयम्=अकर्तव्यम्, ऐहिकपारलौकिकसुखविघातकत्वादनाचरणीयम्, इति मत्वा, पापं कर्म=प्राणातिपात-मृषावादा-दत्तादान-मैथुन-परिग्रह-क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष

टीकार्थ—जो पुरुष षड्जीवनिकायसंबंधी आरम्भ का त्याग करके संयम के पालन में तत्पर होता है वही वसुमान् हैं। वसु के दो भेद हैं-(१) द्रव्यवसु और (२) भाववसु। स्वर्ण आदि धन द्रव्यवसु कहलाता है, और तप संयमादिरूप ऋद्धि को भाववसु कहते है। यहाँ 'वसु' शब्द से भाववसु ही समझना चाहिए। वसु जिसे प्राप्त हो वह वसुमान् है, अर्थात् सम्यक्त्व आदि से युक्त पुरुष वसुमान् कहलाता है।

जो वस्तु जैसी हैं उसे उसी रूप में जानने वाला सर्वग्राही ज्ञान 'सर्वसमन्वागत प्रज्ञान' कहलाता है। अथवा समस्त द्रव्यों और पर्यायों को यथार्थरूप से जानने वाला ज्ञान 'सर्वसमन्वागत प्रज्ञान' कहलाता है। ऐसे ज्ञानरूप आत्मा से पाप को इस लोक तथा परलोकसंबंधी सुखों का घातक होने से अकर्तव्य समझकर (१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) मैथुन। (५) परिग्रह (६) क्रोध, (७) मान (८) माया (९) लोभ

ટીકાર્થ—જે પુરૂષ ષડ્જીવનિકાયસંબંધી આરંભનો ત્યાગ કરીને સંયમના પાલનમાં તત્પર થાય છે તેજ વસુમાન્ (સમ્યગ્દષ્ટિ) છે વસુના બે ભેદ છે. (૧) દ્રવ્ય-વસુ અને (૨) ભાવવસુ, સુવર્ણ આદિ ધન દ્રવ્યવસુ કહેવાય છે અને સમ્યક્ત્વ આદિ રૂપ ઋદ્ધિને ભાવવસુ કહે છે અહિં 'વસુ' શબ્દથી ભાવવસુ જ સમજવું જોઇએ વસુ જેને પ્રાપ્ત હોય તે વસુમાન્ છે અર્થાત્ સમ્યક્ત્વ આદિથી યુક્ત પુરૂષ વસુમાન્ કહેવાય છે

જે વસ્તુ જેવી છે તેને તેવા રૂપમાં જાણવાવાળા સર્વગ્રાહી જ્ઞાન 'સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન, કહેવાય છે અથવા સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને યથાર્થ રૂપથી જાણવાવાળું જ્ઞાન 'સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન' કહેવાય છે એવા જ્ઞાનરૂપ આત્માથી પાપને આ લોક તથા પરલોક-સંબંધી સુખોનું ઘાતક હોવાથી અકર્તવ્ય સમજીને (૧) પ્રાણાતિપાત, (૨) મૃષાવાદ, (૩) અદત્તાદાન, (૪) મૈથુન, (૫) પરિગ્રહ, (૬) ક્રોધ, (૭) માન,

-कलहाऽभ्याख्यान-पैशुन्य-परपरिवाद-रत्यरति-मायामृषा-मिथ्या-दर्शनशल्या मिधानमष्टादशप्रकारं नाशपयेत्-न स्वयं कुर्यात्, न चान्यैः कारयेत्, न चान्यं कुर्वाणमनुमोदयेदित्यर्थः ।

योऽयमात्मा स्वकीयप्रज्ञानेन सर्वद्रव्यपर्यायसमाकलनयोग्यतां धारयति, येन च मोक्षमार्गावलम्बनतः शिवपदमपि शक्यते गन्तुम्, तस्यात्मनः पुनरधःपतन कारित्वात् पापं कर्म सर्वथा परित्याज्यमिति विभाव्य षड्जीवनिकायारम्भकरणा त्सर्वथा विनिवर्तितव्यमिति भावः ॥ सू० ८ ॥

षड्जीवनिकायारम्भस्य सर्वथा परिहार एव मुनित्वं प्रापयतीत्याह—'तं परिण्णाय' इत्यादि ।

मूलम्—

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभेज्जा णेवऽण्णेहिं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे छज्जीवनिकायसत्थं

(१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशुन्य (१५) परपरिवाद (१६) रति-अरति (१७) माया-मृषा और (१८) मिथ्यादर्शनशल्य अठारह प्रकार का पाप जो स्वयं नहीं करता है, दूसरों से नहीं कराता है और दूसरे करने वाले का अनुमोदन नहीं करता है वही पुरुष बुद्धिमान् है ।

तात्पर्य यह है कि-जो आत्मा अपने प्रज्ञान से समस्त द्रव्यों और पर्यायों को भली भांति जानने की योग्यता धारण करता है और जो मोक्ष-मार्ग का आश्रय लेकर मुक्तिपद भी प्राप्त कर सकता है उसको आत्मा का अधःपतन करने वाले पापकर्म सर्वथा त्याज्य हैं ऐसा विचार करके षड्जीवनिकाय के आरंभ से विरत हो जाना चाहिए ॥सू० ८॥

षट्काय के आरंभ का त्याग ही साधुता प्राप्त कराता है, यह बात आगे कहते हैं-'तं परिण्णाय' इत्यादि ।

(८) माया (९) लोभ (१०) राग, (११) द्वेष, (१२) કલહ (१३) અભ્યાખ્યાન, (१४) પૈશુન્ય (१५) પરપરિવાદ, (१६) રતિ-અરતિ, (१७) માયા-મૃષા અને (१८) મિથ્યાદર્શનરૂપ અઢાર પ્રકારનાં જે પાપ તેને પોતે કરતા નથી, બીજા પાસે કરાવતા નથી અને બીજા કરવાવાળાને અનુમોદન આપતા નથી. તેજ પુરૂષ બુદ્ધિમાન્ છે

તાત્પર્ય એ છે કે—જે આત્મા પોતાના અજ્ઞાનથી સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને રૂડી રીતે જાણવાની યોગ્યતા ધારણ કરે છે અને જે મોક્ષમાર્ગનો આશ્રય લઈને મુક્તિપદ પણ પ્રાપ્ત કરી શકે છે તેને, આત્માનું અધઃપતન કરનારાં પાપકૃત્ય સર્વથા ત્યાજ્ય છે એવો વિચાર કરીને ષડ્જીવનિકાયના આરંભથી નિવૃત્ત થઈ જવું જોઈએ. ॥સૂ૦ ८॥

ષટ્કાયના આરંભનો ત્યાગજ સાધુતા પ્રાપ્ત કરાવે છે એ વાત આગળ કહે છે— 'तं परिण्णाय' ઈત્યાદિ.

समारंभंते समणुजाणेज्जा। जस्सेते छज्जीवनिकायसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्ति बेमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सत्तमो उद्देसो समत्तो ॥ १। ७ ॥

॥ आयारसुत्ते पढमज्झयण समत्तं ॥ १ ॥

छाया—

तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं षड्जीवनिकायशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैः षड्जीवनिकायशस्त्र समारम्भयेत्, नैवान्यान् षड्जीवनिकायशस्त्र समारभमाणान् समनुजानीयात्। यस्यैते षड्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सप्तम उद्देशः समाप्तः ॥१-७॥

॥ आचारसूत्रे प्रथमाध्ययनं समाप्तम् ॥

टीका—

तत्=षड्जीवनिकायारम्भणं, परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया 'कर्मबन्धस्य कारणं भवती'ति बुद्ध्वा मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं षड्जीवनिकायशस्त्रं समारभेत। अन्यैर्नैव समारम्भयेत्=नैव प्रयोजयेत्। अन्यान् षड्जीवनिकायशस्त्र समारभमाणान् नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत्।

यस्यैते षड्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः-षड्जीवनिकायानां शस्त्रैः=

मूलार्थ—यह वात जानकर बुद्धिमान् पुरुष षड्जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का समारंभ न करे, दूसरों से षड्जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का समारंभ न करावे, और षड्-जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का समारंभ करने वालों का अनुमोदन न करे। षड्जीवनिकाय-संबंधी आरंभ को जो बंध का कारण जान लेता है, वही मुनि है और वही परिज्ञातकर्मा है। ऐसा मैं कहता हूँ ॥सू० ८॥

टीकार्थ—षड्जीवनिकाय के आरम्भ को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जानकर हेय-उपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष षड्जीवनिकाय के शस्त्र का स्वयं आरम्भ न करे, दूसरों से न करावे और आरम्भ करने वालों की अनुमोदना न करे।

षड्जीवनिकायसंबंधी जो शस्त्र पहले बतलाये जा चुके हैं उनके द्वारा षड्जीवनिकाय को

મૂલાર્થ—એ વાત જાણીને બુદ્ધિમાન પુરૂષ ષડ્જીવનિકાયસંબંધી શસ્ત્રનો સમારંભ કરે નહિ, બીજા પાસે ષડ્જીવનિકાયસંબંધી શસ્ત્રનો સમારંભ કરાવે નહિ, અને ષડ્જીવનિકાયસંબંધી શસ્ત્રનો સમારંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે નહિ ષડ્જીવનિકાયસંબંધી આરંભને જે બંધનું કારણ જાણી લે છે તેજ મુનિ છે, અને તેજ પરિજ્ઞાતકર્મા છે એવું હું કહું છું ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ટીકાર્થ—ષડ્જીવનિકાયના આરંભને જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મબંધનું કારણ જાણીને હેય-ઉપાદેયનો વિવેક રાખવાવાળા પુરૂષ ષડ્જીવનિકાયના શસ્ત્રનો પોતે આરંભ કરે નહિ, બીજા પાસે કરાવે નહિ, અને આરંભ કરનારને અનુમોદન આપે નહિ.

ષડ્જીવનિકાયસંબંધી જે શસ્ત્ર પ્રથમ બતાવી આપ્યા છે ષડ્જીવનિકાયને

स्वस्वरूपेः समारम्भाः=पीडाकरसावद्यव्यापाराः परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जितसकलसावद्यव्यापारः, मुनिर्भवति । इति=एतत् सर्वम्, ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामि ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रे आचारचिन्तामणिटीकायां शस्त्रपरिज्ञाख्ये प्रथमाध्ययने सप्तमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १–७ ॥

पीड़ा पहुँचाने वाले सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है वही पुरुष तीन करण तीन योग से सावद्य व्यापारों का त्यागी मुनि होता है। यह सब भगवान् के मुखारविन्द से जैसा मैंने साक्षात् सुना है वैसा ही कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

॥ इति श्री आचाराङ्गसूत्रकी आचारचिन्तामणिटीका के हिन्दी-अनुवादमें प्रथम अध्ययनका सातवाँ उद्देश सम्पूर्ण ॥ ७ ॥

પીડા પહોંચાડનાવાળા સાવદ્ય વ્યાપારોને જે જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મબંધનું કારણ જાણીને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી ત્યાગે છે તે પુરૂષ ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી સાવદ્ય વ્યાપારોનો ત્યાગી મુનિ હોય છે. આ સર્વે ભગવાનના મુખારવિંદથી જેવું મેં સાક્ષાત્ સાંભળ્યું છે તેવુંજ કહું છું ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ઇતિ શ્રીઆચારાંગસૂત્રની 'આચારચિન્તામણિ' ટીકાના ગુજરાતી અનુવાદમાં પ્રથમ અધ્યયનનો સાતમો ઉદ્દેશ સમ્પૂર્ણ ॥ ૧–૭ ॥

आद्ये चाध्ययने प्ररूपितमिदं संसारचक्रेऽनिशं,
भ्राम्यन् दिक्षु विदिक्षु गच्छति ततश्चात्मा समागच्छति ।
इत्येव कथितं मही-जल-शिखि-प्राण-द्रुमाणां तथा,
जीवत्वं त्रस-कायिकस्यचतदारम्भे परिज्ञाऽपि च ॥ १ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलित-ललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालव्रति विरचितायाम् आचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्ता मणिटीकायां शस्त्रपरिज्ञाख्यं प्रथममध्ययन संपूर्णम् ॥ १ ॥

प्रथम अध्ययन में यह निरूपण किया गया है कि-आत्मा ससार चक्र में पडकर नाना दिशाओं में और नाना विदिशाओं में निरन्तर भ्रमण करता रहता है । साथ ही पृथ्वी, अप्, तेज, वायु वनस्पति और, त्रस की सचित्तता भी सिद्ध की गई है, और उनका आरम्भ करने में परिज्ञा भी प्रदर्शित की गई है ॥ १ ॥

॥ इति श्री-आचाराङ्गसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीका के हिन्दी अनुवाद में 'शस्त्रपरिज्ञा' नामक प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण ॥ १ ॥

પ્રથમ અધ્યયનમા એ નિરૂપણ કરવામા આવ્યુ છે કે-આત્મા સસારચક્રમાં પડીને અનેક દિશાઓમા અને અનેક વિદિશાઓમા નિરન્તર ભ્રમણ કરતો રહે છે સાથેજ પૃથ્વી, અપ, તેજ, વાયુ, વનસ્પતિ અને ત્રસની સચિત્તતા પણ સિદ્ધ કરી છે. અને તેનો આરભ કરવામા પરિજ્ઞા-વિવેક પણ પ્રદર્શિત કરેલ છે ॥ ૧ ॥

॥ ઇતિ શ્રી આચારાંગસૂત્રની 'आचारचिन्तामणि' ટીકાના ગુજરાતી અનુવાદમાં 'शस्त्रपरिज्ञा' નામનું પ્રથમ અધ્યયન સમ્પૂર્ણ. ॥ ૧ ॥

દાતાઓની નામાવલી

આદ્ય મુરબ્બીઓ, મુરબ્બીઓ, સહાયક મેમ્બરો

તથા

મેમ્બરોની યાદી

આભાર કક્ષાવારી લીસ્ટ

તા ૧૮-૧૦-૪૪ થી તા ૨૮-૨-૫૮ સુધીમાં

દાખલ થએલ મેમ્બરો.

(૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમાં સામેલ કરી નથી)

શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગરેડીઆ કુવા રોડ - ગ્રીન લોજ પાસે

રાજકોટ

આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ-૪

(ઓછામા ઓછી રૂા. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ જાણીતા મીલમાલીક	અમદાવાદ	૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ વારીયા હા. શેઠ લાલચંદભાઈ, જેચંદભાઈ નગીનભાઈ, વૃજલાલભાઈ, તથા વલ્લભદાસભાઈ	ભાણવડ	૬૦૦૦
૩	કોઠારી જેચંદભાઈ અજરામર હા હરગોવીંદભાઈ જેચંદભાઈ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર	૫૦૦૧

મુરબ્બીશ્રીઓ-૨૨

(ઓછામાં ઓછી રૂા ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કોઠારી હા કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મ્હેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	,,	૩૨૮૯ાાા‾ાા
૪	સ્વ. પિતાશ્રી છગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે હ ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મ્હેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સંઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ લહેરચંદ કુંવરજી હા. શેઠ ન્યાલચંદ લહેરચંદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા. મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુંબઇ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	મોરબી	૧૯૬૩
૧૨	મ્હેતા સોમચંદ તુલસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ મણીગૌરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મ્હેતા પોપટલાલ માવજીભાઇ	જામજોધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા દલપતરામભાઇ	,,	૧૦૦૨
૧૫	ખગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	દામનગર	૧૦૦૨

૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ બાપુજીભાઈ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મ્હેતા (રેલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા	૧૦૦૧
૧૯	મ્હેતા સોમચંદ નેણશીભાઈ (કરાચીવાળા)	મોરબી	૧૦૦૧
૨	શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ	ખંભાત	૧૦૦૧
૨૧	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ	મુંબઈ	૧૦૦૦
૨૨	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદભાઈ	સિહોર	૧૦૦૦

સહાયક મેમ્બરો—૩૬

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	શાહ રતનજીભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૨૧
૨	મોદી કેશવલાલ હરીચંદ	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ હુંવાભાઈ વલસીભાઈ	વઢવાણ શહેર	૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ મોહકભાઈ	લોકમાન્યનગર	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા. ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર	૫૫૫
૬	બાટવીઆ ગીરધર પ્રભાશુદ હા. અમીચંદભાઈ	બાબીલવીઆ	૫૨૭
૭	મોરબીવાળા સંઘવી દેવચંદ નેણશીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્નિ અ. સૌ. મણીબાઈ તરફથી હા. મુળચંદ દેવચંદ (કરાચીવાળા)	મલાડ	૫૧૧
૮	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	મોસલીયા હરીલાલ બાલચંદ તથા અ. સૌ. ચંપાબેન મોસલીયા	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૦	શેઠ પ્રેમચંદ માણેકચંદ તથા અ. સૌ. સમરતબેન (રાજસીતાપુરવાળા)	અમદાવાદ	૫ ૨
૧૧	શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરૂષોતમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ મંગુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૫ ૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ કમરભાઈ (કરાચીવાળા)	લીંબડી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ પીપળીવાળા	રાજકોટ	૫૦૦
૧૬	મ્હેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ	૫ ૦
૧૭	શેઠ ગોવીંદજી પોપટભાઈ	રાજકોટ	૫ ૦
૧૮	શેઠ રામજીભાઈ શામજી વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧

૧૯	સ્વ. પિતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે હા વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જાબુઆવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા શેઠ ઠાકરશી કરસનજી	થાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઔરંગાબાદ	૫૦૦
૨૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ ૧૫૦ શેઠ શેષમજી જીવરાજજી ૧૨૫ „ અનરાજજી લાલચંદજી ૧૨૫ ધુકુડચંદજી રૂપચંદજી ૧૦૦ દગડુમલજી ચાંદમલજી ૫૦૦	ઔરંગાબાદ	૫૦૦
૨૩	મ્હેતા મૂળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઈ	ધ્રાફા	૫૦૦
૨૪	શેઠ હરખચંદ પુરૂષોત્તમ હા ઇન્દુકુમારભાઈ	ચોરવાડ	૫૦૧
૨૫	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી ગુગલીયા	રાણાવાસ	૫૦૧
૨૬	સ્થા. જૈનસંઘ હા બાટવીયા અમીચંદ ગીરધરભાઈ	ખાખીજાળીઆ	૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમજીભાઈ બાવાભાઈ હા ફુલચંદભાઈ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	મુંબઈ	૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. મુળજીભાઈ મણીલાલ	મુંબઈ	૫૦૧
૨૯	સ્વ. કાંતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ	મુંબઈ	૫૦૧
૩૦	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી (જેતપુરવાળા)	મુંબઈ	૫૦૧
૩૧	શાહ જયંતીલાલ અમૃતલાલ	શીવ	૫૦૧
૩૨	વોરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ	શીવ	૫૦૧
૩૩	શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઈ	ખારરોડ	૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી બેન ધીરજકુંવર ચુનીલાલ મ્હેતા	ભાણવડ	૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ.	ધ્રાફા	૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ	રાજકોટ	૫૦૧

*

૩૧૬ મેમ્બરોનું ગામવાર લીસ્ટ

અમદાવાદ તથા પરાંઓ

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હસ્તે ફકીરચંદભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીભોવનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	૧

૬	શેઠ પ્રેમચંદ સાંકળચંદ	૨૫૦
૭	શાહ રતીલાલ નાથીલાલ	૨૫૧
૮	શેઠ લાલભાઈ મંગળદાસ	૨૫૧
૯	સ્વ. અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હસ્તે કાનજીભાઈ અમૃતલાલ દેસાઈ	૨૫૧
૧૦	ભાવસાર મોતીલાલ જમનાદાસ (પાટણવાળા)	૨૫૧
૧૧	શાહ નટવરલાલ મફતલાલ	૨૫૧
૧૨	શાહ નરસિંહદાસ ત્રીભોવનદાસ	૨૫૧
૧૩	શ્રી શાહપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. વહીવટકર્તા શેઠ હિંમતલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	૨૫૧
૧૪	શ્રી ખીચાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈનસંઘ હા. મફતલાલ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૫	શાહ ચીનુભાઈ બાલાભાઈ C/o શાહ બાલાભાઈ મહાસુખરામ	૨૫૧
૧૬	શાહ બાબુલાલ ઉજમશી	૨૫૧
૧૭	શ્રી સુમનલાલ ડી. શેઠ હા. ડૉ. કુ. સરસ્વતીબેન શેઠ	૨૫૧
૧૮	શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ કાન્તીલાલ છગનલાલ	૨૫૧
૧૯	મોદી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	૨૫૧
૨૦	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	૨૫૧
૨૧	શ્રી ધોરાજી સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ પોપટલાલ પીતાંબરદાસ	૨૫૧
૨૨	શેઠ પોપટલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાબુલાલ પોપટલાલ	૨૫૧
૨૩	દેસાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપીતરાવાળા હા. બાબુલાલ અમૃતલાલ દેસાઈ	૨૫૧
૨૪	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	૨૫૧
૨૫	શાહ મણીલાલ આશારામ	૨૫૧
૨૬	શાહ ચીનુભાઈ સાંકળચંદ	૨૫૧
૨૭	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદચંદ	૨૫૧
૨૮	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	૨૫૧
૨૯	સંઘવી છબુલાલ છગનલાલ (સ્થા. જૈન)	૨૫૧
૩૦	શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ખાંડવાવાળા	૨૫૧
૩૧	અ. સૌ. બેન રતનબાઈ નાહેશા હા. શાહ મુલાજી ચંપાલાલજી	૨૫૧
૩૨	શાહ હરિલાલ જેઠાલાલ લાકડાવાળા	૨૫૧
૩૩	શ્રી સરસપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. ભાવસાર મોતીલાલ છગનલાલ	૨૫૧
૩૪	શેઠ પુખરાજજી સમતીરામજી સાદડીવાળા	૨૫૧
૩૫	શેઠ લાલચંદ મીઠીલાલ	૨૫૧

૩૬ સ્વ. પિતાશ્રી જવાહીરલાલજી તથા પૂજ્ય ચાચાજી હજારીમલજી બરડીયાના સ્મરણાર્થે હા. મૂળચંદ જવાહરલાલ ૨૫૧
૩૭ સ્વ ભાવસાર બબાભાઈ (મંગળદાસ) પાનાચંદના સ્મરણાર્થે હા તેમના ધર્મપત્નિ પુરીબેન ૨૫૧
૩૮ સ્વ પિતાશ્રી રવજીભાઈ તથા સ્વ માતુશ્રી મૂળીબાઈના સ્મરણાર્થે હ. કકલભાઈ કોઠારી ૩૦૧
૩૯ ભાવસાર કેશવલાલ મગનલાલ ૨૫૧
૪૦ શાહ કેશવલાલ નાનચંદ જાખડાવાળા હા. પાર્વતીબેન ૨૫૧
૪૧ શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ ગજસીતાપુરવાળા (સાબરમતી) ૨૫૧
૪૨ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ (સાબરમતી) ૨૫૦
૪૩ બીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાત ચુનીલાલ ગોપાણી (રાણપુરવાળા) ૩૦૧

અમલનેર

૧ શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ ગાંડાલાલ ભીખાલાલ ૨૫૧

આણંદ

૧ રમણીકલાલ એ. કપાસી હા મનસુખલાલભાઈ ૨૫૧

આસનસોલ

૧ બાવીસી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ મણીબાઈ તરફથી હા. રસીકલાલ, અનીલકાત, વિનોદરાય ૨૫૧

આટકોટ

૧ શાહ ચુનીલાલ નારણજી ૩૦૧

ઉદેપુર

૧ શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીંગડ ૨૫૧
૨ શેઠ મગનલાલજી બાગરેચા ૨૫૧
૩ અ સૌ બ્હેન ચંદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી નાહરના ધર્મપત્નિ હા શેઠ રણજીતલાલજી હીંગડ ૨૫૧
૪ સ્વ શેઠ કાળુલાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે હા શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા ૨૫૧
૫ સ્વ શેઠ પ્રતાપમલજી સાખલાના સ્મરણાર્થે હા. પ્રાણલાલ હીરાલાલ સાખલા ૨૫૦

૬ પૂજ્ય પિતાશ્રી મોતીલાલજી મ્હેતાના સ્મરણાર્થે
હ. રણજીતલાલજી મોતીલાલજી મ્હેતા ૨૫૧
૭ છગનલાલજી બાગરેચા ૨૫૧

ઉમરગાવરોડ

૧ શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ પાનેલીવાળા ૨૫૧

ઉપલેટા

૧ શેઠ નેમલાલ ગોરધનદાસ ૨૫૧
૨ સ્વ. બેન સંતોકબેન કચરા હા. મોતમચંદભાઈ, છોટાલાલભાઈ
તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણવાળા) ૨૫૧
૩ શેઠ ખુશાલચંદ કાનજીભાઈ હા. શેઠ પ્રતાપભાઈ ૨૫૧
૪ સ. ભાવી મૂળચંદ હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે
હ. તેમના પુત્રો જયંતીલાલભાઈ તથા રમણીકલાલ ૨૫૧

ઓખા કેમ્પ

૧ શાહ ગોકળદાસ રામજી ઉમરશી ૨૫૧

કલોલ

૧ શેઠ મોહનલાલ જેઠાભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. શેઠ આત્મારામ મોહનલાલ ૨૫૧
૨ શે. મયાચંદ મગનલાલ શેઠ હા. ડૉ. રતનચંદ મયાચંદ ૨૫૧
૩ સ્વ. નાથાલાલ ઉમેદચંદના સ્મરણાર્થે હા. શાહ રતીલાલ નાથાલાલ ૨૫૧
૪ શાહ મણીલાલ વખતચંદના સ્મરણાર્થે
હા. મારફતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ ૨૫૧

કડી

૧ શ્રી સ્થા. હરીઆપુરી જૈનસંઘ હા. ભાવસાર દામોદરદાસ ઈશ્વરલાલ ૨૫૧

કોલકી

૧ પટેલ ગોવીંદલાલ ભગવાનજી ૨૫૧
૨ પટેલ ભીમજી જેઠાભાઈ નાથાણી (તેમના સ્વ. સુપુત્ર
રામજીભાઈના સ્મરણાર્થે) ૩ ૨

ખીચન

૧ શેઠ કીસનલાલ પૃથ્વીરાજ ૨૫૧

ખંભાત

૧ શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હા. પટેલ કાન્તીલાલ અંબાલાલ ૨૫૧
૩ શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ ૨૫૧
૪ શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ ૨૫૧

ગુંદા

૧ સ્વ. મહેતા પુનમચંદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

ગોંડલ

૧ સ્વ. બાખડ વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ કમળાબાઈ તરફથી
હા. માણેકચંદભાઈ તથા કપુરચંદભાઈ ૨૫૧
૨ પીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ અ. સૌ
લીલાવતી સાકરચંદ કોઠારીના બીજા વરસીતપની ખુશાલીમા ૩૦૧
૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા. હરીલાલ જુઠાભાઇ ૩૦૧

ગોધરા

૧ શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

ઘટકણુ

૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

ઘોલવાડ (થાણા)

૧ મહેતા ગુલાબચંદ ગંભીરમલજી ૩૦૦

ચુડા (ઝાલાવાડ)

૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હ. રતીલાલ ગાંધી પ્રમુખ ૨૫૧

જલેસર (બાલાસોર)

૧ સંઘવી નાનચંદ પોપટભાઈ થાનગઢવાળા ૨૫૧

જામજોધપુર

૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ ૩૮૭
૨ શાહ ત્રીભોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧

જામનગર

૧ શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧
૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી ૨૫૧
૩ વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ ૨૫૧

જામખંભાળીઆ

૧ શેઠ વસનજી નારણજી ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા. જૈન. સંઘ હા. મહેતા રણછોડદાસ પરમાણંદ ૨૫૧
૩ સંઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ ૨૫૧

જુનાગઢ

શાહ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા. હરીલાલભાઈ (કોટીના માણીઆવાળા) ૨૫૧

જુનારદેવ (મધ્યપ્રાંત)

પેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ ૨૫૧

જેતપુર

શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા. નરશીરામભાઈ (જસાપુરવાળા) ૨૫૧
દોશી છોટાલાલ વનેચંદ ૨૫૧
કોઠારી ઠાકરકુમાર વેણીલાલ ૨૫૧

જેતલસર

શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ ૨૫૧
કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ જયાબેન તરફથી હા. શાન્તીલાલભાઈ બોઠવાળા ૨૫૧

ડભાસ

સ્વ. તુરખીયા લહેરચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ જીવતીબાઈ તરફથી હા. જયતીબાઈ ૨૫૧

ટોંડાપ્યા

શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શેઠ ચંપાલાલ ભારવે ૨૫૦

થાનગઢ

શાહ મકરશીભાઈ કરસનજી ૨૫૧
શેઠ જેમલાલ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧
શાહ ધારશી પાનાચંદ હા. સુખલાલભાઈ ૨૫૧

દહાણુ રોડ (થાણા)

શાહ હરજીવનદાસ મોનજી ઓધાર (કાંધીવાળા) ૨૫૧

દિલ્હી

લાલા પૂર્ણચંદજી જૈન (હિન્દૂલ મિલવાળા) ૨૫૧

ધાર (મધ્યપ્રાંત)

શેઠ સાગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧

ધ્રાંગધ્રા

૧ શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ હા. શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ ૨૫૧
૨ સંઘવી નારણદાસ વખતચંદ ૩૦૧
૩ ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ ૨૫૧

ધોરાજી

૧ મ્હેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઇ ૩૫૧
૨ સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈ સ્મરણાર્થે
હા પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી ૨૫૧
૩ અ. સૌ. બચીબેન બાબુભાઈ ૨૫૧
૪ ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર ઓઇલ મીલ પ્રા. લીમીટેડ ૨૫૧
૫ સ્વ. રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ રાયચંદ ૩૦૧
૬ ગાધી પોપટલાલ જેચંદ ૨૫૦

ધંધુકા

૧ ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઇ ૨૫૧
૨ શેઠ પોપટલાલ ધારશી ૨૫૧
૩ સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. વોરા પોપટલાલ નાનચંદ ૨૫૧
૪ વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ ૨૫૧

નંદુરબાર

૧ શ્રી સ્થાનવાસી જૈન સઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ ૨૫૦

પાણુસણા

૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ ૨૫૧

પાલણપુર

૧ લક્ષ્મીબેન હા મ્હેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ ૨૫૧
૨ શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા. જૈન પુસ્તકાલય ૨૫૧

પાલેજ

૧ સ્વ. મનસુખલાલ મોહનલાલ સઘવીના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ ૩૦૧

બરવાળા (ઘેલાશા)

૧ સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે
હા. તેમના ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી ૨૫૧

બગસરા (ભાયાણી)

૧ સ્વ. પૂજ્ય માતુશ્રી જડાવબાઈના સ્મરણાર્થે
હ. દેસાઈ મણીલાલ કાળીદાસ ૨૫૧

૨ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા. શેઠ માનસંગ પ્રેમચંદ ૨૫૧

બેરાજા (કચ્છ)

૧ શાહ ધાંજજી દેશરજી (જ્ઞાનભંડાર માટે) ૨૫૧

બોટાદ

૧ સ્વ. વસાણી હરગોવીંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ છબલબેન ૨૫૧

૨ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ (૨૫૦ બાકી) ૨૫૧

બોરડી

૧ શાહ મણીલાલ નરસિંહદાસ (ચાણુંદવાળા) ૨૫૧

૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ ૨૫૧

ભાવનગર

૧ શેઠ જેચંદભાઈ માણેકચંદ ૩૦૧

૨ સંઘવી માણેકચંદ માધવજી ૨૫૧

૩ શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧

૪ શેઠ રામજી જીવણભાઈ ૨૫૧

૫ શેઠ પદમશી ભીમજી શેઠીઆ ૨૫૧

૬ શેઠીઆ બાબુલાલ કાનજીભાઈ હા. અ. સૌ. શાંતાબેન વસનજી ૨૫૧

મદ્રાસ

૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી ૨૫૧

મનોર (થાણા)

૧ શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવંતગઢવાળા
હ. પૂનમચંદજી શેરમલજી બોલ્યા ૨૫૧

માનકુવા (કચ્છ)

૧ સ્વ. મહેતા કુંવરજી નાથાભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ કુંવરબાઈ હરખચંદ ૨૫૧
(માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે)

ધ્રાંગધ્રા

૧	શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ હા શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સંઘવી નારણદાસ વખતચંદ	૩૦૧
૩	ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

ધોરાજી

૧	મ્હેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઇ	૩૫૧
૨	સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈ સ્મરણાર્થે હા. પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી	૨૫૧
૩	અ સૌ. બચીબેન ખાણુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર ઓઈલ મીલ પ્રા. લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ. રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ રાયચંદ	૩૦૧
૬	ગાંધી પોપટલાલ જેચંદ	૨૫૦

ધંધુકા

૧	ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઇ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. વોરા પોપટલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ	૨૫૧

નંદુરબાર

૧	શ્રી સ્થાનવાસી જૈન સઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ	૨૫૦

પાણસણા

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	૨૫૧

પાલણપુર

૧	લક્ષ્મીબેન હા. મ્હેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા જૈન પુસ્તકાલય	૨૫૧

પાલેજ

૧	સ્વ. મનસુખલાલ મોહનલાલ સંઘવીના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧

બરવાળા (ઘેલાશા)

૧	સ્વ. મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે હા. તેમના ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી	૨૫૧

૨૬ સ્વ. કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતુશ્રી દિવાળીબાઈના ૧૬
ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા. જયંતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ) ૨૫૧
૨૭ શેઠ જીવાલાલભાઈ ખેંગારભાઈ ૨૫૦
૨૮ શાહ પ્રેમજી માલશી બજાર (મલાડ) ૨૫૧
૨૯ સ્વ. પિતાશ્રી પતુભાઈ મીનાભાઈના સ્મરણાર્થે હા. કાનજી પતુભાઈ ૨૫૧
૩૦ શાહ વેલજી જેશી ગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમનાં
ધર્મપત્નિ અ. સૌ. સ્વ. નાનબાઈના સ્મરણાર્થે ૩૦૧
૩૧ સ્વ પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ હામજી રામશી (મલાડ) ૩૦૧
૩૨ શેઠ ત્રંબકલાલ કસ્તુરચંદ લીંબડીવાળા તરફથી
શ્રી અમરામર શાસ્ત્ર ભંડાર લીંબડી માટે (મારુગા) ૨૫૧
૩૩ સ્વ. પિતાશ્રી ભીમશી કોરશી તથા માતુશ્રી પાલાબાઈના સ્મરણાર્થે
હા. શાહ ઉજમશીભાઈ ભીમશીભાઈ કચ્છધ્રતરીવાળા (મલાડ) ૩૦૧
૩૪ શેઠ ચુનીલાલ નરશેત્તમ વેકરીવાળા ૨૫૧
૩૫ શાહ પૂંજાભાઈ શીવજી (મલાડ) ૨૫૧
૩૬ રતીલાલ લાધાચંદ મહેતા ૨૫૧
૩૭ શાહ ભીમજી મુળજી પૂંજા (મલાડ) ૨૫૧
૩૮ મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા. શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ ૨૫૧
૩૯ પેથાણી વલ્લભજી નરશેત્તમ હા નરશીભાઈ વલ્લભજી ૨૫૧
૪૦ અ.સૌ. ધમતાબેન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉજમશી શાહ (મલાડ) ૨૫૧
૪૧ દેસાઈ કુબેરદાસ પાનાચંદ ૨૫૧
૪૨ કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ ૨૫૧
૪૩ સ્વ. પિતાશ્રી કેશવલાલ વજરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે
સુરજબેન તરફથી હા. કનુભાઈ (મલાડ) ૨૫૧
૪૪ દલીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૪૫ શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાદડીવાળા) ૨૫૧
૪૬ દોશી મનસુખ સુંદરજી (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૪૭ દોશી જુગલકીશોર મનસુખ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૪૮ દોશી પ્રવીણચંદ્ર મનસુખ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૪૯ શાહ ત્રીભોવનદાસ માનસિંગ દેવીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. શાહ હરખચંદ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧
૫૦ શાહ ઝેઠાલાલ લખમશી માંગરાળાવાળા હા. શાહ વાડીલાલ જેઠાલાલ ૨૫૦
૫૧ શાહ મણીલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

મુંબઈ તથા પરાંઓ

૧	શેઠ છગનલાલ નાનજીભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ હરજીવન કેશવજી	૨૫૧
૩	ઘેલાણી પ્રભુલાલ ત્રીકમજી (બોરીવલી)	૨૫૨
૪	શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાલા	૨૫૧
૫	શ્રીવર્ધમાન સ્થા.જૈનસંઘ હા કેસરીમલજી અનોપચંદજી ગુગળીયા(મલાડ)	૨૫૧
૬	શેઠ ડુંગરશી હંસરાજ વીસરીયા	૨૫૧
૭	શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ. સૌ કાન્તાબેન રમણીકલાલ	૨૫૧
૮	શાહ હિંમતલાલ હરજીવનદાસ	૨૫૧
૯	શાહ રતનશી મોણશીની કુંપની	૨૫૧
૧૦	શાહ શીવજી માણેક કચ્છ (બિરાજાવાળા)	૨૫૧
૧૧	વોરા પાનાચંદ સંઘજીના સ્મરણાર્થે હા ત્રંબકલાલ પાનાચંદ વોરા બ્રધર્સ	૨૫૧
૧૨	સ્વ પૂ પિતાશ્રી વીરચંદ જેસીંગભાઈ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે હા. કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ	૨૫૧
૧૩	શાહ કુંવરજી હંસરાજ	૨૫૧
૧૪	સ્વ માતુશ્રી માણેકબેનના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ વલ્લભદાસ નાનજી (પોરબંદરવાળા)	૩૦૧
૧૫	શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પૂનમીયા સાદડીવાળા	૨૫૧
૧૬	એક સદ્‌ગૃહસ્થ હા શેઠ સુંદરલાલ માણેકચંદ	૨૫૧
૧૭	અ સૌ. પાનબાઈ હા શેઠ પદમશી નરસિંહભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૧૮	શ્રી અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા દલીચંદ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૯	સ્વ શાહ નાગશી સેજપાળ ગુંદાળાવાળાના સ્મરણાર્થે હા રામજી નાગશી (મલાડ)	૩૦૧
૨૦	શાહ રામજી કરશનજી થાનગઢવાળા	૨૫૧
૨૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	૨૫૧
૨૨	શીવલાલ ગુલાબચંદ શેઠ મેવાવાળા	૨૫૧
૨૩	સ્વ. જટાશંકર દેવજી દોશીના સ્મરણાર્થે હા રણછોડદાસ (બાબુલાલ) જટાશંકર દોશી	૩૦૧
૨૪	સ્વ ગોડા વણારશી ત્રીભોવન સરસઈવાળાના સ્મરણાર્થે હા જગજીવન વણારશી ગોડા (મલાડ)	૨૫૧
૨૫	સ્વ ત્રીભોવનદાસ મજપાળ વીંછીયાવાળાના સ્મરણાર્થે હા. હરગોવિંદદાસ ત્રીભોવનદાસ સજમેરા	૨૫૧

માંડવી (કચ્છ)

૧ શ્રી સ્થા. ૭ કોટી જૈન સંઘ હા. મહેતા ચુનીલાલ વેલજી ૨૦૭

મેસાણા

૧ શાહ પદમશી સુરજીના સ્મરણાર્થે હા. શીવલાલ પદમશી વીરમગામવાળા ૨૫૧

મોમ્બાસા

૧ શાહ દેવરાજ પેથરાજ ૨૫૦
૨ શ્રીયુત નાથાલાલ ડી. મહેતા ૨૫૧

વાહગીરી

૧ શેઠ બાદમલજી સુરજમલજી મેન્ડર્સ ૨૫૦

રાણપુર (ઝાલાવાડ)

૧ શ્રીમતી માતુશ્રી અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે હા શે. નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ ૨૫૧

રાણાવાસ (મારવાડ)

૧ શેઠ જવાનમલજી નેમીચંદજી હા. બાબુ રીખબચંદજી ૩૦૧

રાજકોટ

૧ ધી વાડીલાલ ડાઈંગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્કસ ૪૦૦
૨ શેઠ રતીલાલ ન્યાલચંદ ૨૫૧
૩ બાબુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા) ૨૫૦
૪ શેઠ મનુભાઈ ગુલાબચંદ (એન્જીનીયર સાહેબ) ૨૫૧
૫ શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમચંદ તેમના ધર્મપત્નિના વરસીતપ પ્રસંગે ૨૫૧
૬ ઉદાણી ન્યાલચંદ હાકેમચંદ વકીલ ૨૫૧
૭ શેઠ પ્રભુરામ વીઠલજી ૨૫૧
૮ શેઠ હકમીચંદ દીપચંદ (બીલખાવાળા) સ્ટેશનમાસ્તર ૨૫૧
૯ બ્હેન સુર્યબાળા નોતમલાલ જસાણી (વરસીતપની ખુશાલી) ૨૫૧
૧૦ મોદી સૌભાગ્યચંદ મોતીચંદ ૨૫૧
૧૧ જસાણી ભીમજી વેલજી તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ
અ. સૌ. સમરતબેનના વરસીતપની ખુશાલી ૨૫૧
૧૨ દોશી મોતીચંદ ધારશીભાઈ (રીટાયર્ડ એન્જીનીયર સાહેબ) ૨૫૧
૧૩ કામદાર ચંદુલાલ જીવરાજ ૨૫૦
૧૪ દેમાણી વિઠુભાઈ સવચંદ ૨૫૧

૫૨	સ્વ. પિતાશ્રી શામળજી કલ્યાણજી ગોડલવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા વૃજલાલ શામળજી બાવીશી	૩૦૧
૫૩	શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા	૨૫૧
૫૪	સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે હા લક્ષ્મીચંદ તથા કેશવલાલભાઈ	૩૦૧
૫૫	સ્વ. પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે હા દેવશી હંસરાજ કચ્છ બીડાલાવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૫૬	સ્વ માતુશ્રી ગોમતીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ પોપટલાલ પાનાચંદ	૨૫૧
૫૭	શેઠ નેમચંદ સ્વરૂપચંદ ખંભાતવાળા હા ભાઈ જેઠાલાલ નેમચંદ	૨૫૧
૫૮	સ્વ પિતાશ્રી શાહ અંબાલાલ પરસોતમ પાણશણાવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. બાપાલાલભાઈ	૨૫૧
૫૯	બેન કેસરબાઈ ચંદુલાલ જેસીંગલાલ શાહ	૨૫૧
૬૦	દડીયા જેસીંગલાલ ત્રીકમજી	૨૫૧
૬૧	શાહ કાન્તીલાલ મગનલાલ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૬૨	કોઠારી સુખલાલજી પૂનમચંદજી (ખાર)	૨૫૧
૬૩	સ્વ માતુશ્રી કડવી બાઈના સ્મરણાર્થે હા. તેમના પૌત્ર હકમીચંદ તારાચંદ દોશી (કાંદીવલી)	૨૫૧
૬૪	શેઠ સારાભાઈ ચીમનલાલ	૨૫૧
૬૫	શાહ કોરશીભાઈ હીમજીભાઈ	૩૦૧
૬૬	પિતાશ્રી કુંદનમલજી મોતીલાલજીના સ્મરણાર્થે હા. મોતીલાલ જુબરમલ (અહમદનગરવાળા)	૨૫૧
૬૭	શ્રી વર્ધમાન શ્વેતામ્બર સ્થા જૈનસંઘ હા. શેઠ રૂપચંદ શીવલાલ કામદાર (અંધેરી)	૨૫૧
૬૮	અ. સૌ કમળાબેન કામદાર હા રૂપચંદ શીવલાલ (અંધેરી)	૨૫૧
૬૯	ધી મરીના મોડર્ન હાઈસ્કુલ ટ્રસ્ટ ફંડ હા શાહ મણીલાલ ઠાકરસી	૨૫૧
૭૦	સ્વ માતુશ્રી જીવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શામજી શીવજી કચ્છ ગુંદાળાવાળા (ગોરેગાવ)	૨૫૧
૭૧	શાહ રવજીભાઈ તથા ભાઈલાલભાઈની કંપની (કાંદીવલી)	૨૫૧
૭૨	અ સૌ લાછુબેન હા રવજી શામજી (કાંદીવલી)	૨૫૧
૭૩	અ સૌ. બેન કુંદનગૌરી મનહેરલાલ સંઘવી (ખારરોડ)	૨૫૧
૭૪	શાહ કરશનભાઈ લઘુભાઈ (દાદર)	૩૦૧
૭૫	અ. સૌ. રંજનગૌરી ચંદુલાલ શાહ C/o ચંદુલાલ લક્ષ્મીચંદ (માટુંગા)	૨૫૧
૭૬	મહેતા મોટર સ્ટોર્સ હા. અનોપચંદ ડી. મહેતા (મુંબઈ)	૨૫૧

માંડવી (કચ્છ)

૧ શ્રી સ્થા. ૭ કોટી જૈન સંઘ હા. મહેતા ચુનીલાલ વેલજી ૨૭૭

મેસાણા

૧ શાહ પદમશી સુરજમલના સ્મરણાર્થે હા. શીવલાલ પદમશી વીરમગામવાળા ૨૫૧

મોમ્બાસા

૧ શાહ દેવરાજ પેથરાજ ૨૫૦
૨ શ્રીયુત નાથાલાલ ડી. મહેતા ૨૫૧

યાદગીરી

૧ શેઠ બાદમલજી સુરજમલજી મે ફર્મ ૨૫૦

રાણપુર (ઝાલાવાડ)

૧ શ્રીમતી માતુશ્રી અમૃતબાઇના સ્મરણાર્થે હા ડો. નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ ૨૫૧

રાણાવાસ (મારવાડ)

૧ શેઠ જવાનમલજી નેમીચંદજી હા. બાબુરીખબચંદજી ૩૦૧

રાજકોટ

૧ ધી વાડીલાલ કાર્ડિંગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્કસ ૪૦૦
૨ શેઠ રતીલાલ ન્યાલચંદ ૨૫૧
૩ બાબુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઈરિપુરવાળા) ૨૫૦
૪ શેઠ મનુભાઈ ગુલાબચંદ (એન્જીનીયર સાહેબ) ૨૫૧
૫ શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમચંદ તેમનાં ધર્મપત્નિના વરસીતપ પ્રસંગે ૨૫૧
૬ ભાયાણી ન્યાલચંદ હાકેમચંદ વકીલ ૨૫૧
૭ શેઠ પ્રભારામ વીઠલજી ૨૫૧
૮ શેઠ હકમીચંદ દીપચંદ (ગોંડલવાળા) સ્ટેશનમાસ્તર ૨૫૧
૯ બ્હેન સુર્યબાળા નોતમલાલ જસાણી (વરસીતપની ખુશાલી) ૨૫૧
૧૦ મોદી સોભાગચંદ મોતીચંદ ૨૫૧
૧૧ જસાણી શીવજી વેલજી તરફથી તેમનાં ધર્મપત્નિ
અ. સૌ. સમરતબેનના વરસીતપની ખુશાલી ૨૫૧
૧૨ દોશી મોતીચંદ પારસીભાઈ (રીટાયર્ડ એન્જીનીયર સાહેબ) ૨૫૧
૧૩ કામદાર મંજુલાલ જીવરાજ ૨૫૦
૧૪ દેમાણી ચંદુભાઈ સવચંદ ૨૫૧

રંગુન

૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. કમળાબેન ૨૫૧

લખતર

૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ. શાન્તિલાલ રાયચંદ ૨૫૧
૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે
હા ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧
૩ શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧
૪ શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ ૨૫૧
૫ શાહ જાદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે
હા ભાઈ શાન્તીલાલ જાદવજી ૨૫૧
૬ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ સમરતબેન
વ્રજલાલ તરફથી હા જયંતીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

લાલપુર

૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા મગનલાલભાઈ ૨૫૧
૨ શેઠ મૂળચંદ પોપટલાલ હા મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ ૨૫૧

લાખેરી (રાજસ્થાન)

૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા મ્હેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ
(સીવીલ એન્જીનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

લીમડી (પંચમહાલ)

૧ શાહ કુંવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧
૨ છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ ૨૫૧ાિ

લોનાવલા

૧ શેઠ ધનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧

વઢવાણ શહેર

૧ શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા સવાઈલાલ ત્રંબકલાલ શાહ ૨૫૧
૨ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧
૩ સંઘવી મૂળચંદ બેચરભાઈ હા જીવણલાલ ગફલદાસ ૨૫૧
૪ શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ ૨૫૧
૫ શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧

૬ વોરા મનસુખ મગનલાલ ૨૫૧
૭ સંઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ ૨૫૧
૮ શાહ દેવશી દેવકરણ ૨૫૧
૯ વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા નાનચંદ શીવલાલ ૨૫૧
૧૦ વોરા ધનજીભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈનસંઘ હા. વોરા પાનાચંદ ગોપાળદાસ ૨૫૧
૧૧ દોશી વીરચંદ સુરચંદ હા. દોશી નાનચંદ ઉજમશી ૨૫૧
૧૨ સ્વ. વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા. વોરા મનસુખ મગનલાલ ૨૫૧

વટામણ

૧ શ્રી વટામણ સ્થા. જૈનસંઘ હા. શ્રી લાલાભાઈ કલુભાઈ પટેલ ૨૫૧

વલસાડ

૧ શાહ ખીમચંદ મૂળજીભાઈ ૨૫૧

વણી

૧ મહેતા નાનાલાલ છગનલાલનાં ધર્મપત્નિ સ્વ. મગળાબેન તથા
પુરીબેનના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ ૨૫૧

વડોદરા

૧ કામદાર કેશવલાલ ત્રિભોવનદાસ પ્રોફેસર સાહેબ (ગોંડલવાળા) ૨૫૧
૨ વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ ૨૫૧
૩ સ્વ. પિતાશ્રી શાહ હકમીચંદ પુંજાભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. શાહ રમણલાલ હકમીચંદ ૨૫૧

વડીઆ

૧ પચમીયા ભગવાનભાઈ કાળાભાઈ (જેતપુરવાળા) ૨૫૧

વાંકાનેર

૧ માસ્તર કાન્તીલાલ જાદવલાલ ખંઢેરીઆ ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ (રૂા. ૨૫૦ બાકી) ૨૫૧
૩ ધ્રુતરી ચુનીલાલ પોપટભાઈ મોરબીવાળા હા. બાબુલાલ ચુનીલાલ ૨૫૧

વીંછીઆ

૧ શ્રી. સ્થા. જૈન સંઘ હા. મણીઆર રાયચંદ ભગવાન ૨૫૧

વીરમગામ

૧	શાહ વાડીલાલ નેમચંદ વકીલ	૨૫૦
૨	શાહ વિઠ્ઠલભાઈ મોદી માસ્તર	૨૫૧
૩	શાહ નાગરદાસ માણેકચંદ	૨૫૧
૪	શાહ મણીલાલ જીવણલાલ (શાહપુરવાળા)	૨૫૧
૫	શાહ અમુખલ (બચુભાઈ) નાગરદાસના ધર્મપત્નિ અ. સૌ બેન લીલાવતીના વરસીતપના પારણાની ખુશાલીમા હા ભાઈ કાન્તીલાલ નાગરદાસ	૩૦૦
૬	સ્વ શેઠ ઉજમશી નાનચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૭	સ્વ મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા ખીમચંદભાઈ (ખારાઘોડાવાળા)	૨૫૧
૮	સ્વ શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ	૨૫૧
૯	સંઘવી જેચંદભાઈ નારણદાસ	૨૫૧
૧૦	સ્વ શાહવેલશીભાઈ સાકરચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ વેલશી (કત્રાસવાળા)	૨૫૧
૧૧	પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરફથી (મોટીબેનના સ્મરણાર્થે)	૨૫૧
૧૨	શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપુત્ર વાડીલાલભાઈના ધર્મપત્નિ અ સૌ. નારંગીબેનના વરસીતપ નીમીત્તે હા શાન્તીભાઈ	૨૫૧
૧૩	સ્વ છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ કમળાબેન તરફથી હા મંજુલાકુમારી	૨૫૧
૧૪	શ્રી સ્થા જૈન શ્રાવિકાસંઘ હા પ્રમુખ અ સૌ રંભાબેન વાડીલાલ	૨૫૧
૧૫	સ્વ ત્રીભોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ અ સૌ ચંચળબેનના સ્મરણાર્થે હા ડૉકટર હિંમતલાલ સુખલાલ	૨૫૧
૧૬	શાહ મૂળચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઈ	૨૫૧
૧૭	શેઠ મોહનલાલ પીતાંબરદાસ હા. ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલ	૨૫૧
૧૮	શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઈના વરસીતપ નીમિત્તે હા નથુભાઈ નાનચંદ શાહ	૩૦૧
૧૯	સ્વ મણીયાર પરસોત્તમ સુંદરજીના સ્મરણાર્થે હા શેઠ સાકરચંદ પરસોતમદાસ	૨૫૧
૨૦	શેઠ મણીલાલ શીવલાલ	૨૫૧

વેરાવળ

૧	શાહ કેશવલાલ જેચંદભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ ખીમચંદ સૌભાગ્યચંદ વસનજી	૨૫૧

સતારા

૧ સ્વ. મદનલાલજી કુંદનલાલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે
હા. તેમના ધર્મપત્નિ રાજકુંવરબાઈ મદનલાલજી ૨૫૧

સાલબની (બંગાળ)

૧ દોશી ચુનીલાલ કુલચંદ મોરબીવાળા ૨૫૦

સાણંદ

૧ શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા. શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧
૨ અ. સૌ. ચંપાબેન હા. દોશી જીવરાજ લાલચંદ ૨૫૧
૩ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧
૪ શાહ સાંકળચંદ કાનજીભાઈ ૨૫૧
૫ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સંઘવી વીંછીઆવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી ૨૫૧
૬ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મૂળીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. પારેખ ભીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧
૭ સંઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા. જયંતીલાલ નારણદાસ ૨૫૧

સુરત

૧ શ્રી. સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ ભિખુભાઈ અમીચંદ ૨૫૧

સુથરી (કચ્છ)

૧ સાકમા શામજી હીરજી તરફથી સ્થાનકવાસી જૈન મુનીશ્રી છોટાલાલજી
મહારાજના ઉપદેશથી સુથરી સ્થા. જૈનસંઘ જ્ઞાનભંડારને ભેટ ૨૫૧

સુરેન્દ્રનગર

૧ શેઠ ચાંપશીભાઈ સુખલાલ ૨૫૧
૨ ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદ ૨૫૧
૩ સ્વ. કેશવલાલ મુળજીભાઈના ધર્મપત્નિ અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈલાલ કેશવલાલ (થાનગઢવાળા) ૨૫૧
૪ શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ ૨૫૧

સંજેલી (પંચમહાલ)

૧	શાહ લુણાજી ગુલાબચંદ	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ દલીચંદ	૨૫૧

હાટીનામાળીયા

૧	શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઇ	૨૫૦

હારીજ

૧	શાહ અમુલખભાઈ મૂળજી હા. પ્રકાશચંદ અમુલખ	૩૦૧
૨	સ્વ બેન ચંદ્રકાન્તાનાં સ્મરણાર્થે હા. અમુલખ મૂળજીભાઈ	૩૦૧

હુબલી

૧	શેઠ હીરાચંદ વનેચંદજી કટારીઆ	૨૫૧



કુલ્લ મેમ્બરોની સંખ્યા તા. ૨૮-૨-૫૮ સુધી

૪ આદ્ય મુરબ્બીશ્રીઓ
૨૨ મુરબ્બીશ્રીઓ
૩૬ સહાયક મેમ્બરો
૩૧૬ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
૮૩ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
૪૬૧ કુલ્લ મેમ્બરો

(બીજા વર્ગને સદંતર બંધ કરવામા આવેલ છે)

રાજકોટ, તા. ૧-૩-૫૮

સાંકરચંદ ભાઇચંદ શેઠ
મંત્રી,
શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શા. સ.